यशपाल का यात्रा-साहित्य और कथा नाटक

यशपाल का यात्रा-साहित्य और कथा नाटक

यशपाल
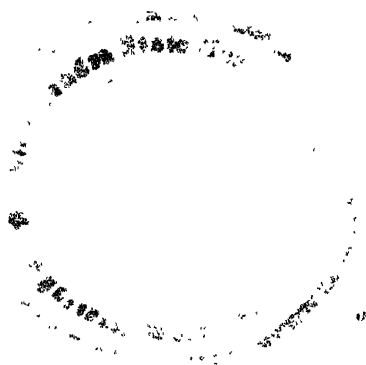
लोकभारती प्रकाशन

१५-ए, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद-१

अनुक्रम

लोहे की दीवार के दोनों ओर

राहबीती

●

स्वर्गोद्यान : बिना सांप

●

नशे-नशे की बात
(कथा नाटक)

लोहे की दीवार के दोनों ओर

- योरुप के मार्ग में
- लोहे की दीवार के उस ओर
- गुर्जी (ज्योर्जिया)
- स्तालिनग्राद
- लेनिनग्राद
- लोहे की दीवार के इस ओर

समर्पण

सोवियत देश और अन्य पूँजीवादी व्यवस्थाओं में पाये ये व्यक्तिगत अनुभव और उसके परिणाम में उत्पन्न तुलनात्मक विचार उन पाठकों को समर्पित हैं जो इस विषय में जिज्ञासा और रुचि रखते हैं।

यशपाल

योरुप के मार्ग में

लखनऊ से उठकर योरुप में आस्ट्रिया की राजधानी वियाना चल देना मेरे लिये सहज और साधारण घटना न थी। उत्तर प्रदेश की शान्ति कमेटी ने और भारतीय शान्ति कमेटी ने भी मुझे वियाना में होने वाली विश्व शान्ति कांग्रेस के लिये प्रतिनिधि चुन लिया। कर्त्तव्य का एक बोझ सा कंधों पर आ पड़ा। अपने लिये कठिन होते हुए भी इस यात्रा के लिये साधन अर्थात रुपया और पासपोर्ट जुटाने के उपक्रम में लगना पड़ा। यात्रा के लिये रुपया कर्ज़ लेना तो अपने साहस और सामर्थ्य पर निर्भर करता था परन्तु पासपोर्ट उत्तर प्रदेश की सरकार की इच्छा पर। पासपोर्ट मिला तो पर बिना अड़चन के नहीं। मेरे लौटने पर अनेक मिलने वालों का यही अनुमान था कि मैं सरकार के खर्च पर विदेश होकर आया हूँ। उन्होंने सहज तर्क से काम लिया था कि सरकार को विश्व शान्ति के लिये यत्न करना ही चाहिये। इस उद्देश्य से इतनी दूर जाने वाले को अवश्य सरकारी सहायता मिली होगी पर सरकारी और सर्वसाधारण के तर्क में अंतर होता है।

लखनऊ के साथियों को, विशेषकर लेखक साथियों को मेरी योरुप जाने की तैयारी का पता लग चुका था। गाड़ी छूटने से प्रायः दो घंटे पूर्व एक गोष्ठी मुझे विदाई देने के लिये की गई। साथियों ने शुभकामनायें कीं और यह अनुरोध भी किया कि यात्रा का अनुभव और विश्व शान्ति कांग्रेस के समाचार यथासम्भव विस्तार से प्रति सप्ताह भेजता रहूँ। स्नेह के इस अनुरोध को पूरा करने का वचन दिया। यह वचन ही इस वृत्तान्त का स्रोत है।

५ दिसम्बर १९५२; गाड़ी छोटे-मोटे स्टेशनों की ओर ध्यान दिये बिना खूब तेज़ चली जा रही थी। गाड़ी के तेज़ चाल से चलने पर नियमित खड़खड़ाहट और गड़गड़ाहट ताल का सा समा बाँध देती है। उस डिब्बे में दो ही यात्री थे, एक महाराष्ट्र महिला डाक्टर जो लखनऊ से ही सवार हुई थीं, दूसरा मैं स्वयं। हम दोनों एक दूसरे से बात न कर अपने-अपने बर्थ पर लेट-लेट कर या बैठ-बैठ कर यात्रा का लम्बा समय काट रहे थे। मानो हम दोनों एक दूसरे की मौन चौकसी कर रहे हों। गाड़ी में हमें पन्द्रह-सोलह घंटे बीत चुके थे। अभी इतना ही समय और बिताना था। विश्व शान्ति आन्दोलन के सम्बध में कुछ विवरण और लेख साथ लेता आया था। उन्हें पढ़ता रहा या खिड़की से पीछे की ओर उड़ते जाते खेतों और गाँवों पर नज़र डालता जा रहा था। डाक्टर महिला भी कभी कोई पत्रिका या पत्र देखने लगतीं और कभी खिड़की से मुँह बाहर निकाल गाड़ी की ताल पर कोई पक्का राग अलापने लगतीं। उनके गाने के शब्द स्पष्ट न सुन पड़ते। कृष्ण की बाललीला के सम्बन्ध में सूरदास के कोई पद थे। गाड़ी धीमी होने पर उनका संगीत गाड़ी

के शब्द से ऊँचा हो जाता तो वे चुप हो जातीं। मैं पढ़ते-पढ़ते अपनी यात्रा की बात सोचने लगता :—गत रात स्नेह से स्टेशन तक विदा देने आये मित्रों, रानी, मामा और मंटा, नन्दू के हार पहना कर विदा देते समय मन कुछ द्रवित सा हो गया था। यों तो मैं घर से बाहर आता-जाता ही रहता हूँ। रानी और बच्चे भी प्रायः स्टेशन पर छोड़ने आते हैं। कभी दो-तीन मास भी बाहर रह आता हूँ। ऐसा कुछ अभ्यास सा हो चुका है परन्तु गत संध्या यह विदाई उतनी साधारण नहीं लगी। बहुत दूर, विदेश के लिये विदाई तो थी ही पर उसके साथ ही कुछ ऐसा भी भाव था कि किसी बड़े काम में सहयोग देने का उत्तरदायित्व लेकर अपने काम और परिवार को छोड़कर जा रहा हूँ। बिलकुल ठीक वैसे ही तो नहीं पर कुछ-कुछ वैसे ही, जैसे तेईस वर्ष पूर्व 'हिन्दुस्तान समाजवादी प्रजातंत्र सेना' के क्रान्तिकारी आन्दोलन में फरार होते समय लगा था। तब शायद नौजवानी में आत्म-बलिदान की उमंग का वेग मन में रहा हो। अब वह बात नहीं हो सकती परन्तु ऐसे कर्त्तव्य की अनुभूति जरूर थी जिसकी अवहेलना नहीं की जा सकती।

विश्व शान्ति के प्रति कर्त्तव्य की बात शायद कुछ लोगों को अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में योग देने की महत्त्वाकांक्षा जान पड़े। पर मैं जानता हूँ कि वैसी महत्त्वाकांक्षा मुझ में नहीं है। अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति तो क्या; अब मैं ऐसे शैथिल्य के वश हो गया हूँ कि अपने प्रान्त या अपने नगर तक की राजनीति से कतरा जाता हूँ। कुछ लोग इसे आत्मरति या जीवन के प्रति मोह कहेंगे। दूसरे लोग न भी कहें तो मैं आत्मालोचना के ढंग से ऐसा सोच सकता हूँ। 'जीवन का मोह' होता क्या है? जीते रहने की और सुख से जी सकने की इच्छा। सुख से जी सकने की कल्पना अपने परिवार, समाज और देश को भुला कर या गवाँ कर नहीं की जा सकती। यह ठीक है कि मैं जीना चाहता हूँ। अपने बच्चों, अपनी पत्नी, माँ, भाइयों और भाभी के साथ; अपने संतुष्ट हँसते हुए समाज से घिरकर। ऐसी इच्छा या स्वप्न पूरा कर सकने के लिये मेरे परिवार और देश-समाज के जीवन की आवश्यकतायें पूरे करने के साधनों का विकास आवश्यक है। मेरे परिवार, समाज और देश की भूख मिटने और तन ढाँप सकने की सुविधा के लिये रोज़गार की सहूलियत होना और श्रम करने पर उसका फल पा सकने की सुविधा होना ज़रूरी है। ऐसी बातें मेरे मन में बार-बार आती रहती हैं। इसलिये नहीं कि मैं देश और समाज का नेतृत्व करने की महत्त्वाकांक्षा रखता हूँ बल्कि इसलिये कि मैं संतुष्ट जीवन से मोह करता हूँ और यह जानता हूँ कि संतुष्ट जीवन व्यक्तिगत समस्या नहीं बल्कि सामाजिक समस्या है।

इस देश के लोग या हमारी सरकार देश के प्राकृतिक साधनो को जनहित के लिये उपयोग में लाने की विराट योजनायें बनाकर देश की कठिनाइयों को दूर करने का प्रयत्न कर रही है। सरकार के इन प्रयत्नों से मुझे संतोष नहीं है। मैं इन प्रयत्नों की तुलना जब दूसरे देशों की सफलता से करता हूँ तो संतोष नहीं होता। अपने देश में किये जाते प्रयत्न मुझे जनसमुदाय की शक्ति और सहयोग की उपेक्षा कर नौकरशाही के जोर पर किये जाते जान पड़ते हैं। ऐसे प्रयत्नों और योजनाओं की आधार सरकार की पूँजीवादी व्यवस्था से मुझे सन्तोष नहीं। जो कुछ किया जा रहा है, मैं उससे बहुत अधिक और अधिक वेग से

किया जाना आवश्यक समझता हूँ लेकिन सरकार जो कुछ कर रही है वही पूरा हो जाय तो भी कुछ होगा। पर इन योजनाओं के पूरे हो सकने की सबसे बड़ी शर्त है कि इनके पूरा हो सकने में कोई रुकावट न आये। ऐसी कल्पना बहुत वीभत्स जान पड़ेगी कि यह सब बन चुकने के बाद वैसे ही बरबाद हो जाय जैसे कि पिछले युद्ध में योरुप और रूस के बड़े-बड़े आयोजन आनन-फानन में नेस्तनाबूद हो गये थे।

बहुत बरसों तक हमारा देश ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत रहा है। बहुत सी चीजें वे यहाँ बना भी गये हैं। परन्तु देश के औद्योगीकरण की बात उन्होंने कभी क्यों नहीं सोची या दामोदर, हीराकुण्ड और रिहांड जैसी योजनायें उनके दिमाग में क्यों नहीं आईं? बात चाहे अब पुरानी हो गई हो परन्तु तथ्य यही था कि ब्रिटिश साम्राज्यशाही इस देश की जनता के संतोष के विचार से इस देश का शासन नहीं कर रही थी बल्कि इस देश से अधिक से अधिक लाभ उठा सकने और इस देश पर अपना अधिकार मजबूत रख सकने और इस देश को अपने साम्राज्य-विस्तार का साधन बनाये रखने के लिये ही इसका उपयोग करती थी। अंग्रेजों को अधिक चिन्ता इस बात की थी कि इस देश पर उनके सिवा किसी और का आधिपत्य न हो जाय; इस बात की चिन्ता नहीं थी कि इस देश की जनता का जीवन मनुष्यों जैसा हो सके। उनके सामने मनुष्य की समृद्धि के लक्ष्य की अपेक्षा युद्ध का ही भय सदा बना रहा। प्रपंच और युद्ध के साधन से उन्होंने अपने साम्राज्य का विस्तार किया था। अपनी इच्छा से और बस चलते तो कोई दासता स्वीकार करता नहीं। अंग्रेज़ युद्ध के साधनों से ही अपने साम्राज्य की रक्षा में विश्वास करते थे। इसका दूसरा साधन हो भी क्या सकता था?

उस साम्राज्यवादी राजनीति की विरासत हमारी इच्छा या अनिच्छा से आज भी हमसे चिपकी है। आज भी हम अपने देश की सुरक्षा युद्ध के लिये तैयार रहने में ही समझते है। भारतवासी आदर्श और सिद्धान्त से चाहे अहिंसा को ही परम धर्म समझते हों परन्तु हमारा व्यवहार हमारे चारों ओर घिरे दूसरे देशों के व्यवहार से ही निश्चित होता है। हमारे राष्ट्र या समाज की परिमित उत्पादन शक्ति का एक बड़ा भाग (दो अरब रुपया) आत्मरक्षा की इसी चौकसी में खप जाता है। हमारे राष्ट्र और समाज की उत्पादक शक्ति का वह भाग जो जनसमुदाय का पेट भर सकने के साधन तैयार करने और दयनीय स्वास्थ्य सुधार सकने के साधनों को बनाने में व्यय होना चाहिये था, आत्मरक्षा के लिये एक बड़ी सेना और युद्ध का सामान प्रस्तुत रखने में व्यय करना आवश्यक है। यह आवश्यक है, क्योंकि हम समस्याओं को युद्ध द्वारा हल करने की नीति में विश्वास करने वाले अन्तर्राष्ट्रीय जगत से घिरे हैं। यदि हम अपनी शक्ति को युद्ध के लिये तैयार रहने में लगाना उचित न समझें तो हमें दूसरों के सिर पर चढ़ आने का भय है। हम शान्ति से विकास का अवसर चाहते हैं परन्तु दूसरों की अनीति का शिकार बन जाने से शान्ति और विकास कैसे होगा! हमारी शान्ति से विकास करने की इच्छा दूसरों के सहयोग पर निर्भर करती है। शान्ति राष्ट्रों के पारस्परिक सहयोग से ही सम्भव है। शान्ति का प्रश्न किसी अकेले राष्ट्र के हाथ का नहीं। हम शान्ति चाहते हैं, या हम अपने पारिवारिक और

सामाजिक जीवन को संतुष्ट बनाने के लिये अपने देश के निर्माण में अपनी पूरी शक्ति लगा देना चाहते हैं तो अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति की जमानत की अवहेलना करना हमारे लिये सम्भव नहीं। प्रत्येक परिवार के भविष्य की सुरक्षा के लिये, युद्ध की विभीषिका से सुरक्षा की जमानत आवश्यक है। यह परोपकार या अन्तर्राष्ट्रीय कल्याण का दम्भ नहीं आत्मरक्षा की ही भावना है।

विश्व-शान्ति कांग्रेस में उत्तर प्रदेश से चार-पाँच ही साथी जा रहे थे। रास्ते में एक स्टेशन पर चौबेजी भी बम्बई एक्सप्रेस में आ गये थे। वे किसी दूसरे डिब्बे में बैठे थे। रास्ते में एक-दो बार प्लेटफार्म पर उतरने से उनसे कुछ मिनट के लिये ही मुलाकात हुई थी। गाड़ी सुबह पौ फटने से पहले ही विक्टोरिया-टर्मिनस स्टेशन पर पहुँची तो आगे लम्बी यात्रा के हम दोनों साथी एक साथ हो लिये।

बम्बई से शान्ति कमेटी ने सूचना दी थी कि हम लोगों के लिये विमान के टिकट आदि खरीदने की सुविधाजनक व्यवस्था के लिये ट्रेडविंग कम्पनी से बात कर ली गई है। ७ दिसम्बर की तारीख सब लोगों के एक साथ चलने के लिये निश्चित थी। बम्बई पहुँचने पर मालूम हुआ कि कुछ लोगों को पासपोर्ट मिलने में विलम्ब हो रहा है। कुछ लोग ९ दिसम्बर प्रातःकाल से पहले चलने के लिये तैयार न थे। ट्रेडविंग कम्पनी ने भी समझाया कि ७ दिसम्बर को चलना व्यर्थ है क्योंकि उस दिन न जाने से जिनेवा में विमान के मेल के लिये दो-तीन दिन रुकना पड़ सकता है। इस कठिनाई से बचने के लिये दो दिन बाद चलना ही ठीक होगा।

कम्पनी ने जिस कठिनाई का भय दिखाया, दूसरी दृष्टि से वह प्रलोभन भी हो सकता था। चौवेजी और अपनी यह राय बनी कि दो दिन बम्बई की गरमी में सड़ने और यहाँ पैसा फूंकने की अपेक्षा दो दिन जिनेवा (स्विटज़रलैण्ड) ही क्यों न देखा जाय। इस विचार की जड़ में यह बात भी थी कि शान्ति कमेटी के पत्र से यह भी मालूम था कि पूर्वी योरुप के प्रजातंत्र देशों ने प्रतिनिधियों को तीन सप्ताह तक अपने देशों में भ्रमण कर अपनी आँखों उन देशों की स्थिति देखने का भी निमंत्रण दिया है। सोचा कि पूर्वी योरुप के समाजवादी व्यवस्था अपना लेने वाले प्रजातंत्रों की तुलना पराधीनता के बंधनों के कारण पिछड़े भारत से क्या की जाय। उन देशों को देखने से पहले यदि पूँजीवादी प्रणाली पर चलने वाले समृद्ध स्विटज़रलैण्ड का एक आध नगर देख लिया जाय तो तुलना का आधार अधिक उचित हो सकेगा। हम दोनों ने कम्पनी द्वारा पहले दी गई, तारीख ७ दिसम्बर को चलने का ही आग्रह किया।

विमान चलने से एक घंटे पहले ही विमान के अड्डे पर पहुँचना होता है। पासपोर्ट, स्वास्थ्य के प्रमाणपत्र और चुंगी की जाँच-पड़ताल होती है। यात्रियों के सामान की जाँच-पड़ताल हो जाने पर उन्हें विदा देने के लिये आने वालों से दूर ही रहना पड़ता है। यात्रियों और विदा देने आने वालों के लिये अलग-अलग कठघरे से बने हैं। दोनों कठघरों में प्रायः छः फुट का अन्तर है। संदेह रहता है कि जाँच-पड़ताल हो चुकने के बाद यात्री

विदा देने आने वालों से कोई महसूली चीज न ले लें। विमान यात्रा करने वाले लोग प्राय: समृद्ध और सम्मानित ही होते हैं। उन्हें विदाई देने आने वाले उनके सम्बन्धी और मित्र भी वैसी ही स्थिति के समझे जाने चाहिये। व्यवहार और पोशाक से वे जंचते भी वैसे ही हैं परन्तु कठघरों के बीच का अन्तर वैसा ही वातावरण बना देता है जैसा कि जेल में कैदियों के मित्रों या सम्बन्धियों के मुलाकात करने जाने पर होता है। कैदी एक जालीदार कठघरे में बंद, पाँति में बैठे रहते हैं। उनसे मिलने आने वाले लोग कठघरे से प्राय: डेढ़ हाथ दूर सामने बैठकर कैदियों से बात कर लेते हैं। जेल में संदेह यह रहता है कि कैदी मिलने आने वालों से कोई पत्र या दूसरी ऐसी चीज़ न ले लें जो जेल के नियमों के अनुसार उन्हें नहीं मिलनी चाहिये। विमान के अड्डे पर यह आशंका रहती है कि बाहर जाने वाले यात्री अपने सामान की पड़ताल करा चुकने के बाद कोई ऐसी वस्तु न ले जाँय जिसे बाहर ले जाने की आज्ञा न हो या ले जाने के लिये भारी कर देना पड़ता हो उदाहरणत: सोना, चाँदी, जवाहरात अथवा ऐसी ही कोई दूसरी वस्तु।

'एयर इंडिया इन्टरनेशनल' के विदेश जाने वाले विमान बहुत बड़े हैं। साज-सज्जा तथा यात्रियों के लिये सुविधाओं में अमेरिकन, ब्रिटिश, फ्रेंच या दूसरी कम्पनियों से किसी तरह कम नहीं। भारत की मंत्री राजकुमारी अमृतकौर भी इसी विमान से कैरो जा रही थीं। उन्हें शेष यात्रियों की भाँति अपने सामान की जाँच-पड़ताल कराकर कठघरे में बंद नहीं होना पड़ा। उनके साथ चलता लाल रंग का चोगा पहने चपरासी उनकी स्थिति और सम्मान का रक्षक था। सूर्य लगभग क्षितिज पर पहुँचकर छिपना ही चाहता था कि विमान ने चाल पकड़नी आरम्भ की। कुछ ही मिनट में हम भारत की पृथ्वी पीछे छोड़ अरब सागर पर उड़ने लगे। सूर्य उत्तर-पश्चिम में अस्त हो रहा था और हमारा विमान भी अपनी पूरी शक्ति से उसी ओर उड़ा जा रहा था। सूर्य भारत से जितना ही दूर जाता विमान पश्चिम की ओर बढ़ उसे झाँकने का यत्न कर रहा था। दक्षिण की ओर अंधेरा हो चुका था परन्तु उत्तर की ओर लाल प्रकाश बना था और बहुत देर तक बना ही रहा। विमान रूठकर छिपने के लिये पश्चिम की ओर भागती संध्या का पीछा कर रहा था। बाहर झाँकने से तारों के अतिरिक्त कुछ दिखाई न पड़ा तो आँखें भीतर कर लीं।

वायु से यात्रा अब बहुत असाधारण बात नहीं है। प्रतिदिन दिल्ली से मद्रास, बम्बई, कलकत्ता विमान आते-जाते हैं परन्तु देश के भीतर चलने वाले और इन बड़े विमानों में काफी अन्तर है। इन विमानों में बीच में राह छोड़ दायें-बायें दो-दो कुर्सियों की जोड़ियाँ लगी रहती हैं। कुर्सियों के हाथों में लगे बटन दबा देने से कुर्सी की पीठ इच्छानुसार गिराई जा सकती है और कुर्सी को आरामकुर्सी बना लिया जा सकता है। थोड़ी बहुत नींद भी ली जा सकती है। कुर्सियों के हाथों में राखदानियां लगी रहती हैं। विमान के उतरते या चढ़ते समय, जब कि धक्कों से हिलने-डुलने की आशंका रहती है, को छोड़कर शेष समय सिगरेट पिये जा सकते हैं। कुछ विमानों में यात्रियों को बढ़िया सिगरेट पेश भी किये जाते हैं। चाकलेट-लैमनड्राप तो सभी कम्पनियाँ पेश करती हैं। 'इंडिया इन्टर नेशनल' में लौंग-सुपारी भी चलती है। सामने वाली कुर्सी की पीठ पर जगह बनाकर मनोरंजन का कुछ

साहित्य रखा रहता है। इसमें विमान के सम्बन्ध में मनोरंजक बातें या आकाश में चमचमाते नक्षत्रों के सम्वन्ध की बातें रहती हैं। विमान की मेज़बान या यजमान लड़की उपन्यास, पत्र-पत्रिकायें भी ला देती हैं।

सात बजे के लगभग ह्विस्की, ब्राण्डी, वाइन या फलों के रस—जो आप चाहें—से सत्कार किया गया। यात्रियों के भोजन की इच्छा प्रकट करने पर यजमान लड़की एक चमचमाता तख्ता कुर्सी के हाथों में ऐसे सटा देती है कि सामने छोटी सी मेज बन जाती है। भोजन योरुपियन ढंग का परन्तु वहुत स्वाद रहता है। भोजन के बाद काफ़ी। काफ़ी के बाद सिगरेट, लैमनड्राप या लौंग-सुपारी और फिर पत्र-पत्रिकायें। कुछ समय बाद लड़की ने मुस्कराकर एक कार्ड लाकर दिखाया। लिखा था—विमान के कप्तान का अभिवादन! आशा है आप मजे में है। हमारा विमान फारस की खाड़ी के ऊपर दो सौ चालीस मील प्रति घण्टे जा रहा है। आपके दायें अमुक तारा चमक रहा है और बायीं ओर अमुक। हम १२ हजार फुट की ऊँचाई पर उड़ रहे हैं। बाहर तापमान ४०° है। भीतर गरम कोट की भी जरूरत न थी। लखनऊ में तो तापमान ५०° होने पर दाँत बजने लगते हैं। यह यात्रा प्रायः तीस घण्टे की होती है और किराया दो हजार रुपये इसलिये यात्रियों की इतनी खातिर उचित ही है। बल्कि आवश्यक इसलिये है कि बहुत-सी कम्पनियों के विमान चल रहे हैं। यात्री जहाँ अधिक सुविधा और खातिर पायेंगे, उसी ओर आकर्षित होंगे।

हम लोग साथ-साथ बैठे थे। विमान की आवाज से बचने के लिये कानों में रुई भर ली जाती है इसलिये बातचीत में सुविधा नहीं होती। ऊँघ आने लगी। यात्रियों को ऊँघते देख होस्टेस ने बड़ी-बड़ी बत्तियाँ बुझा दीं। प्रत्येक कुर्सी के साथ एक वहुत छोटी-सी बत्ती भी रहती है कि आप नींद न आने पर दूसरों को चकाचौध किये विना पढ़ सकें। यात्रियों ने अपनी-अपनी बत्तियाँ भी बुझा लीं। सोने के कमरे का सा सन्नाटा हो गया। हमारी कुर्सियों से दो-तीन कुर्सियाँ आगे, बाईं ओर एक सिंधी युवक जो अमेरिका में कारोबार करता है और शायद विवाह करके पत्नी को साथ लिवा ले जाने के लिये ही देश आया था और तुरंत ही लौटा जा रहा था, प्रतीक्षा करने की विवशता से व्याकुल था। नववधू पति की इस व्याकुलता से गद्‌गद हो रही थी। वह बार-बार आँख मूँद नींद का बहाना करती परन्तु युवक को यह सह्य न था। वह युवती के गले में बाँह डाल उसे खींचकर चूम लेता। युवती नींद या प्यार के उन्माद से गुलाबी हो रही आँखें खोल मुस्कराकर उसकी ओर देख लेती। बार-बार आँख उधर चली जाती थी परन्तु उन्हें झेंप से बचाने के लिये करवट ले ली। चौवेजी धीमे-धीमे खुर्राटे ले रहे थे। मुझे नींद नहीं आ रही थी। फिर वही बातें मन में आने लगीं जो गाड़ी में सोच रहा था :—एक व्यक्ति का अस्तित्व ही क्या है परन्तु जब वह अपने आपको व्यापक समाज के अंग के रूप में अनुभव करने लगता है तो विश्व की समस्याओं की बात सोचे विना नहीं रह सकता है।

यजमान लड़की ने आकर जगाया और फिर कार्ड सामने पेश कर दिया। सूचना थी:—हम दस मिनट में मिस्र की राजधानी कैरो पहुँच रहे हैं। आप अपने घड़ी में समय

बदल सकते हैं। भारतीय समय से रात के दो बज रहे हैं परन्तु कैरो के समय से इस समय बारह बजे हैं। विमान के अड्डे पर आपके लिये काफी, चाय और जलपान तैयार मिलेगा।

आंखें मलकर खिड़की से झांका। नीचे बिजली की चमचमाती पंक्तियाँ दूर तक चली जा रही थीं। हल्की चांदनी का प्रकाश था। कुछ बड़ी-बड़ी झीलें सी दिखाई दीं और फिर स्वेज नहर। कुछ ही मिनट में बिजली की बत्तियों का बहुत बड़ा विस्तार। यह कैरो नगर था। विमान पृथ्वी पर उतरा। यहाँ विमान में तेल भरने या दूसरे कामों के लिये प्रायः डेढ़-दो घण्टे का विश्राम होता है। विमान के अड्डे पर भोजनालय (डाइनिंग हाल) में जाते समय मार्ग के दोनों ओर मिस्र की पुलिस के आदमी ऊँची लाल तुर्की टोपी पहने खड़े थे। भारतीय गुप्तचर भी मौजूद थे। फिर पासपोर्ट पर नज़र डाली गई। गुप्तचर यात्रियों के चेहरों पर ऐसे नजरें गड़ाकर देख रहे थे कि मानों मन का भेद भांप लेंगे। पर यों लगातार आँखें गड़ाते-गड़ाते स्वयं उनकी ही आंखें पथरा जाती होंगी।

कैरो में विमानों के अड्डे के बड़े भोजनालय में हम दस-पंद्रह भारतीयों को छोड़कर शेष सभी लोग सफेद चमड़ी के थे। अमरीका, योरुप, दक्षिण-अफ्रीका आदि से कई विमान इस समय कैरो में जमा हो जाते हैं। कुछ मुसाफिर यहाँ विमान बदलते हैं। सेवक (वेटर्स) सब काले रंग और लम्बे चेहरे के सूडानी हैं। मिस्र की पुलिस के आदमी और सैनिक वर्दी पहने लोग गन्दमी रंग के भारतीयों जैसे जान पड़ते हैं। काली चमड़ी के इन लोगों में गोरी चमड़ी की दासता और आतंक का भाव बहुत गहरा है। वे यथासम्भव पहले गोरे लोगों का ही आतिथ्य कर रहे थे। विमान के यात्रियों को इन अड्डों पर शराब के अतिरिक्त जलपान के लिये दाम नहीं देने पड़ते। फिर भी अमेरिकन यात्री या शायद कुछ अंग्रेज़ भी थोड़ी-बहुत बख्शीश इन वेटरों को दे जाते हैं। शायद गोरी चमड़ी के आदर का यही कारण हो। कैरो में बम्बई जैसी गरमी नहीं, कुछ सर्दी ही थी। भोजनालय के साथ ही उपहारों और सिगरेट की दुकानें भी हैं। मूल्य, खास कर सिगरेटों के, भारत की अपेक्षा अधिक थे।

कैरो से विमान दो बजे, मेरी घड़ी के अनुसार चार बजे, भूमध्यसागर की ओर चला। विमान बादलों के ऊपर उड़ रहा था। ऊपर पिछली रात की मध्यम सी चाँदनी थी। कोहरे से भरे आकाश में चांद का टुकड़ा विमान से विपरीत दिशा में उड़ा जा रहा था। नीचे मटियाले बादलों का विस्तार। कई कुर्सियों पर नाकें बज रही थीं। ऊँघते-ऊँघते चले जा रहे थे। प्रेमी जोड़ी ने विमान चलने के पन्द्रह-बीस मिनट बाद तक कुछ चुहल की फिर शायद प्रेम की अपेक्षा नींद का वेग अधिक हो गया; युवक-युवती का सिर अपनी बाँह पर ले कुर्सी पर पसर कर सो गया।

आँख खुली तो मेरी घड़ी में आठ बजे थे। प्रातः छः से पहले ही उठ जाने की आदत है। नींद टूटने पर चाय की तलब भी होती है। आँख खुलने से पहले ही बिस्तर के समीप चाय न आ जाय तो चाय आने तक अंगड़ाइयाँ लेते रहना अच्छा लगता है। विमान में सन्नाटा था। केवल टिमटिमाती बत्तियां जल रही थीं कि इधर-उधर जाने पर ठोकर न

लगे। बाहर झांका, वही कोहरे से भरी मध्यम चांदनी और नीचे मटियाले बादल। मन मारकर आंखें मूंद लीं। पर जबरदस्ती की नींद कब तक निबाही जाती ? विमान के भीतर और बाहर वही हाल। लाचारी में फिर आँखें मूंद लीं परन्तु कब तक ? अपनी घड़ी में पौने दस बज गये और बाहर अब भी पौ फटने से पूर्व का अंधकार। यजमान लड़की ब्लाउज़ और स्कर्ट के बल सीधे करती चली आती दिखाई दी। पूछा—एक प्याला चाय मिल सकता है ? अभी पाँच मिनट में—उसने उत्तर दिया।

सूर्योदय हुआ। विमान के शरीर पर किरणें पड़ रही थीं पर नीचे घटाटोप बादलों का विस्तार था। इतने में नाश्ता भी आ गया। हम उत्तर की ओर उड़ते जा रहे थे। नीचे बादल कुछ विरल हो जाते तो पृथ्वी पर शीत ऋतु के बादल घिरे प्रभात का सा दृश्य जान पड़ता परन्तु फिर बादल आ जाते। हम सम्भवतः इटली के पश्चिम की ओर से उड़े चले जा रहे थे। कुछ समय पश्चात् पहाड़ों पर बरफ जमी दिखाई दी और फिर खूब बरफ। बरफ के मैदान और बरफ से लदी चोटियाँ। लड़की ने फिर कार्ड लाकर दिखाया—कुछ मिनट में हमारे बाईं ओर एल्पस की सबसे ऊँची चोटी मौंट ब्लाक दिखाई देगी। हम समुद्र-तल से चौदह हजार फुट की ऊँचाई पर से उड़ रहे हैं। विमान के बाहर तापमान केवल २५° है और विमान के भीतर ६०°। विमान के बाहर वायु का दबाव इतना है और भीतर इतना। सौभाग्य से सूर्य चमक उठा। बाईं ओर गहरे नीले आकाश में निरावलम्ब विराट हिम-शृङ्ग खड़े थे, अद्भुत गुलाबी ज्योत्स्ना लिये। नीचे बरफ के मैदान। बरफ में से कहीं कोई काली चट्टान दिखाई दे जाती तो और भली लगती। बाहर वायु जितनी तरल थी उसमें सांस लेना भी कठिन हो जाता। कप्तान के यह कार्ड बार-बार याद दिला देते थे कि विज्ञान द्वारा मनुष्य का सामर्थ्य कितना बढ़ गया है। कैसे वह प्रकृति पर राज्य कर रहा है। दूसरी ओर मनुष्य की आत्मसंहार की प्रवृत्तियाँ। इसी प्रसंग में तो हमारी यात्रा थी। ······मनुष्य आत्मसंहार करना तो नहीं चाहता। मनुष्य अपने विश्वास में आत्मरक्षा और आत्मविकास का ही प्रयत्न है लेकिन परिणाम विपरीत हो जाता है; या समाज के विकास के जो ढंग और प्रयत्न बीती हुई परिस्थितियों में उपयोगी थे, अब मनुष्य द्वारा अपनी परिस्थितियाँ बदल लेने पर हानिकारक हो रहे हैं।······

योरुप के सबसे ऊँचे पहाड़ एल्पस की बर्फानी चोटियों और मैदानों को लाँघकर विमान कुछ नीचे आ गया। सूचना मिली कि हम लोग दस बजे जिनीवा पहुँच जायेंगे। मेरी घड़ी में इस समय ढाई बज रहे थे। हरी-भरी पहाड़ियाँ दिखाई देने लगीं। बादल छाया रहने से वे और भी श्यामल जान पड़ रही थीं। पहाड़ों पर जंगल और खेतों का अंतर दिखाई पड़ने लगा। नीचे पहाड़ी गाँव भी दिखाई दे जाते। ऊँचाई अधिक होने के कारण मनुष्यों और पशुओं की पहचानना सम्भव नहीं था।

स्विटज़रलैण्ड

जिनीवा में विमान से उतरने पर [illegible] सर्द हवा और बूंदाबांदी मिली। विमान के अड्डे पर कुछ चहल-पहल नहीं थी। पासपोर्ट [illegible]ाये। चुंगी के लिये पूछताछ
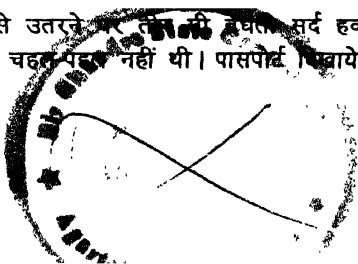
हुई; चुङ्गी के लायक कोई सामान यानी स्थानीय लोगों के लिये उपहार आदि तो हमारे पास नहीं हैं। इनकार से ही छुट्टी मिल गई। योरुप का हमने यह पहला नगर देखा। सुन्दर स्विटज़रलैण्ड का एक सुन्दर नगर। मन पर पहला प्रभाव—समृद्धि, सुघड़ता और सफाई का पड़ा। स्थानीय समय से ग्यारह बजे थे और दुकानें खुल चुकी थीं। बादल, वर्षा के कारण चहल-पहल उतनी न थी। साफ-सुथरी सड़कें, तेज चलती मोटरें, बसें और ट्रामें। दुकानें बड़े-बड़े शीशों के भीतर सुरक्षित। सड़क पर बहुत सर्दी थी परन्तु किसी भी दुकान या दफ्तर के भीतर जाने पर सुखदायक गरमी।

एयर इंडिया इंटरनेशनल ने हमारे ठहरने का प्रबन्ध ब्रिस्टल होटल में किया था। होटल छः मंजिला, खूब साफ सुथरा था। भोजन बहुत अच्छा था :—रोटी, मक्खन, पनीर, मांस और सब्जियाँ नाप-तौलकर नहीं दी जातीं। भोजन की वस्तुयें बड़े से बर्तनों में और अंगूर की शराब भी जग भरकर सामने रख दी जाती हैं। अंगूर की शराब से अभिप्राय ह्विस्की, ब्राण्डी या महुआ की देशी शराब जैसी तेज़ चीज से नहीं। यह चीजें तो आधी छटांक या छटांक भर पी जाती हैं परन्तु अंगूर की यह शराब गिलास भरकर जैसे नींबू का शरबत या नारंगी का रस पी रहे हों। दोपहर का खाना खाकर घूमने निकल गये।

पहली कठिनाई भाषा की ही सामने आई। जिनीवा में फ्रेंच बोली जाती है। स्विटज़रलैण्ड सब ओर से दूसरे देशों से घिरा हुआ है। उसका एक भाग फ्रांस की सीमा से लगा है, कुछ भाग जर्मनी और आस्ट्रिया की सीमा से लगे हैं और शेष इटली से। इन सब प्रान्तों में फ्रेंच, जर्मन और इटालियन भाषायें बोली जाती हैं। इन प्रदेशों के स्विस लोग इन्हीं भाषाओं को अपनी मातृभाषा समझते हैं। अलबत्ता स्विटज़रलैण्ड में यह भाषायें कुछ उच्चारण के भेद से बोली जाती हैं। इसलिये स्विसफ्रेंच, स्विसजर्मन और स्विसइटालियन कहलाती हैं। अमेरिकन यात्री काफी आते हैं। इसलिये बड़े होटलों और बड़ी दुकानों में अंग्रेजी बोलने वाले भी मिल जाते हैं परन्तु कठिनाई अवश्य होती है। प्रायः संकेतों से काम चलता है। चौबेजी बम्बई से यात्रियों के लिये उपयोगी एक पुस्तक ले आये थे। इसमें काम चलाऊ वाक्य प्रसंग के अनुसार इंगलिश, फ्रेंच, जर्मन और इटालियन में दिये हुए थे। पन्द्रह वर्ष जेल में 'स्वयं शिक्षक' की सहायता से, उच्चारण जाने विना पुस्तके पढ़ लेने योग्य जो फ्रेंच सीखी थी उसके आधार पर इस पुस्तक की सहायता से काम चलाना चाहा। अव्वल तो पन्द्रह वर्ष तक कभी उस ओर ध्यान न दे सकने के कारण वह भूल ही चुकी थी तिस पर ठीक उच्चारण कैसे होता? लाचारी में उस पुस्तक में से ही वाक्य दिखा देना पड़ता।

जिनीवा या योरुप के और भी दर्शनीय नगरों में 'थामस-कुक' या यात्रा का प्रबन्ध करने वाली दूसरी कम्पनियाँ नगर में घूमकर दर्शनीय स्थानों को देखने का प्रबन्ध अपनी गाड़ियों में कर देती हैं। एक गाइड या परिचायक भी साथ रहता है। जिनीवा में चार घण्टे के चक्कर के लिये छः फ्रांक या सात रुपया देना पड़ता है।

स्विटज़रलैण्ड की राजधानी बर्न में है, सबसे बड़ा व्यावसायिक नगर ज्यूरिच है परन्तु शायद प्राकृतिक शोभा के कारण यात्रियों के लिये महत्त्व जिनीवा का ही अधिक है। पहले

संसारव्यापी महायुद्ध के बाद से जिनीवा अन्तर्राष्ट्रीय विचार-विनिमयों, समझौतों और संगठनों का केन्द्र सा बन गया है। प्रदेश पहाड़ी होने के कारण भिन्न-भिन्न भाग ऊँचे नीचे बसे हुए हैं। पत्थर की पाँच-पाँच, छः-छः मंजिली इमारतें हैं। बाजार की ओर या निगाह में आने वाली दीवारें विज्ञापनों से ढंकी हुईं। नगर का सबसे गुंजान, चमचमाता भाग झील के पुल के पास है। यहाँ होटल, घड़ियों की बड़ी-बड़ी दुकानें, यात्रा का प्रबन्ध करने वाली कम्पनियों के दफ्तर, बैंक, सिनेमा-थियेटर और शौक की चीज़ों की दुकानें हैं। ऊपरी जिनीवा का भाग जिसमें सरकारी दफ्तर, यूनिवर्सिटी, अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं—संयुक्त राष्ट्र संघ, अन्तर्राष्ट्रीय मजदूर संघ, रेडक्रास आदि की इमारतें हैं, सामने की चढ़ाई पर फैला हुआ है। जिनीवा में या स्विटज़रलैण्ड के फ्रेंच बोलने वाले भाग में होटल शब्द काफ़ी भ्रामक हो सकता है। 'होटल ब्रिस्टल', 'होटल सेवाय', 'होटल पारागो' के साथ-साथ ही 'होटल पोस्त', 'होटल कांत्रीव्यूस्यो', 'होटल द वील', 'होटल करेक्सियो' भी सुनाई पड़ता है। हालाँकि इनका अर्थ डाकघर, इनकमटैक्स दफ्तर, टाउन हाल और जेलखाना ही है। यहाँ सभी बड़े-बड़े घर या मकान होटल कहलाते हैं।

थामस-कुक के परिचायक ने जिनीवा के दर्शनीय स्थानों के नामों और संक्षिप्त विवरण की एक सूची और नगर का नक्शा भी हमें दिया था। इस नक्शे के दर्शनीय स्थानों के परिचय से अधिक जिनीवा के घड़ियों और शराब के व्यापारियों का विज्ञापन ही भरा हुआ था और इसका प्रयोजन दर्शनीय स्थानों का परिचय देने की अपेक्षा जिनीवा से घड़ियाँ और शराब खरीद सकने के लिये उत्साहित करना ही था। जिनीवा की भव्य इमारतों की दीवारें, कुछ एक सरकारी इमारतों को छोड़कर विज्ञापनों से भरी हुई हैं। इन विज्ञापनों में कहीं कोई सुन्दरी बढ़िया पारदर्शी मोजा अपनी सुन्दर जाँघ पर चढ़ाती दिखाई देती है। यह मोजा जाँघ के सौन्दर्य को छिपाता नहीं बल्कि बढ़ा देता है। दूसरे विज्ञापन में कोई सुन्दरी अपने चोंच उठाये उरोजों को किसी अनूठे किस्म की अंगिया में वश कर रही है। कहीं एक सुन्दरी घड़ी को किसी आह्लाद और गर्व से देख रही है। कहीं कोई मोहिनी युवक की नेकटाई से मोहित हो रही है, मानो युवक का यौवन और सौन्दर्य उस टाई पर ही निर्भर करता हो। कहीं विज्ञापनों में जुकाम और सिर दर्द से मुक्ति के लिये दवाई की सलाह है और कहीं स्कीइंग के विनोद के लिये निमंत्रण है। सबसे अधिक विज्ञापन शायद सिनेमा-थियेटर और कैब्रे के ही थे।

व्यापार की स्वतन्त्रता और व्यापार की उग्र प्रतिद्वन्द्विता की घोषणा जिनीवा की दीवारें पुकार-पुकार कर कह रही है। समाज के लिये उपयोगी वस्तु बनाने में शायद व्यापारी उतना धन और श्रम व्यय नहीं करता जितना कि उस वस्तु की ओर गाहकों को आकर्षित करने के लिये डौंडी पीटने में करता है। गाहक 'लिफ्टन' की चाय के लिये जितना मूल्य देता है उसका बहुत काफ़ी अंश यह बताये जाने में खर्च होता है कि 'लिफ्टन' की चाय 'ब्रुकबांड' या 'लायन्स' की चाय से अधिक अच्छी है। 'सेवनओक्लाक' ब्लेड कहता है कि संसार का सबसे अच्छा ब्लेड सेवनओक्लाक है और 'जिलेट' ब्लेट पुकारता है कि ब्लेडों का राजा जिलेट ब्लेड है। पूँजीवादी आर्थिक व्यवस्था का आधार ही

व्यक्ति का पूँजी द्वारा मुनाफ़ा कमाकर अपनी पूँजी को बढ़ा सकना है। इस प्रतिद्वन्द्विता में शोभा और कला के सभी साधन प्रयोग में आते ही हैं। व्यवसायी ने नारी के सौन्दर्य को भी विज्ञापन का या अपने व्यवसाय को बढ़ाने का साधन बना लिया है। नगर में इस होड़ का जितना प्रदर्शन हो, उतनी ही नगर की रौनक जान पड़ती है। विज्ञापनों की प्रतिद्वन्द्विता में व्यय होने वाले समाज के श्रम से समाज क्या पाता है; उससे समाज की कौन आवश्यकता पूरी होती है?

स्विट्ज़रलैंड से प्रधानतः घड़ियाँ और चाकलेट या शौक की छोटी-मोटी चीजें ही व्यापार के लिये विदेश जाती हैं। जनसंख्या भी अधिक नहीं है। परिचायक ने बताया था और स्थानीय लोगों ने भी समर्थन किया कि स्विटज़रलैण्ड में बेकारी की समस्या नहीं है। यहाँ विदेशों से काफ़ी धन आता रहता है। इस आमदनी का एक मार्ग है विदेशियों का विनोद के लिये स्विटज़रलैंड आना। इस प्रकार विदेश से आने वाला धन तो यहाँ के मध्यवर्गीय लोग, होटल-कैब्रे वाले या छोटे दुकानदार पाते हैं परन्तु उससे अधिक मात्रा में धन आता है विदेशों में उधार दी हुई या कारोबार में लगी स्विटज़रलैण्ड की पूँजी के सूद और मुनाफ़ों के रूप में। स्विटज़रलैण्ड का प्रदेश पहाड़ी है। झरने और नदियाँ काफ़ी हैं। उनसे बिजली विराट मात्रा में तैयार होती हैं। इससे स्वयं स्विटज़रलैण्ड में बिजली की जगमगाहट और सुविधाओं की प्रचुरता तो है ही इसके अतिरिक्त यहाँ से चारों ओर के देशों में भी बिजली जाती है और उसके बदले द्रव्य आता है। परिचायक ने गर्व से बताया था कि स्विटज़रलैण्ड में इतनी पूँजी है कि वह योरुप के सभी देशों को उधार देता है। स्वयं स्विटज़रलैण्ड में बैंक पूँजी जमा करने वालों को सूद नहीं देते बल्कि उनकी पूँजी सम्भाल कर रखने के लिये मेहनताना लेते हैं।

हम लोग ब्रिस्टल होटल के गरम कमरे के सुखद बिस्तर में ही रात वहीं बिता देना चाहते थे। परिचायक ने भी बिदा होते समय मुस्कराकर सुझाव दिया—आपने जिनीवा के देखने योग्य कुछ स्थान देख लिये। अब आप नगर के सिनेमा, थियेटर, कैब्रे और क्लबों का परिचय पाइये। जिनीवा यद्यपि जनसंख्या और विस्तार में लंदन और पेरिस की तुलना मे बहुत छोटा है परन्तु आप यहाँ सांस्कृतिक न्यूनता नहीं अनुभव करेंगे। हम लोगों ने परिचायक से ही राय ली कि संध्या समय क्या देखना ठीक होगा? उसने एक अच्छे 'कैब्रे' (नाच-क्लब) का पता बताया जिसकी शैम्पेन की भी विशेष महिमा है। हम दोनों ही नाच न जानते थे और शैम्पेन पीकर स्वयं दूसरों के लिये कौतूहल बन जाने में भी रुचि न थी। सिनेमा-नाटक में भाषा का ज्ञान न होने से रस की अपूर्णता रहती। कैब्रे पहले कभी देखा नहीं था। परिचायक ने भी उत्साहित किया कि वहाँ भाषा का अज्ञान बाधक न होगा और अकेलापन भी न खलेगा।

जिनीवा के कैब्रे में प्रवेश के लिये टिकट नहीं खरीदना पड़ता। वे लोग अपनी कमाई शराब और खाने-पीने की चीज़ों के दाम दूने-तिगुने लेकर कर लेते हैं। परन्तु आप स्वतंत्र हैं, ज्यादा न खरीदिये और मन न लगने पर जब चाहे उठकर चले आइये। हमें दिये गये

परिचय पत्र में कई कैब्रों का विज्ञापन था। परिचायक ने 'मोनिका' जाने की राय दी। 'मोनिका' के नृत्यों के जो चित्र विवरण पत्र में थे, उनसे कुछ कौतूहल भी अवश्य हो रहा था। कैब्रे के द्वार पर कोई विशेष भीड़ या रौनक नहीं जान पड़ी। बाहर विज्ञापन के कुछ चित्रों के अतिरिक्त क्लब का सा ही रंग ढंग। भीतर जाने पर एक बुढ़िया ने लखनवी अदा से आगे झुक स्वागत किया। टोपी थाम ली और ओवरकोट उतारने में सहायता दी। प्रवेश के इस कमरे के दरवाजे से भीतर होते ही दो-तीन जवान लड़कियों और एक प्रौढ़ा ने कोहनियों और कंधों को सहारा दे आत्मीयता से स्वागत किया।

कमरा काफ़ी बड़ा था। एक ओर शराब की दुकान के काउण्टर के साथ कुर्सियां लगी हुई थीं। कमरे में बीच की जगह नाच के लिये खाली छोड़ चारों ओर कुर्सियां सोफे और छोटी-छोटी मेजें थीं। कुर्सियों पर रंग-बिरंगी छतरियां लगी हुईं। रंग-बिरंगे प्रकाश की भड़कीली और भौंड़ीसी सजावट। नाच की जगह के साथ एक व्यक्ति पियानो पर और दूसरे दो वायलिन और फ्लूट लिये बैठे थे। संगीत चल रहा था। तीन चार जोड़ियां नाच रही थीं। कुछ स्त्री पुरुष आपस में बात कर रहे थे। कुछ गिलासों से चुस्कियां ले रहे थे। एक लड़की ने चौबेजी को और दूसरी ने मुझे बाँहों से थाम लिया और बहुत ही अपनेपन से, मानों देर से हमारी ही प्रतीक्षा में थीं, मुस्कराते हुए बात करनी चाही। हम लोगों ने विवशता प्रकट की कि फ्रेंच नहीं जानते केवल अंग्रेज़ी समझ, बोल सकते हैं। उन्होंने दूसरी ओर बैठी कुछ लड़कियों को सम्बोधन किया। दूसरी दो लड़कियां इनके स्थान पर आ गईं। उन्होंने भी उसी तरह बांह थाम अंग्रेजी में बात की—आइये, बैठिये न! कहाँ बैठियेगा।

हम लोग एक कोने की ओर, जहाँ से सब ओर निगाह जा सकती थी बढ़े। दोनों एक साथ बैठना चाहते थे परन्तु एक लड़की ने हम दोनों के बीच ही बैठने का आग्रह किया और दूसरी चौबेजी के दाईं ओर बैठी। हमसे वे यों सट, चिपक कर बैठीं जैसे बहुत पुरानी आत्मीयता हो। हमें छोड़ जाने वाली और आ घेरने वाली लड़कियों का व्यवहार पूर्ण व्यक्तिगत अनासक्ति और प्रेम का कर्त्तव्य उत्सुकता से निबाहने का था। आसक्ति का मोह नहीं, प्रेम का शुद्ध व्यवसाय!

पियानो पर बैठा आदमी ऊंचे स्वर में गाने लगा। वह फ्रेंच में गा रहा था। हमें गीत का भाव कुछ समझ नहीं आ सकता था परन्तु उसका स्वर बहुत हृदयग्राही था। लड़कियों ने प्रशंसा की—कितना अच्छा गाता है। तुम भी कुछ गाओ। उत्तर दिया—नहीं, गाना आता नहीं। गाने का भाव पूछा। चौबेजी की बगल में बैठी लड़की ने अंग्रेजी में बताया, यह पहाड़ी लोगों का प्रेम गीत था। गाने के बाद पियानो और वायलियन पर नृत्य की ताल बजने लगी। कुछ लोग नाचने के लिये बीच में आ गये। हमारे साथ बैठी लड़कियों ने हमारी बाँहें थाम नाचने का आग्रह किया पर नाच तो आता नहीं था; अपनी असमर्थता प्रकट की। वे उसी क्षण सिखा देने के लिये तैयार थीं पर क्षमा चाही। नाच काफ़ी स्वच्छन्दता से हो रहा था। लड़कियों ने दोनों हाथों से हमारी बाँहें दबा आग्रह किया—कुछ पियोगे नहीं!

अभी तो इच्छा नहीं—हम लोगों ने टालने के लिये कहा।

कुछ पिये बिना रंग नहीं बंधेगा। कुछ तो मंगाओ—उन्होंने आग्रह किया। हिन्दी में परामर्श किया, यहाँ बैठकर देखना है तो कुछ खर्च भी करना पड़ेगा। उनसे पूछा—क्या पियोगी? चौबेजी के दाईं ओर बैठी लड़की फुदक कर खड़ी हो गई—बैठो, मैं ले आती हूँ।

वह लौटी तो तश्तरी में शैम्पेन पीने के चार गिलास लिये थी और एक प्रौढ़ा बरफ़ से भरी छोटी बाल्टी में दबी एक बोतल लिये आई। प्रौढ़ा ने उंगलियां नचाकर चुनौती दी—ऐसी शैम्पेन तुमने कहीं न चखी होगी! प्रौढ़ा मुस्कराकर जाने क्या-क्या कहती गई और तुरन्त बोतल खोलकर फेनिल शैम्पेन से चारों गिलास भर दिये। दो गिलास लड़कियों ने हम लोगों के होठों से छुआ कर उत्साहित किया—तुम्हारे स्वास्थ्य के लिये, तुम्हारे सुख के लिये और हमारे प्यार के लिये।

शैम्पेन की महिमा बहुत सुनी थी। परिचय नहीं था। कुछ खट-मिठी और तीखी सी लगी। लड़कियाँ बड़े-बड़े घूँट पी रही थी और उसके स्वाद और सुषमा की प्रशंसा करती जा रही थीं। मेरे समीप बैठी लड़की अधिकांश में मुझसे और चौबेजी के समीप बैठी लड़की उनसे बात कर रही थी। मेरे समीप बैठी लड़की अंग्रेजी बहुत ही कम जानती थी। चौबेजी के समीप बैठी लड़की को ही झुक-झुककर मुझे बात समझानी पड़ती। बातें ऐसी ही थीं कि हम स्विटज़रलैण्ड क्या पहली ही बार आये हैं ......अभी बरफ शुरू नहीं हुई।......स्विटज़रलैण्ड का मज़ा तो वसन्त में है जब सब ओर हरियाली और फूल छा जाते हैं। हम वसन्त तक यहाँ ही रहें। वही तो प्यार की ऋतु है।......अच्छा, एक बार फिर ज़रूर आना। इस बातचीत में वे हमारे हाथों से खेलने लगीं। हमारी उंगलियाँ उन्हें सुन्दर जान पड़ रही थीं। उनके हाथ हमारे कंधों पर टिक गये, बाँहें कमर से लिपटीं और गाल गालों से सटने लगे।

चौबेजी के दाईं ओर बैठी लड़की खूब गोरी, गुलाबी, ताज़ा और चुस्त जान पड़ रही थी। उसकी आयु होगी बीस-बाईस वर्ष। नाम ब्लांश। मुझसे प्रेम करने वाली कुछ पीली सी, ढीले हाथ-पांव, जबरदस्ती चुस्त बनने की चेष्टा करती सी। नाम मीलि। वह बार बार मेरी बांह पकड़कर बता रही थी कि वह मुझे बहुत ही प्यार करती है। प्रणय अधीर हो गई है। एक लड़की अकेली नाचने आई। उसने फिरकियां ले-लेकर 'बैले' के ढङ्ग का नाच नाचा। फिर एक स्त्री और पुरुष ने रंगमंच के ढंग का नाच किया। नाच अच्छा ही था, हम लोग विलायती फिल्मों में देखा करते हैं। नाच समाप्त होने पर एक चुस्त सा नवयुवक बीच में आ व्याख्यान सा देने लगा। वह फ्रेंच बोल रहा था। ब्लांश ने समझाया वह असंतोष प्रकट कर रहा है कि इस नाच में ऐसी क्या खास बात है। सदियों से घिसे-पिटे ढंग में हम लोगों को कुछ रस नहीं आता। इसमें ऐसी कोई बात नहीं जो हमें कर दे। इससे तो अच्छा कि हम यहाँ समय नष्ट न कर झील के किनारे घूम लें सिनेमा चले जायं।

प्यानो पर बैठे युवक ने उसे आश्वासन दिया—अरे अभी देखो। बेसब्र क्यों होते हो। दो और नाचने वाली आईं। वे बहुत कुछ उघड़ी हुई केवल अंगिया और जांघिया पहने थीं। नाच में प्राय: शरीर को हिला-डुलाकर दिखाने का ही प्रयत्न था। अब तक काफी लोग आये थे। शराब की दूसरी मेजों पर बोतलें लगातार जा रही थीं। हमारी बोतल उन लड़कियों ने समाप्त कर दी थी और वे और मंगाने का आग्रह कर रही थीं।

हम लोगों ने अपनी जेब का खयाल कर उठ जाना चाहा परन्तु लड़कियों ने बांहों से थाम लिया—अभी तुमने देखा ही क्या है। ठहरो न! वह नवयुवक फिर बीच में आ बांहें हिलाते हुए जोर से बोलकर असंतोष प्रकट करने लगा। ब्लांश ने बताया वह कह रहा है—हमें इससे क्या संतोष हो। यह क्या कला है। कला तो प्रकृति को देखने और पहचानने में और उसका रस चखने में है। यह लड़कियां नाचने आती हैं तो अपना शरीर ढांक कर। जब यह अपने आपको छिपाना चाहती हैं तो सामने आने की जरूरत! शरीर को छिपाना ही नैतिकता है तो वास्तविकता को छिपाना भी नैतिकता है। तुम झूठ और पाखंड को ही नैतिकता कहना चाहते हो या इन लड़कियों के शरीर इतने कुरूप हैं कि वे अपने आपको छिपाकर ही आकर्षक बन सकती है।

पियानो बजाने वाले ने उसे सान्त्वना दी—बिगड़ो मत। तुम्हें जवाब देंगे पर पहले एक अच्छा गाना सुन लो। एक आदमी गिटार बजाकर गाने लगा और उसने बहुत अच्छा गाया।

ब्लांश ने और शैम्पेन के लिये आग्रह किया। वह जैसे अनुवाद करके समझा रही थी उसकी बात टालते न बना। या तो उठ ही जाते परन्तु यह बहस जो चली थी उसका उत्तर सुन लेना चाहते थे। पहली बोतल के दाम पूछे। वे अधिक ही जान पड़े। ब्लांश कुछ थी भी आकर्षक। मुझसे प्यार करने वाली मीलि की तरह बिलकुल ही खसोट नहीं जान पड़ती थी या उसके रूप और व्यवहार के कारण उसका खसोटपन अखर नहीं रहा था। चौबेजी ने राय दी—थोड़ा और देखना है तो मंगा ही लो।……जहाँ सेर वहाँ सवा सेर! अब की छोटी बोतल मंगाई।

फिर चारों गिलास भरे गये। मीलि ने मेरा गिलास उठाकर मेरे होंठों से लगा उसमें से घूँट भर अपने होंठ मेरी ओर बढ़ाकर पुचकारा—तुम बड़े प्यारे पति हो! अपना सिर पीछे हटा स्वीकार किया—हां-हां, क्यों नहीं! ब्लांश ने ताड़ा और मुस्कराकर चौबेजी से बोली—तुम्हारे मित्र को मीलि पसन्द नहीं आ रही।

वाह, यह कैसे हो सकता है?—मैंने मन को कुचल, मुस्कराकर उत्तर दिया। मीलि कुछ हतप्रतिभ न हो परन्तु साहस से अपना मुंह मेरे सामने उठा और मेरी ठोड़ी छूकर फिर पूछा—क्या तुम मुझे प्यार नहीं करोगे?

इस प्यार का प्रयोजन और सीमा मालूम थी परन्तु जब कैब्रे देखने गये थे तो उतने समय तक तो निबाहना ही चाहिये था। क्यों नहीं। बहुत प्यार करता हूँ पर यह नाच तो

खास अच्छा नहीं लग रहा। जिनीवा में और कहीं इससे अच्छा नाच नहीं होता? ......मजबूरी है कि सुबह ही जाना है। इसलिये चलकर विश्राम करेंगे।

वाह, वाह, अभी देखा ही क्या है। जरा देखो तो। जरूर अच्छा लगेगा। वह बहुत कुछ कह गई और अन्त में बोली—आओ हम प्यार करें।

प्यार तो है ही पर भाषा की कठिनाई से प्रकट नहीं हो पा रहा—उसकी कहीं बहुत सी बातें समझ न सकने के कारण मैंने कहा—तुम्हें अंग्रेजी बोलने में कठिनाई होती है। मैं फ्रेंच नहीं जानता। अंतिम शब्द बहुत यत्न से फ्रेंच में कहे।

वाह, तुम तो खूब फ्रेंच बोलते हो! उसने उत्साह प्रकट किया—आह, तुम कितने प्यारे पति हो। वह लगभग मुझ पर गिर ही पड़ी। अलग कमरा यहाँ मिल सकता है। रात भर हम साथ रहें तो तुम सुबह खूब फ्रेंच बोलने लगो।—उसने अपने लिपिस्टक पुते होंठ सहसा मेरे मुँह पर रख ही दिये। दम रोक उसका मुँह हटाया। विनय की रक्षा कठिन हो गई।

मुस्कराने का यत्न कर उसने कहा—अच्छा देखो, अभी आई एक सैकड मे। उसके जाते ही ब्लांश ने चौबेजी से फिर कहा—तुम्हारे मित्र को मीलि पसन्द नहीं आई। दूसरी लड़की को बुला दूँ? मैंने अनिच्छा प्रकट कर धन्यवाद दिया। जैसी बातें मीलि मुझसे कर रही थी वैसी ही ब्लांश चौबेजी से। हम दोनों हिन्दी में एक दूसरे को अपने अनुभव बताते जा रहे थे। ब्लांश का व्यवहार और रूप उतना ग्लानिकर नहीं था जितना मीलि का। ब्लांश दीखती भोली थी पर थी चतुर। अब हम दोनों ब्लांश से ही बात करने लगे। ब्लांश के प्रेम निवेदन के उत्तर में चौबेजी ने दूसरे दिन मिलने का आश्वासन दिया। ब्लांश ने एक पता बताकर यह भी बता दिया कि वह स्थान उसके मित्र का है। कुछ देर प्यार करने के लिये कमरे का किराया दे देना होगा। चौबेजी ने हामी भर सुबह के लिये टाल दिया।

हम लोग गाना सुनते, नाच देखते ब्लांश से और बातें करने लगे। वह दिन में फलों की एक दूकान पर काम करती है। उसका मासिक वेतन छः सौ फ्रांक है। फ्रांक का मूल्य अठारह आने के लगभग है। ब्रिस्टल होटल में बैरे से भी यही मालूम हुआ था कि जिनीवा में साधारणतः निम्न श्रेणी के समझे जाने वाले लोग महीने में छः सौ फ्रांक के लगभग कमा लेते हैं। छः सौ फ्रांक स्विटज़रलैण्ड की कीमतों और खर्च के विचार से कम नहीं। ब्रिस्टल होटल में ठहरने का खर्च केवल सत्रह फ्रांक प्रतिदिन था। ब्लांश के माता-पिता हैं। विवाह उसका कहना है कि नहीं किया। लेकिन बढ़िया पोशाक और दूसरे शौकों के लिये छः सौ फ्रांक में पूरा न पड़ता होगा। उसने कमाई का यह भी ढङ्ग अपना लिया है। कैब्रे में शराब के जो तिगुने दाम लिये जाते हैं, उसमें से इन लड़कियों को उनके द्वारा बिकी शराब पर दलाली मिलती है इसीलिये वे अधिक पीना और पिलाना चाहती हैं। ब्लांश का कहना था कि विनोद और कुछ कमाई भी हो जाती है। अगर ब्लांश शौक से ही कैब्रे में जाती हैं तो अपनी पसन्द का साथी चाहती! और पैसे की आशा न कर कुछ

खर्च करके ही संतोष अनुभव करती। मतलब यह है कि स्विटज़रलैण्ड के सम्पन्न जीवन में कमाई का यह भी ढंग है। यह सभी जानते हैं कि पिछले महायुद्ध के बाद यूरोप में केवल स्विटज़रलैंड की ही आर्थिक स्थिति संतोषजनक समझी जाती है।

भारतीय राजस्थानी नाच की भी एक नकल कैब्रे में हुई। नाच में लड़कियां उत्तरोत्तर उघड़ती जा रही थी। केवल कौपीनें ही उनके शरीर पर थीं। स्तनों को वे गोल पंखे से ढंके थीं और दर्शकों के बिलकुल समीप जा उनसे आँखें मिला पंखा सामने से हटा मुस्करा देती थीं। यही कला का प्रदर्शन था। वह युवक अब भी असंतोष प्रकट कर रहा था। यह अस्पष्ट था कि उसका यों असंतोष प्रकट करना और धारा प्रवाह बोलने का ढंग भी कैब्रे के कार्यक्रम के ही अंग थे अर्थात् पहले दर्शकों में नग्नता देखने की चाह जगाना। जैसे अपने यहाँ नटों के खेल में जमीन पर खड़ा ढोल बजाने वाला नट कहता जाता है—अभी नहीं बना! जमूरे कुछ और करतब दिखा! इससे दर्शकों का ध्यान खेल की कठिनाई की ओर जाता है और बांस या रस्सी पर खेल करने वाला और अधिक कठिन खेल दिखाने का यत्न करता है। सम्भवतः अभी कुछ और ऊंची कला दिखाई जाने को थी परन्तु रात का एक बज गया था। ब्लांश दूसरी बोतल खाली कर चुकी थी और पूछ रही थी कि और नहीं लोगे?

मीलि 'एक सेकण्ड के लिये' जाकर लौटी नहीं थी। वह दूसरे कोने में एक अधेड़ आदमी की बाँह में बाँह डाले पीने-पिलाने में लगी अनासक्त भाव से। व्यक्तित्व की परवाह न कर प्रेम का शुद्ध व्यवसाय कर रही थी। स्विटज़रलैण्ड अमेरिका और योरुप के समृद्ध शौकीनों की क्रीड़ा-स्थली है। वहाँ मनोरम प्राकृतिक दृश्य तो हैं ही। बरफ से ढंकी पहाड़ी थलवानों पर पाँव में स्की बाँध और हाथ में भाले थाम फिसलने और कूदने के स्वास्थ्य और शक्तिवर्धक खेल तो वहाँ होते ही हैं परन्तु दूसरे मनोरंजन होना भी आवश्यक है। स्विटज़रलैंड को किसी विनोद विशेष के प्रति आकर्षण है न विरक्ति। उसे पैसा चाहिये। या स्वास्थ्यवर्धक खेल खेलिये या स्वार्थनाशक।

दूसरे दिन हम लोग पैदल घूमते रहे। सर्दी बहुत थी और बादल भी। जान पड़ता था कि सर्दी के मारे झील का पानी भी सहम गया है। झील के किनारे घूमे, बाजारों के चक्कर लगाये। दुकानों की सफाई और सजावट का ढंग चमत्कारपूर्ण था। यहाँ तक कि मांस की दुकानों में भी गंध न थी और ढंग ऐसा कि ग्लानि के बजाय अच्छा ही लगता था। साधारण स्थिति के रेस्तोराँ में जाकर भी देखा। चाय और काफी की अपेक्षा बियर और अंगूरी शराब ही सस्ती थी। सेवक (वेटर) बख्शीश (टिप) की आशा करने के बजाय ग्राहक द्वारा खर्चे मूल्य का दस प्रतिशत अधिकार से मांग लेते हैं। शायद यही उनका पारिश्रमिक है। जो लोग बख्शीश नहीं देना चाहते वे काउंटर से स्वयं आवश्यक वस्तु ले दाम दे आते हैं। एक बार फिर फ्रेंच क्रान्ति का बीज बोने वाले प्रमुख साहित्यिक क्रान्तिकारी रूसो की मूर्ति का भी चक्कर लगाया। वह झील के बीच छोटे टापू पर बैठा अब भी गम्भीर विचार में मग्न है। शायद सोच रहा है कि बात अभी तक नहीं बनी।

अभी मानवता स्वयं पहनी बेड़ियों को तोड़ नहीं पायी। यूनिवर्सिटी के समीप उस 'बार' को भी देखा जहाँ लेनिन अपनी फरारी के दिनों में लोगों से मिला करते थे। परिचायक का कहना था इस 'बार' की बियर का मुकाबला संसार में कोई नहीं कर सकता।

ब्रिटेन या योरुप के किसी भी दूसरे देश के लोगों से स्विटज़रलैण्ड की समृद्धि का प्रसंग आने पर ईर्ष्या भरा उत्तर मिलता है—ओह, स्विटज़रलैण्ड की बात दूसरी है। पिछले डेढ़ सौ वर्ष से वे किसी युद्ध में नहीं पड़े। जब भी कभी लड़ाई हुई, स्विटज़रलैण्ड ने दोनों पक्षों से व्यापार कर लाभ उठाया है। वहाँ युद्ध के कारण कभी ध्वंस और नाश तो हुआ ही नहीं। उन्हें तो सदा बनाते जाने का ही अवसर रहा है। स्विटज़रलैण्ड को आत्मरक्षा के युद्ध की तैयारी के लिये फौज-फाटा और समुद्री या हवाई बेडा रखने का भी खर्च नहीं उठाना पड़ता। दूसरे देशों की राष्ट्रीय आय का बड़ा भाग तो सैनिक तत्परता में ही भस्म हो जाता है। स्विटज़रलैण्ड समृद्ध नहीं होगा तो कौन होगा। वह तो पक्का व्यापारी है। अपना पैसा वह किसी को नहीं देता, दुनिया भर का पैसा खींचता है……।

स्विटज़रलैण्ड पक्का व्यापारी देश है इसमें सन्देह नहीं। स्विटज़रलैण्ड दुनियाँ भर में मक्खन, पनीर और दूध के बने चाकलेट बेचता है। भारत में भी स्विटज़रलैण्ड से आया डिब्बों का दूध बिकता ही है परन्तु जिनीवा या ज्यूरिच में और ज्यूरिच से रेल में सफर करते समय भी गाँवों, गलियों, सड़कों या खेतों में कहीं गौओं को मारे-मारे फिरते नहीं देखा। शायद पूरे स्विटज़रलैण्ड में गौओं की संख्या उतनी न होगी जितनी कि पुण्य भूमि भारत के किसी एक जिले में हो सकती है परन्तु भारत की मानव सन्तानें दूध के लिये तरसती हैं और स्विटज़रलैण्ड में दूध की नदियाँ तो नहीं बहतीं परन्तु प्रचुरता अवश्य है क्योंकि स्विटज़रलैण्ड गौओं की उतनी ही संख्या रखता है जितनी के लिये प्रचुर चारा पैदा कर सकता है। स्विस लोग गाय को दूध उत्पन्न करने का साधन समझते हैं पूजा करके पुण्य कमाने का नहीं। हमारे गोभक्त लोग 'गोवध बन्द करो' लिख-लिखकर गाँवों और नगरों की दीवारें रंग देते हैं। यह कोई नहीं कहता कि गौओं के लिये चारा पैदा करो! हमारे यहाँ प्रायः सभी गाँवों में पशुओं की संख्या इतनी अधिक है कि गाँव की चरागाहों से उनका निर्वाह ही नहीं हो सकता। धर्मात्मा सेठ लोग सदा बूढ़ी गौओं के लिये ही घास का दान देते हैं। जवान गौओं को भूखी रहकर जल्दी बूढ़ी हो जाने के लिये छोड़ दिया जाता है।

स्विटज़रलैण्ड में धन की जब इतनी अधिकता है और बेकारी भी नहीं तो ब्लांश और मीलि को फ्रांक कमाने के लिये राह चलतों की पत्नी बनने की जरूरत क्यों है? क्या इसलिये कि वे दुश्चरित्र हैं? वे अपना चरित्र इसलिये नहीं बचा पातीं कि उनके चरित्र के गाहक उनके पीछे घूमते हैं। अपने आपको बिक्री की वस्तु मान लेने का संस्कार उनमें इतना गहरा बैठ गया है कि इसमें उन्हें ग्लानि नहीं होती। भूखी मरने के लिये विवश न होने पर भी क्या वे स्वतन्त्र हैं? उनके आत्मसम्मान को कुचल देने वाली परिस्थितियों का मूल उनके समाज के ढंग में नहीं तो कहाँ है? कारण क्या यह नहीं कि उनके समाज में

कुछ लोगों को ऐसी स्वतन्त्रता है कि अपना शौक पूरा करने के लिये अपने से कम पैसा पा सकने वालों की बहू-बेटियों को कुछ घंटे के लिये खरीद सकें! क्या ऐसे लोगों की व्यक्तिगत स्वतंत्रता दूसरों की स्वतंत्रता की भक्षक नहीं है।

जिनीवा से संध्या आठ बजे ज्यूरिच के लिये चले। एयर इंडिया इंटरनेशनल ने हमें स्विस एयरवेज़ के हवाले कर दिया था। एयर इंडिया के विमान वियाना और ज्यूरिच नहीं जाते। जिनीवा से सीधे पैरिस-लंदन चले जाते हैं। स्विस एयर का विमान देखकर निराशा ही हुई। न तो साज-सज्जा एयर इंडिया के विमान की सी थी न खातिर ही। चाकलेट और लेमनड्राप का एक-एक टुकड़ा देकर ही रह गये। एक ही घंटे में ज्यूरिच पहुँच भी गये। ज्यूरिच में विमानों का अड्डा लकड़ी का ही मकान है। यहाँ भी चुंगी और पासपोर्ट का झगड़ा-झमेला हुआ। अड्डे से नगर काफ़ी दूर है।

ज्यूरिच में सिटी होटल में ठहरे। मालूम हुआ कि यहाँ फ्रेंच नहीं जर्मन बोली जाती है। सफ़ाई और सुघड़ता जिनीवा के ब्रिस्टल होटल से अधिक ही थी। दरवाजे पर ही लिखा था—Sans Alcohal अर्थात् शराब का निषेध है। योरुप में भी, खासकर जर्मनी में कुछ लोग शराब को नैतिक दृष्टि से अच्छा नहीं समझते। सर्दी यहाँ भी जिनीवा जैसी ही थी। सड़क पर दांत बज रहे थे परन्तु होटल का कमरा खूब स्वच्छ और गरम था। स्विस एयरवेज़ ने सुबह विमान चलने के लिये नौ बजे बुलाया था इसलिये जल्दी तैयार होना पड़ा। होटल से निकले तो हल्की बरफ़ पड़ रही थी। चौबेजी बहुत प्रसन्न हुए—जीवन में पहली बार बरफ़ देखी। अच्छा तो अपने को भी लगा पर मैं इससे पहले भी कई बार बरफ़ देख चुका था। स्विस एयर के दफ्तर में पहुँचे तो हमसे पीछे चलने वाले प्रतिनिधि जोशी, सरदार गुरबक्शसिंह, डा० किचलू, परीन, मिसेज़ बिडेकर और बम्बई के दूसरे सज्जन मौजूद थे। इन लोगों के दफ्तर में हमसे पहले पहुँच जाने से विमान में हमारे लिये जगह ही नहीं रही। भाग-दौड़ करने पर कम्पनी ने एक दिन बाद जगह देने का आश्वासन दिया। इतना ठहरने से कांग्रेस के समय से पिछड़ जाने की आशंका थी। आखिर कम्पनी ने रेल का टिकट ले दिया कि रात भर यात्रा कर अगले दिन दोपहर वियाना पहुँच सके। तीन-चार घंटे का समय था सो बाजारों के चक्कर लगाते रहे। ज्यूरिच जिनीवा से खूब बडा नगर है। बहुत बड़ी-बड़ी दुकानें, मिलें और कारखाने भी हैं। अंग्रेज़ी बोलने वाले कम परन्तु मिल जरूर जाते हैं।

योरुप में सभी श्रेणियों के लिये सोने और बैठने की गाड़ियाँ अलग-अलग होती हैं। हमें सोने की गाड़ी में जगह नहीं मिली। योरुप के स्टेशनों पर गाड़ियों का आना-जाना बहुत आडम्बरहीन होता है। गाड़ी चलने से पहले घंटी बजना, गाड़ी का सीटियां बजाना वगैरा कुछ नहीं होता। इस फर्स्ट क्लास के डिब्बे में हमसे पहले दो महिलायें बैठी थीं। 'केवल स्त्रियों के लिये' यहाँ कोई डिब्बा नहीं होता। अलबत्ता तम्बाकू न पीने वालों के लिये अलग डिब्बा अवश्य होता है। महिलाओं ने हमारे आने पर नाक सिकोड़ने के बजाय प्रसन्नता ही प्रकट की। एक बिलकुल श्वेत केश प्रौढ़ थीं और दूसरी बिलकुल सुघड़ जवान।

बातचीत में पता चला कि वे दोनों भी विमान में जगह न मिल सकने के कारण ही गाड़ी से जा रही थीं। गाड़ी बिजली से चल रही थी। गाड़ी धीमे-धीमे पहाड़ों पर चढ़ती जा रही थी। इस समय बरफ़ अधिक पड़ रही थी। बरफ़ रुई के फाहों की तरह झड़ रही थी और गाड़ी नीली झील के किनारे-किनारे चल रही थी। ज्यों-ज्यों आगे बढ़ रहे थे चारों ओर का प्रदेश बरफ़ से ढँका हुआ था। रेल लाइन के दोनों ओर सभी मकान तिमंज़ले चौमंजिले और सुघड़ दिखाई देते। मालूम हुआ कि वे गांव हैं। सब ओर सुघड़ता और स्वच्छता। स्टेशनों पर खोमचे वालों की चीख-पुकार बिलकुल नहीं। केवल एक दुकान छोटी सी स्टेशन पर रहती है जहाँ कुछ फल, चाकलेट, बिस्कुट, सासेज, शराब की बोतलें और काफ़ी मिल सकती है।

हमारे साथ यात्रा करने वाली प्रौढ़ ब्राजील की मादाम ब्यांका वियाना कांग्रेस में ही जा रही थी। वे विश्वशान्ति कांग्रेस की स्थायी कमेटी की मेम्बर हैं। यह बताने पर कि हम दोनों भी वहीं जा रहे हैं, उनसे आत्मीयता हो गई। उन्होंने ब्राजीलियन सिगरेटों की एक डिबिया भेंट कर दी। जवान महिला वियाना के एक बजाज की पत्नी थीं। पति का स्वास्थ्य ठीक न होने से उन्हें व्यवसाय के लिये आना-जाना पड़ता है। अंग्रेजी ठीक से नहीं बोल पाती पर स्वभाव से हंसोड़ है। उन्होंने हमें योरुप के दक्षिण भाग या टर्की का निवासी समझा था। यह जानकर कि हम भारतीय हैं, उन्होंने बताया—स्विस एयरवेज़ के दफ्तर में सुबह उन्होंने और भी भारतीयों को देखा था। वहाँ हम लोगों का 'चौधरी' भी था। विस्मय से पूछा—चौधरी से क्या मतलब ?

टूटी फूटी अंग्रेजी और संकेत से उन्होंने बताया कि सफेद लम्बी दाढ़ी और पगड़ी पहने एक आदमी भारतीयों में था, वह हमारा चौधरी ही रहा होगा। तब समझ में आया कि वे सरदार गुरबख्शसिंह की बात कह रही थी। हमारे प्रतिनिधि मंडल के नेता, भारतीय शान्ति कमेटी के प्रधान डाक्टर किचलू भी साथ थे परन्तु योरुपियनों का ध्यान प्रायः हमारे दल में दाढ़ी और साड़ी की ओर ही जाता था। सिक्खों की पगड़ी, दाढ़ी और महिलाओं की साड़ी भारतीयता का विशेष चिह्न हैं शेष लोगों को, यदि रंग काफी काला न हो तो टर्क, पोर्चुगीज या मिस्री समझ लिया जाता है। रंग काफी काला होने पर जैसा कि हमारे दल में केवल एक ही आदमी का था—नीग्रो।

हम लोग मादाम बियांका ब्राजील के शान्ति आन्दोलन के विषय में और व्यापारी की पत्नी से वियाना के सम्बन्ध में बातें करते रहे। दोनों हमसे भारत की सामाजिक समस्याओं, छूत-अछूत, बालविवाह, पर्दा आदि के सम्बन्ध में पूछती रहीं। वियाना के सम्बन्ध में व्यापारी की पत्नी ने बताया कि युद्ध के बाद से चार विदेशी शक्तियों का कब्जा है। आर्थिक अवस्था बुरी ही है। हमें चिन्ता थी कि वियाना बहुत महंगा तो न पड़ेगा ? उन्होंने आश्वासन दिया कि लोगों के पास दाम नहीं तो चीजें स्वयं ही सस्ती होंगी।

मेरी कलाई पर जनानी घड़ी देख उन्होंने मुस्कराकर पूछा—'यह क्या मामला है।' जिनीवा में मैंने अपनी पत्नी के लिये एक घड़ी खरीद ली थी। चौबेजी की घड़ी बम्बई से

चलने में कुछ पहले चोट खा गई थी। वे उसे वहीं छोड़ आये थे। जब तक वे दूसरी घड़ी खरीदें, उन्होंने मेरी घड़ी ले ली और मैंने यह देखने के लिये कि नयी घड़ी समय ठीक देती है या नहीं, अपनी कलाई पर बांध ली। यह सफाई व्यापारी की पत्नी को सुना दी। उन्होंने चेतावनी दी—ऐसा है तो सम्भाल कर रखना। वियाना में कोई छोकरी झटक न ले! वहाँ की लड़कियां बड़ी सुन्दर और चालाक भी हैं।......वियाना में अब बस तीन ही बातें रह गई हैं—एक पिप्पर्न, दूसरी पाप्पर्न और तीसरी पुप्पर्न! इस सूत्र की व्याख्या उन्होंने बतायी—एक पीने के लिये बढ़िया शराब, दूसरी चटपटा मजेदार खाना, तीसरी दिल बहलाने के लिये चंचल लड़कियां।

वियाना में होने वाली विश्व शान्ति कांग्रेस का उन्हें कुछ पता न था। हां, इतना मालूम था कि 'कंजर्टहाज' में किसी बड़ी कांग्रेस की तैयारियां हो रही हैं। राजनीति से उन्हें कोई सम्पर्क न था। युद्ध के समय आस्ट्रिया की अवस्था की चर्चा चलने पर उन्होंने बताया कि १९३८ में उनकी अवस्था तेरह वर्ष की थी। उनके परिवार को कनसेन्ट्रेशन कैम्प में बंद कर दिया गया था और भाई को जर्मन सेना में जबरन भरती कर लिया गया था। उनके माता-पिता कैम्प में ही बीमार होकर मर गये थे। अब भी उन्हें चिन्ता केवल इसी बात की थी कि उनकी दुकान चलती रहे। खयाल था कि हमारे ही देश में अशिक्षा के कारण लोग राजनीति से निरपेक्ष हैं, शेष सब संसार बहुत सचेत है।

प्रायः तीन घंटे बाद गाड़ी स्विटज़रलैण्ड की सीमा पर पहुँच गई। पासपोर्ट देखे गये। स्विटज़रलैण्ड में आते समय पासपोर्ट पर प्रवेश की मोहर लगा दी गई थी। अब बाहर जाने की मोहर लगा दी गई। अगला स्टेशन आस्ट्रिया के फ्रांस द्वारा अधीकृत भाग में था। यहाँ फिर पासपोर्ट देखे गये। हम लोग मजाक कर रहे थे कि पासपोर्ट दिखाने के लिये बार-बार इतनी देर रुकना पड़ेगा तो वियाना कब पहुँचेंगे? व्यापारी की पत्नी ने आश्वासन दिया—'अधिक देर नहीं लगेगी। फ्रेंच सिपाही विशेष छानबीन नहीं करते। ऊंघते हुए से आते हैं और मोहर लगाकर चले जाते हैं। इसके बाद अमेरिका के अधिकृत भाग से गुजरेंगे। अमेरिकी सिपाही मुंह में च्युइंग-गम भरे, जबड़ों को दायें-बायें चलाते, जुगाली सी करते 'पास्पर्ट-पास्पर्ट' चिल्लाते आयेंगे और बिना देखे मोहरें लगा जायेंगे। उसने अमरीकन सिपाहियों की ऐसी बढ़िया नकल की कि हम लोग बहुत देर तक अट्टहास करते रहे। उसने बताया कि सन्देह भरी छानबीन तो रूसी भाग में प्रवेश करते समय होती है।'

फ्रेंच सीमा में प्रवेश करते ही एक फ्रेंच फौजी अफसर अपनी पत्नी और बालक के साथ गाड़ी में आया। व्यापारी की पत्नी की हंसी-मजाक सब काफूर हो गया। फ्रेंच अफसर भी अपनी नोकीली, चोंच सी नाक सामने की ओर उठाये ऐसे निश्चल और चुप बैठा था मानो कोई देहाती फोटो खिंचवाने के संकट में फंस गया हो या गाड़ी में और कोई हो ही नहीं। व्यापारी की स्त्री ने अफसर के बालक से हेल-मेल बढ़ाना चाहा। वह अच्छी खासी फ्रेंच बोलती थी। लड़के को चाकलेट दिया और रूमाल से कुत्ते, बिल्ली की शक्लें बनाकर

दिखाई। मादाम ब्यांका भी फ्रेंच बोलती थी। उन्होंने भी कुछ बात करनी चाही पर उस शूरवीर ने 'हां, ना' में ही बात समाप्त कर दी। अफसर को शायद अपने अधीकृत देश में अपना रोब कायम रखने के लिये यह ऐंठ कर्त्तव्य जान पड़ रहा था। अफसर की स्त्री भी वैसे ही निश्चल और सुन्न बैठी थी। वे दोनों स्वयं भी काफी असुविधा अनुभव कर रहे थे, यह भी स्पष्ट था।

इस फ्रेंच अफसर का व्यवहार ठीक वैसा ही था जैसा कि हमारे देश में अंग्रेज अफसर करते थे। उनकी सरकार द्वारा ऐसे निर्देश व्यवहार के सम्बन्ध में दे दिये जाते थे कि भारतीय सर्वसाधारण से सामीप्य न होने दें। सामीप्य हो जाने पर असलियत खुल जाती है; बड़प्पन का आडम्बर निभ नहीं पाता। दूसरे स्टेशन पर फ्रेंच महिला हमारे यहाँ असुविधा अनुभव होने के कारण तम्बाकू न पीने वाली गाड़ी में चली गई। बालक और अफसर हमारे यहाँ ही रहे। जब भी कोई स्टेशन आता फ्रेंच अफसर मुक्त वायु में श्वास लेने के लिये बाहर चला जाता। उस समय वह व्यापारी की स्त्री भी मुक्ति की सांस ले पाती और अफसर के बैठने और चेहरे की मुद्रा की नकलें कर हमें हंसाने लगती परन्तु अफसर के आते ही उसे सांप सा सूंघ जाता। वह बालक की खुशामद द्वारा अफसर की खुशामद में लग जाती। एक समय में अंग्रेज का भय और खुशामद हमारे समाज के लोगों में बहुत पाई जाती थी। तब ऐसा समझा जाता था कि भय और खुशामद भारतीयों की जातिगत स्वाभाविक क्षुद्रता है। यहाँ सामने महिमामय आस्ट्रियोहंगेरियन हैप्सबर्ग के साम्राज्य की गौरवान्वित प्रजा थी जो एक समय सम्पूर्ण मध्य योरुप का मालिक था और वियाना उस साम्राज्य का सांस्कृतिक और राजनैतिक केन्द्र। युद्ध से पूर्व जापान के आत्म गौरव की भी अनेक गाथायें सुनी थीं परन्तु युद्ध के बाद एक भारतीय फौजी अफसर से, जो जापान में दो वर्ष रह आये हैं, अमरीकनों के सामने जापानियों के फर्शी सलामों की जो कहानियां सुनीं, उससे भी यही मानना पड़ा कि राष्ट्रीय अभिमान, आत्माभिमान, ईमानदारी और गौरव किस जाति विशेष के ही स्वाभाविक गुण नहीं। जीवन की परिस्थितियों से ही जातियों आर राष्ट्रों की प्रकृतियां और गुण बनते, बदलते रहते हैं।

गाड़ी बरफ से ढंके पहाड़ी प्रदेशों से गुजर रही थी। अंधेरा हो जाने के कारण बाहर कुछ दिखाई नहीं पड़ रहा था। भूख मालूम हुई। रेस्टोरां कार से एक व्यक्ति कुछ खाने-पीने का सामान लेकर आया। वह हमारी बात नहीं समझ रहा था। व्यापारी की स्त्री ने हमारे लिये भी खाने के लिए सामान ले दिया और दाम भी स्वयं ही चुका दिये, हमें न देने दिये। फ्रेंच अफसर जा चुका था। आधे-आधे बर्थ हम लोगों के पास थे सो ऊंघते चले जा रहे थे। रूसी सीमा में प्रवेश करने पर फिर पासपोर्ट की पडताल हुई। फिर ऊंघने लगे। पौ फटने के समय ऊंघते-ऊंघते कई सौ मील लांघकर हम लोग आस्ट्रिया के प्रायः समतल प्रदेश में से जा रहे थे। खेतों में सभी जगह मैली सी हल्की बरफ पड़ी हुई थी। अब गाड़ी कोयले के इंजन से चल रही थी।

वियाना—विश्वशान्ति कांग्रेस

गाड़ी वियाना दस बजे पहुँची। स्टेशन पर कुछ लोग शान्ति के चिह्न, श्वेत कबूतर के आसमानी रंग के लाल बिल्ले लगाये हुए मिले। बिल्लों पर 'बोलकर कांग्रेस फुर डेन फ्रीडेन', (विश्व जनता शान्ति कांग्रेस) भी था। इन लोगों ने हमें साथ ले लिया। इस गाड़ी से बहुत से लोग कांग्रेस के लिये आये थे। स्वयंसेवक हमें एक बस में 'कुरसालोन' ले गये। यहाँ अच्छा खासा बड़ा सा दफ्तर लगा हुआ था। संसार के सभी देशों से प्रतिनिधि आ रहे थे। उनके ठहरने, ठीक समय और उचित मूल्य पर भोजन पा सकने और समय पर कांग्रेस हाल में पहुँचने की व्यवस्था साधारण काम नहीं था। बड़े हाल में साठ-सत्तर मेजों पर स्त्री-पुरुष काम कर रहे थे। बहुत से स्त्री-पुरुष स्वयंसेवक वियाना में आगे-पीछे पहुँचने वाले प्रतिनिधियों को उनसे पहले पहुँचे उनके साथियों के यहाँ पहुँचा रहे थे। अनेक देशों से आये प्रतिनिधियों के लिये अलग-अलग होटलों में प्रवन्ध था। वियाना में भी हल्की-हल्की बरफ पड़ रही थी। प्रतिनिधियों को फूस के टप्पर बाँधकर या छोलदारियों में नहीं ठहरा दिया जा सकता था। भारतीय प्रतिनिधियों के लिये होटल मोजार्ट में प्रबन्ध था। हमें वहीं पहुँचा दिया गया। हमसे पहले पहुँचे प्रतिनिधि कांग्रेस के कार्यक्रम में भाग लेने के सम्बन्ध में विचार कर रहे थे। हम भी उसी में सम्मिलित हो गये। कांग्रेस अगले दिन सुवह नौ बजे 'कंजर्टहाज' (कंसर्ट हाल) में आरम्भ होने वाली थी!

योरुप के बीचोंबीच, प्रख्यात डैन्यूब नदी के किनारे, ऐतिहासिक स्मारकों से भरा सुन्दर वियाना नगर है। वियाना बहुत समय तक योरुप की संस्कृति, राजनीति और कला का केन्द्र रहा है और कँजर्टहाज वियाना मे संगीत का केन्द्र। यह भवन इस शताब्दी के आरम्भ में दो संसार प्रसिद्ध निर्माणकला विशारदों फेलनर और हेलनर ने बनाया था। वियाना के केन्द्र में 'सेंट स्टेफन' के गगनचुम्बी गिर्जाघर के सूची आकार स्तूप गोथिक कला के श्रेष्ठतम नमूनों के रूप में खड़े हैं। पिछले महायुद्ध में मनुष्य आत्मसंहार के लिये कितना उन्मत्त और बर्बर हो उठा था? गिरजाघर की ध्वस्त दीवारों पर बमों से बरबाद हो गई मूर्तियाँ इस बात के लिये दुहाई दे रही हैं। यह भग्न मूर्तियाँ और दीवारें कुछ कहती नहीं परन्तु मनुष्य के दो रूपों की मूक साक्षी दे रही है। मनुष्य का एक वह रूप जो कला के परिष्कार और निर्माण से समाज को समृद्ध और सतुष्ट बनाता है। और दूसरा रूप जो इन सबके संहार के लिये अपने सिर जोखिम झेलने में गौरव समझता है। इनके सामने ही एक खूब ऊँचे स्तूप पर लोहे की टोपी पहने सोवियत सिपाही झेले हुए युद्ध की स्मृति में उदास सा खड़ा है। समीप ही कंजर्टहाज है। इस हाल के प्रतिष्ठान में उस समय के सभी संसार प्रसिद्ध सगीतज्ञों ने योगदान देकर अपनी आस्था प्रकट की थी कि संस्कृति और कला संपूर्ण मानव समाज की अनुभूतियों का साझा माध्यम है। कंजर्टहाज को इस बात का गर्व है कि पश्चिमी संसार के सभी प्रमुख कलाकार, वैज्ञानिक और दार्शनिक फ्रांज स्काल्ज, हरमान एलबर्ट, एन्सटाइन, नेज्दकी, रोमांरोलां, अमरीकन और अंग्रेज संगीतज्ञ कार्ल एंगल और एडवर्ड डेंट भी इस हाल की गोष्ठियों में भाग ले चुके हैं। सन् १९२६ में बीथोवन की शताब्दी भी इसी हाल में मनाई गई थी। यह हाल

एक समय संसार के कला विशारदों के कला विमर्ष का केन्द्र था। आज इसमें संसार के पचासी देशों से जनता के दो हजार पाँच सौ प्रतिनिधि संसार को भावी युद्धों के ध्वंस से बचाने और शान्ति की रक्षा के लिये दृढ़ निश्चय करने के लिये एकत्र हुए थे। हाल की नींव में समाये कला के प्राणों ने ही सम्भवतः उन लोगों को इस स्थल पर आकर्षित किया था कि वे कला को नष्ट करने वाले युद्धों को रोकने और कला का विकास करने वाली शान्ति की रक्षा के लिये अपनी सम्मिलित पुकार उठायें।

कंजर्टहाज में कांग्रेस के लिये विशेष व्यवस्था की गई थी। दो हजार पाँच सौ प्रतिनिधियों, सैकड़ों अतिथियों और समाचार पत्र प्रतिनिधियों के बैठने के लिये ऐसा उचित स्थान बनाना कि वे सब कांग्रेस में होने वाले परामर्श में सुविधा से भाग ले सकें, साधारण बात न थी। शीतप्रधान देशों के होटलों, सिनेमाघरों, रंगशालाओं और सभाभवनों में अतिथियों के ओवरकोट, हैट और बरफ या कीचड़ से बचाने वाले जूतों को सम्भालकर रखने का प्रबन्ध भी एक बड़ा काम होता है। ताड़ की तरह ऊँचे खम्भों पर खड़ी कंजर्टहाज की ड्योढ़ी में प्रवेश करते ही काँच से मढ़े बड़े-बड़े दरवाजों से ढंका बरामदा है जो बाहर की बर्फानी हवा से बीच के हाल को बचाये हैं या हाल की गरम हवा से निकलने वाले लोगों को बाहर बर्फानी हवा में जाने से पहले कुछ क्षण उस हवा को सह सकने के लिये तैयार होने का अवसर देता है। भीतर भारी-भारी खम्भों पर खड़े हाल में ओवरकोट, हैट और बर्फानी जूते सम्भालकर रखने का प्रबन्ध है। A. B. C. D. E. F. शीर्षक से अलग-अलग काउंटर बने हैं जिसमें दर्शक अपनी चीजें देकर नम्बर ले जाते हैं और लौटते समय बिना भूल या घपले के अपनी चीजें वापस पा सकते है। प्रत्येक काउण्टर पर चार-चार, पाँच-पाँच स्वयंसेविकायें काम कर रही थीं परन्तु हजारों लोगों के एक साथ आने और बाहर निकलने पर भीड़ हो जाने के कारण क्यू बनाना भी आवश्यक हो जाता था। सूचनायें देने और देश-देश के प्रतिनिधियों के सिक्कों को आस्ट्रियन शिलिंग में बदल देने की व्यवस्था भी थी। यहीं अस्थायी डाक और तार घर भी थे। लगभग पचास टेलीफोनों की व्यवस्था थी। कुछ कमरों में टेलीप्रिंटर और रेडियो द्वारा समाचार भेजने का भी प्रबन्ध था। हाल के बीचों-बीच संसार प्रसिद्ध संगीतकार बीथोवन अपने विशाल धातु-शरीर में विचार-मग्न बैठे हैं।

कांग्रेस के लिये ऊपर के हाल में व्यवस्था थी। सम्राटों के कला विनोद के लिये उपयुक्त सुनहरी पच्चीकारी से जगमगाते हाल में शान्ति की भावना का वातावरण उपस्थित करने के लिये विशाल रंगमंच आसमानी पर्दों से मढ़ दिया गया था और उस पर शान्ति, करुणा और निरीहता का प्रतीक श्वेत कपोत पर फैलाये उड़ रहा था। आसमानी पर्दों पर संसार की जनता के प्रतिनिधित्व में सभी राष्ट्रों के झण्डे मौजूद थे। आठ भाषाओं फ्रेंच, अंग्रेजी, जर्मन, रूसी, चीनी, स्पेनिश, इटालियन और अरबी आदि में लिखा था—'शान्ति के लिये जनता की कांग्रेस Congress of the People for Peace.' झण्डे के नीचे कांग्रेस के प्रधानमंडल के लिये बैठने का स्थान था। प्रधानमंडल में डेढ़ सौ

सदस्य संसार प्रसिद्ध वैज्ञानिक जूलियो क्यूरी और पंजाब की देहाती बहू दलजीत कौर भी थीं।

दलजीत कौर पंजाबी भाषा के अतिरिक्त और कुछ नहीं जानती। उसने अपने परिवार में केवल सुगृहणी होने की ही शिक्षा पाई हैं। वह अपने तीन बच्चों और घर को सम्भालती हैं परन्तु उसने पंजाब के देहातों में घूम-घूमकर विश्व शान्ति द्वारा देश के मानवता की रक्षा का संदेश जनता को दिया है उसने विश्व शान्ति के लिये घोषणा पत्र पर साठ हजार से अधिक लोगों के हस्ताक्षर कराये हैं। कांग्रेस की दृष्टि में दलजीत की विद्या, धन और वंश के समान नहीं शांति के प्रति उसकी लगने का महत्त्व था। दलजीत का परिचय पाकर एक बार यह अनुभव हुए बिना नहीं रह सकता कि शान्ति के प्रति कर्त्तव्य निबाहने की शिक्षा की डिग्रियों और सामाजिक स्थिति की अपेक्षा कर्त्तव्य को पहचान लेना ही अधिक सहायक है।

कांग्रेस में जहाँ एक ओर दलजीत, इंगलैण्ड की खानों में काम करने वाले मजदूर या मुझ और चौबेजी जैसे शांति के प्रति बौद्धिक सहानुभूति रखने वाले लोग थे वहाँ संस्कृति और विज्ञान के वर्तमान जगत की ऐसी विभूतियाँ भी थीं जिनके नाम सदा आदर और श्रद्धा से सुने थे और जिन्हें देख पाने की बात कभी सोची भी न थी :—उदाहरणतः प्रो० जूलियो क्यूरी, मोशिये दः अर्बुरसियरे, इलिया एहरनबर्ग, सोप्रानोव, डीन आफ कैंटरबरी, जनरल गबाल्दो, कलाकार फनार्ड लेजर, प्रसिद्ध अभिनेत्री मारिया डेला कोस्ता, डा० बर्नाल, उपन्यासकार बार्लेत्ता, मादाम सन्यातसेन, कुओमोजो, रूस के आर्क विशप और इजराइल के बड़े मुफ्ती आदि। प्रधान मंडल में दलजीत कौर के अतिरिक्त और भी भारतीय थे। शान्तिरक्षा कमेटी के प्रधान डा० किचलू, गाँधीवादी अर्थशास्त्र के समर्थक डा० कुमारप्पा और रमेशचन्द्र।

भारत में कुछ लोगों की धारणा है कि शान्तिरक्षा आन्दोलन कम्युनिस्टों का ही अखाड़ा है। दलजीत कम्युनिज्म से कितनी सहानुभूति रखती है, यह बात करने का अवसर नहीं मिला। उससे यह जरूर पूछा था कि विश्व शान्ति की समस्या के प्रति जिसे कि नगरों के अर्धशिक्षित लोग देश के बाहर की पराई झंझट समझते हैं, उसने देहात के किसान स्त्री पुरुषों में कैसे सहानुभूति पैदा कर ली। उसने मुझे संसार की शोषक श्रेणी द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में पूँजी के साम्राज्यवाद पर कोई व्याख्यान नहीं दिया। केवल यह बताया कि सर्वसाधारण के लिये युद्ध के परिणाम क्या होते हैं। दो व्यक्तियों की लड़ाई को हम मूर्खता और पागलपन समझते हैं तो दो देशों की भयंकर लड़ाई को क्या समझेंगे। कौन स्त्री अपनी सन्तान के प्राणों पर आशंका देखना चाहती है और कौन माँ अपनी सन्तान को दूसरे के प्राण लेने के लिये जोखिम में डालना चाहेगी? उसने देहात की माताओं, बहुओं और बहनों को समझाया कि एटमबम से हिरोशिमा और नागासाकी में क्या हुआ और पूछा, क्या तुम चाहती हो कि ऐसी घटनायें संसार में फिर हों? यदि संसार के और देशों में ऐसे कांड होंगे तो तुम्हारे गाँव और देश में भी जरूर होंगे यदि

तुम ऐसा महानाश और अत्याचार अपनी दूसरी बहनों के परिवारों पर नहीं देखना चाहती तो ऐसी माँग पर हस्ताक्षर करने में या अंगूठा लगाने में तुम्हें आपत्ति क्या है? पर्दे में रहने वाली या निरक्षर स्त्रियों से उसे उत्तर मिलता—हाय ऐसा जुल्म हम क्यों चाहेंगी। भगवान ऐसे जुल्म से सभी को बचाये पर हमारे मर्द काम से बाहर गये हैं। उनसे पूछकर ही दस्तखत करना या अंगूठा लगाना ठीक होगा।

दलजीत पूछती—बहन, अगर मर्दों के घर से बाहर रहने पर तुम्हारे गाँव पर बम पड़ने लगे या कोई आग लगा दे तो क्या आग बुझाने और बच्चों को बचाने के लिये भी मर्दों के लौट आने और उनसे पूछ लेने का इंतजार करोगी? गाँव की स्त्रियाँ आतुरता से एटमबम के निषेध की माँग पर हस्ताक्षर कर देतीं। दलजीत देहात की स्त्रियों को केवल यही समझाती थी कि दूसरी माताओं, बहिनों के पेट की सन्तान भी वैसी ही है जैसी तुम्हारे पेट की। अगर यह दलजीत का कम्युनिज्म है तो क्या इससे भी लड़ना होगा?

डा० किचलू के विषय में स्वयं जानता हूँ कि १९१९ से रौलट कानून विरोधी आन्दोलन के समय से वे कांग्रेस के प्रमुख नेताओं में रहे हैं। यह भी नहीं कहा जा सकता कि उनकी प्रवृत्ति वामपक्ष की ही ओर रही हो। डा० कुमारप्पा का तो नाम ही गाँधीवाद के साथ सम्बद्ध है। उन्हें कम्युनिज्म के भौतिकवादी सिद्धान्तों में आस्था नहीं। यह बात उनके इस कांग्रेस में दिये भाषण से भी स्पष्ट थी परन्तु वे शान्ति चाहते हैं क्योंकि गाँधीवाद अहिंसा और शान्ति को लक्ष्य मानता है। अपने आदर्शों के अनुसार वह शान्ति द्वारा ही मानव जीवन के व्यक्तिगत और सामाजिक लक्ष्य की प्राप्त कर सकता है। भारतीय प्रतिनिधियों में गाँधीवादी ग्राम कार्यकर्ता श्री शाह, गुजराती के प्रमुख लेखक देसाई और कलाकार रावल और व्यापारी पटेल, मराठी की लेखिका मालती बिडेकर और इलाहाबाद यूनिवर्सिटी के अध्यापक मिश्रजी और बम्बई तथा मद्रास विधानसभाओं के विरोधी दलों के नेता यादव और आदित्यन को भी कम्युनिज्म से कोई सहानुभूति नहीं जान पड़ती थी। हमारे प्रतिनिधि मंडल में सबसे अधिक ध्यान आकर्षित करने वाला रूप था—सिर पर ऊँचा जूड़ा बाँधे और गेरुआ रेशमी वस्त्र और गुलाबी प्लाश का चोगा पहने, मोटे रुद्राक्ष की माला गले में लटकाये, हिन्दू सभा की उपप्रधान श्रद्धा माता का। जीनपाल सार्त्र तो अपने साहित्य की कम्युनिस्ट-दर्शन विरोधी, रहस्यवादी और अंतर्मुखी प्रवृत्ति के ही लिये प्रसिद्ध हैं। वे भी इस कांग्रेस में न केवल सम्मिलित ही हुए, बल्कि उनके भाषण का कांग्रेस में विशेष महत्त्व था। मादाम बियांका से गाड़ी में काफ़ी बातचीत होती रही थी। वे ब्राजील के एक ऊँचे सरकारी कर्मचारी की पत्नी हैं। वे कम्युनिज्म की पोषक नहीं। उनका दृष्टिकोण केवल मानवता की रक्षा का है। कांग्रेस में आये जर्मनी और ब्रिटेन के बहुत से लोगों से भी चाय-काफ़ी पीते समय आन्तरिकता से बातचीत करने का अवसर मिला। हैम्बर्ग के डा० ब्रीज़े जनवादी-समाजवादी ही थे। इंगलैण्ड की नाट्यकार फ़िलिप्पा बरेल और उपन्यास लेखिका एडिथ पार्जिटा न केवल कम्युनिस्ट नहीं थीं बल्कि वे ब्रिटेन के शान्ति से सहानुभूति रखने वाले लेखकों की ओर से अपनी आँखों

यह देखने के लिये आई थीं कि कम्युनिस्टों का खेल समझे जाने वाले शान्ति आन्दोलन का वास्तविक रूप और प्रयोजन क्या है।

कांग्रेस में पचासी देशों से आये दो हजार पाँच सौ प्रतिनिधि भिन्न-भिन्न भाषायें बोलते थे। ऐसी कोई भाषा नहीं थी जिसे सभी समझ सकते। किसी को भी अपनी भाषा छोड़ अन्य भाषा में बोलने के लिये विवश नहीं किया जा सकता था। उदाहरणत: दलजीत पंजाबी में, मालती बिडेकर मराठी में और आदिय्यन तमिल में बोले। किसी के विचारों को नगण्य समझकर उपेक्षा भी नहीं की जा सकती थी। कांग्रेस में जो भी भाषण होता उसके एक साथ छः भाषाओं में सुने जा सकने का प्रबंध था। प्रत्येक कुर्सी के साथ एक हैडफोन था। हैडफोन के स्विच में फ्रेंच, रूसी, अंग्रेजी, चीनी, जर्मन और स्पेनिश के लिए संकेत बने थे। वक्ता चाहे जिस भाषा में बोल रहा हो, श्रोता मन चाही भाषा में भाषण सुन सकते थे। प्रत्येक व्याख्यान पहले लिखकर दे देने का नियम था। भाषण का अनुवाद तुरंत इन भाषाओं में कर लिया जाता और मंच के नीचे लगे माइक्रोफोनों से भाषण को भिन्न-भिन्न भाषाओं में एक साथ बोल दिया जाता। इस कठिन व्यवस्था में कभी कुछ असंगति भी हो जाती। किसी भाषा के वक्ता के जरा जल्दी कर जाने पर या कुछ शिथिल हो जाने पर दूसरी भाषाओं में बात कुछ आगे-पीछे हो जाती। विशेषत: जब भाषण में कोई बात ताली बजाकर उत्साह प्रकट करने की आ जाती तो भिन्न-भिन्न भाषाओं को समझने वाले तालियाँ आगे-पीछे बजा देते।

विश्व शान्ति रक्षा कमेटी के मंत्री फ्रेंच लेखक जीन लाफिते ने कांग्रेस के लिये सभापति निर्वाचन करने का अनुरोध किया। सर्वसम्मति से प्रो० जूलियो क्यूरी सभापति चुने गये। सभापति ने कांग्रेस का अधिवेशन आरम्भ होने की घोषणा कर पहले वियाना के प्रमुख पादरी काक को अपनी बात कहने का अवसर दिया। पादरी काक ने आस्ट्रिया और वियाना की जनता की ओर से शान्ति के प्रयत्न के लिये संसार के कोने-कोने से, आने वाले प्रतिनिधियों का स्वागत कर उनके उद्देश्य में सफलता की कामना की। साधारण ढंग के अनुसार कांग्रेस के लिये पहले से ही विषय निर्धारिणी कमेटी ने कोई प्रस्ताव तैयार नहीं कर लिये थे। प्रो० जूलियो क्यूरी ने 'शान्ति रक्षा विश्व समिति' (World Council for Peace) के सभापति के नाते अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति, शान्ति के लिये प्रयत्नों की आवश्यकता और उसके लिये सम्भव कार्यक्रम के सम्बन्ध में एक रूपरेखा प्रस्तुत की। सक्षेप में प्रो० क्यूरी का भाषण इस प्रकार था :—

मुझे इस बात से विशेष प्रसन्नता है कि इस महान कांग्रेस में विश्वशान्ति चाहने वाले और अन्तर्राष्ट्रीय तनाव को दूर करने की कामना रखने वाले सभी लोगों को भाग ले सकने का अवसर है। ऐसे शुभ और महान कार्य के लिये मैं आपको बधाई और धन्यवाद देता हूँ। बहुत से लोग जो विश्व शान्ति चाहते हैं परन्तु इस उद्देश्य के लिए अपने-अपने ढंग से अलग-अलग रास्तों से यत्न कर रहे थे और विचारों के भेद के कारण परस्पर सहयोग न पा सकते थे, इस कांग्रेस में शान्ति के सांझे उद्देश्य से इकट्ठे हो सके हैं।

हमारा मानव समाज अभी तक दूसरे महायुद्ध में खोई अपनी चोटों का इलाज पूरी तरह नहीं कर पाया है कि आज इस समय भी हमारी पृथ्वी पर तीन युद्धों का विध्वंस फिर जारी है। राष्ट्रों में संहार के हथियारों को बढ़ाने की होड़ तेजी से चल रही है। इस होड़ से राष्ट्रों की आर्थिक स्थिति संकट में है। भयभीत राष्ट्र अपनी जनता की गिरती अवस्था की चिन्ता न कर अपनी संहार की शक्ति बढ़ाने में और उसके परिणाम स्वरूप युद्ध की आशंका बढ़ाने में लगे हुए हैं। आपस में अविश्वास के कारण एक दूसरे के विरुद्ध प्रचार और लांछनों के हथियारों से युद्ध का ही वातावरण बन गया है। भिन्न-भिन्न राष्ट्र न्याय और नैतिकता की रक्षा के नाम पर अपनी जनता को नरसंहार के लिए उत्तेजित कर रहे हैं। आपसी घृणा और वैमनस्य की इन भावना ने मानवता के लिए विकट संकट की परिस्थिति पैदा कर दी है। यह आशा की जा रही है कि युद्ध और संहार की बढ़ी हुई हमारी शक्ति ही इस परिस्थिति को सुलझा कर समाज की रक्षा कर सकेगी। यह भयंकर भ्रम है। युद्ध और संहार के मार्ग से कुछ भी सुलझ नहीं सकता उससे तो केवल नाश ही होगा।

हम लोग अपने जीवन में दो विश्वव्यापी महायुद्ध और चार स्थानीय युद्ध देख चुके हैं। पहले युद्ध में एक करोड़ सत्तर लाख आदमी मारे गये थे। हमने उन्नति की और दूसरे महायुद्ध में पाँच करोड़ मर्दों, स्त्रियों और बच्चों का संहार किया। अनुमान है कि इस युद्ध में समाज को पचासी हजार करोड़ रुपये की आर्थिक हानि हुई है। अब विज्ञान को संहार के मार्ग पर और आगे बढ़ाया जा चुका है। हमारा यह अडिग विश्वास है कि मानव समाज के जीवन को सुख-समृद्धि और विकास का अवसर देने के लिए है; यही उसे करना चाहिए और वह करेगा भी। यह ठीक है कि विज्ञान से अधिक संहारक शस्त्रों का भी विकास किया गया है। यदि विज्ञान की यह अपरिमित शक्ति नरसंहार में विश्वास रखने वालों के हाथ में रहेगी तो तीसरे महायुद्ध के परिणाम क्या होंगे यह कल्पना कर लेना कठिन नहीं है।

पिछले युद्धों से नाश के अनुभव और भावी युद्ध के संहार की चेतावनी को ध्यान में रखकर मनुष्य समाज की रक्षा का एक ही उपाय हमें सूझता है कि भविष्य में युद्ध न हो। यह प्रयत्न कैसे किया जाना चाहिए? १९१८ से १९३९ तक भी प्रयत्न किये गये थे कि अब की युद्ध न हो परन्तु सफलता नहीं हो सकी। उस समय भी युद्ध में असहयोग से युद्ध का विरोध करने की (Pacifist) प्रवृत्ति और शान्ति की रक्षा के लिए राष्ट्र संघ (League of Nations) भी, शान्ति के लिए विश्व सभा (World Assembly for Peace) और दूसरे संगठन मौजूद थे। सोचना है कि यह सब प्रवृत्तियाँ और संगठन मौजूद होते हुए भी शान्ति की रक्षा क्यों नहीं हो सकी। इस संगठनो और प्रवृत्तियों की असफलता का कारण यही था कि वे जनता की शक्ति से नहीं चल रहे थे। इनका विश्वास था कि संसार के कुछेक व्यक्ति ही अपने राजनैतिक अधिकार और अपनी स्थिति से शान्ति की रक्षा कर सकते हैं। असफलता के इस अनुभव से शिक्षा लेकर १९४९ में शान्ति के लिए जनता की पहली कांग्रेस पैरिस में की गई थी। शान्ति के लिए जनता की कांग्रेस करने का कारण यह

विश्वास था कि शान्ति की रक्षा सभी राष्ट्रों की जनता की सम्मिलित इच्छा और शक्ति से ही हो सकती है। युद्धों से जनता का ही संहार और ध्वंस होता है और जनता के सहयोग के बिना कोई युद्ध लड़ा भी नहीं जा सकता। जनता की इस चेतना से ही अनेक देशों में शान्ति के लिए राष्ट्रीय आन्दोलन आरम्भ हुए और शान्ति रक्षा के लिए विश्व संगठन की स्थापना हो सकती है।

मानव समाज के विकास के परिणाम स्वरूप संसार के विभिन्न भागों में मनुष्यों ने अनेक प्रकार की राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक व्यवस्थाओं को अपनाया है। यदि हम इस प्रश्न पर विचार करें कि समाज के विकास के क्या नियम रहे हैं या भविष्य में विकास का क्या मार्ग होगा तो अपनी-अपनी विचारधारा के अनुसार हममें मतभेद होगा परन्तु यदि प्रश्न यह हो कि क्या मनुष्य समाज में मौजूद अनेक प्रकार की व्यवस्थाएँ जैसे वे इस समय हैं, एक साथ चल सकनी चाहिए या नहीं तो हमें उत्तर 'हाँ' में ही देना होगा यदि हम उत्तर से सहमत न हों तो परिणाम होगा कि सभी व्यवस्थाओं का यह अधिकार स्वीकार किया जाय कि वे अन्य व्यवस्थाओं को युद्ध द्वारा समाप्त कर अपनी ही व्यवस्था उन पर लागू कर ले। शान्ति रक्षा के लिए हमें यह मानना ही पड़ेगा कि प्रत्येक राष्ट्र को आत्मनिर्णय से अपनी व्यवस्था के अनुसार चलने का पूरा अधिकार है। किसी भी राष्ट्र की व्यवस्था को उसकी इच्छा के विरुद्ध बदलकर अपनी व्यवस्था उस पर लादने का यत्न उन्हें अपने अधीन करने की इच्छा और युद्ध की चुनौती ही है।

जब हम यह मान लें कि मौजूदा संसार में भिन्न-भिन्न व्यवस्थाओं को आत्मनिर्णय से अपने-अपने स्थान पर रहने का पूरा अधिकार है तो उनके स्वार्थों में होने वाले संघर्षों को हल करने का उपाय समझौते के मार्ग के सिवा और दूसरा रह ही नहीं जाता है। यदि हम इस पारस्परिक न्याय के सिद्धान्त को स्वीकार करते हैं तो दूसरों पर अपनी व्यवस्था और अपना न्याय लादने की प्रवृत्ति के परिणाम स्वरूप आज जो तीन युद्ध चल रहे हैं उन्हें समाप्त करना होगा। राष्ट्रों में युद्ध की तैयारी की होड़ को रोकना होगा और अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र से वैमनस्य का वातावरण दूर कर समझौते की चेष्टा करनी होगी।

एटमबम और उससे भी बड़े हुए, हाइड्रोजन बम और रोगों के कीटाणुओं से बीमारी फैला देने वालों शस्त्र ध्वंस और विनाश के अंधे शस्त्र हैं। इन शस्त्रों के घातक प्रभाव के समय और सीमा का अनुमान कर लेना आसान नहीं। इस विषय में विशेषज्ञ डाक्टरों की राय है कि कृत्रिम उपायों से शक्ति बढ़ाये हुए कीटाणुओं से इतने प्रबल रूप में रोग उत्पन्न हो सकते हैं कि इस प्रकार फैलाये गये रोगों के केवल एक ही देश में सीमित न रहकर पूरी पृथ्वी पर फैल जाने की आशंका रहेगी और युद्ध समाप्त हो जाने के बाद भी मनुष्य मात्र बरसों तक उन रोगों का शिकार बने रहेंगे। राष्ट्रों द्वारा शस्त्र बढ़ाने की होड़ को रोकने या एटमबम जैसे मारात्मक और खर्चीले शस्त्रों पर रोक लगाने की पुकार केवल मानव की सहृदयता का ही परिणाम नहीं है बल्कि यह पुकार शस्त्रीकरण की होड़ के

कारण राष्ट्रों पर पड़ने वाले असह्य बोझ का भी परिणाम है जिसके कारण राष्ट्रों की आर्थिक व्यवस्था की रीढ़ टूटी जा रही है।

कुछ लोगों को भय है कि यदि शस्त्र बढ़ाने की अन्तर्राष्ट्रीय होड़ बन्द हो जाय तो उनके देशों में बेकारी हो जायेगी। ऐसे लोगों से पूछा जा सकता है कि इन शस्त्रों का कोई उपयोग नहीं किया जाता तो यह मानव समाज के श्रम का कितना बड़ा अपव्यय है। इस शस्त्रीकरण के लिए समाज को भारी टैक्सों के रूप में और जीवन रक्षा के लिए आवश्यक वस्तुओं की पैदावार के स्थान के बदले ध्वंसक वस्तुओं की पैदावार कर समाज की उत्पादन की शक्ति को कितना अधिक बरबाद किया जा रहा है। शस्त्रों के बढ़ाने पर सीमा लगा देना न केवल राष्ट्रीय आर्थिक शक्ति के अपव्यय को रोकेगा बल्कि राष्ट्र आपसी विश्वास से सहयोग और सद्भावना की नीति पर व्यवहार करना भी आवश्यक समझेंगे।

अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिद्वन्द्विता और वैमनस्य को घटाने के एक दूसरे साधन पर भी हमें ध्यान देना चाहिए। आपसी वैमनस्य का बहुत बड़ा कारण दूसरों को न जानना या आपसी गलतफहमी है। यदि राष्ट्रों को एक दूसरे की भावनाओं, संस्कृति, विचारों, कला, विज्ञान, साहित्य को जानने का अवसर हो तो वैमनस्य स्वयं ही दूर होने लगें और सद्भाव बढ़े। इसी उद्देश्य से शान्तिरक्षा विश्वसमिति ने लेखकों, इंजीनियरों, डाक्टरों और वैज्ञानिकों के अन्तर्राष्ट्रीय परिषद नियंत्रित किये जाने की व्यवस्था की है और अन्तर्राष्ट्रीय रूप से विख्यात ऐसे महापुरुषों जो मानवता के विकास के लिए काम कर गये हैं, उनकी पुण्य तिथियों को भी अन्तर्राष्ट्रीय रूप से मनाने का प्रस्ताव किया है। इस विषय में सन्देह का अवसर नहीं कि राष्ट्रों में विचारों और ज्ञान के स्वतंत्र लेन-देन से विज्ञान के विकास में अधिक लाभ होगा। संसार में अभी तक कोई ऐसा आविष्कार नहीं हुआ जिसमें अनेक राष्ट्रों के वैज्ञानिकों का सहयोग न हुआ हो और यदि ऐसा सहयोग असम्भव होता तो शायद कोई भी आविष्कार आज की उन्नत अवस्था में न होता।

जब हम अपने समाज की अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति देखते हैं तो अनेक जगह युद्ध की आग को सुलगता और समाज को उसमें भस्म होता देखते हैं। इस आग के संसार भर में फैल जाने का आतंक हम पर छाया हुआ है। हमें याद आता है कि पिछले महायुद्ध के विनाश के अनुभव से राष्ट्रों ने २६ जून १९४५ को भविष्य में युद्ध से बचने के लिए सान्फ्रांसिस्को में 'राष्ट्रसंघ के घोषणा पत्र (यूनाइटिड नेशंस चार्टर)' पर हस्ताक्षर किये थे। इस घोषणा पत्र से सभी राष्ट्रों ने बहुत आशायें बाँधी थीं। पर वे आशायें पूरी नहीं हुईं। इस निराशा का कारण क्या है? राष्ट्रसंघ की असफलता और निर्बलता का एक बड़ा कारण क्या यह नहीं कि अनेक राष्ट्र राष्ट्रसंघ में सम्मिलित ही नहीं। सब राष्ट्रों के परस्पर सहयोग और आत्मनिर्णय के अधिकार से सब व्यवस्थाओं के शान्तिपूर्वक एक साथ रह सकने की आशा तब तक कैसे पूरी हो सकती है जब तक कि पैंतालीस करोड़ चीनी जनता को राष्ट्रसंघ में उचित प्रतिनिधित्व देने से इनकार किया जाये? चीन को राष्ट्रसंघ में प्रतिनिधित्व देने से इनकार का कारण यह बताया जाता है कि उन्होंने राष्ट्रसंघ की

स्थापना के पश्चात अपनी व्यवस्था में परिवर्तन कर लिया है लेकिन यह परिवर्तन तो चीन की जनता ने अपनी इच्छा से, आत्मनिर्णय के अधिकार से किया है। चीनी जनता ने उस अन्यायपूर्ण और अनैतिक व्यवस्था को बदल डाला है जिसे दूसरे राष्ट्रों की बड़ी से बड़ी सैनिक सहायता भी बचा नहीं सकी। हमें अमरीका के वैदेशिक प्रतिनिधि मि० जान फोस्टर डल्स की २५ जून १९५२ की घोषणा भुला नहीं देनी चाहिए। उन्होंने अमरीका की ओर से बहुत ही मार्के की बात कही थी कि राष्ट्रसंघ संसार के सभी राष्ट्रों द्वारा सहमत दो मुख्य सिद्धान्तों पर कायम है : एक तो यह कि सभी राष्ट्रों को दूसरे राष्ट्रों की जनता के मत का आदर करना चाहिए और दूसरी बात की वास्तविक सुरक्षा सब राष्ट्रों की सम्मिलित सुरक्षा से ही सम्भव है। आज चीन को राष्ट्रसंघ में स्थान न देने का अर्थ है कि या तो अमरीका अब अपनी इस घोषणा में विश्वास ही नहीं करता और करता है तो चीन की जनता के मत का आदर करने से पहले वह युद्ध द्वारा चीन में चांगकाई शेक की व्यवस्था को फिर स्थापित कर देना चाहता है।

वर्तमान अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति में हमें भारतीय पार्लमेंट में पं० नेहरू द्वारा १२ जून १९५२ को दी गई चेतावनी को भी याद रखना चाहिए कि बहुत से राष्ट्र यह समझने लगे हैं कि विश्वशान्ति की रक्षा के लिए जिस राष्ट्रसंघ की स्थापना की गई थी वह वास्तव में युद्ध की तैयारियों का ही साधन बन रहा है। हमें पूरा भरोसा है कि यदि राष्ट्रसंघ अपनी घोषणाओं के अनुसार चले, यदि शान्ति के उद्देश्य में सहयोग देने के लिए तैयार सभी राष्ट्रों को संघ में उचित स्थान हो, यदि संसार का जनमत पर्याप्त रूप से सशक्त हो सके तो राष्ट्र संघ को शान्ति के उद्देश्य में पूरी सफलता हो सकेगी इसलिए आवश्यकता है कि संसार की शान्ति चाहने वाली जनता अपनी शक्ति से संसार के पाँचों बड़े राष्ट्रों से इस बात की जोरदार माँग करे कि वे मिलकर विचार विनिमय द्वारा ऐसी व्यवस्था करें कि समस्याओं के निपटारे में युद्ध का अवसर न रहकर केवल समझौते के साधन का ही उपयोग हो!

मेरे विचार में तीन मूल प्रश्नों पर विचार किया जाना उचित है—(१) सभी राष्ट्रों को पूर्ण आत्मनिर्णय की स्वतंत्रता और उनकी सुरक्षा, (२) वर्तमान में चालू युद्धों को समाप्त करने का यत्न और (३) अन्तर्राष्ट्रीय तनाव को मिटाने की चेष्टा। सम्भव है कुछ लोगों की राय में यह तीन बातें केवल आधारभूत सिद्धान्त ही जान पड़े और वे शान्ति अथवा युद्धों को रोकने के लिए ठोस और सामयिक समस्याओं पर विचार करना चाहें परन्तु मेरा विचार है कि हमें मूल आधार से ही चलना चाहिए। मूल आधारों में ही सामयिक समस्याओं का हल खोजा जाना चाहिए। सबसे महत्त्वपूर्ण बात पाँच महान राष्ट्रों को पारस्परिक समझौते के विचार से एक जगह एकत्र कर सकना ही है। यह उचित न होगा कि हम स्वयं ही कोई सुझाव उन पर लाद दें। सुझाव स्वयं उनके प्रयत्नों से उत्पन्न होने चाहिए। हम तो मनुष्य मात्र की शान्ति की इच्छा ही उनके सामने रखना चाहते हैं।

हम जानते हैं कि भावी युद्ध के रूप में मानवता के सर्वनाश की घटा हमारे सिरों पर उमड़ी आ रही है परन्तु इस आतंक से हम निर्बल और साहसहीन नहीं हो जायेंगे बल्कि इस आतंक की चेतना से हमारे आत्मरक्षा के निश्चय और प्रयत्न और भी दृढ़ होंगे। हम केवल मिथ्या प्रचार द्वारा मनुष्यों में वैमनस्य और घृणा बढाने का ही विरोध करते हैं। मेरा अनुरोध है कि शान्ति रक्षा के अपने दृढ़ विश्वास और निश्चय को लेकर जब हम अपने देशों को लौटें तो हमारा काम दूसरे राष्ट्रों के सम्बन्ध में गलतफहमियों को दूर करना और सद्भावनाओं को बढ़ाना होना चाहिए। गलतफहमी का अंधकार वैमनस्य और घृणा को बढ़ाता है सच्चाई के प्रकाश से भाईचारे और सद्भावना को प्रोत्साहन मिलता है।

प्रो० क्यूरी दुबले-पतले, गाल धंसे हुए व्यक्ति हैं। उनकी गम्भीर चुप सी मुद्रा से ही जान पड़ता है कि वे अपनी प्रयोगशाला में बैठे विज्ञान के गूढ़ तत्त्वों की खोज में डूबे रहते होंगे लेकिन विज्ञान का लक्ष्य तो मानव समाज का कल्याण है। वे विज्ञान में डूबे रहकर उसके लक्ष्य को कैसे भूल जाय जब विज्ञान के लक्ष्य को भुलाकर उसे मानवता के नाश के लिए उपयोग में लाया जा रहा हो तो वैज्ञानिक विज्ञान की शक्ति बढ़ा सकने के लिए ही चुपचाप प्रयोगशाला में कैसे बैठा रहे? उसकी सफलतायें उसे हत्यारा बनाये दे रही हैं। प्रो० क्यूरी का भाषण समाप्त होते ही कान्फ्रेंस का बडा हाल तालियों से गूँज उठा। मानवता के प्रति उनकी सद्भावना और उनके व्यक्तित्व के प्रति आदर के लिए लोग खड़े होकर बहुत देर तक तालियों से उनका अभिवादन करते रहे। उत्साह में तालियाँ ताल से बजने लगी। इसके बाद भारतीय प्रतिनिधि मंडल के नेता डाक्टर सैफुद्दीन किचलू को भाषण के लिए पुकारा गया। भारतीय प्रतिनिधि मंडल के नेता को इस कांग्रेस में प्रधान के पश्चात् बोलने का अवसर दिये जाने से यह स्पष्ट हो जाता है कि शान्ति चाहने वाली जनता अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में भारत का स्थान कितना महत्त्वपूर्ण समझती है।

डा० किचलू ने अपना भाषण अंग्रेजी में ही पढ़ा :—भारतीय प्रतिनिधि मंडल की ओर से मैं विश्व शान्ति कांग्रेस का प्रेम अभिवादन करता हूँ और विश्वास दिलाता हूँ कि संसार में शान्ति, अन्तर्राष्ट्रीय भ्रातृभाव और सद्भाव को बढ़ाने के लिए हमारा देश पूरा सहयोग देगा। हमें इस बात का गर्व है कि हमारे प्रतिनिधि मंडल में देश के सभी राजनैतिक दलों—सरकार चलाने वाली कांग्रेस पार्टी, गाँधीवादी दल, विरोधी दल, कम्युनिस्ट पार्टी और प्रजापार्टी, फारवर्ड ब्लाक, किसान-मजदूर पार्टी आदि के प्रतिनिधि मौजूद है। अनेक बातों पर मतभेद होने पर हम सब शान्ति के महत्त्व और स्थापना के लिए उचित प्रयत्नों में आपके साथ भी एक मत होंगे। हमारे मंडल में समाज के भिन्न-भिन्न क्षेत्रों से सम्पर्क रखने वाले स्त्री-पुरुष वकील, व्यापारी, अध्यापक, लेखक, कलाकार, पत्रकार, विधान सभा के सदस्य सभी तरह के लोग है। हम सभी यहाँ शान्ति के उद्देश्य से अनुप्राणित होकर आये हैं।

हमारे देश की जनता कोरिया में चलने वाले युद्ध और उसके कारण अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में युद्ध की चढ़ती आती घटाओं से विक्षिप्त है और हमारा विश्वास है कि संसार में

ऐसा कोई भी व्यक्ति नहीं हो सकता जो कोरिया में होने वाले स्त्री-पुरुषों और बच्चों की लगातार हत्या से दुखी न हो। हमारे देश के सर्वसाधारण नागरिक और ग्रामों के किसान जब एटमबम और युद्ध में रोग फैलाकर जनता के संहार की बातें सुनते हैं तो संसार के सर्वनाश के आतंक से घबरा उठते हैं। उन्हें आशंका होती है कि यदि सर्वनाश की इस बाढ़ को रोका न जायेगा तो वे भी इसमें भस्म हुए बिना न रह सकेंगे। हम लोग बीमारी और महामारी के प्रभाव से परिचित हैं और विश्वास करते हैं कि मनुष्य अपने पूरे सामर्थ्य से इनसे बचने का यत्न करता है। जब हम देखते हैं कि कोरिया में मनुष्य विज्ञान की सहायता से दूसरे मनुष्यों में बीमारियाँ फैला रहा है तो मनुष्यता के नाश के भय से हमारे रोंगटे खड़े हो जाते हैं।

जो लोग दूसरे देशों पर अधिकार करने के लिए सैनिक और शस्त्र शक्ति का उपयोग करते हैं, उन्हें हमारे देश की जनता मानवता का शत्रु समझती है। ऐसे उद्देश्य से किये जाने वाले किसी भी युद्ध में सहायता के लिए हम अपने देश के जनबल और अपने देश की भूमि का प्रयोग न होने देंगे। हम लोग सभी देशों के लिए समता और आत्मनिर्णय के अधिकार के आधार पर भ्रातृभाव में विश्वास करते हैं। आज इस कांग्रेस में शान्ति की समस्या पर विचार के लिए मलाया, केनिया और ब्रिटेन के लोगों का अमेरिका और कोरिया के लोगों का एक साथ सम्मिलित होना और फ्रांस के प्रतिनिधियों द्वारा ट्यूनीशिया, मोरोक्को और फ्रेंच-अफ्रीका की स्वतंत्रता का प्रश्न उठाना संसार के भविष्य के लिए आशा और इस कांग्रेस के लिए गर्व की बात है। यदि हम इस कांग्रेस में कोरिया का युद्ध समाप्त करने के लिए कोई सर्वसम्मत सुझाव खोज सकें तो यह बहुत बड़ी और शायद साधारण कल्पना की पहुँच से दूर की सफलता होगी परन्तु शान्ति के लिए आप लोगों के दृढ़ निश्चय से यह सम्भव होना चाहिए। आपकी शक्ति जनता की शक्ति है। जनता की इच्छा और शक्ति से बड़ी कोई शक्ति नहीं। जनता की इच्छा और शक्ति से युद्धों को अवश्य रोका जा सकता है और इस काम को करना आवश्यक है क्योंकि इसके बिना मानवता की रक्षा सम्भव नहीं। हमारी शुभ कामना है कि यह कांग्रेस शान्तिरक्षा के अपने उद्देश्य में सफल हो।

कांग्रेस में संसार प्रसिद्ध फ्रेंच लेखक जीन पाल सार्त्र (Jean-Paul Sartre) की उपस्थिति की ओर सभी का ध्यान था। सार्त्र साहित्य में समष्टिवादी या समाजवादी विचारधारा के प्रतिकूल व्यक्तिवादी विचारधारा के प्रतीक माने जाते हैं। कम्युनिस्ट साहित्यिक आलोचकों ने उनकी प्रायः कटु आलोचनायें की हैं। सार्त्र भी अपने कम्युनिस्ट विरोध के लिये बहुत प्रसिद्ध हैं। इस कांग्रेस को कम्युनिस्टों का अखाड़ा समझने और इसका विरोध करने वाले लोगों ने वियाना में ठीक कांग्रेस के समय उनके एक कम्युनिस्ट विरोधी नाटक की योजना की थी। यह भी सुना कि सार्त्र कांग्रेस में स्वयं सहयोग देने आ रहे थे इसलिये वे इस नाटक को स्थगित करवा देना चाहते थे। संभव है, उन्हें शान्ति कांग्रेस में आने वाले कम्युनिस्टों की भावनाओं का खयाल रहा हो। कांग्रेस के अवसर पर जब शान्ति के लिये सभी के सहयोग का वातावरण होना चाहिये था, वे आपसी विरोध

की बात को सामने न लाना चाहते हों। लेकिन नाटक के प्रबन्धकर्ताओं ने नाटक को स्थगित करने की बात न मानी। वियाना के पत्रों में इस विषय में खूब चर्चा चल रही थी। सार्त्र के नाटक स्थगित करने के अनुरोध पर नाटक के प्रबन्धकर्ताओं ने आपत्ति की कि इससे उन्हें कई हजार पौण्ड की हानि हो जायेगी। सार्त्र आधा हर्जाना देने के लिये भी तैयार हो गये पर नाटक के प्रबन्धकर्ता माने नहीं। उन्हें उत्साहित करने वाले लोग भी मौजूद थे। सार्त्र ने खिन्न होकर अदालती कार्रवाई करने की भी धमकी दी। यह नाटक वियाना के अमरीकन भाग में हो रहा था। सार्त्र कुछ कर न सके। ऐसी अवस्था में नाटक हुआ ही। जनता सार्त्र की बात सुनने के लिये कौतूहल से उत्सुक थी।

सार्त्र जरा नाटे, दोहरे कद के कुछ संकोचशील से, हल्का पतला सा चश्मा लगाये व्यक्ति हैं। भाषण उनका भी लिखा हुआ था। उन्होंने फ्रेंच में पढ़ा और हम लोगों ने हैडफोन कान पर लगाकर अंग्रेजी में सुना :—'यहाँ बोलने के लिये अवसर देकर आपने मेरा आदर किया है। उसके लिये आभारी हूँ। मैं किसी के प्रतिनिधि के तौर पर नहीं, अपनी ही ओर से बोल रहा हूँ। मैं अपनी बात इसलिये कह रहा हूँ कि मेरी ही तरह के और भी दूसरे लोग जो यहाँ व्यक्तिगत स्थिति में ही मौजूद हैं, मेरी बातों से अपने विचारों के लिये आश्वासन पा सकें।'

'आधुनिक राजनीति और विचारधारा में कोई तत्त्व नहीं रह गया है इसलिये वे हमें संहार की ओर ले जा रही हैं। ऐसी अवस्था में अपने से सहमत न होने वाले लोगों की बात समझने का यत्न नहीं किया जाता उनका विश्वास नहीं किया जाता। विरोध को ही लक्ष्य मानकर हम परस्पर-विरोध करने लगते हैं। ऐसी अवस्था में पागलपन फैल जाता है। हम सोचने लगते हैं कि यदि हम शान्ति चाहते हैं तो हमें युद्ध के लिये तैयार रहना चाहिये। यह ढंग कितना अवास्तविक और तत्त्वहीन है। आज फ्रांस में या किसी भी देश में देखिये, आपको मनुष्य नहीं, दलों और पार्टियों के सदस्य ही दिखाई देंगे।'

'यह कांग्रेस शान्ति के लिये सबसे बड़ा काम यह कर रही है कि यहाँ मनुष्य आपस में मिल रहे हैं। यह राजनीति में चतुर वक्ताओं और शासकों का जमघट नहीं है बल्कि भिन्न-भिन्न जातियों और राष्ट्रों—फ्रांस, जर्मनी, चीन, ब्रिटेन, अमरीका, जापान और रूस के लोगों का सम्मेलन है। यह लोग भिन्न-भिन्न राष्ट्रों से आये हैं परन्तु वे भिन्न-भिन्न राष्ट्रों के मनुष्य हैं। उनमें अपने राष्ट्रीय जीवन की विशेषतायें जरूर हैं परन्तु उन विशेषताओं को अपनाये हुए वे भी हैं मनुष्य ही जो शान्ति रक्षा के लक्ष्य पर सहमत हैं। युद्ध के वातावरण में राष्ट्रों की मनुष्यता डूब जाती है केवल राष्ट्रीयता ही उँभर आती है और एक राष्ट्र के लोग दूसरे राष्ट्र के लोगों को शिकार का जानवर मान लेते हैं। हमारी स्थिति में तत्त्व का अभाव यदि हमें संहार की ओर ले जाता है तो तत्त्व की अनुभूति रक्षा और विकास की ओर अवश्य ले जायेगी। मानवता का तत्त्व ही मनुष्यों को परस्पर मिलाता है। यदि हम मानवता के इस तत्त्व को समझ सकें तो हम यह भी समझ लेंगे कि राष्ट्रों के आपसी युद्ध कितनी बड़ी मूर्खता है।'

'यहाँ हम लोग कोई नई सत्ता खड़ी कर देने और राष्ट्रों को आज्ञायें देने के लिये इकट्ठे नहीं हुए हैं लेकिन यह भी सच है कि सभी राष्ट्रों की सत्ता वास्तव में राष्ट्रों की जनता या शासित लोगों पर ही निर्भर करती है। हम लोग यहाँ शान्ति के लिये अन्तर्राष्ट्रीय जनता के एक मत होने का आधार ढूँढ़ने के लिये इकट्ठे हुए हैं। यहाँ से लौटकर जब हम अपनी शान्ति की कामना प्रकट करेंगे तो वह हमारे राष्ट्र की जनता की और साथ ही अन्तर्राष्ट्रीय जनता की भी इच्छा होगी। उसी समय यह देखा जायेगा कि राष्ट्रों की सरकारें जनता को निर्देश देती हैं या जनता अपने-अपने राष्ट्रों को। यह ठीक है कि हम राजदूतों का स्थान नहीं ले बैठे हैं परन्तु भविष्य में राजदूतों को जनता की इच्छानुसार ही चलना होगा। हमें अपनी-अपनी राष्ट्रीय सरकारों को समझाना पड़ेगा कि जब आप राजनीतिक पैंतरेबाजी से समस्याओं को सुलझाने का यत्न कर रहे हैं तो जनता ने आपसी विश्वास से सुलझाव खोज निकाला है और सबसे सरल और सफल राजनीति विश्वास की नीति है। यदि संयुक्त राष्ट्र संघ (U. N. O.) में अब भी ऐसे लोग हैं जो हमें समझाना चाहते हैं कि नैतिकता की रक्षा और अनैतिकता को दबाने के लिये तीसरे युद्ध की आवश्यकता है तो हमें अपने देशों में लौटकर उन्हें बताना होगा कि हम दूसरे राष्ट्रों के लोगों से मिलकर, उन्हें पहचान और समझ आये हैं और संसार की जनता इस बात में सहमत है कि आपसी संहार और युद्ध ही सबसे बड़ी अनैतिकता है और आपसी विश्वास द्वारा शान्ति और सहयोग ही सबसे बड़ी नैतिकता है।'

'सभी अवस्थाओं में युद्ध के विरोध को ही शान्ति के लिये प्रयत्न का साधारण नियम नहीं मान लिया जा सकता। हम आततायी द्वारा शस्त्रों की शक्ति से कायम की गई मरघट की शान्ति का समर्थन नहीं कर सकेंगे; जैसे कि हिटलर द्वारा फ्रांस पर अधिकार जमा लेने पर कुछ फ्रांसीसी इसीलिये हिटलर का विरोध करना अनुचित समझ रहे थे कि हिटलर ने फ्रांस में जर्मन राज की शान्ति तो स्थापित कर ही दी है। हम आतंक की शान्ति नहीं चाहते। ब्रिटेन द्वारा नये एटमबम का सफल परीक्षण करने पर कुछ प्रतिक्रियावादी पत्र पुकार उठे थे कि एक और बम की सफलता हमें शान्ति की आशा दिला रही है। हमें एटमबम के आतंक और दमन के नीचे सिर झुकाकर शान्ति स्वीकार नहीं। आज हमारे बीच ऐसे भी लोग उपस्थित हैं जो बरसों से अपनी स्वतंत्रता के लिये लड़ रहे हैं। हमें सचेत रहना चाहिये कि आज की परिस्थितियों में युद्ध और शान्ति दोनों के लिये सम्भावना है। शान्ति की रक्षा हो सकती है यदि हम उसके लिये उचित और आवश्यक प्रयत्न कर सकें। शान्ति केवल युद्ध के प्रयत्नों से असहयोग करके ही नहीं सुरक्षित रह सकती। इसके लिये युद्ध आरम्भ करने वाली परिस्थितियों का अन्तर्राष्ट्रीय रूप से विरोध आवश्यक है। आज संसार की जनता अपने प्रतिनिधियों के रूप में यहाँ उपस्थित है। यह केवल इसीलिये कि यहाँ शान्ति की बात हो रही है। यही शान्ति के लिये पहला कदम है।'

'संसार के समाजवादी और पूँजीवादी देशों में युद्ध आवश्यक क्यों समझा जा रहा है? क्या यह मान लिया जाय कि दोनों प्रणालियों का एक दूसरे में दखल दिये बिना

अपने-अपने स्थानों और क्षेत्रों में चल सकना असम्भव है? या कोई भी प्रणाली दूसरी प्रणाली को नष्ट करके ही जीवित रह सकती है? ऐसा तो कोई नहीं कहता। समाजवादी देशों के प्रतिनिधि तो डंके की चोट पर कह रहे हैं कि वे शान्ति चाहते हैं और दोनों प्रणालियाँ अपनी-अपनी जगह रह सकती हैं। युद्ध की तैयारी से युद्ध को रोकने की बात कहने वाले, शस्त्रीकरण की होड़ चलाने वाले और एटमबम की धमकी देने वालों का क्या कहना है? क्या उनका दूसरे देशों पर आर्थिक दबाव न्याय संगत है।'

'वास्तविकता से इन्कार करने से क्या लाभ? आज चीन की पूरी जनता अपनी सरकार को स्वीकार कर रही है। यह सरकार चीन की आर्थिक स्थिति को चला रही है और एक जबरदस्त सैनिक शक्ति है। इस सरकार का अपना क्षेत्र चीन के भीतर है और वह चीन की जनता का मामला है। उसे संयुक्त राष्ट्रसंघ स्वीकार नहीं कर रहा। उसकी दृष्टि में चीन की वास्तविक सरकार वे मुट्ठी भर आदमी हैं जो वाशिंगटन या फार्मोसा में पड़े है। यह अपने आपको धोखा देना है। यह भी आत्म-प्रवंचना ही है कि फ्रांस की सरकार वियतनाम में बाओदाई की सरकार को जबरदस्ती बनाये है जिसे वियतनाम में कोई नहीं चाहता और होचीमिन को स्वीकार करने के लिये तैयार नहीं।'

सार्त्र की इस स्पष्टवादिता पर हाल तालियों से गूँज उठा—'यदि हम इस प्रकार की अवास्तविकताओं का ही समर्थन करना चाहेंगे तो हमें युद्ध और दमन का सहारा लेना ही पड़ेगा। इसी प्रकार जर्मनी के टुकड़े बनाये रखना न तो जर्मन जनता के लिये सह्य है और न फ्रांस के लिये सुरक्षा का कारण। जब जर्मनी और फ्रांस की जनता अपने हितों को एक समझकर इस अन्याय का विरोध करेगी तभी दोनों देशों की जनता की वास्तविक एकता और शान्ति की नींव कायम हो सकेगी।'

'जब हम यह कहते हैं कि समाजवादी और पूँजीवादी प्रणालियों को अपने-अपने क्षेत्रों में रह सकना चाहिये तो यह अभिप्राय नहीं होता कि संसार के दो गुट बना दिये जायं और उनमें तनाव कायम रहे। दोनों के एक साथ बने रहने का अर्थ विरोध और तनाव नहीं होता। विरोध और तनाव के परिणाम से युद्ध हो जाता है। इस प्रकार की गुटबन्दी का परिणाम एशिया और अफ्रीका में क्या हो रहा है? यह तो एशिया और अफ्रीका के ही प्रतिनिधि बता सकेंगे। योरुप के विषय में कह सकता हूँ कि यहाँ के देशों की आर्थिक व्यवस्था दिन-दिन अमरीका की मोहताज होती जा रही है। इसकी प्रतिक्रिया में सर्वसाधारण गरीब और मजदूर जनता सोवियत और पूर्वी जनतंत्रों से सहायता की आशा करने लगी है। यह गुटबन्दी न केवल अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र का ही प्रश्न है बल्कि स्वयं राष्ट्रों की अपनी सीमाओं में भी। यदि हम दोनों विचारधाराओं में से एक दूसरे को मिटा देने की प्रतिद्वन्द्विता और तनाव की बात दूर कर सकें तो यह देश दो संस्कृतियों और विचारधाराओं के उपयोगी प्रभावों का समन्वय क्षेत्र बन सकते हैं जो मानव समाज के कल्याण का कारण होगा। परन्तु इसके लिये यह आवश्यक है कि पश्चिमी योरुप के देशों को अटलांटिक सन्धि के अमरीकी आर्थिक दबाव से मुक्त कर केवल अमरीकी सिपाही न बनाकर आत्मनिर्णय का अवसर दिया जाय और पूर्वी-पश्चिमी योरुप के स्वाभाविक

व्यापारिक सम्बन्ध फिर से कायम किये जायें। यह कांग्रेस राष्ट्रों की सरकारों को अनिवार्य आज्ञायें तो नहीं दे सकती परन्तु जनमत के बल पर युद्ध न होने देने का निश्चय जरूर कर सकती है और राष्ट्रीय सरकारों को जनमत की दिशा दिखा सकती है।'

'हममें से कुछ लोग यहाँ अपनी पार्टियों के प्रतिनिधियों के रूप में आये हैं और कुछ लोग केवल अपनी व्यक्तिगत स्थिति में ही परन्तु यहाँ से अपने देशों को लौटाने के बाद हम सभी लोग इस विश्वजन कांग्रेस के प्रतिनिधि होकर लौटें। हमें भरोसा करना चाहिये कि यह कांग्रेस कुछ क्रियात्मक सुझावों को रूप दे सकेगी और देशों की सरकारें भी कांग्रेस के निर्णय की अवहेलना न कर सकेंगी। यह भरोसा रखते हुए भी हमें यह नहीं भूल जाना चाहिये कि अभी तक हम अपने-अपने देशों में भी प्रबल बहुमत को अपने साथ नहीं कर सके हैं। सभी देशों में ऐसे बहुत से लोग हैं जो शान्ति चाहते हैं परन्तु हमारे साथ नहीं हैं क्योंकि उन्हें यह भ्रम है कि यह कांग्रेस केवल एक राजनैतिक मोर्चा ही है। यह भ्रम दूर कर देना आवश्यक है क्योंकि भ्रम ही आपसी भय और वैमनस्य और युद्ध की जड़ है। इस कांग्रेस का पहला लक्ष्य यही होना चाहिये कि हम अपने शान्ति के उद्देश्य को इतने स्पष्ट रूप में प्रकट कर सकें कि जो शान्ति प्रेमी लोग आज इस कांग्रेस में नहीं आये हैं वे एक प्रकार का पश्चाताप अनुभव करें कि शान्ति की इच्छा होते हुए भी वे शान्ति के प्रयत्न में क्यों सम्मिलित नहीं हो सके। ऐसे लोगों के हृदय का बहाव जनता को दो भागों में बाँटे रखने वाली खाई को भर देगा। प्रत्येक देश में शान्ति के लिये जनता की एकता संसार भर की जनता की एकता का निर्णय करेगी और हमारा आज का अल्पमत जनता का प्रबल बहुमत बनाकर अपने लक्ष्य को प्राप्त कर सकेगा।' हाल की सम्पूर्ण जनता सार्त्र के सन्देश के प्रति अभिवादन और समर्थन में खड़ी होकर बहुत देर तक तालियाँ बजाती रही।

कंजर्टहाज की ऊपर की मंजिल में सभा भवन के साथ ही एक बड़े से बंद बरामदे में बूफे (चाय-पानी की दुकान) का प्रबन्ध था। वियाना में विदेशियों द्वारा आर्थिक नियंत्रण होने के कारण आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं है। बाहर से आये प्रतिनिधि खान-पान के मामले में लुट न जायें इसके लिये भी कांग्रेस ने व्यवस्था कर दी थी। प्रतिनिधियों और अतिथियों को भोजन और चाय पानी के लिये उचित मूल्य पर टिकट दे दिये गये थे। भोजन वियाना के खूब शानदार रेस्टोरां 'कुरसालोन' और कुछ निश्चित रेस्टोरां में, जहाँ कांग्रेस ने प्रवन्ध कर रखा था, टिकट देकर किया जा सकता था। भोजन आतिथ्य की दृष्टि से बहुत ही अच्छा और पुरतकल्लुफ था। चाय पानी के टिकट कंजर्टहाज के बूफे में भी चल सकते थे। वियाना में जल तो भारतीयों के अतिरिक्त किसी दूसरे को पीते देखा नहीं। प्रति व्यक्ति को दिन भर के लिये चार टिकट मिलते थे। यहाँ भी स्विटजरलैण्ड की तरह चाय-काफी बहुत महंगी और बियर तथा वाइन ही सस्ती थी। एक टिकट में छोटा गिलास सोडा मिल सकता था। दो टिकटों में बियर का एक बड़ा गिलास या छोटा गिलास वाइन का मिलता। काफी या चाय के छोटे प्याले के लिये तीन टिकट देने होते थे। चाय या काफी ही पीने वाले भारतीय साथियों का एक टिकट व्यर्थ हो जाता था इसलिये दूसरी

चीजों का उपयोग कर सकने वाले साथी इन बचे हुए टिकटों को व्यय करने में सहायता देते रहते थे।

यह बूफे कांग्रेस की 'टीका (Brief)' था। हर समय खचाखच भरा रहता। लगभग सवा सौ आदमियों के बैठने की जगह थी और उतने ही आदमी खड़े भी रहते। कांग्रेस भवन में तो गम्भीर या भावपूर्ण व्याख्यान होते रहते और वहाँ उन व्याख्यानों पर खुलकर विचार-विनिमय और टीका-टिप्पणी चलती। भिन्न-भिन्न देशों में चलने वाले शान्ति आन्दोलनों के विषय में बातचीत या सम्भव और उचित कार्यक्रम के विषय में तर्क होता। बूफे में इलियांस एहरनबर्ग, डीन आफकेंटरबरी, जेरुसलम के मुफ्ती, लुई आरागों, सार्त्र, पश्चिम जर्मनी और इटली से बिना पासपोर्ट आये उत्साही कार्यकर्ता और ब्रिटेन की खानों के मजदूर आपस में निस्संकोच मिलते। एक दूसरे से हस्ताक्षर लेने और अपने-अपने देश के शान्ति के बिल्ले बदलने की रस्म चलती रहती। कुछ लोग तो तरह-तरह के दस-दस बारह-बारह बिल्ले टांके फिरते। दो, तीन तो साधारण बात थी। यही हाल हस्ताक्षर इकट्ठे करने का था। सम्भव है, कुछ लोगों ने दो अढ़ाई हजार हस्ताक्षर इकट्ठे कर लिये हों। हस्ताक्षर इकट्ठे करने और फोटो लिये जाने में साड़ी और दाढ़ी की ओर आकर्षण अधिक था। कुछ प्रसिद्ध लोगों के हस्ताक्षरों की तो माँग अधिक थी ही पर भारतीयों, चीनियों, जापानियों और अफ्रीका के लोगों के हस्ताक्षर ले ही लिये जाते शायद इसीलिये कि ऐसी शक्लें वियना में पहले कभी देखी नहीं गई थीं। कई लोग तो यह भूल जाते कि हमारे हस्ताक्षर वे ले चुके हैं और दुबारा अपनी कापी सामने रख हस्ताक्षर के लिये मुँह ताकने लगते। उन्हें यह समझाना कठिन हो जाता कि एक बार हस्ताक्षर तो ले चुके हों क्योंकि उस जमघट में कई भाषायें चलती थी और बहुत से लोग अपनी ही भाषा जानते थे। संकेतों या दुभाषियों की सहायता से ही काम चलता था। एक दूसरे की भाषा न जानने और समझने पर भी इस विश्वास से कि एक ही उद्देश्य से पृथ्वी के कोने-कोने से हम सब लोग यहाँ इकट्ठे हुए हैं, एक दूसरे को देखते ही अभिवादन और आत्मीयता की मुस्कान चेहरों पर आ जाती। जिन लोगो में जाति भेद जितना अधिक था, वहाँ आत्मीयता का प्रदर्शन और उद्गार भी उतना ही अधिक होता। दलजीत कौर के शान्ति के समर्थन में हस्ताक्षर कराने के लिये गाँव-गाँव फिरने की बात सुन सभी लोग बहुत आदर से उससे हाथ मिला उसके हस्ताक्षर लेते। रूसी, चीनी, जर्मनी, फ्रेंच और अंग्रेज तथा अमरीकन स्त्रियाँ उसे आलिंगन में बाँध लेतीं और कुछ तो चूमे विना न रहतीं।

उस समय कैरो में विमानों के अड्डे का जलपानगृह याद आ जाता जहाँ गोरे साम्राज्यवाद का प्रभाव इतना गहरा था कि काले चेहरे के बैरे भी गोरों के अतिरिक्त दूसरे लोगों की परवाह न करते थे। रंग को ही सौन्दर्य या बड़प्पन की कसौटी कैसे मान लिया जाय! शायद बरसों तक अंग्रेज की महिमा माने रहने के कारण हमने भारत में भी गोरे रंग की बहुत महिमा मान ली है, उसे ही रूप और सौंदर्य समझ लिया है। हमारे पत्रों में गोरे बन सकने की दवाइयों के विज्ञापन खूब छपते हैं। लोगों के साबुन मलमलकर गोरा

बन जाने की हास्यास्पद बातें भी सुनी हैं लेकिन यहाँ सब गोरे ही गोरे स्त्री-पुरुषों के समाज में, उन्हीं की भीड़ के ठेलमठेल में ऐसा नहीं जान पड़ा कि रूप ही बरस रहा हो बल्कि ऐसा ख्याल हुआ कि बिलकुल सफेद और काले की अपेक्षा बादामीपन या और कुछ गहरी झलक लिये त्वचा ही अधिक भली जंचती है, उसमें योरुपियनों के चेहरे पर दिखाई देने वाली झांई और चित्तियाँ सी नहीं झलक पातीं। इसीलिये योरुप में गोरा बनाने वाले साबुन के नहीं, बादामी झलक देने वाले पाउडर और दक्षिण योरुप के धूप के इलाकों की सैर के लिये, जहाँ चेहरा जरा भूरा हो जाय, विज्ञापन दिखाई देते हैं। खैर यहाँ सौंदर्य की मीमांसा का प्रसंग नहीं है; अभिप्राय यह है कि इस कांग्रेस के जमघट में चेहरे का गहरा रंग और जाति भेद तिरस्कार का नहीं, कुछ आकर्षण का ही कारण जान पड़ा क्योंकि यहाँ जातीय अहम्मन्यता का नहीं जातीय समता और सद्भावना का वातावरण था जो अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति के लिये पहली शर्त है और उसका परिणाम भी होगा।

वियाना में बरफ पड रही थी। सूर्य तो कभी-कभी कुछ ही देर के लिये दिखाई दे जाता। हवा चलने से सड़क पर बहुत सर्दी मालूम होती लेकिन होटलों के कमरे, कंजर्टहाज, बूफे और कुरसालोन में सर्दी जरा भी मालूम न होती। बल्कि कुरसालोन मे और बूफे में तो भीड़ अधिक हो जाने पर गरमी के मारे दम सा घुटने लगता। यह गरमी भी हम लोगों को ही अधिक मालूम होती थी, योरुपियनो को नहीं। या कुछ हद तक अग्रेज भी गरमी की शिकायत करते थे। इस गरमी का कारण कमरों को भाप और गरम पानी के नलो से गरम रखने का तरीका है। इंगलैण्ड में कमरों को इस तरह गरम करने का तरीका नहीं है केवल योरुप, अमरीका और रूस मे ही है।

बूफे में अग्रेज नाटक लेखिका मिस बरेल से बातचीत हुई। वे और पर्जिटा कांग्रेस में प्रतिनिधि बनकर नहीं दर्शक (observer) की ही स्थिति में आई थीं। इंगलैण्ड के अधिकांश लेखकों को शान्ति के लक्ष्य से सहानुभूति होने पर भी सन्देह था कि यह कांग्रेस कम्युनिस्ट लोगों का अन्तर्राष्ट्रीय राजनैतिक मोर्चा ही है इसलिये उन्होंने अपनी ओर से कोई प्रतिनिधि न भेज स्थिति की परख के लिये दो दर्शको, मिस बरेल और मिस पार्जिटा को भेजा था। मिस बरेल गम्भीर प्रकृति और विचारशील हैं। जूलियो क्यूरी और सार्त्र के भाषण के सम्बन्ध में बातचीत में उन्होने कहा—'किसी देश या समाज द्वारा दूसरे देश या समाज पर आक्रमण या दबाव डाला जाना निश्चय ही बुरा है परन्तु विचारों का आक्रमण (ideological aggression) भी तो शान्ति भंग का कारण हो सकता है। माना कि समाजवादी रूस या पूर्वी प्रजातन्त्र पश्चिमी देशों या पूँजीवादी व्यवस्था पर सेना और शस्त्रों से आक्रमण नहीं कर रहे; लेकिन यह लोग पूँजीवादी देशों में अपनी विचारधारा का प्रचार कर उन्हें अपने प्रभाव में लाने की कोशिश तो करते ही है। यह भी तो एक प्रकार का आक्रमण ही है। ऐसे आक्रमण से भी शान्ति भंग होती है। ऐसे आक्रमण के लिये भी तो निषेध होना चाहिये ?'

मिस बरेल के प्रश्न का तात्पर्य स्पष्ट ही था। उसका उत्तर न देना या टाल जाना अशान्ति अथवा राष्ट्रों में अविश्वास का कारण बने रहने देना होता इसलिये अपना विचार प्रकट किया—यदि तलवार के जोर से या दूसरे भौतिक दबाव से अपने विचारों और विश्वासों को दूसरों पर लादने का यत्न किया जाये तो यह निश्चय ही उनकी स्वतन्त्रता का अपहरण, अन्याय और आक्रमण होगा परन्तु किसी दबाव के बिना अपने विचारों का परिचय दूसरों को देना आक्रमण और अन्याय नहीं कहा जा सकता। यदि हम अपने विचार बदल जाने की आशंका से दूसरी विचारधाराओं का परिचय पाने से डरें तो इसमें हमारी अपनी ही हानि होगी। विचारों के विकास के लिये और विचारों की स्वतंत्रता के लिये भी भिन्न-भिन्न विचारधाराओं का परिचय और आपसी सम्पर्क उपयोगी ही होना चाहिये। विचारों की स्वतंत्रता का अर्थ ही यह है कि अनेक विचारधाराओं का परिचय पाने का और अपने अनुभव और तर्क के आधार पर विचारों को अपनाने का अवसर हो।

मिस बरेल ने विचारों की स्वतंत्रता और विकास के लिये भिन्न-भिन्न विचारधाराओं का सम्पर्क उपयोगी मानकर भी कहा कि राष्ट्रों और जातियों की अपनी-अपनी राष्ट्रीय संस्कृति, विचारधारा और व्यवस्था होती है। यह विचारधारा या व्यवस्था राष्ट्र की परम्परागत जातीय विशेषता भी होती है। अपनी राष्ट्रीय और जातीय भावना और अस्तित्व पर विदेशी प्रभाव नहीं सहा जा सकता। अपनी राष्ट्रीय भावना और संस्कृति पर ऐसा प्रभाव पड़ने भी न देना चाहिये। ऐसे विदेशी सांस्कृतिक प्रभाव को विचारों का आक्रमण ही कहा जायेगा। कम्युनिस्ट लोग ऐसा ही सांस्कृतिक आक्रमण अन्य समाजों पर कर रहे हैं। व्यक्तिगत स्वतंत्रता की विरोधी कम्युनिस्ट विचारधारा हम पश्चिमी लोगों की राष्ट्रीय परम्परा, भावना, सामाजिक संस्कारों और संस्कृति के विरुद्ध है। वह हमें सह्य नहीं हो सकती।

इस सम्बन्ध में मेरा विचार था :— जो विचारधारा हमें तर्कसंगत न मालूम होने के कारण ग्राह्य नहीं, उसे यदि हम पर जबरन लादा जाय तो हम विरोध करेंगे परन्तु राष्ट्रों और जातियों की संस्कृति, विचारधारा और व्यवस्था को भूमि के भागों या भौगोलिक परिस्थितियों की तरह एक दूसरे से भिन्न और अपरिवर्तनीय नहीं माना जा सकता। किसी भी जाति या राष्ट्र की संस्कृति, विचारधारा और व्यवस्था सदा एक सी ही नहीं रही। ज्यों-ज्यों हमारे जीवन के भौतिक साधन बदलते हैं, निर्वाह का ढंग भी बदल जाता है। हम बदले हुए ढंग के अनुकूल अपनी संस्कृति, विचारधारा और व्यवस्था को स्वयं ही बदल लेते हैं। उदाहरणतः हमारा देश अब तक कृषि-प्रधान है। उसके अनुकूल ही हमारी संस्कृति, दर्शन और सामन्ती शासन की व्यवस्था भी थी। खैर, एक समय तो सभी देश कृषि-प्रधान थे परन्तु वे पैदावार के साधनो का रूप बदल लेने के कारण अपने उद्योग धन्धों का विकास कर सके और उन्होंने अपनी शासन व्यवस्था को भी प्रजातंत्रवादी बना लिया। अब यदि हमारा देश औद्योगीकरण की बात सोचे और प्रजातन्त्र व्यवस्था को अपनाये तो क्या इसे हम पश्चिम के प्रभाव से अपनी राष्ट्रीय विचारधारा और संस्कृति

खो देना कहेंगे! और क्या यह उचित है कि हम औद्योगीकरण और प्रजातंत्रवाद को पश्चिम के विचारों का आक्रमण मान उसका विरोध करें।

नहीं ऐसे आवश्यक परिवर्तन को तो विकास ही कहा जायेगा—मिस बरेल ने मेरी बात का समर्थन किया और मैंने कहा—जीवन की औद्योगिक प्रणाली को अपनाने पर हमें इस प्रणाली की आनुसंगिक प्रजातंत्र शासन प्रणाली को भी अपनाना पड़ेगा। ऐसे ही इंगलैण्ड में भी—मैंने कुछ झिझक कर कहा—यदि मैं भूल नहीं कर रहा तो इंगलैण्ड में भी औद्योगिक प्रणाली आदि काल से ही नहीं चली आ रही और न वहाँ की प्रजातंत्रवादी व्यवस्था ही सृष्टि के आरम्भ से कायम है। वहाँ भी क्रामवेल के मैग्नाचार्टा से पहले एक-सत्तात्मक राज व्यवस्था ही थी। इंगलैण्ड के अनुभव से संसार के अनेक देशों ने प्रजातंत्र प्रणाली को अपनाया है। इंगलैण्ड ने भी दूसरे देशों में विकसित विचारधाराओं और व्यवस्थाओं के प्रभाव से अपनी विचारधारा और व्यवस्था उन्नत की है। उदाहरणत: ईसाइयत ने योरुप और इंगलैण्ड की संस्कृति के विकास में बहुत महत्त्वपूर्ण प्रभाव डाला होगा पर ईसाई मत तो योरुप और इंगलैण्ड में जेरूसलम से ही आया था। योरुप और इंगलैण्ड ने ईसाई मत स्वीकार किया परन्तु वे जेरूसलम के अधीन नहीं हो गये। क्या ईसाइयत को योरुप और इंगलैण्ड पर एशिया के विचारों का आक्रमण कहा जायेगा? अलबत्ता शस्त्रों के बल से कोई व्यवस्था दूसरों पर लादना अन्याय होगा जैसा कि नाजीवाद करना चाहता था।

परन्तु कम्युनिस्ट विचारधारा के पीछे तो रूस के शासन और शस्त्रों की शक्ति है, इस बात से कैसे इनकार किया जा सकता है। मिस बरेल ने पूछा—इसलिये कम्युनिस्ट विचारधारा शान्ति की समर्थक कैसे हो सकती है उससे तो अशान्ति की ही आशंका रहेगी।

यदि कम्युनिस्ट अपनी विचारधारा को रूस के शस्त्रों की शक्ति से हमारे देश पर लादना चाहें तो हम शायद विचारधारा की उपयोगिता की बात न सोचकर उसका विरोध ही करेंगे—मैंने कहा परन्तु प्रत्यक्ष अनुभव क्या है? आपके और हमारे देश में ही कम्युनिस्ट विचारों का प्रचार और समर्थन करने वाले लोग हैं। कम्युनिज़्म का प्रचार करने वाले रूस से नहीं आते, न वे लोग शस्त्रों का उपयोग करते हैं। कम्युनिस्ट और समाजवादी विचारों का जन्म भी रूस में नहीं हुआ। पहले इंगलैण्ड, फ्रांस में और बाद में जर्मनी में ही यह विचारधारा पनपी है। अलबत्ता रूस में उसका उपयोग सबसे पहले किया गया है। भारत में बहुत से लोग यह दावा करते हैं कि भारत में अपनी एक पुरानी समाजवादी विचारधारा मौजूद है, हमें रूस से कुछ लेने की आवश्यकता नहीं। मेरा विचार है जैसे पूँजीवादी प्रणाली को किसी एक देश की ठेकेदारी नहीं माना जा सकता, जैसे कि वह कहीं जल्दी और अधिक और कहीं कम, विकास कर सकी वैसे ही समाजवादी विचारधारा की भी बात है। समाजवाद आकाश से या केवल कुछ लोगों की इच्छा से ही नहीं पैदा हो गया है। वह तो पूँजीवाद से उत्पन्न समस्याओं का हल करने के

लिये पूँजीवाद से ही पैदा होता है। ग्रेट ब्रिटेन में यातायात के साधनों, फौलाद के धंधे और चिकित्सा की व्यवस्था का समाजीकरण कर दिया गया है। यह क्या ग्रेट ब्रिटेन ने रूस की धमकी से ऐसा किया है? यह परिवर्तन ग्रेट ब्रिटेन की पूँजीवादी व्यक्तिगत स्वतन्त्रता की व्यवस्था के विरुद्ध है परन्तु पूँजीवाद की व्यक्तिगत स्वतन्त्रता ने इन क्षेत्रों में जो कठिनाइयाँ पैदा कर दी थीं उन्हीं के उपाय के लिये ग्रेट ब्रिटेन ने यह परिवर्तन स्वयं किये हैं। जहाँ पूँजीवाद है और उसके अन्तरविरोध प्रकट हो रहे हैं वहाँ समाजवाद भी पैदा हो रहा है। रूसी समाज में पूँजीवादी अन्तरविरोधों के कारण फूटने वाले घावों की मरहम पट्टी करने लायक साधन नहीं थे इसलिये वहाँ पूँजीवाद अपने अन्तरविरोधों के कारण जल्दी ही गिरकर समाजवाद को स्थान दे गया। ग्रेट ब्रिटेन के पास बहुत बड़े साम्राज्य के रूप में पूँजीवाद की गति के लिये अधिक क्षेत्र रहा है। पूँजीवादी अन्तरविरोधों का उपाय करने के लिये उसके पास दूसरों की अपेक्षा साधन भी अधिक हैं और वह दूसरों के अनुभव से लाभ भी उठा रहा है। इसलिये पूँजीवादी व्यवस्था को सम्भाले है। ब्रिटेन में पूँजीवाद को खतरा बाहर से आने वाले विचारों से नहीं स्वयं अपनी व्यवस्था में पैदा हो जाने वाली अड़चनों से ही है। इन अड़चनों को वह यातायात के साधनों, कुछ अन्य धन्धों, चिकित्सा और सामाजिक बीमे का समाजीकरण कर समाजवादी ढंग से ही दूर भी कर रहा है। इन स्कीमों को पूँजीवादी व्यवस्था का अंग नहीं कहा जा सकता।''' ''

•

मिस बरेल ने कहा—यहाँ बड़ी गरमी है और प्यास मालूम हो रही है। एक मिनट बैठो—वे मेरा और अपना गिलास उठा काउण्टर की ओर और बियर लाने चली गईं। लौटकर उन्होंने कहा—अगर विचारों की स्वतन्त्रता और लेन-देन का सिद्धान्त मान लिया जाय तो ठीक है परन्तु समाजवादी देश क्या अपने यहाँ पूँजीवादी विचारधारा और दर्शन का प्रचार करने की स्वतन्त्रता देते हैं या देने के लिये तैयार हो जायेंगे?

बियर के लिये धन्यवाद दे मैने स्वीकार किया कि समाजवादी देशों में जाने का मुझे अभी तक अवसर नहीं मिला पर विश्वास है कि वहाँ पूँजीवादी विचारधारा के पक्ष में प्रचार की स्वतन्त्रता नहीं है। मान लीजिये नहीं है, पर यह प्रश्न कि किसी देश में किसी विचारधारा के प्रचार की स्वतन्त्रता है या नहीं, उस देश का अपना निजी प्रश्न है; या उस देश की जनता और शासक वर्ग के बीच की बात है। मैं अनुभव करता हूँ कि भारत में कम्युनिज्म के प्रचार की पूरी स्वतन्त्रता नहीं है परन्तु यदि रूस और चीन इस बहाने हमारे देश पर आक्रमण कर दें तो मैं उनके विरुद्ध जरूर लडूँगा। दूसरी ओर बहुत से भारतवासी कम्युनिज्म का प्रचार करना चाहते हैं इसलिये भारतीय सरकार रूस से बैर मान ले, यह भी बुद्धिमानी नहीं होगी। किस देश के लिये कौन व्यवस्था और प्रणाली उपयुक्त है, यह हमें उस देश की जनता पर ही छोड़ देना चाहिये। बात अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति में बाधक क्यों हो और इस बहाने कोई भी राष्ट्र किसी दूसरे देश में सैनिक दखलन्दाजी करे तो वह अन्तर्राष्ट्रीय अन्याय है।

उस दिन संध्या समय वियाना में शान्ति कांग्रेस की ओर से जुलूस निकाला जाने वाला था। मैं जुलूस में साथियों के साथ ही रहना चाहता था इसलिये हम लोग उठ खड़े हुए। वियाना नगर की सड़कों और गलियों से परिचय था नहीं। बरफ, सर्दी और हवा तेज थी। कांग्रेस ने आस्ट्रिया के पार्लियामेंट भवन के पास एक लम्बा-चौड़ा मंच दूसरे देशों से आये प्रतिनिधियों के लिये बना दिया था। हम लोग उसी ओर चले। मंच पर जगह तो मिल सकती थी परन्तु भीड़ अधिक थी इसलिये बहुत से लोग मुख्य सड़क से पार्लियामेंट भवन की ड्योढ़ी में चढ़ती वृत्ताकार सड़कों पर ही खड़े हो गये और कुछ इन सड़कों की मुंडेरों पर। पार्लियामेंट का भवन बहुत सुन्दर सलेटी रंग के पत्थर का बना हुआ है। यूं तो लखनऊ में विधान सभा का भवन और दिल्ली में पार्लियामेंट की इमारतें भी बहुत शानदार हैं परन्तु आस्ट्रिया की पार्लियामेंट का भवन पिछली शताब्दी की भवन निर्माण कला का बहुत ही सुन्दर नमूना है। सामने बनी मूर्तियों के समूह का तो कहना ही क्या। वियाना भर में सुन्दर मूर्तियों की भरमार है। नगर की वृक्षाच्छादित प्रशस्त सड़कों और सुन्दर विशाल भवनों की अपनी ही छटा है। सड़कें इतनी चौड़ी हैं कि दोनों ओर दो-दो पैदल रास्तों के दोनों ओर वृक्ष लगे हैं और फिर सड़क के बीचोबीच भी वृक्ष हैं। पार्लियामेंट के सामने यूनानी पौराणिक कथाओं की न्याय की देवी की विशाल मूर्ति खड़ी है परन्तु वह न्याय कैसा था। जिसकी घोषणा करने के लिये यह मूर्ति खड़ी हो गई थी। वह न्याय पूरे मध्य और पूर्वी योरुप को आस्ट्रिया के सम्राटों के आगे सिर झुकाने के लिये विवश कर आस्ट्रिया को योरुप के वैभव और भोग विलास का केन्द्र बनाये था।

१३ दिसम्बर कांग्रेस की दूसरी बैठक प्रायः दस बजे के बाद ही आरम्भ हुई। प्रधानमंडल की ओर से बेल्जियम की पार्लियामेंट की सदस्या मादाम ईसाबेला ब्लम ने कार्रवाई आरम्भ होने की घोषणा की। मादाम ब्लम पिछले दिन भी मंच पर प्रबंध में विशेष रूप से भाग ले रही थीं। इस ओर ध्यान इसलिये गया कि हमारे यहाँ समाजवादी दल के लोग प्रायः ही शान्ति-आन्दोलन को अन्तर्राष्ट्रीय कम्युनिस्ट मोर्चा समझ सन्देह की दृष्टि से देखते हैं। मादाम ब्लम ने घोषणा की कि प्रधानमंडल ने कांग्रेस में विचार के लिये तीन विषय निश्चय किये हैं; प्रथम—सभी राष्ट्रों की स्वतन्त्रता और सुरक्षा का प्रश्न, दूसरा—इस समय चलते युद्धों और सबसे पहले कोरिया में युद्ध समाप्त करने का प्रयत्न और तीसरा—अन्तर्राष्ट्रीय तनाव को दूर करने और भविष्य में युद्ध न होने देकर स्थायी शान्ति के लिये चेष्टा। कांग्रेस में उपस्थित सभी प्रतिनिधियों, दर्शकों और अतिथियों को इस सभा में प्रकट किये गये विचारों के सम्बन्ध में अपने विचार पक्ष या विपक्ष में प्रकट करने का अधिकार है। प्रत्येक देश के प्रतिनिधि यह स्वयं ही निश्चय कर लें कि उनमें कितने लोगों को और कितने समय तक बोलना चाहिये। उस दिन के सभापति डा० किचलू निश्चित किये गये।

डा० किचलू ने सबसे पहले मोशिये यवेस फार्ज से जो पिछली फ्रांसीसी सरकार में मंत्री थे, राष्ट्रों की पूर्ण स्वतंत्रता और सुरक्षा का प्रश्न विचारार्थ उपस्थित करने का अनुरोध किया। मोशिये फार्ज ने कहा—हम भिन्न-भिन्न राष्ट्र पूर्ण रूप से स्वतंत्र हैं तो

हमारा सबसे पहले अधिकार यही है कि हम भविष्य में किसी युद्ध में न फंसें और इस समय जो युद्ध चल रहे हैं उन्हें समाप्त कर सकें। यदि हम किसी राष्ट्र का अस्तित्व स्वीकार नहीं करते तो इसका यही अर्थ होता है कि हम उस राष्ट्र की स्वतंत्रता और आत्मरक्षा का भी अधिकार अस्वीकार कर देते हैं। आज सभी राष्ट्रों की जनता संकट की अवस्था में है क्योंकि उनकी राय की चिन्ता किये बिना उन्हें युद्ध में फंसा दिया जा सकता है और किसी भी राष्ट्र को कोई चेतावनी दिये बिना उस पर आक्रमण हो सकता है।

इस समय कुछ राष्ट्रों ने परस्पर सुरक्षा के लिये सहयोग के नाम पर जो संधियाँ की हैं या ऐसी जो संधियाँ कुछ राष्ट्रों पर कसी जा रही हैं उनका आधार सभी राष्ट्रों में परस्पर सहयोग से सबकी सुरक्षा नहीं है। ऐसी संधि का अर्थ संधि के दल में शामिल न किये जाने वाले राष्ट्रों के लिये निरन्तर आक्रमण की आशंका ही है और उसका प्रतिफल आक्रमण कर देने वाले राष्ट्रों की जनता के लिये भी, संधि दल में शामिल न किये गये राष्ट्रों के आक्रमण की आशंका के रूप में बनी रहेगी। ऐसी अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति से शान्ति का आश्वासन नहीं बल्कि किसी भी समय युद्ध का विस्फोट हो जाने की आशंका ही पैदा होती है। इसी नीति पर चलने के कारण शान्ति की रक्षा के लिये संगठित किये गये संयुक्त राष्ट्रसंघ (यूनाइटिड नेशन्स) के झण्डे के नीचे कोरिया में अत्यन्त भयंकर नर-संहार चल रहा है। ऐसे दूसरे युद्ध का उदाहरण वियतनाम में मौजूद है। फ्रांस की प्रायः पूरी जनता इस युद्ध से असंतुष्ट और दुखी है। इसी नीति के कारण उपनिवेशों में भी आतंक और आपसी द्वेष का दौर-दौरा चल रहा है। उपनिवेशों के प्रश्न केवल आपसी बातचीत से ही सुलझ सकते हैं। उनके सुलझाने का उचित ढंग आपसी सुलह-सुलझाव ही होना चाहिये लेकिन आज उपनिवेशों के प्रश्न को दमन की तलवार से ही सुलझाया जा रहा है। मैं वियतनाम की जनता को यह विश्वास दिलाना चाहता हूँ कि उन पर होने वाला दमन फ्रांस की जनता की भावना नहीं है। यह फ्रांस की जनता के साथ धोखा है। फ्रांस की जनता मानवता और समता मे विश्वास रखती है—मोशिये फार्ज के स्वर में खेद और ग्लानि का भाव स्पष्ट था। उनके प्रति और फ्रांस की जनता की भावना के विश्वास प्रकट करने के लिये कांग्रेस भवन तालियों से गूँज उठा।

मोशिये फार्ज ने कहा कि वर्तमान संकटपूर्ण अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति का समाधान शान्ति के लिये पाँच महान राष्ट्रों के सहयोग से ही सम्भव है। इन पाँच राष्ट्रों की एक ऐसी पंचायत की जानी चाहिये जिसका उद्देश्य बातचीत द्वारा आपसी मन-मुटाव और विरोधों को दूर कर देने की प्रतिज्ञा हो। इस समझौते में समय लगेगा और कठिनाइयाँ भी आयेंगी पर वे कठिनाइयाँ नये युद्ध के परिणाम से उत्पन्न होने वाले संकटों से कहीं अधिक सह्य होंगी। पाँच राष्ट्रों की बात हम इसलिये कहते हैं कि इस समय पाँच राष्ट्र ही सबसे बड़ी सैनिक शक्ति सम्भाले हैं और सानफ्रांसिस्को की संधि में भी इन पाँच राष्ट्रों पर ही विश्व शान्ति की रक्षा का उत्तरदायित्व रखा गया था। संयुक्त राष्ट्रसंघ इस समय शान्ति रक्षा का उद्देश्य पूरा नहीं कर पा रहा तो जिन पाँच राष्ट्रों के कंधों पर संयुक्त राष्ट्रसंघ की

स्थापना का दायित्व दिया गया था, उन्हीं से इस समस्या पर फिर से विचार करने के लिये कहना पड़ेगा। विश्व शान्ति के बिना किसी भी राष्ट्र की स्वतंत्रता और सुरक्षा आशंकाहीन नहीं हो सकती।

मंच पर बैठे प्रधान मंडल में से कुछ व्यक्तियों की ओर तो उनकी ख्याति के विचार से और कुछ की ओर उदाहरणतः डा० कुमारप्पा और मिस्र के नारी समाज की प्रतिनिधि श्रीमती हादी की ओर से उनकी असाधारण वेशभूषा के कारण ध्यान चला जाता था परन्तु दर्शकों की आँखें चीन के स्वर्गीय प्रधान डा० सन्यातसेन की विधवा मादाम सन्यातसेन की ओर उनके रूप की सौम्यता और तेज के कारण ही स्थिर हो जाती थीं। मंच पर आते ही एक बार उन्होंने प्रो० क्यूरी, डा० किचलू और कुछ दूसरे लोगों से बहुत आत्मीयता से अभिवादन किया। उसके बाद वे प्रायः बुद्ध की समाधिस्थ मूर्ति के सामने निश्चल परन्तु जागृत बैठी थीं। उनके चेहरे से स्वस्थ आभा और काले केशों से सजीव शान्ति की स्फूर्ति बरस रही थी। डा० किचलू ने घोषणा की—मैं अब चीनी प्रतिनिधि मंडल की नेता मादाम सन्यातसेन से अपने विचार प्रकट करने के लिये अनुरोध करता हूँ।

श्रीमती सन्यातसेन के अपने स्थान से उठते ही भवन तालियों से गूँज उठा। मानो उनके व्यक्तित्व का सम्मोहन पूर्ण उपस्थिति पर छाया था। वे नये जागे जीवन के उत्साह से भरे चीन की भावना का प्रतिबिम्ब थीं। यह जानकर भी कि वे चीनी भाषा में बोलेंगी, उनकी आवाज सुन सकने के लिये पल भर के लिये कानों पर से हैंडफोन उतार लिया। उनके व्यक्तित्व और रूप के अनुरूप ही उनका स्वर भी था। कानों पर हैंडफोन लगाने पर उनके भाषण का दूसरा वाक्य अंग्रेजी में सुनाई दिया—'.......और हमें विश्वास है कि इस कांग्रेस को संसार में शान्ति का राज चाहने वाले सभी लोगों का सहयोग मिल सकेगा।'

'जनता तो सदा ही शान्ति चाहती है परन्तु जनता के भाग्य का निपटारा करने का अधिकार सम्भाले कुछ लोग निजी स्वार्थों से अंधे होकर जनता को युद्धों में घसीटते रहे हैं। अब जनता युद्ध और शान्ति के प्रश्न को अपने हाथों में ले रही है। और अपनी इच्छा के विरुद्ध युद्ध के संहार में फंसाई जाने के लिये तैयार नहीं। आज सभी देशों में जनता वर्तमान समय में चलने वाले युद्धों और विशेषकर कोरिया में किये जाने वाले अन्याय और अमानवता के प्रति विरोध प्रकट कर रही है। जिन देशों में शासन की बागडोर युद्ध द्वारा अपना स्वार्थ पूरा करने की इच्छा करने वाले लोगों के हाथ में है, वहाँ की जनता भी यह अच्छी तरह समझ रही है कि युद्ध की तैयारी के लिये शस्त्र बढ़ाने की होड़ के कारण उनका श्रम केवल नाश के साधन तैयार करने में खप रहा है। उनकी शक्ति अपने लिये पेट भर भोजन, वस्त्र, शिक्षा और चिकित्सा प्राप्त करने में न लगकर इन जीवन उपयोगी वस्तुओं के संहार करने वाले साधन तैयार करने में ही लग रही है और उनका जीवन नित्य संकटमय होता जा रहा है।'

एशिया की जनता इस बात से दुखी और आतंकित है कि उनके महादेश में इस समय भी युद्ध की ज्वाला दहक रही है। एशिया की जनता एक स्वर से पुकार रही है कि

यह युद्ध तुरन्त समाप्त होने चाहिये और भविष्य में युद्ध की आशंका भी समाप्त होनी चाहिये। एशिया और प्रशांत महासागर के प्रदेशों के एक अरब साठ करोड़ लोगों ने अपनी यह माँग पीकिंग की कांग्रेस में स्पष्ट शब्दों में संसार के सामने रख दी है। एशिया और अफ्रीका के देशों के लोग अपने-अपने देशों में आत्मनिर्णय के अधिकार से अपने देश के प्राकृतिक साधनों से अपने जीवन की रक्षा और विकास का अवसर माँग रहे हैं परन्तु इन देशों की जनता के मानवीय अधिकारों को अपने स्वार्थ के लिये दबा देने वाले लोग, उन्हें परवश बनाये रखने के लिये इन देशों को युद्ध और संहार द्वारा कुचल देना चाहते हैं और अपने अन्याय को कायम रखने के लिये निरन्तर युद्ध चलाते रहना चाहते हैं। इसी प्रकार पश्चिमी योरुप में ब्रिटेन, फ्रांस, इटली, इंग्लैण्ड, स्वीडन, नार्वे और विशेषकर पश्चिमी जर्मनी पर भी उत्तरी अटलांटिक में धांधली करने वाले गुट की धमकियाँ युद्ध के काले बादलों के रूप में मंडरा रही हैं।

संसार की शान्ति चाहने वाली जनता इस समय अमरीका की जनता से विशेष आशायें करती है। अमरीका में भी कुछ लोग शान्ति के लिये यथासम्भव यत्न कर रहे हैं परन्तु अधिकांश ऐसे लोग हैं जो शान्ति चाहते हुए भी इस समस्या की ओर व्यक्तिगत रूप से ध्यान नहीं दे रहे। अमरीका के अधिकांश लोग अभी यह नहीं समझ पाए कि कोरिया या दूसरे देशों में अमरीकी सेना की दखलन्दाजी, जोर-जुल्म और बीमारी फैलाने वाले या दूसरे बमों का प्रयोग स्वयं अमरीका की जनता के भविष्य पर भी प्रभाव डालेगा। अधिकांश अमरीकन जनता अमरीका के प्रति संसार की जनता की भावना से हैरान और दुखी हैं। अमरीकन जनता हैरान है कि वे दूसरे देशों के लिये इतना कुछ कर रहे है इस पर भी दूसरे देश उनके प्रति कृतज्ञ क्यों नहीं। यह सच है कि अमरीका की जनता भारी करों का बोझ उठा रही है। यह भी सच है कि इन करों के कारण अमरीका की जनता अपनी आवश्यकतायें भी पूरी नहीं कर पा रही और अमरीका के नौनिहाल फौजी बाने में कसे जाकर तोपों के सामने भेजे जा रहे हैं। अमरीकन जनता का विश्वास है कि यह सब कुछ दूसरे देशों की भलाई के लिये ही किया जा रहा है। बहुत अच्छा हो कि अमरीका की जनता यह जान जाये कि उन पर लादे जाने वाले करों के बोझ, युद्ध के सामान के लिये खर्ची जाने वाली बहुत बड़ी धनराशि और उनके बेटों को फौजी वर्दी में कसकर बाहर भेजने का परिणाम क्या हो रहा है। अमरीका की जनता की इन कुर्बानियों से दूसरे देशों में खुशहाली नहीं मौत और बरबादी बरसाई जा रही है। अमरीका की जनता की इन कुर्बानियों से दूसरे देशों की जनता के लिये भोजन, वस्त्र, मकान और शिक्षा का उपाय नहीं हो रहा बल्कि इन चीजों की बरबादी ही हो रही है क्योंकि अमरीका की जनता का भाग्य युद्ध द्वारा संसार को लूट सकने की योजना बनाने वालों के हाथ में है। यह लोग अमरीकी जनता को समझाये हुए हैं कि दूसरे देशों की जनता अमरीका को युद्ध की धमकियाँ दे रही है। वास्तविकता यह है कि दूसरे देश मित्रता और शान्ति का हाथ अमरीका की ओर बढ़ा रहे हैं। अमरीका जिस प्रकार अपना धन शस्त्रों की तैयारी में खर्च कर रहा है, उसका परिणाम क्या होगा? जब दूसरे देश लड़ने के लिये उत्सुक नहीं तो

अमरीका अपने रोज-रोज बढ़ते जाते शस्त्रों का क्या करेगा? इन शस्त्रों को खाया या ओढ़ा नहीं जा सकता। अमरीका की यह नीति दूसरे देशों को डराकर उन्हें भी अधिक शस्त्र बनाने और अपनी शक्ति संहार के उपायों के लिये खर्च करने में मजबूर कर रही है; और यह सब बरबादी अमरीकी जनता के नाम पर हो रही है।

'हाल में अमरीका ने अपने नये प्रधान का चुनाव किया है। अमरीका अपने देश में चाहे जिस व्यक्ति को अपना नेता चुने दूसरों को क्या मतलब। वे स्वतंत्र हैं परन्तु यह नेता कहता है कि एशिया के लोगों से लड़ने के लिये हमें एशिया के ही लोगों का उपयोग करना है। इसका मतलब होता है कि एशिया वालों की जानें सस्ती हैं। इसका यह भी मतलब होता है कि यह नेता कोरिया, वियतनाम और मलाया में जारी संहार को जारी रखने की ऐसी योजनायें बना रहा है जिनसे अमरीका को तो हानि न हो पर एशिया के लोग मरते रहें। ऐसी बातों की उपेक्षा एशिया के लोग कैसे कर सकते हैं। आपको मालूम है कि पूरा एशिया कोरिया में और दूसरे देशों में चलने वाले युद्धों को तुरन्त समाप्त कर देने के लिये चिल्ला रहा है। दूसरी ओर अमरीका का नेता इन युद्धों को बढ़ाने के उपाय सोच रहा है। ऐसी अवस्था में अमरीका की जनता यह नहीं कह सकती कि उनकी कुरबानियों से जो युद्ध एशिया में चल रहा है उसके लिये एशिया वालों को उनका कृतज्ञ होना चाहिये या वे एशिया में होने वाले नर-संहार के लिये जिम्मेवार नहीं हैं। इन युद्धों को समाप्त कराना उनकी भी जिम्मेवारी है।'

'हम अमरीका की जनता को प्रेजीडेंट फ्रैंकलीन रूजवेल्ट की बात याद दिलाना चाहते हैं। रूजवेल्ट ने चेतावनी दी थी—'अमरीका को किसी दूसरे का तो भय नहीं। उसे यदि भय है तो केवल अपने आपसे!' यह बात आज और भी अधिक ठीक और सच हो गई है। इस चेतावनी को याद रखकर अमरीका की जनता को अपने देश के युद्ध फैलाने वाले लोगों से सावधान रहना चाहिये। अमरीका की विराट उत्पादन शक्ति जीवन के संहार का सामान तैयार करने में नहीं जीवन की रक्षा और विकास करने वाले साधनों को तैयार करने में लगानी चाहिये। उन्हें राष्ट्रों के परस्पर संहार की नहीं, परस्पर सहयोग की बात सोचनी चाहिये और सभी राष्ट्रों के लिये अपने-अपने देश में पूर्ण स्वतन्त्रता से अपनी-अपनी व्यवस्था के अनुसार रहने का सिद्धांत स्वीकार करना चाहिये। वर्तमान अन्तर्राष्ट्रीय तनाव को समाप्त कर शान्ति की रक्षा के लिये आवश्यक है कि हम इस समय जारी सभी युद्धों को, विशेषकर कोरिया, वियतनाम और मलाया में चलने वाले युद्धों को समाप्त करायें। मि० आइजन होवर ने अपने चुनाव के लिये अमरीका की जनता से वोट माँगते समय कोरिया का युद्ध समाप्त करा देने की प्रतिज्ञा की थी। आज वे इस युद्ध को लगातार जारी रखने का उपाय बता रहे हैं। अमरीका की जनता को उनसे वह प्रतिज्ञा पूरी करानी चाहिये।'

'हमारी माँग है कि संसार की पाँच महाशक्तियों में शान्ति रक्षा के लिये संधि की जाये। हमारी माँग है कि संयुक्त राष्ट्र संघ (U.N.O.) जिस उद्देश्य को लेकर स्थापित

किया गया था, उसके लिये फिर से संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा आरम्भ मे स्वीकार किये गये सिद्धान्त के अनुसार ही प्रयत्न आरम्भ किया जाये। हमारी माँग है कि विश्वव्यापी संहार करने वाले एटमबम आदि शस्त्रों, रोग के कीटाणु फैलाने और रासायनिक शस्त्रों के उपयोग को तुरन्त निषिद्ध ठहरा दिया जाये। हमारी माँग है कि कोई भी राष्ट्र दूसरे राष्ट्र के भीतरी मामलों में दखल न दे और न किसी दूसरे राष्ट्र की भूमि पर अपना अधिकार रखे। सब राष्ट्रों में पूर्ण समानता और स्वतन्त्रता का नाता हो।'

'हमारे लक्ष्य स्पष्ट है। संसार की अरबों जनता हमारे साथ है। शेष लोग भी शान्ति ही चाहते हैं परन्तु वे युद्ध की उमड़ती आशंकाओं से बेखबर हैं। हमें उनका भी सहयोग प्राप्त करना है। सम्भव है कि शान्ति चाहने वाले कुछ लोग हमारी कुछ बातों से सहमत न हों परन्तु जो भी लोग शान्ति चाहते हैं, हम उन्हें अपना सहयोग देने के लिये तैयार हैं और जब हम शान्ति चाहते हैं और उसके लिये सहयोग देना और लेना चाहते हैं तो हमारे मतभेद अवश्य दूर हो जायेंगे क्योंकि हम मतभेद दूर करने का उपाय युद्ध को नहीं समझते।' मादाम सन्यातसेन के भाषण, उनके व्यक्तित्व और उनके देश के नवोत्थान के प्रति आदर से पूरे सभा भवन ने उठकर तालियों से उनका स्वागत किया। बहुत देर तक एक ताल से तालियाँ बजती रहीं।

१४ दिसम्बर, १९५२ से चाय, काफी की भाप और तम्बाकू के धुएँ से धुन्धले बूफे की यों काफी बड़ी परन्तु इतनी बड़ी कांग्रेस के लिये तंग जगह में काफी सनसनी और उत्साह था। इटली से एक खूब बड़ा प्रतिनिधि मण्डल उसी सुबह आ पहुँचा था। इटली से प्रायः दो सौ प्रतिनिधि कांग्रेस में सम्मिलित होना चाहते थे परन्तु सरकार ने उन्हें आस्ट्रिया जाने की अनुमति नहीं दी। सरकारी आज्ञा की परवाह न कर और सरकारी कोप का खतरा झेलकर इटली से एक सौ पचास प्रतिनिधि वियाना पहुँच ही गये। इन प्रतिनिधियों के सरकारी आज्ञा की अवहेलना कर या सरकारी कोप की परवाह न कर कांग्रेस में आने की बात सुनकर धारणा हुई कि ऐसे प्रतिनिधि कुछ अति उत्साही नौजवान ही होंगे। यह जानकर बहुत विस्मय हुआ कि इस प्रतिनिधि मंडल में कई बुजुर्ग उदाहरणतः भूतपूर्व मंत्री एलबर्टोसिआन्का, इटालियन पार्लियामेंट के चार-पाँच सदस्य, कई प्रोफेसर, कई प्रसिद्ध इटालियन लेखक और कलाकार भी थे। इटली में शान्ति के लिये आन्दोलन कितना प्रबल है, इसका अनुमान इस बात से भी लगा कि इटली में राजसत्ता को पुनः स्थापित करने के आन्दोलन के समर्थक काउण्ट सेला द मोंतेलूस, डचेस उर्बेर्ता द मोद्रो ने और डचेज पोजो द कजानेलो भी सम्मिलित हुईं। इटालियन क्रिश्चियन डेमोक्रेटिक पार्टी के नेता रफाएल और सोशलिस्ट नेता कासादेई भी सम्मिलित थे।

आज जगत प्रसिद्ध सोवियत उपन्यासकार ईलिया एहरनबर्ग के भाषण के प्रति लोगों की विशेष उत्सुकता थी। एहरनबर्ग की अवस्था साठ के ऊपर जान पड़ती है। सिर पर केश कम ही हैं, और जो हैं वे फूले कांस के समान श्वेत। कंधे कुछ झुक गये हैं। कुछ गहरी सी और उठी हुई भौं के नीचे थकी सी आँखें अब भी पैनी जान पड़ती हैं। लाल

हल्दी की गाँठ के से रंग के मोटे ऊनी कपड़े का ढीला सा सूट और हाथ प्रायः जेबों में। अब तक उन्हें चित्रों में पाइप पीते ही देखा था सिगरेट यहाँ होंठों में प्रायः ही देखा। भाषण के लिये उनसे अनुरोध किया गया तो जनता ने खड़े होकर तालियों से हाल को गुंजा दिया। एहरनबर्ग कुछ देर तालियाँ समाप्त होने की प्रतीक्षा करते रहे। जनता शान्ति के प्रयत्न में ऐसे महारथी के सहयोग से उत्साहित थी और जान पड़ता था कि एहरनबर्ग शान्ति के लिये जनता के उत्साह से अपनी थकान भूल गये हैं। एहरनबर्ग सोवियत प्रतिनिधि मंडल के नेता थे। वे सोवियत दल की ओर से बोले—'इस कांग्रेस में केवल अपने मित्रों को ही नहीं बल्कि दूसरे विचार के लोगों और दलों के प्रतिनिधियों को देखकर ही हमें अधिक आशा और उत्साह अनुभव हो रहा है। इस अवसर पर हम उन्हें अपने विचारों की सच्चाई का विश्वास दिलाने का यत्न नहीं करेंगे और न उनके राजनैतिक और दार्शनिक विचारों की छानबीन करेंगे। यहाँ हमें यही सोचना है कि शान्ति चाहने वाले भिन्न-भिन्न विचारों के लोगों का सहयोग कैसे सम्भव हो सकता है। इस समय हम विचित्र अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति से गुजर रहे हैं। अब तक हम यही सुनते आये थे कि अपनी स्वतन्त्रता की रक्षा के लिये कभी-कभी राष्ट्रों को आत्मबलिदान करना पड़ता है परन्तु आज की अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में उल्टी बात दिखाई देती है कि आत्मरक्षा के लिये राष्ट्रों को अपनी स्वतन्त्रता का ही बलिदान करना पड़ रहा है।'

'कुछ लोग स्थायी और व्यापक अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति के लिये सब राष्ट्रों की एक विश्वव्यापी संयुक्त सरकार का सुझाव देते हैं। ऐसे अन्तर्राष्ट्रीय संगठन का रूप क्या होगा? शायद आप कहें, वही रूप जो संयुक्त राष्ट्रसंघ का है। वर्तमान अनुभव के आधार पर हम ऐसे संगठन पर कैसे विश्वास कर सकते हैं? कोरिया में जो संहार और बरबादी हो रही है उस पर संयुक्त राष्ट्रसंघ का ही तो झंडा लहरा रहा है! अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और न्याय का आधार तो सभी राष्ट्रों का अपनी-अपनी सीमा में पूर्ण स्वतन्त्र होना और उनका स्वेच्छा से सहयोग ही हो सकता है।'

'कुछ लोग आपत्ति कर सकते हैं कि शान्ति के समर्थक शस्त्रों के सम्बन्ध में सभी राष्ट्रों पर प्रतिबन्ध लगाने की माँग कर रहे हैं। यह भी राष्ट्रों की पूर्ण स्वतन्त्रता पर एक प्रकार का प्रतिबन्ध ही होगा। परन्तु वे यह भूल जाते हैं कि परस्पर समझौते से राष्ट्रों द्वारा शस्त्र बढ़ाने की अपनी स्वतन्त्रता पर यह प्रतिबंध स्वयं लगा लेना छोटे-बड़े सभी राष्ट्रों को आक्रमण की आशंका से स्वतन्त्रता देगा। शस्त्र बढ़ाते जाने की स्वतन्त्रता की अपेक्षा आक्रमण की आशंका से स्वतन्त्रता का महत्त्व अधिक समझा जाना चाहिये। शस्त्र बढ़ाने का प्रयोजन ही आक्रमण से कुचले न जाना है। राष्ट्रों द्वारा स्वीकार किया गया यह समझौता ही स्थायी शान्ति की नींव बन सकता है।'

'शायद कुछ लोगों को आपत्ति हो कि पश्चिमी यूरोप, जर्मनी, जापान और दक्षिण अमरीका के मामलों से सोवियत के डेलीगेटों को क्या वास्ता? इस मामले से हमें वास्ता है क्योंकि अमरीका अपनी इस सशस्त्र गुटबन्दी का कारण सोवियत के आक्रमण की

आशंका ही बताता है। इसी आक्रमण की आशंका में इंग्लैण्ड की जनता को अपनी आवश्यकतायें भुला, सशस्त्र तैयारी के लिये नाक रगड़कर कर देना पड़ रहा है। फ्रांस और इटली के सुन्दर नगरों को विदेशी सेनाओं का अड्डा बनाया जा रहा है और दक्षिण अमरीका के प्रजातन्त्रों को न केवल अपना कच्चा माल अमरीका को देना पड़ रहा है बल्कि अपने जवानों को भी तोपों का निशाना बनने के लिये सेनाओं में भेजना पड़ रहा है लेकिन सोवियत आक्रमण की क्या तैयारी कर रहा है? सोवियत ने इस बीच बोलगा-डान नहर बनाकर अपनी नदियों को अधिक उपजाऊ और यात्रा के योग्य बना डाला है, रेगिस्तान से आने वाली आँधियों से अपनी फसलें बरबाद न होने देने के लिये उसने हजारों मील लम्बी जंगल की दीवारें खड़ी करनी शुरू की है। पूरे स्टैलिनग्राड नगर को नये सिरे से बना डाला है। क्या इन्हीं साधनों से हम फ्रांस और इटली के अंगूरों के खेत उजाड़ेंगे या रोम के प्राचीन सौंदर्य को नष्ट कर देंगे या इंग्लैण्ड का सिर नीचा करने की कोशिश करेंगे और ब्राजील की काफी और चिली का शोरा बरबाद कर देंगे? हमारे आक्रमण का भय दिखाकर जब दूसरे देशों को पराधीन और अपमानित किया जाये तो हम कैसे चुप रह सकते हैं?'

'हम लोग रूसी संस्कृति के प्रतिनिधि हैं। हमारी संस्कृति का सम्बन्ध यूरोप भर की संस्कृति से रहा है। उस संस्कृति का अपमान और नाश हम चुपचाप कैसे देख सकते हैं। हमें यह देखकर दुख होता है कि रूसी हौवे के इस धोखे के विरुद्ध इंग्लैंड, फ्रांस, इटली, बेल्जियम, डेनमार्क और दक्षिण अमरीका को भी साझीदार बताया जा रहा है। और युद्ध का एक विश्वव्यापी मोर्चा बनाने के लिये इन राष्ट्रों की जनता को आर्थिक और सांस्कृतिक रूप से कुचला जा रहा है। हम इस स्थिति से दुखी अवश्य हैं परन्तु स्वय अन्याय का शिकार बने लोगों को हम अत्याचारी मान लेने के लिये तैयार नहीं हैं।'—एहरनबर्ग ने अनेक देशों के समाचार-पत्रों से उन देशों के भीतरी मामलों में अमरीका द्वारा की जाने वाली धांधली के उदाहरण दिये और कहा—'अमरीका के मुनाफाखोरों की सरकार दूसरे देशों में यह सब धांधली अमरीका की जनता के नाम पर कर रही है। हम यह मान लेने के लिये तैयार नहीं कि अमरीका की जनता ऐसे अन्याय और अत्याचार का समर्थन करेगी। और यदि अमरीका दुनिया भर का शासन करने की जिम्मेदारी अपने कंधों पर उठा ही लेना चाहे तो भी दुनिया भर की जनता उनकी गुलामी का बोझ उठा लेने के लिये तैयार नहीं।'

'अमरीका के शासकों ने इस बात का पूरा प्रयत्न किया है कि इस कांग्रेस में अमरीका से कोई व्यक्ति न आ सके। हमें प्रसन्नता है कि उनके प्रयत्नों के बावजूद अमरीका के प्रतिनिधि यहाँ मौजूद हैं और वे लौटकर अमरीका की जनता को विश्वास दिला सकेंगे कि यह कांग्रेस अमरीका के लोगों को कोई भौतिक या आध्यात्मिक हानि पहुँचाने के लिये नहीं हो रही बल्कि संसार को युद्ध से बचाने के लिये ही हो रही है। हमें विश्वास है कि शीघ्र ही अमरीका की जनता का भ्रम दूर हो जायेगा लेकिन फिलहाल योरुप की जनता अपने कर्त्तव्य की उपेक्षा नहीं कर सकती। मैं सोवियत जनता की ओर

से अनुरोध करता हूँ कि यह कांग्रेस सभी राष्ट्रों के लिये अपने-अपने देशों में पूर्ण स्वतन्त्रता और अपने विचारों के अनुसार रह सकने का निर्बाध अधिकार स्वीकार करे। किसी भी देश के ऐसे अधिकार में दूसरे देश को दखलन्दाजी का अवसर न हो। हमें ईरान, बेल्जियम या गुआतेमाला की स्वतन्त्रता और जीवन के ढङ्ग का भी उतना ही आदर करना चाहिये जितना कि अमरीका के जीवन के ढङ्ग का। अनेक राष्ट्रों की जनता अपनी अलग-अलग विचारधाराएँ रखते हुए भी आपस में साहित्य और विज्ञान के विकास के आदान-प्रदान और आपसी व्यापार से सहयोग और सहायता ले दे सकती है परन्तु यह सहयोग और लेन-देन आपसी समता और सभी राष्ट्रों की पूर्ण स्वतन्त्रता की मान्यता के आधार पर ही सम्भव है। अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति के लिये सभी बड़े-बड़े राष्ट्रों की आपसी सन्धि होना और किसी भी देश के विरुद्ध गुट या मोर्चाबन्दी को तोड़ देना जरूरी है। हमें संयुक्त राष्ट्रसंघ के आरम्भिक और मौलिक उद्देश्यों को ध्यान में रखकर फिर से शान्ति और आपसी मेल के लिये यत्न करना होगा·······'

सुबह उठकर अपने कमरे की खिड़की का पर्दा हटाकर देखा तो सामने के मकानों की ढलवां छतों और नीचे सड़क पर भी बरफ बिछी दिखाई दी। हल्की बरफ के फाहे अब भी हवा में मंडरा-मंडराकर नीचे बैठते जा रहे थे। भाप के नलों से गरम किये गये कमरे में सर्दी तो क्या लगती पर बाहर निकलने पर भी पर्याप्त कपड़े पहने रहने पर कष्ट अनुभव न होता था। पिछली संध्या कुआमोजो का भी भाषण हो गया था। कांग्रेस आरम्भ होने से अब तक लगभग सत्तर भाषण हो चुके थे। इन भाषणों का तत्त्व यही था कि विश्वशान्ति के लिये सभी राष्ट्रों को अपने-अपने क्षेत्र में पूर्ण स्वतन्त्रता और आत्मनिर्णय का अधिकार होना चाहिये। सब देशों को अपनी-अपनी सीमा में अपनी विचारधारा के अनुसार जीवन की व्यवस्था चलाने का पूर्ण अधिकार होना चाहिये और दूसरों की व्यवस्था में दखलन्दाजी से बाज रहना चाहिये। पाँच बड़े राष्ट्रों को विश्वशान्ति के लिये परस्पर सन्धि कर युद्ध की सम्भावना दूर कर देनी चाहिये और सभी देशों को समान अनुपात से अपने-अपने शस्त्रों में कमी करनी चाहिये। एटम और नेपालम बमों, युद्ध में रोग फैलाने वाले और रासायनिक शस्त्रों को अनैतिक और अनुचित ठहराकर उनका प्रयोग निषिद्ध माना जाना चाहिये। वर्तमान में चलने वाले कोरिया, वियतनाम और मलाया का नरसंहार तुरन्त समाप्त होना चाहिये। भाषणों का तत्त्व और लक्षण एक ही होने पर भी उनके तर्क में मौलिकता और अपनापन भी था। अब प्रतिनिधि प्रायः भाषण देने वालों के नाम से आकर्षित होकर ही भाषण सुनते थे वर्ना छोटी-छोटी मंडलियाँ बना बातचीत करते रहते। कांग्रेस की प्रबन्धक कमेटी यह भी जानती थी कि बाहर से आये लोगों को वियाना देखने की इच्छा होगी ही इसके लिये कुछ बसों और दुभाषिये पथदर्शकों का प्रबन्ध कर दिया गया था।

दस बजे के लगभग बरफ पड़ना बन्द हो गया था। एक बस में शहर देखने चल दिये। बस की खिड़कियों के शीशों पर धुंध जम जाने के कारण भीतर से देख पाने में अड़चन अवश्य होती थी परन्तु बार-बार बाहर बरफ के कीचड़ में उतरना भी

असुविधाजनक था। स्थान-स्थान पर बमों से ध्वंस हुए मकानों के खंडहर भी दिखाई दे जाते थे जैसे चमकती सुन्दर बत्तीसी में से दाँत टूट गये हों। आस्ट्रियन सम्राटों के पुराने महल, टाउन हाल और मूर्तियों से सजे कलाभवन देखते-देखते नगर के उपांत में पहुँच गये। उपांत से नीली दनाऊ (डैन्यूब) नगर को आलिंगन में लिये हुए बांह की तरह फैली हुई है। दनाऊ के नीलेपन की बहुत ख्याति है परन्तु दो बार जाकर देखने पर वह धुंधली ही दिखाई दी। सम्भव है, आकाश में छाये मेघों के प्रतिबिम्ब के कारण ही नदी धुँधली दिखाई देती हो। नगर देखने में सहायता देने वाले दुभाषिये ने परिहास से कहा—'दनाऊ कविता में ही नीली दिखाई देती है साधारण आँखों से तो कभी ही! पर ग्रीष्म में आकाश साफ होने पर नीलापन आता है तो खूब गहरी नीली हो जाती है।' वियाना की विनोदप्रिय जनता ने दनाऊ को खूब सजा-बजाकर रखा हुआ है। हमारे यहाँ नदी का तट मल त्यागने और पुण्य बटोरने का ही स्थान होता है इसलिये वह सदा मैला रहता है। दनाऊ के नगर की ओर के किनारे लगातार बगीचियाँ चली गई हैं। इनमें स्थान-स्थान पर बेंच तो पड़े ही हैं, प्रायः काठ के छोटे-छोटे मकान भी बने हैं। पैसे वाले लोग गरमियों में शनिवार व रविवार के दिन तट-लीला या जल-क्रीड़ा के लिये इनमें आ बसते हैं। नदी किनारे की सड़क पर, बीच और लिंडन के वृक्षों की कतारें हैं। फूलों की क्यारियाँ भी खूब हैं पर इस समय हिम की श्वेत चादर ओढ़े सो रही थीं। मन अनुमान करने लगता था कि गरमियों में अनेक रङ्गों की कैसी घटा हो जाती होगी?

वियाना के इस भाग में पीले रङ्ग की पाँच मंजिली इमारतों का एक बड़ा सा सिलसिला कार्लमार्क्स होफ के नाम से प्रसिद्ध है। इमारतों के आगे-पीछे घास के मैदान भी हैं। यह इमारतें मजदूरों के रहने का स्थान हैं। आस्ट्रिया में हिटलर का नाजी शासन कायम हो जाने से पहले जब १९२८-३० में वहाँ समाजवादी सरकार बन सकी थी तो मजदूरों के लिये मकानों की समस्या हल करने के लिये इमारतें बनाई गई थीं। इन इमारतों में मजदूरों के लिये छोटे-बड़े परिवारों की आवश्यकतानुसार एक या दो कमरे और रसोईघर के एक हजार फ्लैट बने हुए हैं। प्रत्येक कुछ घरों को साफ कपड़े धोने, नहाने और टेलीफोन आदि का भी प्रबन्ध है। समाजवादी सरकार ने इन फ्लैटों का किराया मजदूरों की आमदनी का एक प्रतिशत रखा था। हिटलर का नाजी शासन वियाना में कायम हो जाने पर इन मकानों का किराया आठ-दस गुना बढ़ा दिया गया। १९३४ में मजदूरों ने किराया बढ़ती के विरोध में किराया देने से इन्कार कर दिया। उन्हें घरों से निकालने के लिये उन पर गोलियां चलाई गईं। उन गोलियों के निशान अब तक दीवारों पर बने हैं। बहुत से मजदूर इस प्रदर्शन में मारे गये। जब पूरे देश पर नाजी शासन छा रहा था मजदूरों की एक बस्ती उसके विरोध में कैसे सफल हो सकती थी? उन्हें दबा दिया गया। दूसरे महायुद्ध के बाद नाजी शासन समाप्त हो गया और वियाना का शासन मित्र राष्ट्रों के हाथ में आया। मजदूरों ने न्याय के लिये दुहाई दी। अब भी इन मकानों का किराया आरम्भिक किराये की अपेक्षा चौगुना है।

वियाना के एक उपेक्षित से मुहल्ले में, इस शताब्दी के, योरुप के सबसे महान संगीतज्ञ बीट ओवन का मकान भी देखा। इस मुहल्ले की उदासी और दरिद्रता देख इसे प्रासादों के नगर वियाना का ही भाग मान लेने को मन नहीं चाहता। इस मकान के दरवाजे पर एक हरी झाड़ी लटकी थी। वियाना में दरवाजे पर लटकी हरी झाड़ी शराबखाने का चिह्न है। बीट ओवन की पुण्य स्मृति अब शराब के व्यापारी के लिये विज्ञापन का साधन बन गई है।

वियाना प्रायः अंगूर के खेतों से घिरा हुआ है। दूसरे महायुद्ध के पहले नगर खास अच्छा औद्योगिक केन्द्र भी था और साथ ही चिकित्सा-विज्ञान, संस्कृति, कला और विनोद का केन्द्र भी। नगर के दक्षिण-पश्चिम के भाग का नाम ही ग्रीनजिंग या अंगूर बाग है। जिस मकान को देखिये दरवाजे पर हरी झाड़ी लटकी है। सामने छोटे से आँगन में काठ की बेंचें पड़ी है। गरमियों में संध्या समय युवा-स्त्री पुरुष यहाँ इकट्ठे हो जाते हैं और आधी रात तक पीते हुए गाते-बजाते रहते हैं।

योरुप के हिमालय एल्प्स का आँचल वियाना के उपांत तक फैला हुआ है। नगर के एक सुन्दर साफ सड़क इस आँचल की पहाड़ी पर चढती चली गई है। सड़क के दोनों ओर कुछ दूर तक तो अंगूरों के बाग ही हैं और आगे संवारकर रखा हुआ जंगल है, जिसे उपवन कहना ही अधिक उचित होगा। नगर पर पड़ने वाली बरफ तो मकानों के जमघट और उसमें जलने वाली आँच भी गरमी के कारण बहुत देर तक टिक नहीं पाती परन्तु नगर के सिरहाने, तकिये की तरह उठी हुई और उपवन की हरी लोजनकारी से ढकी पहाडी पर गिरी बरफ जमी रहती है। पहले किसी समय पहाड़ी की पीठ पर भगवान को रिझाने के लिये गिरजा बना दिया गया था; प्रकृति के ऐसे सुन्दर स्थल में शरीर रहित भगवान एकाधिपत्य जमाकर क्या संतोष पा लेते। गिरजे के साथ ही वियाना की मालिक श्रेणी के विनोद के लिये एक जलपानगृह भी बना लिया गया है। यहाँ चाय, काफी, बियर और शराब के दाम तो जरूर अधिक लगते है परन्तु जगह भी बहुत आराम-की और सुन्दर है। बरफ गिरती या चिलचिलाती धूप होने पर भी काँचमढ़ी बड़ी-बड़ी खिड़कियो से नीचे बिछे पूरे वियाना का दृश्य देखा जा सकता है और वियाना से परे ऊँचे उठते जाते घाटों पर हरे-नीले पहाड़ी जंगलों और जंगलों से भी ऊपर नीले आकाश को सिर पर सम्हाले बर्फ की चोटियों की भी झांकी ली जा सकती है।

वियाना की भव्य सड़कें, इमारतें और रेस्टोरां, ओपेरा सब उसकी विगत महिमा की स्मृतियाँ हैं। पहले और दूसरे युद्धों के बाद आस्ट्रिया छंट-छंटाकर छोटा-सा देश रह गया था और इस समय तो पराधीन बना है। आर्थिक अवस्था अच्छी नहीं है। इस समय पूरे आस्ट्रिया की आबादी पौने दो करोड़ है और उसमें से पचास लाख आबादी केवल वियाना की ही है। विदेशों से व्यापार प्रायः बन्द है बल्कि आस्ट्रिया को अपना कच्चा माल ही उस पर अधिकार जमाये देशों को सौंप देना पड़ता है। ऐसी अवस्था में पुराने ठाट-बाट निभाते रहना कठिन हो रहा है; यह वियाना की जनता खूब अनुभव करती है। जिन लोगों से भी

बात हुई, आर्थिक दुर्दशा, भारी करों और दमन की ही कहानी सुनने को मिली। आस्ट्रिया का सिक्का शिलिंग कहलाता है। पौंड के अनुपात में शिलिंग का मूल्य बहुत कम है। मामूली क्लर्क या मजदूर औसत नौ सौ शिलिंग माहवार कमा लेता है। एक समय ढंग से भोजन करने में दस शिलिंग किसी भी मामूली होटल में लग सकते हैं। मोजार्ट होटल में जगह आराम की गरम और खूब स्वच्छ थी। रात में कमरे, बिस्तर का किराया और प्रातःकाल के नाश्ते के पचास शिलिंग लग जाते थे। नाश्ता भी कोई बहुत बढ़िया नहीं, मक्खन रोटी और एक प्याला काफी। लंदन में इस तरह के होटल का किराया इससे दूना तो जरूर होगा।

शान्ति कांग्रेस की एक स्वयंसेविका और उसके पति कोस्टन से परिचय हो गया था। साधारणतः पति-पत्नी दोनों ही कमाई कर अपने दोनों बच्चों को पालते थे परन्तु इस समय पत्नी काम न मिलने के कारण बेकार थी और कांग्रेस में स्वयंसेविका बनी हुई थी। पति एक रूसी सरकारी दुकान पर काम कर रहा था इसलिये उसे कुछ तनखाह, शायद हजार-बारह सौ शिलिंग मिल रहे थे। उनके आग्रह पर एक शाम उनके यहाँ गया। दोनों के घर से बाहर रहते समय पड़ोसिन ही पाँच वर्ष की लड़की और आठ वर्ष के लड़के को सम्हाले हुए थी। पड़ोसिन की सौजन्यता का कारण शायद कोस्टन पत्नी गेटा का कांग्रेस में स्वयंसेविका के तौर पर काम करना था। कमरे खासे बड़े और ऊँचे थे। शायद इसलिये कि बहुत से लोग नगर छोड़कर चले गये हैं और अच्छे मकान भी सस्ते मिल सकते हैं। गेटा ने आते ही कहा—'अरे कमरे तो बड़े-बड़े हैं। तुम्हें सर्दी लगेगी। हम दोनों में से कोई यहाँ था नहीं। पीछे आग कौन जलाता? बच्चे तो परवाह नहीं करते। मैं अभी आग जलाये देती हूँ। दिन भर आग जलाकर गरम रखने लायक हम लोगों के पास पैसे भी कहाँ हैं?'

'नहीं, ऐसी सर्दी कहाँ है?' गेटा का मन रखने के लिये मैंने कहा। आते समय ओवरकोट ड्योढ़ी में ही उतारकर लटका दिया था। योरुप में ऐसा ही कायदा है। चार-पाँच ही मिनट में सर्दी से फुरफुरी आने लगी। दोनों बच्चे कई घन्टे से उन्हीं कमरों में थे। बच्चे दोनों ही दुबले और बेरौनक जान पड़े। कोस्टन का शरीर लम्बा-चौड़ा तो था परन्तु दुर्बल। वैसा ही पत्नी का भी। सोचा शायद सिगरेट से ही कुछ गरमी आये। जेब से डिबिया निकाल पहले कोस्टन दम्पत्ति और उनकी पड़ोसिन सहेली की ओर बढ़ाई। धन्यवाद दे उन्होंने सिगरेट ले लिये। हम लोगों ने आधी-आधी सिगरेट पी होगी कि कोस्टन ने अपनी सिगरेट बुझाते हुए कहा—आधा खाना खाने के बाद पियेंगे। पत्नी ने भी समर्थन किया और उसने भी आधी सिगरेट बुझाकर रख ली। मन में चोट सी अनुभव हुई। पर यह कहकर कि 'पियो-पियो' मेरे पास और सिगरेट हैं, उनका अपमान करना भी अच्छा न लगा।

'नहीं आग जला ही दूँ बहुत सर्दी है।' गेटा उठी और एक टीन का कोयलों से भरा डिब्बा ला अंगीठी जला धौंकने लगी। इस बीच मैं इतना जड़ा गया कि अजाने में घुटने

बज जाते। आग की लौ निकलती देख अपनी कुर्सी अंगीठी के समीप ले गया। गेटा अंगीठी जलाते-जलाते हिटलर का शासन आस्ट्रिया में आरम्भ होने के समय यहूदियों पर होने वाले अत्याचारों की बात सुना रही थी। कोस्टन दम्पत्ति यहूदी हैं। दोनों के अधिकतर सम्बन्धी मारे जा चुके हैं। उनके मुख से उनकी आँखों के सामने उनके सम्बन्धियों के मार दिये जाने का वर्णन बड़ा करुणाजनक था। वे दोनों उस समय आठ और दस बरस के थे और अपनी माताओं के साथ स्विटजरलैण्ड भाग गये थे।

आग जल जाने के बाद कोस्टन और गेटा ने भोजन का प्रस्ताव किया। मुझे अभी इच्छा नहीं थी परन्तु उन्हें, खासकर बच्चों को भूख लग रही थी। एक छोटी मेज पर मोमजामे का टुकड़ा बिछाकर भोजन लगाया गया। कोस्टन ने मोटे अनाज की एक भूरे रंग की डबलरोटी से बड़े-बड़े टुकड़े काटे। एक टिकिया मार्जरीन (नकली मक्खन) भी रखा गया और दोनों बच्चों के लिये एक-एक अंडा। शीशे के पाँच गिलास और चाय भरी चायदानी और एक प्याले में कुछ शक्कर। कोस्टन और गेटा दोनों इजराइल में अनेक वर्ष रह आये हैं और अंग्रेजी बोल लेते हैं आपस में और बच्चों से जर्मन में ही बात करते थे जो मैं समझ नहीं पा रहा था। बच्चे बात-बात में जिद्द करते थे। आखिर लजाकर माँ को सफाई देनी पड़ी—कुछ दिन से जाड़े में इनकी सेहत ठीक नहीं रही इसीलिये कुछ चिड़चिड़े हो रहे हैं। पहले तो ऐसा नहीं करते थे। मैं हँस दिया—चिड़चिड़े कहाँ हैं? तुम दोनों दिन भर बाहर रहे हो। अब आये हो तो क्या वे इतना भी लाड़ तुमसे न करें!

कोस्टन और गेटा ने एक बार फिर खाने के लिये कहा। मै टाल गया—'खा तो लेता परन्तु आज चीनी प्रतिनिधियों के यहाँ भोज्न का निमंत्रण है। उस समय कुछ बातचीत भी होगी। समय हो रहा है। मुझे चलना चाहिये।' गेटा जल्दी से चाय रोटी समाप्त कर मुझे छोड़ने चल दी। रास्ते भर वह सुनाती रही कि वह एक दुकान पर हिसाब-किताब का काम करती थी पर अब दुकानों पर बिक्री ही नहीं तो काम कैसे मिले। कुछ दिन पहले वह पुस्तकों की एक दुकान पर थी। लोग जब खाना, कपड़ा और जूता नहीं निभा पाते तो पुस्तक कौन खरीदे। जूते की मरम्मत भी करवानी हो तो पैसे बचा पाने की प्रतीक्षा करनी पड़ती है। तब तक जूता ही घिस जाता है……।

हम बात करते सेंटजोसफ के विशाल गिर्जे के सामने से गुजर रहे थे, जिसे आस्ट्रिया के सम्राटों ने भगवान को प्रसन्न करने के लिये अपने समय में योरुप की सबसे ऊँची इमारत के रूप में बनवाया था। मैं गेटा की बात पर हुँकारा देते हुए सोच रहा था कि जिन लोगों के श्रम से यह गगनचुम्बी, भव्य गिरजा भगवान के प्रति आदर के लिये बना होगा, वे स्वयं कैसे छप्परों और ठट्ठरों में ऐसी रातें बिताते होंगे? और आज भी इस विशाल गिर्जे की छाया में ऐसे कष्टों से पीड़ित वियाना के जाने कितने लोग यहाँ आसपास दुबके पड़े होंगे। इच्छा होने पर भी जिन्हें पेट भरने और तन ढाँकने के लिये श्रम का अवसर नहीं क्योंकि आस्ट्रिया आज चार विदेशी शक्तियों के शोषण का शिकार बन गया

है और कंजर्टहाज में गूँजने वाली तानें चुप हो गई हैं। हे भगवान तुमने वियाना की भक्ति का कुछ ख्याल नहीं किया।

अगले दिन इटली की पार्लियामेण्ट के सिनेटर कासादेइ ने चालू युद्धों को समाप्त करने के सम्बन्ध में विचार प्रकट किये :—'......जो लोग राष्ट्रों का शासन चलाने की जिम्मेवारी उठाये हैं और जो लोग इन युद्धों को चलाने की जिम्मेवारी सम्हाले हैं उनके सामने हम संसार की जनता की माँग और विचार रख रहे हैं। हमारा प्रयत्न है कि हम युद्ध का अन्त कर सकने के लिये एक न्यायपूर्ण निष्पक्ष परन्तु ठोस प्रस्ताव तैयार कर सकें। इटली कोरिया के युद्ध में भाग नहीं ले रहा परन्तु इटली की जनता इस भयंकर युद्ध की उपेक्षा नहीं कर सकती क्योंकि हम जानते हैं कि युद्ध के कारण कोरिया की जनता पर क्या बीत रही है।......कोरिया के विषय में हम लोगों ने जो कुछ सुना और जाना है उससे भी मानव हृदय निरपेक्ष नहीं रह सकता।......हमें मानवता की संहारक बमबाजी और रक्तपात बन्द करना होगा। अभी कल ही हमने फिर तिरासी चीनी और कोरियन युद्ध बंदियों के कत्ल कर दिये जाने का समाचार सुना है। वे भी हमारे ही जैसे मनुष्य और हमारे ही भाई-बहन हैं।......और बारीकियाँ बाद में सुलझाई जाती रहेंगी इस समय हमारा लक्ष्य होना चाहिए कि युद्ध में दोनों ओर से चोट करना बन्द होकर सुलह की बात चलने लायक संधि हो जाय।'

बहुत से लोग बूफे में और आस-पास के कमरों में आपसी बातचीत कर रहे थे परन्तु यह घोषणा होते ही कोरिया का एक प्रतिनिधि हानसेर बोलने के लिए मंच पर आ रहा है, लोग भीतर दौड़ पड़े। हानसेर का दुबला शरीर परन्तु दृढ़ निश्चय की मुद्रा लिए चेहरा और तनी हुई गर्दन से किसी आतंक के सामने न झुकने की प्रतिज्ञा झलक रही थी। वैसे ही दृढ़ निश्चय के कड़कते स्वर में उन्होंने कहा—'मेरा देश शान्ति चाहता है। हमें शान्ति की आवश्यकता है परन्तु राष्ट्रीय दासता और अपमान के मोल पर नहीं। हम लोग विदेशी आक्रमण की बाढ़ के सामने अपने सिर कटा रहे हैं और उसका सामना अपने रक्त की धारा बहाकर कर रहे हैं। शान्ति का मूल्य हमसे अधिक कौन जानता है। संयुक्त राष्ट्रसंघ हमारी बात सुनने के लिए तैयार नहीं परन्तु हम संसार को अपनी बात सुनाना चाहते हैं और इस सत्य को प्रकट करना इस कांग्रेस के मंच से हमारा अधिकार और कर्त्तव्य है।'

'मैं इस समय आपके सामने अपनी बात कहने के लिए अपने बाल-बच्चों, परिवार और मित्रों को छोड़कर आया हूँ। सम्भव है कि जब मैं लौटूँ उनमें से बहुतों को न देख पाऊँ। यदि आप ऐसी परिस्थिति में होते तो आपकी क्या भावनायें होतीं? यदि आप क्षण भर के लिए आँखें बन्द कर मेरे देश की अवस्था की कल्पना कर सकें तो आप बमों का भयंकर विस्फोट सुन पाएँगे, झोपड़ियों और मकानों को धड़ाके से धुएं में उड़ता देखेंगे, गाँवों और गलियों में बच्चों और स्त्रियों की निश्चेष्ट लाशें और जख्मियों को तड़पते देखेंगे। कहिए मेरे देश की अवस्था कब तक ऐसी ही रहेगी।......क्या आप चाहते हैं कि

हम राष्ट्रीय अपमान और दासता स्वीकार कर लें? यह हम नहीं कर सकेंगे। संयुक्त राष्ट्रसंघ सुलह की बात करता है परन्तु उसे टालता भी जा रहा है। सुलह की बातें होते-होते सन् १९५१ से लेकर अक्टूबर १९५२ तक कोरिया में सत्तानबे हजार व्यक्ति और मारे जा चुके हैं। सुलह का वह दिन कब आयेगा?'

'संसार के सभी देशों के प्रतिनिधियों से और विशेषकर अमरीका के प्रतिनिधियों से मैं कोरिया के बूढ़ों, स्त्रियों, माताओं और बच्चों की ओर से यह अपील करता हूँ कि कोरिया में होने वाले अमानवीय संहार को रोकना आप ही के बस की बात है। यदि 'आप भविष्य में विश्वशान्ति चाहते हैं तो पहले इस नरसंहार को रोकने में अपनी शक्ति लगाइये।'

पूरा सभा भवन अन्याय पीड़ित कोरिया के प्रति सहानुभूति से द्रवित जान पड़ता था। कोरिया के प्रतिनिधि के तुरंत पश्चात् अमरीका के प्रतिनिधि हेवार्ड के मंच पर आने की बात सुन हाल की गरमी से भागने के लिये उत्सुक लोग ठिठक गये। हेवार्ड छरहरे शरीर का नौजवान। उसके चेहरे पर उत्तेजित भावों की झलक स्पष्ट थी। वह क्यों उत्तेजित है? क्या अमरीका पर लगाये गये आरोप का प्रतिवाद करने के लिये! यदि वह आरोपों का प्रतिवाद करना चाहता है तो भी उसे बोलने का अधिकार है।

हेवार्ड बोला तो जान पड़ा उसकी उत्तेजना प्रतिवाद के लिये नहीं परिताप के ही कारण थी। हेवार्ड ने कहा—'......अमरीका की जनता अपनी स्वतंत्रता का मूल्य समझती है इसलिये वह दूसरों की स्वतंत्रता का भी आदर करती है। दूसरे देशों की स्वतंत्रता से अमरीका को कोई खतरा या हानि नहीं हो सकती।......अमरीका होड़ द्वारा उन्नति और विकास करने की स्वतंत्रता में विश्वास करता है इसलिये वर्तमान समय में दो विचारधाराओं की होड़ से भी अमरीका के भयभीत होने का कोई कारण नहीं। यदि अमरीका की विचारधारा और जीवन का ढंग अधिक समर्थ और प्रगतिशील है तो उसे किसी से प्रतिद्वन्द्विता और होड़ का कोई भय नहीं।'

'वियतनाम, मलाया और कोरिया के दुखद उदाहरण कुछ देशों की जनता के आत्मनिर्णय के अधिकार में अन्य देशों द्वारा सशस्त्र दखलन्दाजी का परिणाम है। ऐसी दखलन्दाजी का परिणाम केवल नागरिकों की बस्तियों का ध्वंस हो जाना और लाखों मनुष्यों की हत्या ही नहीं बल्कि विश्वव्यापी संहार भी होगा। इस समय यह बहस आवश्यक नहीं है कि कोरिया में युद्ध किसने आरम्भ किया? प्रश्न है कि इसे तुरन्त समाप्त कैसे किया जाय। कोरिया के युद्ध के प्रति स्वयं अमरीका की जनता में गहरा असंतोष है। इस युद्ध ने हमारे हजारों परिवारों को रुलाया है और अनेक विषमतायें हमारे सामने लाकर खड़ी कर दी हैं। हमारे जनरल एक ओर तो चीन और कोरियन युद्ध बंदियों की अपने देश लौटने न लौटने की इच्छा की स्वतंत्रता की रक्षा करना चाहते हैं दूसरी ओर वे ही कैम्पों में बंद इन बंदियों को गोली का शिकार बना देते हैं। हमें खेद है कि हमारी सेनाओं की ऐसी हरकतें संसार में अमरीका के प्रति अनादर की भावना उत्पन्न कर रही हैं।'

'आज यद्यपि अमरीका की जनता की भावना संगठित शान्ति आन्दोलन के रूप में प्रकट नहीं हो रही परन्तु अमरीका के सामाजिक जीवन के हर पहलू से पुकार उठ रही है कि हमारे नौजवानों को वापिस बुलाया जाय। इसलिये सबसे पहली बात है युद्ध को समाप्त कर देना। पहले युद्ध बंद हो जाने से ही उससे सम्बन्ध रखने वाली शेष समस्याओं के सुलझाव की भावना और परिस्थिति तैयार हो सकेगी। मनुष्यों की पुकार सुन सकने और समझ सकने के लिये पहले तोपों की गरज बन्द हो जानी चाहिये। इसलिये सभी की यह माँग है कि यह युद्ध एकदम बंद किया जाय.......।'

कैनाडा का एक नौजवान ईवान डशार्मे मंच पर आया। यह युवक अमरीकी सेना में कोरिया भेजा गया था और वहाँ से बुरी तरह जख्मी होकर लौटा था। उसने कहा—'मैं अपने देश की जनता के सामने दुहाई देता हूँ कि मानवता की पुकार सुनो और यह युद्ध बंद करो। मैं स्वयं हो आया हूँ। मेरी आयु केवल बीस ही वर्ष की है और मैं इस युद्ध के कारण आयु भर के लिये पंगु हो गया हूँ। मैं चाहता हूँ कि मैंने कोरिया में जो कुछ देखा है किसी को न देखना पड़े। बचपन में मैंने स्कूल में पढ़ा था कि हमारे पूर्वज अपने धर्म, अपनी भाषा और अपनी स्वतंत्रता के लिये लड़े थे इसलिये आज कोरिया को अपनी स्वतंत्रता के लिये लड़ते देख मैं उनका विरोध नहीं कर सकता। मैं उनसे सहानुभूति अनुभव किये बिना नहीं रह सकता। पंगु हो जाने पर भी मैं मानवता और शान्ति की रक्षा के लिये, अपनी तरह दूसरों को निकम्मा और दुखी बना दिया जाने के विरुद्ध लड़ना अपना कर्त्तव्य समझता हूँ इसीलिये मैं इस कांग्रेस में सम्मिलित हुआ हूँ। मेरा आपसे संसार की जनता के प्रतिनिधियों से यही अनुरोध है कि इस युद्ध को तुरन्त समाप्त कराइये.......' युद्ध में लगे जख्मों के प्रभाव से अब भी उसके लिये चल सकना कठिन था। उसे सहायता देकर मंच पर पहुँचाया गया था और वैसे ही मंच से उतारा गया। डशार्मे के मंच से उतरते ही एक कोरियन महिला ने आगे बढ़ उसे आलिंगन में ले उसके कष्ट के लिये सम्वेदना प्रकट की। इस दृश्य से किसके रोम न सिहर उठे होंगे।

कांग्रेस भवन और बूफे में कितनी ही भाषायें चलती थीं परन्तु स्वयं हिन्दी के अतिरिक्त अंग्रेजी ही जानने के कारण अंग्रेजी बोल सकने वालों या अंग्रेजों से ही बात-चीत में अधिक सुविधा रहती थी। कांग्रेस में कुछ अंग्रेज मजदूर भी आये हुए थे। बूफे में इन्हें कुछ गम्भीरता से बहस करते देखा। डेनिस ने सौजन्य से मुस्कराकर 'हलो' किया। वहीं बैठ गया और पूछा, 'क्या बहस चल रही है?'

लासन ने मुझे सम्बोधन किया—'आज क्या कांग्रेस में मानवता और शान्ति का ही वातावरण जान पड़ रहा है?' बात समझ में नहीं आई। मिसेज राबिन्सन बोली—'यह कैसे उचित समझा जाय कि जब कोरियनों पर बम गिरने की बात हो या उनके कत्ल करने का चर्चा हो तो आप सहानुभूति में 'शेम-शेम' (लानत-लानत) पुकारें और जब अमरीकन और ब्रिटिश नौजवानों के दल मटियामेट कर दिये जाने की बहादुरी बखानी जाय तो आप समर्थन और प्रशंसा में तालियाँ बजायें। यह क्या शान्ति और मानवता की बात है?' अंग्रेज साथियों के चेहरों पर क्रोध और असंतोष झलक रहा था।

कुछ देर पहले कांग्रेस भवन में एक कोरियन नवयुवती कोरियन युद्ध की अवस्था पर बोल रही थी। उसने सुनाया था कि अंग्रेज और अमरीकन सेना को किसी गाँव में कोरियन छापामारों के छिपे होने का सन्देह था। अमरीकन सेना ने गाँव घेर लिया परन्तु गाँव वालों ने छापामारों को भगा दिया। अमरीकन सिपाहियों ने गाँव के लोगों से छापामारों का पता पूछने के लिये उन्हें बाँध-बाँधकर मारा और उनके मकानों में आग लगा दी। एक स्त्री की गोद का बच्चा छीनकर उसी के सामने संगीन से बेध दिया गया। स्त्री बेहोश होकर गिर पड़ी परन्तु उसने भेद न दिया। अत्याचार की यह घटना सुन लोग 'शेम-शेम' पुकार उठे थे। कोरियन प्रतिनिधि आगे सुनाती गई कि कुछ ही देर बाद गाँव से भागे छापामार अपने साथियों को लेकर लौटे और उन्होंने अंग्रेज और अमरीकन सेना की टुकड़ी पर हमला कर दिया। इस समय अंग्रेज और अमरीकन भागने लगे परन्तु छापामारों ने गाँव को सब ओर से घेर लिया था। एक भी अंग्रेज या अमरीकन सिपाही जीता न बचा। गाँव वालों ने इन सिपाहियों को उन्हीं द्वारा लगाई आग में ही फेंक दिया। इस समय कांग्रेस भवन में तालियाँ बज उठी थीं। अंग्रेज साथियों को कांग्रेस के प्रतिनिधियों का यह व्यवहार अन्याय और पक्षपातपूर्ण जान पड़ा था। उनमें से एक ने फिर दोहराया—'कोरियनों के दुख दर्द पर आँसू बहाने और अंग्रेज लड़कों के मारे जाने पर तालियाँ बजाने से शान्ति में सहायता नहीं मिल सकेगी।'

'साधारणतः किसी के भी मारे जाने पर ताली बजाना अभद्रता ही है।' मैंने कहा—'किसी पर भी अत्याचार होने की बात सुनकर सहानुभूति की भावना होनी चाहिये। जब अत्याचार पीड़ित के प्रति सहानुभूति की भावना होती है तो प्रायः आततायी के प्रति क्रोध भी आ जाता है।'

'हाँ यह ठीक है, स्वाभाविक है' मिसेज राबिन्सन ने सिगरेट से राख झाड़ते हुए स्वीकार किया।

'जब अत्याचार करने के फल में आततायी को मार पड़ती देखते है तो यह सोचकर अच्छा भी लगता है कि अब वह अत्याचार नहीं करेगा। अगर कोरिया के लोग इंग्लैण्ड में आकर अत्याचार करें उनकी प्रशंसा में कोई भला आदमी ताली नहीं बजायेगा और उनके पीटे जाने पर लोगों को संतोष तो होगा कि अत्याचारी पिट गया। ऐसी अवस्था में शायद आप भी ताली बजा दें।' मैंने कहा। एक अंग्रेज नौजवान ने आपत्ति की—'लेकिन जो अंग्रेज और अमरीकन नौजवान कोरिया में भेज दिये गये है उनका क्या कसूर! वे तो सिपाही हैं और हुक्म पूरा कर रहे हैं।'

'माना कि अंग्रेज और अमरीकन नौजवान अपनी इच्छा से कोरिया में हमला नही कर रहे परन्तु आप ही बताइये' मैंने पूछा—'यदि कोरियन उन पर आक्रमण करने के लिये भेजे गये नौजवानों को निर्दोष और भोले मानकर उन पर हथियार न चलायें तो अपनी रक्षा कैसे कर सकेंगे। ऐसे नौजवानों की जवानी की रक्षा उन्हें जनमत के बल से अत्याचार का साधन बनने से रोककर ही की जा सकती है, इसीलिये तो शान्ति-आन्दोलन

किसी भी देश के सिपाहियों के विरुद्ध नहीं बल्कि शस्त्र बल से मनमानी कर सकने की नीति के विरुद्ध ही है।'

१६ दिसम्बर १९५२। संध्या समय फ्रेंच लेखकों ने कांग्रेस में आये सभी लेखकों को भोजन का निमंत्रण दिया था। भारतीय प्रतिनिधि मंडल से इस भोज में मुल्कराज आनन्द, सरदार गुरूबख्शसिंह, मालती बिडेकर, रमनलाल देसाई और मैं स्वयं था। सभी प्रतिनिधि मंडलों से निमंत्रित लेखकों की संख्या सौ से अधिक ही रही होगी। भोजन की व्यवस्था कुरसालोन के मुख्य भवन में ही थी। यह भवन केवल सौ आदमियों के लिए बहुत बड़ा होता और दूसरे प्रतिनिधियों के लिये जगह कम रह जाती इसलिये भवन का आधा भाग गमलों में लगे ऊँचे-ऊँचे पेड़ों से घेरकर अलग जगह बना दी गई थी। भोजन तो पुरतकल्लुफ था ही। अतिथियों को बैठाने के लिये ऐसी व्यवस्था की गई थी कि एक दूसरे की भाषा समझ सकें और बातचीत कर सकें। मेरा स्थान अंग्रेज उपन्यास लेखिका मिस पार्जिटा और अंग्रेजी नाटककार फिलिप्पा बरेल के बीच में था।

मिस बरेल से तो पहले ही परिचय और बातचीत हो चुकी थी। मुल्कराज आनन्द ने पार्जिटा से भी परिचय करा दिया। पश्चिमी शिष्टाचार के अनुसार मेल-मिलाप और भोजन के समय बातचीत का कोई प्रसंग बनाये रखना शालीनता समझी जाती है। बातचीत यथासम्भव बोझल भी न होनी चाहिये। बात मामूली जान पड़ती है परन्तु अभ्यास न होने पर आसान नहीं रहता। मिस पार्जिटा ने वियाना और लन्दन की जलवायु और मौसम की तुलना करने के बाद पूछा—'यहाँ वियाना का खान-पान कैसा लगता है?'—'हम लोगों को तो बुरा नहीं जंचता। इसमें कुछ मसाला रहने से हमारे अभ्यास में समा जाता है।' मैंने उत्तर दे पूछा—'आपकी क्या राय है? आपको तो मसाले शायद नहीं रुचते होंगे।'

'हाँ अच्छा ही है'—उन्होंने उत्तर दिया—'परन्तु मसाला जरूर कुछ ज्यादा ही लगता है और चिकनाई भी ज्यादा रहती है। लेकिन यहाँ भोजन में मांस की बहुतायत है। हमारे यहाँ तो अभी तक मांस का राशन ही चलता है। सप्ताह भर में पाव भर से अधिक मांस एक व्यक्ति नहीं पा सकता।'

अभ्यास भी क्या चीज है? अंग्रेज को अपने यहाँ का भोजन इसलिये अधिक रुचता है कि उसमें मसाला और चिकनाई नहीं रहती। अस्तु, इसके बाद शान्ति कांग्रेस के सम्बन्ध में बातचीत चलती रही। मिस पार्जिटा और बरेल ब्रिटेन के शान्ति चाहने वाले लेखकों के संगठन की ओर से दर्शक के रूप में आई थीं। ब्रिटेन के लेखक यह निश्चय किये बिना कि शान्ति कांग्रेस सोवियत या कम्युनिस्टों का मोर्चा नहीं है, अपने प्रतिनिधि भेजकर उससे सहयोग प्रकट करने के लिये तैयार नहीं थे। बरेल तो शांति कांग्रेस की भावना से बहुत ही प्रभावित थी। पार्जिटा का भी यह विश्वास अवश्य था कि वियाना कांग्रेस किसी दल विशेष का मोर्चा नहीं। चाहें तो यह कहा जा सकता है कि कम्युनिस्टों ने कांग्रेस के आयोजन में विशेष तत्परता दिखाई है परन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि

दूसरी विचारधारा के लोगों को अपनी बात कहने का पूरा अवसर नहीं था या शांति कांग्रेस की बागडोर कम्युनिस्टों के हाथ में है या कम्युनिस्ट इसकी आड़ में अपना कोई दूसरा प्रयोजन पूरा कर रहे हैं।

समीप बैठे लोगों में आपसी बातचीत के साथ-साथ सार्वजनिक बात भी संक्षिप्त और मनोरंजक भाषणों के रूप में चल रही थी। गम्भीरता भी आ ही गई। लुई आरागों, ईलिया एहरनबर्ग, चीनी उपन्यास लेखक माओ-दुन, ब्राजिलियन लेखक और मुल्कराज आनन्द भी बोले। विषय था कि लेखक विश्वशान्ति के लिये क्या कर सकते हैं और उन्हें अपना कर्त्तव्य कैसे निबाहना चाहिये? सुझाव दिया गया कि भिन्न-भिन्न देशों के लेखकों में परस्पर-परिचय और सहयोग का अवसर लाने का यत्न होना चाहिये। चिली के लेखकों ने १९५३ की ग्रीष्म में लेखकों की एक अन्तर्राष्ट्रीय कांग्रेस चिली में की जाने के लिये निमंत्रण भी दे दिया। उसी समय आठ-दस लेखकों की एक छोटी सी कमेटी भी बना दी गई कि शांति के सम्बन्ध में लेखकों की ओर से एक संयुक्त घोषणा प्रकाशित की जा सके।

१७ दिसम्बर १९५२। कांग्रेस के सम्पर्क से वियाना में कुछ सार्वजनिक सभायें, साहित्यिक या वैज्ञानिक व्याख्यान और दो प्रदर्शनियाँ भी चल रही थीं। स्थानीय भाषा जर्मन होने के कारण व्याख्यान प्रायः जर्मन में ही होते थे इसलिये अपनी समझ के बाहर थे। एक प्रदर्शनी शान्ति के लिये प्रयत्नों के सम्बन्ध में हाफबुर्ग में हो रही थी और दूसरी प्रदर्शनी एहर्बरसाल में, अमरीकी सेना द्वारा कोरिया में रोग फैलाने वाले बम फेंकने के प्रमाणों के संग्रह के रूप में की गई थी। प्रदर्शनी के नाम से प्रायः मनोरंजक संग्रह की ही आशा की जाती है। कोरिया और चीन में किये गये कीटाणु-युद्ध के प्रमाणों के इस संग्रह में मनोरंजन नहीं, भय और वितृष्णा ही मन में जागती थी। प्रमाणों के संग्रह को सुविधा से समझा सकने के लिये तीन भागों में बाँट दिया गया था। पहला भाग ऐतिहासिक तथ्यों के संग्रह का था। इस भाग में स्वयं अमरीका में प्रकाशित पुस्तकों, समाचार पत्रों के फोटो लेकर अमरीका में कीटाणु युद्ध की योजना आरम्भ होने का इतिहास दिया गया था। योजना का आरम्भ पर्लहारबर में जापानी बम गिरने के बाद हुआ था। उस समय अमरीकन युद्ध विभाग के लोगों ने आशंका अनुभव की थी कि यदि जापानी बममार पर्लहारबर तक आकर बम फेंक सकते हैं तो वे कीटाणुओं के बम भी फेंक सकेंगे। अमरीका के सैनिक गुप्तचर विभाग के पास जर्मनी और जापान द्वारा रासायनिक और कीटाणु-बमों की तैयारी के समाचार पहुँच चुके थे। योजना का आरम्भ अमरीका ने अपने देश को कीटाणुओं के आक्रमण से बचाने के लिये ही किया था परन्तु इसके साथ ही कीटाणुओं को फैलाने के उपायों पर भी विचार किया गया और समय आने पर जब कोरिया के युद्ध में अमरीका की विराट सैनिक शक्ति मुँह की खाती जान पड़ी तो अमरीका ने अपने सैनिकों को खतरे में डाले बिना कोरियनों और चीनियों का ध्वंस कर सकने के लिये कीटाणु बमों का भी प्रयोग शुरू कर दिया।

ऐतिहासिक तथ्यों के भाग में कीटाणु शस्त्रों को युद्ध के लिये विशेष उपयोगी शक्ति बनाने की योजना के सम्बन्ध में अमरीका के वायु-सेना विभाग के प्रधान टामस के०

फिशर के बयान और अमरीका के सैनिक विभाग की 'कीटाणु युद्ध समिति' के प्रधान ज्योर्ज डबल्यू मर्क की रिपोर्टें भी मौजूद हैं। अमरीकन यूनिवर्सिटियों के अनेक डाक्टरों को इस काम में लगाये जाने का ब्यौरा भी स्वयं अमरीकन पत्रों में प्रकाशित विवरणों के फ़ोटो के रूप में मौजूद है। अमरीकन पत्र स्टार एण्ड स्ट्रिप्स के रविवार जनवरी २७, १९५२ के अंक का फ़ोटो प्रदर्शनी में मौजूद है जिसमें बताया गया है कि विषैली गैस और कीटाणु फैलाने के शस्त्र बहुत ही कम खर्चीले और अपने आपको सुरक्षित रख शत्रु को पराजित करने के उपाय हैं। इस पत्र मे यह बयान ब्रिगेडियर जनरल विलियम एम० क्रीसी का है जो अमरीका के युद्ध विभाग में रासायनिक खोज के अध्यक्ष थे।

दूसरे महायुद्ध के बाद मित्र राष्ट्रों ने कुछ जापानी विशेषज्ञों पर कीटाणु बम बनाने के लिये मुकद्दमे चलाये थे। इनमें से शीरा ईश्शी, जीरो वाकामात्सू और मसाजो कितानो मुख्य थे। इसी प्रकार के अपराध के लिये जर्मनी के डा० शखरीवर पर भी मुकद्दमा चलाया गया था। परन्तु १९५१ में अमरीकन युद्ध विभाग ने इन सब विशेषज्ञों को स्वयं अपने लिये कीटाणु युद्ध का सामान तैयार करने में लगा लिया। प्रदर्शनी में स्वयं अमरीकन पत्रों के उद्धरणों के फोटो मौजूद हैं जिनमें जनरल रिजवे के हुक्म से इन लोगों को कीटाणु युद्ध की योजना के लिये कोरिया भेजने के समाचार हैं (टेली प्रेस डिसपैच, रंगून, ५ दि० १९५१। रूटर डिसपैच ९ दि० १९५१। टाइम्स १० मार्च १९५२। न्यूयार्क 'डेली वर्कर' १३ मार्च १९५२।)

दूसरे विभाग में उन बमों के खोल और बमों के बीच से निकले सामान के चित्र मौजूद थे जिन्हें अमरीका की वायु सेना ने उत्तरी कोरिया और पूर्वी चीन की सीमा पर प्लेग, हैजा और दूसरी घातक बीमारियाँ फैलाने के लिये फेंका था। अमरीका द्वारा रोग के कीटाणु फैलाने के लिये जो प्रमाण कोरिया और चीन के लोगों ने प्रस्तुत किये हैं उनके विषय में तो सन्देह का अवसर होना अस्वाभाविक नहीं परन्तु प्रदर्शनी में मौजूद साक्षी से यह स्पष्ट है कि इस विषय में वैज्ञानिकों के एक अन्तर्राष्ट्रीय मंडल ने घटनास्थलों पर जाकर जांच की थी। इन लोगों ने जो कुछ स्वयं देखा, सुना और जाना है उसके आधार पर यह बयान दिया है—सन् १९५२ के आरम्भ से चीन और कोरिया की जनता और सरकारें अमरीका का सरकार द्वारा इन देशों में कीटाणु फेंककर रोग फैलाने के बारे में शिकायत कर रही थीं। इस विषय की जांच के लिये वैज्ञानिकों की एक अन्तर्राष्ट्रीय परिषद नियत की गई थी। परिषद घटनास्थल पर जाकर दो मास तक जांच-पड़ताल कर इन परिणामों पर पहुँचा है।—जांच-पड़ताल करने के लिये तथ्यों की बहुत बड़ी संख्या मौजूद है और उनमें से बहुत से प्रमाण स्पष्ट और निर्विवाद हैं। इसमें सन्देह नहीं कि अमरीकन सेना ने कोरिया और चीन की सेनाओं के विरुद्ध युद्ध में कीटाणु बम फेंककर रोग फैलाने का यत्न किया है। बहुत से तरीके इस काम में लाये गये हैं जिनमें से कुछ व्यवहार पिछले युद्ध में जापानियों द्वारा उपयोग किये गये तरीकों के परिष्कृत रूप हैं। परिषद बहुत विचारपूर्वक संगत प्रमाणों से इस परिणाम पर पहुँचा है। इन परिणामों को परिषद अनिच्छा और दुख से ही स्वीकार कर रहा है क्योंकि परिषद ऐसे अमानवीय

कामों पर, जिनकी निन्दा सम्पूर्ण मानव समाज करेगा, विश्वास नहीं करना चाहता था। परिषद संसार भर की जनता से अनुरोध करता है कि इस प्रकार के अमानवीय कामों के विरुद्ध जनमत का बल खड़ा करके विज्ञान को मानवता के विनाश से रोका जाये। इस घोषणा पर हस्ताक्षर करने वालों में स्वीडन के प्रसिद्ध डा० ऐंडर्सन, फ्रांस के वैज्ञानिक माल्तेर, ब्रिटेन के डा० जोसेफ नीडहम, इटली के डा० ओलिवो, ब्राजील के डा० पेसोआ और रूस के डा० जुकोव के हस्ताक्षर हैं।

इसी प्रकार घटनास्थल पर जाकर जांच करने वाले अन्तर्राष्ट्रीय जनवादी वकीलों के परिषद के हस्ताक्षरों की साक्षी भी मौजूद है। इस साक्षी पर प्रो० हेनरीख ब्रंडवीनर प्रो० अन्तर्राष्ट्रीय कानून, ग्राज यूनिवर्सिटी, (आस्ट्रिया) इटली के सुप्रीमकोर्ट के वाइसप्रेजीडेंट लुइगी कावालियेरी, इंग्लैण्ड के सालिसिटर जैक गास्टर, फ्रांस के कोर्ट आफ अपील के एडवोकेट मार्क जे क्वीयर, चीन के को पो तीन, बेल्जियम के मारियें लूइस मोएरेन, ब्राजील के लितेल्बा ब्रित्तो और पोलैण्ड के सुप्रीमकोर्ट के जज सोफिया यारिकोवस्की के हस्ताक्षर मौजूद हैं।

सबसे निर्विवाद साक्षी है—स्वयं अमरीकन उड़ाके सिपाहियों की। जिन्हें कीटाणु बम फेंकने के लिये भेजा गया था और उनके जहाज गिरा दिये जाने पर वे गिरफ्तार हो गये थे। इन सिपाहियों :—(1) के० एल० एनोक S. N. A 02069988 आयु 27 वर्ष, यग टाउन ओहियो अमरीका, फर्स्ट लेफ्टीनेन्ट U. S. A. Airforce, (2) जान क्रिन S. N. 17993A आयु 29 वृर्ष पासाडेना कैलीफोर्निया, अमरीका, (3) मार्विन एल० ब्राउन, S. N. R. A. 18397178, 3rd division, 7th Infantry Regiment Kings Company 3rd Platoon, (4) एफ० बी० ओनील S. N. A 01848575, आयु 24 वर्ष फेयर फाक्स, साउथ कारोलिना, अमरीका (5) पी० आर० क्रिस S. N. A 019070. मनमाउथ, इलियानोस, अमरीका के हाथों लिखे बयानों के फोटो भी मौजूद हैं जिनमें इन लोगों ने जापान और दक्षिण कोरिया में कीटाणु बम फेंकने का काम सिखाये जाने और कोरिया तथा चीन की सीमा पर बम फेंकने के लिये भेजे जाने की पूरी कहानी लिख दी है। इन लोगों के हस्तलिखित बयानों के अतिरिक्त अन्तर्राष्ट्रीय जांच परिषद के सामने दिये इनके बयानों के रिकार्ड भी आप उनकी ही आवाज में सुन सकते हैं। वियाना की प्रदर्शनी में इन अमरीकन उड़ाके सैनिकों के ही बयान देखे थे। साधारण सैनिको से तो भय या प्रलोभन से जो चाहे कहला लिया जा सकता है लेकिन भारत लौटने पर १९५३ के आरंभ में अमरीकन वायु सेना के कोरिया में कैद हुए बहुत जिम्मेवार अफसरों कर्नल फ्रांक एच० स्कवाबल और मेजर राय एच० ब्ले के भी बयान पढ़े जिनमें उन्होंने कोरिया और चीन की सीमाओं पर विमानों से कीटाणु बम फेंकने की बात स्वीकार की है। मानवता की हत्या के प्रयत्न के यह सब प्रमाण मनुष्य समाज के लिए अभिमान की बात तो नहीं हैं परन्तु इनका प्रकाश में आना भी तो आवश्यक है ताकि मनुष्य इनके विरुद्ध सजग होकर इन्हें रोकने का उपाय कर सके।

कांग्रेस के अधिवेशन के लिए प्रातः नौ बजे होटल मोजार्ट से चलना होता था। उससे एक घंटे पूर्व भारत से आये प्रतिनिधि आपस में विचार कर लेते थे कि आज किस विषय पर बात होगी और हम लोगों की ओर से कौन, क्या कहेगा। अभिप्राय यह नहीं था कि प्रतिनिधियों की बोलने की स्वतंत्रता पर प्रतिबन्ध लगाना बल्कि यह कि सब लोगों को बोलने का अवसर तो हो नहीं सकता था, इसलिए प्रस्तावित विषय पर बोलने वाले सदस्य को सभी लोग अपनी-अपनी बात बता सकें और जहाँ तक सम्भव हो विचार में सभी लोगों का सहयोग हो जाय। भाषणों का सब भाषाओं में समय पर अनुवाद हो सकने के लिए उन्हें पहले से लिखकर दे देना तो आवश्यक था। प्रतिनिधियों के आपसी विचार-विनिमय से सबको मालूम भी रहता कि हमारी ओर से क्या कहा जा रहा है। भारत से चलते समय ही यह पता था कि भारतीय प्रतिनिधियों को कांग्रेस के बाद पूर्वी प्रजातंत्रों ने उनके देशों में आकर स्थिति देखने का निमंत्रण दिया है। अब मालूम हुआ कि सोवियत की शान्ति कमेटी ने भी हमें अपने देश में आने का निमंत्रण दिया है। प्रश्न था कि सोवियत का निमंत्रण स्वीकार किया जाय या दूसरे प्रजातंत्र देशों का? बहुत से साथी समयाभाव के कारण दोनों जगह जाने के पक्ष में नहीं थे। निश्चय सोवियत के ही पक्ष में हुआ।

अब कांग्रेस में तीसरे प्रस्ताव अर्थात् अन्तर्राष्ट्रीय तनाव को कम कर सकने के विषय पर विचार आरम्भ होना था। प्रस्ताव प्रसिद्ध ब्रिटिश वैज्ञानिक जे० डी० बरनाल ने रखा:—'......अन्तर्राष्ट्रीय तनाव दूर करने के दो पहलू हैं। जिन लोगों को सार्वजनिक जीवन और कार्य का काफी अनुभव है वे तो यह आशा करते हैं कि यह कांग्रेस अन्तर्राष्ट्रीय महाशक्तियों में शान्ति के लिए एक वास्तविक समझौता करा सके। जिन लोगों को सार्वजनिक कामों का अनुभव नहीं, वे समझौते के रूप की बात न सोच सकने पर भी ऐसा प्रयत्न करना चाहते हैं कि कांग्रेस संसार की जनता में शान्ति की ऐसी अदम्य इच्छा जगा दे जिसके विरुद्ध जाने का साहस किसी को न हो सके। यह दोनों विचार न केवल परस्पर-विरोधी नहीं हैं बल्कि एक ही लक्ष्य के सहायक अंग हैं। पहले यह पहचानना आवश्यक है कि शान्ति के लिए आवश्यक परिस्थितियाँ क्या हैं? फिर हमें वैसी परिस्थितियाँ बनाने का यत्न करना चाहिए।'

'इस कांग्रेस में यह स्पष्ट हो चुका है कि जहाँ तक राष्ट्रों की स्वतंत्रता और आत्मनिर्णय के अधिकार का प्रश्न है, सिद्धान्त रूप से सभी लोग उसे स्वीकार करते हैं। इस बात पर भी सभी सहमत हैं कि राष्ट्रों की उत्पादक और आर्थिक शक्ति का नाश करने वाली शस्त्रों की होड़ समाप्त होनी चाहिए और एटम-बम, नेपालम-बम और रोग फैलाने वाले अथवा गैस आदि से व्यापक नरहत्या के शस्त्रों को भी निषिद्ध ठहरा दिया जाना चाहिए। इस विषय में जनता की माँग और उसका एक मत होना भी बड़ी बात है परन्तु यह हमारे काम का आरम्भ ही है। सबसे आवश्यक काम है इस लक्ष्य के मार्ग की रुकावटों को पहचानना और उन्हें दूर कर सकने का यत्न कर सकना। शान्ति आन्दोलन की सबसे बड़ी शक्ति है शान्ति के मार्ग का संसार के लिए कल्याणकारी होना और शान्ति

के लिए जनता की इच्छा। शान्ति विरोधियों की सबसे बड़ी कमजोरी यह है कि युद्ध के लिए अधिक से अधिक तैयारी करते जाने की नीति स्वयं उनके ही पांव काटने लगती है। लगातार शस्त्र बढ़ाते जाने और युद्ध के लिए तैयारी हमारी आर्थिक स्थिति का दिवाला निकाले दे रही है। अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक तनातनी का परिणाम भी हम जीवन की आवश्यक चीजों के महगे होते जाने में और उपनिवेशों या औद्योगिक रूप से कम विकसित देशों से कच्चा माल खिंचता जाने के रूप में देख रहे हैं और इसके परिणाम में इन देशों की अवस्था असह्य हो जाने के कारण वे लोग ऐसी अवस्था से छुटकारा पाने के लिए छटपटा रहे हैं।'

'ऐसी अवस्था में बढ़ते हुए अन्तर्राष्ट्रीय तनाव को रोकने के लिए हम लोगों का व्यक्तिगत कर्त्तव्य यह है कि हम अफवाहों में विश्वास न करें और दूसरों के किसी काम से उत्तेजित होकर ऐसा व्यवहार न करें जिससे तनाव बढ़ने का कारण हो। कुछ प्रश्नों पर घोर मतभेद होने पर भी हमें इस बात में सहमत रहना चाहिए कि मतभेद को दूर करने का उपाय शान्ति से विचार परिवर्तन ही है। जीवन रक्षा के साधनों को बढ़ाने का प्रयत्न शान्ति का मार्ग है। इस विषय में सोवियत, चीन और पूर्वी प्रजातंत्र क्या कर रहे हैं, यह जानकर दूसरे देशों की जनता न केवल अपने जीवन की समस्याओं को हल करने का उपाय सीखेगी बल्कि यह भी समझ सकेगी कि ये देश शान्ति के मार्ग की ओर कैसे बढ़ रहे हैं। आपकी सद्भाव बढ़ाने के लिए आवश्यक है कि दो विचारधाराओं के बीच जो लोहे की दीवार खड़ी कर दी गई है उसे हटाने का यत्न किया जाय।'

'मेरा सुझाव है कि शान्ति प्रेमी लोग संसार के सभी देशों में अपनी-अपनी पार्लियामेंटों में ऐसे ही लोगों के चुनने का यत्न करें जो अपनी सरकारों के शान्ति की नीति के अनुसार चलाने की प्रतिज्ञा करें। जहाँ चुनाव हो चुके हैं या चुनाव शीघ्र होने का अवसर नहीं है, वहाँ शान्ति प्रेमियों को प्रतिनिधि मंडल में ले जाकर, सभायें करके या पत्रों द्वारा अपनी पार्लियामेंटों के मेम्बरों को शान्ति की नीति के अनुसार चलने के लिए प्रेरित करना चाहिए ताकि सभी देशों की सरकारें विश्व शान्ति को अपना लक्ष्य मानें। सर्वसाधारण जनता में शान्ति की इच्छा होते हुए भी एक निराशा छाई हुई है कि शान्ति स्थापित कर सकना उनके बस की बात नहीं। हमें यह निराशा दूर कर सार्वजनिक शक्ति को शान्ति का रक्षक और समर्थक बनाना है। हमारे इसी काम पर विश्वशान्ति की सफलता निर्भर करती है। प्रजातंत्र के युग में सभी देशों की सरकारें अपनी-अपनी प्रजा की प्रतिनिधि होने का दावा करती हैं। ऐसी अवस्था में यदि विश्व जनता शान्ति के लिए सतर्क और सजग हो जाती है तो अपनी सरकारों को भी शान्ति रक्षा का साधन बना सकेगी।'

प्रो० बर्नाल के पश्चात बेल्जियम की एमिली कावनेल और प्रसिद्ध सोवियत लेखक अलेक्जान्डर कोर्नीचक आदि ने भी इसी विषय पर विचार प्रकट किये। ईरान के मुख्य मुल्ला हयातुल्ला ने भी इस प्रस्ताव का समर्थन कर कहा—'कोरिया, वियतनाम और

मलाया में जो नृशंस क्रूरतायें हो रही हैं उनके प्रति खेद प्रकट करने के लिए मैं कांग्रेस में आने के समय से उपवास व्रत कर रहा हूँ और कांग्रेस की समाप्ति तक यह उपवास जारी रखूँगा।' मौलाना की बात से यह स्पष्ट था कि ईश्वर की चिन्ता न करने वाले घोर कम्युनिस्टों से लेकर सम्पूर्ण संसार को भगवान की ही लीला मानने वाले मौलाना तक दर्शन और विचारधारा का भेद रखते हुए भी विश्वशान्ति के लिए क्रियात्मक कार्य में एक मत और सहयोगी हो सकते हैं।

विश्वशान्ति के लिए प्रयत्न के सम्बन्ध में तीन मुख्य प्रश्न :—(१) सभी राष्ट्रों को अपने क्षेत्रों में अपनी-अपनी विचारधारा और व्यवस्था के अनुसार अपनी समस्याओं को सुलझाने, पूर्ण स्वतन्त्रता और दूसरे देशों का उसमें हस्तक्षेप से दूर रहकर, उन देशों की जनता को अपनी समस्यायें सुलझाने के लिए छोड़ देना, (२) सामयिक युद्धों को समाप्त करने के लिए शस्त्र प्रयोग को तुरन्त बन्द कर समस्याओं को विचार-विनिमय से सुलझाने का यत्न करना, शस्त्रों की होड़ को रोककर सभी देशों को निशस्त्रीकरण की नीति स्वीकार कराना और एटम तथा दूसरे सार्वजनिक संहार करने वाले शस्त्रों को निषिद्ध ठहराना और (३) अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में तनाव को दूर कर पारस्परिक सहयोग और सहायता का वातावरण तैयार कर भविष्य में युद्ध न होने देने की चेष्टा करना। सामने आ जाने पर कांग्रेस के प्रतिनिधियों को उनकी अपनी रुचि के अनुसार तीन परिषदों में बाँट दिया गया कि वे एक-एक विषयों पर एक सर्वसम्मत प्रस्ताव तैयार कर सकें। भारतीय प्रतिनिधियों में से श्री० आचार्य, हाजरा बेगम और मुझे भी सभी देशों की अपने क्षेत्र में पूर्ण स्वतंत्रता के प्रश्न पर विचार करने वाली समिति में ही रखा गया था। दूसरे लोगों को अन्य समितियों में। कंजर्टहाज में कांग्रेस के मुख्य भवन के साथ ही कई प्रसिद्ध संगीतकारों के नाम पर अन्य भवन भी थे। हमारी समिति की बैठक मोजार्ट हाल में हो रही थी।

१७ दिसम्बर की संध्या वियाना के जनवादी युवकों ने दूसरे देशों के प्रतिनिधियों को मेल और परिचय के लिये निमंत्रण दिया था। युवक न होने पर भी कुछ साथियों के अनुरोध से दुभाषिया क्लारा शिंडाल के साथ वहाँ गया। हम लोग कुछ विलम्ब से पहुँचे थे। सीढ़ियों से ही कोलाहल सा सुनाई दिया। ऊपर जाकर देखा कि निमंत्रित लोग कई कमरों में भरे हुए थे। किसी कमरे में गाना और किसी कमरे में नाच हो रहा था। ऐसी संगति जिसमें जर्मन, फ्रेंच, नीग्रो, चीनी, अंग्रेज, अमरीकन, भारतीय, पाकिस्तानी, पोल, रूसी और फिनलैण्ड तक के लोग एक साथ हों, किसी भाषा का गाना और नाच सबके लिये अनुकूल हो सकता था? परन्तु समय के अनुरूप गाना चल ही रहा था। गीत के शब्द किस भाषा के थे, मालूम नहीं; शायद शब्द थे ही नहीं, केवल भाव था। बिना शब्दों के भाव कैसे प्रकट हो सकता है? शायद वैसे ही जैसे पक्षियों के गाने में शब्द नहीं स्वर और भाव ही रहता है। शब्द भाव की सूक्ष्मताओं और भेदों को ही प्रकट करते हैं। जब भाव व्यापक होकर हृदय को घेर लेता है तो उसकी घोषणा के लिये स्वर ही पर्याप्त हो जाता है। स्वर जो भी होता सभी लोग उसमें ताली और चुटकी बजाकर सहयोग देते और फिर नाच शुरू हो जाता। सब लोग बाँहों में बाँहें डाले ताल सुर से गोल बाँधकर

घूम रहे थे। एक चक्कर के भीतर दूसरा चक्कर और उसके भीतर तीसरा। जो भी सुर कोई आरम्भ कर देता, दूसरे उसका साथ देने लगते। वे लोग किसी को अलग खड़ा होकर अकेला अनुभव करने देने के लिये तैयार न थे। इस चक्कर में मालती बिडेकर जैसी सम्भ्रान्त लेखिका और संकोचशील गृहणी दलजीतकौर को भी नाचना पड़ा। इस शब्दहीन स्वर संगीत और नृत्य की भाव-भंगियों का एक ही व्यापक भाव था। "हम सब युवा, मानव मात्र की सभी जातियों के भविष्य, भूगोल और परम्पराओं की सीमाओं से बँटे होकर भी एक हैं। हमारे भेद और वैमनस्य हमें नाश और आपदा में डालते हैं और हमारा भ्रातृभाव और सौहार्द्र हमें निर्भय और सबल बनाता है। इसलिये हम सब मानवता के नाते एक दूसरे से प्रेम करते हैं और एक अटूट एकता में बँध गये हैं।" उस समय मुझे फिर कैरो में विमानों के अड्डे का दृश्य याद आ रहा था जहाँ भिन्न-भिन्न जातियों के लोगों मे दुराव और घृणा ही आत्मसम्मान का व्यवहार था, जो पारस्परिक द्वेष और वैमनस्य को ही गौरव की वस्तु समझता है।

१८ दिसम्बर प्रातःकाल के अधिवेशन में पाब्लोनेरुदा ने अड़तालीस देशों के एक सौ तीन लेखकों की ओर से संयुक्त घोषणा पढ़कर सुनाई। घोषणा का भावार्थ इस प्रकार है :—"कलम की शक्ति में विश्वास करने वाले हम सब लोग स्वयं भी और मानव समाज की ओर से सामयिक परिस्थिति के साक्षी हैं। हम विश्वशान्ति में दृढ़ विश्वास करते हैं। यह निश्चय करते है कि अपनी कलम की शक्ति को अपने व्यक्तिक सामर्थ्य और निर्णय के अनुसार विश्वशान्ति की स्थापना के लिये उपयोग करेंगे। दर्शन, राजनीति और साहित्य के क्षेत्र में मतभेद होते हुए भी हम लोग गुप्त या प्रकट रूप में युद्ध की तैयारियों के लिये साहित्य के प्रयोग का एक स्वर से विरोध करते हैं। हम लोग एकमत होकर युद्धों का शिकार बनाई जाने वाली जनता के प्रति सहानुभूति प्रकट करते हैं और मानवता मे दृढ़ विश्वास से शान्ति के लिये प्रयत्न करने का निश्चय करते हैं। हमें पूर्ण विश्वास है कि हमारे इस प्रस्ताव को सम्पूर्ण ससार के लेखकों का समर्थन प्राप्त होगा।"

कांग्रेस भवन में सामयिक युद्धों को, विशेषकर कोरिया का युद्ध तुरंत समाप्त करने के सम्बन्ध में भाषण होते रहे परन्तु साथ के बडे कमरों में राष्ट्रों की स्वतंत्रता और अन्तर्राष्ट्रीय तनाव को मिटाने के प्रश्न पर समितियों की बैठकें भी चलती रहीं।

१९ दिसम्बर कांग्रेस का अन्तिम दिन था और कांग्रेस के प्रधान मंडल का इरादा था कि उस दिन इन तीनों पुस्तकों पर सर्वसम्मति से एक निर्णय कर लिया जाये। कांग्रेस के प्रबन्धकों ने ऐसा इन्तज़ाम किया था कि २० दिसम्बर के प्रायः सभी प्रतिनिधि वियाना से चले जा सकें। हमारे प्रतिनिधि मंडल के अधिकांश लोगों को मास्को जाना था। अभी यह निश्चित पता नहीं था कि हम लोग २० को ही रवाना हो जायेंगे या एक आध दिन बाद? मोजार्ट होटल मे हम लोगों का प्रबन्ध २० दिसम्बर सुबह ११ बजे तक का ही था।

पहले भी कह चुका हूँ कि वियाना संगीत और कला का पुराना केन्द्र रहा है। महायुद्ध में नगर का जीवन बहुत कुछ विश्रृंखल हो गया है पर अब भी दूर-दूर देशों से लोग वियाना में ओपेरा (नाट्य संगीत) देखने आते हैं। दिसम्बर प्रायः ओपेरा का समय समझा जाता है। शौकीन लोग दिसम्बर में वियाना के ओपेरा देखते हैं। जब जनवरी में बरफ़ कड़ी पड़ जाती है तो बरफ़ के 'खेलो' स्कीइंग वगैरा के लिये साल्सबुर्ग या स्विटजरलैण्ड चले जाते हैं। वियाना आकर ओपेरा देखे बिना चले जाने से मन में कलख रह जाती। यह भी खयाल था कि सोवियत जाने पर वहाँ नाटक, ओपेरा और बैले देखने का अवसर मिलेगा तो उसकी तुलना क्या अपने यहाँ की रासलीला और नौटकी से करेंगे?

अपने दल में से कई लोग ओपेरा देखने के लिये उत्सुक थे। सभी कामों में सहायक आस्ट्रियन दुभाषिये साथी मैनफ्रेड नूरंबर्गर से ओपेरा के टिकटों का प्रबन्ध करने का अनुरोध किया गया। मालूम हुआ कि कुछ दिन पहले से प्रबन्ध न करने पर सहसा टिकट मिल जाना कठिन ही है। ऊँची जगहें प्रायः बाहर से आने वाले लोग पहले से ही खरीद रखते हैं। इस समय 'मोजार्ट' में जो ओपेरा चल रहा था उसकी ख्याति भी विशेष थी। बहुत दौड़-धूप करने पर या ओपेरा टिकटों के एक दलाल की मार्फत पचास शिलिंग (१० रु०) में मझले दर्जे के टिकट मिल सके।

ओपेरा का भवन काफी बड़ा था। सगीत के लिये रंगमंच पर लाउडस्पीकर इस ढंग से लगे थे कि आवाज आ ही जाती थी। पात्रो के चेहरे और भावभंगी दूर से स्पष्ट देख सकने के लिये प्रायः लोग ओपेरा ग्लासिस (छोटी दूरबीनें) लिये रहते हैं। यह दूरबीनें रंगशाला में कोट रखने की जगह पर ही पाँच शिलिंग में किराये पर मिल जाती है। सो वह भी लीं। इतनी तैय्यारी के बाद भी, शायद पहली बार ही ओपेरा देखने के कारण, कुछ रस नहीं आया। रस आ सकने में बाधायें भी अनेक थीं। पहले तो जर्मन भाषा न समझना और फिर पश्चिमी संगीत की कुछ भी जानकारी न होना। कथावस्तु भी आधुनिक जीवन से नहीं पश्चिमी पौराणिक गाथा से ही थी जिसमें परियों और जादू का भी काफी प्रसंग था। यह सब कुछ समझ न सकने पर भी रंगमंच की साज सज्जा, दृश्यों की बनावट और परिवर्तन और पात्रों के हाव-भाव में पूर्णता का अनुमान अवश्य होता था। दृश्यों के अन्त में दूसरे दर्शकों द्वारा प्रशंसा से तालियाँ बजा देने से भी पात्रों की सफलता का अनुमान किया जा सकता था लेकिन इतनी बात पर कब तक रीझे रहते। मन आधे से पहले ही ऊबने लगा। समीप बैठी गीता मलिक से धीमे से पूछा—"आपको तो पश्चिमी संगीत का ज्ञान होगा? अपने तो कुछ पल्ले पड़ नहीं रहा।" उनके भी पल्ले विशेष कुछ नहीं पड़ रहा था पर राय यही हुई कि पचास-साठ शिलिंग जेब से दिये हैं तो उतनी देर ओपेरा की कुर्सी पर तो बैठ ही लिया जाय।

मिसेज मलिक बंगाली है। हिन्दुस्तानी उतनी ही जानती है जितनी कुली या टाँगा, टैक्सी वाले से बोल सकने के लिये आवश्यक होती है। अपना बंगला का उच्चारण ऐसा है

कि परिणाम में बात समझा सकने की अपेक्षा परिहास ही हो जाता है इसलिये अंग्रेजी में ही बात कर रहे थे। मिसेज मलिक के दूसरी ओर एक महिला बैठी थीं। उनके कान में अंग्रेजी की भनक पड़ी तो उनकी भी बतियाने की इच्छा उबल पड़ी। उन्होंने मलिक को सम्बोधन कर कहा—"ओफ, कितना सुन्दर! कैसा अपूर्व ओपेरा है। वास्तव में ही वियाना के ओपेरा की तुलना नहीं है। आपका क्या ख्याल है? मैं तो वाशिंगटन से यह दूसरी बार वियाना का ओपेरा देखने के लिये ही आई हूँ।"

मिसेज मलिक वियाना के ओपेरा की रसानुभूति में अपनी असमर्थता क्यों प्रकट करती? उन्होंने भी प्रशंसा में योग दिया। अमरीकन महिला ने उत्साहित हो मलिक की प्रशंसा की—'आप कितनी अच्छी अंग्रेजी बोलती हैं लेकिन पोशाक से तो अंग्रेज नहीं मालूम होतीं।'

'मैं हिन्दुस्तानी हूँ' मिसेज मलिक ने उनके अनुमान में सहायता दी। अमरीकन महिला ने और भी प्रशंसा की, 'How interesting। मेरा भी कुछ ऐसा ही अनुमान था। भारत तो एक महान देश है। हिन्दुस्तान में तो अंग्रेजी ही बोली जाती है न?'

मलिक ने उत्तर दिया—'हाँ, परन्तु कुछ ही लोग अंग्रेजी बोलते हैं। हमारी अपनी अनेक प्रादेशिक भाषायें हैं। अंग्रेजी राज में शासन प्रबन्ध और ऊँचे दर्जे की शिक्षा अंग्रेजी में होने के कारण अन्तर्प्रान्तीय भाषा प्रायः अंग्रेजी ही बन गई थी परन्तु अब उसका स्थान धीरे-धीरे हिन्दी ले रही है।'

'Oh that is really very interesting' अमरीकन महिला बोली, "मेरा खयाल है, आप भी ओपेरा देखने ही वियाना आई हैं।"

'केवल ओपेरा देखने के लिये ही तो नहीं' मलिक ने उत्तर दिया, 'वैसे ओपेरा तो यहाँ का अद्‌भुत है ही पर यहाँ शान्ति कांग्रेस हो रही है। हम कई लोग हिन्दुस्तान से उसी के लिये आये हैं!'

'शान्ति कांग्रेस?' अमरीकन महिला ने कुछ विस्मय प्रकट किया, 'पर वह शान्ति कांग्रेस तो, मैंने पत्र में पढ़ा है कि कम्युनिस्ट कर रहे हैं।'

'हो सकता है कांग्रेस में कुछ कम्युनिस्ट भी हों लेकिन उसमें केवल कम्युनिस्ट लोग ही नहीं हैं। जहाँ तक समझ आता है, सभी तरह के लोग हैं?'

'That is very interesting. क्या कांग्रेस में काफी लोग आये हैं?'

'हम लोग तो केवल तीस-इकतीस आदमी आये हैं। हमारे लिये आस्ट्रिया बहुत दूर है न लेकिन कांग्रेस मे तो अढ़ाई हजार प्रतिनिधि आये हैं।'

'सचमुच! क्या भारत में भी कम्युनिस्ट है?' महिला ने कौतूहल प्रकट किया।

"मेरा ख्याल है कि कुछ है जरूर क्योंकि पार्लियामेंट में ही चालीस के लगभग कम्युनिस्ट मेम्बर हैं। उन्हें चुनने वाले कम्युनिस्ट ही होंगे या कम्युनिस्टों का प्रभाव इतना होगा?"

विराम के पन्द्रह मिनट अभी समाप्त नहीं हुए थे परन्तु इसके बाद अमरीकन महिला ने श्रीमती मलिक से और बात नहीं की। हो सकता है कि मलिक को ओपेरा की शौकीन मान अमरीकन महिला ने उन्हें सभ्य और बात करने योग्य समझा हो परन्तु फिर उनके देश में भी कम्युनिस्टों की व्याधि होने की बात जान छूत के भय से परे हट गई हो। जो भी हो समझ में न आने वाले परन्तु बहुत सुन्दर आस्ट्रियन ओपेरा के व्यवधान में अपने लिये इतना विष्कम्भक (comic interlude) हो ही गया।

कांग्रेस द्वारा विचार के लिये प्रस्तावित तीनों कार्यक्रमों को तीन भागों में बंटी कांग्रेस ने भली प्रकार छानबीन और परख कर अलग-अलग तीनों समितियों में सर्वसम्मति से पास कर लिया था। प्रधान मंडल ने इन तीनों प्रस्तावों को मिलाकर एक घोषणा या अपील संसार की जनता के नाम और एक घोषणा पाँच मुख्य राष्ट्रीय शक्तियों के प्रतिनिधि को दे दिया। इस अपील के विषय में प्रत्येक प्रतिनिधि को अपना मत प्रकट करने का अवसर देने के लिये सभी देशों के प्रतिनिधियों की अलग-अलग बैठकें हुईं जिसमें वे स्वतंत्रता पूर्वक अपना मत या विरोध प्रकट कर सकते थे। लक्ष्य यही था कि कोई भी प्रस्ताव सर्वसम्मति के बिना, केवल बहुमत से पास न किया जाये। इस काम में कई घंटे लग जाना स्वाभाविक ही था। जिस समय यह घोषणायें कांग्रेस के पूर्ण और संयुक्त अधिवेशन में आईं इन पर प्रत्येक प्रतिनिधि के हस्ताक्षर हो चुके थे। इस समय कांग्रेस भवन खचाखच भरा हुआ था।

संसार की जनता के नाम विश्वशान्ति कांग्रेस की घोषणा का भावार्थ यों है :—

'शान्ति रक्षा विश्व समिति (World Council of Peace) ने जनता की यह कांग्रेस इसलिये आयोजित की है कि अनेक आन्दोलनों, संगठनों और विचारधाराओं के लोगों में अनेक प्रश्नों पर मतभेद रहते हुए भी युद्धों की सम्भावना को रोकने और विश्वशान्ति की रक्षा के लिये संसार की सम्पूर्ण जनता का सहयोग हो सके।'

'इस कांग्रेस में पूरी स्वतंत्रता से किये गये विचार परिवर्तन से यह स्पष्ट है कि संसार की जनता जोर-जबर या बल प्रयोग की नीति से संसार में होने वाले संहार और नाश को देखकर और भविष्य में इस नीति से होने वाले संहार और नाश की आशंका देखकर इस नीति को समाप्त कर देना चाहती है। हमारा विश्वास है कि ऐसा कोई मतभेद या झगड़ा नहीं जिसे आपसी बातचीत से सुलझाया न जा सके। इस समय संसार की शान्ति पाँच महाशक्तियों ग्रेट ब्रिटेन, अमरीका, सोवियत समाजवादी संघ, चीनी प्रजातंत्र और फ्रांस पर निर्भर करती है। हम इन पाँचों शक्तियों से माँग करते हैं कि वे एक ऐसी सम्मिलित संधि के लिये, जिससे अंतर्राष्ट्रीय शान्ति की रक्षा हो सके, तुरन्त आपसी बातचीत आरम्भ कर दें। इन पाँच शक्तियों पर बहुत बड़ा उत्तरदायित्व है। संसार की जनता इनसे इस उत्तरदायित्व को पूरा करने की माँग करती है और शान्ति के उद्देश्य की पूर्ति के लिये इन राष्ट्रों को अपना पूर्ण सहयोग अर्पण करती है। जनता की माँग है कि कोरिया में युद्ध तुरंत ही बन्द कर दिया जाये। जब तक नगर और गाँव उजाड़े जाते रहेंगे और लड़ने

वाले लोग नाश के लिये उतावले रहेंगे, समझौते की बात सम्भव नहीं हो सकेगी। आक्रमण बन्द हो जाने पर ही लड़ने वाले समझौते की बात करने लायक अवस्था में होंगे। हमें भरोसा है कि सद्‌भावना रखने वाला प्रत्येक मनुष्य इस निष्पक्ष, न्यायोचित और मानवीय सुझाव का समर्थन करेगा। हमारी यह माँग है कि वियतनाम, लाओस, कम्बोडिया और मलाया में भी शान्ति स्थापित की जाय और बिना किसी शर्त के सभी देशों के लोगों के लिये आत्मनिर्णय और स्वतंन्ता का अधिकार स्वीकार किया जाये। हमारा यह भी तकाज़ा है कि ट्यूनिशिया और मोरोक्को के लोगों की स्वतंत्रता की उचित और स्वाभाविक इच्छा का दमन भी तुरंत समाप्त किया जाये।'

'विश्वशान्ति के लिये जनता की यह कांग्रेस घोषणा करती है कि सभी लोगों को स्वतंत्रता और आत्मनिर्णय और अपने देश में अपने निर्णयानुसार व्यवस्था बनाने या जीवन का क्रम चलाने का पूरा अधिकार होना चाहिये। किसी भी दूसरे राष्ट्र का किसी भी कारण से अन्य देश के भीतरी मामले में हस्तक्षेप न्याय नहीं। सभी राष्ट्रों की स्वतंत्रता की रक्षा के लिये अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति पहली शर्त है। यह कांग्रेस रंग और जाति भेद का विरोध करती है। हम ऐसे व्यवहार को मानवता का अपमान और आपसी वैमनस्य और युद्ध का कारण समझते हैं।'

'हमारा यह विश्वास है कि ऐसी सामरिक संधियाँ जिनसे सबल राष्ट्र निर्बल राष्ट्रों पर जबरन शर्तें लगाये या किसी देश की भूमि पर अन्य देश की सेना का रहना ऐसे देश को अनिच्छा से भी युद्ध में फंसा देने का कारण हो सकता है। हमारी माँग है कि ऐसे देशों को जो किसी दलबन्दी में न बंधना चाहें या अपनी भूमि में विदेशी सेनायें न रखना चाहें, किसी भी प्रकार के आक्रमण या जबरदस्ती की छिपी या खुली धमकी नहीं दी जा सकनी चाहिये।'

'हमें आशंका है कि पिछले युद्ध की चिनगारियाँ योरुप और एशिया में फिर से भभक सकती हैं। हमारा विश्वास है कि जापान और जर्मनी की समस्या का सुलझाव आपसी बातचीत से अवश्य हो सकता है और वैसे ही किया भी जाना चाहिये। हमारी माँग है कि जर्मनी को तुरन्त फिर से एक संयुक्त राष्ट्र बनाकर और प्रजातंत्र अधिकार देकर, ताकि वहाँ नाज़ीवाद और युद्ध में विश्वास का वह ढंग फिर न पैदा हो सके जिसका फल पूरा योरुप भोग चुका है, उसके साथ शान्तिरक्षा की एक ऐसी संधि की जानी चाहिए जिसमें किसी भी देश के विरुद्ध सामरिक सहयोग की शर्तें न हों। हम जापान के साथ भी ऐसी ही संधि की माँग करते हैं जिससे जापान पर विदेशी अधिकार समाप्त होकर उस देश को शान्तिमय अन्तर्राष्ट्रीय परिवार का समान अंग बनने का अवसर मिले। इसी प्रकार आस्ट्रिया के साथ भी उसे विदेशी बन्धन से मुक्त कर देने की संधि की जानी चाहिये।'

'इस कांग्रेस ने अनेक देशों के ऐसे प्रसिद्ध विशेषज्ञों के विवरण सुने हैं जिन्होंने स्वयं कोरिया और चीन में जाकर कीटाणु युद्ध के सम्बन्ध में जांच पड़ताल की है। इन

विवरणों से दुख और खेद अनुभव कर यह कांग्रेस जोरदार माँग करती है कि कीटाणु-युद्ध तुरंत बन्द किया जाय और सभी राष्ट्र सन् १९२५ के कीटाणु शस्त्रों का प्रयोग न करने के लिये जिनीवा में की गई संधि को मानें। विज्ञान के आविष्कारों का उपयोग लाखों निरीह मनुष्यों का संहार करने के लिये नहीं होना चाहिये। इसके साथ ही कांग्रेस एटमबम और रासायनिक शस्त्रों तथा व्यापक संहार करने वाले दूसरे शस्त्रों के भी पूर्ण निषेध की माँग करती है। यह कांग्रेस उन लोगों से सहमत नहीं जो यह विश्वास करते हैं कि कोई देश शस्त्रों की संख्या बढ़ाकर अपनी सुरक्षा कर सकता है। हमें पूर्ण निश्चय है कि शस्त्र बढ़ाने की होड़ छोटे और बड़े सभी राष्ट्रों के लिये आशंका की स्थिति उत्पन्न कर रही है। हम विश्व जनता की इच्छा के अनुसार यह माँग करते हैं कि तुरंत ही एक उचित, न्यायपूर्ण निशस्त्रीकरण के लिये, जिसमें किसी भी राष्ट्र के साथ ज्यादती न हो, अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन आरम्भ किया जाय। हमें भरोसा है कि संयुक्त अन्तर्राष्ट्रीय नियंत्रण द्वारा सभी देशों में समान अनुपात में धीरे-धीरे शस्त्रों की सख्या कम करने में सफलता अवश्य होगी। यह कांग्रेस जनता के ऐसे प्रतिनिधियों की इच्छा और प्रस्ताव का समर्थन करती है जो सभी देशों में शीघ्र ही सांस्कृतिक और व्यापारिक सम्बन्ध पुनः आरम्भ करने की माँग करते हैं। देशों के आपसी व्यापार, कला तथा साहित्य के विकास और विज्ञान की खोज के विनिमय में रुकावटें मनुष्य मात्र के विकास के मार्ग में बाधक बन रही हैं।'

'हमारा विश्वास है कि संयुक्त राष्ट्रसघ की घोषणा के अनुसार सभी राष्ट्रों के लिये समान रूप से शान्ति, सुरक्षा और स्वतंत्रता का अधिकार माना गया है परन्तु व्यवहार इस घोषणा के भाव और प्रयोजन के विरुद्ध हो रहा है। कांग्रेस का अनुरोध है कि चीनी जनतंत्र राष्ट्र को सयुक्त राष्ट्रसंघ में उसका उचित और अधिकारपूर्ण स्थान दिया जाय और अन्य चौदह राष्ट्रों को भी संघ में उनका उचित और अधिकारपूर्ण स्थान दिया जाय। अन्त में कांग्रेस फिर यह माँग करती है कि संयुक्त राष्ट्रसंघ से जो निराशा हो रही है उसे दूर कर इस संघ को सभी राष्ट्रों में सद्भावना और शान्ति स्थापित करने का साधन बनाया जाये। जनता व्यवस्थाओं और आदर्शों के मतभेद होने पर भी शान्ति चाहती है। युद्ध से सभी लोग घृणा करते हैं। जनता में इन बात का भी सामर्थ्य है कि वह आशंकाओं के मंडराते बादलों को दूर कर संसार को शान्तिपूर्ण भविष्य का आश्वासन दे सके। यह कांग्रेस सम्पूर्ण संसार की जनता से आग्रह करती है कि आपसी लेनदेन और सुलह-समझाव की भावना को बढ़ाने के लिये अपनी पूरी शक्ति लगाकर मनुष्य मात्र के शान्ति से जीवित रह सकने के अधिकार की रक्षा की जाय।'

शान्ति कांग्रेस की पाँच मुख्य राष्ट्रों के नाम घोषणा का भावार्थ यों है :—"संसार प्रतिदिन अधिकाधिक और स्पष्ट रूप से अनुभव कर रहा है कि अन्तर्राष्ट्रीय उलझनों के सुलझाव के लिये शस्त्र शक्ति और युद्धों का उपयोग नहीं किया जाना चाहिये। पाँच महाशक्तियों के नाम एक शान्ति संधि करने की माँग पर छः अरब से अधिक व्यक्ति अपने हस्ताक्षर कर चुके हैं। अनेक महत्त्वपूर्ण संगठनों और विचारधाराओं के प्रतिनिधि भी इस बात का समर्थन कर चुके हैं कि अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं को सुलझाने के लिये शस्त्र-शक्ति

के बजाय आपसी बातचीत का ही उपयोग किया जाना चाहिये। जनता की यह शान्ति कांग्रेस अपने १२ दिसम्बर १९५२ के अधिवेशन में पाँच मुख्य शक्तियों अमरीका, समाजवादी सोवियत संघ, चीनी प्रजातंत्र संघ, ग्रेट ब्रिटेन और फ्रांस से सादर यह आग्रह करती है कि वे तुरन्त ही एक ऐसी शान्ति संधि का आयोजन करें जिस पर विश्वशान्ति निर्भर करती है। पाँच मुख्य शक्तियों का आपसी समझौता और शान्ति के लिये संधि निश्चय ही संसार को भावी युद्ध की आशंका से बचाकर शान्ति की स्थापना कर सकती है। पाँचों मुख्य शक्तियों से यह विश्व जनता की माँग है।"

यह दोनों घोषणायें मंच से पढ़ी जाने के बाद और श्रोताओं द्वारा इन्हें सात भाषाओं में सुन लेने पर सूचना दी गयी कि इन घोषणाओं पर सभी देशों के सब प्रतिनिधियों के हस्ताक्षर हो चुके हैं परन्तु उन्हें फिर एक बार सभी प्रतिनिधियों के सामने पुनः सम्मिलित विचार और मत के लिये रखा जा रहा है। यदि किसी भी प्रतिनिधि को इसमें कोई भी आपत्ति या मतभेद हो तो वह पूर्ण स्वतन्त्रता से अपने विचार अथवा अपना मतभेद यहाँ मंच पर आकर अथवा अपने ही स्थान पर खड़े होकर प्रकट कर सकता है। प्रायः दो मिनट प्रतीक्षा की गई कि सम्भव है कोई व्यक्ति मतभेद प्रकट करे। इसके बाद मंच से घोषणा की गई यदि प्रतिनिधि इन घोषणाओं को स्वीकार करते हैं तो अपना समर्थन प्रकट करने के लिये अपने-अपने स्थानों पर खड़े हो जांय। भवन में उपस्थित सम्पूर्ण जनता एक साथ खड़ी हो गई। प्रधान मंडल की ओर से घोषणा की गई कि विश्व जनता की शान्ति कांग्रेस ने इन घोषणाओं को सर्वसम्मति से स्वीकार कर लिया है।

प्रधान मंडल की इस घोषणा से हर्ष और उत्साह से तालियों का जो नाद हुआ है तो कान बहरे ही हो गये। तालियों का वह शोर जनता के मत और इच्छा के साम्य से बंध गये ताल में परिवर्तित हो गया और उनके साथ ही सभी के गले में 'वीव ला पे! वीव ला पे!!' (शान्ति जिन्दाबाद! शान्ति जिन्दाबाद!!) का राग एक स्वर से उठने लगा। अपने आप ही प्रतिनिधियों ने एक दूसरे के हाथ थाम लिये और कुर्सियों की कतारों में बंधे 'वीव ला पे! वीव ला पे!!' की लय पर नाच उठे। चीनी, जापानी, अफ्रीकी, कोरियन, अमरीकन, स्पेनिश, इटालियन, ब्रिटिश, मलायी-भारतीय, वियतनामी सभी 'वीव ला पे' की उमंगों से नाच रहे थे। ऐसा जान पड़ता था अपने-अपने राष्ट्रों और जातीय अस्तित्व का गौरव लिये भी मनुष्यमात्र के जीवन की भावना एक ही है। अनेक रूप, रंगों-पोशाकों और बोलियाँ बोलने वाले मानव का खून एक ही है और वह सहयोग के बल पर ही अपनी मानवता को अजर-अमर और निर्भय बना सकता है। युगों-युगों से राष्ट्रीय प्रतिद्वन्द्विताओं और वैमनस्यों से झुलसाई और सुखाई जाती रही मानवता की बाढ़ सब प्रतिबन्धों को तोड़कर मानवता के सागर की अदमनीय लहर का रूप ले रही थी।

सभी राष्ट्रों की सम्मिलित जनता की इस कांग्रेस को यदि मानवता का प्रतिनिधि माना जाय तो उसका भविष्य कितना आशापूर्ण है? मानवता के भविष्य के उज्ज्वल आकाश में यदि कहीं से भी मानवता का नाश करने वाले वैमनस्य की घटा के चिह्न दिखाई दें तो उसे दूर करने के लिये हमें क्या नहीं निछावर कर देना चाहिये?

२० दिसम्बर के दिन होटल मोजार्ट छोड़कर मास्को के लिये चल देने की बात थी। भारतीय प्रतिनिधि मंडल को सोवियत शान्ति सभा ने मास्को आने का निमंत्रण दिया था परन्तु मालूम हुआ कि सोवियत की सीमा में हमारे प्रवेश कर सकने के लिये अनुमति या परवाना राहदारी (वीसा) नहीं पहुँचे थे इसलिये दो दिन और प्रतीक्षा करनी होगी। चीनी, कोरियन, जापानी और आस्ट्रेलियन प्रतिनिधि भी मास्को जा रहे थे। सम्भव है कि इतने आदमियों के लिये वियाना से मास्को की लम्बी यात्रा का सुविधाजनक प्रबन्ध कर सकने के लिये भी कुछ और समय आवश्यक था। वियाना ऐसी जगह नहीं जहाँ आदमी जल्दी ही ऊबने लगे। बहुत सी जगहें देखने के लिये थीं। श्वाइनबुर्ग का पुराना महल भी देखने गये। महल अपनी विशदता और भव्यता के कारण देखने योग्य तो होते हैं ही। श्वाइनबुर्ग तो हैप्सबर्ग साम्राज्य के सम्राटों का विश्राम, क्रीड़ा और विनोद स्थल था। महल की विशदता, विस्तार और कलात्मकता सभी साम्राज्य की शक्ति और समृद्धि के अनुकूल है। श्वाइनबुर्ग के अतिरिक्त और भी कई पुराने महल वियाना में मौजूद हैं। यदि सब महलों का क्षेत्रफल और उनमें रह सकने की जगह या उस पर आई लागत का अनुमान किया जाये तो शायद वियाना जैसे बड़े नगर के एक चौथाई से कम न आंका जायेगा; अर्थात् राज परिवार के लिये उतनी ही जगह की आवश्यकता थी जितनी कि उनकी प्रजा के बारह या तेरह लाख व्यक्तियों को मिलाकर रही होगी। यदि हैप्सबर्ग की प्रतिद्वन्द्वी साम्राज्यवादी शक्तियों ने उन्हें टक्कर मारकर गिरा न दिया होता तो भी क्या ऐसी व्यवस्था सदा के लिये निभती रह सकती थी?

ऐसी व्यवस्था का श्रेय या दोष केवल हैप्सबर्ग को ही तो नहीं दिया जा सकता। वियाना जाने से कुछ ही दिन पहले जयपुर, जोधपुर और बीकानेर गया था। स्थानीय पुराने और नये राजमहलों को देख पाने का भी अवसर हुआ। हैप्सबर्ग का वंश तो एक विशाल और औद्योगिक रूप से विकसित साम्राज्य का स्वामी था परन्तु हमारे जयपुर, जोधपुर, बीकानेर और उदयपुर के राजा, राठौर और राणा कितने-कितने बड़े साम्राज्यों के स्वामी थे? उन्हीं के पुराने और नये महलों को देख लीजिये। आधे में पूरी राजधानी और आधे में राजवंश का घर! इतने ही से भी तो उन्हें संतोष नहीं था। पुराने से ऊबकर या अपनी प्रतिष्ठा की प्रतिद्वन्द्विता में नये महल भी बनते ही जा रहे थे। महाराज जोधपुर से बातचीत के समय उन्होंने अपनी रियासत के राजस्थान में मिला दिये जाने और उन्हें केवल सात लाख रुपये वार्षिक खर्च बाँध दिया जाने के कारण उन पर आ गई आर्थिक विपत्ति की चर्चा करते हुए कुछ ही बरस पहले अपने नये बने महल की बाबत कहा था—'......हमारे लिये जो आमदनी भारत सरकार ने निश्चित कर दी है, उसमें तो उस महल की और मरम्मत भी ठीक से होती रहना सम्भव नहीं।' महाराज की इस विपत्ति के प्रति सहानुभूति अनुभव कर भी यह ध्यान आये बिना नहीं रह सकता कि जनता द्वारा पैदा किये जाने वाले धन का कितना अंश महाराज की सुविधा के लिये व्यय होता होगा? जोधपुर रियासत में जाकर यह कोई भी देख सकता है कि प्रजा का बहुत बड़ा अंश कठिनाई से दिन-रात में एक बार नमक से रोटी खा सके तो अपने आपको धन्य माने।

जोधपुर, जयपुर, बीकानेर में रक्त बहाने वाली कोई क्रान्ति नहीं हुई। सामन्तवाद को अव्यावहारिक समझने वाली पूँजीवादी कांग्रेसी सरकार ने शान्तिपूर्वक नये न्याय की व्यवस्था कर दी है। इस न्याय के अनुसार अब सामन्तवादी प्रभु तो अपने पुरखों की सम्पत्ति रियासत को अपनी सम्पति नहीं मान सकता परन्तु जयपुर की प्रजा के बिड़ला जैसे और अन्य रियासतों के सेठ लोग भी साधनों के स्वामित्व के अधिकार से अपने व्यवसाय व निर्वाह के लिये लाखों व्यक्तियों को अपना मजदूर या नौकर बनाकर रख सकते हैं। कांग्रेस राज के न्याय की नैतिकता के अनुसार भूमि के स्वामित्व की वंश परम्परा के अधिकार से दूसरों पर शासन करना, उनका श्रम हथिया लेना अन्याय है क्योंकि ऐसे सामन्तवादी बंधन में पूँजीवाद को पनपने की स्वतन्त्रता नहीं हो सकती थी। परन्तु इस राज की नैतिकता में साधनों के स्वामित्व के अधिकार से दूसरों पर शासन करना या उनके श्रम का फल हथिया लेना अन्याय नहीं है। वियाना में भी ब्रिटेन, अमरीका और फ्रांस नाज़ीवाद को नाश करने का दावा कर ऐसे ही न्याय की स्थापना कर रहे हैं।

युद्ध के बाद से आस्ट्रिया और वियाना नगर भी चार राष्ट्रों अमरीका, ब्रिटेन, सोवियत संघ और फ्रांस के अधिकार में बँटा हुआ है। यों वियाना में आस्ट्रिया की अपनी सरकार है परन्तु इस सरकार को इन राष्ट्रों के निर्देश के अनुसार ही चलना पड़ता है। नगर का नियन्त्रण बारी-बारी से एक-एक मास के लिये प्रत्येक राष्ट्र के हाथ में आता रहता है। युद्ध से पहले तक आस्ट्रिया अच्छा औद्योगिक देश था। अब मित्र राष्ट्रों द्वारा लगाई गई शर्तों के अनुसार वह विदेश में बेचने लायक माल तैयार नहीं कर सकता। उसे अपना माल कच्ची हालत में ही, उदाहरणतः धातुओं को पदार्थ बना सकने लायक अवस्था तक लाकर ही मित्र राष्ट्रों के हवाले कर देना पड़ता है। दाम भी आस्ट्रिया स्वयं निश्चित नहीं कर सकता इसलिये बहुत से उद्योग-धन्धे प्रायः बन्द हो गये हैं। बाहर से आने वाले यात्री को नगर में घूमने पर भिन्न-भिन्न भागों में भिन्न वर्दी के कुछ सिपाही नजर आ जाने के अतिरिक्त और भेद नहीं जान पड़ता परन्तु नगर के निवासी अवश्य भेद अनुभव करते हैं। यों प्रत्येक राष्ट्र ने अपने विभागों में सार्वजनिक सुविधा की कुछ व्यवस्थायें की हुई हैं। उदाहरणतः आवश्यक सूचना देने के स्थान, वाचनालय इत्यादि परन्तु रूसी क्षेत्र में साधारण स्थिति के लोग भी कुछ अधिक संतुष्ट जान पड़े। रूसी क्षेत्र में कुछ सरकारी दुकानें, 'काफ हाज' हैं जिनमें भोजन तथा दूसरी आवश्यक वस्तुएँ दूसरी दुकानों की अपेक्षा काफी सस्ती मिल जाती है। मूल्य में ३३% तक का भी अन्तर रहता है। इन दुकानों पर आवश्यक वस्तुयें ही मिलती हैं शौक की नहीं। इसके अतिरिक्त बच्चों की निश्शुल्क शिक्षा आदि का प्रबन्ध भी इस भाग में अधिक सुविधा का है।

वियाना में प्राइवेट-थियेटर या कैब्रे की भी कमी नहीं है। प्राइवेट-थियेटर में भीतर जाने के लिये दाम देना पड़ता है। ये प्राइवेट-थियेटर या कैब्रे क्लब के रूप में काम करते हैं। भीतर जाने के टिकट का कानूनी अर्थ क्लब की सदस्यता का शुल्क होता है। ये जगहें क्लब इसलिये कहलाती हैं कि वहाँ ऐसे बहुत से काम होते हैं जिन्हें सार्वजनिक थियेटर में

कानूनन नहीं किया जा सकता या करने पर झगड़ा फसाद की आशंका रहती है। दर्शकों की संख्या अधिक नहीं रहती। थियेटर देखते समय शराब की बिक्री भी होती रहती है और अकेलेपन की कलख दूर करने के लिये संगति भी वहीं मिल जाती है। प्राइवेट-थियेटर में नाट्य या संगीत का जो नमूना देखा वह बहुत उत्कृष्ट नहीं जंचा। मुख्य प्रयोजन स्वच्छन्दता से बैठकर पीना, ऐसे ढंग और व्यवहार देख सकना जिन्हें सर्वसाधारण नहीं देख सकते या देखें तो घबरा जायें और रात गुजारने का साथी ढूँढ़ लेना ही रहता है। यह व्यभिचार की उच्छृङ्खलता को साधनों के पर्दों से कला और विनोद का रूप दे देने का ढंग है। जान पड़ता है कि इस प्रकार के मनोविनोद में पुरुष ही आनन्द पाता है क्योंकि खर्च का बोझ उसके कंधे रहता है। नारी सुख दे सकने का मूल्य लेती जान पड़ती है। पता लेने पर यह भी मालूम हुआ कि नारी भी अपने साधनों के अनुसार यहाँ आनन्द मोल ले सकती है परन्तु वैसी नारियों का अनुपात अधिक नहीं है क्योंकि साधनों का स्वामित्व प्रधानतः पुरुष के ही हाथ में है। साधन सम्पन्न होने पर नारी भद्र समाज का अङ्ग भी तो रहती है। साधनों और धन का प्रयोजन आदर पाना भी होता है। अपने लिये भद्रता के आदर की रक्षा करने के लिये हमारे समाज की परम्परा के अनुसार नारी को अधिक संकोचशील होना पड़ता है। जब भद्रता की रक्षा करना सम्भव ही नहीं रहता तो वह संकोच को लात मार देती है।

कांग्रेस के आरम्भ में, बारह या तेरह दिसम्बर को ही नेताजी सुभाष बोस की पत्नी श्रीमती एमिलि शेंकल बोस से परिचय हो गया था। श्रीमती शेंकल ने ही भारतीय प्रतिनिधियों का पता लेकर अपना परिचय दिया था। उनका परिचय पा हम लोगों के मन में भावुकता और आदर उमड़ आया। वे भी हम लोगों से मिलकर प्रसन्न हुईं। वे अंग्रेजी खूब मजे में बोलती हैं। पहली बार जिस समय उनसे परिचय हुआ हम लोग कांग्रेस भवन की सीढ़ियाँ चढ़ रहे थे। कार्यवाही आरम्भ होने में दो या तीन मिनट का ही समय शेष था इसलिये मन भर बातचीत कर सकने का अवसर न था। हम लोगों ने निवेदन किया कि मध्याह्न में कांग्रेस की कार्यवाही से अवकाश के समय बूफे में वे मिलें तो हम लोग बहुत सी बातचीत करना चाहेंगे।

'मैं बूफे में कैसे आ सकती हूँ?' श्रीमती एमिलि बोस ने उत्तर दिया, 'ये टिकट तो मैं किसी से माँगकर लाई हूँ। मैं कांग्रेस की डेलीगेट थोड़ी ही हूँ।'

हमने कुछ संकोच से प्रस्ताव किया कि उनके मकान का पता मिल जाये तो हम लोग वहीं उनके दर्शन को पहुँच सकेंगे। इस पर उन्होंने उत्तर दिया कि दिन भर तो वे कांग्रेस में नीचे टेलीफोन विभाग में ही रहती हैं। हम लोग जब चाहें उनसे मिल सकते हैं।

अनुमान किया कि श्रीमती बोस शान्ति कांग्रेस में डेलीगेट नहीं हैं। वे स्वयं सेविका बनकर टेलीफोन विभाग में काम कर रही हैं। हम लोगों ने शान्ति के उद्देश्य के प्रति उनके सेवाभाव की सराहना की। उन्होंने हमारा भ्रम निवारण करने के लिये उत्तर दिया—'मैं नगर के टेलीफोन में काम करती हूँ यहाँ मेरी ड्यूटी लगा दी गई है। इसमें मेरे

चाहने न चाहने का कोई सवाल नहीं।' फिर मिलने की बात कह हम लोग सीढ़ियाँ चढ़ने लगे। चौबेजी वकील आदमी, पुलिस की बुद्धि से चलने वाले बोले, 'क्या नेताजी की पत्नी की स्थिति की महिला के लिये, डेलीगेट हुए बिना डेलीगेट का टिकट माँगकर भीतर आना शोभाजनक है?'

—'क्यों, तुम्हारा मतलब क्या'?—चौबेजी से प्रश्न किया; और उन्होंने उत्तर दिया—'जाने कौन हैं? क्या सबूत?'

इसके बाद कांग्रेस भवन की ड्योढ़ी में श्रीमती बोस से सामना हुआ तो पेप्सू के ताराचन्दजी गुप्त साथ थे। नेताजी की पत्नी को साक्षात सामने देख गुप्तजी की आँखें आदर और श्रद्धा से भीग गईं। उन्होंने अपनी लड़की अनीता बोस से भी परिचय कराया। बिटिया की आयु नौ-दस वर्ष रही होगी। तीन बार मुझे नेताजी से बातचीत का और एक बार साथ यात्रा करने का अवसर मिला है। बिटिया का चेहरा नेताजी से बहुत कुछ मिलता हुआ जान पड़ा। इसकी चर्चा अपने साथियों से भी की। श्रीमती बोस ने हाल-चाल पूछने के बाद प्रश्न किया—'कहिये, शान्ति का विस्फोट कैसा हो रहा है?' इतने कम समय के परिचय में इस परिहास या विद्रूप की व्यंजना को ठीक-ठीक भांप लेना कुछ कठिन ही था इसलिये केवल मुस्कराकर ही रह गये।

साथी ताराचन्द ने श्रीमती बोस से कुछ बात करने के लिये, अत्यन्त आदर से जरा एक ओर चलने का अनुरोध किया। भीड़ से हटकर उन्होंने द्रवित स्वर में प्रश्न किया—'नेताजी के विषय में आपका क्या ख्याल है?'

'मेरा तो विश्वास है कि वे जीवित हैं।'

उनके उत्तर से जिज्ञासा और बढ़ी। प्रश्न किया—'आपके विचार में वे कहाँ होंगे?'

'क्यों, वहीं! तुम लोगों के राज में।'

कुछ न समझ ताराचन्द ने बात स्पष्ट करने के लिये पूछा—'आपका मतलब है, सोवियत में?'

'हाँ और क्या!' श्रीमती बोस ने दृढ़ता से उत्तर दिया।

कुछ सहमते हुए ताराचन्दजी ने प्रश्न किया—'आपका विचार भारत में आने का है?'

'नहीं, मैं यहाँ मजे में हूँ' श्रीमती बोस ने बात समाप्त कर दी।

श्रीमती बोस की इन सब बातों में कुछ समन्वय न कर सकने के कारण यह नहीं समझ पाये कि इनसे बात करें तो क्या और कैसे इसलिये मिलने का उत्साह नहीं हुआ परन्तु ताराचन्द और मिश्रजी नेताजी और उनकी पत्नी के प्रति भक्ति के कर्त्तव्य से यह उचित समझते थे कि वियाना से चल देने से पहले श्रीमती बोस को सब भारतीय प्रतिनिधियों की ओर से होटल मोजार्ट में आमंत्रित कर उनका आदर किया जाय और आत्मीयता से बातचीत का भी अवसर मिले। इस अभिप्राय से निमंत्रण देने के लिये उनके पास पहुँचे।

'मैं यह सब चकल्लस पसन्द नहीं करती' श्रीमती बोस ने हमें उत्तर दिया।

कांग्रेस के साथ ही कुरसालोन में कांग्रेस द्वारा की गई खान-पान की व्यवस्था भी समाप्त हो गई थी। वियाना में घूम-घामकर कर भोजन करने पर देखा कि सभी जगह कुरसालोन की नफासत और शान नहीं है। 'जीफर बावर' औसत दर्जे का रेस्टोरां समझा जाता है। उसे बम्बई के मामूली ईरानी रेस्टोरां की प्रतिलिपि ही समझिये। उससे सस्ते रेस्टोरां भी हैं जहाँ बारह-चौदह आने में सूप और रोटी लेकर पेट भर लिया जा सकता है। वियाना के लोग भोजन के विषय में अंग्रेजों की तरह कट्टर नहीं। हंगरी और बुल्गेरिया का भी काफी प्रभाव जान पड़ता है। गुलाश तो प्रायः अपने यहाँ के कोरमे जैसा ही होता है। कुछ रेस्टोरां में मेज पर लाल मिर्च भी मौजूद देखी। अपने यहाँ की तरह वियाना में भी सस्ते और मंहगे बाजार हैं जहाँ एक ही चीज कुछ सस्ती-मंहगी खरीदी जा सकती है। सौदा बेचने का काम स्त्रियाँ ही करती दिखाई दीं। भाव करने का रिवाज प्रायः नहीं ही दिखाई दिया।

योरुप में होटल, रेस्टोरां के खर्च का एक विशेष भाग बख्शीश (टिप) बन जाती है। बख्शीश या टिप लेने-देने के ढङ्ग से देने और लेने वाले के श्रेणी या स्तर का सम्बन्ध स्पष्ट हो जाता है। जिनीवा या ज्यूरिच में पाँच फ्रांक•(पांच रुपये) का खान-पान होने के बाद वेटर बिल सामने रखते समय निस्संकोच कह देगा—पचास सू (आठ आने) सर्विस के। गाहक इससे भी अधिक देना चाहे तो उसकी इच्छा पर कमी नहीं हो सकती। जो लोग बख्शीश देना नहीं चाहते, वे स्वयं ही काउण्टर से आवश्यक चीज ले लेते हैं। वियाना में वेटर इस अधिकार से बात नहीं करता परन्तु बख्शीश की आशा अवश्य करता है। बख्शीश न देने पर गाहक वेटर की नजर में गिर जाता है, व्यवहार में कुछ रुखाई भी आ जाती है।

वियाना में बख्शीश इस हद तक नागरिक जीवन का अङ्ग बनी हुई है कि डाकखाने में टिकट खरीदने पर यदि फिरती में कम ही खरीद हो और पैसा उठा लेने में आपको कुछ देर हो जाय तो डाकखाने का आदमी मुस्कराकर धन्यवाद दे वह पैसे स्वयं समेट ले सकता है। हम लोग मोजार्ट होटल में कई दिन के लिये ठहरे थे। आपस में समझ लिया था कि टिप देकर आदर पाने की होड़ न करना ही ठीक है। जाते समय एक साथ उचित टिप दे दी जायेगी। हम लोगों की यह समझदारी मोजार्ट होटल के चाकर समुदाय को भली नहीं लगी। साथी मैनफ्रेड से जो प्रायः मित्र का ही स्थान ले चुका था, मालूम हुआ कि होटल में हमारे टिप न देने से हमारे प्रति आदर की भावना मिट गई थी। मैनफ्रेड की मार्फत आश्वासन दिया कि चलते समय टिप का ध्यान रखा जायेगा। किया भी यही कि होटल छोड़ते समय प्रति व्यक्ति दस रुपये के हिसाब से एक साथ बख्शीश मुंशी को दे दी परन्तु इतने से भी खोया हुआ आदर वापस नहीं पा सके। शायद चाकर समुदाय को हमारे बख्शीश दे देने की बात मालूम ही नहीं हो सकती थी क्योंकि अपने सूटकेस हमें लारी पर स्वयं ही लादने पड़े थे।

लोहे की दीवार के उस ओर

मास्को की राह में

२३ दिसम्बर १९५२ प्रायः नौ बजे हम लोग मोजार्ट होटल मे एक बस में वियाना के पूर्वी स्टेशन की ओर चले। अवसर से आकाश साफ था। सड़कों पर बिछी हल्की-हल्की बरफ के कण सूर्य की किरणों में दानेदार चीनी की तरह चमक रहे थे। भारत में पहुँचने वाले प्रचार के अनुसार लोहे की दीवारों से घिरे मास्को की ओर चल देना हम लोगो के लिए एक सुदूर कल्पना के समान ही था। पर अब हम लोग सोवियत शान्ति सभा के निमत्रण पर सचमुच मास्को की ओर चल रहे थे। हमारा उत्साह और आह्लाद प्रकट भी हो रहा था। नौजवानों ने ऊँचे स्वर में तान छेड दी—'चली रे चली, मेरी नाव चली रे! मेरी नाव मास्को को चली।' पंजाबी, बंगाली, मराठी, गुजराती, मद्रासी सब एक साथ यही गा रहे थे। किसी को ख्याल आया तो यह गीत छोड्कर 'जन गण मन अधिनायक जय हे, भारत भाग्य विधाता।' शुरू हो गया। स्टेशन होटल से चार-पाँच मील रहा होगा। रास्ते भर कोई न कोई गीत चलता ही रहा। वियाना का यह स्टेशन नगर के सोवियत भाग मे है। स्टेशन पर आस्ट्रिया के झंडे के साथ ही हसिया-हथौडा और कोने पर तारा बना सोवियत का लाल झडा भी फहरा रहा था। स्टेशन की पुरानी इमारत युद्ध के समय बरबाद हो चुकी थी और काम चलाने के लिए एक बारक सी खडी कर दी गई थी।

स्टेशन पर पहुँचते ही, हम लोग सोवियत शान्ति सभा के अतिथि बन गये। लम्बी ट्रेन में चीनी, कोरियन, रूसी और हम लोगों के लिए अलग-अलग डिब्बे बाँट दिये गये। गाडी में योरुप में चलने वाली गाडियो की तरह लगातार बरामदा था। किसी भी डिब्बे से गाडी के ओर-छोर तक जाया जा सकता था। गाडियाँ दो-दो व्यक्तियों के लिए छोटे-छोटे डिब्बों मे बँटी हुई थी ताकि रात को सो सकने में भी असुविधा न हो। हमारे वियाना के दुभाषिये साथी मैनफ्रेड और क्लारा शिडल स्टेशन तक छोडने के लिए आये थे। उन लोगों से इतनी आत्मीयता हो गई थी कि विदाई अखर रही थी।

गाड़ी चलने मे अभी कुछ मिनट शेष थे। सामने की लाइनों पर कुछ लोग सफाई और दूसरा काम कर रहे थे। ऊपर से नीचे तक एक मे मिले, मजदूरो के नीले रंग के कुर्ता-पाजामा पहने रहने पर भी यह साफ जान पड़ता था कि उनमें एक मजदूर स्त्री थी। हाजरा बेगम ने आगे बढ़कर उससे बात करनी चाही। भाषा का व्यवधान बीच में होने पर भी वह इतना समझ गई कि हम लोग भारतीय हैं और शान्ति कांग्रेस में भाग लेने आये थे कि भविष्य में युद्ध न हो। स्त्री के आँसू बह चले। युद्ध में उसका पति मोर्चे पर मारा गया था और नगर में बम गिरने पर उसके दोनों बच्चे मर गये थे। उनकी याद में

बिसूरती रहने के लिए वह प्रौढ़ा अभी जिन्दा ही थी। भर्राये हुए गले से उसने कहा—'भगवान तुम्हारा भला करे। भगवान अब और युद्ध न होने दें तभी कल्याण है।' युद्ध न होने देने या अपने बच्चों के कल्याण के लिए तो उसने पहले भी भगवान की कई बार प्रार्थना की ही होगी। भगवान की प्रेरणाओं के चरितार्थ हो सकने और मनुष्य के अनुभव से उत्पन्न कल्याणकारी भावनाओं के पूरा हो सकने के लिए मनुष्य के ही प्रयत्न की आवश्यकता होती है। खैर, उसकी इस प्रार्थना की भी वही भावना थी जो शान्ति कांग्रेस में इकट्ठे हुए दो हजार पाँच सौ प्रतिनिधियों की थी।

साढ़े ग्यारह बजे के लगभग गाड़ी वियाना स्टेशन से चली। वियाना नगर का आँचल अंगूरों की खेतियों, दोमंजिली बस्तियों और छोटे-मोटे कारखानों से घिरा है। गाँव अधिक दिखाई नही दिये। जान पडता था कि युद्ध के कारण उजड़ गई बस्तियाँ अभी फिर से बस नहीं पाईं। खेती की भूमि प्रायः बरफ़ के टुकडो और कोहरे से ढंकी हुई थी। वृक्षों के पत्ते हेमन्त और बरफ के कारण झड़े हुए थे। सूर्य की किरणें कोहरे को बेधने का यत्न कर रही थीं। परन्तु बादल आड़ बन जाते थे। योरुप में सर्दी का मौसम बेरौनकी और असुविधा का होता है और गरमी बहार का। हमारी गाड़ी स्पेशल ट्रेन थी इसलिए छोटे-मोटे स्टेशनों पर नही ठहर रही थी। घंटे भर बाद गाड़ी रुकी। कुछ फौजी अफसर गाड़ी मे चढ़ आये। पासपोर्ट देखे गये और उन पर हमारे आस्ट्रिया की सीमा पार करने की मोहर लगा दी गई।

दस मिनट बाद ही गाड़ी फिर खड़ी हो गई। दूसरी तरह की टोपी वर्दी पहने अफसरों ने फिर पासपोर्टों और प्रवेश-पत्रों की माँग की। हम हंगरी की सीमा में प्रवेश कर रहे थे परन्तु हंगरी मे प्रवेश के लिए अनुमति पत्र नहीं लिये थे। नियमानुसार अफसरों ने गाड़ी को आगे बढ़ने देने से या भारतीय प्रतिनिधि मंडल को हंगरी में प्रवेश करने देने से इनकार कर दिया। उनसे तर्क और अनुरोध किया गया कि हम लोग हंगरी में ठहरेंगे नही, रूस जा रहे हैं। हंगरी से आये प्रतिनिधि भी इसी ट्रेन से लौट रहे थे। यह पता चलने पर कि हम लोग शान्ति कांग्रेस से आ रहे हैं, उनकी कड़ाई मे कुछ ढील आ गई। अमरीकन और फ्रांसीसी सीमा में शान्ति कांग्रेस की बात सुनने पर पासपोर्ट और वीसा देखने वाले अफसर होठ दबाकर एक नजर से घूर लेते थे। वहाँ शान्ति कांग्रेस से सम्पर्क संदेह का कारण था और यहाँ संदेह निवारण का। ठीक नही कह सकते कि अफसरों ने टेलीफोन पर हंगरी की राजधानी बुडापेस्ट से बात की या जो हो, एक घंटे बाद उन्होंने हमें आगे बढ़ने की इजाजत दे दी। यह लोहे की दीवार के भीतर चौकसी का पहला अनुभव था। किसी दूसरे देश की सीमा में यों प्रवेश कर लेना शायद सम्भव न होता। सूचना मिली कि हमारी गाड़ी लगभग आधी रात को बुडापेस्ट पहुँचेगी। बुडापेस्ट में स्थानीय शान्ति सभा के लोग कांग्रेस से लौटने वाले प्रतिनिधियों से मिलने के लिए स्टेशन पर आयेंगे।

हंगोरियन लोग हंगरी को वेंगरी उच्चारण करते हैं। हंगरी की सीमा में प्रवेश करने के बाद आकाश कुछ साफ होने लगा। रेल लाइन के दोनों ओर के दृश्य में भी अन्तर

आया। स्टेशनों पर हंगरी के झंडे के साथ ही हंसिये-हथौड़े का लाल झंडा भी दिखाई देता था। काम चलाने के लिए जल्दी में खड़े कर लिए गये काठ के मकान काफी संख्या में दीखने लगे। बिजली के तारों के जाल फैलते दिखाई दिये। तारों के नीचे खम्भे प्रायः शहतीरों और बल्लियों के होने से अनुमान हो सकता था कि युद्ध के बाद, साधनों की कमी के कारण काम न रोकने के लिये काम-चालू व्यवस्था है। खेतों की सीमा की मेड़ें मिट गई थीं और खेत दृष्टि की पहुँच से परे फैलते जा रहे थे। कहीं-कहीं ट्रैक्टर भी दिखाई दे रहे थे। पश्चिमी और पूर्वी योरुप की पोशाक में भी अन्तर था, पुरुषों के प्रायः घुटनों तक ऊँचे बूट और स्त्रियों की पोशाक में रंगों की गहराई और अधिकता।

बुडापेस्ट स्टेशन प्रकाश से चकाचौंध हो रहा था। बड़े-बड़े कपड़ों पर शान्ति की माँग और शान्ति की विजय के नारे लगे हुए थे। हंगरी के नेताओं और लेनिन-स्टेलिन के पूरे आकार के चित्र भी दूर से ही दिखाई दिये। स्टेशन पर खड़े लोग गीत गा रहे थे। शान्ति के गीत के अतिरिक्त और कौन गीत उस समय हो सकता था? परन्तु गाने के उत्साह से स्पष्ट था कि वे शान्ति के लिये करुणा की भीख नहीं माँग रहे बल्कि शान्ति स्थापना के लिये दृढ़ निश्चय की घोषणा कर रहे हैं। बहुत से लोग फूलों के गुलदस्ते लिये थे। हम लोगों के गाड़ी से उतरते ही शान्ति कें नारे लगने लगे। गुलदस्ते भेंट किये गये और विना किसी पूर्व परिचय और सम्बन्ध के गले मिलना हुआ। उसमें कुछ अस्वाभाविकता या झेंप भी नहीं जान पड़ी क्योंकि शान्ति की कामना और उसके लिये प्रयत्न में एकता का सम्बन्ध ही उस समय सबसे गहरा संबंध जान पड़ रहा था। हंगरी की समाजवादी सरकार के एक मंत्री और दूसरे कई लोग आये हुए थे। उन्होंने भारतीय प्रतिनिधि मंडल के नेता डा० किचलू, चीनी प्रतिनिधियों के नेता और रूसी मंडल के नेता का स्वागत किया। भाषणों का अनुवाद रूसी, चीनी और अंग्रेजी में किया जा रहा था। उसके बाद डा० किचलू बोले। चीनी मंडल की ओर से भी शान्ति आंदोलन में सहयोग के लिये पूर्ण आश्वासन दिया गया। इसके बाद स्टेशन के विश्राम (वेटिंग रूम) में चाय पार्टी हुई। बुडापेस्ट स्टेशन के हाल बहुत भव्य हैं। प्रायः सभी जगह मार्क्स, लेनिन, स्तालिन और हंगरी के समाजवादी नेताओं के बड़े-बड़े चित्र और समाजवादी कार्यक्रम की घोषणा के नारे लगे हुए थे।

सुबह उठने पर गाड़ी कोहरे से भरे वातावरण को चीरती और लाइन किनारे के स्टेशनों की उपेक्षा कर चलती ही जा रही थी। वियाना से चलते समय गाड़ी में रेस्टोरां की गाड़ी भी थी परन्तु रात में शायद बुडापेस्ट में वह कट गई थी। सुबह की चाय के अभ्यासियों को तलब हुई और उन्होंने पूछ-ताछ शुरू की, गाड़ी खड़ी कब होगी या चाय कब मिल सकेगी। उत्तर मिला कि अब गाड़ी सोवियत संघ की सीमा पर ही रुकेगी। प्रायः दस बजे गाड़ी चुप नदी के किनारे रुकी। मामूली सा स्टेशन, चाय नहीं थी।

हंगरी की पुलिस ने औपचारिक कार्रवाई कर गाड़ी को नदी पार जाने की अनुमति दे दी। नदी के दूसरे किनारे की चौकी पर लाल सेना के छः-सात सैनिक मौजूद थे। नदी

किनारे सीमा पर कांटेदार तार-वार भी लगे हुए थे। गाड़ी के इस सीमा में आते ही कुछ साथी सोवियत देश में प्रवेश कर लेने के उत्साह से किलक उठे। सभी गाड़ी के बरामदे में खड़े थे। किसी ने तान छेड़ दी—"सोवियत देश, किसानों मजदूरों का देश!"

सोवियत सीमा में पहला रेल स्टेशन 'चुप' है। स्टेशन पर खड़ी गाड़ी की खिड़की से चुप मामूली कस्बा ही जान पड़ा। कस्बे में सबसे ऊँचे मकान, दो गिरजों की चोटियाँ ही थीं। कच्ची-पक्की दोनों ही तरह की सड़कें दिखाई दीं। कस्बे से कुछ लोग एक-एक दो-दो कर, उतावली में स्टेशन की ओर चले आ रहे थे। शायद हम लोगों के पहुँचने का समाचार पा हमारा ही स्वागत करने आ रहे थे। हम लोग काफी देर गाड़ी में प्रतीक्षा करते रहे कि चाय के सम्बन्ध में कुछ समाचार मिले। स्टेशन के प्लेटफार्म पर संगीन लगी राइफले लिये कुछ सैनिक खड़े थे। दो-एक अफसर भी सामने से टहल जाते थे। अफसरों के सामने आने पर सिपाहियों को तनकर सलाम करते देख समझा कि सैनिक अदब-कायदा सोवियत देश में भी है। इस बीच दो रूसी अफसर आये; 'युक्रेनियन' कहना ही अधिक ठीक होगा, सोवियत संघ का पश्चिम दक्षिण भाग 'युक्रेनियन' प्रजातंत्र है। उन्होंने पूछा—"आप लोगों के पास कोई डिप्लोमैटिक (राजदूत कार्य सम्बन्धी) पत्र है या नहीं?" हम लोगों के इनकार करने पर उन्होंने पूछा, "आपके सामान में कोई कर योग्य वस्तु तो नहीं?" उत्तर दिया केवल निजी व्यवहार की वस्तुएँ हैं।

इस बीच हमें वियाना से लिवा लाने वाले रूसी साथियों ने आकर नाश्ते के लिये बुलाया। स्टेशन के प्लेटफार्म पर चुप के चालीस-पचास स्त्री-पुरुष इकट्ठे हो गये थे। उन्होंने हमसे हाथ मिलाकर स्वागत किया। बैंड बजने लगा। नाश्ते की तैयारी स्टेशन के जलपान गृह में ही थी। यहाँ पहली बार रूसी ढंग से गिलासों में चाय सामने आई। मेरा ध्यान विशेषकर गया कमरे में लगे बड़े-बड़े तैल चित्रों की ओर। इनमें से एक चित्र बरफ से ढंके गाँव का बहुत ही भव्य था। और भी कई चित्र थे। भारत या योरुप में स्टेशनों पर सदा व्यापारिक विज्ञापनों के ही चित्र देखे थे। सोवियत की सीमा के इस छोटे से स्टेशन पर ये चित्र बिक्री के विज्ञापन के लिये नहीं सौन्दर्य के कलात्मक संतोष के लिये ही थे। कुछेक देर बाद संगीत का एकाध रिकार्ड भी बज जाता था। यह केवल हमारे स्वागत के लिये ही नहीं था। सोवियत सीमा मे प्रवेश करने के बाद स्टेशनों पर प्राय: ही रेडियो या ग्रामोफोन से संगीत चलता देखा।

नाश्ते से उठने पर मालूम हुआ कि हमारी गाड़ी बदल दी गयी है अर्थात् हम लोगों का सामान मास्को जाने वाली दूसरी स्पेशल ट्रेन में रख दिया गया है। हम जाकर देख लें कि कोई चीज रह तो नहीं गई और सबकी तो सभी चीजें ठीक से पहुँच गई थीं अलबत्ता मेरी टोपी नहीं थी। एक बार छोड़ी हुई गाड़ी में जाकर भी देखा। मेरे लिये उस टोपी की चाहे जितनी कद्र रही हो, रूप-रंग से वह किसी दूसरे के लिये आकर्षक नहीं हो सकती थी। सम्भवत: वह गाड़ी बदलने वालों से कहीं गिर गई। अस्तु; नयी गाड़ी में मुझे और चौबेजी को सैकण्ड क्लास का ही डिब्बा मिला परन्तु उसमें अपने यहाँ के फर्स्ट क्लास से

किसी भी तरह कम सुविधा न थी। सबसे बड़ी बात यह कि पूरी गाड़ी हीटरों से खूब गरम थी। वर्ना जैसी हवा बाहर चल रही थी, नाक-कान का कुछ अंश चुप स्टेशन पर ही रह जाता। गाड़ी में भोजन की व्यवस्था तो थी ही इसके साथ ही प्रत्येक गाड़ी के बरामदे में, जिसमें दस-बारह डिब्बे थे, कोने में चाय का भी प्रबंध था। एक बहुत हंसमुख नौजवान प्राय: जब चाहें, घंटी का बटन दबाते ही चाय का गिलास, नींबू का टुकड़ा और मिस्त्री जैसी चीनी की दो टुकड़ियाँ ला देने के लिये तैयार था।

चुप स्टेशन पर चाय के रूसी ढंग का परिचय मिला और रूस की सीमा में रहने तक ऐसे ही चाय मिलती रही। रूस में चाय शीशे के गिलासों में पी जाती है। गिलास एक दस्ता लगे सांचे से में रखा रहता है। चाय बनाने का ढंग भी कुछ दूसरा है। एक चायदानी में खूब गाढ़ी चाय बना ली जाती है। इस चाय में से प्राय: छटांक भर चाय का पानी गिलास में डाल गिलास को खौलते हुए पानी से भर दिया जाता है। चाय का रंग हल्का नारंगी सा रहता है। अलग तशतरी में नींबू के कतले और दो टुकड़ियाँ चीनी की। सोवियत के लोग ऐसी चाय दिन में कई-कई बार पीते रहते हैं। चाय पिलाने वाले तावारिश (कामरेड) हमारी गाड़ी के कंडक्टर गार्ड और सफैया भी थे। किसी स्टेशन पर गाड़ी खड़ी होती देख वे तुरंत चमचमाते बटन लगा वर्दी का कोट और टोपी पहन लाल-हरी झंडी ले प्लेटफार्म पर उतर जाता। दो-चार घंटे बाद, जब गाड़ी में जली हुई दियासलाइयाँ या चीनी से लिपटे कागज फैल जाते और राखदानियाँ भर जातीं तो तावारिश बिजली का (झाड़ू) वैक्कम क्लीनर ले पूरी गाड़ी साफ कर डालते। रूस में यात्रा कर आने वाले कुछ लोगों की यात्राओं के वर्णनों में गाड़ियों और स्टेशनों के बहुत गन्दे होने की बातें पढ़ी थीं पर देखा कुछ और ही। रेल की रेस्टोरांकार में भी मेजें, प्लेटें और खाना परोसने वालों के कपड़े सब बगुले के परों की तरह उजले थे।

चुप स्टेशन से गाड़ी दो बजे चली। रेल-लाइन के दोनों ओर पंजाब की नक्यिों या गंगा-यमुना के प्रदेश की तरह सपाट मैदान थे। मैदान प्राय: मेडों के बिना मीलों तक फैले खेतों के रूप में थे। बीच-बीच में गाँव भी दिखाई दे जाते। प्रत्येक गाँव में मामूली कच्चे-पक्के मकानों के बीच से गिरजे का ऊँचा स्तूप खड़ा जरूर दिखाई देता। सोवियत रूस के धर्मविरोधी दमन की सुनी बातें याद आईं कि वहाँ सब गिरजे-मसजिदें और सेनागाग धरातल कर दिये गये हैं। पिछले युद्ध में यहाँ ध्वंस का ताण्डव सबसे प्रचण्ड रूप में हुआ था। कहीं-कहीं ध्वंस के चिह्न अब भी दिखाई दे जाते थे; उदाहरणत: गिरे या जले हुए मकान या टूटी और जली हुई मोटरों या लारियों के ढाँचे। कई स्थानों पर नयी छोटी-छोटी बस्तियों को देखने से ही पता चल जाता था कि पुराने ध्वंस को हटाकर सब कुछ नये सिरे से बनाया गया है। इन बस्तियों में प्राय: एक बड़ा सा पक्का मकान और आसपास काठ के ही मकान दिखाई देते थे। ये संयुक्त खेती की बस्तियाँ थीं। बीच का बड़ा पक्का मकान बस्ती का स्कूल, संयुक्त खेती का दफ्तर और क्लब था।

गाड़ी उत्तर-पूर्व की ओर चली जा रही थी। संध्या समय जान पड़ा कि हम सपाट भूमि छोड़ कुछ पहाड़ी से प्रदेश में जा रहे हैं। बरफ पड़ने लगी थी। गाड़ी के शीशों पर

बार-बार कोहरा जम जाने से बाहर का दृश्य स्पष्ट नहीं दिखाई दे सकता था। प्राय: आठ बजे बाहर बादल और बरफ बन्द होकर चाँदनी छिटक आई। खिड़की के शीशे को साफ कर देखा तो दृश्य बहुत सुन्दर था। जान पड़ता था, चांदी के धरातल पर लोहे या ताम्बे से बना दिये गये उपवनों के बीच से चले जा रहे हैं। वृक्षों की टहनियों पर भी बरफ लदी दिखाई देती थी। गाड़ी के भीतर सेंटीग्रेड थर्मामीटर के हिसाब से २०° की (हमारे यानि के ५२°) सुखद गरमी थी। मजे में बर्थ पर पसरे हुए कोट के बटन खोले बाहर शून्य से नीचे बरफ के दृश्य को देख रहे थे। कल्पना को कोई कठिनाई न थी। सोवियत रूस के सम्बन्ध में पढ़ी बातें याद आ रही थीं। पिछले युद्ध की बातें, नाजियों का आक्रमण, सोवियत के छापामार सैनिकों का वर्दी पर सफेद चोले पहनकर रात और दिन इस बरफ में छिपे रहना। सोवियत जनता ने आस्ट्रिया, हंगरी और योरुप के दूसरे देशों की प्रजा की तरह नाजियों के सामने हथियार क्यों नहीं डाल दिये? इन योरुपीय देशों की जनता को शायद अपनी स्वतंत्रता खो देने का उतना भय नहीं था जितना कि सोवियत प्रजा को। सोवियत देश की जनता के पास ऐसी क्या चीज थी जिसके मोह में नाजियों के भयंकर टैंक और तोपें और अपने लाखों साथियों की मौत भी उन्हें कुछ न जंची? ......सोवियत में स्विटजरलैण्ड की तरह गाँवों में भी तिमंजिले-चौमंजिले समृद्ध मकान तो नहीं हैं। हों भी कैसे। स्विटजरलैण्ड कब से औद्योगिक समृद्धि के मार्ग पर आगे बढ़ा हुआ है। पिछले डेढ़ सौ वर्ष से उसने कभी ध्वंस नहीं सहा। सोवियत की समाजवादी औद्योगिक संस्कृति अभी पैंतीस वर्ष की ही•तो हुई है। तिस बीच एक बार सब कुछ चौपट होकर नये से निर्माण करना......।

दूसरे दिन नाश्ते के समय गाड़ी में अठारह घंटे बीत चुके थे। रेल की लाइन के दोनों ओर जहाँ तक भी दृष्टि जाती, अछूती बरफ के गद्दे बिछे थे। कहीं-कहीं बरफ से ढंके गाँव और फार्म। अब इस दृश्य में नयापन न रहा था। अभी गाड़ी में तीस घंटे और बिताने थे। विचार हुआ कि इसी गाड़ी में यात्रा करने वाले दूसरे लोगों से बातचीत कर कुछ समझने-समझाने के अवसर से लाभ उठाया जाये। सोवियत के प्रसिद्ध युवा ताजिकी कवि तुरसनजादे भी वियाना कांग्रेस में गये थे और इसी गाड़ी से मास्को लौट रहे थे। उनसे बात करने के लिये समय माँगा। वे प्रसन्नता से तैयार भी हो गये। तुरसनजादे अंग्रेजी नहीं जानते। गाड़ी में वियाना से क्रेमा पालोवा भी आ रही थीं और सोवियत शान्ति सभा की ओर से हम लोगों के साथ थीं। पालोवा ने दुभाषिये का काम शुरू किया।

तुरसनजादे दोहरे बदन के और ताजिकियों के कद के विचार से कुछ नाटे व्यक्ति हैं। चेहरा प्राय: कम बोलने वाले व्यक्ति जैसा, खूब भरा हुआ। रंग पंजाबियों जैसा लाल गंदमी। विस्मय में खुली हुई सी आँखे। आधुनिक योरुपीय ढंग की पोशाक और सिर पर रूसी टोपी। पोशाक की ओर से बेपरवाह। उनसे बात आरम्भ करने के लिये किसी ने अनुरोध किया—'पहले आप हमें स्वयं ही अपना परिचय दे डालिये तो आपकी कविता की भावना शैली और विचारधारा को समझने में हमें सुविधा होगी।'

'बहुत अच्छा' तुरसनज़ादे ने नया सिगरेट सुलगाते हुए निस्संकोच कामकाजी ढंग से बात शुरू की। दक्षिणी ताजिकिस्तान में गिस्सार, जिसे एशिया में बुखारा कहते हैं, के समीप खार्तक में उनका जन्म सन् १९११ में हुआ था। उनके पिता लकड़ी का काम करते थे। लकड़ी के काम से मतलब लकड़ी का व्यापार नहीं। लकड़ी से चीज़ें बनाने का काम अर्थात् बढ़ई। हमने उन्हें बताया कि हिन्दुस्तान में भी बढ़ई को तरखान कहते हैं। "हाँ, हाँ! वही-वही तरखान और तुरसान एक ही बात है केवल उच्चारण का भेद है।" कवि अपना माँ बाप का दिया नाम छोड़कर अपना परिचय बढ़ई के बेटे के रूप में ही गौरव समझता है। इसका कारण समझ पाना कठिन नहीं। कवि को अपने बचपन की बातें याद हैं कि १९१५ में एक भयंकर दुर्भिक्ष ताजिकिस्तान में पड़ा था। उस समय उसकी आयु पाँच वर्ष की थी। इस दुर्भिक्ष में लोगों के भूख से तड़पने और मरने की बात उन्हें याद है। इसी समय के आस-पास उनके पिता की मृत्यु हो गई। उस अकाल के समय चालू किये गये एक अनाथालय मे उन्होंने तीन बरस मौलवी के छड़ी के इशारे पर कुरान रटते हुए गुजारे। १९१७ में रूस में हुई समाजवादी क्रान्ति की लहर १९२० में बुखारा में भी पहुँच गई। तुरसनजादे को अब अनाथालय में दस्तकारी की शिक्षा दी जाने लगी।

१९२३ में ताजिकिस्तान में पहले पत्र का प्रकाशन आरम्भ हुआ था। तुरसनजादे की रुचि लिखने-पढ़ने की ओर थी। वे इस पत्र के 'काम्सोमोल' (नवयुवक) विभाग में काम करने लगे। कवि ने बताया उस समय तक ताजिकिस्तान में कोई छापाखाना नहीं था। ज़ार की सरकार ताजिकिस्तान में शिक्षा या पत्रों की आवश्यकता ही नहीं समझती थी और न उस समय तक ताजिकिस्तान की प्रजा ही ऐसी आवश्यकता अनुभव करती थी। उस समय ताजिकिस्तान की पन्द्रह लाख जनसंख्या के लिये एक ही स्कूल था। पढ़े लिखे आदमियों की संख्या दो सौ में एक थी। खैर; अब तो ताजिकिस्तान में अपनी यूनिवर्सिटी है। पन्द्रह कालिज हैं। निरक्षर व्यक्ति ढूँढ़ने से भी शायद नहीं ही मिल सकेगा।

ताजिकिस्तान में पहला पत्र ताजिकी क्रान्तिकारियों और रूस की समाजवादी सरकार के सहयोग से चालू हुआ था। तब ताजिकिस्तान में रेल भी न थी। इस पत्र के लिये दुशाम्बे, जिसे अब स्टैलिनाबाद कहा जाता है, से टाइप के अक्षर ऊँटो पर लादकर लाये गये थे। साधारणत: ताजिकिस्तान की भाषा फारसी है। इस पत्र के लिये अरबी अक्षरों का उपयोग इसलिये करना पड़ा कि दुशाम्बे में अरबी के ही अक्षर मिल सकते थे जिनमें फ़ारसी अक्षरों से काफ़ी समता रहती है। रूसी समाजवादी सरकार ने रूसी भाषा या रूसी लिपि ताजिकिस्तान पर नहीं लादी। इसकी तुलना में भारत की प्रान्तीय भाषाओं की अनेक लिपियाँ होते हुए भी और उत्तर भारत में एक साथ देवनागरी और फारसी दो-दो लिपियाँ होते हुए भी अंग्रेज पादरियों ने भारत की असभ्य समझी जाने वाली जातियों को अंग्रेजी अक्षरों में ही साक्षरता का ज्ञान देना उचित समझा। हिन्दुस्तानी में जो इंजीले छापी गईं उनकी लिपि रोमन होती थी। निरक्षर सैनिकों को भी रोमन लिपि से ही साक्षर बनाने का यत्न किया गया। भारतीय सेनाओं के लिये जो फौजी अखबार (सरकारी पत्र) जारी किया गया वह भी हिन्दुस्तानी भाषा और रोमन लिपि में था और अब भी है। वह

शायद इसलिये कि अपनी संस्कृति का अभिमान करने वाले हमारे प्रधानमंत्री एक समय भारत के लिये अंग्रेजी लिपि अपना ली जाने के ही समर्थक थे इसलिये परम्परा के चलते रहने में उन्हें आपत्ति नहीं।

तुरसनजादे इस पत्र में अपनी भावनाओं को छंद के रूप में लिखने लगे। पाठकों ने तो उनकी प्रतिभा को सराहा परन्तु उन्हें स्वयं अपने काम में कठिनाई अनुभव होती थी क्योंकि उनकी नयी भावनायें पुराने छन्दों की परिपाटी से मेल नहीं खाती थीं या वे अपनी बात उस परिपाटी और शैली में संतोष से न कह पाते थे। कवि ने कहा कि फारसी की प्राचीन और परम्परागत शैली ने चाँद को देखकर उत्पन्न हुई भावनाओं को प्रकट करने के लिये या रूपवती के रूप की लहरों में आत्मसात हो जाने के लिये और फूल और बुलबुल से दो-दो बातें कर लेने योग्य शैली अपनाई थी। उस प्रयोजन को पूरा करने के लिये वह शैली और माध्यम अनुकूल थे परन्तु जीवन के साधनों और अवसर के लिये बिलखने वाले लोगों की भावना की अभिव्यक्ति लिये, सामूहिक शक्ति से जीवन की बाधाओं को जीतने के लिये और दृढ़ निश्चय की हुँकार प्रकट करने के लिये वह परम्परागत शैली और माध्यम अनुकूल नहीं बैठते थे। कवि अपनी भाषा का माधुर्य, अपनी जाति की परम्परा और वातावरण को छोड़ने के लिये तैयार न था और बात भी नये जीवन, समाज की नयी भावनाओं के अनुकूल कहना चाहता था। उसने और उसके साथियों ने रूसी कवियों और लेखकों का अध्ययन शुरू किया। उन्होंने मायकोवस्की के प्रभाव का विशेष उल्लेख किया। अपने साहित्य के परम्परागत आधार को बनाये रख नयी प्रेरणाओं के अनुकूल माध्यम बनाने के लिये उन्होंने अपनी बात गजल, मस्नवी और मखम्मस में कहनी शुरू की। तुरसनजादे रूसी खूब अच्छी तरह पढ़ और बोल लेते हैं परन्तु कविता फारसी में ही कहते हैं, इन्हें यही स्वाभाविक जान पड़ता है। उनको सभी कविताओं का अनुवाद रूसी भाषा मे और कुछ का अंग्रेजी मे भी हो चुका है। वह इसलिये कि रूसी लोग उनकी कविता पसन्द करते हैं।

तुरसनजादे एक सांस्कृतिक प्रतिनिधि मंडल में कुछ दिन के लिये भारत आये थे। लौटकर उन्होंने एक कविता भारत को सम्बोधन कर लिखी थी। हम लोगों के अनुरोध पर कवि ने इस फारसी कविता के कुछ अंश स्मृति से सुनाये।

'आप क्या कभी प्रेम के विषय पर कविता नहीं लिखते?' हमारे एक साथी ने पूछा, 'क्यों नहीं? मैंने बहुत-सी प्रेम कविताएँ लिखी हैं। प्रेम या जीवन की चाह तो स्वाभाविक वस्तु है।' हम लोगों के अनुरोध करने पर कवि ने अपना एक शेर सुनाया जिसमें फूल और तितली का प्रेम सम्बन्धी उपालम्भ था और दूसरी एक गजल जिसमें टीले के ऊपर सड़क से विदेश चले जाते प्रेमी को टीले के आँचल के खेत में नीचे खड़ी प्रेमिका अपने विरह की वेदना की बात याद दिला, वफा का तकाजा कर रही थी।

साहित्य के अतिरिक्त आधुनिक ताजिक जीवन के बारे में भी कवि से बातें होती रहीं। अपने देश की समृद्धि के लिये कवि को गौरव था। पिछले तीस वर्ष में ताजिकिस्तान

का रूप ही बदल गया है। इस समय पहाड़ी इलाकों के छोटे-छोटे खेतों को छोड़कर खेती प्रायः ट्रैक्टरों से ही होती है। ताजिकिस्तान की आबादी प्रायः मुसलमान है। क्रान्ति से पहले काजियों और मुल्लाओं के राज में स्त्रियों के लिये पर्दे और नकाब (परंजा) का बहुत सख्त नियम था। अब शायद कोई बुढ़िया ही परंजा करती हो। एक साथी ने जिज्ञासा की—'परदा सरकारी अनुशासन से दूर कर दिया गया या स्त्रियों ने स्वयं उसे छोड़ दिया?' तुरसनजादे ने बताया कि परदे के सम्बन्ध में सरकारी अनुशासन का उपयोग नहीं किया गया। ऐसा उचित भी न होता। ढूँढ़ने पर अब भी अपनी इच्छा से परंजा पहनने वाली कोई बुढ़िया मिल ही जायेगी। स्त्रियाँ प्रायः मिली-जुली एशियाई और योरुपियन पोशाक पहनने लगी हैं। ऐसा परिवर्तन उनके जीवन का ढंग बदल जाने के कारण आवश्यक था। अब स्त्रियाँ पढ़ाने-लिखाने; कल-कारखाने ट्रैक्टर, खेती, डाक्टरी और इंजीनियरिंग वगैरा के सभी काम करती हैं। ये काम परदे और परंजे में नहीं हो सकते। साहित्य में ताजिकी स्त्रियों के स्थान के विषय में उन्होंने बताया कि नयी पीढ़ी की स्त्रियाँ लिखती-पढ़ती हैं तो साहित्य में रुचि होने से साहित्य निर्माण में भी भाग लेती है। पुरानी पीढ़ी में यह उनके लिये कठिन था। परन्तु पुरानी पीढ़ी की भी एक स्त्री-कवि सोरोफोन यूसोफोवा हमारे यहाँ है। उसकी आयु सत्तर वर्ष की है परन्तु वह बहुत अच्छी कवित्त कहती है। उसकी कविता में लोग रस लेते हैं और वह प्रकाशित भी होती है।

मालती बिडेकर ने पूछा कि आधुनिक ताजिकी नारी गृहस्थ की बहू बनने की महत्वाकांक्षा रखती हैं या सामाजिक श्रम मे पुरुष के समान भाग ले पुरुष की होड़ करना चाहती है? कवि ने उत्तर दिया कि आधुनिक ताजिक युवती बहू बनना तो पसन्द करती ही हैं परन्तु साथ ही वह अपने व्यक्तित्व और सामाजिक स्थान को भी नहीं छोड़ना चाहती। बहू बन जाने से वह घर के भीतर बन्द नहीं हो जाती। वह चाहे तो केवल घरबार की देख-रेख और बच्चों को पालने का ही काम कर सकती हैं परन्तु इससे उसे संतोष नही होता। इसमें वह अपने व्यक्तित्व की हेठी समझती है। उत्पादन में नारी का सहयोग आर्थिक दृष्टि से समाज के लिये तो उपयोगी है ही परन्तु नारी के व्यक्तित्व के विकास के लिये भी सहायक है।

किसी साथी ने निस्संकोच पूछ लिया कि कवि की पत्नी क्या करती हैं? कुछ मुस्कराकर तुरसनजादे बोले--'वह तो केवल घरबार की देखभाल और बच्चों को पालती है'। हमारी आँखों मे विस्मय देख कवि ने बताया, 'कारण यह है कि उसका पांव खराब हो गया है। वह पहले बालरीना (बैले, मूक नाट्य की नर्तकी) थीं। लेकिन पांव खराब हो जाने से विवश हैं।'

दो अढ़ाई घण्टे की बातचीत मे तुरसनजादे से ऐसा परिचय हो गया कि जब जहाँ कहीं हममें से किसी से भी सामना-सामना हो जाता, मुस्कराहट से अभिनन्दन किये बिना न रहते। यों तुरसनजादे का सोवियत में महत्वपूर्ण स्थान है। वे सोवियत की स्तालिन पुरस्कार समिति के सदस्य हैं।

दोपहर में रेस्टोरांकार में भोजन के बाद कोरियन प्रतिनिधि मंडल के लेखकों से परिचय और बातचीत के लिये पालोवा से अनुरोध किया। कुछ लोग उसी गाड़ी में जाते हुए सोवियत के सिनेमा-डाइरेक्टर से बात करना चाहते थे। तीन-चार रूसी साथी अंग्रेजी खूब बोल लेते थे। उनमें से एक ने सिनेमा में रुचि रखने वाले साथियों के लिये और एक कोरियन साथी ने हम लोगों के लिये दुभाषिये का काम शुरू किया। कोरियन साथियों से बातचीत में स्वाभाविक ही पहली बात यही उठी कि उनके जिन्दगी-मौत के इस संघर्ष के समय उनके सामाजिक और वैयक्तिक जीवन में साहित्य का क्या स्थान है? कोरियन साथी का ढङ्ग किसी चतुर वक्ता का नहीं था। उनके चुपचाप रहते ढङ्ग से ही सिर पर लदी गहरी चिन्ताओं के बोझ का अनुमान हो सकता था। यह प्रश्न उन्हें कुछ विचित्र-सा लगा--'क्यों? हमारे आधुनिक जीवन में जैसा सघर्ष है, जैसी हमारी भावनायें है वैसा ही साहित्य हमारे समाज में बन रहा है। साहित्य जीवन की अभिव्यक्ति है। चेतन मनुष्य के जीवन की सभी तरह की अवस्थाओं में साहित्य उत्पन्न होगा। हाँ सामन्तवादी समाज में साहित्य का जैसा परम्परागत रूप रहा है, अब हमारे साहित्य का रूप वैसा नहीं है। हमारा साहित्य अपने समाज का जीवन ढालने के लिये आत्मनिर्णय का अधिकार पाने के लक्ष्य और भावनाओं को प्रकट करता है और हमारे समाज को उस लक्ष्य की ओर बढ़ने की प्रेरणा देने का भी साधन है।' कोरियन साथी ने बहुत धीमे-धीमे अपनी बात कही।

परिचय पूछने पर मालूम हुआ कि यह साथी स्वयं उपन्यास लेखक थे। किसी ने पूछा---'आपके साहित्यिकों में कुछ ऐसे भी व्यक्ति है जिन्हें युद्ध का व्यक्तिगत अनुभव हो?' साथी ने हामी भरी और दो-तीन नाम बताये। एक कवि का नाम बताया जो युद्ध के मोर्चे पर खेत रहा है। एक उपन्यास लेखक जो सेनाओं के साथ मोर्चे पर रहा है। अपने विषय में उन्होंने बताया कि वे स्वयं भी मोर्चे पर रहे हैं और लिखते भी हैं। मन में वियाना में माओदुंग से हुई अपूर्ण बात खटक रही थी। प्रश्न किया—'इस विषय में तो विवाद नहीं कि कला जनता की उन्नति और विकास के लिये ही होनी चाहिये परन्तु कला के कुछ ऐसे रूप या स्तर भी हो सकते हैं जिनका परिचय वर्तमान परिस्थितियों में सर्वसाधारण जनता के लिये सम्भव नहीं। उदाहरणतः लम्बी विदेशी दासता के कारण मानसिक विकास के अवसर से रहित या आर्थिक शोषण के लिये प्रायः पशु का सा जीवन बिताने के लिये बाध्य रखी गई जनता कला के सूक्ष्म तत्त्वों का रस नहीं ले सकती। क्या वर्तमान परिस्थिति में कलाकार केवल सर्वसाधारण के लिये सुबोध माध्यमों में ही सीमित रहकर जनता की बड़ी संख्या के लिये सभी अगम्य कला के स्तरों की उपेक्षा कर दे।'

'कला का जो मानदण्ड या स्तर जनता के प्रति अपना उद्देश्य पूरा नहीं कर सकता उसकी कोई उपयोगिता है ही नहीं।' कोरियन साथी ने उत्तर दिया।

'कला की समझ या उससे पाया जाने वाला आनन्द अभ्यासगम्य होता है।' मैंने कहा,—'ऐसा भी हो सकता है कि आज जनता का अधिकांश कला के किसी स्तर को न समझ पाये और कुछ समय बाद अवसर मिलने पर जनता की समझ का स्तर कला की

ऐसी वस्तुओं का रस लेने योग्य हो जाये। ऐसी अवस्था में जनगण की आधुनिक समस्याओं की उपेक्षा न करके भी सार्वजनिक हित की दृष्टि से ही, भविष्य के लिये कला के ऐसे ऊँचे स्तरों की रक्षा और विकास करते रहना उचित है। ऐसी अवस्था में हमें कला के सरल जनप्रिय और ऊँचे अभ्यासगम्य स्तर दोनों की ओर ध्यान देते रहना चाहिये।'

कोरियन साथी ने उत्तर दिया—'हमें तो नहीं जान पड़ता कि अभिजात वर्ग और निम्न वर्ग के लिये कला के ऐसे दो स्तर या रूप हैं। हमारा तो ऐसा अनुभव नहीं कि जनता कला के किसी स्तर को समझ न पाये। उदाहरणतः साहित्य में ऐसा उदाहरण तभी मिल सकता है जब भाषा सर्वसाधारण की पहुँच के बाहर हो। जनता भाव को तो अवश्य समझ सकती है भाषा की गुत्थी को समझ सके या न समझ सके। कलाकार क्लिष्ट भाषा का प्रयोग करता ही इसलिये है कि वह केवल अपनी बात विशिष्ट वर्ग को ही समझाना चाहता है। कला का निखार शब्दों में नहीं उनसे अभिव्यक्त होने वाले भावों या उससे उत्पन्न होने वाली अनुभूतियों में ही होता है। ऐसी अवस्था में क्लिष्ट भाषा का मोह छोड़कर भाव की ही चिन्ता क्यों न की जाय। और यह बात कैसे क्रियात्मक मान ली जाय कि कलाकार आज जनता की भावों और जीवन की समस्याओं की अवहेलना कर एक काल्पनिक भविष्य के लिये कला की रचना करता रहे। ऐसे कलाकार का जीवन और उसकी कल्पना सामयिक यथार्थ की कसौटी पर स्वयं ही अयथार्थ हो जायेगी।'

वियाना में यही बात माओदुंग से जैसे हुई थी, बात मेरे गले से न उतरी थी परन्तु इस कर्मठ व्यक्ति का अनुभव हो उसकी युक्ति थी। हममें से किसी ने पूछा—'कोरिया में भारतीय साहित्य के विषय में क्या धारणा है ?'

उत्तर मिला कि कोरियन भाषा में भारतीय साहित्य का अनुवाद बहुत कम ही हुआ है। स्वयं उन्होंने रवि बाबू की गीतांजलि और एकाध दूसरी पुस्तक देखी थी। मैंने रवि बाबू के साहित्य के ही विषय में उनकी भावना जाननी चाही। उन्होंने बताया कि बीस-पच्चीस वर्ष पूर्व कोरिया के युवक रवीन्द्र के साहित्य में बहुत रस पाते थे। इसके दो कारण थे; एक तो किसी एशिया निवासी का संसारमान्य साहित्यिक माना जाना उनके आत्माभिमान को संतोष देता था, दूसरे उस समय जापान के विकट दमन में किसी प्रकार के राजनैतिक विचारों को व्यक्त कर सकने का या सामूहिक जीवन की माँग को प्रकट करने का अवसर न था। ऐसे समय स्थूल जगत की उपेक्षा कर, यथार्थ को भुलाकर भाव में डुबा देने वाली रवि बाबू की कविता से उन्हें संतोष होता था। अब वह बात नहीं रही। अब कोरिया के पाठक यथार्थ को भुलाने की बात नहीं, जीवन के यथार्थ को सुलझाने की बात चाहते हैं।

उनकी बात से सहमत होकर भी मैंने पूछा—"रविबाबू के साहित्य ने या वैसे ही दूसरे साहित्य ने एक समय कोरिया के लोगों को संतोष दिया है; इस अनुभव से इतना तो मानना ही पड़ेगा कि उस कला या साहित्य में भी सुख संतोष का तत्त्व मौजूद है।"

"वह सुख अपने विश्वास के बल पर बनाया हुआ सुख है।" साथी ने उत्तर दिया, "जैसे काँच का महल बनाकर हम उसमें अपने आपको सुरक्षित मानकर खुश हो लें। यदि

लोग हमारे इस काँच के महल पर पत्थर न मारें तो इस महल में शायद कुछ दिन विनोद में बीत सके परन्तु काँच के महल पर पत्थर मारने वाले तो मौजूद हैं, इस तथ्य को क्यों भुला दिया जाये ?" बातचीत की समाप्ति पर हम लोगों ने भविष्य में कोरिया और भारत में सांस्कृतिक सम्पर्क स्थापित करने के लिए भी कुछ बात हुई अर्थात् कोरिया के आधुनिक साहित्य के कुछ अनुवाद हम लोगों को मिलें और कुछ भारतीय साहित्य भी उन्हें भेजा जाय।

ज्यों-ज्यों हम मास्को की ओर जा रहे थे, सर्दी और बरफ बढ़ती जा रही थी। लाइन के दोनों ओर क्षितिज तक बरफ ही बरफ दिखाई दे रही थी परन्तु अब गाड़ी के भीतर कुछ परेशानी गरमी से ही जान पड़ती थी। कुछ साथी ताजी हवा के लिये खिड़की का कुछ भाग खोल देते। इससे रूसी साथियों को उलझन होती। वे हैरान थे कि यह भारतीय साथी भी क्या हैं? ये सर्दी सह नहीं पाते गरमी से भी घबराते हैं और दिन भर पानी पिया करते हैं। चाय या बियर से इनकी प्यास ही नहीं बुझती। कोई नगर या गाँव दिखाई दे जाने पर गिरजे की सलीब भी जरूर दिखाई दे जाती। इतनी बार गिरजाघरों के शिखर देख लेने पर सैय्यद जिलानी बोल उठा—"या अल्लाह, अब भी सीलोन से अमरीका की आवाज यही कहती है कि कम्युनिस्टों ने रूस में गिरजा, मसजिद, मंदिर कुछ नहीं छोड़ा। वे सब मजहबों के दुश्मन हैं!" पटेल फल व्यवसायी व्यक्ति हैं। उन्होंने होठ नाक की ओर उठाकर उत्तर दिया—"यहाँ से देखकर क्या कह सकते हो?......इमारतें गिरजों की हैं पर उनमें अब बच्चों के स्कूल और अजायबघर बना दिये गये हैं।"

दूर से गिरजे की इमारत देख उसे गिरजा समझ लेना उचित न था परन्तु पटेल साहब का दूर से बैठे यह अनुमान कर लेना कि इन इमारतों में अब भगवान का वास नहीं केवल बच्चों के स्कूल बना दिये गये हैं; कैसे उचित था। ऐसे ही ज्ञान और तर्क के बल पर रूस के सम्बन्ध में बहुत सी जानकारी हमें पूँजीवादी प्रकाशनों से मिलती रहती है। दूसरे दिन प्रायः बारह बजे ही हमें सम्भल जाने की चेतावनी दे दी गई कि एक घंटे बाद गाड़ी मास्को स्टेशन पर पहुँच जायेगी। मास्को के समीप बरफ और भी गहरी जान पड़ रही थी। लाइन से कुछ ही दूर काँटेदार तार और कई जगह सशस्त्र संतरी भी खड़े दिखाई दिये। एकाध जगह विमान मार तोपें होने का भी संदेह हुआ परन्तु यदि कल्पना उर्वरी हो तो इन काँटेदार तारों को बलात श्रम के कारागार (कंसंट्रेशन कैम्प) क्यों न समझ लिया जायें?

मास्को

मास्को स्टेशन पर लेनिन की चेतावनी में उंगली उठाये धातु की विशाल मूर्ति नवागन्तुक को याद दिला देती है कि वह नयी संस्कृति और नयी व्यवस्था के नगर में प्रवेश कर रहा है। कालीनों और तैल चित्रों से सजा प्रतीक्षा-स्थान (वेटिंग रूम) खूब गरम है।

स्टेशन से बाहर निकलते ही मास्को की बर्फानी कोहरे से भरी हवा। सड़क के विस्तार से यह नहीं जान पड़ता कि किसी बड़े और गुंजान नगर में प्रवेश कर रहे हैं। लगा कि सीमेंट किये चौड़े मैदान में से मोटरों पर भागे जा रहे हैं। मैदान के दोनों ओर ऊँची-ऊँची इमारतें दिखाई देती हैं। बहुत-सी मोटरें, बसें और ट्राली बसें भी साथ-साथ दौड़ती और सामने से भी आती दिखाई देती हैं। मैदान से चौड़े चौराहों पर लाल बत्ती के संकेत पर रुक जाना पड़ता है तो मानना पड़ता है कि सड़क पर ही जा रहे हैं। सड़क के दोनों ओर इमारतों के साथ लगे चौड़े पैदल रास्तों के साथ-साथ बनी क्यारियाँ बरफ से भरी थीं। इनमें पत्ते झड़े वृक्ष उदास से खड़े थे। गर्मियों में यहाँ फूल और घास रहती होगी। वृक्षों की छाया पैदल रास्तों पर पड़ती होगी। सड़क के दोनों ओर की इमारतें प्रायः छः-सात मंजिली हैं। बहुत चौड़ी सड़क और लगातार इतनी ऊँची इमारतों के सिलसिले से दबदबा सा अनुभव होता है परन्तु इमारतों को अलग-अलग देखने से वे भव्य जान पड़ती हैं। बाजार की सड़क की चौड़ाई इतनी है कि अपने शहरों की तरह दोनों ओर की दुकानों पर आँखें नहीं दौड़ाई जा सकतीं, न दूसरी ओर जाते व्यक्ति को पहचान कर पुकार लिया जा सकता है।

हम लोगों के ठहरने का प्रबन्ध 'गत्सीनित्सा सोवियतस्काया' (सोवियत होटल) में किया गया था। होटल में प्रवेश करने पर वह होटल की अपेक्षा महल ही जान पड़ा। फर्श या तो संगमरमर के हैं या वैसे जान पड़ते हैं। यात्रियों के आकर बैठने और पूछताछ करने की जगह 'स्वागतकक्ष' (रिसेप्शन हाल) में नये ढग के नियोन लाइट के झाड़-फानूस लटके हुए, बड़े-बड़े तैल चित्र, पर्दे और मेज़पोश, मखमल या प्लश के मेजों पर पानी भरे कट ग्लास या तराशे हुए बिल्लौर के जान पड़ते हैं। होटल की गैलरी, सीढ़ियों और चलने-फिरने की सभी जगहों पर कालीन और कालीनों पर सफेद कपड़े की पट्टियाँ। बाहर की बरफ और कीचड़ में से आने वालों के जूतों से यह पट्टियाँ मैली हो जाने पर नित्य ही बदल दी जाती हैं। होटल में काम करने वाले स्त्री-पुरुषों की पोशाकें बहुत साफ और इस्त्री की हुईं।

होटल के कमरे भी स्वागतकक्ष के ही ढंग के, कालीनों, तैल चित्रों और फानूसों से सजे हुए हैं। प्रत्येक कमरे में बैठने के लिए सोफा, सोफा कुर्सियाँ, लिखने के लिये मेज-कुर्सी, दो पलंग। ऊपर लटके फानूस की रोशनी चकाचौंध मालूम हो तो कमरे के कोने में रखा एक बड़ा छायादार लैम्प जलाया जा सकता है। यह भी भला न लगे तो लिखने की मेज पर लैम्प है। यदि लेटकर पढ़ना हो तो पलंगों के बीच में बेड-लैम्प। मैं और चौबेजी तीसरी मंजिल पर ३२४ नम्बर के कमरे में। चौथी मंजिल भी थी और मि० दर के कमरे का नम्बर ४०० से कुछ ऊपर ही था। कमरे कितने थे; याद नहीं। प्रत्येक कमरे के साथ गुसलखाना। चौबीसों घंटे चलते गरम और ठंडे पानी के नल। नहाने के लिये प्रति व्यक्ति तीन तौलिये और हजामत करने या मुँह हाथ धोने के लिये तीन और छोटे तौलिये। यह छोटे तौलिये प्रतिदिन बदल दिये जाते थे। हमारा ही कमरा विशेष सुन्दर या सजा हुआ न था। महिला अतिथियों के लिये जो कमरे दिये गये, उनमें पलंगों और बैठने की जगह

को अलग करने के लिये साटिन के भारी-भारी परदे लगे थे। कुछ कमरे अकेले-अकेले व्यक्ति के लिये थे और कुछ कमरों को कमरा न कहकर पूरा सूट या फ्लैट कहना ही उचित होगा। कमरे का फर्नीचर या रंग भी सबका एक सा नहीं है। कोई बिलकुल सफेद है, तो कोई गुलाबी और कोई बादामी। प्रत्येक कमरे में टेलीफोन और छोटा सा रेडियो। यह एक ही खास होटल या मास्को का सबसे अच्छा होटल नहीं था। डा० कुमारप्पा प्रायः सात मास पहले भी मास्को हो आये थे। उस बार वे दूसरे ही होटल में ठहरे थे। उन्होंने बताया वह होटल गत्सीनित्सा सोवियतस्काया से उन्नीस नहीं, शायद बीस ही रहा हो।

होटल का भोजनालय (डाइनिंग हाल) भी बहुत बड़ा है। लगभग ढाई-तीन सौ आदमी एक साथ खाना खा सकते हैं। एक ओर छोटे से मंच पर बैंड से धुनें बजती रहती हैं। रात नौ-दस बजे से सुबह तीन बजे तक लोग सुविधानुसार भोजन करते रहते हैं। ऐसे ही सुबह नाश्ता और दोपहर के भोजन के भी समय हैं। पीना-खाना दोनों चलते रहते हैं। मन होने पर स्त्री-पुरुष उठकर बैंड की धुन पर नाचने भी लगते हैं। भोजन परोसने वालों की पोशाकें जरूर एक सी हैं। इसके अतिरिक्त पोशाक का कोई बन्धन डिनर सूट की तरह का नहीं है। कोई सूट पहने है तो कोई बंद गले के कोट के साथ बिर्जिस और घुटनों तक के बूट। भोजनालय के साथ ही स्त्री-पुरुषों के लिये कमरे है। जहाँ वे भीतर आने से पहले हाथ-मुँह धोकर कंघी-पट्टी कर सकते है। यहाँ साबुन, तौलिये और इत्र फुलेल मौजूद रहते हैं। इसके लिये कुछ दाम देने पड़ते होंगे। मालूम नहीं कितना क्योंकि हाथ-मुँह धोने के अतिरिक्त इन चीजों का व्यवहार वहाँ नहीं किया।

खाना खाने की मेजे छोटी और बड़ी भी हैं। चाहे बहुत से लोग साथ बैठें चाहे दो-दो चार-चार। मेजों पर बर्तन बहुत सुन्दर। प्रत्येक व्यक्ति के सामने चार गिलास फ्रुक्टोस (नींबू या नारंगी के रस जैसी चीज) बियर, वाइन और वोडका पीने के लिये अलग-अलग, शैम्पेन के लिये अलग ढंग के गिलास। भोजन में दो-तीन तरह का मांस, दो तरह की मछली, सब्जियाँ, सलाद, मक्खन, पनीर, दो-तीन तरह की रोटी, फल, आइसक्रीम सब कुछ रहता है। चाहने पर तुरन्त ही दही, दूध या अंडे मिल सकते हैं। भोजन की मात्रा देखकर कुछ विस्मय ही होता है। इस ब्यौरेवार चर्चा का अभिप्राय यह है कि सोवियत में केवल काम चलाने का खयाल नहीं, सौंदर्य और सजावट की प्रवृत्ति योरुप के दूसरे देशों की अपेक्षा कुछ अधिक ही दिखाई दी।

हमारे साथ वियाना से आने वाले और मास्को स्टेशन पर स्वागत करने वाले लोगों ने होटल में पहुँचा कर प्रस्ताव किया कि लम्बी यात्रा के बाद हम कुछ आराम कर लें। हमें निमंत्रण देने वाले शान्तिसभा के लोग हमसे अगले दिन मिलेंगे। तभी हमारे मास्को और सोवियत देश को देख और समझ सकने के बारे में बातचीत और कार्यक्रम बन सकेगा।

२७ दिसम्बर १९५२ हमें मास्को शान्तिसभा के दफ्तर में ले जाने के लिये होटल के बाहर कई मोटरें खड़ी थीं। शान्तिसभा का दफ्तर प्रसिद्ध क्रान्तिकारी लेखक और विचारक

क्रोपोटकिन के नाम पर बनी सड़क क्रोपोटकिनस्काया पर दस नम्बर की इमारत में है। तीसरी मंजिल के एक कमरे में पहुँचने पर सोवियत शान्तिसभा के कुछ लोगों को प्रतीक्षा करते पाया। इनमें ही उजली चाँदी के से श्वेत केश, सफाचट चेहरा कवि तिखानोव भी थे। सिर के केश जरूर चाँदी की तरह श्वेत थे परंतु दोहरे शरीर, स्वस्थ चेहरे और आँखों की चमक से तिखानोव बाक्सिंग के अच्छे खासे पहलवान मान लिए जा सकते हैं। तिखानोव,सोवियत शान्तिसभा के प्रधान हैं। उन्होंने दूसरे सदस्यों से हमारा परिचय कराया और बोले ?—

"सोवियत शांतिसभा की ओर से हम आप लोगों का स्वागत करते हैं। मास्को में सर्दी है। दिन-रात बरफ पड़ रही है। घरों के बाहर सब कुछ बरफ की चादर ओढ़े है। रूस में सर्दी की ऋतु में ऐसा जान पड़ता है कि प्रकृति भी बरफ की चादर ओढ़ सो गयी है। परन्तु हमारे हृदयों में काफी गरमी है। हमारे स्नेह की ऊष्णता आपको मास्को की सर्दी में असुविधा अनुभव नहीं करने देगी। आप लोगों ने वियाना शान्ति कांग्रेस में भाग लेकर शान्ति के लिये जो प्रयत्न किया है, उसके लिये हम लोग आपको बधाई और धन्यवाद देते हैं। सोवियत जनता शान्ति चाहती है। हम युद्धों से घृणा करते हैं। शान्ति के लिये हम सभी सम्भव प्रयत्न कर रहे हैं और करते रहेंगे।"

"भारत और सोवियत संघ में शत्रुता का कोई कभी भी कारण नहीं रहा न कभी हमारे देश आपस में लड़े ही हैं। हम एक दूसरे की मित्रता का भरोसा कर सकते हैं। आप लोगों के सोवियत में पधारने से हमारी वह पुरानी मित्रता और भी दृढ़ हो रही है। आपके लिये हमारे सब द्वार खुले हैं। हमारे देश में आप जो चाहिये, देखिये। आपस में अच्छी तरह समझ सकना ही मित्रता का आधार है। हम चाहते हैं कि आप लोग हमारे देश में काफी समय तक रहकर हमें देख और समझ सकें। आप अपने भ्रमण का कार्यक्रम स्वयं बनाइये। हमारा अनुरोध है कि आप में से प्रत्येक व्यक्ति हमें आदेश दे कि किन क्षेत्रों और समस्याओं में आपकी रुचि है। हम यथाशक्ति आपके लिये सुविधा का प्रबन्ध करने का यत्न करेंगे।"

मेजों पर चाय, चाकलेट, फल लेमनेड वगैरा आ गये। वह सोवियत में साधारण प्रथा जान पड़ती है कि कहीं भी मिलने या बातचीत के लिये जाने पर प्रायः चाय, चाकलेट, फल मेज पर आ जाते थे। सोवियत में खाने-पीने की चीजों की प्रचुरता जान पड़ती है। लोगों को खिलाने-खाने का शौक भी खूब है। यह उनके शरीर के आकार और स्वास्थ्य भी गवाही देते हैं।

डा० किचलू ने हम लोगों की ओर से स्वागत के लिये धन्यवाद दिया। वियाना से मास्को तक के रास्ते में बहत्तर घंटे तक हम यही सोचते आये थे कि सोवियत में क्या देखेंगे? प्रत्येक व्यक्ति ने अपनी-अपनी माँगें पेश करनी शुरू कीं। बहुमत से सोवियत में ठहरने का समय तो तीन सप्ताह ही निश्चय हुआ परन्तु देखने की इच्छा बहुत कुछ थी। गुजराती के प्रसिद्ध लेखक श्री० देसाई ने लेनिन को समाधि, सांस्कृतिक संस्थाओं, रंगमंच, ओपेरा और बैले देखने तथा सोवियत लेखकों से मिलने की इच्छा प्रकट की। इलाहाबाद

यूनिवर्सिटी के मिश्रजी यूनिवर्सिटी देखना और प्रोफेसरों और शिक्षा-संस्थानों के लोगों से मिलना चाहते थे। पत्रकार गुप्ता सोवियत में पत्र प्रकाशन की व्यवस्था देखना चाहते थे। बम्बई विधान सभा के श्री यादव मिलों और मिल-मजदूरों की अवस्था और उनके मजदूरी आदि की व्यवस्था के सम्बन्ध में जानना चाहते थे। श्री० शाह सोवियत गाँवों की अवस्था देखना और टाल्सटाय की समाधि के दर्शन करना चाहते थे। कुछ लोग संयुक्त-कृषि की योजना और एशियाई प्रजातंत्रों का रंग-ढंग देखना चाहते थे। मालती बिडेकर और हाजरा बेगम बच्चों के स्कूल और नर्सरी देखना चाहती थीं। कुछ लोग सोवियत द्वारा डान नदी को उठाकर वोल्गा नदी में डाल देने का इंजीनियरिंग का अद्भुत चमत्कार देखना चाहते थे। कुछ की रुचि चित्रशालाओं, पुस्तकालयों और नागरिक जीवन का परिचय पाने की थी। एक सज्जन ने हो सके तो कामरेड स्तालिन के ही दर्शनों की इच्छा प्रकट कर दी। एक के बाद एक मांग पेश हो रही थी। मन में ख्याल आ रहा था कि हमें निमंत्रण देकर इन लोगों को पछताना तो नहीं पड़ेगा? डा० किचलू ने भी कुछ झेंप कर क्षमा-सी माँगते हुए कहा—'हम लोगों का कौतूहल इतना अधिक है कि हमारी माँगों का अन्त नहीं।'

तिखानोव मुस्कराते हुए फिर खड़े हुए—'आप लोगों ने जो कुछ देखने की इच्छा प्रकट की है वह अधिक नहीं। उसके लिये प्रबन्ध करना हमारे लिये कुछ भी कठिन नहीं। अलबत्ता आप लोगों ने इसके लिये समय बहुत कम रखा है। सुविधायें हम प्रस्तुत करेंगे श्रम आपका होगा। कामरेड स्तालिन से मुलाकात के सम्बन्ध में पूछताछ किये बिना कोई आश्वासन दे देना ठीक न होगा।' उन्होंने शान्ति सभा के सदस्यों की ओर संकेत कर डा० बुटरोव से परिचय करा दिया कि अब यही आप लोगों के पथदर्शक और सहायक रहेंगे। डा० बुटरोव आयु में अधिक नहीं जान पड़े परन्तु पिछले युद्ध में मोर्चों पर मौजूद रहने वालों में और साथ ही सोवियत के जाने माने वैज्ञानिकों में हैं। बातचीत और स्वभाव में औला-मौला और हंसोड़ ही लगते हैं लेकिन प्रबन्ध के विषय में बहुत कड़े।

मैट्रो

उस संध्या मैट्रो देखने के लिये गये। मैट्रो का अर्थ है मास्को नगर के नीचे सुरंगों में चलने वाली बिजली की रेलगाड़ी। मैट्रो की प्रशंसा इससे पहले भी पढ़ी और सुनी थी, चित्र भी देखे थे इसलिये उत्सुकता भी बहुत थी। संध्या का अंधेरा हो चुका था। अंधेरा तो मास्को में जनवरी मास में चार-साढ़े-चार बजे ही हो जाता है। एक मकान के सामने जाकर गाड़ी रुकी। मकान के ऊँचे शिखर पर बिजली की लाल नालियों से खूब बड़ा अक्षर बना हुआ था। M मैट्रो का संकेत चिह्न है। दिन के कोहरे में भी यह M आग की रेखाओं की तरह चमकता रहता है। यह नोवोस्कोवोस्काया मैट्रो स्टेशन था। खूब खुले मंडप जैसा कमरा, जैसे किसी कला संग्रहालय का गुम्बद हो। संगमरमर की मूर्तियाँ। यूनानी पौराणिक गाथाओं की नग्न मूर्तियाँ नहीं लेनिन-स्तालिन की मूर्तियों के अतिरिक्त कुछ दूसरे नवयुवकों की मूर्तियाँ। संगमरमर की दीवारों पर पच्चीकारी (फ्रेस्को) में समाजवादी क्रान्ति के कुछ दृश्य।

सामने दो खूब चौड़े जीने नीचे उतर गये हैं। इनमें से एक जीने की सीढ़ियाँ स्वयं ही नीचे की ओर जा रही थीं और दूसरा ऊपर की ओर चढ़ता आ रहा था। जीने की पहली सीढ़ी पर कदम रखते ही मालूम होता है जीना झटके से अपनी ओर खींच रहा है। उसके बाद खड़े रहने पर भी जीना सीढ़ी-सीढ़ी नीचे उतरता जाता है। यदि जल्दी है तो इस चलते हुए जीने पर भी अपनी साधारण गति से, उतरते भी जाइये। साधारण चाल से चलने पर भी चाल की रफ्तार तीन-चार गुनी हो जायेगी। भय का कोई कारण न होने पर भी नये आदमी को बिना किसी प्रयत्न के नीचे फिसलते जाने में गिरने की सी धड़कन होती है। मास्को के लोगों को ऐसा अनुभव न होता होगा। छोटे-छोटे लड़के, लड़कियाँ भी कूद-कूदकर विनोद से एस्केलेटर (चालू सीढ़ी) पर चढ़ जाते हैं, उंगली पकड़कर चलने वाले बच्चे भी घबराते नजर नहीं आते। युवक प्रेमी जोड़े बगलों में हाथ डाले रहस्यवार्ता करते ऊपर या नीचे चले जाते हैं। लंदन, न्यूयार्क और पेरिस के लोगों को भी इसमें आशंका या वैचित्र्य अनुभव नहीं होगा। लंदन में भी सुरंग रेलें हैं। तहखानों में बने स्टेशनों के प्लेटफार्मों पर पहुँचने के लिये एस्केलेटर भी हैं। हाँ, वे कुछ अधिक गड़गड़ाहट जरूर करते हैं। मास्को के एस्केलेटर अच्छे मालूम होते हैं शायद इसलिये कि अभी नये-नये बने हैं।

एस्केलेटर से उतरते समय सुरंगों की मेहराबों की दीवारों और छतों पर भी चित्रकला के उत्कृष्ट नमूने हैं। अधिकांश में क्रान्ति के ही दृश्य-है परन्तु बहुत ही सजीव। संगमरमर के नक्काशीदार फर्श। छतों के झाड़-फानूस लटके हुए। मानो किसी सम्राट के सभा भवन में पहुँच गये हों लेकिन है यह मास्को की सुरंग रेल का प्लेटफार्म ही; जहाँ से प्रति एक-दो मिनट में साफ सुथरी, गद्देदार, भीतर से गरम गाडियाँ बड़ी तेजी से आती-जाती रहती हैं। इन गाड़ियों में सवार होने वाले लोग प्रायः ही मजदूर या क्लर्क होते हैं। जिन्हें अपने रहने की जगह से काम काज के लिये शहर के दूसरे दूर के भागों में जाना पड़ता है। मैट्रो सुरग-रेल की बनावट मास्को के नीचे एक चक्कर के रूप में है जो नगर के अनेक भागों को एक दूसरे से मिलाता जाता है। कोस्मोलस्काया स्टेशन केन्द्र में है। इस केन्द्र से चक्कर के अनेक भागों को पहिये की करणों की तरह सीधी गाड़ियाँ जाती हैं। चक्कर से परे भी नगर के दूरवर्ती भागों को लाइनें चली गई हैं। दूर जाने वाली लाइनें चक्कर की सुरंग के नीचे से गुजरती हैं। चक्करदार सुरंग की गहराई पृथ्वी तल से प्रायः डेढ़ सौ फुट है और उसके नीचे जाने वाली लाइनों की ढाई सौ फुट। सुरंगों में सभी जगह खुली हवा पहुँचने की व्यवस्था है। अभी तक मास्को के नीचे प्रायः पचास मील सुरंगों में गाड़ियाँ चल पाई हैं। शष जल्दी-जल्दी बननी जा रही हैं। एक बार मैट्रो के किसी भी स्टेशन में भीतर जाने के लिये आधा रूबल का टिकट लेना पड़ता है। इस टिकट से आप चाहे जितनी दूर जा सकते हैं। यदि किसी भी स्टेशन से बाहर न निकले तो वापस भी लौट सकते है।

नोवोस्कोवोस्काया से सुरंग-रेल में ही चलकर दो-तीन स्टेशन छोड़ कोस्मोलस्काया पहुँच गये। इस स्टेशन पर भी वैसा ही प्रकाश और सफाई थी। कोई एक स्टेशन देख लेने

पर केवल उसी स्टेशन के सौन्दर्य, सुरंग-रेल के चलने के ढंग और उपयोगिता का ही अनुमान हो सकता है अन्य स्टेशनों की रूपरेखा और कला सौन्दर्य का नहीं। कोस्मोलस्काया स्टेशन का रंग दूसरा ही है, कुछ हल्का गुलाबी सा। यहाँ मूर्तियाँ नहीं हैं। दीवारों और छतों पर एशिया की बैजन्टाइन कला के बहुत सुन्दर नमूने रंग-बिरंगे कीमती पत्थरों को जोड़कर बनाये गये हैं। यहाँ से कुछ दूर एक और स्टेशन पर जाकर देखा पूरा स्टेशन आसमानी रंग के चिकने चमकीले पत्थरों का बना हुआ है मानो पूरी इमारत समुद्र की लहरों से बनी हुई है। एक स्टेशन पर उत्पादक श्रम में लगे किसानों और मजदूरों की मूर्तियाँ हैं तो दूसरे स्टेशन पर देश रक्षा के लिये लड़ने वाले स्थल और जहाजी सैनिकों की; कहीं लेखकों और कलाकारों की। मैट्रो के सभी स्टेशन एक दूसरे से भिन्न-भिन्न रंगों और रूपरेखाओं में भिन्न प्रकार की भावनाओं और कला के प्रतीक के रूप में मास्को नगर की नींवों के नीचे फैले हुए हैं। मास्को को अपनी इस कला निधि के लिए गर्व है और उचित गर्व है।

मैट्रो सुरंग-रेल मास्को की पचास लाख जनसंख्या के लिये कम समय में और कम खर्च में एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुँच सकने की सुविधा के लिये बनाई गई है परन्तु यातायात की नागरिक आवश्यकता को पूरा करने के साथ उसमें कला सौन्दर्य और सुरुचि के लिये विशेष स्थान रखा गया है। यदि न्यूयार्क और लंदन की सुरंग रेलों की तरह मास्को की मैट्रो को व्यावसायिक लाभ के लिये ही बनाया गया होता तो यह स्टेशन शायद एक चौथाई से भी कम लागत में बन जाते। व्यावसायिक दृष्टि से वही बुद्धिमानी भी समझी जाती परन्तु सोवियत की जनता शायद अपनी आवश्यकताओं को सौन्दर्य और कलापूर्ण ढंग से पूरा करना चाहती है। समाजवादी व्यवस्था ने उन्हें नीरस नहीं बल्कि प्रचुर साधन देकर अधिक रसिक बना दिया है।

डाइनेमो स्टैडियम

हम लोगों ने सोवियत की संस्थाओं के परिचय और ऐसे स्थानों को देख पाने के लिये अनुरोध किया था। उसी प्रसंग में ०० बुटरोव और क्रेमापालोवा हमें डाइनेमो स्टैडियम दिखाने के लिये ले गये। इसे मास्को में व्यायाम सम्बन्धी खेलकूद की सबसे बड़ी रंगशाला समझिये। सोवियत विचारधारा के अनुसार स्वास्थ्य सुधार और शारीरिक बल की वृद्धि भी संस्कृति का आवश्यक पहलू है। इस सम्बन्ध में उचित भोजन से लेकर व्यायाम तक सभी बातों की ओर उनका ध्यान बहुत अधिक है। रंगशाला के प्रबंधक ने गर्व से बताया कि इस स्थान का नाम चुनने के लिये गोर्की से अनुरोध किया गया था। उन्होंने 'डाइनेमो स्टैडियम' नाम सुझाया। डाइनेमो बिजली की शक्ति उत्पन्न करने वाले यंत्र को कहते हैं। इस व्यायामशाला को डाइनेमो नाम देते समय गोर्की की यही भावना और आशा रही होगी कि यह स्थान सोवियत समाज के लिये शक्ति के स्फुरण का केन्द्र बनेगा।

डाइनेमो स्टैडियम का द्वार किसी भी नये ढंग की छोटी-सी इमारत का सा ही दिखाई देता है। द्वार के साथ शुरू में कुछ कमरे हैं जिनमें यहाँ के काम का लेखा-जोखा रखा जाना है या खिलाड़ी कपड़ा वगैरा बदल सकते हैं। दफ्तर से एक सुरंग में जाने पर बहुत बड़े प्रांगण के बीच द्वार खुलता है। प्रांगण या मैदान दर्शकों के लिये जीनों की तरह बनी बैठने की जगहों से घिरा हुआ है। बीच में फुटबाल, बालीबाल, हाकी वगैरा के लिये मैदान छोड़ दिया गया है। इस मैदान की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसके चारों ओर पैंसठ हजार दर्शकों के बैठकर देखने की जगह है। मालूम नहीं संसार के दूसरे देशों में इतनी बड़ी कोई दूसरी रंगशाला या स्टैडियम है या नहीं परन्तु सोवियत में यह अवश्य सबसे बड़ी रंगशाला नहीं है। डाइनेमो स्टैडियम के प्रबंधक से पूछने पर कि क्या यही सबसे बड़ा स्टैडियम नहीं है? उसने स्वीकार किया—"नहीं इससे बड़ा स्टैडियम लेनिनग्राड में 'स्पार्टाक-स्टैडियम' है जिसमें पचासी हजार व्यक्ति एक साथ खेल देखने के लिये बैठ सकते हैं।" यह दो तो सबसे बड़े स्टैडियम हैं परन्तु सोवियत भर में केवल दो ही स्टैडियम नहीं हैं दूसरे नगरों में भी वहाँ की जनसंख्या के हिसाब से स्टैडियम हैं जिनकी संख्या आठ सौ है। यह संख्या ही खेलकूद द्वारा व्यायाम और शारीरिक सुधार की ओर सोवियत के दृष्टिकोण की झलक दे देती है।

यह स्टैडियम केवल खेल या तमाशा कर दर्शकों से पैसा बटोरने के लिये नहीं हैं। हमारे देश में जहाँ कहीं ऐसी रंगशालायें हैं वे कोई खास मैच होने पर या विदेश से खिलाड़ियों का कोई दल आ जाने पर जाग उठती हैं, वर्ना वहाँ गायें-भैंसें चरा करती हैं। सोवियत के यह स्टैडियम बारहों मास, प्रतिदिन चालू रहते हैं। हजारों दर्शकों को आकर्षित करने वाले मैच तो कभी-कभी ही होते होंगे परन्तु वहाँ व्यायाम और खेलों की शिक्षा नित्य दी जाती है। इस प्रकार की शिक्षा के लिये कोई शुल्क नहीं देना पड़ता। शिक्षा देने वाले भी अधिकांश में शौक से ही आते हैं। स्टैडियम केवल प्रबंधकों को वेतन देता है। हमारे देश में या अन्य पूँजीवादी देशों में व्यायाम के प्रयोजन से खेलकूद के लिये क्लब का मेम्बर बन जाना साधारण मध्यम श्रेणी के बूते की भी बात नहीं। सर्वसाधारण नागरिकों या किसान-मजदूर की तो बात ही सोचना व्यर्थ है। इन रंगशालाओं में दी जाने वाली शिक्षा कैसी होगी; उनका क्षेत्र कितना है? यह अनुमान परिणाम से ही किया जा सकता है:—सोवियत में पाँच सौ इक्कीस खेलों की प्रतियोगितायें चालू हैं। सत्तर खेलों में उनके खिलाड़ी संसार में सर्वप्रथम माने गये हैं।

खेलों और व्यायाम को इतना महत्व देते हुए भी यह बात जरूर विस्मय की है कि सोवियत में पेशेवर खिलाड़ी या खिलाड़ी-सांड पालने की प्रथा नहीं है। हमारे यहाँ और अन्य पूँजीवादी देशों में सभी खेलों के प्रमुख खिलाड़ी पेशेवर खिलाड़ी ही होते हैं। जिन्हें कोई राजा-रईस या क्लब खेल का करतब दिखाने भर के लिये नौकर रख लेती है। इनका काम केवल खेल का अभ्यास कर समय-समय पर करतब दिखा देना ही होता है। सोवियत में ऐसी बात नहीं है। वहाँ के सभी खिलाड़ी समाज के सामान्य सदस्य हैं जो समाज के प्रति अपने आर्थिक और सामाजिक कर्तव्य को भी पूरा करते हैं और अपने

जीवन निर्वाह के लिये आत्मनिर्भर हैं। उन्हें राजा-रईसों या क्लबों की मोहताजी करने की आवश्यकता नहीं। विशेष प्रतियोगिता में भाग लेने के लिये उन्हें अभ्यास के लिये वेतन सहित अवकाश मिल जाता है। अपनी औद्योगिक संस्थाओं से वे दूसरी तरह की सहायता भी पाते हैं क्योंकि इनकी यह योग्यता उनकी संस्थाओं के लिये सम्मान का कारण समझी जाती है।

रंगशाला में जगह-जगह सोवियत नेताओं के विशाल चित्र हैं। परन्तु उन चित्रों से अधिक ध्यान आकर्षित हुआ लाल रंग पर मोटे सफेद अक्षरों में लिखे सुभाषित की ओर। यह स्तालिन के शब्द हैं "संसार में शान्ति की रक्षा हो सकती है यदि जनता शान्ति रक्षा का काम अपने हाथ में ले ले!" यह बात स्तालिन ने क्यों कही होगी? क्या किसी भी राष्ट्र की सरकार शान्ति और युद्ध के प्रश्न पर अपनी जनता का हस्तक्षेप पसन्द करती है? क्या यह मान लिया जाये कि सोवियत शासन के नेता अंतर्राष्ट्रीय राजनीति के निर्णय का अधिकार अपनी जनता को सौंप देना चाहते हैं? बहुत सोचकर यही जान पड़ता है कि शान्ति के लिये सोवियत जनता की पुकार के उत्तर में ही स्तालिन ने यह शब्द कहे होंगे कि यदि संसार की जनता शांति चाहती है तो जनता को अपनी सरकारों पर ही भरोसा न करके यह काम स्वयं अपने ही हाथ में लेना चाहिए और इसी स्तालिन के लिये पूँजीवादी जगत के, प्रजातंत्र का ढिंढोरा पीटने वाले नेताओं का कहना था कि वह सबसे निर्मम तानाशाह था जिसके शासन में जनता को अपने मन की बात कहने की स्वतंत्रता नहीं थी।

जोया स्कूल

दोपहर बाद मास्को का एक स्कूल देखने गये। यह लड़कियों का हाई स्कूल था और नाम, जोया स्कूल। छोटा सा फाटक और सादी सी लाल ईंट की इमारत। एक प्रौढ़ा चपरासिन ने आगे बढ़कर फाटक खोल दिया। ड्योढ़ी के स्प्रिंगदार दरवाजों के भीतर जाकर देखा कि छत नीची होने पर भी हाल काफी बड़ा था। यह विद्यार्थियों के कोट और बर्फ में पहनने के जूते रखने की जगह थी। हाल के भीतर बड़े-बड़े गमलों में रखे गरम देशों के पेड़ों की ओर ध्यान गया। मास्को में और सोवियत के दूसरे नगरों में भी कमरों के भीतर पेड़ रखकर सजावट का शौक बहुत है। इस स्कूल में भी शौक की चीजों की कमी न थी। हाल के बीचोंबीच पत्थर की मूर्ति मे जोया, नाजी अत्याचार के सामने सिर न झुकाने की प्रतिज्ञा में मुट्ठी बाँधे, दृढ़ निश्चय से खड़ी थी।

बहुत से परदेसियों और वे भी मास्को के लिये असाधारण रंग के लोगों के झुंड को स्कूल में आया देख हाल में से जाती हुई १२-१३ वर्ष की कुछ लड़कियाँ कौतूहल में ठिठक हमें देखने लगी थीं। हमारे कुछ साथी नाजी आक्रमण के विरुद्ध सोवियत के आत्मरक्षा के युद्ध में जोया की वीरता और बलिदान की कहानी से परिचित थे और कुछ अपरिचित। उन्हें विस्मय था कि एक १६-१७ वर्ष की लड़की की मूर्ति का क्या महत्व हो सकता है और क्यों कोई स्कूल उसकी स्मृति अपने नाम के साथ जोड़कर गर्व अनुभव

कर रहा है! अपने साथियों को संक्षेप में जोया का इतिहास बता रहे थे। वह लड़कियाँ जोया की मूर्ति को लक्ष्य कर चलती हमारी बातचीत से प्रसंग का अभिप्राय समझ गईं। अपने देश की एक लड़की की कीर्ति इतने दूर देश तक पहुँच सकने के गर्व से उनके चेहरे और आँखें चमक उठीं।

बाहर से बहुत सादी दिखाई देने वाली ईंट की मरम्मत भीतर के खूब गरम और प्रकाश से जगमग थी। इस स्कूल में लड़कियों की संख्या १५७० और अध्यापकों की संख्या ६१ है। लड़कियों की संख्या अधिक होने से स्कूल दिन में दो बार लगता है। सुबह ८॥ बजे से १ तक और फिर संध्या २॥ बजे से ७ तक। अभी तक मास्को में स्कूलों के लिये इमारतें काफी नहीं हैं। यह स्कूल मास्को के तिमिराजेव भाग में है। नगर ऐसे पच्चीस भागों में बँटा हुआ है। समाजवादी क्रान्ति से पहले इस भाग में केवल एक प्राइमरी स्कूल था। अब यहाँ बीस हाई स्कूल हैं। पूरे मास्को नगर में छः सौ अठारह हाई स्कूल है। इस पंचवर्षीय योजना में मास्को में स्कूलों के लिये चार सौ नयी इमारतें बनायी जाने की बात है। मास्को या सोवियत में शिक्षा के लिये दी गई सुविधाओं की तुलना दूसरे देशों से करना तो असंगत है ही परन्तु यह भी ध्यान में रखना आवश्यक है कि ग्रेट ब्रिटेन, फ्रांस, अमरीका में मौजूद स्कूलों की संख्या और शिक्षा के लिये सुविधायें एक शताब्दी से अधिक समय के विकास का परिणाम हैं और सोवियत में केवल पिछले तीस वर्ष के विकास का।

छोटी कक्षाओं में एक अध्यापक प्रायः चालीस विद्यार्थियों की और ऊँची कक्षाओं में तैंतीस की देखभाल करता है। प्रत्येक स्कूल का अपना डाक्टर, अपना डेंटिस्ट और दो नर्सें होती हैं। इस स्कूल के पुस्तकालय में सैंतीस हजार पुस्तकें हैं। मास्को में वर्ष के अधिकांश समय इतनी सर्दी होती है कि खुले आकाश के नीचे कपड़े उतारकर व्यायाम नहीं किया जा सकता। स्कूल में खूब बड़े-बड़े हाल छोटी और बड़ी लड़कियों के लिये खेलकूद और व्यायाम के लिये हैं। बरफ पड़ रही थी। बिना ओवरकोट, हैट और बरफ में चलने वाले जूतों के बाहर खड़े होना कठिन ही था। तब यहाँ लड़कियाँ सफेद बनियान और नीली निकरें पहने ड्रिल कर रही थीं। उनकी छोटी-छोटी, भरी-भरी गदवदी बाँहों, पिंडलियों और चमकते चेहरों से इनके स्वास्थ्य और पौष्टिक भोजन का अनुमान हो सकता था। पौष्टिक भोजन या स्वास्थ्य की कमी को कारण दयनीय शरीर एक भी नहीं दिखाई दिया।

सोवियत में बच्चे सात वर्ष की आयु में किंडरगार्टन पूरा कर स्कूल जाना आरम्भ करते हैं। पहली से चौथी कक्षा तक भाषा, अंकगणित, सुलेख, आलेख्य, (ड्राइंग) संगीत और व्यायाम की शिक्षा दी जाती है। रूस के अतिरिक्त सोवियत के अन्य राष्ट्रों में पहली कक्षा से ही अपनी मातृभाषा के साथ ही रूसी भाषा की भी शिक्षा दी जाती है। परीक्षायें पाँचवीं कक्षा से आरम्भ होती हैं। पाँचवीं कक्षा से देशी-विदेशी साहित्य, अंकगणित, बीजगणित, रेखागणित, इतिहास, भूगोल आदि की शिक्षा दी जाती है। छठी कक्षा से

विज्ञान आरम्भ हो जाता है। सातवीं से दसवीं तक, जन्तुविज्ञान, शरीरविज्ञान, मनोविज्ञान, दर्शन, इतिहास और संसार का भूगोल जर्मन और लैटिन पढ़ाये जाते हैं।

सोवियत स्कूलों में लड़कियों को हमारे देश की तरह डोमेस्टिक-साइंस या पारिवारिक-विज्ञान उदाहरणतः सीना-पिरोना और पूरी, आचार बनाना नहीं सिखाया जाता। उनका विचार है कि यह काम लड़कियाँ परिवार में स्वयं ही सीख सकती हैं। शायद इसी शिक्षा का परिणाम है कि मालती बिडेकर के लड़कियों से यह प्रश्न करने पर कि दसवीं परीक्षा पास कर वे क्या करेंगी ? लड़कियों ने डाक्टर, इंजीनियर, अध्यापक, चित्रकार और वकील बनने की ही महत्त्वाकांक्षा प्रकट की। मालती भैन ने याद भी दिलाया—"क्यों; विवाह करके मजे में घर बार नहीं चलाना चाहतीं ?"—लड़कियाँ विद्रूप से हँसकर "ना! ना!!" चिल्ला उठीं। जोया हाई स्कूल लड़कियों के लिये है। इसका अर्थ स्पष्ट ही है कि सोवियत मे लड़के-लड़कियों की सहशिक्षा नहीं है? इस बात की ओर ध्यान विशेष रूप से गया और पूछा कि इसका कारण क्या है? स्कूल के मुख्याध्यापक से बातचीत करके संतोष हुआ तो शिक्षा विभाग के उपमंत्री के यहाँ जाकर सोवियत में की शिक्षा की व्यवस्था के सम्बंध में बातचीत के सिलसिले मे भी इस प्रश्न पर बात की। सोवियत में इस समय दोनों ही ढंग चालू हैं अर्थात् लड़के-लड़कियों की सहशिक्षा और पृथक शिक्षा भी। गाँवों और छोटे-छोटे नगरों में सहशिक्षा ही है; कारण है पृथक-पृथक स्कूलों के लिये इमारतों और अध्यापकों की कमी। बड़े-बड़े नगरों में पृथक शिक्षा की व्यवस्था कर दी गई। सात वर्ष की आयु तक लड़के-लड़कियों की शिक्षा एक साथ होती है। हाई स्कूल की शिक्षा, सात से सत्रह तक की आयु तक पृथक-पृथक और फिर यूनिवर्सिटी में भी सहशिक्षा ही है।

साधारणतः लड़के-लड़कियों के स्वाभाविक विकास के लिये सहशिक्षा को उपयोगी समझा जाता है और उन्हें पृथक-पृथक रखने की प्रतिक्रियावादी प्रणाली। सोवियत शिक्षा विभाग का कहना है कि युवकों-युवतियों के लिये विकास का स्वाभाविक मार्ग क्या है; यह अनुभव के आधार पर ही समझा जा सकता है। उनकी धारणा है कि साधारणतः सहशिक्षा ही उपयोगी है परन्तु किशोर अवस्था में लड़के-लड़कियो के शारीरिक और मानसिक विकास की प्रक्रिया इतनी भिन्न होती है कि उनका अति सान्निध्य दोनों के ही स्वाभाविक विकास में बाधक होता है। किशोर अवस्था में लड़के-लड़कियो के शारीरिक और मानसिक विकास की भिन्नता और उनकी मानसिक डावांडोल स्थिति केवल विश्वास की बात नहीं बल्कि मनुष्य शरीर की प्रक्रिया के वास्तविक तथ्य हैं; उनकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। किशोर अवस्था से पूर्व और उसके बाद, जब अपेक्षाकृत पक्वता और स्थिरता आ जाती है, उनकी संगति एक दूसरे के विकास में सहायक हो सकती है। एक तरह से सहशिक्षा और पृथक शिक्षा दोनों ही चालू हैं। यह अनुभव बतायेगा कि कौन प्रणाली अधिक उचित है।

सोवियत स्कूलों में किसी भी प्रकार की धार्मिक या साम्प्रदायिक शिक्षा नहीं दी जाती है। स्कूल सब राष्ट्र के हैं। सोवियत में कोई राज धर्म नहीं है। शासन व्यवस्था किस

सम्प्रदाय के धर्म की शिक्षा दे और किस सम्प्रदाय के धर्म की उपेक्षा करे? इसके साथ ही वैज्ञानिक शिक्षा द्वारा मिथ्याविश्वास और संस्कार न बैठने देने का भी यत्न किया जाता है। साधारणतः धार्मिक शिक्षा के साथ नैतिक शिक्षा का गठजोड़ समझ लिया जाता है। ऐसी अवस्था में धार्मिक शिक्षा के अभाव में नैतिक शिक्षा के अभाव की भी धारणा हो जाती है। सोवियत में साम्प्रदायिक धार्मिकता अर्थात् ईश्वर विश्वास और परलोक सम्बन्धी धारणाओं को और आचार सम्बन्धी नैतिकता अर्थात् व्यक्ति और समाज के आचार सम्बन्धी नैतिकता को पृथक-पृथक समझा जाता है और ऐसी शिक्षा को विशेष महत्त्व दिया जाता है। आचार सम्बन्धी नैतिकता को पृथक विषय न बनाकर उसे सोवियत के विधान, दर्शन, साहित्य आदि सभी के अन्तर्गत रखा जाता है। वही तो शिक्षा का ध्येय है।

शिक्षा का ढङ्ग और विषय बहुत कुछ वैसे ही हैं वैसे सभ्य देशों के आदर्श स्कूलों में हो सकते हैं परन्तु कुछ विशेष बात भी है। उदाहरणतः इस स्कूल को दूसरे स्कूलों की तुलना में अच्छा या बुरा स्कूल नहीं कहा जा सकता। असल बात यह है कि मास्को में साधारण और अच्छे स्कूलों का भेद है ही नहीं। जैसे हमारे देश में 'कानवेंट' के स्कूल या बड़ी फीसें लेने वाले वड़े आदमियों के स्कूल और इंगलैंड में 'ईटन' और 'हैरो' के पब्लिक स्कूल हैं, वैसे असाधारण स्कूल सोवियत में कहीं नहीं है। सोवियत व्यवस्था यह नहीं सह सकती कि कुछ आदमियों की सन्तानों के लिये बढ़िया स्कूल और अध्यापक हों और शेष समाज की सन्तान को साधारण जनता कहकर उनकी उपेक्षा कर दी जाये! समाज में भिन्न-भिन्न स्तर के स्कूलों का होना न केवल समाज में श्रेणियों के भिन्न-भिन्न स्तर होने का परिणाम है बल्कि शिक्षा की व्यवस्था में यह भेद दो तरह की श्रेणियाँ, शासक और शासित बनाये रखने की व्यवस्था और साधन भी हैं। यह उस परम्परा का अवशेष है जो यह विश्वास करती थी कि कुछ लोग वंश अधिकार से ही शासन करने के लिये और शेष समाज उनकी दासता के लिये पैदा होता है।

जोया स्कूल तिमिराजेव मुहल्ले की लड़कियों के लिये है। नगर के इस भाग की सभी लड़कियों के लिये इसी स्कूल में पढ़ना अनिवार्य है। या इस भाग की लड़कियों को पढ़ाना इस स्कूल का कर्त्तव्य है। यदि स्कूल की सीमा में कोई लड़का या लड़की चलने-फिरने के अयोग्य होने के कारण स्कूल पहुँच सकने में असमर्थ है तो अध्यापकों को उसके घर में जाकर उसे पढ़ा आना होगा। जोया स्कूल के अध्यापकों को ऐसी दो लडकियों के घर जाकर पढ़ाना पड़ता है। इसके लिये लड़कियों के परिवार को विशेष फीस नहीं देनी पड़ती। सोवियत व्यवस्था देश के सभी बच्चों के लिये उचित शिक्षा देना भी अपनी जिम्मेवारी मानती है।

'बोलशोई थियेटर'

हम लोगों की इच्छा सोवियत के प्रसिद्ध बैले, ओपेरा और नाटक देखने की भी थी। उस संध्या हमारे लिये बोलशोई थियेटर में बैले के टिकट खरीद लिये गये थे। अंधियारे आकाश के नीचे बोलशोई थियेटर की इमारत विद्युत के प्रकाशवान स्तूप की भाँति खड़ी

थी। नीचे सड़क पर इतना प्रकाश था कि कोई पिन या बटन टूटकर गिर जाने पर ढूँढ़ लेने में कठिनाई न होती।

थियेटर हाल की ड्योढ़ी के सामने एक के बाद एक कई टैक्सियाँ आकर रुक रही थीं। दिल्ली और बम्बई की तरह मास्को और सोवियत के दूसरे नगरों में टैक्सी अपने रंग से पहचानी जा सकती है। गहरे हरे रंग की मोटर की छत पर काली धारियाँ पड़ी रहती हैं। मास्को की टैक्सी वियाना और लन्दन की टैक्सी की तरह बेरौनक सी नहीं जान पड़ती। दो मिनट के लिये बोलशोई की ड्योढ़ी के सामने ठिठका खड़ा रहा यह देखने के लिये कि नाटक देखने के लिये आने वाले लोग कौन हैं? टैक्सियों से उतरने वाले लोग दूसरी भीड़ से कुछ भी भिन्न नहीं जान पड़े; न उन्हें अपने लिये भीड़ में रास्ता बन जाने की आशा करते पाया। इनमें से कुछ के कन्धों पर कई तरह के बिल्ले भी लगे हुए थे जैसे कि अपने यहाँ फ़ौजी अफसरों के कन्धों पर होते हैं। दुभाषिया साथी गेनरीटा से उनके सम्बन्ध में प्रश्न किया। उसने विल्लों की पहचान से उनमें से कुछ को रेल के कारखानों या रेल की लाइनों पर काम करने वाला बतलाया। कुछ फ़ौजी अफसर थे, कुछ अन्य विभागों में काम करने वाले। भीड़ में उनके बिल्लो का कुछ प्रभाव दिखाई न पड़ता था। थियेटर के भीतर बड़ा हाल प्रतीक्षा करने के लिये और बाद में ओवरकोट और बूट जमा कराने के लिये लम्बे-लम्बे स्टाल।

बैले का विषय स्वान लेक (हंस झील) की कहानी थी। यवनिका उठती। झील और जंगलों का प्राकृतिक दृश्य इतने मोहक और यथार्थ रूप में सामने आया कि यह जानते हुए भी कि हम हिमाच्छादित पर्वतों की उपत्यका में नहीं घूम रहे, थियेटर हाल मे बैठे हैं मन में तरावट सी आ गई। स्वप्न लोक का सा दृश्य जान पड़ा। मालूम था कि यह सब पर्दों की बनावट का खेल है परन्तु उन पर्दों की बनावट में आँखों को यही जान पड़ता था कि रंगमंच में सामने की ओर चलने लगे तो बिना रुकावट के मील दो मील चले जा सकते हैं।

सौ सवा सौ व्यक्तियों के आरकेस्ट्रा के स्वर से हाल गूँज उठा। मच पर नर्तकियाँ आईं। नर्तकियों का रूप उनके शरीर की गठन और पांव के अंगूठे की नोक पर सधा हुआ। उनका नृत्य, यह जानते हुए भी कि परियाँ केवल काल्पनिक वस्तुयें होती हैं, आँखों के सामने परियों का समूह देख ही रहे थे। एक राजकुमार परी राजकुमारी पर मोहित हो जाता है। राजकुमारी भी उसकी ओर आकर्षित होती है। अन्य परियाँ प्रेमियों की प्रसन्नता में सहयोग देती हैं। एक दैत्य राजकुमार से ईर्ष्या करता है और राजकुमारी का अपहरण करने के लिये उसे और उनकी सहेलियों को अपने जादू से हंस बना देता है। रंगमंच पर लहराती हुई झील के लहराते हुए जल पर हंसों का तैरना, सुन्दर वृक्षों और लताओ से छाये हुए तट पर व्याकुल हंसों का गोल बाँधकर उड़ना, विरही राजकुमार को अपनी प्रेमिका के लिये बन-बन भटकना; एक बनवासी वृद्ध द्वारा दैत्य के जादू का भेद राजकुमार पर प्रकट होना; राजकुमार का दैत्य से युद्ध; दैत्य का परास्त होना और जादू

का टूटना और हंसों का कोमलांगी युवतियों के रूप में फिर नाचने लगना, यही बैले की कहानी थी। परियों और दैत्यों की कहानियों को मैं व्यक्तिगत रूप से सदा बच्चों के विनोद की ही चीज समझता रहा हूँ परन्तु अद्भुत दृश्य और हृदयग्राही संगीत के साथ दृष्टि के इस चमत्कार की उपेक्षा कर देना सम्भव न था। और एक बात जो बार-बार मन में आ रही थी वह यह कि हमने सुन रखा था कि सोवियत में सम्पूर्ण कला केवल कम्युनिज्म के प्रचार का ही साधन बना दी गई है। 'स्वान लेक' बैले को देखकर यदि कोई कटु आलोचना की जा सकती है तो यही कि उसमें सिद्धान्त और बर्क का कोई सूक्ष्म तत्त्व खोजने पर भी न था। वह संगीत कानों को मोहित करने के लिये, वह नृत्य दर्शक के शरीर को थिरका देने के लिये और वह सौंदर्य आँखों को अपलक बना देने के लिये ही था।

स्वान लेक बैले में प्रत्येक अंक के बाद कुछ मिनट के लिये यवनिका गिर जाती थी। उस समय रंगमंच को न देखकर हाल को भी देखा जा सकता था और बाहर निकलकर दर्शकों के व्यवहार को भी। बोलशोई थियेटर एक सौ पचहत्तर वर्ष पुराना है। किसी समय यह महामहिमामय सम्राट जार और उसके सामन्तवर्ग के विनोद की ही जगह थी। अब भी थियेटर का हाल सुनहरी पच्चीकारी से सजा हुआ है। हाल प्रायः वृत्ताकार है। रंगमंच के सामने दर्शकों के लिये कुर्सियाँ लगी हैं, फिर एक के ऊपर एक छः गैलरियाँ भी वृत्ताकार बनी हैं। बीच-बीच में कई बार पीछे घूमकर देखने की कोशिश की कि कुछ जगहें खाली है या नहीं। खाली जगहें नहीं दिखाई दीं। दर्शक अपनी सुविधा और शौक के अनुसार महंगा या सस्ता टिकट लेकर बैले या नाटक देख सकते हैं। ऊँचे दाम की जगहों, पहले और दूसरे दरजे मे बैठे लोगों की पोशाक या व्यवहार को देखकर यह अनुमान नहीं हुआ कि वे किसी विशेष स्तर के लोग हैं। गर्दन और पीठ अकड़ाये बिना मजे में उनके बैठने के ढंग से यह स्पष्ट था कि अपने आपको सम्मान की ऐंठ में दिखाने की परेशानी उन्हें नही है। कुछ लोग कोट न पहनकर केवल कढ़ी हुई कमीजें ही पहने थे। जान पड़ता था कि वे देहात से आये किसान हैं। यवनिका गिरी रहने के समय उनका जेब से सेव या कोई दूसरी चीज निकालकर खाने लगने से भी यही अनुमान होता था कि ये जनता के भाग्य-विधाता, गम्भीर श्रेणी के लोग नहीं बल्कि मनमौजी किसान-मजदूर ही हैं। किसान-मजदूर होने के कारण ही या बढ़िया सूट, कालर-टाई न पहने रहने के कारण वे पहले-दूसरे दरजे में बैठने के अधिकार के अवसर से वंचित नहीं कर दिये जा सकते।

लंदन और वियाना के थियेटर या सिनेमा की तरह सोवियत में थियेटर या सिनेमाओं में पहले-दूसरे दरजे की सुविधा और सम्मान की जगहें 'ड्रैस-सरकल' नहीं कहलातीं। हमारे यहाँ सामन्ती संस्कृति के अवशेष जयपुर में सिनेमा हाल मे पहली श्रेणी को 'नोबल्स सर्कल' (ठाकुरों का स्थान) नाम दिया गया है, यानि उच्चवंश की जगह। पूँजीवादी देशों में वंश से अधिक सम्मान पूँजी का है। पोशाक पूँजी की प्रतीक मान ली गई है परन्तु सोवियत में इन जगहों पर विशेष प्रकार की पोशाक पहनने वाली और सर्वसाधारण जनता की छूत से घबराने वाली श्रेणी का ही अधिकार नहीं समझा जाता।

सभी लोगों को समान अधिकार है कि वे दाम देकर सुविधा और आराम की जगह बैठ सकते हैं। सोवियत में किसान-मजदूर श्रेणी के लोग भी इन जगहों के दाम दे सकते हैं, यह आँखों देख लेने पर संदेह का अवसर नहीं रह जाता। भिन्न-भिन्न मजदूर और कृषक संघ भी अपने आदमियों के लिये इन थियेटरों के टिकट काफी संख्या में खरीद लेते हैं।

थियेटर या बैले में यवनिका गिरी रहने के समय बहुत से दर्शक कुछ खाने-पीने के लिये थियेटर के बड़े भोजनालय में चले जाते हैं। बहुत से लोग ड्योढ़ी के बड़े हाल से जोड़े-जोड़े बनाकर चहल-कदमी करने लगते हैं। खासतौर पर सिगरेट सिगार पीने के लिये क्योंकि सोवियत सिनेमा, थियेटर हाल में तम्बाकू पीने की मनाही रहती है। एक ही हाल में दो-तीन सौ जोड़े चहल-कदमी आरम्भ कर दें तो अवश्य ही परस्पर असुविधा होगी। वे एक दूसरे से टकराकर एक दूसरे का मार्ग रोके बिना नहीं रह सकेंगे। परन्तु सोवियत के इन स्थानों में इतने लोग चहल-कदमी करके कमर और टागों की जड़ता भी दूर कर लेते हैं और कोई अड़चन भी अनुभव नहीं होती। इसका शायद अनुभव से सीखा हुआ तरीका यह है कि जोड़े एक दूसरे के पीछे हो लेते हैं और सभी लोग एक ही दिशा में मन चाहे समय तक चक्कर लगाते रहते हैं। इससे सभी लोगों का घूमना भी हो जाता है और असुविधा भी किसी को नहीं होती। सम्भव है, पूँजीवादी देशों की भद्र श्रेणी के लोगों को यह चहल-कदमी कैदियों की परेड सी जान पड़े। वे इसे व्यक्तिगत स्वतन्त्रता के अभाव का ज्वलन्त उदाहरण मान लें और कोई कल्पना का धनी लेखक लिख डाले कि सोवियत में व्यक्तिगत इच्छा से टहलने का भी अवसर नहीं परन्तु सोवियत के लोग अपनी व्यक्तिगत सुविधा की रक्षा का एक मात्र उपाय दूसरों की व्यक्तिगत सुविधा को अवसर देकर चलना ही समझते है। जोड़ियों की इस चहल-कदमी की लैनडोरी में चुस्त सूट, मखमल के गाऊन, रेलवे के बिल्ले, लाल सेना की वर्दी, किसानों के कढ़े हुए कुर्ते और मजदूरों के काम करते समय पहनने के नीले चोले। कपड़ों के सभी नमूने देखे जा सकते हैं। प्रेमियों का कोई जोड़ा एक दूसरे के कान में रहस्य की बात कहता हुआ चल रहा है तो कहीं नवयुवकों और नवयुवतियों की जोड़ियाँ अट्टहास के कारण पेट को हाथ से दबाये चले जा रहे हैं।

हमारे देश की ही तरह इंगलैंड या दूसरे पूँजीवादी देशो में भी नाटक, बैले और ओपेरा देखना सर्वसाधारण के बस की बात नहीं। केवल अच्छी आर्थिक स्थिति के लोग ही यह संतोष पा सकते है। सर्वसाधारण के लिये तो केवल सिनेमा ही एक मात्र विनोद का सस्ता साधन है। सोवियत में ऐसी बात नहीं। ऊँचे स्तर के सांस्कृतिक विनोद में भाग लेने वालों की संख्या का अनुमान सोवियत के पाँच दस ओपेरा, बैले और थियेटरों में जाये बिना नहीं हो सकता। एक संध्या 'लुडमिला और रूसलन' का ओपेरा देखा। अवसर वश यही ओपेरा वियाना में देखा था। उसे मास्को में देख समझा कि उत्तम और अति उत्तम में क्या अन्तर होता है। दूसरी संध्या हम लोग सोवियत-संगीत और लोक-नृत्य का कुछ परिचय पाने के लिये चाइकोवस्की संगीतशाला में गये। ऐसे संगीत का रस लेने के लिये भी भवन को ठसाठस भरा देखकर कुछ विस्मय हुआ। कार्यक्रम की समाप्ति

पर शाला के मैनेजर से पूछा कि क्या सर्वसाधारणत: लोग इतनी संख्या में संगीत का रस लेने के लिये सदा ही आ जाते हैं? मैनेजर ने स्वीकार किया कि आज से नये वर्ष की बारह दिन की छुट्टियाँ आरम्भ हो रही हैं इसलिये भीड़ कुछ अधिक है परन्तु पिछले तीन दिनों में बिके टिकटों की संख्या भी तीस हजार से कुछ अधिक थी।

यह भी मालूम हुआ कि चाइकोवस्की संगीतशाला सर्वसाधारण को संगीत की शिक्षा देने का भी केन्द्र है। यहाँ शिक्षा के लिये भी संगीत का कार्यक्रम चलता है। प्रसिद्ध कलाकारों का कार्यक्रम होने पर जगह की कमी अनुभव होती है। उस समय पहले उन्हीं लोगों को टिकट दिये जाते हैं जो संगीत के अध्ययन में अनुराग होने के कारण इन कार्यक्रमों में नियमित रूप से आते हैं। संगीत का नियमित अध्ययन करने वालों को कुछ रियायत पर छः माही या वार्षिक टिकट भी दे दिये जाते हैं। १९५२ में नियमित अध्ययन के लिये अपना स्थान सुरक्षित करा लेने वालों की संख्या दस हजार थी। सम्भव है, सोवियत संस्कृति को केवल मशीन का सा जीवन मान लेने वालों को सोवियत में संगीत के प्रति अनुराग की इस बात से कुछ विस्मय हो।

सोवियत में कला के क्षेत्र में वैचित्र्य और विभिन्नता के लिये कितना क्षेत्र और अवसर है; इस बात का अनुमान मास्को में कठपुतलियों की नाट्यशाला को देखकर हो सकता है। हमारे देश के देहातों में या ऐसे मुहल्लों में जहाँ अशिक्षित या पिछड़ी हुई जनता रहती है, अब भी कभी-कभी राजा मानसिंह, अमरसिंह राठौड़ या नल-दमयन्ती की कहानी कठपुतली के नाच के रूप में होती है। परन्तु यह कला, जो कि सभ्य समाज की नाट्य कला का आदिम रूप थी; आज अत्यन्त उपेक्षित और दयनीय अवस्था में है और प्राय: दम तोड़ रही है। सोवियत में उसका परिष्कार करके उसके लिये आधुनिकतम सुविधायें दी गई हैं। इस माध्यम से केवल गाथायें ही नहीं, आधुनिक जीवन के नाटक भी होते हैं। कठपुतलियों की इस नाट्यशाला के साथ ही कठपुतलियों के विषय और इतिहास का अध्ययन करने के लिये एक संग्रहालय भी है जहाँ योरुप, एशिया और अफ्रीका के अनेक देशों की कठपुतलियों के नमूने जमा हैं। कठपुतलियों के इस समारोह मे नल-दमयन्ती, रावण और हनुमान के रूप भी मौजूद हैं।

इंगलैण्ड और अमरीका में स्टीरियो सिनेमा (थ्री डाइमैन्शन फिल्म) संभावित आविष्कारों के क्षेत्रों की ही बात है। इन देशों में परीक्षण के तौर पर स्टीरियो फिल्म दिखलाई जाती है तो उसके लिये दर्शकों को विशेष प्रकार के चश्मे लगाने पड़ते हैं। मास्को में स्टीरियो फिल्म का विशेष सिनेमा हाल मौजूद है जहाँ चश्मे नहीं लगाने पड़ते। यह फिल्म देखते समय परदे पर चलते हुए चित्र ही नहीं दिखाई देते बल्कि घटनाओं को प्राकृतिक परिस्थितियों में होते देखते सा लगता है। पात्रों और दृश्यों का केवल सामने का भाग ही नहीं, उनका दायां-बायां और उनके पीछे का स्थान भी दिखाई पड़ता है। पात्र और जीव-जन्तु अधर में दर्शकों की ओर उड़ते चले आते या उनसे दूर भागते भी दिखाई देते हैं। सोवियत के वैज्ञानिक अभी इस आविष्कार को पूर्ण नहीं समझते। वे खोज

द्वारा इसके और विकास का यत्न कर रहे हैं। स्टीरियो सिनेमा में पर्दा कपड़े का नहीं शीशे के कई हजार लैसों को जोड़कर बनाया गया है। इस एक पर्दे की लागत पाँच लाख साठ हजार रुबल है। व्यावसायिक दृष्टि से इतनी लागत का पर्दा उद्योग की ऐसी अविकसित अवस्था में बना डालना, जब कि स्टीरियो सिनेमा अभी परीक्षण की स्थिति में हो, मूर्खता समझी जायेगी; क्योंकि व्यवसायी सिनेमा भवन या सिनेमा का परदा मुनाफा कमाने के लिये ही बनते हैं। सोवियत सरकार की दृष्टि में पाँच लाख साठ हजार रुबल का परदा बना देना मूर्खता नहीं है क्योंकि इससे सिनेमा विज्ञान के क्षेत्र में खोज और आविष्कार की राह खुलती है।

सोवियत संस्कृति मानव समाज की भौतिक समृद्धि अपना लक्ष्य मानती हैं। भौतिकवादी होने के कारण उनका यह विश्वास है कि समाज की मानसिक और बौद्धिक प्रगति भी भौतिक साधनों से ही सम्भव है। सोवियत संस्कृति मनुष्य-समाज की मानसिक और बौद्धिक आवश्यकताओं को कम महत्त्व नहीं देती। उसके राष्ट्र निर्माण के कार्यक्रम में जहाँ गल्ले और कपड़े की पैदावार के बढ़ाने और यातायात के साधनों का विकास करने की बड़ी-बड़ी योजनायें बनी हैं वहाँ सांस्कृतिक पक्ष की भी उपेक्षा नहीं की गई। सोवियत समाज में कला के माध्यम संगीत, नृत्य, सिनेमा और रङ्गमंच आदि राष्ट्रीय महत्त्व की दृष्टि से गौण विषय नहीं समझे जाते। इन सांस्कृतिक वस्तुओं को न तो समाज के अपने सीमित साधनों के अनुसार पूर्ण होने के लिये छोड़ दिया गया है और न इन्हें व्यवसाय-चतुर लोगों के लिये मुनाफा कमाने का साधन बन जाने दिया गया है। जैसे पूँजीवादी देशों में सार्वजनिक स्वास्थ्य से सम्बन्ध रखने वाले विषय, नगरों की सफाई, रोशनी और पानी की व्यवस्था सरकार की जिम्मेदारी समझे जाते हैं उसी प्रकार सोवियत में समाज के मानसिक स्वास्थ्य से सम्बन्ध रखने वाले माध्यम संगीत, नृत्य, सिनेमा और रङ्गमंच भी सरकार की ही जिम्मेवारी है। अभिप्राय यह नहीं कि सरकार गीतों के स्वर और नृत्य की तालें निश्चित कर देती है या नाटकों एवं फिल्मों के लिये विषय निर्धारित कर देती है। इसका अर्थ है कि इन वस्तुओ के विकास के लिये कलाकारों की समितियों के लिये साधन जुटाना और कला की इन कृतियों को जनता के लिये प्राप्य हो सकने के साधन प्रस्तुत करना।

मास्को का बाजार

नगरों के सौंदर्य की कोई सर्वसम्मत कसौटी बता देना कठिन हैं। ऊँची सुन्दर इमारतों का क्रम नगर की सुन्दरता बढ़ाता है परन्तु उनकी एकरूपता से विरुति भी होने लगती है। इमारतों के एक दूसरे से बिलकुल भिन्न होने या छोटे-बड़े का अन्तर बहुत अधिक होने से भी विरूप असंगति सी जान पड़ती हैं। ऐसे ही भीड़ का अधिक होना नगर को असह्य बना सकता है और सूनापन उदासी पैदा करने लगता है। इन सब बातों का उचित अनुपात हमारे अभ्यास पर निर्भर करता है। भीड़ से भरी तंग सड़कों के आदी नागरिकों को मास्को की बहुत ही चौड़ी सड़कों बहुत ही ऊँची इमारतों से दबदबा सा अनुभव हो

सकता है। सड़कों पर मोटरों की संख्या लंदन से भी अधिक ही जान पड़ती है और उनकी तेजी से जान पड़ता है कि उन्हें नगर से भाग जाने की जल्दी है।

आधुनिक नगरों की शोभा का समय सूर्यास्त के बाद होता है, जब इमारतें बिजली के प्रकाश से जगमगा उठती हैं। इस दृष्टि से मास्को कलकत्ता बम्बई या योरुप के बड़े नगरों जिनीवा, वियाना, ज्यूरिच, लन्दन किसी से कम नहीं, कुछ अंशों में अधिक ही जान पड़ता है। पूँजीवादी व्यवस्था के अनुसार व्यापारिक होड़ की प्रणाली पर चलने वाले नगरों की शोभा व्यापारिक प्रतिद्वन्द्विता पर ही निर्भर करती है। व्यापारी ग्राहक को खीचने के लिये आकर्षक उपायों का सहारा लेता है। किसी दवाई का नाम बिजली की रंग-बिरंगी रोशनी में बड़े-बड़े अक्षरों में लिखा होगा, कहीं दांत के मंजन के विज्ञापन के लिये किसी युवती की सफेद दांत दिखाती हुई हँसी, कहीं बिजली के भड़कीले प्रकाश से चकाचौंध करते मोटरों, जूतों, कपड़ों और दूसरी वस्तुओं के चित्र ही पूँजीवादी प्रणाली के नगरों की शोभा हैं। मास्को में ऐसी व्यावसायिक होड़ नहीं दिखाई देती। परन्तु रंग-बिरंगी बिजली की कमी नहीं और वह लोगों को यह या वह चीज खरीदने की प्रेरणा देने के लिये नहीं बल्कि सौन्दर्य के प्रयोजन से ही लगाई गई है। पूँजीवादी नगरों की सजावट का प्रयोजन मुख्यतः विज्ञापन होता है इसलिये यदि वह शोभा की उपेक्षा करके विज्ञापन ही करें तो उसे असफल नहीं कहा जा सकता सोवियत के नगरों में सजावट का मुख्य प्रयोजन ही शोभा है। दोनों प्रणालियाँ अपने-अपने लक्ष्य में सफल हैं। बिजली के प्रचुर प्रकाश का विज्ञापन और शोभा के इन दो भिन्न ढंगों से प्रयोग उतना ही अन्तर पैदा कर देता है जितना कि सब्जी मंडी में भिन्न-भिन्न सौदे के व्यापारियों के गा-गाकर अपने सौदे की पुकारें लगाने में और संगीत के लिये की जाने वाली संगीत सभा में हो सकता है।

मास्को की चौड़ी सड़कों से प्रसार का जो आतंक मन पर पड़ता है वह पैदल पटरियों पर दुकानों के समीप चलने से स्वयं ही दूर हो जाता है। पैदल पटरियों पर भीड़ प्रायः लंदन, वियाना जैसी ही रहती है। हाँ, लोगों के शरीर पर कपड़े अधिक और कुछ वजनी भी रहते हैं। स्त्रियाँ भी खूब मोटे कोट और घुटनों तक बूट पहने दिखाई देती हैं। योरुप और इंगलैण्ड की नारी का हल्का-फुल्का तितलीपन मास्को के बाजार में बहुत कम दिखाई देता है। वस्त्र या पहनावा सबका एक सा ही हो सो बात भी नहीं। वस्त्रों में ढङ्ग के अलावा मूल्यों का अन्तर भी दिखाई देता है। परन्तु पोशाक के मूल्य के आधार पर बड़प्पन या आदर का भाव दिखाई नहीं देता। रुई भरे हुये कपड़े का कोट और घुटनों तक नमदे के बूट पहने व्यक्ति ताजा इस्त्री किये सूट और सफेद कालर लगाये भद्र पुरुषों के कन्धे से कन्धा भिड़ाकर निस्संकोच चलते दिखाई देते हैं। दुकानें छोटी और बड़ी दोनों तरह की हैं। परन्तु छोटे और बड़े आदमियों की दुकानें अलग-अलग नहीं हैं। छोटी दुकानें प्रायः शौक की वस्तुओं या कम खपत की चीजों, जेवरात या इत्र-फुलेल की हैं और बड़ी दुकानें अधिक खपत की चीजों उदाहरणतः रसद या कपड़े और दूसरी आवश्यक वस्तुओं की। पोशाकें प्रायः सिली-सिलाई तैयार मिलती हैं लेकिन मन पसंद कपड़ा खरीद कर भी

सिला लिया जा सकता है। इन दुकानों में किसी भी हैसियत या पोशाक के व्यक्ति किसी भी समय देखे जा सकते हैं।

सौदों के दाम उन पर लिखे रहते हैं। लिखे दाम अधिक जान पड़ने पर भाव-तोल करके दाम घटाने की आशा नहीं की जा सकती। दाम कम कर देना दुकानदार के बस का नहीं। कोई दुकानदार दुकान का मालिक नहीं। दुकानें सब राज्य या राष्ट्र की हैं। दुकानदार वेतन पाने वाले कर्मचारी हैं। वे ग्राहक को फंसाने के लिये सौदे की प्रशंसा में अतिशयोक्ति नहीं करते। दुकानदार ग्राहक से उपेक्षा का व्यवहार भी नहीं करते क्योंकि उसकी दुकान जैसी और सैकड़ों दुकानें बाजार में हैं। ग्राहकों की नाराजगी से उसकी दुकान की आमदनी कम होने पर उसके बोनस या भत्ते में अन्तर पड़ सकता है। दुकानों पर प्रायः स्त्रियाँ ही काम करती है।

मास्को में हमारे देश या योरुप की साधारण दुकानों से लेकर योरुप की बड़ी से बड़ी दुकानों से भी बड़ी दुकानें मौजूद हैं। मास्को की सबसे बड़ी दुकान 'बोलशोई मुस्तार्ग' लन्दन की सबसे बड़ी दुकान 'सैल्फरिज' से तिगुनी बड़ी होगी। सुबह या शाम किसी भी समय इस दुकान में जाने पर वैसी ही भीड़ दिखाई देती है जैसी हमारे देश के तीर्थ स्थानों में पुण्य स्नान पर्व के समय नदी के घाट पर होती है। टोपी, कपड़े, बर्तन भांड़े और किताबों के काउन्टर से लेकर फाउनटेन पैन और कैमरा बेचने वाले काउन्टरों पर भी सभी जगह क्यू दिखाई देते है। दुकानों में नितान्त आवश्यक वस्तुओं के लिये ही नहीं, रेडियो, टेलीविजन, रेफरीजरेटर तक के लिये ग्राहकों की कमी दिखाई नहीं देती। जैसे लदन और वियाना की सुन्दर दुकानों मे दुकानदार ग्राहक की प्रतीक्षा में आँखे पसारे दिखाई देते हैं, वैसे ही मास्को की दुकानों में नहीं दिखाई देते। मास्को के नागरिकों की यह क्रय और खपत की शक्ति यात्री को अचम्भे मे डाले बिना नहीं रह सकती। पहले यही अनुमान होता है कि ग्राहकों की भीड का कारण दुकानों का कम होना ही होगा परन्तु बाजारों में घूमने पर दुकानों भी कम दिखायी नहीं देती।

सोवियत में रूबल का सिक्का चलता है। सरकारी दर के अनुसार एक पौंड या सवा-तेरह रुपये में ग्यारह रूबल मिलने चाहिए। मास्को में वस्तुओं के दाम देखकर भी कुछ आतंक सा अनुभव होता है; इन दामों में लोग सौदे कैसे खरीदते होंगे? सोवियत नागरिकों के रूबल खर्च करने की शक्ति उनकी रूबल कमा सकने की शक्ति के अनुपात से ही नापी-जोखी जा सकती है। इसके लिए सोवियत में मजदूरी और वेतन के दरों को समझने की आवश्यकता है। उसमें कुछ समय लगता है परन्तु नवागंतुक मास्को के नागरिकों को धड़ल्ले से खरीदारी करते तो देखता ही है। सोवियत के नागरिक रूबलों के लिये परेशान नहीं जान पड़ते बल्कि ऐसा जान पड़ता है कि उनकी जेवें रूबलों के बोझ से पटी रहती हैं। दो-तीन घटनाओं से नागरिकों की जेबों में रूबलों की प्रचुरता का अनुमान शीघ्र ही हो गया।

सोवियत के साथियों से किसी भी वस्तु के मूल्य का प्रसंग आने पर सौ या डेढ़ सौ रूबल की वस्तु को वे सदा सस्ता ही बताते थे। मास्को में सोने के दांत लगाये लोग काफी

अधिक दिखाई दिये। तान्या का भी एक दांत सोने का था। बातचीत में उससे पूछा कि मास्को में सोने के दांत लगाने का चलन कुछ अधिक दिखाई देता है। इसका क्या कारण है। तान्या ने बताया कि अन्य कृत्रिम दांतों की अपेक्षा सोने के दांत में सुविधा रहती हैं। उसे सफाई के लिये निकालना नहीं पड़ता। इतना तो पहले ही मालूम था! इसलिये पूछा कि सोने के दांत सर्वसाधारण के लिये महंगे भी तो पड़ते होंगे। "नहीं तो!"—तान्या ने उत्तर दिया—"सौ-एक रूबल में एक दांत बन जाता है; महंगा तो नहीं पड़ता।" उसे यह कैसे समझाया जाता कि सौ रूबल क्या कम होते हैं?

दूसरे एक अवसर पर गीता मलिक कुछ बढ़िया जनाने रूमाल खरीद लाई थीं। रूमाल तो बढ़िया थे परन्तु मूल्य, प्रति रूमाल नौ रूबल, हम लोगों को अधिक ही जंच रहा था। जिस समय गीता मलिक यह रूमाल हमें दिखा रही थीं, हमारे कमरे में झाड़-बुहार और सफाई करने वाली लड़की क्लारा पीने का जल लिये आ पहुँची। गीता मलिक थोड़ी बहुत रूसी बोल लेती हैं। नये खरीद रूमाल क्लारा को दिखाकर गीता मलिक ने पूछा यह रूमाल कैसे हैं। "बहुत अच्छे हैं"—क्लारा ने मुस्कराकर सराहा और पूछा—"नौ रूबल में लाई हो न? मुझे भी बहुत पसन्द है"—अपनी जेब में हाथ डालते हुए उसने कहा—"मेरे पास भी ऐसा ही रूमाल है"—और उसने नौ रूबल का बढ़िया रूमाल निकालकर गीता मलिक की नाक के सामने कर दिया। मास्को में वस्तुओं के मूल्य बाहर से आने वाले लोगों को ही अधिक मालूम होते हैं सोवियत के लोगों को नहीं! इसका कारण रूबल और दूसरे देशों के सिक्कों में सोवियत सरकार द्वारा विनिमय का मनमाना दर निश्चय कर देना है।

हम कुछ साथी दुकानों का रंग-रूप देखने के लिये एक के बाद एक भीड़ से भरी दुकानों में घूम रहे थे। मास्को की कीमतें हमारे अनुमान से निश्चय ही बहुत अधिक थीं। कोई खास चीज खरीदने का विचार तो था नहीं, यों ही कोई अद्भुत वस्तु दिखाई दे जाती तो बात दूसरी थी। विशेषकर गाँधीवाद में निष्ठा रखने वाले हमारे साथी श्री० शाह तो घरेलू धन्धे या हाथ से बनी चीज के अतिरिक्त कोई वस्तु व्यवहार ही न करना चाहते थे। अपनी इसी निष्ठा के कारण श्री० शाह मास्को की बरफानी सर्दी में भी अपने केश रहित सिर पर खद्दर की हल्की-फुल्की गाँधी टोपी ही रखे हुए थे।

हम लोगों के साथ आई भारतीय महिलायें दुकान में हाथ से कढ़े हुए ब्लाउज देखकर कारीगरी की प्रशंसा में आँखें फैला रही थीं और उनके दाम दो सौ-तीन सौ रूबल सुनकर विस्मय से दांतों तले उंगली दबा रही थीं। श्री० शाह ग्रामीण धन्धों और हाथ के उद्योगों के संगठन और प्रोत्साहन का काम करते हैं शायद इसलिये वे भी हाथ की दस्तकारी देखने के लिये भीड़ में उचके खड़े थे। सहसा श्री० शाह को अपनी जेब में पराया हाथ जाता अनुभव हुआ। चौंक कर उन्होंने अपनी जेब की सुध ली और पाया कि जेब खाली होने के बजाय भर गई है। यह रूबलों के नोट थे।

उनकी जेब में रूबलों के नोट भर देने वाली प्रौढ़ा भी सामने झेंपी हुई सी खड़ी थी। वह कभी संकोच से अपने सिर पर हाथ रखतीं और कभी श्री० शाह की सफेद खद्दर की

टोपी की ओर संकेत करतीं। दोनों ही परेशान थे और देखने वाले भी हैरान। आखिर दुभाषिये रूसी साथी अलेक ने बीच बचाव किया। प्रौढ़ा की बात सुन उसने श्री० शाह को अंग्रेजी में समझाया कि यह महिला कहती है कि आप बुरा न मानिये, इन रूबलों से रोयेंदार खाल की टोपी अपने लिये खरीद लीजिये। जो हल्की सूती टोपी आपके सिर पर है इससे आप सर्दी खाकर जरूर बीमार हो जायेंगे।

मि० शाह ने दुभाषिये की मारफत प्रौढ़ा को धन्यवाद देकर समझाया कि रोयेंदार खाल की टोपी तो मास्को पहुँचते ही शान्ति-सभा के मित्रों ने उन्हें भेंट कर दी थी। वे अपने नियम का पालन करने के लिये ही खद्दर की टोपी पहने हुए हैं। शाह साहब ने धन्यवाद पूर्वक प्रौढ़ा के रूबल लौटा दिये। वेशभूषा या व्यवहार से यह प्रौढ़ा साधारण स्त्री ही जंच रही थी। सोवियत में दयालु रानियों, बेगमों और मिल मालकिनों की तो कल्पना भी नहीं की जा सकती। यह मास्को की साधारण नागरिक स्त्री थी और किसी की भी सहायता के लिये डेढ़-दो सौ रूबल जेब से निकाल देना उसके लिये कोई बड़ी बात न थी। यह घटना सोवियत नागरिकों की उदारता के साथ-साथ सोवियत नागरिक की रूबल पा सकने की स्थिति पर भी प्रकाश डाल सकती है क्योंकि हृदय उदार होने पर भी उदार व्यवहार कर सकने के लिये साधनों की आवश्यकता होती ही है।

सोवियत की दुकानों में भीड़ के अतिरिक्त भी खरीददारी करना कुछ झंझट का ही काम है। सौदे के दाम मालूम कर खजांची के यहाँ दाम जमाकर रसीद ली जाती है। फिर वह रसीद विक्री करने वाली को देकर सामान लिया जाता है। अपरिचित व्यक्ति को एक वार दाम मालूम करने के लिये क्यू में खड़ा होना पड़ता है दूसरी बार रसीद देकर सौदा लेने के लिये। चाय-पानी की दुकानें कुछ तो साधारण हैं और कुछ सम्राटों के भोजनालयों के योग्य, जहाँ भीतर ही फव्वारे और फुलवाड़ी भी लगी है। झाड़-फानूस और तैल-चित्र तो साधारण चाय-पानी की दुकान पर भी रहते हैं। हम दो एक साथी चाय-पानी की साधारण दुकान पर गये तो दाम ज्यादा मालूम नहीं हुए। बड़े और शानदार भोजनालयों में अंतर दाम का नहीं शायद भोजनों के अधिक प्रकार का मिल सकने का ही है। दाम तो सभी जगह एक से हैं। चौबेजी मास्को में एक बक्स खरीदना चाहते थे। दाम पूछने पर बयासी रूबल और पचास कोपेक बताये गये। उस समय खरीद नहीं सके। कुछ दिन बाद तिलीसी में वैसा ही बक्स दिखाई देने पर दाम पूछे तो वही 'बयासी रूबल और पचास कोपेक'। मास्को और तिलीसी का अंतर इतना ही है जितना दिल्ली और मद्रास का।

सोवियत में बख्शीश भी चलती है या नहीं, यह विवादास्पद विषय है। सोवियत के लोग यह नहीं मानेंगे कि उनके यहाँ बख्शीश का चलन है। एक बार सन्देह हुआ कि बख्शीश दी जा सकती है। दूसरी बार बख्शीश देने पर धन्यवाद पूर्वक इनकार भी सुनने को मिला। बख्शीश के बारे में सन्देह का अवसर होना भी मामूली बात नहीं! योरुप और इंगलैण्ड में तो बख्शीश उतनी ही आवश्यक है जितना की वस्तु का दाम चुकाना। मास्को में, योरुप और इंगलैण्ड के बाजारों और गलियों के कोनों पर या चाय-पानी की दूकानों पर निरर्थक या 'विशेष प्रयोजन' से मुस्कराती हुई लड़कियां या स्त्रियां भी नहीं दिखाई

देतीं। नारी का शरीर वहाँ बिक्री या किराये की वस्तु नहीं हैं। न कहीं भिखारी ही दिखाई देते हैं। मास्को में भिखारियों की बात चलने पर डा० कुमारप्पा ने बताया कि वे जब पिछली बार अप्रैल मास में लेनिनग्राद गये थे तो उन्हें एक बूढ़ा भिखारी पैदल-पटरी पर हाथ पसारे, चुपचाप बैठा दिखाई दिया था। आते-जाते लोग उसके हाथ पर पाँच-दस कोपेक रख देते थे। उन्होंने उसके विषय में पूछताछ की तो मालूम हुआ कि उस बूढ़े को वृद्धावस्था की वृत्ति मिलती है। भोजन, वस्त्र और रहने की जगह की कठिनाई उसे नहीं है परन्तु उसकी मानसिक अवस्था ऐसी है कि मांगे बिना रह नहीं सकता। वह हाथ पसार कर चुप बैठ जाता है तो लोग उसकी हथेली पर कुछ रख जाते हैं। हम लोगों को भिखारी कहीं दिखाई नहीं दिये लेकिन डा० कुमारप्पा की बात से यह समझ में आया कि भिखारियों का अस्तित्व उन्हें मारपीट कर बाजार से भगाकर नहीं मिटा दिया गया; भीख मांगने की आवश्यकता न रहने देकर ही किया गया है। यही कारण वेश्याओं के अभाव का भी जान पड़ता है।

धार्मिक स्वतंत्रता

२८ दिसम्बर। घने बरफानी कोहरे को भेदने के परिश्रम से सूर्य की किरणें थककर निस्तेज हो रही थीं। कभी तो वे कोहरे में ही उलझकर रह जातीं और कभी बरफ से ढकी धरती को छू जातीं तो हीरे की कनियां बिखर गई जान पड़तीं। हम लोग स्तालिन-संग्रहालय देखने जा रहे थे। चौड़ाई के विचार से तो मास्को की सभी सड़कें एक ही सी हैं। सड़कों को अधिकांश में किनारे की इमारतों से ही पहचाना जा सकता है या स्मारक मूर्तियों से। होटल से लाल-चौरस (रेड स्क्वायर) जाते समय हम प्रायः नित्य इसी सड़क से जाते थे। रेल-लाइन का पुल पार कर बहुत बड़े चौक में दाईं ओर एक ऊंचे स्तूप पर गोर्की की विशाल मूर्त्ति खड़ी है। गोर्की की स्मृति में इस सड़क का नाम ही गोर्की-मार्ग है। कुछ दूर और आगे जाने पर बाईं ओर कवि पुश्किन का चौक है। यहाँ उतनी ही बड़ी पुश्किन की मूर्ति है। इन मूर्त्तियों के सामने से गुजरते समय सदा यही सोच लेतैं कि फिर किसी दिन यहाँ ठहर कर अच्छी तरह से देखेंगे। नित्य का रास्ता होने से खड़े होकर देखने की बात याद ही नहीं रही।

पुश्किन की मूर्ति के नीचे धूप में कुछ रंग बिरंगी सी जमीन दिखाई दी। गैनरीटा ने बताया कि यह फूलों की क्यारियाँ हैं। उस बरफ में फूलों की बात सुनकर विस्मय हुआ। गैनरीटा ने विश्वास दिलाया—"......फूल ही हैं और ऐसे फूल जो बरफ में भी बने रहते हैं! महान साहित्यकार की पुण्य स्मृति में।"—कला और संस्कृति के प्रति उदासीन और निरपेक्ष बताये जाने वाले इस सोवियत देश में सबसे बड़े राजमार्ग और चौक कलाकारों के नाम पर ही हैं। वियाना में गत शताब्दी के सबसे बड़े संगीतज्ञ 'बीटओवन' का मकान अब मद्य-शाला बना हुआ है। सोवियत में टाल्सटाय का देहात का मकान तो टाल्सटाय द्वारा प्रयोग में लाये गये सामान सहित ऐतिहासिक स्मारक बना दिया गया है और वहाँ टाल्सटाय के साहित्य की खोज का कार्य निरन्तर चल रहा है। मास्को नगर में टाल्सटाय

जिस मकान में रहते थे, उसे भी उनकी स्मृति में स्मारक के रूप में सुरक्षित रखा गया है और अब उसमें सोवियत के लेखक-संघ का दफ्तर है।

संग्रहालय की ओर जाते समय एक बहुत बड़े गिरजाघर के समीप से गुजरे। मिस्टर आदित्यन ने गिरजाघर के विषय में प्रश्न किया कि यह पुरातत्व की स्मृति के रूप में ही सुरक्षित है या यहाँ अब भी उपासना होती है? उपासना के संगीत की गूंज तो सुनाई दे ही रही थी, तब याद आया कि रविवार है और ईसाई लोगों की प्रार्थना का दिन। कुछ साथियों को अनीश्वरवादी, धर्मद्रोही बताये जाने वाले सोवियत राज्य में भगवान की प्रार्थना देखने का कौतूहल हुआ। मोटरें रोक ली गईं।

'एलोह्वस्काया' का गिरजा बनावट से ही बहुत पुराना, डेढ़-दो शताब्दी पुराना जान पड़ता है। दुभाषिये से यह भी मालूम हुआ कि श्रद्धालु लोगों में इस गिरजाघर की बहुत मानता है। गिरजे के द्वार तक जाकर देखा कि भीतर जाना सम्भव न था। लोग इस तरह भरे हुए थे कि उनका हिल पाना तक कठिन था दूसरे लोगों के भीतर आने की तो बात ही क्या। बहुत से लोग भीतर जाने का अवसर न पाकर, भक्ति भाव से बाहर सीढ़ियों पर ही हाथ बाधे खड़े थे। हम लोगों को निराश होते देख डाक्टर बुटरोव ने अपने पीछे आने का सकेत किया और गिरजे के पिछवाड़े की ओर ले गये। इस दरवाजे को खुलवा कर जैसे-तैसे हम लोगों को भीतर ढकेला गया। यहाँ भी बड़ी कठिनाई से दीवार से चिपक पंजों के बल खड़े होकर ही कुछ देखा जा सकता था। गिरजा ठसाठस भरा था शायद इसलिये कि भक्त लोग वर्ष भर उपासना की बात भूलकर भी वर्ष के सभी रविवार उपासना के बिना न चले जाने देना चाहते थे। वर्ष के अन्तिम रविवार गिरजा में आ इकट्ठे हुए थे। पूजा ईसाई धर्म की ग्रीक कैथोलिक प्रणाली के अनुसार धूप-दीप से हो रही थी। मरियम, मसीह और अन्य देवात्माओं की मूर्तियों के सामने बहुत-सी मोमबत्तियां जल रही थी। अगर तगर का धुआं भी उठ रहा था। धर्मपिता एक मोटी पुस्तक में से दुर्बोध भाषा में उपासना पढ़ रहे थे, जैसे अपने यहाँ पंडित लोग मंत्रोच्चारण करते हैं। कभी वे घुटने टेकते, कभी आंखों पर हाथ रखते और कभी हाथो को चूमते। भक्त लोग भी इस प्रक्रिया को दोहराते जा रहे थे।

भक्त स्त्री-पुरुषों की संख्या बारह चौदह-सौ से कम न रही होगी परन्तु सभी अधेड़ उम्र के। बाहर आने पर रूसी साथियों से गिरजे में नवयुवको की अनुपस्थिति के विषय में प्रश्न किया। उत्तर मिला कि गिरजे में जाने और उपासना करने के लिये लोगों को बाधित नहीं किया जा सकता। जिन लोगों को उपासना और गिरजे में जाने से संतोष होता है, उन्हें रोका भी नही जा सकता; क्योंकि यह उनकी व्यक्तिगत स्वतंत्रता का मामला है।

सोवियत में धार्मिक स्वतंत्रता की बात चलने पर मालूम हुआ कि सोवियत राजसत्ता किसी भी धर्म को स्वीकार नहीं करती। सोवियत में धार्मिक स्वतंत्रता का अर्थ है कि व्यक्ति चाहे जिस धर्म में विश्वास रख सकता है और चाहे किसी भी धर्म में विश्वास न रखे। कोई धर्म या सम्प्रदाय दूसरे लोगों को अपना विश्वास स्वीकार करने के लिये

विवश नहीं कर सकता। स्कूलों में किसी प्रकार की साम्प्रदायिक शिक्षा नहीं दी जा सकती। यदि किसी सम्प्रदाय के लोग साम्प्रदायिक अध्ययन का प्रबन्ध करना चाहें तो उसके लिये कोई रोक भी नहीं है। इस प्रकार का साहित्य प्रकाशित करने के लिये सरकार आर्थिक सहायता भी दे देती है। तीर्थ स्थानों की यात्रा करना चाहने वालों के लिये भी सुविधा का प्रबन्ध कर दिया जाता है। इन सब बातों के प्रबन्ध के लिये सरकार की ओर से एक "धार्मिक समिति" (कौंसिल आफ रिलीजन्स) नियत है और उसके प्रधान मिस्टर कास्टोव हैं।

सोवियत में धार्मिक या साम्प्रदायिक स्वतंत्रता का व्यवहार अपनी आंखों देखकर और नये सोवियत विधान में धार्मिक और साम्प्रदायिक स्वतंत्रता को स्थान दिये जाने की बात से यह धारणा भी हो सकती है कि सोवियत के लोग अब अपनी पुरानी धर्म और साम्प्रदायिकता विरोधी नीति की भूल पहचान कर पछता रहे हैं और धार्मिकता या ईश्वर परायणता को प्रोत्साहन देना चाहते हैं। स्थिति वास्तव में यह है कि सोवियत की नई पीढ़ी के लोग ईश्वर सम्वन्धी धारणाओं को केवल मिथ्या विश्वास और विज्ञान से असंगत मानकर उनसे विरक्ति अनुभव करते हैं। साम्प्रदायिकता अथवा अंधविश्वास से आपत्ति के दो कारण हो सकते हैं:—एक तो उसका विज्ञानसम्मत विचारधारा के विरुद्ध होना और दूसरा उसका शोषण की व्यवस्था का समर्थक होना। सोवियत समाज वैज्ञानिक शिक्षा के प्रसार द्वारा साम्प्रदायिकता से अंधविश्वास के जड़ पकड़ने की आशंका को दूर कर चुका है और उत्पादन के साधनों का समाजीकरण करके शोषण के लिये अवसर को मिटा चुका है। सोवियत में साम्प्रदायिकता या अध्यात्म के सांप के दांत उखड़ चुके हैं इसलिये वह भय का कारण नहीं। यदि लोगों को साम्प्रदायिक उपासना से मानसिक शान्ति प्राप्त होती है तो वे उसमें बाधा डालने का कोई कारण नहीं समझते क्योंकि उनकी यह व्यक्तिगत स्वतंत्रता अब सामाजिक हित के मार्ग में बाधक नहीं हो सकती।

स्तालिन संग्रहालय

एक बहुत बड़ी इमारत के द्वार के ऊपर छिपी हुई रोशनियों से पड़ते प्रकाश से कोहरे और धुन्ध में भी चमकता हुआ स्तालिन का बहुत बड़ा चित्र दिखाई देता रहता है। यह इमारत स्तालिन संग्रहालय है; मतलब है कामरेड स्तालिन की वर्ष गांठ के अवसरों पर भिन्न-भिन्न देशों से जो उपहार आते रहे हैं उन्हें यहाँ एकत्र कर दिया गया है। ये उपहार अब संग्रहालय के रूप में सोवियत की सम्पत्ति है।

सरसरी नजर से ही स्तालिन संग्रहालय को देख लेने के लिये कम से कम तीन घन्टे का समय चाहिये। संग्रहालय में चालीस भिन्न-भिन्न राष्ट्रों की जनता द्वारा भेजे गये अनेक उपहार हैं। उनमें अधिकांश कला की बहुत उत्कृष्ट और बहुमूल्य वस्तुयें हैं। यदि यह सब वस्तुयें का० स्तालिन की व्यक्तिगत सम्पत्ति होतीं तो वह निश्चय ही अरबपति हो सकता था। नित्य-जीवन की सभी वस्तुएँ कला के उत्कृष्ट नमूनों के रूप में यहाँ मौजूद हैं। इस संग्रह को निश्चय ही संसार का अनुपम कला संग्रह कहा जा सकता है। धातु, पत्थर,

बिल्लौर आदि की स्तालिन की मूर्तियां सैकड़ों मुद्राओं में यहाँ मौजूद हैं। सैकड़ों कालीन बहुत बड़े और छोटे आकार के, जिनमें स्तालिन के चित्र बुने हुए हैं, मौजूद हैं। मोटर के कारखानों द्वारा भेजी गई बड़ी और छोटी मोटरें मौजूद हैं। खिलौनों के आकार में मोटरे, ट्रक, रेल के इन्जन, हवाई जहाज और क्रेन आदि मौजूद हैं।

सोवियत के भिन्न-भिन्न राज्यों की बात जाने दीजिये। चेकोस्लोवाकिया, बुल्गेरिया, हंगरी, रोमानियां, पोलैन्ड आदि के अनेक नगरों ने अपनी-अपनी गर्व की वस्तुये स्तालिन को उपहार में भेजी हैं। इनमें ड्राइंग रूम के फर्नीचर से लेकर खाना पकाने के बर्तन, पहनने के कपड़े, शौक की वस्तुयें सभी कुछ मौजूद हैं। स्तालिन ने इन वस्तुओं का उपयोग कभी नहीं किया परन्तु भेजने वाले उनके प्रति कितना व्यक्तिगत ममत्व अनुभव करते होंगे! बीयर बनाने वाले एक गांव ने बीयर का एक-एक पीपा, बढ़िया नक्काशी के खिलौने के रूप में भेजा है। उस पर लिखा है—"जो बियर बनाता है दरिया दिल होता है।" चीनी के बर्तन बनाने वालो ने चीनी के बर्तन, चाकू बनाने वालों ने चाकू और घोड़े के नाल बनाने वालों ने उत्कृष्ट जोड़े, बासुरी बनाने वाले ने बांसुरी और सारंगी बनाने वालों ने सारंगी। सभी वस्तुओं के कारीगरों ने अपनी कला के उत्कृष्टतम नमूने स्तालिन के लिये उपहार में भेज दिये हैं।

एक बहुत बड़ा हाल चीन से आए हुये उपहारों से भरा हुआ है। उसमें स्तालिन के रेशम और ऊन से बनाये गये अनेक चित्र है और चीन की कला के हाथी दांत, बिल्लौर और सब्जे में बने उत्कृष्टतम नमूने मौजूद है। इनमें सबसे आकर्षक चित्र मुझे वह लगा जिसमें चीनी कलाकार स्तालिन के प्रति आत्मीयता के भाव में यह भी भूल गया कि स्तालिन चीनी नहीं था। उसने स्तालिन के नख शिख को चीनी रूप देकर ही सन्तोष पाया है।

एक हाल में स्तालिन के जन्म दिवस पर आये बधाई के पत्रों में से चुने हुए पत्रों का संग्रह है। इन पत्रों की संख्या दस लाख है। कुछ पत्र लेखकों के व्यक्तित्व के कारण चुने गये होंगे, हो सकता है कुछ में ऐतिहासिक महत्त्व की बातें हों, कुछ पत्र कलात्मक कृतियां हो सकते हैं परन्तु कुछ पत्र ऐसे भी हैं जो अज्ञात नाम जनता की स्तालिन के प्रति भावनाओं के प्रतीक हैं। इनमें से एक पत्र युक्रेन से आठ वर्ष के बालक का है। इस लड़के ने स्तालिन के जन्म दिवस पर अपने पिता का युद्ध के मोर्चे से आया हुआ पत्र अपने पत्र के साथ भेजा है। लड़के के पिता ने यह पत्र जख्मी हो जाने पर मोर्चे के अस्पताल से लिखा था। पिता ने पुत्र को सांत्वना दी थी '.......अपने देश के लिये प्राण दे रहा हूँ इसलिये मुझे संतोष है। इस समय मुझे तुम्हारी याद आ रही है। मुझे तुम्हारे भविष्य की चिन्ता है। पर चिन्ता की बात नहीं। मुझे पूरा भरोसा है कि मेरे बाद कामरेड स्तालिन तुम्हारी उचित देखभाल अवश्य करेंगे।' लड़के ने अपने पत्र में स्तालिन को धन्यवाद दिया है—'चाचा यद्यपि मुझे तुम्हें देखने का अवसर नहीं मिला परन्तु तुम पिताजी की लिखी बात पूरी कर रहे हो और मैं तुम्हारे जन्म दिवस पर बधाई देता हूँ।' दूसरा पत्र एशियाई

सोवियत की एक पांचवीं कक्षा की लड़की का है। उसने इस पत्र के साथ उपहार में अपना परीक्षाफल भेजा है। वह सभी विषयों में अपनी कक्षा में प्रथम आई है। पत्र में लड़की ने लिखा है कि—'यह परीक्षाफल मेरी सबसे मूल्यवान और अभिमान की वस्तु है। तुम्हारे जन्मदिन पर अपनी सबसे प्यारी वस्तु उपहार में भेज रही हूँ। तुम्हें संतोष होगा कि मैं तुम्हारे आदेश के अनुसार अपने आपको योग्य बना रही हूँ।' चेकोस्लोवाकिया की एक बालिका ने एक कागज पर हृदय की आकृति बनाकर केवल इतना लिखा है—'अत्यन्त प्यारे महान कामरेड, मैं तुम्हें उपहार में अपना हृदय देना चाहती हूँ।'

स्तालिन के जीवन की कहानी और समाजवादी क्रान्ति का इतिहास अभिन्न रूप से गुथे हुए हैं। सोवियत राष्ट्र संघ की सीमाओं के बाहर भी साम्राज्यवाद और नाजीवाद के विरुद्ध संघर्ष में स्तालिन का प्रभाव बहुत महत्त्वपूर्ण रहा है। पूँजीवादी और नाजीवादी शक्तियां स्तालिन को अपने विरोध का प्रतीक मानकर उससे द्वेष करती रही हैं। उसी प्रकार साम्राज्यवाद और नाजीवाद की विरोधी शक्तिया स्तालिन से प्रेरणा और उत्साह पाती रही हैं। स्तालिन संग्रहालय भी अन्तर्राष्ट्रीय रूप से व्याप्त इस संघर्ष के इतिहास की सामग्री से भरा हुआ है। फ्रांस, जर्मनी, इटली आदि देशों से स्तालिन के जन्म दिवस पर आये उपहार उन देशों में नाजीवाद से मुक्ति के लिये संघर्ष की स्मृति के चिह्नों के रूप में ही है। ऐसी ऐतिहासिक स्मृतियों की संख्या बहुत बड़ी है।

सबसे छोटा या संक्षिप्त उपहार भारतवर्ष का ही है। भारत की सरकार की ओर से तो स्तालिन के जन्म दिवस की सत्तरवीं वर्ष गांठ पर कोई उपहार भेजना आवश्यक समझा ही नहीं गया। ब्रिटिश कौमनवैल्थ की ओर से जो एक तलवार ब्रिटेन के तत्कालीन प्रधानमन्त्री चर्चिल ने भेंट की थी, पंडित नेहरू उसमें अपना भी प्रतिनिधित्व समझकर संतुष्ट हो गये। अलबत्ता कानपुर मजदूर सभा ने एक खद्दर का लाल झण्डा अवश्य भेजा था। दूसरी वस्तु दक्षिण, सम्भवतः आन्ध्र से किसी व्यक्ति द्वारा भेजा गया एक चावल का दाना है जिस पर स्तालिन की सत्तरवीं वर्ष गांठ के अवसर पर बधाई का सन्देश लिखा हुआ है। यह दोनों ही वस्तुयें बड़े यत्न से कांचमढ़ी आलमारी में सुरक्षित हैं। स्तालिन की वर्षगांठ पर भेजे जाने वाले उपहारों की चर्चा समय-समय पर संसार के अनेक पत्रों में होती रही है। उस चर्चा को पढ़कर कुछ लोगों की यही धारणा रही है कि इन उपहारों से स्तालिन बहुत अमीर आदमी बन गये हैं। इस संग्रहालय का प्रबन्ध स्तालिन के रिश्तेदार अथवा मित्रों के हाथ में नहीं सोवियत सरकार द्वारा नियत डाइरेक्टर के हाथ में है। जैसे दूसरे संग्रहालयों; टालस्टाय स्मृति संग्रहालय आदि के लिये डाइरेक्टर नियत है; वैसे ही यहाँ भी।

डाइरेक्टर से बातचीत में हम लोग पूछ बैठे—'क्या का० स्तालिन इन सब उपहारों को देख चुके हैं?' उनके चेहरे पर मुस्कराहट आ गई 'कैसे सम्भव हो सकता है? यह उपहार तो एक भावना के प्रतीक हैं। का० स्तालिन ने उन्हें सीधा यहीं भेज देने का आदेश दिया है। यहीं उनका हिसाब-किताब रखा जाता है।' संग्रहालय में एक रजिस्टर भी

है जिसमें दर्शक संग्रहालय को देखने के बाद कुछ लिख आते हैं। हम लोगों ने भी यह पंक्तियां हिन्दी में ही लिख दीं—'वियाना विश्वशान्ति कांग्रेस में भाग लेने वाले हम भारतीय प्रतिनिधि इस संग्रहालय को देखकर बहुत सन्तुष्ट और उत्साहित हुए हैं। यह संग्रहालय कामरेड स्तालिन के प्रति सोवियत राष्ट्रसंघ की जनता और संसार के दूसरे देशों की जनता के आदर और प्रेम का ज्वलंत प्रतीक हैं। हम लोग भी कामरेड स्तालिन के महान व्यक्तित्व और उनके जीवन के महान उद्देश्य के प्रति अपने देश की जनता की श्रद्धा और आदर समर्पित करते हैं। इस संग्रहालय में बिताया हुआ समय हमारे जीवन की चिरस्थाई स्मृति रहेगी। हम इस संस्था के संचालकों के प्रति आभारी हैं। हम का० स्तालिन के व्यक्तित्व के प्रति अपना आदर और सोवियत जनता के प्रति अपना भ्रातृभाव प्रकट करते हैं।' सभी साथियों ने इसके नीचे अपने-अपने हस्ताक्षर कर दिये।

सोवियत की आर्थिक योजनाएँ

हमारे अनुरोध से डाक्टर चरकासोव ने सोवियत की निर्माण योजनाओं की संक्षिप्त व्यांख्या कर देना स्वीकार कर लिया था। डाक्टर चरकासोव औद्योगिक विज्ञान के विशेषज्ञ और सोवियत की महान योजनाओं को बनाने वालों में से हैं। उनकी वैज्ञानिक सेवाओं के लिये उन्हें स्तालिन पुरस्कार द्वारा सम्मानित किया गया है। डाक्टर चरकासोव ने बताया कि—

सोवियत देश में भूमि, खानें, रेलें, मिलें, जंगल, बैङ्क, यातायात के साधन इत्यादि उत्पादन के सभी साधन सम्पूर्ण जनता की सम्मिलित सम्पत्ति हैं इसलिये जनता की प्रतिनिधि सरकार उत्पादन के साधनों के विकास और पैदावार को बढ़ाने के लिये जो भी योजना बनाती हैं उसमें देश भर के सम्पूर्ण साधनों और सम्पूर्ण जनता की श्रमशक्ति का अनुकूल सहयोग प्राप्त होता है। ऐसी अवस्था में विज्ञान की शक्ति हाथ में होने पर हमारे लिये कुछ भी असाध्य नहीं रह जाता।

समाजवादी क्रान्ति से पूर्व हमारा देश केवल प्राकृतिक साधनों पर ही निर्भर करता था। प्रकृति ने अपनी व्यवस्था मनुष्य की सुविधाओ के विचार से नही बनाई है। अनेक अवस्थाओं में प्रकृति मनुष्य को जीवित रहने की सुविधायें भी नही देती। विज्ञान का प्रयोजन ही यह है कि प्राकृतिक शक्तियों को लगाम लगाकर मनुष्य समाज की सुविधा या आवश्यकता के अनुकूल उनसे काम लेना या प्रकृति को बदल देना।

डाक्टर ने सोवियत राष्ट्रसघ के एक बडे मानचित्र पर दिखाकर समझाया कि उनके देश के अनेक भागों में प्राकृतिक परिस्थितियां मनुष्य के निर्वाह में कैसी-कैसी बाधायें उपस्थित करती हैं। मानचित्र को चार समानान्तर रेखाओं से बाटकर उन्होंने बताया कि यदि प्रकृति पर निर्भर किया जाये तो एक भाग में जल और ऊष्णता की कमी होने के कारण वनस्पतियों और अन्न का उत्पन्न होना और मनुष्य का निर्वाह कठिन है। दूसरे भाग में जल की कमी तो नहीं परन्तु ऊष्णता नहीं। यहाँ मनुष्य का निर्वाह तो हो सकता है पर कठिनाई से। तीसरे भाग में अवस्थायें मनुष्यों के निर्वाह के लिये सुविधाजनक हैं। चौथे

भाग में ऊष्णता तो है पर जल नहीं। हमारा काम ऊष्णता और जल का समन्वय कर परिस्थितियों को मनुष्य के निर्वाह योग्य बनाना है। हम जल की अधिकता वाले भागों से अतिरिक्त जल को हटाकर उन स्थानों में पहुँचा रहे हैं जहाँ उसकी आवश्यकता है। कुछ प्रदेश जल की अधिकता के कारण दलदल बनकर अनुपजाऊ हो जाते हैं।

कुछ प्रदेश जल की कमी के कारण असह्य रूप से ठण्डे हो जाते हैं। कुछ प्रदेश जल की कमी के कारण असह्य रूप से गरम हो जाते हैं। कुछ प्रदेश जल की कमी के कारण ही सपाट रेगिस्तान बने हुए हैं। वहाँ जल पहुँचाने पर उपयोगी वस्तुओं की पैदावार तो हो सकती है परन्तु रेगिस्तान की गरम हवाएं हमारी फसलों को बरबाद कर देती हैं! रेगिस्तान की यह गरम हवाएं सपाट बरफानी इलाकों से ही आती हैं। हमने बीच में पड़ने वाले अधिक जल के दलदल वाले भागों से जल खींचकर वहाँ जंगल खड़े कर सकने योग्य स्थिति बना दी है। यह जंगल बरफानी हवाओं को रोकेंगे और आगे गरम आंधियां पैदा होने के कारण को भी मिटा देंगे। नहरें बनाकर हमने अपने देश की प्राकृतिक स्थिति को बदल दिया है। समाजवादी क्रान्ति से पहले इस देश में केवल चालीस लाख हैक्टर खेती की जमीन की और दस लाख हैक्टर चारागाह जमीन की सिंचाई हो सकती थी। १९५० तक की हमारी योजनाओं से पचहत्तर लाख हैक्टर खेती की जमीन की और साठ लाख चारागाह जमीन की सिंचाई होने लगी थी। हमारी बड़ी-बड़ी योजनायें इसके बाद ही पूरी हुई हैं। नई वोलगाडान और आमू नदी की नहरो की योजनाओं से प्रायः ढाई करोड़ हैक्टर जमीन की सिंचाई हो सकती है। इन नहरों से इस समय की अपेक्षा छैः गुनी बिजली और पैदा हो सकेगी।

भूमि से यथेष्ट पैदावार कर सकने के मार्ग की रुकावटों को हटाकर हमने अपने देश में अन्न संकट की सम्भावना को बिलकुल दूर कर दिया है। पिछले दो वर्षों में (१९५० से ५२) हमने अनाज की पैदावार में ४८%, रुई पैदावार में ४६% और चीनी की पैदावार में ३१% बढ़ती कर ली थी। इस बीच हमारे साधनों का विकास और अधिक हुआ है। और १९५५ तक हम लोग आज की अपेक्षा अनाज में ५०%, रुई, चीनी में ६०%, आलू में ४५%, पशुओं के चारे मे १००%, तम्बाकू में ६०%, चाय में ७५% और तरकारियों में तिगुनी या चौगुनी मात्रा में बढ़ती कर सकेंगे। इसी प्रकार हम अपने पशुओं की संख्या में भी बढ़ती कर रहे है। १९५५ में इस देश में पहले की अपेक्षा मांस की पैदावार ९०%, दूध की ५०% और अण्डों की पांच गुनी हो सकेगी।

हमने अपने औद्योगिक क्षेत्रों में भी विकास की योजनाओं द्वारा पैदावार बढ़ाने में सफलता प्राप्त की है। कृषि की पैदावार बढ़ाने के लिये प्राकृतिक अड़चनें दूर करने के साथ ही हमने कृषि को यंत्रों से करने की प्रणाली अपनाई है। बहुत से काम जो मनुष्य के हाथों की शक्ति से असाध्य थे, मशीन द्वारा सुविधा से हो रहे हैं और कृषि के काम से बचे हुए लोगों को औद्योगिक उत्पादन के काम में लगाया जा सका है। जो काम मशीन की शक्ति से हो सकता है उसमें मनुष्य के श्रम की आवश्यकता मशीन को चलाने के लिये

ही होनी चाहिये। हम अपनी पैदावार को निस्सीम रूप से बढ़ा सकते हैं क्योंकि हमारी समाजवादी व्यवस्था में उत्पादन की शक्ति बढ़ जाने से बेकारी की समस्या उठ ही नहीं सकती—कारण यह है कि हम मुनाफा कमाने के लिये उत्पादन नहीं करते बल्कि जनता की आवश्यकताएं पूरी करने के लिये करते हैं। जनता कितनी और कितने प्रकार की वस्तुओं का उपयोग कर सकती है—इसकी क्या सीमा? पैदावार की शक्ति को बढ़ा सकने पर हम अपने श्रमिकों के लिये अधिक विश्राम का अवसर देते हैं। पैदावार की शक्ति बढ़ाने का एक प्रयोजन श्रमिकों को कठिन श्रम से बचाना और विश्राम का अवसर देना भी तो है। १९४० में ही हम क्रान्ति से पूर्व की अपेक्षा बहुत आगे बढ़ चुके थे। युद्ध ने हमें बहुत हानि पहुँचाई और हम अपनी योजनाओं में आठ-नौ वर्ष पीछे पिछड़ गये। फिर भी पिछले वर्ष १९५२ में १९४० की अपेक्षा लोहे की पैदावार में ७०%, फौलाद में ९०%, कोयले में ८०%, तेल में ५०% और नई मशीनों में पहले से तिगुनी बढ़ती कर चुके हैं।

१९४६ तक हमारी शक्ति मुख्यतः पैदावार के साधनों को बनाने में ही लग रही थी। अब हम व्यक्तिगत उपयोग में आने वाली वस्तुओं की पैदावार की ओर ध्यान दे रहे है। १९५५ तक हम इन वस्तुओं की पैदावार १९४० की अपेक्षा तिगुनी कर लेंगे अर्थात् १९५० की अपेक्षा भी सत्तर प्रतिशत बढ़ती अवश्य होगी लेकिन अब भी हमारा ध्यान पैदावार के साधनों को बढ़ाने की ओर रहना चाहिये और हम इन साधनों में भी १९५० की अपेक्षा १९५५ तक ८०% की बढ़ती और करना चाहते हैं।

डाक्टर चरकासोव ने इस बात पर जोर दिया कि हमारी सफलता का कारण यह है कि हम अपनी सम्पूर्ण शक्ति समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति में लगा रहे हैं समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति के साधनों के नाश में नहीं। हमारी केवल एक मांग है कि हमें अपने लक्ष्य की पूर्ति के लिये शान्ति पूर्वक प्रयत्न करने दिया जाये तो हम दूसरे देशो को भी अपने उदाहरण से प्राकृतिक कठिनाइयों को दूर करने का उपाय बता सकते हैं।

होटल की ओर लौटते समय मन में विचार आ रहा था कि सोवियत के लोगों को केवल पैदावार बढ़ाने की चिन्ता है? पैदावार की खपत के लिये दूसरे देशों में बाजार ढूढ़ने की चिन्ता नहीं। वरना उन्हें अपनी पैदावार की शक्ति और मानव शक्ति का अच्छा खासा भाग दूसरे देशों पर कब्जा करने के लिये युद्ध के साधन जुटाने में व्यय करना पड़ता। सोवियत देश में आने से पहले प्रायः यह भी सुना था कि सोवियत सम्पूर्ण पृथ्वी पर छा जाने के लिये एक संसार व्यापी आक्रमण की तैयारी चुपचाप कर रहा है। इस सम्बन्ध में प्रश्न पूछना तो उचित नहीं था परन्तु यदि सोवियत अपनी शक्ति का अधिक भाग युद्ध की तैयारी में व्यय कर रहा है तो पैदावार की इस सब बढ़ती के लिये श्रम शक्ति कहाँ से आती है? हैं तो यह लोग भी मनुष्य ही, या समाजवाद कोई ऐसा जादू है जिसकी उत्पादक शक्ति का अन्दाज पूँजीवादी देशों के लोग लगा ही नहीं सकते?

लेनिन पुस्तकालय

यदि किसी समाज की सांस्कृतिक या बौद्धिक प्रकृति के झुकाव का अनुमान अध्ययन में रुचि से किया जा सकता है तो समाज के पुस्तकालय इस विषय के अच्छे मापदण्ड हो सकते हैं। इसी विचार से लेनिन पुस्तकालय देखने गये। मास्को में पुस्तकालय तो अनेक हैं पर लेनिन पुस्तकालय सबसे बड़ा है। पुस्तकालय की इमारत अठारह मंजिल की है। याद नहीं पड़ता किसी एक लेखक ने इस पुस्तकालय को 'पुस्तकों का हिमालय' कहा है। इस पुस्तकालय को देख अनुमान हुआ कि संसार में इससे बड़ा दूसरा पुस्तकालय न होगा परन्तु डा० कुमारप्पा ने बताया कि न्यूयार्क का सार्वजनिक पुस्तकालय इमारत और पुस्तकों की संख्या के हिसाब से लेनिन पुस्तकालय से कुछ बड़ा ही है। डाक्टर साहब का भी कहना है कि पाठकों की संख्या के विचार से लेनिन पुस्तकालय ही बड़ा ठहरता है। इस पुस्तकालय में वर्ष भर में पाठकों की संख्या सत्रह लाख तक पहुँचती है और नब्बे लाख पुस्तकें इस पुस्तकालय में पढ़ी जाती हैं। न्यूयार्क के पुस्तकालय का उपयोग इससे केवल एक तिहाई ही होता है।

लेनिन पुस्तकालय में लगभग एक हजार सात सौ व्यक्ति एक साथ अध्ययन कर सकते हैं। पुस्तकालय में अनेक हाल हैं और सब हाल पाठकों से भरे रहते हैं। पुस्तकालय प्रातः सात से रात एक बजे तक चालू रहता है। रात में पुस्तकालय इतनी देर तक चालू रखने का कारण पूछने पर पुस्तकाध्यक्ष क्लीवेवर्स्की ने बताया कि पुस्तकालय में आधी रात तक अध्ययन करने वालों की संख्या बहुत काफी है। मास्को में ऐसे लोगों की बहुत बड़ी संख्या है जिन्हें दिन में कारखानों, मिलों और दफ्तरों में काम करना पड़ता है। वे केवल रात में ही स्वाध्याय के लिए समय बचा सकते हैं। पुस्तकालय का तो प्रयोजन ही सर्वसाधारण को विकास के लिए स्वाध्याय का अवसर देना है।

पुस्तकालय मे अनेक भाषाओं में पुस्तकें हैं। अस्सी भाषाएँ तो स्वयं सोवियत संघ मे ही चालू हैं। विदेशी भाषाओं में से सबसे अधिक पुस्तकों की संख्या अंग्रेजी मे है। भारतीय भाषाओं में बहुत कम पुस्तकें है। भारतीय भाषाओं की पुस्तकों का संग्रह मास्को की अपेक्षा लेनिनग्राड में अधिक अच्छा है। सोवियत संघ में प्रकाशित प्रत्येक पुस्तक की प्रति यहाँ स्वयं पहुँच जाती है। इसके अतिरिक्त दस लाख रूबल प्रतिवर्ष विदेशों में प्रकाशित पुस्तकों के लिए खर्च किये जाते हैं। पुस्तकालय में पाँच लाख पुस्तकें प्रतिवर्ष बढ़ जाती हैं।

लेनिन में एक हजार पाँच सौ कर्मचारी और सहायक हैं। यह संख्या इसलिए पर्याप्त है कि पुस्तकों को अलग-अलग कमरों में लाने ले जाने का अधिकांश काम यंत्रों से ही होता है। आवश्यक पुस्तक का नाम-नम्बर लिखकर ट्यूब में रख उस विभाग का नम्बर दबा दिया जाता है। पुर्जा हवा के दबाव से उचित स्थान पर पहुँच जाता है। पुस्तक भेजने वाला पुस्तकों को लगातार चलते लिफ्ट में रख देता है और पुस्तकें कई मंजिलें लाँघकर नीचे पहुँच जाती हैं। भिन्न-भिन्न कमरों से आने-जाने वाली

पुस्तकें इतकी अधिक होती हैं कि उनके लिए बिजली की छोटी-छोटी रेलगाड़ियाँ बनी हुई हैं जो पुस्तकों को एक स्थान से दूसरे स्थान तक ढोती रहती हैं।

पुस्तकालय में काम करने वालों का वेतन उनके काम के अनुसार है। कम से कम वेतन छः सौ रूबल और अधिक से अधिक बाइस सौ रूबल है। कार्यकर्त्ताओं में स्त्रियों की संख्या ही अधिक दिखलाई दी। एक कमरे में पुस्तकालय के तीस सम्मान प्राप्त कार्यकर्त्ताओं के चित्र लगे हुए थे। इनमें से उन्तीस स्त्रियाँ थीं, पुरुष केवल एक ही।

इस पुस्तकालय में भी बच्चों की उपेक्षा नहीं की गई है। बच्चों की आयु के अनुसार दो हाल उन्हीं के लिए नियत है। ये हाल दूसरे हालों की अपेक्षा फूलों और पौधों के गमलों तथा चित्रों से खूब सजे हुए हैं। फर्नीचर भी बच्चों की आयु के अनुकूल ही हैं। पुस्तकों की सूची के कार्डो पर पुस्तकों को चित्रों द्वारा अंकित किया गया है। छोटे बच्चों के कमरे में एक महिला निरीक्षक भी मौजूद रहती है। उसका काम बच्चों की समझ में कोई बात न आने पर उसे समझा देने से लेकर शायद उनके नाक-मुँह साफ कर देना भी है। इस समय बच्चे अधिक नहीं थे क्योंकि यह उनके स्कूल जाने का समय था। केवल वही बच्चे मौजूद थे जो शाम के समय स्कूलों में जाते हैं। सुना हुआ था कि सोवियत में विदेशी यात्रियों को दिखाने के लिए भी बहुत कुछ टीमटाम बाँध दी जाती है। इन बच्चों से बातचीत कर यह जानना चाहा कि वे पहली बार पुस्तकालय में आये हैं अथवा प्रायः आते रहते हैं। बच्चों ने निःसंकोच स्वीकार किया कि धूप निकली हो और खेलने वाले साथी मिलें तो वे खेलना ही अधिक पसन्द करते है। जब खेलने का अवसर न हो तो पुस्तकालय में आ जाते हैं। बच्चों की पोशाक से उनके सामाजिक स्तर का अनुमान न कर सकने के कारण उन्हीं से उनके माता-पिता के विषय मे पूछा। एक अध्यापक का पुत्र था। दो लड़कियों में से एक रेलवे में काम करने वाले परिवार की, दूसरे मोमार (राजगिर) की बेटी थी। चौथे लड़के ने बताया कि वह युद्ध में वीरगति प्राप्त सिपाही की सन्तान है।

पुस्तकाध्यक्ष से पूछने पर पता लगा कि पुस्तकालय में सभी तरह के लोग स्वाध्याय को आते हैं। बौद्धिक संतोष के लिए अध्ययन करने वाले भी आते हैं; इतिहास, अर्थशास्त्र, साहित्य और विज्ञान का गहन अध्ययन करने वाले भी आते हैं परन्तु सबसे अधिक संख्या ऐसे लोगों की रहती है जो किसी न किसी काम से जीविका तो कमा रहे हैं परन्तु आगे अध्ययन कर उन्नति करना चाहते हैं। पुस्तकालय में आने वाले सभी पाठकों के लिखने की आवश्यक सामग्री कागज, पेंसिल आदि पुस्तकालय से ही दी जाती है।

पुस्तकालय के हस्तलिखित विभाग, बहुमूल्य पुस्तकों के विभाग, कलात्मक संग्रह आदि में घूमते घूमते लगभग तीन घण्टे बीत चुके थे। हम लोगों के लौटने के लिये तैयार होने पर मिस्टर क्लीवेवस्की ने असन्तोष प्रकट किया कि हम लोगों ने पुस्तकालय देखने के लिये बहुत कम समय रक्खा था इसलिये हम उसका बहुत ही कम भाग देख पाये।

प्रवदा प्रेस

अन्तर्राष्ट्रीय जगत में सोवियत की राजनीति और 'प्रवदा' लगभग-समानार्थक माने जाते हैं। प्रवदा सोवियत की नीति निश्चित करने वाले बहुमत अर्थात कम्युनिस्ट पार्टी का मुख-पत्र है। इस पत्र की स्थापना लेनिन ने की थी। 'इस्क्रा' सोवियत के मजदूर संघों के केन्द्रीय संगठन का मुख-पत्र और इजवेस्तिया सरकार का पत्र है। प्रवदा सरकार का प्रतिनिधित्व नहीं करता। वह कम्युनिस्ट पार्टी के दृष्टिकोण से नीति सम्बन्धी सुझाव दे सकता है और सरकारी नीति और व्यवहार की आलोचना या समर्थन भी कर सकता है।

प्रवदा का प्रकाशन मास्को और अन्य बारह सोवियत नगरों से एक साथ होता है। इसकी दैनिक खपत की औसत पैंतालीस लाख प्रतियाँ है। इसी से उसके प्रभाव का अनुमान किया जा सकता है। इस्क्रा और इजवेस्तिया की प्रतियां इतनी अधिक संख्या में तो नहीं खपतीं परन्तु उनके पाठकों की संख्या भी लाखों में है। यह ठीक है कि अन्तर्राष्ट्रीय जगत सोवियत राजनीति के सम्बन्ध में प्रवदा, इस्क्रा और इजवेस्तिया की प्रवृतियों से अनुमान लगता है परन्तु इन तीनों पत्रों की नीति सरकारी निर्देश या इनके सम्पादकों और संचालकों के मस्तिष्क की ही सूझ पर निर्भर नहीं करती। इन तीनों पत्रों को सोवियत समाज की तीन मुख्य शक्तियों सरकार, कम्युनिस्ट पार्टी और संगठित मजदूर वर्ग का प्रतिनिधि कहा जा सकता है। यह तीनों अपना-अपना दृष्टिकोण अपने मुख-पत्रों द्वारा प्रकट करती रहती हैं। सोवियत की सामाजिक व्यवस्था चोटी से नींव की ओर निर्धारित नहीं होती बल्कि उसका नियमन नींव से आरम्भ होकर ऊपर की ओर जाता है। सोवियत के पत्रों द्वारा राष्ट्र की नीति निर्धारित होने में भी नींव से चोटी की ओर जाने का ही क्रम चलता है।

सोवियत के सभी राष्ट्रों और भिन्न-भिन्न प्रदेशो और भागों के निजी स्थानीय पत्र भी हैं। ऐसे पत्रों की संख्या साढ़े नौ हजार के लगभग है। यह साढ़े नौ हजार पत्र प्रवदा, इस्क्रा और इजवेस्तिया को अपनी नीति निर्धारित करने के लिये तथ्य पहुँचाते हैं और उनसे इन तथ्यों के आधार पर निश्चित की गई नीति के निर्देश भी पाते हैं। यह स्थानीय पत्र ऐसी नीति का समर्थन या आलोचना भी करते हैं। इन साढ़े नौ हजार स्थानीय पत्रों का मसाला और भी छोटे पत्रों, यहाँ तक कि सभी संस्थाओं, कारखानों, क्लबों, हस्पतालों, मुहल्लों, सैनिकों की बैरकों में पाये जाने वाले दीवारी-पत्रों से एकत्र होता है। दीवारों पर लगी इन घोषणाओं में स्थान पाने या अपना मत प्रकट करने के लिये किसी भी व्यक्ति को दूसरे की आज्ञा और कृपा का मोहताज नहीं होना पड़ता। इन दीवारी-पत्रों के माध्यम से सोवियत के अकिंचिन से अकिंचिन समझे जाने वाले व्यक्ति के लिये भी अपनी बात कह सकने का अवसर रहता है।

पत्रों के सामूहिक सामाजिक सम्पत्ति होने के कारण सम्पूर्ण जनता अपने स्थानीय संगठनों के माध्यम से इन पत्रों की नीति के निश्चय में भाग ले सकती है। यदि कोई व्यक्ति दूसरों को प्रभावित कर अपनी बात कहने का अधिक अवसर पा लेता है तो उसका

आधार उसकी आर्थिक स्थिति या उसका पत्रों का स्वामी होना नहीं बल्कि उसका व्यक्तिगत चातुर्य ही होगा। इस प्रकार सोवियत देश के राजनैतिक क्षेत्र में किसी व्यक्ति का प्रभाव चाहे जिस योग्यता या काम के आधार पर हो, उसकी सम्पत्ति के आधार पर नहीं हो सकता। प्रत्येक व्यक्ति को समाज के प्रबन्ध में अपनी योग्यतानुसार सहयोग देने का अवसर होना ही सोवियत समाजवादी समाज की समता की नींव है।

प्रवदा प्रेस की स्थापना प्रथम पंचवर्षीय योजना के अंतरगत १९३४ ई० में हुई थी। यह प्रेस प्रतिदिन तीन घंटे में प्रवदा की अट्ठारह लाख के लगभग प्रतियां तो छापता ही है इसके अतिरिक्त कोन्सोमोल-प्रवदा, (कम्युनिस्ट नवयुवकों का पत्र) अग्नियोक, सोवियत-वोमेन, वोमेन वर्कर, प्रोब्लेम्स आफ फिलोस्फी, प्रोब्लेम्स आफ इकोनोमिक्स, प्रोब्लेम्स आफ हिस्ट्री, पाइनियर मैगजीन, स्मर्ना, फार ए लास्टिंग पीस, फार पीपुल्स डिमोक्रेसी का रूसी संस्करण, न्यू टाइम्स और दूसरी बीसियों पत्रिकायें भी यहीं छपती हैं। इन सब पत्रों के साथ ही संसार की छः भाषाओं में सचित्र सोवियत-यूनियन की लगभग सात लाख कापियाँ भी प्रति मास यहीं छपती हैं।

मास्को में छपी सचित्र पत्रिकायें देखने का अवसर बहुत लोगों को मिला है। ये पत्रिकायें देख लेने पर इस विषय में मतभेद का अवसर नहीं रह जाता कि सोवियत की छपाई, विशेषकर रंगीन छपाई, संसार के किसी भी देश से नीचे दर्जे की नहीं। इस कला या उद्योग में उन्नति और विकास के लिये सोवियत ने किसी दूसरे अधिक विकसित समझे जाने वाले देश से सहायता की भीख भी नहीं मांगी। प्रेस के कम्पोजिंग विभाग में छियालीस लाइनोटाइप मशीनें हैं। इन मशीनों पर काम करने वालों में अधिकांश स्त्रियाँ हैं और प्रायः युद्ध में वीरगति प्राप्त सैनिकों की पत्नियाँ हैं। इसी विभाग में सोवियत के दूसरे बारह नगरों में छपने वाले प्रवदा के धातु-पत्र (स्टोरियो) तैयार किये जाते हैं। जिन्हें उन नजरों में प्रतिदिन हवाई जहाजों से भेज दिया जाता है ताकि उन नगरों के प्रेस स्थानीय समाचारों को मिलाकर प्रवदा को समय पर प्रकाशित कर सकें। छपाई के विभाग में इक्कीस दैत्याकार रोटरी मशीनें लगी हुई हैं जो तीन घंटे में बीस लाख प्रतियाँ छापकर और तहाकर तैयार कर देती हैं। सूर्योदय से पहले ही मास्को नगर में प्रवदा की प्रतियाँ बिक्री के लिये आठ हजार दुकानों पर पहुँच जाती हैं।

प्रेस में कागजों को काटने, तहाने और जिल्द बांधने का सब काम मशीनों से ही होता है। प्रेस के संचालक का कहना है कि यह प्रेस उनकी नित्य बढ़ती हुई आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये पर्याप्त नहीं है। वह प्रवदा की बढ़ती हुई मांग को पूरा नहीं कर पा रहे। यदि मशीनों की संख्या बढ़ाई जा सके और कागज पर्याप्त मात्रा में मिल सके तो प्रवदा की बिक्री प्रतिदिन एक करोड़ तक पहुँच सकती है। प्रवदा प्रेस में तीन हजार व्यक्ति काम करते हैं। सम्पादकीय विभाग में पचास आदमी हैं। परन्तु इस संख्या में समाचारदाताओं और समाचार-संग्रह करने वालों की गिनती नहीं। प्रत्येक पत्रिका के बनाव सिंगार के लिये इस विषय का एक-एक विशेषज्ञ कलाकार नियत है।

लाइनोटाइप की मशीन पर काम करने वाले स्त्री-पुरुषों को बारह सौ रूबल मासिक से लेकर उनके काम के अनुसार बाइस-चौबीस सौ रूबल तक वेतन मिलता है। रंगीन काम छापने वाली मशीनों पर काम करने वाले कारीगरों को एक हज़ार से लेकर ढाई हज़ार रूबल तक। विभिन्न विभागों के मैनेजरों को सोलह सौ से अढ़ाई हज़ार तक। सम्वाददाताओं को पन्द्रह सौ से दो हज़ार तक और प्रधान सम्पादक को साढ़े-तीन हज़ार। वेतनों में अन्तर कलम से और मशीन से काम करने के कारण नहीं बल्कि काम अधिक या कम कर सकने के कारण है। वेतनों का यह अनुपात हमारे देश के समाचार पत्रों की तुलना में कुछ विचित्र हैं; जहाँ एक अच्छा कम्पोजीटर सौ रुपये से अधिक की आशा नहीं कर सकता परन्तु डाइरेक्टर और सम्पादक दो-ढाई-तीन हज़ार तक पा सकते हैं। प्रवदा अपने लेखकों के श्रम के लिये भी उदारता से पारिश्रमिक देता है यह व्यक्तिगत अनुभव से कह सकता हूँ। प्रवदा के २१ जनवरी १९५३ के अंक में लेनिन की समाधि के दर्शन के सम्बन्ध में प्रकाशित मेरे छोटे से लेख और एक अन्य साधारण आकार के लेख के लिये प्रवदा ने मुझे ढाई हज़ार रूबल स्वयं ही भेज दिये थे।

प्रवदा प्रेस के कार्यकर्त्ताओं को रूबल के रूप में मिलने वाले वेतन को ही उनकी पूरी आय नहीं समझ लिया जा सकता। प्रवदा अपने कार्यकर्त्ताओं की बीमारी के समय चिकित्सा और यदि बेकारी हो तो उस समय भत्ते की जिम्मेवारी तो लिए ही है इसके अतिरिक्त इस प्रेस का एक अपना हाईस्कूल है जहाँ कर्मचारी बिना फीस के ऊँची शिक्षा प्राप्त कर सकते हैं। प्रवदा का एक औद्योगिक कालिज भी है जहाँ कार्यकर्त्ता नाममात्र शुल्क देकर ऊँचे दर्जे की कलात्मक अथवा औद्योगिक शिक्षा पा सकते है। यदि वे अध्ययन का अच्छा परिणाम दिखा सकें तो निश्शुल्क शिक्षा प्राप्त कर सकते हैं। प्रवदा अपने कार्यकत्ताओ के स्वास्थ्य और विनोद के लिये गरमियों में पहाड़ी या समुद्र तट की सैर का प्रबन्ध भी एक चौथाई खर्च पर कर देता है। विशेष अच्छा काम करने वाले कार्यकर्त्ताओं को सैर का पूरा खर्च प्रेस ही देता है। प्रेस के सामने ही कार्यकर्त्ताओं के लिये क्लब और उनके बच्चों के लिये किन्डर गार्डन और नर्सरी मौजूद हैं।

एक साथी ने चुटकी लेने के लिये प्रवदा के संचालक से टेढ़ा प्रश्न पूछ डाला—"आपके यहाँ छः विदेशी भाषाओं में भिन्न-भिन्न पत्र-पत्रिकायें छपती हैं। इनकी खपत तो विदेश में प्रचार करने के लिये ही होती होगी?"

"नहीं ऐसी बात नहीं है"—संचालक ने उत्तर दिया,—"विदेशी भाषा में छपे पत्रों की खपत सोवियत में भी काफ़ी होती है। हमारे स्कूलों-कालेजों में प्रत्येक विद्यार्थी को एक न एक विदेशी भाषा पढ़नी ही पड़ती है। वे लोग इन पत्रों को भी पढ़ते हैं। सोवियत नागरिकों को विदेशों में प्रकाशित पत्र-पत्रिकाओं के पढ़ने पर भी कोई प्रतिबन्ध नहीं है। आप जब चाहें पुस्तकालयों, वाचनालयों और दुकानों पर ऐसे प्रकाशनों को देख सकते हैं।"

त्रेतियाकोव कलाभवन

मास्को में यात्री का ध्यान आकर्षित कर लेने के लिये इतनी अधिक चीजें हैं कि थोड़े से समय में सभी की ओर उचित ध्यान दे पाना सम्भव नहीं। कलात्मक वस्तुओं से अनायास ही सामना होता रहता है। ऐसी अवस्था में कलात्मक वस्तुओं का संग्रह देखने जाने के लिये यदि कलाभवन जाने की बात भूल ही जाये तो बड़ी बात नहीं परन्तु बम्बई के प्रसिद्ध कलाकार साथी रावलजी से ऐसी चूक नहीं हो सकती थी। उनके आग्रह से त्रेतियाकोव कलाभवन में भी गये।

मास्को की और सब चीजों के विस्तार की तरह त्रेतियाकोव कलाभवन भी अच्छा खासा कलाप्रासाद ही है। जिन लोगों की यह धारणा है कि सोवियत के लोग किसी भी वस्तु में धार्मिकता का संकेत या पुट पाकर भड़कने लगते हैं, या उसे सहन नहीं कर सकते, उन्हें इस कलाभवन में आकर अवश्य विस्मय होगा। भवन में चित्रों को उनके ऐतिहासिक काल के क्रम से लगाया गया है। आरम्भ के कमरों में मसीह और मसीह के जीवन से सम्बन्ध रखने वाले या अन्य धार्मिक कथाओं से सम्बन्धित चित्र ही अधिक हैं। इन चित्रों को किसी उपेक्षा के भाव से नहीं बल्कि कला की ऐतिहासिक सम्पत्ति के रूप में आदर से संजोकर रखा गया है। चित्रों के साम्प्रदायिक पक्ष की चिन्ता न करके भी सोवियत के लोग इन चित्रों में कला की दृष्टि से ही इतना कुछ देखते है कि ये उनके लिये बहुमूल्य हैं।

कलाभवन तथा कला से सम्बन्ध रखने वाली अन्य सस्थाओं मे सोवियत के लोगों का उत्साह देखने से ऐसा जान पड़ता है कि सोवियत की जनता कला की भूखी है और कला उनके जीवन का आवश्यक अंग बन गई है। चित्रों का वर्गीकरण और विभाजन जिस प्रकार किया गया है, उसके विषय में तो कोई कला विशेषज्ञ ही अधिकार से कह सकता है परन्तु साधारण दर्शक के लिये भी वे चित्र अन्य देशों के कला भवनों में सग्रहीत कृतियों से किसी प्रकार कम नहीं है। विशेषतः किप्रायांस्की के बनाये हुए प्रसिद्ध व्यक्तियों के चित्र जिनमें से पुश्किन के चित्र के बारे में दन्तकथा है कि चित्र को देखकर पुश्किन ने विस्मय से कहा था, "यह चित्र देखकर तो जान पड़ता है कि मैं अपने चित्र के सामने नही, दर्पण के सामने खड़ा हूँ।"

उन्नीसवीं सदी के आरम्भ के चित्रों में प्रायः सामन्त समाज की ही प्रतिच्छाया है क्योंकि उस समय अन्य कलाओं की तरह चित्रकला भी उसी श्रेणी के उपयोग और संतोष के लिये सीमित थी। परन्तु उन्नीसवीं सदी के मध्य भाग से कलाकार का कूची से साधारण मानव की भावना बोलने लगती है और उत्तरोत्तर चित्रों में सर्वसाधारण का जीवन भी प्रतिबिम्बित होने लगता है। सुर्योकोव के चित्रों के नायक जार और सामन्तगण नहीं, खेतों और गलियों में चलने वाले सर्वसाधारण लोग ही हैं। हम लोगों के लिये सबसे आकर्षक भाग समाजवादी क्रान्ति के बाद और आधुनिक सोवियत जीवन के चित्रों का संग्रह था जिनमें सर्वसाधारण मानव की आत्मनिर्भरता और निर्माण की शक्ति का प्रदर्शन है।

समाजवादी सोवियत के चित्रकार और पूँजीवादी समाज के चित्रकार भी रेखाओं और रंगों द्वारा अपनी कल्पनाओं और भावों की अभिव्यक्ति करते हैं। सौंदर्य की प्रतिष्ठा और भावों की अभिव्यक्ति के लिये दोनों ही चित्रकला के माध्यम को अपनाते हैं परन्तु इस एक ही माध्यम द्वारा प्रकट दो पृथक विचारधाराओं और संस्कृतियों के कलाकारों की भावनायें और मूर्त पृथक-पृथक हैं। सोवियत की चित्रकला नारी के नग्न अंगों की भूलभुलैया में ही उलझकर संतुष्ट नहीं हो जाती। न सोवियत की चित्रकला इस बात का ही गर्व करती है कि वह अपनी कल्पना की उस चरम सीमा पर पहुँच गई है जहाँ तथ्य जगत के मूर्त और भाव उनके लिये बेकार हो गये हैं और आगे कोई भी मार्ग न पाकर आकारों और रंगों की गपड़चौथ में से रस निकाल लेने की चेष्टा का मौलिक कार्य कर रहे हैं। इस कला भवन में 'सुर्रियलिज्म' और 'दादाइज्म' की कला की पहेलियां नहीं मिलतीं! जिनके भाव दर्शक को केवल अपनी कल्पना से ही गढ़ने पड़ते हैं।

सोवियत कलाकार की शक्ति मूर्त को अधिक से अधिक यथार्थ करने की ओर लगी हुई हैं। अपने मूर्त को यथार्थ की पूर्णता से सजीव कर वह उससे नवजीवन का संदेश देता है। आधुनिक सोवियत कलाकारों के मुंह बोलते चित्र इस बात के साक्षी हैं परन्तु भारतीय कला में भाव के लिये कल्पना से मूर्त का सृजन करने की जो विशेषता है, उसकी ओर सोवियत कलाकार की प्रवृत्ति नहीं है। भावनाओं के असीम क्षेत्र में से कोमल और सूक्ष्म भावनाओं को चुन कल्पना से उनके लिये मूर्त बनाकर व्यक्त करने में कला की पराकाष्ठा समझी जाय या दृश्य जगत से ही मूर्त चुन उन्हें यथार्थ की पूर्णता दे सकने में? यह विषय विवाद का हो सकता है, विवाद से बचते हुए भी इतना तो कहा ही जा सकता है कि मूर्त को यथार्थ की सजीवता दे सकने की क्षमता के लिये कौशल का चमत्कार चाहिये तो भावों के लिये कल्पना से मूर्त का सृजन करने में कल्पना और कौशल दोनों की ही आवश्यकता है। इस दृष्टि से भारतीय चित्रकला का रस चखे लोगों को पश्चिम की चित्रकला ऐसा फल जचती है जो आकार में बड़ा और सुन्दर होने पर भी मिठास और रस में कुछ कम रह जाये।

इस विषय मे सन्देह की गुञ्जाइश नहीं कि सोवियत के लोगों में कला के प्रति असाधारण झुकाव है। कला भवन में सर्वसाधारण की भीड़ को देखकर विस्मय होता है। चित्रों को देखने के लिये टिकट खरीद कर जितने लोग त्रेतियाकोव कलाभवन में पहुँचते हैं, लंदन के टेट्स गैलरी और नेशनल आर्ट गैलरी में मुफ्त प्रवेश की सुविधा होने पर भी उसका दसवां भाग भी दिखाई नहीं देते। इस भेद का कारण यही हो सकता है कि लंदन के सर्वसाधारण नागरिक को जीवन के संघर्ष में कला की बात सोचने लायक अवकाश ही नहीं मिलता।

त्रेतियाकोव कलाभवन में विदेशी चित्रों की भी कमी नहीं। प्राचीन विदेशी महान कलाकारों के चित्रों के अतिरिक्त आधुनिक फ्रेंच, इटालियन, अंग्रेज और अमरीकन कलाकारों की भी बहुत सी कृतियाँ एकत्र की गई हैं। लगभग सभी देशों की कृतियाँ यहाँ मौजूद हैं। हमारा ध्यान स्वभावतः ही क्लीमाशिन के भारतीय जीवन के चित्रों की ओर

गया। क्लीमाशिन पिछले ही वर्ष भारत में सोवियत कला की प्रदर्शनी के अवसर पर इस देश में आये थे। अब वे इस बात का यत्न कर रहे हैं कि मास्को में भारत के प्राचीन और आधुनिक चित्रों की प्रदर्शनी की जा सके। कला के प्रति झुकाव की जो असाधारण बाढ़ सोवियत के लोगों में दिखाई देती है उसका अनुभव तो हमें कलाभवन में गये बिना अपने होटल में ही हो गया था। ज्यों ही मास्को के नवयुवक कलाकारों और चित्रकला के विद्यार्थियों को हम लोगों के मास्को में आने की खबर मिली, बीस-पच्चीस कलाकार, चित्रकला का सामान बगल में दाबे होटल में आ पहुँचे। भारतीय चेहरों और वेशभूषा का चित्र बना सकने के अवसर से वे चूकना नहीं चाहते थे। दिन के किसी भी समय इन चित्रकारों को हममें से किसी न किसी का चित्र बनाते देखा जा सकता था। कोई हम लोगों के काले रंग पर मोहित था तो किसी को पगड़ी और गांधी टोपी आकर्षित किये थी। कोई साड़ी और दाढ़ी के फाल और फोल्ड (बहाव और लहरों) को अंकित कर लेना चाहता था। हममें से तीन चार बहुत ही साधारण चेहरे को छोड़कर सभी लोग अपने अच्छे खासे बड़े-बड़े चित्र मास्को में छोड़ आये हैं।

कला की ओर रुचि तो मनुष्य का स्वभाव है। हमारे यहाँ भी नवयुवक इस ओर झुकते हैं। भावुक लोग जीवन संघर्ष के प्रवाह में कला का कम्बल पकड़ने जाते हैं और कला ही उन्हें ऐसे पकड़ लेती है कि वे आधे पेट जीवन बिताने के लिये विवश हो जीवन संघर्ष के प्रवाह में डूबते-उतराते रहते हैं। कविता, कहानी, मूर्ति और चित्रकला सभी कलाओं के बारे में यह बात हमारे और अन्य पूँजीवादी देशों में भी समान रूप से सत्य है। अभाव से पीड़ित रहना कलाकार के जीवन का लक्षण ही मान लिया गया है परन्तु सोवियत में कला की भक्ति के लिये अभाव की कातरता सहना आवश्यक नहीं। सोवियत समाज अपने इन चित्रकारों को जीविका देने में भी कठिनाई अनुभव नहीं करता। जहाँ तक याद पड़ता है कोई होटल, कोई जलपान गृह, कोई क्लब, स्कूल का कोई कमरा, किसी स्टेशन का मुसाफिरखाना तैल-चित्रों के बिना देखा ही नहीं।

सोवियत हस्पताल

तीस दिसम्बर, प्रातःकाल आकाश बर्फानी कोहरे से भरा था और बर्फ की हल्की-हल्की फुहारें पड़ रही थीं। मास्को का एक हस्पताल देखने के लिये गये। इमारत बर्फ में भी हरे भरे रह सकने वाले वृक्षों से घिरी थी। हस्पताल के आंगन या बरामदे में रोगियों या दवाई चाहने वालों की भीड़ दिखाई न दी।

प्रधान डाक्टर के दफ्तर में जाने पर पता लगा कि यह हस्पताल मुख्यतः मास्को के रेल कर्मचारियों के लिये है परन्तु दूसरे लोगों के इलाज और उपचार की मनाई नहीं है। दफ्तर में बिछे कालीन, फर्नीचर और गमलों में रखे गर्म देशों के पौधों से जैसे-तैसे किसी तरह काम चला लेने का ढंग नहीं बल्कि सुविधा और शांति का वातावरण जान पड़ता था।

डाक्टर साहब ने बताया—"इस हस्पताल की स्थापना १९३८ में पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत हुई थी। हमारी सरकार और हमारी पार्टी पंचवर्षीय विकास योजनाओं में केवल सड़कें, नहरें और कारखाने ही नहीं बनाती बल्कि जिस जनता के लिये यह पंचवर्षीय योजना है सबसे पहले उसकी शिक्षा और स्वास्थ्य-सुधार योजना भी बनाती है।" डाक्टर साहब के बलिष्ठ अंग और गम्भीर चेहरा, भेदती दृष्टि और उनके गर्व से 'हमारी पार्टी' कहने से वही आशंका हुई जो प्रायः रूस के सम्बन्ध में अमरीका और इंगलैंड से प्रकाशित कथानकों को पढ़कर होती है। अर्थात डाक्टर साहब सख्ती से जो कुछ दिखाना चाहेंगे वहीं दिखायेंगे और बढ़-बढ़कर बातें करेंगे इसलिये शंका और सन्देह से उनकी बात में त्रुटि पकड़ने का ध्यान रहा।

डाक्टर साहब ने बताया कि सोवियत के दूसरे हस्पतालों की तरह इस हस्पताल का भी पूरा खर्च अर्थात् रोगियों के लिये औषधि, भोजन, कपड़ा-लत्ता सब सोवियत सरकार देती है। नागरिकों को अपनी चिकित्सा के लिये कोई खर्च नहीं देना पड़ता। बीमारी की अवस्था में बीमार के परिवार के निर्वाह के लिये राष्ट्रीय बीमा विभाग बीमार की तनख्वाह भी देता रहता है। बीमारों को हस्पताल में दाखिले के लिये इन्तजार नहीं करना पड़ता। उन्हें किसी न किसी तरह, एक में नहीं तो दूसरे हस्पताल में तुरन्त दाखिल कर लिया जाता है। इस हस्पताल में सात सौ बीस स्त्री-पुरुष बीमारों के रहने की व्यवस्था है।

यह पूछने पर कि प्रायः किन रोगों के रोगी इलाज के लिये आते हैं, उत्तर मिला कि अधिकांश में पेट की बीमारियों, खून के दबाव, तपेदिक, फोड़ों और पैत्रिक सूत्र से पाई जाने वाली बीमारियों के लोग इलाज के लिये आते हैं। पूछा कि हस्पताल रेल कर्मचारियों का है तो रेलों पर दुर्घटनाओं के जख्मी ही अधिक आते होंगे। उत्तर मिला—आते जरूर है परन्तु पहले से बहुत कम क्योंकि रेलवे में काम और कर्मचारियों की शिक्षा की व्यवस्था में बहुत सुधार हो गया है।

यह सुनकर कि हस्पताल में छोटे-बड़े डाक्टरों की सख्या एक सौ चौदह है और नर्सों की दो सौ साठ कुछ विस्मय हुआ। पूछा कि इतने डाक्टर क्या करते हैं तो उत्तर मिला कि डाक्टरों का काम केवल बीमार पड़ गये लोगों का इलाज करना ही नहीं है। हस्पताल में एक खोज विभाग भी है जहाँ औषधियों और रोगों के सम्बन्ध में खोज का कार्य होता है। उन्होंने उदाहरण दिया अभी दो वर्ष पूर्व आतशिक की एक नई औषधि का आविष्कार होने पर इस औषधि का प्रभाव देखने के लिये रोगी की आवश्यकता थी। हस्पताल में ऐसा कोई रोगी न था। आसपास के हस्पतालों में भी ऐसा रोगी न मिलने पर सोवियत के दक्षिणी भाग से एक रोगी को खोज कर लाया गया और उस पर औषधि की परीक्षा की गई। तत्काल किसी रोग के रोगी न रहने पर भी उस रोग की चिकित्सा की खोज का काम बन्द नहीं हो जाता, जारी ही रहता है क्योंकि रोग कभी भी फूट सकते हैं। रोग की छूत दूसरे देशों से भी आ सकती है। रोगो के उपचार का उपाय हाथ में रहना आवश्यक है।

एक साथी ने तंज के तौर पर पूछ लिया—"क्या सोवियत के लोगों को आतशिक और सुजाक आदि बीमारियाँ हो ही नहीं सकतीं?" डाक्टर साहब ने धैर्य से उत्तर दिया—"इस समय ऐसे रोगी ढूँढ़ने पर शायद ही मिलें। तीस-बत्तीस वर्ष पूर्व भी रूस में जारशाही के काल की सामाजिक अव्यवस्था के परिणाम स्वरूप यह रोग खूब फैले हुए थे। उस समय ऐसे रोगियों को ढूँढ़-ढूँढ़कर उनका इलाज किया गया। रोग फैला सकने वालों पर नजर रक्खी गई। उन्हें कन्सनट्रेशन कैम्पों में रखकर उनका इलाज किया गया। इस युद्ध से पहले हम लोग अपने देश में इस रोग को लगभग निर्मूल कर चुके थे परन्तु इस युद्ध के बाद नाजियों के कब्जे में आ गये ग्रामों और नगरों में यह रोग फिर फूट निकले! नाजी सिपाहियों को ये रोग थे। उन्होंने जिन स्त्रियों से बलात्कार किया उन्हें वे ये रोग भी दे गये। नाजियों को अपने देश से बाहर निकालते ही हमने ऐसी अभागी स्त्रियों को चुन-चुनकर उनका इलाज किया। नये आविष्कारों और जनता के सहयोग से इस बार इस रोग को निर्मूल करने में अधिक कठिनाई नहीं हुई।"

यह जानकर कि हस्पताल में तपेदिक के पचास रोगियों के लिये व्यवस्था है! डाक्टर साहब से पूछा कि हमारे देश में या अन्य देशों में गरीब श्रेणी के लोग प्रायः तपेदिक का शिकार हो जाते हैं क्योंकि उन्हें उचित पौष्टिक भोजन नहीं मिलता और अस्वास्थ्यकर स्थानों में रहना पड़ता है। सोवियत में सभी के लिये स्वस्थ भोजन और रहने के लिये स्वस्थ स्थान की सुविधा है। यहाँ लोगों को तपेदिक हो जाने का क्या कारण है? डाक्टर साहब ने उत्तर दिया, तपेदिक अनेक अवस्थाओं मे पारिवारिक या पैत्रिक रोग भी होता है। हमारे यहाँ अधिकांश में तपेदिक के ऐसे ही बीमार आते है। सर्वसाधारण के जीवन की परिस्थितियों में सुधार हो जाने से ऐसे रोगियों की संख्या में भी कमी हो रही

डाक्टर साहब तो सभी प्रश्नों का उत्तर दफ्तर में ही दे देने को तैयार थे परतु हम लोगों ने स्वयं घूमकर हस्पताल देखने और रोगियों से बातचीत करने की आज्ञा चाही। हमें कुछ देर ठहरने के लिये कहा गया और प्रत्येक व्यक्ति के लिये एक-एक ताजा धुला हुआ सफेद डाक्टरी-चोला और सफेद टोपी सूती कपड़े की आ गई। हमें आदेश दिया गया कि भीतर रोगियों के पास जाने से पहले हमें अपने कपड़ों के ऊपर यह चोला और टोपी पहन लेनी चाहिये। अभिप्राय था कि हमारे कपड़ों से किसी रोग के कीटाणु हस्पताल में न फैल सकें।

कई कमरों में झांक कर देखा। कुछ कमरों में ८, कुछ में आठ और कुछ में चार स्त्री या पुरुष रोगी थे। रोगियों के बिस्तर और कपड़े सभी बहुत साफ। कुछ रोगी हस्पताली और कुछ निजी कपड़े पहने थे।

स्त्री रोगियों के एक कमरे में एक अध्यापिका, एक सरकारी दफ्तर की क्लर्क एक बिजली से वैल्डिंग करने वाली कारीगर और एक मेहतरानी थी। यदि मेहतरानी ने अपना

परिचय सेठानी या मुख्य अध्यापिका के रूप में दिया होता तो उसके शरीर के विस्तार और रूप के अधिक अनुकूल जान पड़ता। रोगी प्रायः मुस्कराकर स्वागत करते थे और बातचीत करने के लिये उत्सुक। कुछ कमरों में जाने से हमें नर्सों ने रोक दिया। कारण पूछने पर मालूम हुआ कि उन कमरों में उसी सुबह आपरेशन किये गये बीमार लेटे थे। बड़े डाक्टर साहब हमें जीने तक छोड़कर अपने काम पर लौट गये थे। एक कम उमर डाक्टर और डाक्टरनी और एक नर्स हमें रास्ता बताते एवं रोगियों का विवरण देते साथ चल रहे थे। एक कमरे में कान के रोगी थे उनमें से दो शतरंज खेल रहे थे। डाक्टर के आगे चले जाने पर मैं दुभाषिये के साथ इस कमरे में चला गया। एक रोगी जो मुस्करा नहीं रहा था उसी से बात की। वह पांच दिन से हस्पताल में था। उसका कान ठीक हो चुका था परन्तु डाक्टर ने कान को एक बार और देखने के लिये उसे रोक रखा था। यह आदमी बिजली की मोटरों की मरम्मत का काम करता है। पूछा—"तुम्हें लौटने की जल्दी क्या है? मजदूरी का नुकसान हो रहा होगा?" उत्तर मिला—"नहीं, मजदूरी तो मिल रही है।"

"यहाँ का खाना पसन्द नहीं आता होगा।"

"खाना तो बुरा नहीं। कई चीजें जो अपने घर पर कभी ही बना पाते हैं, यहाँ खूब मिल रही हैं।" उसे समझाया कि फिर जल्दी क्या हैं? पड़े रहो यहीं उसने उत्तर दिया—"अपने बाल-बच्चों के पास जाने को भी तो दिल करता है। यहाँ पड़े-पड़े क्या फायदा? लौटकर अपना काम करें।"

हस्पताल में भोजन का कमरा भी सुन्दर है। जो बीमार भोजन के लिये कमरे में नहीं जा सकते उनके लिये छोटी पहियेदार मेजों पर खाना बिस्तर के समीप पहुँचा दिया जाता है। ऐसे बीमारों के लिये बिजली लगे छोटे-छोटे डिब्बे भी हैं जिनमें खाना ताजा और गरम बना रहता है। पौधों भरे गमलों से सजा एक पुस्तकालय है। गद्दीदार कुर्सियाँ, आराम कुर्सियाँ और सोफों से भरा एक आराम करने का कमरा है। जहाँ पियानों और दूसरे कई साज रखे हुए हैं।

एक बड़ा कमरा पालनों से भरा हुआ था। जिनमें गोद के बच्चे दूध के झाग से सफेद कपड़ों में लिपटे सो रहे थे या छत की ओर देखकर हाथ-पांव हिलाते हुए किलक रहे थे। दो बच्चे खूब चीख कर रो रहे थे। मालूम हुआ कि यह रोगी स्त्रियों के गोद के बच्चे हैं जिन्हें नर्सें सम्हालती है।

इस हस्पताल में अस्सी प्रतिशत डाक्टर स्त्रियां हैं। इस हस्पताल में क्या सोवियत भर में डाक्टरों में स्त्रियों की संख्या पैंसठ या सत्तर प्रतिशत है। मास्को में कड़ी सर्दी होने के कारण हममें से किसी न किसी की तबीयत ढीली हो ही जाती थी। डाक्टर बुलाने पर सदा स्त्री डाक्टर के ही दर्शन हुए। डाक्टरों का वेतन हजार बारह सौ रूबल से आरम्भ होता है; नर्सों का छः सौ रूबल से। निश्चित समय से अधिक काम करने पर भत्ता मिलता है। डाक्टरों की तनख्वाह प्रायः तीन हजार रूबल तक चली जाती है।

डाक्टरों की प्राइवेट प्रैक्टिस के अवसर के सम्बन्ध मे पता लगा कि प्राइवेट प्रैक्टिस की मनाही नहीं है परन्तु आवश्यकता अनुभव नहीं होती क्योंकि तनख्वाह में निर्वाह बखूबी हो सकता है। कोई भी बड़ा डाक्टर सहायता या परामर्श के लिये बुलाये जाने पर इंकार नहीं कर सकता। डाक्टर साधारणतः किसी बस्ती, कारखाने या गाँव के स्वास्थ्य के लिये जिम्मेवार होते हैं। पूँजीवादी व्यवस्था की तरह, डाक्टरों को अपने इलाके में बीमारी फैलने से लाभ और लोगों के भले चंगे बने रहने से भूखे मरने की नौबत नहीं आती। किसी हद तक इसके विपरीत ही होता है।

हस्पताल के कर्मचारियों की अपनी ट्रेड यूनियन हैं और उसका प्रधान भी एक डाक्टर ही है। हस्पताल में घूमते समय एक जगह हाथ से लिखे बड़े-बड़े कागज लटकते देखे। पूछने पर मालूम हुआ कि ये दीवारी-अखबार हैं। हस्पताल के कर्मचारी या बीमार प्रबन्ध या व्यवहार के सम्बन्ध में जो शिकायत करना या सुझाव देना चाहें, लिखकर यहाँ लगा देते हैं। हमने जानना चाहा कि इन अखबारों में कभी डाक्टरों की आलोचना भी लिखी हुई मिलती है? उत्तर मिला—"जरूर, और रोगियों के परस्पर व्यवहार की आलोचना भी मिलती है।"

डाक्टर साहब से प्रश्न किया कि आपके हस्पतालों में योरुप और अमरीका आदि में बनी औषधियाँ भी प्रयोग में लायी जाती हैं या नहीं? डाक्टर साहब ने कहा—"नहीं। इसके दो कारण हैं; एक तो ऐसी कोई दवाई नहीं जो सोवियत में न बनती हो। दूसरा कारण यह है कि सोवियत में औषधियाँ इलाज करने के प्रयोजन से ही बनाई जाती हैं। पूँजीवादी देशों में औषधियाँ मुख्यतः व्यापार के लिये बनाई जाती हैं। अनुभव से हमें अपने यहाँ की औषधियाँ अधिक अच्छी जान पड़ती हैं। दूसरे देशों में बनी औषधियाँ प्रयोग में लाने के सम्बन्ध में सिद्धान्त का कोई प्रश्न नहीं है। आवश्यकता होने पर हम योरुप के जनवादी देशों चेकोस्लोवाकिया, बुलगेरिया और कभी स्वीडन-नार्वे आदि से भी औषधियाँ मँगा लेते हैं। विज्ञान और चिकित्सा के क्षेत्र में देशी-विदेशी की भावना हमें उचित जान नहीं पड़ती। हम विदेशी वैज्ञानिकों और डाक्टरों का भी उचित आदर करते हैं।"—उन्होंने उस कमरे में लगे दो तैल चित्रों की ओर इशारा किया और उनके नाम बताये। नाम तो याद नहीं परन्तु उनमें से एक ब्रिटेश फिजीशियन (चिकित्सक) था और दूसरा अमरीकन सर्जन (जर्राह)—"हम इनका आदर करते हैं?"—डाक्टर साहब ने कहा—"क्योंकि इन्होंने विज्ञान के साधन से मानवता की सेवा की है। हम केवल एक बात चाहते हैं कि हमें शान्ति से चिकित्सा विज्ञान का विकास करके पृथ्वी को रोगों से निर्मूल कर देने का अवसर मिले। आप लोगों को हम इसलिये धन्यवाद देते हैं कि आप लोगों ने वियाना में विश्वशान्ति कांग्रेस में सहयोग देकर शान्ति स्थापना के काम में सहायता दी है।"—डाक्टर साहब के चेहरे और आँखों से जान पड़ता था कि जैसे उनका मन उमड़ आया हो। चलते समय उन्होंने हाथ मिलाते समय हाथ को दोनों हाथों में इतने जोर से पकड़ लिया, मानो कह रहे हों "याद रखना।" उनके सम्बन्ध में जो पहली धारणा मन में बनी, उससे कुछ संकोच अनुभव हुआ।

औद्योगिक संघ का केन्द्रीय कार्यालय

संध्या समय भी बर्फ खूब पड़ रही थी। मास्को की सड़कों को बर्फ समेटने वाली मोटरें लगातार साफ करती रहती हैं। वरना बर्फ की अधिकता के कारण यातायात बहुत कठिन हो जाये। सड़क और पैदल पटरी के बीच घास, फूलों की क्यारियों और पेड़ों के लिये छोड़ी हुई जगह पर बरफ की दो-दो तीन-तीन फुट की चट्टियां सी जम जाती हैं। इस समय बरफ का जोर अधिक था और सड़क भी बिजली के प्रकाश में नई बिछी चादर की तरह सफेदी से चमक रही थी। हम लोग सोवियत-संघ के औद्योगिक संघ के केन्द्रीय कार्यालय में जा रहे थे। सोवियत के औद्योगिक संघ (ट्रेड यूनियन्स) ही इस समाज के आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक जीवन के मेरुदण्ड हैं। इन संघों के सूत्र से ही व्यक्ति का समाज से सम्बन्ध होता है। सोवियत जीवन को ठीक से समझ पाने का सूत्र भी ये संघ ही है। अखिल सोवियत के औद्योगिक संघों का केन्द्रीय कार्यालय मास्को नगर के उपान्त में है। दफ्तर की इमारत सात मंजिल की है। निश्चित समय पर, ठीक आठ बजे संघ के कार्यालय में पहुँच गये। कुछ लोग हमारी प्रतीक्षा में थे। स्वागत में हाथ मिलाकर ही उनका उत्साह पूरा नहीं हुआ। वे शान्ति कांग्रेस में भाग लेने वाले लोगों को आलिंगन में बांधे बिना न रह सके। हम लोग रूसी और वे लोग अंग्रेजी नहीं समझते थे इसलिये भावों का आदान-प्रदान शब्दों से नहीं चेहरे और आँखों में उमड़ आई भावनाओं से ही हुआ। समझने-समझाने में कोई कसर रह भी न गई।

औद्योगिक संघों के इस केन्द्रीय दफ्तर में परामर्श करने के उस कमरे की बैठने की व्यवस्था कुछ विचित्र ढंग की थी। छोटी-छोटी चौकोर मेजों के साथ चार-चार कुर्सियां इस ढंग और दिशा में जुड़ी हुईं कि बैठने वाले पचास-साठ आदमी सभापति की मेज की ओर भी देख सकें और आपस में भी सम्मुख रहें। कुर्सियों की यह व्यवस्था मौलिक सूझ जान पड़ी। भीड़-भाड़ न होने देने के लिये हमसे बातचीत करने वाले केवल दस-बारह आदमी ही थे। इनमें से सात विभिन्न विभागों के उपाध्यक्ष थे। इस बात की ओर विशेष ध्यान गया कि इनमें से एक भी व्यक्ति प्रौढ़ या ढलती आयु का नहीं था। सभी की पोशाकें, अधिक दामों की न जान पड़ने पर भी बहुत चुस्त थीं। विशेषकर नेकटाइयों की गांठें भी एक ही जैसी साफ सुथरी। कुछ सन्देह भी हुआ कि जैसे एक ही हाथ की बंधी हुई हों। बाद में यह अनुमान ठीक ही निकला। मास्को में बंधी-बधाई नेकटाइयां मिल जाती हैं। सोवियत में पोशाक के प्रति उपेक्षा मजदूरों के लिये स्वाभाविक बात नहीं समझी जाती। मास्को में आपको चुस्त जरूर दिखाई देना चाहिये, नेकटाई चाहे बंधी-बँधाई आप लगा लें।

बातचीत किस ढंग से आरम्भ हो, यही सोच रहे थे। मेजों पर चाकलेट, टौफी, सेब, सन्तरे और चाय आने लगी। यह चीजें परोसने वाली स्त्रियां अपनी पोशाक को दाग धब्बे से बचाये रखने के लिये एप्रिन पहने हुए थीं। सबसे पहले सोवियत संघ की समिति के अन्तर्राष्ट्रीय विभाग के उपाध्यक्ष का० कुद्रियावत्सेव ने सोवियत के औद्योगिक संगठनों के ढांचे का परिचय दिया। उन्होंने बताया कि भिन्न-भिन्न उद्योग-धन्धों में काम करने वाले

लोगों का अपना-अपना संघ है। ऐसे मुख्य छियासठ औद्योगिक संघ सोवियत में हैं! मुख्य उद्योग से सम्बन्ध रखने वाले, आनुषंगिक उद्योगों में काम करने वाले लोग भी उसी में संगठित हो जाते हैं। उदाहरणतः मोजे, बनियान बनाने वाले लोगों का संगठन कपड़ा बनाने वाले उद्योग के अन्तर्गत ही होगा। प्रत्येक मिल या कारखाने के संगठन की कमेटी का निर्वाचन स्थानीय मजदूर या कर्मचारी करते हैं। उद्योग की पूरे सोवियत की कमेटी का निर्वाचन उस उद्योग के सोवियत भर के लोगों की कांग्रेस में होता है। औद्योगिक संघ का काम कई भागों में बँटा रहता है। उदाहरणतः वेतन विभाग, सामाजिक बीमे का विभाग, श्रमिकों की सुरक्षा का विभाग, सांस्कृतिक विभाग और निवास स्थान के प्रबन्ध का विभाग। का० कुद्रियावत्सेव ने गर्व से कहा—"पिछले युद्ध में अपने देश को नाजी आक्रमण से बचाने और नाजी आक्रमण का प्रतिकार करने के काम में हमारे औद्योगिक संघ ने बहुत बड़ा काम किया है और अब हम शान्ति रक्षा के लिये अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगा रहे हैं।" यह ध्यान में रखते हुए कि सोवियत के लोग अपनी शासन व्यवस्था को मजदूर वर्ग का निर्बाध शासन मानते हैं। उस देश की व्यवस्था में इन औद्योगिक संघ का जो कि देश भर के सभी मजदूर संगठनों का प्रतिनिधि है, कितनी शक्ति और महत्त्व होगा? वास्तव में इन्हीं संघों को सोवियत का भाग्यविधाता समझना चाहिये और ये लोग अपने लक्ष्यों और महत्त्वाकांक्षाओं को पूरा करने के लिये एक ही बात सोचते और कहते हैं- शान्ति से निर्माण का अवसर!

कामरेड कुद्रियावत्सेव के बाद सामाजिक बीमा विभाग के उपाध्यक्ष का० कितेन्को ने बताया कि सोवियत में सार्वजनिक सामाजिक बीमे की व्यवस्था समाजवादी क्रान्ति के बाद ही हुई। यद्यपि इस व्यवस्था को बीमा कहा जाता है, परन्तु इसके लिये श्रमिकों को अपने वेतन में से किस्तों के रूप में कुछ देना नहीं पड़ता। सामाजिक बीमा विभाग का उत्तरदायित्व है कि बीमारी की अवस्था में श्रमिक को चिकित्सा की पूरी सुविधा और साधन मिल सकें और बीमारी के दिनों में उसका साधारण पूरा वेतन भी मिलता रहे। दूसरा, स्त्री श्रमिकों को चिकित्सा सम्बन्धी दूसरी सुविधाओं के साथ-साथ प्रसव के अवसर पर ढाई मास की वेतन सहित छुट्टी मिल सके। तीसरा, श्रमिकों को श्रम कठिन या सरल होने के अनुपात में निश्चित वर्षों के काम के बाद चालीस से पचास प्रतिशत तक पेन्शन मिल सके। यदि मजदूर इस आयु में भी काम जारी रखना चाहे तो उसे वेतन और पेंशन दोनों मिलती रहें। चौथा, मजदूरों को प्रतिवर्ष निश्चित समय के लिये सवेतन छुट्टी मिले और वे अपनी छुट्टी पहाड़ों पर या समुद्र के किनारे स्वास्थ्यवर्द्धक और मनोरंजक स्थानों में बिता सकें। पांचवां, मजदूरों की सन्तान के लिये शिक्षा संबंधी और सांस्कृतिक प्रबन्ध करना। का० कोतेन्को ने कहा कि इन सब योजनाओं का प्रबन्ध सरकारी अफसरों द्वारा नहीं बल्कि स्वयं मजदूरों द्वारा या मजदूरों की निर्वाचित कमेटियों और लोगों द्वारा होता है।

मजदूर औद्योगिक संघ का सदस्य बनने के लिये कानूनन विवश नहीं है। अधिकांश मजदूर सदस्य हैं परन्तु अपनी इच्छा से। उन्हें संघ का चन्दा अपनी आय का एक

प्रतिशत ही देना पड़ता है। सदस्य न होने पर मजदूरों को किसी असुविधा का सामना नहीं करना पड़ता। वे सदस्यों को प्राप्त होने वाली सभी सुविधाओं को पाते हैं अलबत्ता वे संघ के चुनावों और निर्णयों में मत नहीं दे सकते। सदस्य न होने पर उन्हें इस प्रकार की सुविधायें दूसरों के निर्णय या दया से ही प्राप्त होती हैं। इन निर्णयों में भाग ले सकने के लिये, अपने भाग्य का निर्णय स्वयं कर सकने के लिये मजदूर संघ के सदस्य स्वयं ही बन जाते हैं।

सामाजिक बीमे के सम्बन्ध में कामरेड कोतेन्को ने बताया कि बीमे की सुविधाओं के सभी खर्च सरकार देती है, मजदूरों को अपने वेतन में से कुछ नहीं देना पड़ता। यह बात कुछ युक्ति-संगत नहीं जंची। सोवियत सरकार की आय का स्रोत सोवियत जनता की श्रम-शक्ति ही है। यदि सरकार राष्ट्रीय आय में से सामाजिक बीमे का खर्च निकालती है तब भी उसे सोवियत नागरिक या सोवियत का श्रमिक ही पूरा करता है। अपने नकद वेतन में से बीमे की किस्त न देने पर भी क्या सोवियत का श्रमिक इस तथ्य से परिचित नहीं कि वह अपने राष्ट्र में मुख्य उत्पादक है। न केवल उसके सामाजिक बीमे का काम बल्कि पूरे राष्ट्र का अस्तित्व मजदूर किसानों के कंधे पर निर्भर करता है। वह अपने आपको किसी दूसरे की दया पर निर्भर नहीं समझता। सामाजिक बीमे की इस व्यवस्था को ध्यान में रखने से सोवियत मजदूर वर्ग अथवा सर्वसाधारण के जीवन में व्यक्तिगत चिन्ताहीन स्वतन्त्रता की भावना का अनुमान किया जा सकता है।

का० वोरोदुलोन्को ने श्रमिकों की सुरक्षा के विभाग की बात समझनी शुरू की। उन्होंने बताया कि सोवियत का कानून मजदूरों के लिये जीविका कमाने का अवसर देने और विश्राम और विनोद का भी उचित अवसर देने के सम्बन्ध में स्पष्ट है। उनके विभाग का काम मजदूरों के अधिकारों की रक्षा के साथ-साथ उनके स्वास्थ्य की चिन्ता करना भी है। मजदूरों के लिये साधारणतः प्रायः प्रतिदिन आठ घण्टे काम का नियम है। परन्तु काम की कठिनाई के अनुसार काम का समय कानूनन कम रखा जाता है। खानों इत्यादि में काम करने वालों को केवल छः ही घण्टे श्रम करना पड़ता है और रासायनिक कारखाने में चार घण्टे। काम के घण्टों में कमी के कारण वेतन में कमी नहीं हो सकती। सोलह वर्ष से कम आयु के लोगों को काम पर नहीं लगाया जा सकता। जो लोग अपरेन्टिस के तौर पर काम कर रहे हैं उन्हें भी मजदूरी साधारण निश्चित दर से ही मिलती है।

मजदूरों से नियमित समय से अधिक (ओवर टाइम) काम नहीं लिया जा सकता। नियमित समय से अधिय काम लेने की अनुमति उसी अवस्था में दी जा सकती है जब पूरे समाज को असुविधा की आंशका हो। ऐसी अवस्था में भी नियत समय से अधिक काम लेने या काम करवाने के लिये औद्योगिक संघ से अनुमति लेना आवश्यक होता है और ऐसे काम के लिये ड्योढ़े से लेकर दुगने दर पर वेतन दिया जाता है।

इस विभाग के और कई काम हैं:—कारखानों और मिलों में स्वास्थ्य की अवस्था का निरीक्षण करना और मजदूरों को वार्षिक छुट्टी मिलने पर पहाड़ों में या समुद्र के किनारे

उनके लिये निवास का प्रबन्ध करना। यदि मजदूर की आय ऐसे स्थान में निवास का खर्च उठाने योग्य न हो तो उसे सरकार या औद्योगिक संघ से खर्च दिलाना। मजदूरों के बच्चों की शिक्षा तथा कारखानों में काम करने वाली मजदूर स्त्रियों के बच्चों की देखभाल करना। उनके विभाग का सबसे महत्त्वपूर्ण काम है, श्रमिक स्त्रियों के लिये विशेष सुविधाओं का प्रबन्ध करना। योग्यता होने पर स्त्रियों को सभी काम पूरी तनख्वाह पर मिल सकने चाहिये परन्तु स्त्रियों को कठिन शारीरिक काम पर नहीं लगाया जा सकता। गर्भवती होने पर उनके वेतन में कमी किये बिना हल्के काम पर लगाना और प्रसव के समय अढ़ाई मास की सवेतन छुट्टी और दूसरे खर्च का प्रबन्ध करना। उन्होंने गर्व से बताया कि इस समय सोवियत में तीन लाख अस्सी हजार स्त्रियां गृहस्थ जीवन निबाहते हुए महत्त्व और उत्तरदायित्व के काम कर रही हैं। दो हजार स्त्रियां चीफ इंजीनियर, मैनेजिंग-डाइरेक्टर और मैनेजर आदि हैं। केवल रेलवे में ही चालीस हजार कालेज मे शिक्षा प्राप्त लड़कियाँ उत्तरदायित्व के स्थानों पर काम कर रही हैं। १९५१ में इस विभाग ने स्त्रियों को 'प्रसव काल' में छः अरब रूबल की सहायता दी थी। किसी भी व्यक्ति के अस्वस्थ हो जाने पर उसकी चिकित्सा और निर्वाह का प्रबन्ध करना इनका काम है। सोवियत की समाजवादी प्रणाली जैसे नागरिकों से समाज की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये श्रम करने की आशा करती है वैसे ही उनके स्वास्थ्य, विश्राम और विनोद के लिये प्रबन्ध करना अपना उत्तरदायित्व समझती है।

रात के ग्यारह तो बज गये थे परन्तु बात अधूरी ही हुई थी। हम लोग खास तौर पर सोवियत में श्रमिकों के वेतन का नियम समझना चाहते थे। वेतन विभाग के उपाध्यक्ष का० मोगोलेन्को इस विषय में बताने के लिये खड़े हुए। उन्होंने बताया कि क्रान्ति से पहले उनके देश में वेतन का यही कायदा था कि मजदूरों से अधिक से अधिक काम लेकर उन्हें कम से कम वेतन देने की चेष्टा की जाये। क्रान्ति के बाद से सोवियत में मजदूर जो कुछ पैदा करता है, वह उसी का है। वेतन और मजदूरी से सम्बन्धित कानूनों का अभिप्राय है कि सामाजिक पैदावार में से श्रमिक को उसके काम के लिये कितना नकदी उसकी रोजमर्रा की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये मिल जाये और कितना भाग उनकी साझी सम्पत्ति, पैदावार के साधनों को बढ़ाने में खर्च हो और उनकी सामूहिक आवश्यकताओं को पूरा करने में लगे।

सोवियत की वेतन प्रणाली का क्रियात्मक रूप यह है कि समान श्रम के लिये समान वेतन दिया जाये। इसी नियम के अनुसार अधिक श्रम से अधिक उत्पादन करने वालों को अधिक वेतन दिया जाता है। भिन्न-भिन्न कामों के श्रम के लिये माप निश्चित हैं और उनके लिये वेतन के अनुपात भी निश्चित हैं। वेतन या मजदूरी 'पीसरेट' अर्थात श्रमिक द्वारा की गई पैदावार से निश्चित होती है। ज्यों-ज्यों पैदावार निश्चित परिमाण से बढ़ती जाती है त्यों-त्यों उसके लिये मजदूरी का दर बढ़ता जाता है। उदाहरणतः यदि मजदूर अपनी पैदावार दस के स्थान पर ग्यारह कर देता है तो उसका वेतन केवल दस के स्थान पर ग्यारह ही नहीं हो जाता बल्कि बारह हो जाता है। पैदावार बढ़ाने का मतलब केवल

परिमाण बढ़ा देना ही नहीं वस्तु को बढ़िया बनाना भी है। यदि पैदावार सवाया होती है तो मजदूरी ड्योढ़ी हो जाती है, ड्योढ़ी होने पर मजदूरी दुगुनी। इसी प्रकार पैदावार बढ़ने के साथ मजदूरी की बढ़ौती का अनुपात और अधिक बढ़ जाता है।

जिन कामों में वेतन या मजदूरी पीस रेट से नहीं दी जा सकती वहाँ काम के घण्टों के हिसाब से दी जाती है। ऐसे कामों में जो व्यक्ति लगातार पूरा वर्ष काम करता है उसे तनख्वाह के अतिरिक्त दस प्रतिशत बोनस दिया जाता है। यदि वह तीन वर्ष उसी काम पर रहता है तो प्रति वर्ष पन्द्रह प्रतिशत बोनस दिया जाता है, यदि वह दस वर्ष तक उसी काम पर रहे तो बीस प्रतिशत और पन्द्रह वर्ष के बाद तीस प्रतिशत दिया जाता है। मजदूरी या वेतन कम से कम छः सौ रूबल प्रति मास से लेकर काम के अनुसार अढ़ाई हजार तक बढ़ सकता है। उसके लिये कोई सीमा नहीं। वेतन का दर सदा औद्योगिक संघ के परामर्श से निश्चित होता है। मजदूरों को नकद मिलने वाले वेतन से ही उनकी व्यक्तिगत आय का अनुमान करना उचित नहीं क्योंकि नकद मजदूरी के साथ कभी निवास स्थान मुफ्त दिया जाता है और कभी मजदूरी के एक से तीन प्रतिशत पर दिया जाता है। निवास का किराया पांच प्रतिशत से किसी भी अंश में अधिक नहीं होता। निवास के साथ बिजली, पानी और गैस का खर्च भी शामिल रहता है जो कि दूसरे देशों में मजदूरों की आय का लगभग एक चौथाई खा जाता है। मजदूरों को अपनी इस नकद आय से अपनी चिकित्सा या बेकारी के दिनों के लिये बीमे के रूप में कुछ नहीं देना पड़ता और न बचाने की आवश्यकता रहती है। उनकी अपनी शिक्षा और सन्तान की शिक्षा का उत्तरदायित्व भी औद्योगिक संघ और सरकार पर है।

सोवियत में उद्योग-धन्धों की पैदावार बढ़ाकर वस्तुओं के मूल्य बराबर गिराये जा रहे हैं। पिछले पांच वर्षों में हमारे यहाँ मूल्य लगभग आधे रह गये हैं परन्तु वेतनों में कमी कभी नहीं की गई। मूल्य के कम होने का अर्थ वेतन का बढ़ जाना है, इसलिये सोवियत में मजदूरों की अवस्था दिन-प्रति-दिन समृद्ध होती चली जा रही है।

मजदूरों के अपने स्वास्थ्य और बेकारी के लिये बिना कुछ दिये सब सुविधायें पा लेने की सम्पूर्ण बात सब लोगों के थक जाने के कारण रही जा रही थी पर बम्बई विधानसभा के विरोधी दल के नेता श्री यादव ने बहुत संगत प्रश्न किया कि सोवियत सरकार की आय का स्रोत क्या है ? सरकार अपने सैनिक, व्यवस्था और सार्वजनिक व्यय के लिये जो बड़ी-बड़ी रकमें खर्च करती है वह कहाँ से आती हैं ? उत्तर मिला कि उत्पादन के सभी उद्योगों की पैदावार में से लगभग छब्बीस प्रतिशत सार्वजनिक खर्च के लिये पहले ही अलग कर लिया जाता है। व्यक्ति अपनी व्यक्तिगत आय पर भी कर देता है। कर का औसत दर छः सौ रूबल माहवार की आय पर छः प्रतिशत है। और डेढ़ हजार रूबल की आय पर दस प्रतिशत।

इसके बाद निवास स्थानों के विभाग के उपाध्यक्ष ने अपने विभाग के सम्बन्ध में बतलाया। जितने भी प्रश्न पूछे जा सकते थे, पूछे गये। हमारे सन्तुष्ट हो जाने पर

मेजबानों को कुछ असन्तोष ही रहा कि हम लोगों ने काफी प्रश्न नहीं पूछे। का० कारनीव ने एक बार फिर अनुरोध किया—"यदि प्रस्तुत समस्याओं के बारे में नहीं तो सोवियत जीवन के सम्बन्ध में जो चाहे प्रश्न आप पूछ सकते हैं। आप मन में यह आशंका न रखें कि यहाँ किसी प्रकार का परदा या रहस्य है। हम लोग 'लोहे की दीवार' खड़ी करने में न अपना हित समझते हैं न दूसरों का और न हम ऐसी दीवार के बारे में कुछ जानते हैं।"

रात का एक बज चुका था। हम लोग अपने स्थान पर लौटने के लिये छटपटा रहे थे परन्तु हमारे मेजबानों को कुछ जल्दी नहीं थी। होटल में लौटकर देखा तो भोजनालय भरा हुआ था। संगीत चल रहा था। कुछ लोग नाच रहे थे। कुछ खाना खा रहे थे। भोजन के बाद हमें अपने कमरों में जाने की जल्दी थी परन्तु रूसी साथी-साथिनों के विश्राम का समय नहीं आया था। वे गाना सुनने में या नाच में साथ देने के लिये तैयार थे। यही नहीं समझ सके कि मास्को में लोग सोते कब और कितना हैं? वे लोग रात ती चार बजे तक नाचते-गाते रहते हैं और सुबह आठ-नौ बजे चुस्ती से फिर काम पर हाज़िर। उनसे पूछ ही लिया कि आखिर आप लोग सोते कब है? उत्तर मिला—"खूब सोते हैं। तीन-चार घन्टे की नींद बहुत काफी होती है। एक आध दिन न सोने में कोई हर्ज भी नहीं। सोना तो बच्चों, बूढ़ों और बीमारों के लिये आवश्यक है।"

मजदूरों के क्लब में नव-वर्ष

डा० बुटरोव ने याद दिलाया—"आज वर्ष की अन्तिम संध्या है। आप लोग नव-वर्ष का स्वागत किस प्रकार करना चाहते हैं?" कुछ साथियों की राय थी कि नव-वर्ष का आगमन रात को बारह बजे किसी गिरजाघर में मनाया जाये। अन्य साथियों की राय हुई कि नव-वर्ष का स्वागत मजदूरों के किसी क्लब में किया जाये अर्थात् देखा जाये कि मजदूर नव-वर्ष कैसे मनाते हैं। डा० बुटरोव ने अनुरोध किया—"यदि मजदूर साथियों को असुविधा न हो तो हम उनके नव-वर्ष के स्वागत के समय उनके क्लब में रहने की अनुमति चाहते हैं।"

"पूछ देखें"—डा० बुटरोव टेलीफोन की ओर चले गये। दो-तीन मिनट बाद लौटकर उन्होंने उत्तर दिया कि स्तालिन मोटर कारखाने के मजदूर हमें नव-वर्ष के समारोह में सम्मिलित होने का निमंत्रण दे रहे हैं।

संध्या लगभग नौ-साढ़े नौ बजे हम स्तालिन मोटर कारखाने के मजदूरों के क्लब के सामने पहुँचे। मजदूरों के इस क्लब की इमारत को क्लब कहना मजाक मालूम होता है। इमारत का आकार और विस्तार बहुत बड़े राजमहल का सा है। इसे कहा भी सांस्कृतिक प्रासाद (पैलेस आफ कल्चर) ही जाता है। चौड़े दरवाजों के शीशों से दिखाई दे रहा था कि बीच का हाल ठसाठस भरा हुआ है। बाहर अब भी भीतर जाने वालों की लम्बी लाइन लगी हुई थी। दरवाजे को रोके हुए लोग टिकट देख-देखकर लोगों को भीतर ले रहे थे। भीड़ को देखकर निराशा सी हुई कि हम लोग बहुत देर से आये, शायद भीतर स्थान न मिले।

रूसी साथियों ने हमें मुख्य द्वार छोड़कर दूसरी ओर चलने का संकेत किया। वहाँ एक प्रौढ़ा दरवाजा बन्द किये भीतर खड़ी हुई थी। रूसी साथियों के इस ओर से उसे समझाने की चेष्टा करने पर वह हाथ हिलाकर सुनने से इन्कार किये जा रही थी। रूसी साथी बार-बार "इन्दुस्की गत्सी-इन्दुस्की गत्सी" कुछ ऐसा ही कह रहे थे। उनका अभिप्राय भारतीय अतिथियों से था। प्रौढ़ा ने बड़ी अनिच्छा से स्थिति पर गौर करना स्वीकार किया। उन्हें सन्देह था कि नौजवान कामरेड उसे चकमा देकर दरवाजा खुलवा लेना चाहते हैं परन्तु हमारे काले चेहरे और महिला साथियों की साड़ी और सरदारजी की दाढ़ी के सामने उनके सन्देह को हार मान लेनी पड़ी और हमारे लिये दरवाजा खुल गया।

भीतर कोट-टोपी रखने के हाल में भीड़ का क्या कहना परन्तु भारतीय अतिथियों के लिये जगह हो ही गई। टोपियां और कोट जमाकर देने के बाद कई हालों से गुजरते चले जा रहे थे। किसी हाल में सबके सब लोग गोल बांधकर नाच रहे थे, किसी हाल में लोग तालियों से ताल दे-देकर गा रहे थे, कहीं बीच में पड़ी बड़ी सी मेज पर नकलें हो रही थीं। बहुत से लोगों के हाथों में शैम्पेन के गिलास थे। कपड़े-लत्ते उत्सव के अनुकूल बहुत अच्छे। कई हालों में से गुजर जीना चढ़कर ऊपर पहुँचे। फिर कई और हालों में से गुजरना हुआ। एक बार और सीढ़ी चढ़े। यहाँ भी हाल ठसाठस भरा हुआ था। यहाँ नाच नहीं हो रहा था। छोटी-छोटी मेजों के चारों ओर लोग शैम्पेन पीते हुए बहस सा बातचीत कर रहे थे या अपने आप में गुनगुना रहे थे। हमारी प्रतीक्षा इसी हाल में थी।

भारतीय अतिथियों के आते ही सब लोगों ने खड़े होकर स्वागत किया—"मीर! मीर!" (शान्ति! शान्ति!) युवक और युवतियों की भीड़ हम लोगों से हाथ मिलाने के लिये टूट पड़ी। प्रबन्धकों ने हमारी असुविधा का ख्याल कर हमें घेर लिया और रास्ता बनाकर हमें ऊपर गैलरी पर ले गये जहाँ से नीचे बैठे लोग हमें और हम उन्हें सुविधा से देख सकें। गैलरी भी भरी हुई थी। कुछ गिनी-चुनी जगहें हम लोगों के लिये ही सुरक्षित थीं।

नव-वर्ष का आरम्भ होने में अभी दो घण्टे का समय था। हम रूसी साथियों के साथ अलग-अलग मेजों पर बंटकर बातचीत करने लगे। सोवियत के साधारण ढंग के अनुसार इस विशेष अवसर पर खाने-पीने की चीजों की मात्रा मेजों पर और भी अधिक थी। पीने के लिये शैम्पेन। यह याद रखकर कि हमारे कुछ भारतीय साथी जल, दूध और फलों के रस के अतिरिक्त और कोई चीज उपयोग नहीं करते फलों के रस की बोतलें भी मौजूद थीं। नीचे बैठे लोगों ने दो तीन सामूहिक गीत गाने के बाद हम लोगों से भी गाने का अनुरोध किया। नाक रखने के लिये गीता मलिक और हाजरा ने दूसरे साथियों के साथ मिलकर 'सोवियत देश' गीत आरम्भ किया। 'सोवियत देश' गीत की धुन पश्चिमी ढंग पर है। हम लोग हिन्दी में 'सोवियत देश' गाते जा रहे थे और सोवियत के साथी अपनी भाषा में।

गीत के बाद मैंने अपने समीप बैठे युवक से जानना चाहा कि क्लब के भीतर आने के लिये टिकट का क्या मतलब? उसने समझाया कि क्लब में एक समय साधारणतः पांच हजार व्यक्तियों के लिये ही जगह है। ऐसे अवसर पर अतिथियों को भी बुलाया जाता है। अतिथि बुलाने वाले को पहले सूचना देकर अतिथि के लिये भी टिकट लेना पड़ता है। एक भारतीय साथी ने प्रश्न किया कि यहाँ सब नवयुवक और नवयुवतियां ही दिखाई पड़ रहे हैं। क्या प्रौढ़ या वृद्ध लोग नव-वर्ष के उत्सव में सम्मलित नहीं होते?

'होते क्यों नहीं'—उत्तर मिला—'नव-वर्ष के आगमन पर लोग प्रायः अपने घर पर रहना पसन्द करते हैं। अपने यहाँ अतिथियों को निमन्त्रण दे सकें तो और भी अच्छा। अतिथियों के आदर के लिये परिवार के वृद्ध जनों का घर पर रहना आवश्यक होता है।' हमारे साथी ने प्रश्न किया,—'तो क्या सभी घरों पर ऐसा उत्साह और प्रसन्नता होती है?' 'डा!......डा! (हां!......हां!) अवश्य!......अवश्य! परन्तु एक घर में इतने आदमी तो नहीं हो सकते।'

'सोवियत साथियों ने जानना चाहा कि भारत में नव-वर्ष कैसे मनाया जाता है? उन्हें बताया हमारे यहाँ वर्ष का आरम्भ दूसरी गणना से १३ अप्रैल को होता है और हमारे यहाँ तथा अन्य देशों में भी नव-वर्ष का एक धार्मिक महत्त्व रहता है। सोवियत में तो नव-वर्ष के साथ धार्मिक धारणा का कोई सम्बन्ध न होगा।

रूसी साथी ने उत्तर दिया कि कुछ लोगों के लिये हो सकता है परन्तु सर्वसाधारण के लिये उसमें जीवन का ही महत्त्व रहता है। समाप्त होते वर्ष की बीते वर्षों से तुलना कर अपनी प्रगति के लिये सन्तोष अनुभव करते हैं और उत्साह से उन्नति की नई सीढ़ी पर पांव रखते हैं। इसके बाद संक्षेप में रवि ठाकुर की चर्चा हुई। हमारे परिवारों एवं बाल-बच्चों के बारे में प्रश्न पूछे गये।

घड़ियाल से रात के बारह की पहली 'टन्न' सुनाई दी कि सारी इमारत हुर्रे!......हुर्रे!......की हुँकारों से गूंज उठी। शैम्पेन से भरे गिलास ऊपर उठ गये। पहला प्याला नव-वर्ष के स्वागत में पिया गया। इसके बाद हम लोगों से नव-वर्ष के लिये कामना प्रकट करने का अनुरोध किया गया। हम लोगों ने सोवियत जनता की उन्नति और विश्व शान्ति की कामना प्रकट की। सैकड़ों प्याले एक साथ उठे। सोवियत साथियों ने भारतीय जनता की समृद्धि और विश्व शान्ति की कामना प्रकट की और फिर प्याले ऊपर उठे। हम लोगों ने का० स्तालिन के दीर्घ जीवन और सोवियत के उदीयमान बच्चों के लिये शुभकामना प्रकट की। सोवियत के साथियों ने भारतीय स्त्रियों के लिये स्वास्थ्य की कामना की। भारत और सोवियत जनता और संसार भर की शान्ति चाहने वाली जनता की अटूट मैत्री की शुभ कामना प्रकट की गई। जितनी भी शुभ कामनायें परस्पर प्रकट की जा सकती थीं; की गईं। सोवियत साथियों ने हमसे भारत का राष्ट्रीय गान गाने का अनुरोध किया। भारत के राष्ट्रीय गीत के सम्मान में सभी लोग उठ खड़े हुए।

हम लोग थकावट अनुभव कर रहे थे। पूछा कि यह समारोह कब तक चलेगा? इस प्रश्न से विस्मित होकर उन्होंने उत्तर दिया 'क्यों? सुबह तक!' हम लोगों ने चलने की आज्ञा चाही। कुछ और ठहरने के अनुरोध से कुछ मिनट और ठहर कर चल ही दिये। लौटते समय सोवियत साथी हममें से एक-एक को बांह में बांहें डाले लिये चले। कोट और टोपियां लेते समय हमारे दस्तखतों के लिये अनुरोध हुआ और फिर 'शान्ति' शब्द हिन्दी अक्षरों और रूसी अक्षरों में लिखकर उसका शुद्ध उच्चारण बताने का अनुरोध हुआ। चार-पांच बार यत्न करने पर वे ठीक से शान्ति शब्द का उच्चारण कर पाये। हाल 'शान्ति शान्ति' से गूंज उठा। दरवाजे तक भीड़ साथ आई और बिदाई के लिये हाथ मिलाते हुए हमें आश्वासन दिया गया कि विश्व शान्ति के प्रयत्न के लिये सोवियत का प्रत्येक नागरिक हमें पूर्ण सहयोग देगा।

मास्को विश्वविद्यालय

मास्को विश्वविद्यालय की नयी इमारत नगर से कुछ बाहर, दक्षिण पश्चिम की ओर लेनिन पहाड़ी पर बनाई गई है। स्थान खुला और यहाँ का धरातल शेष मास्को नगर से दो सौ साठ फुट ऊंचा होने के कारण यहाँ बर्फ का जोर अधिक रहता है। हिम कणों से भरे वातावरण में विश्वविद्यालय स्वप्न में दिखाई देने वाले गगनचुम्बी प्रासाद की भांति जान पड़ रहा है। विशाल ड्योढ़ी के सामने के लान में आमने सामने दो चबूतरों पर एक युवक और युवती विद्यार्थी की पुस्तक पढ़ते हुए काले पत्थर की मूर्तियां हैं। इमारत कई रंग के पत्थरों से बनाई गई है। बत्तीस मंजिलें हैं और ऊंचाई लगभग आठ सौ फुट, कुतुबमीनार से तिगुनी हैं। उस विशदता और विस्तार में महराबों, गुम्बदों, स्तूपों का समन्वय विशदता को दिव्य बना देते हैं।

ड्योढ़ी में ही इस इमारत के चीफ इंजीनियर से मुलाकात हो गई। यदि साथी अलेक ने परिचय न करा दिया होता और यह भूल जाते कि हम सोवियत देश में हैं, तो हम लोग इस दिव्य प्रासाद के निर्माता चीफ इंजीनियर को किसी बड़े ठेकेदार की मातहती में काम करने वाला छोटा ठेकेदार या उसका कारिन्दा ही समझ लेते। उनके ओवरकोट और ऊंचे बूटों पर जगह-जगह इमारती मसाले की घसीटें लगी हुई थीं। गर्व से चमकती आंखों से इंजीनियर साहब बोले—'इस विश्वविद्यालय के निर्माण में मूल प्रेरणा का० स्तालिन की रही है। वे समय-समय पर इसके विषय में पूछताछ भी करते रहते हैं। उन्हें इससे व्यक्तिगत अनुराग है।' सोवियत के लोगों के मुख से स्तालिन का नाम प्रतिष्ठा और सम्मान की अपेक्षा आत्मीयता के अधिकार से ही निकलता है। यह नाम लेते समय उनके चेहरों पर गम्भीरता की अपेक्षा ममता की झलक आ जाती है।

इमारत की नींव सन् १९४९ में डाली गई थी और सन् १९५३ की जनवरी में इमारती काम तो सब पूरा हो चुका था। अब साज-सज्जा, फर्नीचर, रंग-रोगन, बिजली वगैरह जमाई जा रही थी। आते साल की गरमियों की छुट्टियों के बाद सितम्बर माह से यहाँ अध्यापन कार्य शुरू हो जायेगा। आरंभ में संगमरमर के दो बहुत बड़े-बड़े हाल

विद्यार्थियों के कोट-टोपी और बर्फानी जूते रखने के लिये हैं। यहीं से एक बहुत चौड़ा, प्रायः तीस फुट विस्तार का संगमरमर का जीना एक और भी बड़े हाल को चढ़ जाता है। यह हाल विद्यार्थियों के बैठने की जगह है। यहाँ चारों ओर संसार के अनेक प्रसिद्ध वैज्ञानिकों और कलाकारों की मूर्तियां बनी हुई हैं। इंजीनियर साहब इन मूर्तियों से हमारा परिचय कराते हुए बोले—'हम संसार भर के कलाकारों और वैज्ञानिकों की कला और ज्ञान का आदर करते हैं।......कला और विज्ञान में राष्ट्रीयता का क्या भेद है?'

विद्यार्थियों की बैठक के सामने ही विश्वविद्यालय का मुख्य सभा भवन है। यहाँ डेढ़ हजार आदमी एक साथ बैठ सकते हैं। दीवारों को बनाया ही इस प्रकार गया है कि गूंज पैदा न हो और मंच पर कही गई बात पूरे भवन में सुविधा से सुनी जा सके। मंच के पीछे सोवियत की राष्ट्रीय पताकाओं की सजावट है। शेष हाल की सजावट सुनहरी और श्वेत रंग में बहुत राजसी ठाठ से की गई है। बहुत ही बड़े-बड़े झाड़ और फानूस छत से लटकाये गये हैं। सजावटों और शोभा में समृद्धि और वैभव का ढंग है। नये ढंग की सीधी-साधी कही जाने वाली सजावट जिसमें प्रकाश भी छिपाकर रखे जाते हों पसन्द करने वालों को सफेदी, सुनहरी और प्रकाश की अधिकता से चकाचौंध अनुभव हो सकती है। मास्को से लौटकर जब भी सोवियत का प्रसंग आता है इस विश्वविद्यालय और इसके सभा भवन की बात भी होती है। यह बताने पर कि इस भवन में बिजली की एक लाख बत्तियां लगाई गई हैं; लोगों ने सन्देह से अनेक प्रकार के तर्क किये। मैं भी एक लाख बत्तियों की बात सदा झिझकते-झिझकते कहता था क्योंकि विश्वविद्यालय देखते समय डायरी में जो बातें नोट की थी उन्हें दुबारा देखने का अवसर नहीं मिला था। अब अपनी डायरी को दुबारा देखकर और मास्को में तैयार की गई प्रतिनिधि मंडल की सांझी डायरी, जिस पर सभी लोगों के हस्ताक्षर किये थे, साधिकार कह बात कह सकता हूँ कि इस भवन में बिजली की बत्तियों की संख्या एक लाख नहीं बल्कि एक लाख बीस हजार है। मुख्य सभा भवन के अतिरिक्त विभिन्न विषयों की शिक्षा देने के विभागों के लिये अलग-अलग भवम हैं जिनमें छः सौ विद्यार्थियों के लिये एक साथ बैठने का स्थान है। सभी भवनों में प्रकाश और सुनाई दे सकने का प्रबन्ध अत्यन्त आधुनिक ढंग से किया गया है। फिल्में दिखा सकने का भी प्रबन्ध है। संगीत भवन कुछ अधिक बड़ा है। इसमें आठ सौ या हजार व्यक्ति बैठ सकते हैं। इसी अनुपात में बड़ी-बड़ी व्यायामशालायें और तैरने के लिये जगहें हैं।

विश्वविद्यालय में वनस्पति की शिक्षा के लिये एक कृत्रिम पहाड़ी भी बनाई गई है। जिस पर संसार के सभी देशों से वनस्पति और पेड़ों के नमूने लाकर लगाने की योजना है। इस पहाड़ी के लिये और इमारत के लिये बहुत सा पत्थर मैनर्हिम लाइन से लाया गया है। मैनर्हिम लाइन रूस और जर्मनी की सीमा पर नाजियों द्वारा बनाई गई किलाबन्दी थी जिसे अजेय समझा जाता था। सोवियत में पहाड़ों और पत्थर की कमी नहीं। इतनी दूर से पत्थर ढोकर लाने में क्या तर्क रहा होगा? जो भी हो। इन्जीनियर साहब ने मुस्कराकर कहा—'जो पत्थर एक दिन नर-संहार और दमन के प्रयोजन से

इकट्ठे किये थे, उन्हें हम विज्ञान के विकास द्वारा विश्व मानवता में मैत्री भाव स्थापित कर सकने के प्रयोजन में लगा रहे हैं।'

विश्वविद्यालय की ड्योढ़ी में पहुँचते ही लाल सेना के सिपाही दरवाजे पर दिखाई दिये थे। उसी समय डा० कुमारप्पा ने चुपके से कान में कहा—'यहाँ भी लाल सिपाही? लाल सिपाही प्रायः दिखाई दे ही जाते हैं।' उनका कहना ठीक ही था। हालों, कमरों और गैलरियों के विस्तार में जगह-जगह मजदूर और कारीगर काफी संख्या में दिखाई दे रहे थे और उनके साथ ही लाल सेना के सिपाही भी दिखाई दे जाते थे। कौतूहलवश अलेक से पूछ लिया कि यहाँ लाल सिपाही इतनी संख्या में क्यों हैं। अलेक ने उत्तर दिया—'मेरे विचार से सिपाही चौकसी के लिये हैं। नई इमारत का काम हो रहा है। अनावश्यक भीड़-भाड़ यहाँ न हो या अवांछित लोग न आ सकें।'

इस उत्तर से सन्तोष न हुआ बल्कि सन्देह ही हुआ कि तीन-साढ़े तीन साल में इतना विराट निर्माण कर डालने के लिये शायद सिपाहियों के डन्डे के जोर से ही मजदूरों से उनकी शक्ति से अधिक काम कराया जाता होगा परन्तु मजदूरों के खिले हुए चेहरे और उनका निश्शंक व्यवहार इस सन्देह की पुष्टि नहीं करता था। हम लोगों के यहाँ आने पर मजदूर नवयुवक और नवयुवतियां अपना काम छोड़ हमें घेरकर दुभाषिये की सहायता से बात करते हुए साथ-साथ चल रहे थे। इस बात की ओर भी ध्यान गया कि इनमें से कम आयु के लोगों का रूप-रंग और व्यवहार मजदूरों जैसा (जैसे मजदूर देखने के हम आदी हैं) नहीं था इसलिये इन लाल सैनिकों की उपस्थिति के विषय में इंजीनियर साहब से भी पूछ ही लिया। 'लाल सेना के यह कारीगर दोस्त' इंजीनियर साहब ने उत्तर दिया—'निर्माण के इस विराट कार्य को समय से पहले ही पूरा करने में हमारी सहायता कर रहे हैं। ये सिपाही सेना में भिन्न कार्य की शिक्षा पाये हुये हैं। ये यहाँ सहायता करते हैं और मजदूरों को क्रियात्मक शिक्षा भी देते हैं।' इंजीनियर साहब से यह प्रश्न पूछना व्यर्थ ही हुआ। इसके बाद जिन कमरों में हम गये वहाँ लाल सैनिकों को अपना कोट-टोपी एक ओर फेंककर बिजली की आंच से लोहे की सलाखों में जोड़ लगाते या दूसरे औजार चलाते देखा। इस घटना से मिलों, कारखानों या दूसरी जगहों में लाल सैनिकों की उपस्थिति का रहस्य एक हद तक समझ में आ जाता है पर बहुत जगह उनकी उपस्थिति कड़ी चौकसी के लिये ही जान पड़ी।

विश्वविद्यालय की इमारत के साथ ही एक चौदह मंजिल की इमारत विश्वविद्यालय के अध्यापकों के लिये बनाई गई है। इसमें छः सौ परिवारों के लिये रहने का सुविधाजनक प्रबन्ध है। विश्वविद्यालय के छात्रावास में छः हजार कमरे हैं। जब छात्रावास की योजना बनाई जा रही थी, का० स्तालिन ने इस बात के लिये आग्रह किया था कि प्रत्येक विद्यार्थी के लिये पढ़ने-रहने का पृथक कमरा होना चाहिये।

इस बत्तीस मंजिल प्रासाद में विद्यार्थियों और अध्यापकों के लिये ऊपर के कमरों तक चढ़ना उतरना भी एक समस्या होगी। इसके लिये एक सौ पचास लिफ्ट लगे हैं।

इनमें से कुछ लिफ्ट एक्सप्रेस हैं जो बहुत तेजी से एक सेकेन्ड में दस फुट की चाल से पन्द्रहवीं मंजिल के ऊपर ही जाते हैं। ऐसे ही एक लिफ्ट में हम लोग अठारहवीं मंजिल पर पहुं े। यहाँ प्राकृतिक विज्ञान-विभाग के डिप्टी रेक्टर से विश्वविद्यालय की शिक्षा-व्यवस्था के सम्बन्ध में बात हुई थी।

डिप्टी रेक्टर उज्ज्वल नेत्र, स्वस्थ्य चेहरे और अच्छे खासे डील-डौल के व्यक्ति हैं। वैज्ञानिकों और बौद्धिक कार्य करने वाले लोगों में ऐसा सुन्दर स्वस्थ्य सोवियत की ही विशेषता जान पड़ती है। डिप्टी रेक्टर साहब ने बतलाया कि विश्वविद्यालय में बारह पीठें (फैकल्टीज) हैं। इनमें से छः पीठें विज्ञान, रसायन, भौतिक विज्ञान, भूगोल, जीवविज्ञान, भूगर्भ शास्त्र, गणित की और छः कला (ह्यूमैनिटीज) इतिहास, दर्शन, भाषा विज्ञान, कानून, राजनीति, अर्थशास्त्र और पत्रकला की हैं। विश्वविद्यालय के नये भवन में केवल विज्ञान की पीठों के लिये स्थान होगा। कला की शेष छः पीठें विश्वविद्यालय के पुराने भवन में ही रहेंगी।

विश्वविद्यालय में इस सम्य साठ राष्ट्रों (जातियों) के विद्यार्थी शिक्षा पा रहे हैं; जिसमें अड़तालीस स्वयं सोवियत संघ के राष्ट्र हैं और शेष अन्य राष्ट्रों के। एक बात जो जरा कम समझ में आई; वह है लड़कियों की संख्या का इक्यावन प्रतिशत होना और लड़कों की उनचास प्रतिशत। साधारणतः साहित्य और जीव विज्ञान की पीठों में लड़कियों की संख्या और भूविद्या, यंत्र विद्या और भौतिक विज्ञान में लड़कों की संख्या अधिक है। इस समय विश्वविद्यालय में विद्यार्थियों की संख्या सोलह हजार है। का० रेक्टर ने बताया—'यों तो पेरिस के सारबौन विश्वविद्यालय में विद्यार्थियों की संख्या बत्तीस हजार है परन्तु उनमें नियमित रूप से तीन ही हजार विद्यार्थी पढ़ने के लिये आते हैं। हमारे यहाँ ऐसी ढील नहीं है। प्रत्येक विद्यार्थी को नियमित रूप से पढ़ने आना होता है। हमारे विद्यार्थी आठ-आठ दस-दस वर्ष तक विद्यालय में घिसटते नहीं रह सकते। उन्हें पांच वर्ष में ही अपना अध्ययन पूरा करना चाहि.।'

अधिकांश विद्यार्थियों को, लगभग छियानबे प्रतिशत को शिक्षा का पूरा खर्च सरकार से मिलता है। राष्ट्र औसतन प्रत्येक विद्यार्थी पर एक वर्ष में पन्द्रह से बीस हजार रूबल खर्च करता है। छात्रवृत्ति विद्यार्थियों को उनके अध्ययन के आवश्यक खर्च और कक्षाओं के अनुपात से दी जाती है। छात्रवृत्ति साधारणतः मासिक अढ़ाई सौ रूबल दी जाती है परन्तु जो विद्यार्थी विशेष योग्यता और अध्यवसाय से अध्ययन करते हैं उन्हें पुरस्कार रूप में छात्रवृत्ति सवाई कर दी जाती है। यहाँ सभी विद्यार्थी श्रमिक-किसान और सोवियत के बौद्धिक वर्ग से आते हैं। सोवियत में पूँजीपति र्ग है ही नहीं इसलिये उस वर्ग के विद्यार्थी भी नहीं हैं।

हमारी ओर से एक साथी ने प्रश्न किया—"पूर्वी प्रजातन्त्रों के अतिरिक्त हमारे या अन्य देशों के विद्यार्थियों के लिये आपके विश्वविद्यालय में क्या सम्भावना है?" उत्तर मिला—"सिद्धान्त रूप से हम यही चाहते हैं कि हमारे यहाँ सभी देशों के विद्यार्थी आयें

और हमारे विद्यार्थी भी दूसरे सभी देशों में शिक्षा के लिये जायें ताकि सांस्कृतिक विनिमय स्वतन्त्रता पूर्वक हो सके परन्तु यह बात पारस्परिक सहयोग और समव्यवहार से ही सम्भव है। कुछ समय पूर्व हमारे विज्ञान विभाग के अध्यक्ष डा० निस्मियानोव सारबौन विश्वविद्यालय के निमंत्रण पर व्याख्यान देने पेरिस गये थे। उस समय भी फ्रेंच विद्यार्थियों ने उनसे यही प्रश्न किया था। निस्मियानोव ने उत्तर दिया था—यदि फ्रेंच सरकार अपने विद्यार्थी मास्को भेजना चाहे तो हम उनका सहर्ष स्वागत करेंगे, बशर्ते फ्रेंच सरकार सोवियत के विद्यार्थियों को भी अपने यहाँ निमन्त्रण दे परन्तु उनके यहाँ से इस विषय में कोई बातचीत आरम्भ नहीं की गई। बहुत से देशों के विश्वविद्यालयों से हमारा सम्बन्ध है और हम उनसे समता के आधार पर विद्यार्थियों का विनिमय भी करते हैं।"

"भारतीय इतिहास और संस्कृति, दर्शन और भारतीय भाषाओं के अध्ययन का हमारे विश्वविद्यालय में समुचित प्रबन्ध है। सुदूर-पूर्व और मध्य-पूर्व के देशों के विषय में अध्ययन का भी हमारे यहाँ प्रबन्ध है। हमारे भाषा विज्ञान के विभाग में संस्कृत और हिन्दी के अध्ययन की ओर विशेष ध्यान दिया जा रहा है। समय-समय पर जब कभी भी भारतीय विद्यार्थी खेलों या अन्य प्रतियोगिताओं में भाग लेने के लिये यहाँ आये हैं, सदा ही बहुत अच्छा प्रभाव छोड़ गये हैं। हमने भारतीय विद्यार्थियों को विनयी, अध्ययनशील और जिज्ञासु पाया है। हमें विश्वास है कि भारतीय और सोवियत विद्यार्थियों का परस्पर सम्पर्क दोनों के विकास के लिये सहायक होगा। हमें खेद है कि अंग्रेज और अमरीकन विद्यार्थी, हमें ऐसे नहीं जंचे।"

"अंग्रेज विद्यार्थियों का भी एक दल यहाँ आया था। हमारे विद्यार्थियों ने उनसे प्राचीन और आधुनिक अंग्रेजी साहित्य के विषय में कुछ बातें जाननी चाहीं परन्तु वे उत्तर न दे सके। इस बातचीत से पता लगा कि अंग्रेजी साहित्य के विषय में भी हमारे विद्यार्थी अंग्रेज विद्यार्थियों से अधिक जानकारी रखते हैं। अंग्रेज विद्यार्थियों ने बात टाल दी कि साहित्य हमारा विषय नहीं है। हम विज्ञान के विद्यार्थी हैं। अमरीकन विद्यार्थियों में भी हमने साहित्य और दर्शन की ओर विशेष रुचि नहीं पाई। इसके लिये हम इन विद्यार्थियों को दोष नहीं दे सकते। उनके सामने जिस प्रकार के उदाहरण और आदर्श हैं, उसी के अनुसार वे व्यवहार करते हैं। आपको याद होगा (मुस्कराकर उन्होंने कहा) कि अमरीका के नये प्रेसीडेंट मि० आइजनहावर ने अपने चुनाव के भाषणों में अपना व्यक्तिगत परिचय देते हुए बताया था कि उन्होंने पिछले बीस-बाइस वर्षों से कोई पुस्तक नहीं पढ़ी। सोवियत में अथवा मार्क्सवादी विचारधारा में विश्वास रखने वाला कोई व्यक्ति ऐसी बात गर्व से नहीं कह सकता। हमारे यहाँ सबसे अधिक कार्यव्यस्त यदि का० स्तालिन को माना जाये तो वे भी निरन्तर अध्ययन करते हैं, भाषा विज्ञान पर लेख लिखते हैं और साहित्य पर होने वाली बहस में भाग लेते हैं।"

"हमारे यहाँ सभी विद्यार्थियों के लिये न केवल रूसी बल्कि विश्व-साहित्य, दर्शन और संस्कृति का परिचय पाना भी आवश्यक है। इसके बिना हम शिक्षा को अधूरा

समझते हैं। हम अपने विद्यार्थियों को केवल वैज्ञानिक यंत्र नहीं बना देना चाहते। इसी शिक्षा का प्रभाव था कि हमारे नवयुवकों ने अपने आदर्शों के लिये नाजीवाद से मोर्चा लेकर मानवता की रक्षा के युद्ध में सहयोग दिया और आज भी वे अपनी पूरी शक्ति से कम्युनिज्म के आदर्शों को सफल बनाने का यत्न कर रहे है। अब हमारे इस विश्वविद्यालय में दस हजार विद्यार्थी सुविधा से विज्ञान की शिक्षा पा सकेंगे। दो हजार विद्यार्थियों को अपनी जीविका का काम जारी रखते हुए पत्र व्यवहार द्वारा शिक्षा पा सकने का भी अवसर हम दे सकेंगे। विश्वविद्यालय की पुरानी इमारत में, कलापीठों में दस हजार विद्यार्थी शिक्षा पा सकेंगे। इसके अतिरिक्त जो लोग अपना अध्ययन समाप्त करके स्कूल-कालिजों में अथवा अन्य वैज्ञानिक संस्थाओं में काम कर रहे हैं और आगे खोज या अध्ययन करना चाहते हैं, ऐसे दस हजार विद्यार्थियों के लिये भी हम प्रबन्ध कर रहे हैं। इस प्रकार हमारे विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों की संख्या बत्तीस हजार हो जाती है। इस समय हमारे विश्वविद्यालय के अध्यक्ष इसी विद्यालय में शिक्षा पाये हुए प्रसिद्ध गणितज्ञ प्रो० पैत्रोवस्की हैं। शनैः शनैः अपने अध्यवसाय से वे इस पद पर पहुँचे हैं। वे महान वैज्ञानिक तो हैं ही परन्तु शान्ति-रक्षक योद्धा भी है और सोवियत शान्ति कमेटी के सदस्य हैं।"

हमारी ओर से डाक्टर कुमारप्पा का० डिप्टी रेक्टर को उनके सौजन्य तथा आतिथ्य के लिये धन्यवाद दे रहे थे और रूसी साथी अलैक डाक्टर कुमारप्पा की बात का रूसी में अनुवाद करते जा रहे थे। एक वाक्य पर रेक्टर ने अलेक को टोक दिया। हमारा अनुमान था कि रेक्टर डाक्टर कुमारप्पा की बात से सहमत नहीं हैं। असल में रेक्टर अलेक से कह रहे थे कि डा० कुमारप्पा का अभिप्राय जो तुम कह रहे हो वह नहीं बल्कि दूसरा है। अपनी बात पूरी कर उनके वाक्य रूसी भाषा में अनुवाद किये जाने से पहले ही डा० कुमारप्पा ने रेक्टर को सम्बोधन किया—"आप अंग्रेजी समझते जान पड़ते हैं। आशा है आपने मेरी बात कुछ तो समझ ही ली होगी!"

का० रेक्टर ने मुस्कराकर इस बार अंग्रेजी में उत्तर दिया—"मैने आपकी पूरी बात अच्छी तरह समझ ली है।" विश्वविद्यालय के बाहर तक वे हमारे साथ ही आये। हमारी सातों मोटरें बाहर खड़ी थीं। बरफ और हवा के कारण साथियों ने जो मोटर सामने पाई उसी में घुस गये। का० रेक्टर एक मोटर के पास आ मुस्कराकर बहुत साफ अंग्रेजी में बोले—"आपको कुछ असुविधा तो होगी पर यह गाड़ी मेरी है। आपकी गाड़ियाँ उस ओर हैं।" हमारे साथियों को अपनी भूल पर झेंप अनुभव करते देख रेक्टर मुस्कराकर फिर अंग्रेजी में ही बोले—"गलती आपकी नहीं है। गलती तो गाड़ियाँ बनाने वालों की है कि सभी गाड़ियाँ एक शक्ल और एक ही रंग की हैं तिस पर यह कोहरा और धुन्ध कि कुछ दिखाई ही नहीं देता।"

रास्ते में लौटते हुए हम लोग आपस में चर्चा करते रहे कि हमें जितने भी सोवियत डाक्टरों, प्रोफेसरों, वैज्ञानिकों और लेखकों से बात करने का अवसर मिला, किसी ने भी

अंग्रेजी में बात करने का यत्न नहीं किया। यह मान लेना कि उनमें से कोई अंग्रेजी नहीं जानता था कठिन है क्योंकि प्रत्येक सोवियत विद्यार्थी अपनी भाषा के अतिरिक्त एक न एक विदेशी भाषा का अध्ययन अवश्य करता है। अपनी भाषा के प्रति इन लोगों में कितना आदर है। टाल्सटाय और तुर्गनेव के उपन्यासों की बातें याद हों तो एक समय सुसभ्य और सुसंस्कृत रूसी समाज फ्रेंच बोल सकना ही गर्व की बात समझता था जैसे हम लोग अंग्रेजी और फारसी के शब्दों का व्यवहार संस्कृति का परिचायक मानते हैं। मजा यह है कि जब हम लोग अपनी भाषा न बोलने के अपने व्यवहार पर खेद प्रकट कर रहे थे, तब भी बात अंग्रेजी में ही हो रही थी। '

स्तालिन मोटर कारखाना

मास्को में मोटर बनाने के कारखाने 'स्तालिन ओटोमोबाइल प्लान्ट' के मजदूरों के निवास स्थान, शिशुशाला (नर्सरी) हस्पताल और स्कूल मिलाकर एक अच्छे खासे नगर के बराबर विस्तृत हैं। कारखाने के भिन्न-भिन्न विभाग एक दूसरे से इतनी दूरी पर हैं कि एक से दूसरे में आने-जाने के लिये मोटर का प्रयोग मजाक मालूम नहीं होता। खास कर जब बर्फ पड़ रही हो। हम लोग वहाँ गये तो अच्छी खासी बरफ पड़ रही थी।

कारखाने के का० डाइरेक्टर ने उत्साह से स्वागत किया और सोवियत के साधारण नियम के अनुसार कारखाने का पूरा इतिहास, काम का ढंग, प्रबन्ध की व्यवस्था बता देने के बाद कारखाना दिखाने के लिये तैयार हो गये। दफ्तर की सजधज और सलीका कामकाजी ढंग का था। बिलकुल आधुनिक ढंग की आलमारियाँ, भारी-भारी कुर्सियाँ, हरी बनात से मढ़ी मेजें, जिन पर बिजली का दिन का सा प्रकाश।

डाइरेक्टर साहब ने बताया—"हमें अपने कारखाने के काम से सन्तोष और गर्व है। कारखाने का यह आकार नया है परन्तु आयु इसकी काफी है। यह कारखाना क्रान्ति से भी पहले जार के समय से चला आ रहा है। उस समय यहाँ केवल मोटरों की मरम्मत होती थी मोटरें बनाई नहीं जाती थीं। यहाँ क्या उस समय हमारे देश में मोटरें कहीं भी नहीं बन सकती थीं। तब हमारे यहाँ मोटरें अमरीका और योरुप से ही आती थीं। क्रान्ति के बाद इस कारखाने में मोटरें बनाने का प्रयत्न शुरू किया गया। उस समय सोवियत के लोगों के लिये मोटरों का अभाव कितने संकट का कारण रहा होगा यह अनुमान कर लेना कठिन नहीं। रूस में क्रान्ति हो जाने के बाद सभी साम्राज्यवादी देशों ने सेनायें लेकर सोवियत को घेर लिया था। स्वयं देश के भीतर क्रान्ति-विरोधी जारशाही के समर्थक जनरल बड़ी-बड़ी सेनायें लेकर सोवियत सरकार को उखाड़ फेंकने का यत्न कर रहे थे। जारशाही के समर्थक जनरलों को सभी प्रकार की सहायता साम्राज्यवादी शक्तियों से मिल रही थी। सोवियत को किसी भी दाम ऐसी चीजें नहीं मिल सकती थीं न इंजीनियरों और कारीगरों द्वारा सहायता। अन्य आवश्यकताओं को छोड़कर आत्मरक्षा के युद्ध में सैनिक प्रयोजन के लिये ही मोटरों का अभाव उन्हें कैसे पंगु बना रहा होगा? पहले पहल १९२४ में यहाँ मोटर बनाने में सफलता मिली। कारखाने का वर्तमान रूप १९३१ में पूरा हो

पाया था। और हमने अपनी पाँच नम्बर नमूने की, ढाई टन की 'जीस्स' लारी, बनाना आरम्भ कर दिया था।" क्रान्ति के बाद सोवियत के इस और अनेक कारखानों में बनने वाली मोटरें 'जीस्स' और 'पोवियेदा' अन्य देशों की अच्छी से अच्छी मोटरों रोलस और मर्सडीज बैन्डस से टक्कर लेती हैं इससे भी कोई इन्कार नहीं करता। जिस समय कामरेड डाइरेक्टर यह कहानी सुना रहे थे याद आया कि हमारे यहाँ उद्योग धन्धों के विकास के मार्ग में भारी अड़चन यह है कि यथेष्ट विदेशी पूँजी, विदेशी विशेषज्ञ कारीगर और मशीनें बना सकने वाली मशीनें विदेश से नहीं मिल रहीं। यह समझ पाना सरल नहीं कि अपनी औद्योगिक पैदावार के लिये हमारे बाजारो पर निर्भर करने वाले साम्राज्यवादी व्यापारी देश हमें आत्मनिर्भर बनाकर अपने बाजार क्यों गँवा देंगे? मोटरों और ट्रकों के आकार प्रकार और उनकी शक्ति के बारे में बहुत सी पेचीदा, औद्योगिक और यान्त्रिक बातें बताने के बाद डाइरेक्टर ने अपने कारखाने की पैदावार बढ़ सकने का रहस्य यह बताया कि उनकी योजनाएँ मजदूरों के सहयोग से बनाई और पूरी की जाती हैं। पैदावार की कोई योजना बनाई जाने पर विचार और सम्मति के लिये मजदूर संघों में भेज दी जाती हैं और उन्हीं से राय ली जाती है कि पैदावार को सुधारने और बढ़ाने के लिये काम के ढंग और यंत्रों में किस प्रकार के सुधारों और परिवर्तनों की आवश्यकता है। ब्योरे की बहुत सी ऐसी बातें होती हैं जिन्हें थ्योरी पर निर्भर करने वाले लोग उतनी अच्छी तरह नहीं समझ सकते जितना कि हाथ से काम करने वाले अपने अनुभव से समझ लेते हैं। मजदूर संघों में संशोधित और अनुमोदित योजनाओं पर भिन्न-भिन्न विभागों के डाक्टरों की समिति विचार करती है। योजना के स्वीकार हो जाने पर उसे पूरा करना मजदूरों का कर्तव्य हो जाता है।

हम लोग कारखाने के ढलाई, मोलडिंग और पुर्जे बनाने वाले अनेक विभागों में होते हुए उस स्थान तक गये जहाँ कि बिलकुल तैयार मोटरें, बाइसिकलें और रेफ्रीजिरेटर चालू करके बाहर निकाले जा रहे थे। इस कारखाने में शारीरिक परिश्रम के कड़े कामों को छोड़कर स्त्रियां प्रायः सभी काम बड़ी संख्या में करती हैं। ऐसा कोई काम दिखाई नहीं दिया जिसमें अधिक शारीरिक बल की आवश्यकता जान पड़ती हो। यहाँ काम शारीरिक शक्ति से नहीं बल्कि मनुष्य के यान्त्रिक ज्ञान और मशीन की शक्ति से होता है। लोहे के कई-कई मन के टुकड़े, जो भट्टी में बिलकुल श्वेत होकर प्रकाश सा फेंकते हुए निकाले जाते हैं, मशीनों से साचों पर पहुँच जाते हैं। मनुष्य का काम इन्हें ठीक जगह पर रखने के लिये मशीन को इशारा करते जाना ही है। गरमी से मोम की तरह मुलायम लोहे के टुकड़ों के साचों में सट जाने पर कई-कई हजार मन के भारी हथौड़े इस गरम लोहे पर गिर करके उसे वाछित वस्तु का रूप दे देते हैं। इन भारी-भारी मशीनों और सांचों की सहायता से स्त्रियां भी मोटरों के पुरजों को कुछ पलों में बनाकर संडासियों से ऐसे उछाल-उछाल कर फेंक रही थीं मानों खौलते घी की कढ़ाई में से पूरियाँ तलकर परात में डालती जा रही हों। तेल की तरह पिघले लोहे को भट्टी से सांचे तक ले जाने का काम भी मशीनें कर रही थीं।

कारखानों में लगातार तैयार की जाने वाली वस्तुएँ जंजीरों की पैड़ों (बेल्ट) पर कारीगरों के सामने से गुजरती जाती हैं और प्रत्येक कारीगर उन पर अपना-अपना काम करता जाता है। डा० कुमारप्पा और कुछ दूसरे साथी योरुप और अमरीका के और भी ऐसे कारखाने देख चुके थे। उनका कहना था कि सोवियत के कारखानों में पैड़ की चाल अपेक्षाकृत धीमी है। इससे कारीगर को जल्दी थकान तो अनुभव नहीं होती परन्तु इसे कौशल की कमी भी समझा जा सकता है। इससे पैदावार में कुछ कमी भी रह सकती है। सोवियत मैनेजर का विचार है कि पैड़ की तेजी से पूँजीवादी कारखानेदार को तो लाभ होता है क्योंकि वह नियमित समय में पैदावार अधिक कर सकता है। अति परिश्रम से मजदूर के बीमार हो जाने पर पूँजीपति पर कोई जिम्मेवारी नहीं। इस कारखाने पर तो सब जिम्मेवारियां हैं। पैड़ की चाल कितनी होनी चाहिए यह निर्णय पूँजीवादी कारखाने में मजदूर नहीं करते यहाँ वे स्वयं ही इसका निश्चय करते हैं।

मजदूरों में आतंक और दहशत का भाव नहीं जान पड़ता था। उनके चेहरे निश्चिंत और प्रसन्न थे। बल्कि यही देखकर आश्चर्य हुआ कि स्त्री-पुरुष मजदूरों की एक अच्छी खासी टोली कौतूहल में हम लोगों के साथ-साथ चल रही थी। वे लोग हमारे दुभाषिये की मारफत हमसे अनेक प्रश्न पूछ रहे थे। उन्होंने वियाना शान्ति कांग्रेस के बारे में प्रश्न किये और एक युवती कारीगर ने विश्व शान्ति के लिये अपील के रूप में हमें एक व्याख्यान भी दे डाला।

कारखाने के प्रत्येक विभाग में अच्छे और सस्ते भोजन की व्यवस्था तो है ही इसके अतिरिक्त हाथ-मुंह धोने और दूसरी हाजितें रफा करने के लिये भी स्थान का प्रबन्ध है जहाँ गर्म तथा ठंडा पानी चालू रहता है। यह स्थान स्फटिक की भांति चमचमाते तो नहीं दिखाई दिये परन्तु दुर्गन्ध का नाम न था। प्रत्येक विभाग में मजदूरों के लिये व्यक्तिगत अभिव्यक्ति के माध्यम दीवारी अखबार (वाल पेपर्स) भी मौजूद थे। सोवियत में व्यक्ति को पैदावार के लिये प्रोत्साहन देने का प्रमुख साधन मजदूरों की सम्मान सूचियाँ उनके फोटो सहित लगी हुई थीं। इस कारखाने को यह गर्व है कि इसे तीन बार लेनिन पदक मिल चुका है और एक बार लाल झंडा देकर भी इसका सम्मान किया गया है। कारखाने के अड़तालीस मजदूर स्तालिन पदक पा चुके हैं। कारखाने के प्रत्येक विभाग में स्ताखानोवाइट मजदूरों की शाखायें हैं। स्ताखानोवाइट वे मजदूर कहलाते हैं जो औद्योगिक शिक्षा पाकर पैदावार को अधिक और बढ़िया बनाने में सहयोग देते हैं। स्ताखानोवाइट के लिये केवल व्यक्तिगत रूप से ही नहीं बल्कि सम्मिलित रूप से दूसरे लोगों की पैदावार बढ़ाने में भी सहायता देना आवश्यक होता है। ऐसे मजदूरों की आय दुगनी-तिगुनी हो जाती है।

मजदूरों का काम का समय अतिथियों व दर्शकों के साथ बातचीत में खर्च करते देख कुछ विस्मय भी हुआ। हमने विभाग के अध्यक्ष से इस बारे में प्रश्न किया कि क्या मजदूर अपनी इच्छा से काम छोड़कर घूम-फिर भी सकते हैं। विभाग के अध्यक्ष ने

सरलता से उत्तर दिया—"ये लोग अपनी जिम्मेवारी समझते हैं और उसे पूरा भी अवश्य कर लेंगे। अनुशासन को लोहे का शिकंजा बना देने से कार्यकर्त्ताओं पर प्रभाव अच्छा नहीं पड़ता। इसके अतिरिक्त इन लोगों का वेतन इनके काम के परिमाण पर निर्भर करता है। इन्हें स्वयं भी तो इसका ध्यान है।"

हम लोगों ने काम के परिमाण से वेतन देने के ढंग के बारे में प्रश्न किया कि पूँजीवादी प्रणाली में इस ढंग से कुछ मजदूर व्यक्तिगत रूप में चाहे लाभ उठा लें परन्तु मजदूर वर्ग इससे नुकसान में ही रहता है। डाइरेक्टर ने उत्तर दिया—'पूँजीवादी प्रणाली में उपज के परिमाण से मजदूरी का ढंग निःसन्देह मजदूर वर्ग के लिये हानिकारक होता है क्योंकि जब मजदूर पहले जितने समय में बिना अधिक साधनों के अधिक उपज करता है तो पैदावार पर मालिक का लागत व्यय कम होकर उसका मुनाफा बढ़ जाता है। मालिक बढ़ी हुई पैदावार का बहुत थोड़ा भाग ही मजदूर के वेतन में बढ़ाता है। बढ़े हुए मुनाफे का अधिक भाग मालिक स्वयं रख लेता है और मजदूरों की कम संख्या से ही अधिक काम करवा कर मजदूरों की संख्या घटा लेता है। इससे मजदूरों में बेकारी होने की आशंका रहती है। समाजवादी प्रणाली में मुनाफाखोर मालिक के न रहने से मजदूर द्वारा बढ़ाई पैदावार का लाभ स्वयं उसे ही होता है। वे सोवियत में निश्चित मात्रा से अधिक उपज करने वालों की मजदूरी के दर से समझा जा सकता है। हमारे यहाँ १०% उपज बढ़ाने पर २५% और २५% उपज बढ़ाने पर ५०% और ५०% बढ़ाने पर १००% अधिक मजदूरी दी जाती है। पैदावार में बढ़ती होने से किसी भी मजदूर के लिये बेकारी की आशंका नहीं हो सकती क्योंकि सरकार सभी को रोजगार देने के लिये जिम्मेवार है। हमारे यहाँ अधिक उपज के लिये अधिक मजदूरी पा सकने का अवसर प्रत्येक मजदूर को अपनी आय बढ़ा सकने की स्वतंत्रता देता है। हमारे सभी कारखानों में मजदूरों को अपना कौशल और दक्षता बढ़ाने के लिये शिक्षा का भी पूरा अवसर रहता है ताकि वे अपनी व्यक्तिगत आय को निर्बाध रूप से बढ़ा सकें।'

इस कारखाने में तीन हजार मजदूर काम करते है। स्त्रियों की संख्या बयालीस प्रतिशत है। कारखाने के अपने हस्पताल, स्कूल, क्लब, थियेटर, तैरने के तालाब हैं। इसी कारखाने के क्लब में तो हम नववर्ष मनाने गये थे। कारखाने के साथ बीस शिशुशालायें हैं जहाँ मजदूर स्त्रियां काम पर आने के समय अपने छोटे-छोटे बच्चों को सुशिक्षित दाइयों एवं अध्यापिकाओं के जिम्मे छोड़ जाती हैं। हम लोग केवल एक ही शिशुशाला में जा सके। इसमें तीन से सात वर्ष के बच्चों को उनकी आयु के अनुसार अलग-अलग कमरों में रखा जाता है। बच्चों की आयु के अनुसार उनके कमरों में काफी खिलौने भी रहते हैं। खिलौनों के अतिरिक्त छोटे बच्चों के दिल बहलाव के लिये पिंजड़ों में चिड़ियाँ भी हैं। कुछ खिलौने तो ऐसे हैं जो साधारण आर्थिक स्थिति के बच्चों के लिये दुर्लभ होंगे। पांच वर्ष से अधिक आयु वाले बच्चों के कमरे में चित्रों से भरी परियों की कहानियों की पुस्तकें भी थीं। नववर्ष का पर्व अभी ही बीता था इसलिये बच्चों की गुड़ियों के कपड़े भी नये ही दिखाई दे रहे थे। बच्चों के नव वर्ष के उत्सव के लिये जो तैयारियां एवं सजावट की गई

थी, वह अभी शेष थी। लगभग एक बजे का समय था। बच्चे खा-पीकर अपने गुदगुदे सफेद बिस्तरों में नींद ले रहे थे। इस शिशुशाला में एक सौ बीस बच्चों के लिये व्यवस्था है। ऐसी ही उन्नीस और शिशुशालायें इस कारखाने में हैं।

कारखाने से लौटते समय साथियों ने मजदूरों के रहने की जगह देखने की इच्छा प्रकट की। समीप ही मजदूरों के मकान (फ्लैट) थे। मकानों के बाहर बच्चे फर के कोट और गरम कपड़े, मोटे बूट पहिने खेल-कूद कर रहे थे। कुछ पांव में स्केट बांधे फिसलने की दौड़ लगा रहे थे। पहला मकान एक फोरमैन का था। दो कमरे, रसोई, गुसलखाना और संडास बहुत कायदे से बने हुए थे। अच्छा खासा फर्नीचर, खाने की मेज, कुर्सियां, खाने-पीने के सुन्दर बर्तन। इसका किराया बिजली और ईंधन का खर्च जोड़कर अस्सी रूबल मासिक था। दूसरा मकान एक इंजीनियर का था। इंजीनियर साहब अविवाहित हैं इसलिये रसोई, गुसलखाना और संडास के अतिरिक्त कमरा इनके पास एक ही है। इन्हें किराया, बिजली और ईंधन का खर्च मिलाकर अट्ठावन रूबल देना पड़ता है। इनका मासिक वेतन दो हजार पांच सौ रूबल है। मकान किराया जिसमें बिजली, ईंधन और कमरे को गरम रखने का खर्च शामिल रहता है, वेतन के अनुसार १% से ३% तक होता है। दोनों ही मकानों में सामान रखने की अलमारियां, रेडियो और बिजली की दूसरी उपयोगी वस्तुयें भी थी।

सोवियत साहित्य और लेखक

स्तालिन मोटर कारखाने में दो बज गये। पूरा देखे बिना छोड़ते नहीं बनता था और जल्दी चलने की छटपटाहट हो रही थी। प्रातः ही विराट नाश्ता कर लेने पर भी यदि दो बजे आंतें खाने के लिये अकुलाने लगे तो उन्हें दोष नहीं दिया जा सकता। दो बजे दूसरे साथी तो भोजन के लिये होटल की ओर चल दिये लेकिन हम कुछ लोग श्री देसाई, श्रीमती मालती बिडेकर, सरदार गुरुबक्श सिंह, आदित्यन जोशी और मैं दो बजे सोवियत लेखक संघ (यूनियन आफ सोवियत राइटर्स) के दफ्तर में कुछ सोवियत के लेखकों से मिलने के लिये समय निश्चित किये हुए थे। सोवियत में इंगलैंड की तरह ब्रेकफास्ट, लंच, टी आर डिनर के समय की पाबन्दी कड़ाई से नहीं निभाई जाती न खाने-पीने के लिये काम को स्थगित किया जाता है। काम पहले होना चाहिये उसके बाद खाना और पूरी कसर निकालकर इसलिये यह कहने का साहस नहीं हुआ कि पहले खाना खा आयें।

सोवियत लेखक संघ का दफ्तर अच्छे खासे रईसी क्लब की तरह सजा हुआ और सुविधा की जगह है। बिना खाना खाये ही गये थे। कामरेड तिखोनोव और कवि सुरकोव अन्य साथियों सहित हमारी प्रतीक्षा कर रहे थे। बैठने के बाद परिचय आरंभ हुआ। सुरकोव इस समय लेखक सघ के कार्यवाहक प्रधान का कार्य कर रहे है। प्रधान सम्भवतः ईलिया ऐहरनबर्ग हैं। तिखोनोव संघ के उपप्रधान हैं। उन्होंने अन्य उपस्थित लेखक साथियो का परिचय कराया। स्वयं कवि और रूसी कविता में शेक्सपियर का अनुवाद

करने वाले मर्शाक थे, मिर्जा तुरसनजादे थे, उपन्यास लेखिका कारावायेवा थीं और नये लेखकों में से जार्जिया के गिलिया भी थे।

प्रधान के आसन से का० सुरकोव ने बात आरम्भ की—"हम सोवियत के लेखकों के मन में भारत और नवीन भारतीय लेखकों के बारे में गहरी जिज्ञासा है। हम लोग आपके सम्बन्ध में व्यक्तिगत रूप से और आपकी रचनाओं के बारे में सभी कुछ, जितना आप बता सकें, जानना और सुनना चाहते हैं। भारतीय साहित्य का रूसी भाषा में थोड़ा-बहुत अनुवाद पहले भी हुआ था और अब भी भारत के सामयिक और आधुनिक लेखकों की रचनाओं के अनुवाद सोवियत के पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहते हैं। हमारे पाठकों को उसमें खूब रुचि है।

ज्यों-ज्यों हम लोगों का आपसे परिचय बढ़ेगा त्यों-त्यों हमारा पारस्परिक सम्बन्ध और आकर्षण भी बढ़ेगा और हममें मनमुटाव पैदा करने वाला सन्देह होने का अवसर ही न रह जायेगा। हम आपकी ऐतिहासिक परम्पराओं का परिचय चाहते हैं, हम आपके साहित्य की सामयिक प्रवृत्तियों को जानना चाहते हैं और यह भी जानना चाहते हैं कि आपके देश के लेखकों की क्या नई देन है और उनकी नवीन प्रवृत्तियां क्या हैं? हमारे विषय में आपकी जो भी जिज्ञासा हो, उसे भी हम पूरा करेंगे। हमारा साहित्य और पत्र-पत्रिकायें राष्ट्रों में सद्भावनायें और विश्वास उत्पन्न करने के बहुत ही सबल साधन हो सकते हैं इसलिये भारतीय साहित्यिक और पत्रकार मित्रों के मिलने का अवसर पाकर हमें बहुत संतोष हुआ है। हमें आशा है कि हमारा यह मिलन मानवता के सामूहिक उद्देश्य शान्ति की स्थापना में भी सहायक होगा।"

कामरेड सुरकोव की बात समाप्त होने से पहले ही हम लोगों के सामने चाय के गिलास, चाकलेट, टौफी, सेब और नारंगियां पर्याप्त मात्रा में आ गई थीं। सुरकोव ने बात समाप्त कर बैठते हुए अनुरोध किया कि सामने रखी चाय और दूसरी वस्तुओं की ओर भी हम लोग ध्यान देते जायें। शरीर को यह पार्थिव सहायता मिल जाने से मस्तिष्क में भी स्फूर्ति अनुभव हुई। हम लोगों ने पहला सामूहिक प्रश्न यही किया कि आधुनिक सोवियत साहित्य की यह आधारशिला, मूल सिद्धान्त और लक्ष्य क्या हैं।

सुरकोव ने उत्तर आरम्भ किया। दूसरे सोवियत साथी भी सहयोग देते जा रहे थे। सोवियत लेखकों के सामूहिक उत्तर का तात्पर्य यह था :—हम अपनी देश की सांस्कृतिक परम्परा को ही नहीं, बल्कि संसार भर की सांस्कृतिक परम्परा को अपना उत्तराधिकार समझते हैं। हम सांस्कृतिक परम्पराओं की उपेक्षा कभी सहन नहीं कर सकते। इसके साथ ही हम यह भी अपना कर्तव्य समझते हैं कि सांस्कृतिक परम्पराओं का अध्ययन विश्लेषणात्मक रूप से किया जाय और अपने समाज के आधुनिक दृष्टिकोण और लक्ष्य को सामने भी रखा जाय। सोवियत में प्राचीन साहित्यिक रचनायें आज भी बिना किसी काट-छांट या हेर-फेर के, सामयिकता का रंग दिये बिना, अपने मौलिक रूप में प्रकाशित की जाती हैं। आधुनिक लेखकों का मत उनके विषय में चाहे जो कुछ हो। हम लोग

टाल्सटाय, पुश्किन, शेक्सपियर की कृतियों का बहुत आदर करते हैं क्योंकि यह कृतियां उस पृष्ठभूमि के मानचित्र हैं जिनमें से होकर सर्वसाधारण के जीवन और विकास के लिये संघर्ष की परम्परा गुजरी है और वे अपने काल और परिस्थितियों के जीर्ण समाज में प्रगतिशील ही थीं।

हमारा साहित्य जनता के बीच से, जनता द्वारा और जनता के लिये उत्पन्न होता है। हमारे साहित्य का यह जनवादी रूप ही उसकी आत्मा और मुख्य लक्षण भी है। ऐसी अवस्था में हम लोग शुद्ध कला अथवा कला के लिये कला का सिद्धांत नहीं मान सकते। हमारी कला जनहित के लिये है। कला के लिये कला की बात सामन्ती रईसी का ख्याल है और वह प्रतिक्रियावादी प्रवृत्ति है। साहित्य और कला जनता के विचारों और भावनाओं के सम्पर्क और विनिमय का साधन हैं। इसलिये जनता से परे कला के लिये कला या कला की आत्मनिर्भरता की बात हमें संगत नहीं जान पड़ती। हमारी कला और साहित्य का प्रयोजन हमारी जनता की सांस्कृतिक आवश्यकताओं को पूरा करना ही है। हमारे लेखक अपनी पुस्तकों की बिक्री से जीविका पाते हैं इसलिये वे पाठकों के निर्णय पर निर्भर करते हैं। यदि हमारी कृतियां निर्जीव होंगी तो वे गोदामों में पड़ी सड़ती रहेंगी। यदि हमारा लेखक हमारे समाज के कल्याण के मार्ग को, जीवन की भावना और झुकाव को भांप कर उसे प्रोत्साहन दे सकता है, समाज का दृष्टिकोण विश्लेषणात्मक और पैना बनाने में योग दे सकता है तो उसकी पुस्तक जनता के जीवन की टेक बन जाती है। हमारे आधुनिक साहित्य में गोर्की और माइकोवस्की की पुस्तकें ऐसी सफलता का अच्छा खासा उदाहरण हैं। देश रक्षा के युद्ध के बाद की रचनाओं में पोलेवोय का उपन्यास "स्टोरी आफ रियलमैन" फेदेव की पुस्तक "दी यंगगार्ड," अजायेव की पुस्तक "फार फ्राम मास्को" भी ऐसी ही पुस्तकें हैं।

हमारे आधुनिक लेखक पुराने लेखकों की अपेक्षा अधिक भाग्यशाली है क्योंकि उन्हें पाठकों का एक अभूतपूर्व विराट और पारखी समाज मिला है। यहाँ आप ही के साथ बैठे हुए तीन-चार कवि ऐसे हैं जिनकी कविताओं की करोड़ से अधिक प्रतियां बिक चुकी होंगी। मर्शाक की बाल कविताओं की तो कई-कई करोड़ प्रतियां छप चुकी हैं। हमारे लेखकों का हमारी जनता से केवल कलम द्वारा ही सम्बन्ध नहीं है बल्कि वे जनता के जीवन के अनुभवों में भी हाथ बंटाते हैं।

हममें से किसी ने पूछ लिया—"क्या पिछले महायुद्ध में सोवियत के लेखकों ने सिपाही जीवन और मोर्चे के अनुभव भी बटाये हैं।" सुरकोव की आँखें चमक उठीं—"सोवियत में लेखकों और कवियों की संख्या लगभग तीन हजार है। इनमें से एक हजार मोर्चों और खाइयों में सिपाहियों के कंधों से कंधे भिड़ाकर शत्रु का सामना करते रहे हैं और ढाई सौ के शरीर वहीं रह गये और वे आज भी हमारे सैनिकों और अफसरों के साथ सामूहिक समाधियों में विश्राम कर रहे हैं। सोवियत का लेखक समाज और जनता के जीवन के सम्बन्ध में अधिकार से बोल सकता है और इसलिये सोवियत के लेखक जो

फैसिस्ट आक्रमण के समय सीना तानकर सबसे अगले मोर्चे पर डटे थे आज शान्ति के लिये प्रयत्न करने वालों में भी सबसे आगे हैं।"

जैसे सोवियत राष्ट्र संघ अनेक राष्ट्रों का समुच्चय है वैसे ही सोवियत साहित्य भी उन राष्ट्रों के साहित्य का समुच्चय है। समाजवादी क्रान्ति के बाद से सोवियत संघ के सभी राष्ट्रों में सांस्कृतिक और साहित्यिक प्रगति की धारा वेग से बहने लगी है। सोवियत के कुछ भागों में जहाँ क्रान्ति से पहले अपनी लिपि भी नहीं थी, आज ऐसे लेखक पैदा हो रहे हैं जिनका सम्पूर्ण सोवियत में ही नहीं, बल्कि अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में भी मान है। सोवियत साहित्य की प्रगति का अर्थ केवल रूसी साहित्य की प्रगति ही नहीं बल्कि ताजिकिस्तान, ज्योर्जिया, अरमेनियां और अजरबैजान के साहित्य की प्रगति भी है। यह सभी राष्ट्रीय साहित्य समान प्रगति के सूत्र में बंधे हुए हैं। ये साहित्य अपने राष्ट्रीय जीवन के प्रतिबिम्ब के रूप में और भाषा तथा साहित्य की दृष्टि से पूर्णतः राष्ट्रीय साहित्य हैं परन्तु इन सभी साहित्यों में मौलिक सिद्धान्तों एवं लक्ष्य की एकता है। हम लोग साहित्य की इस शैली को समाजवादी यथार्थवाद कहते हैं। हम साहित्य में समाज का पूर्ण यथार्थ प्रतिबिम्ब चाहते हैं परन्तु वह प्रतिबिम्ब केवल समाज की विषमता की भावना रहित छाया ही नहीं होना चाहिये। इस प्रतिबिम्ब में जीवन के विकास, जीवन की प्रवृतियों और उनकी दिशाओं के निर्देश के सूत्र भी अवश्य रहने चाहिये।

"हम लोग अराष्ट्रीयता (कोस्मोपोलिटनिज्म) या अपनी राष्ट्रीयता की उपेक्षा करने की प्रवृत्ति को सहन नहीं कर सकते। हम अपनी राष्ट्रीयता की रक्षा करते हुए अन्तर्राष्ट्रीय सहनशीलता, सम्पर्क और सहयोग की भावना रखते हैं। हम यह नहीं मान सकते कि अन्तर्राष्ट्रीय उदारता और सहयोग का राष्ट्रीय संस्कृति और भावना से कोई विरोध है। हमारा विश्वास है कि प्रत्येक राष्ट्र की संस्कृति की रक्षा और विकास ही अन्तर्राष्ट्रीय संयुक्त मानव की संस्कृति के विकास में सहायक हो सकता है।"

हम लोगों ने लेखकों के जीवन और पुस्तकों के प्रकाशन के सम्बन्ध में कुछ व्यावहारिक प्रश्न भी पूछे और मालूम हुआ कि सोवियत में पत्र-पत्रिकाओं में रचनाओं का प्रकाशन स्थानीय और केन्द्रीय पत्र-पत्रिकाओं के सम्पादक मण्डलों के निर्णयों पर और पुस्तकों का प्रकाशन लेखक-संघों के निर्णय पर निर्भर करता है। साधारणत व्यावहारिक नीति यह है कि नये लेखकों का दमन न हो बल्कि उन्हें उत्साहित किया जाय। रचनाओं के प्रकाश में आने में स्थानीय पत्र, क्लब और गोष्ठियां भी सहायक होती हैं। किसी भी रचना के स्थानीय लोगों से सराहना पा लेने पर उसके प्रकाशन में रुकावट नहीं आ सकती। सोवियत में प्रकाशित पुस्तकों की संख्या और उनकी प्रतियों की संख्या से कोई अन्य देश प्रतिद्वन्द्विता नहीं कर सकता। साधारण सफल लेखक भी एक पुस्तक के प्रकाशन से इतना धन पा सकता है कि भविष्य की रचनाओं के लिये दो-तीन वर्ष की सुविधा पा जा सके। गांव के लोग, मिलों के मजदूर या सामूहिक कृषि क्षेत्र के लेखकों को अपने साथ रहकर उनके जीवन की वास्तविकता का परिचय पाने के लिये भी निमंत्रित करते रहते हैं।

यह ठीक है कि सोवियत में किसी व्यक्ति को ऐसी स्वतंत्रता नहीं है कि अन्य लेखकों का समर्थन पाये बिना केवल व्यक्तिगत इच्छा से अपनी पुस्तक प्रकाशित कर दे सके। कारण सीधा और स्पष्ट है। प्रकाशन के साधन कागज छपाई का प्रबन्ध, बिक्री की व्यवस्था आदि लेखक-संघ के हाथ में है। ऐसे साधन किसी भी व्यक्ति की निजी सम्पत्ति नहीं हैं। ऐसी स्वतन्त्रता तो पूँजीवादी देशों के लेखकों को भी नहीं है। वहाँ पुस्तकों का प्रकाशन अन्य लेखकों के निर्णय पर नहीं प्रकाशकों के निर्णय पर निर्भर करता है। प्रकाशक रचनाओं को कला, जनहित या विचारों की नवीनता की कसौटी पर नहीं अपने मुनाफे की सम्भावना पर आंकता है। शासन व्यवस्था से भी उन्हीं लेखकों को संवर्धन मिलता है जो उस व्यवस्था का ढोल बजाने को लकड़ी बनने के लिये तैयार हैं। हमारे सरकारी प्रकाशनों के सम्पादन के लिये जैसे साहित्यिकों का चुनाव किया गया है, वे लेखकों की योग्यता के मूल्यांकन का अच्छा खासा उदाहरण है। कोई भी कलाकार अपनी रचना का निर्णय मुनाफाखोरों और नौकरशाही दूतों की अपेक्षा कलाकारों के हाथ में अधिक आश्वासन दे सकता है। कला की दृष्टि से कला का मूल्यांकन ही कलाकारों की स्वतन्त्रता का आधार हो सकता है।

सोवियत में प्रकाशन का कार्य सरकार के हाथ में नहीं बल्कि बहुत सी संस्थाओं, लेखक संघों, विज्ञान, विश्वविद्यालयों और औद्योगिक संघों आदि के हाथ में है। कुछ प्रकाशन संस्थायें पूरे समाजवादी सोवियत राष्ट्र संघ की सांझी हैं और कुछ अपने-अपने राष्ट्रीय प्रजातंत्रों की भाषा में ही प्रकाशन करती हैं। सरकार का काम इन संघों के लिये आवश्यक साधन प्रस्तुत करना है। प्रकाशन योग्य पुस्तकों और साहित्य का चुनाव और बिक्री की व्यवस्था करने में यह संस्थायें स्वतंत्र हैं। क्रान्ति के बाद से १९५० तक सोवियत में प्रकाशित पुस्तकों की संख्या नौ लाख सत्तर हजार है।

सोवियत लेखकों की सैद्धान्तिक बातों से मतभेद न होने पर भी मैंने यह जानना चाहा कि उनकी कल्पना में मनुष्य के व्यक्तिगत स्वतंत्रता, पारिवारिक जीवन और स्त्री-पुरुष के सम्बन्ध का क्या आदर्श है? क्या वे स्त्री-पुरुष के यौन-सम्बन्ध के लिये पारिवारिक जीवन को अनिवार्य समझते हैं? सन्तान का स्थान केवल परिवार में ही समझते हैं या सन्तान के पालन और सम्वर्धन के लिये समाज पर निर्भर कर सकते हैं?

कारावायेवा ने उत्तर दिया कि वे परिवार को समाज का आधार मानते हैं और अपने साहित्य द्वारा पारिवारिक भावना को दृढ़ करने की चेष्टा करते हैं।

मैंने ध्यान दिलाना चाहा कि समाजवादी संस्कृति स्त्री-पुरुष की पूर्ण समता की समर्थक है परन्तु परिवार का परम्परागत आदर्श स्त्री-पुरुष की समता का नहीं रहा है। सामन्तवादी और पूँजीवादी युग में भी पारिवारिक आदर्श के अनुसार पुरुष कर्त्ता और पत्नी उसकी स्वेच्छा से ही बनी हुई ही सही, सम्पत्ति रही है। बहुपत्नी प्रथा में और एक पत्नी प्रथा में भी स्त्री आर्थिक रूप से पुरुष पर निर्भर करने के कारण उसके अधिकार में ही रही है। यह बात दूसरी है कि एक पत्नी प्रथा के विकास से पुरुष स्त्री के प्रति

उत्तरोत्तर उदार होता गया है परन्तु परिवार का आधार तो सम्पत्ति की रक्षा और सम्पत्ति का उचित उत्तराधिकारी पैदा करना ही रहा है जिसमें स्त्री केवल साधन ही थी। स्त्री के आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर और समाज का स्वतन्त्र अंग बन जाने पर वह परिवार का साधन नहीं बनी रह सकती। यदि हम परिवार की परम्परागत प्रणाली को जमाये रखें तो क्या यह स्त्री की पराधीनता की परिस्थितियों को बनाये रखना नहीं होगा ?

कारावायेवा ने आग्रह किया कि सोवियत में पारिवारिक प्रणाली स्त्री के व्यक्तित्व के विकास और उसकी आर्थिक आत्मनिर्भरता में किसी प्रकार भी बाधक नही हो सकती! उन्होंने बताया कि सोवियत में आज स्त्री डाक्टरों की संख्या पुरुष डाक्टरों की अपेक्षा अधिक है। स्त्रियां सभी बौद्धिक व्यवसायों में पुरुषों के समान भाग ले रही हैं यह केवल समाजवादी व्यवस्था में स्त्री का मिल सकने वाली स्वतन्त्रता से ही संभव हो सका है। इस अवस्था में स्त्री समाज के प्रति अपने प्राकृतिक कार्य मातृत्व को निर्बाध रूप से पूरा करती हुई अपनी व्यक्तिगत उन्नति भी निर्बाध रूप से कर सकती है।

कारावायेवा की बात सिद्धान्त रूप से मानते हुए भी मैंने ध्यान दिलाना चाहा कि समाजवादी प्रणाली सिद्धान्त रूप से स्त्री के व्यक्तिगत विकास के लिये पूर्ण अवसर देती है परन्तु मातृत्व का काम ही ऐसा है कि वह नारी के समय और शारीरिक शक्ति का बहुत सा अंश मांग लेता है। एक सन्तान के प्रसव के लिये सोवियत के नियमों के अनुसार ही स्त्री तीन मास के लिये अपना काम छोड़ जाती है। एक मां के लिये अपने सब कामों से बड़ा काम सन्तान की चिन्ता है। ऐसी अवस्था में एक स्त्री चीफ इंजीनियर जो दो सन्तानों की मा भी है, जिन्हें वह निरंतर पाल पोस रही है, स्वभावतः पुरुष चीफ इंजीनियर की अपेक्षा अपने व्यवसाय की पेचीदगियों की ओर कम ध्यान दे सकेगी। इसका कारण स्त्री मे बुद्धि की न्यूनता नहीं होगा बल्कि यह कि उसकी बुद्धि को दूसरी चिन्तायें भी घेरे हुए है।

सुरकोव मेरी बात से उत्तेजित हो गये। उन्होंने कहा जो लोग स्त्रियों की स्वतंत्रता एवं विकास से स्पर्धा करते हैं वे सदा इसी प्रकार के तर्क किया करते हैं कि स्त्री का मुख्य काम मातृत्व निबाहना है परन्तु हमारी समाजवादी व्यवस्था में स्त्री के मातृत्व के कार्य, उसके व्यक्तिगत विकास और सामाजिक स्थिति में कोई विरोध नही। कारावायेवा बोलीं कि सन्तान के प्रति अपना कर्तव्य निबाहने के कारण स्त्री के मार्ग में जो बाधायें आवश्यक समझी जाती थीं, उनका उपाय हमारे समाजवादी जीवन में हो चुका है। उन्होंने अपनी किसी एक सहेली का उदाहरण दिया जो किसी बहुत उत्तरदायित्व पूर्ण काम पर है। उन्हें किसी दूसरे नगर से तार या फोन द्वारा तुरन्त वहाँ आने का संदेश मिला। परिस्थिति ऐसी थी कि वह अपने चार वर्ष के बालक को साथ नहीं ले जा सकती थीं इसलिये वे अपने बालक को अपने मुहल्ले की शिशुशाला में छोड़ गईं। जाते समय उन्होंने बच्चे को प्यार करके कहा—"बेटा, घबराना नहीं। मुझे लौटने में थोड़ी देर लगेगी तुम खेलते रहना।" अवसर वश यह महिला सात दिन से पहले न लौट सकीं। लौटते ही बच्चे को देखने और लिवा लाने शिशुशाला में पहुँची। बच्चा अपने समवयस्कों की संगति में अपने खेल में

मस्त था। माँ ने उसे पुकारकर घर चलने के लिये कहा। बालक ने खेल छोड़ने की अनिच्छा प्रकट कर एतराज किया—"माँ हमें खेलने दो। तुमने तो कहा था थोड़ी देर में आओगी और तुम इतनी जल्दी आ गई कि हमारा खेल भी खतम नहीं हुआ।" कारावायेवा स्तालिन पुरस्कार प्राप्त सफल कहानी लेखिका हैं। उन्होंने जिस खूबी से यह सच्ची कहानी सुनाई, हम सभी लोग जोर से हँस पड़े। कारावायेवा ने तर्क किया—"ऐसी परिस्थिति में सोवियत देश में माताओं को अपने सामाजिक और व्यक्तिगत कर्तव्य निबाहने में अपनी सन्तान की चिन्ता कैसे बाधक बना सकती है?"

मैंने सोवियत की शिशुशालाओं की सफलता पर बधाई देते हुए कहा—"क्या आपका यह उदाहरण इस बात का प्रमाण नहीं कि समाजवादी व्यवस्था में समाज का विकास सन्तान के उचित पालन के लिये पारिवारिक बन्धनों को अनावश्यक कर देता है? आपके उदाहरण से यह स्पष्ट है कि समाजवादी व्यवस्था में सन्तान के उचित पोषण और वर्धन के लिये परिवार का घोंसला और उसकी परिस्थितियां अनिवार्य नहीं?"

कारावायेवा मेरी इस बात से कुछ विक्षिप्त सी हो गईं। उन्होंने यह समझा कि मैं उनका दिया हुआ उदाहरण उन्हीं के विरुद्ध तर्क में प्रयोग कर रहा हूँ। कुछ उत्तेजित होकर उन्होंने कहा कि मैने उदाहरण यह साबित करने के लिये या यह दिखाने के लिये नहीं दिया कि हम बच्चों के लिये पारिवारिक जीवन को अनावश्यक समझते हैं बल्कि यह दिखाने के लिये दिया है कि स्त्री को अपना कर्तव्य निबाहते समय उसका माँ होना असुविधा का कारण नहीं बन सकता। उन्हें आश्वासन दिया कि मैं उनके उदाहरण का प्रयोग समाजवादी जीवन में परिवार के प्रति आस्था घट जाने के तर्क के रूप में नहीं कर रहा हूँ; अभिप्राय यह है कि परिवार का आधुनिक रूप समाजवादी समाज के लिये अनिवार्य नहीं रहा। मैंने सोवियत जीवन से दूसरा उदाहरण दिया कि जोया स्कूल में हम लोगों ने पांचवीं छठी श्रेणी की छोटी-छोटी लड़कियों से यह प्रश्न किया था कि वे पढ़-लिखकर क्या बनना पसन्द करेंगी? उन लड़कियों में से बहुतों ने डाक्टर इंजीनियर, चित्रकार और अध्यापिका बनने की इच्छा प्रकट की। गृहणी बनने की इच्छा किसी ने नहीं। श्रीमती मालती बिडेकर ने खास तौर पर यह प्रश्न भी किया था कि क्या उनमें से गृहणी कोई भी नहीं बनना चाहती? और सभी लड़कियों ने ना......ना ....ना चिल्ला कर इंकार कर दिया! गृहणी बनने के लिये इन लड़कियों की अरुचि इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि आपके समाज में भी स्त्री का गृहणी बनने और दूसरी दिशा में उसके व्यक्तित्व के विकास में समन्वय नहीं। स्त्री के मार्ग से आर्थिक व्यवधानों को आपने दूर कर दिया है पर दो प्रकार के जीवन की भावनाओं का समन्वय तो नहीं हो पाया।

सुरकोव और मर्शाक ने हंसकर कहा—"यह तो बच्चों की बातें हैं। हमारे समाज में स्त्री के गृहणी बनने और उसके व्यक्तित्व के विकास में कोई परस्पर-विरोध नहीं।" इस पर भी मैंने आग्रह किया कि समाजवादी व्यवस्था में सम्पूर्ण समाज एक व्यापक परिवार का रूप ले रहा है जिसमें प्रत्येक सन्तान के लिये समाज और राष्ट्र उत्तरदायी है तो फिर

परिवार का परम्परागत रूप अनावश्यक हो ही जाता है। कम से कम परिवार के सम्बंध में आपकी कल्पना ठीक वैसी नहीं है जैसी सामन्तवादी या पूँजीवादी समाज में होती है।

सुरकोव ने आग्रह किया कि नारी को आर्थिक आत्मनिर्भरता और पूर्ण विकास का अवसर देकर भी हम पति-पत्नी के स्थाई सम्बन्ध और उनकी सन्तान के रूप में परिवार को समाज का आधार समझते हैं। मैं यह अनुभव कर रहा था कि हमारे दूसरे साथी इस चर्चा में रस नहीं ले रहे है फिर भी कहा—"परिवार का परम्परागत रूप समाज की तत्कालीन आर्थिक परिस्थितियों का परिणाम था। वे आर्थिक परिस्थितियां ही परिवार का आधार भी थीं। मार्क्सवादी दृष्टिकोण से आप यह मानेंगे कि आर्थिक और भौतिक परिस्थितियां मनुष्य को अपने जीवन का एक विशेष ढग अपनाने को मजबूर कर देती हैं। समाज में आर्थिक सम्बन्ध और परिस्थितियां बदलने के साथ-साथ परिवार के आकार, रूप और प्रयोजन में परिवर्तन होता आया है, जैसे कुल-परिवार, संयुक्त परिवार और आधुनिक-परिवार। व्यक्ति सामाजिक परिस्थितियों के अनुसार आत्मरक्षा के प्रयोजन से परिवार बनाने के लिये अपनी व्यक्तिगत स्वतन्त्रताओ का बलिदान करता आया है। समाजवादी व्यवस्था व्यक्ति को विकास और स्वतन्त्रता का इतना अवसर देती है कि उसे पारिवारिक संगठन पर निर्भर करने की आवश्यकता ही नहीं रहती न पारिवारिक बधनों में बंधने की। इस परिवर्तन का मूल आर्थिक परिवर्तन में है। नींव बदल जाने के बाद इमारत को पहले ही रूप में कैसे बनाए रखा जा सकता है?" सुरकोव ने आर्थिक आधार की बात को स्वीकार कर समाजवादी व्यवस्था में व्यक्ति के विकास और पूर्ण स्वतन्त्रता मे तथा पारिवारिक संगठन में कोई विरोध न होने बल्कि उनके अन्योन्याश्रय होने की बात पर जोर दिया। मैं इन बातो में अपने विचार के अनुसार विरोध दिखाने के लिये व्यक्ति की स्वतन्त्रता के सम्बन्ध में बात करना चाहता था परन्तु साथियों को बहुत विलम्व होता जान पड़ रहा था इसलिये सरदार गुरुबख्श सिंह ने उठकर तर्क समाप्त करने का प्रस्ताव करते हुए सोवियत लेखकों को उनकी उदारता और आतिथ्य के लिये धन्यवाद दे दिया।

सुरकोव ने दोनों हाथ फैलाकर समर्थन किया—"......अन्त में यह कहना चाहता हूँ कि आज हमारे विचारों और भावनाओं मे जो सम्पर्क स्थापित हुआ है, आशा करनी चाहिये कि वह नित्य बढ़ता ही जायेगा।"

सोवियत लेखको से बातचीत में समय की कमी के कारण सोवियत समाज में पारिवारिक सम्बन्ध और व्यक्तिगत स्वतन्त्रता के प्रश्न पर पूरी बात न हो सकी थी परन्तु मैं जब-तब सोवियत के लोगों से बात कर इस सम्बन्ध में उनके विचार और भावनायें जानने का यत्न करता रहा। यही उपयोगी भी था क्योंकि लेखक प्रायः तर्क से बात करता है और सर्वसाधारण लोग तथ्य के आधार पर। बौद्धिक दांव पेच से गढ़े गये तर्क की अपेक्षा तथ्य के आधार पर निकाले निष्कर्ष ही अधिक भरोसे योग्य होते हैं। स्त्री के मातृत्व के कर्तव्य और समाज के प्रति उसके आर्थिक कर्तव्य में विरोधाभास की बात चलने पर क्रेमापालोवा ने कहा—"देखो, स्त्री के लिये मातृत्व स्वाभाविक बात है। इससे

उसे रोका नहीं जा सकता। प्रारम्भिक समाज में भी स्त्री खेती के काम, ईंधन पानी लाने और पशुओं को सम्हालने के रूप में भी करती ही थी। अब स्त्रियां चीफ इंजीनियरों, प्रोफेसरों, डाक्टरों और मजदूरों के रूप में अपना आर्थिक कर्तव्य पूरा कर रही हैं।"

यह अनुभव की बात है। अनुभव स्वयं बता देता है कि परस्पर-विरोधी कर्तव्यों में समन्वय कैसे हो! क्रेमापालोवा स्वयं एक बहुत उत्तरदायी पद पर हैं। युद्ध के समय भी वह व्यवस्था और संगठन के उत्तरदायी काम कर चुकी हैं। यह ठीक है कि पैदावार के साधनों का समाजीकरण हो जाने से सोवियत में परिवार का परम्परागत आर्थिक आधार बदल गया है, स्त्रियों के आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर हो जाने से स्त्री की पुरुष पर निर्भरता की समस्या भी नहीं रह गई है। इस पर भी पारिवारिक सम्बन्ध के विषय में सोवियत के लोगों की आस्था बहुत दृढ़ क्यों है? इसका कारण है कि सोवियत समाज में परिवार तो है पर उसका आधार बदल गया है। उनके समाज में पारिवारिक दृढ़ता का आधार आर्थिक आवश्यकता न होकर स्त्री-पुरुष के पारस्परिक प्रेम का स्थायी सम्बन्ध हो गया है।

सोवियत समाज के अनुसार परिवार की नई परिभाषा 'स्त्री-पुरुष का स्थाई प्रेम और सम्बन्ध' है। ऐसे परिवार के प्रति सोवियत के लोगों की आस्था का कारण समझने के लिये समाज की उस अवस्था की कल्पना करनी होगी जिसमें स्त्री-पुरुष के स्थायी सम्बन्ध या पारिवारिक व्यवस्था का अभाव हो। स्त्री-पुरुष के स्थायी सम्बन्ध के अभाव में स्त्री-पुरुष की स्वच्छंद या उच्छृङ्खल अवस्था को ही साधारण नियम स्वीकार करना होगा। सोवियत समाज स्त्री-पुरुष के सम्बन्ध में ऐसी उच्छृङ्खलता को स्वीकार करने के लिये तैयार नहीं। सोवियत समाज स्त्री-पुरुष के सम्बन्ध में उच्छृङ्खलता का विरोध किसी विश्वरागत धार्मिकता या साम्प्रदायिकता के आधार पर नहीं करता। उनके इस विरोध का कारण नितान्त भौतिक, व्यक्ति और समाज के कल्याण का व्यावहारिक पक्ष ही है।

सम्भव है स्त्री-पुरुष के यौन सम्बन्ध में उच्छृङ्खलता या स्वच्छन्दता के प्रति सोवियत समाज की विरक्ति और घृणा का कारण उनका अपना वही अनुभव है जो क्रान्ति के तुरन्त बाद, स्त्री को सामन्तवादी और पूँजीवादी दासता की नैतिकता से मुक्त कर देने के लिये तलाक और गर्भपात को मामूली बात करार दे देने से व्यापक उच्छृङ्खलता के रूप में सामने आ गया था। ऐसी यौन उच्छृङ्खलता समाजवादी समाज का लक्ष्य नहीं थी। वह केवल सामन्तवादी पूँजीवादी नैतिकता की दासता के कारण समाज की अवरुद्ध प्रवृत्तियों में आ गये विकारों का परिणाम था।

परिवार की नींव स्त्री-पुरुष के स्थाई प्रेम और सम्बन्ध को मान लेने पर उसमें स्थिरता और दृढ़ता की आवश्यकता को लेनिन के उन शब्दों से समझा जा सकता है जो उन्होंने क्लाराजैकिन के प्रश्न के उत्तर में कहे थे और जो प्राय: प्रत्येक सोवियत नागरिक को याद है। सोवियत की समाजवादी नैतिकता स्त्री-पुरुष के प्रेम और यौन सम्बन्ध को मनुष्य जीवन की स्वाभाविक आवश्यकता मानती है इसलिये इस आवश्यकता की

स्वाभाविक ढंग से पूर्ति में कोई अड़चन नहीं। कोई भी वयः प्राप्त युवक और युवती आपस में आकर्षण होने पर केवल अपने नाम रजिस्टर में दर्ज करा देने से ही पति-पत्नी बन जा सकते हैं परन्तु एक बार पति-पत्नी बन जाने पर अपना सम्बन्ध तोड़कर कहीं और विवाह कर लेना आसान नहीं; बल्कि तलाक बहुत ही कठिन है। प्रश्न यह है कि तलाक के सम्बन्ध में सोवियत समाज की कड़ाई क्या स्त्री-पुरुषों की व्यक्तिगत स्वतंत्रता का अपहरण नहीं? क्या स्त्री-पुरुष का एक बार आकर्षित होकर एक दूसरे से ऊब जाना और फिर अन्यत्र आकर्षित होना स्वाभाविक नहीं? सोवियत समाज ऐसे व्यवहार को स्वाभाविक नहीं, अव्यावहारिक उच्छृङ्खलता मानता है। क्यों?

लेनिन ने कहा था कि स्त्री-पुरुष में प्रेम और यौन-आकर्षण भूख प्यास की तरह ही स्वाभाविक है परन्तु प्यास लगने पर भलमनसाहत का दावा करने वाला कोई भी व्यक्ति गन्दी नाली में मुंह डालकर पानी पीना स्वीकार न करेगा; न ही वह ऐसे जूठे गिलास से पानी पीना चाहेगा जिस पर दूसरे लोगों के होंठों के निशान पड़े हों। प्यास लगने पर स्वच्छ गिलास से स्वच्छ जल पीना ही उचित है और लेनिन ने कहा था कि यौन-प्रेम की तुष्टि की तुलना एक गिलास जल पी लेने से नहीं की जा सकती; क्योंकि किसी भी व्यक्ति के जैसा तैसा जल जैसे-तैसे ढंग से पी लेने का परिणाम उसी व्यक्ति को भुगतना पड़ता है परन्तु यौन प्रेम में मामला एक नहीं दो आदमियों का होता है और तीसरे व्यक्ति के समाज में आने की सम्भावना भी रहती है इसलिये उसे निरी व्यक्तिगत स्वतन्त्रता की बात नहीं मान लिया जा सकता। ऐसी व्यावहारिक सामाजिक भावना के कारण सोवियत समाज स्त्री-पुरुष के स्थायी सम्बन्ध की पारिवारिक दृढ़ता को आर्थिक मजबूरी न होने पर भी व्यक्तिगत समाज और हित की नैतिकता की दृष्टि से बहुत महत्त्व देता है।

व्यवहार में भी यही देखा कि सोवियत के नवयुवक और नवयुवतियां वय प्राप्त होते ही विवाह कर लेते हैं और पति-पत्नी में आकर्षक भी बहुत अधिक होता है। 'घर लौटने' की चाह युवक-युवतियों में उग्र और स्पष्ट दिखाई देती रहती है। गुप्त-प्रेम या परकीया के प्रेम की रसमय कल्पना सोवियत समाज के व्यवहार और साहित्य में कोई रसानुभूति उत्पन्न नहीं करती क्योंकि उस समाज में प्रेम के स्वाभाविक मार्ग में कोई अड़चन नहीं। सामन्तवादी और पूँजीवादी साहित्य में गुप्त-प्रेम और समाज द्वारा अवैध करार दिये गये प्रेम पर निछावर होने वाले नायक-नायिका के लिये हमारी सहानुभूति का कारण यही था कि उनके प्रेम की तुष्टि के स्वाभाविक मार्ग में अस्वाभाविक अड़चनें डाल दी गई थीं। जिनसे परास्त हो जाने के लिये नायक-नायिका तैयार नहीं थे और वे अपने प्रेम की स्वतंत्रता के लिये निछावर हो जाते थे।

अन्तर्राष्ट्रीय स्तालिन शान्ति पुरस्कार

पांच जनवरी:—लाल चौरस (रैड स्कवायर) में से होकर आते-जाते समय क्रेमलिन की चार ऊंची मीनारों की चोटियां, जिन पर सोवियत राष्ट्र का चिन्ह पांच कोने के तारे लगे हुये हैं दिखाई देते रहते हैं और क्रेमलिन को घेरे पत्थर की बहुत ऊंची प्राचीर भी।

दन्तकथाओं में क्रेमलिन दुर्दान्त महत्ता और आतंक का प्रतीक रहा है। क्रान्ति से पहले वह क्रान्तिवादी शक्तियों के लिये ही नहीं; जार के साम्राज्यवादी प्रतिद्वन्द्वियों के लिये भी आतंक का कारण था। समाजवादी क्रान्ति के बाद से तो रहस्य-कुचक्र और आतंक का और भी विकट वातावरण पूँजीवादी पत्रों ने क्रेमलिन के नाम के साथ जोड़ दिया है। मास्को पहुँचने पर क्रेमलिन की ऊंची प्राचीर और लाल सेना के सशस्त्र सिपाहियों से सुरक्षित उसके फाटकों को देखकर यात्रियों को वे बातें याद आ जाती हैं। यह भी ठीक है कि क्रेमलिन के भीतर जिस किसी के लिये चले जाना और घूम आना आसान नहीं। पहले आज्ञा लेनी पड़ती है; फाटक पर आज्ञा पत्र और यात्री के पासपोर्ट की ध्यानपूर्वक जांच होती है तभी प्रवेश हो सकता है।

हम लोगों के लिये आज्ञा का सवाल नहीं था क्योंकि हम लोग निमन्त्रित थे। भारतीय शान्ति कमेटी के प्रधान डा० किचलू को शान्ति के लिये अन्तरार्ष्ट्रीय स्तालिन पुरस्कार दिये जाने की घोषणा की गई थी वह उन्हें विधिवत् सौंपा जाना था। सभी भारतीय प्रतिनिधि निमन्त्रित थे। हम सब लोग एक साथ एक बस में गये। बस को फाटक पर रोक दिया गया। दो लाख सैनिकों ने आकर हमारे साथ आये डा० बुटरोव से जांच पड़ताल की। हम सब लोगों के पासपोर्टों पर निगाह डाली। एक लाल सिपाही हमारे साथ बस में सवार हुआ तब हम भीतर जा सके।

इस छोटी सी सभा का प्रवन्ध क्रेमलिन के एक छोटे से गोल सभाभवन में किया गया था। सभाभवन का गुम्बद बहुत ही ऊंचा था और प्रकाश की व्यवस्था ऐसी थी कि मानों हम प्रातःकाल की हल्की धूप में बैठे हों। धूप का तो अवसर ही नहीं था क्योंकि बाहर बरफ जोरों से पड़ रही थी। भारतीय राजदूतावास से हमारे राजदूत श्रीकृष्ण मेनन और उनके साथ के लोग भी आये हुए थे। मास्को के भी डेढ़ सौ के लगभग नागरिक थे। इस सभा में कवि तिखोनोव, प्रमुख फिल्म प्रोड्यूसर पुदोवकिन भी बोले। उन्होंने विश्व शान्ति के लिये भारतीय जनता के प्रयत्नों की प्रशंसा की। उसके बाद सोवियत पार्लियामेंट के प्रधान ने स्तालिन पुरस्कार का स्वर्ण पदक और पुरस्कार के लिये प्रमाण-पत्र डा० किचलू को भेंट किया। यह देखकर सविस्मय सन्तोष हुआ कि यह प्रमाण-पत्र अंग्रेजी में नही बल्कि रूसी और हिन्दी में था।

हमारे कुछ प्रगतिवादी साथी हिन्दी को भारत की राष्ट्रीय भाषा स्वीकार करना भारत के अहिन्दी-भाषी-प्रान्तों और विशेषकर उर्दू को अपनी मातृभाषा बताने वालों के प्रति अत्याचार समझते हैं। उनका तर्क रहा है कि इस विषय में हमें जनवादी सोवियत राष्ट्रसंघ के उदाहरण के अनुसार चलना चाहिये। सोवियत के सभी राष्ट्रों में शिक्षा और शासन व्यवस्था का काम अपनी-अपनी मातृभाषाओं में चलता है। वहाँ किसी भी भाषा का स्थान नहीं दिया गया। यही व्यवस्था भारत के लिये भी ठीक होगी। हिन्दी राष्ट्रभाषा बनाकर शेष प्रादेशिक भाषाओं का दमन क्यों किया जाये परन्तु डा० किचलू को प्रमाण पत्र रूसी में देने से यह स्पष्ट है कि सोवियत के सब राष्ट्रों में अपनी-अपनी मातृभाषाओं में ही शिक्षा और शासन व्यवस्था का काम चलने पर भी जब सोवियत संघ के राष्ट्र

सम्मिलित रूप से किसी भाषा का प्रयोग करते हैं तो उनकी सांझी भाषा रूसी होती है। डा० किचलू ने तो अपना भाषण अंग्रेजी में ही दिया था परन्तु सोवियत सरकार ने डा० किचलू को प्रमाण-पत्र हिन्दी में ही देना उचित समझा। इससे यही जान पड़ता है कि सोवियत के लोगों की दृष्टि में भारत की राष्ट्र-भाषा हिन्दी ही है। भारत के लिये एक सांझी भाषा का नियत किया जाना अहिन्दी भाषा-भाषी प्रदेशों के लिये प्रगतिवाद की दृष्टि से कैसे अन्याय है, यह समझ पाना कठिन है।

इंगलैण्ड में कई भारतीय मित्रों ने और देश लौटने पर भी बहुत से लोगों ने बार-बार प्रश्न किया है कि आखिर डा० किचलू ने शान्ति के लिये ऐसी कौन बड़ी बात कर डाली जिसके लिये सोवियत ने उन्हें तीन लाख रुपये का पुरस्कार दे डाला। इस प्रश्न का उत्तर डा० किचलू के ही शब्दों में ज्यादा उचित होगा। डा० किचलू ने इस पुरस्कार के लिये धन्यवाद देते हुए कहा था—"मैं यह बहुत अच्छी तरह जानता हूँ कि मैं व्यक्तिगत रूप से इस सम्मान के योग्य नहीं हूँ। वास्तव में यह सम्मान मेरे देश की जनता द्वारा किये गये शान्ति के लिये प्रयत्नों का ही है और भारतीय शान्ति कमेटी के प्रधान के नाते मेरे द्वारा मेरे देश का यह सम्मान किया जा रहा है। हमारे देश की जनता ने सदा ही दमन और आक्रमण का विरोध किया है और सभी देशों की जनता के लिये आत्मनिर्णय के अधिकार का समर्थन किया है। हमने चीन में जापान के आक्रमण का विरोध किया, स्पेन और अबीसीनिया मे फासिस्टों के आक्रमण का विरोध किया और दूसरे महायुद्ध के समय भी हमारे देश की जनता ने युद्ध के विरोध और असहयोग की नीति के लिये आत्म बलिदान किया। आज भी हमारे देश की जनता और सरकार चालू युद्धों को समाप्त करने और भावी युद्धों को रोकने का पूरा प्रयत्न कर रही है इसलिये हमारे देश की जनता, सोवियत जनता द्वारा प्रकट की गई सद्भावना और आदर को कृतज्ञता पूर्वक स्वीकार करती है।"

रूस और भारत

प्रोफेसर धाकोव दोपहर के खाने पर आये थ और उसके बाद हम लोग उन्हें घेरकर बहुत देर तक बात करते रहे। वे मास्को में भारत सम्बन्धी खोज और अनुसन्धान का संचालन करते है। समाजवादी क्रान्ति के समय उनकी आयु इक्कीस वर्ष की थी। उन्होंने अपना यौवन क्रान्ति की सफलता और समाजवादी व्यवस्था के निर्माण में लगाया है। उस समय वे ताशकन्द में काम कर रहे थे। वहीं उन्होंने फारसी का अध्ययन किया था। १९२० और ३० के बीच में भारत और दूसरे पूर्वी देशों से जो नवयुवक संकट झेल कर सोवियत देश में पहुँचते थे उनके लिये ताशकंद में एक विद्यालय चालू था। प्रो० धाकोव उस विद्यालय में मार्क्सवाद और लेनिनवाद की शिक्षा देते थे। भारत से जाने वाले नवयुवकों से उन्होंने उर्दू सीख ली थी।

प्रो० धाकोव को हिन्दुस्तानी या उर्दू मिली हिन्दी में रुक-रुककर बात करते देख हम लोगों को बहुत भला लगा परन्तु उनकी कठिनाई का ध्यान कर हम लोगों ने उनसे

अंग्रेजी में ही बात करने का प्रस्ताव किया। प्रोफेसर ने आश्वासन दिया—"अंग्रेजी मेरे लिये हिन्दुस्तानी से अधिक विदेशी भाषा है"—और वे हिन्दुस्तानी में ही बात करते रहे। वे इस समय भारतीय समस्याओं के अधिकारी आलोचक माने जाते हैं। उन्होंने एक पुस्तक भारत के सम्वन्ध में "भारत में राष्ट्रीयताओं का निर्माण" लिखी है। अभी इस पुस्तक का अनुवाद नहीं हो पाया है।

प्रो० याकोव ने कहा—"हमें इस बात का संतोष है कि ब्रिटिश ने जो भारत और सोवियत के बीच में दीवार खड़ी कर दी थी वह गिर चुकी है और हमारे भारतीय मित्रों को हमारे देश में पधारने की सुविधा हो गई है। आप लोग स्वयं देख सकते हैं कि हम लोहे की दीवार के पीछे छिपना नहीं चाहते। हम आपसे मिलने के लिये उत्सुक हैं। हम चाहते हैं कि आप हमें अपनी आँखों देखें और समझें और साथ ही अपने विषय में हमें बतायें।"

गुजराती उपन्यास लेखक श्री देसाई ने उनसे प्रश्न किया—"ब्रिटिश और जर्मन इतिहासज्ञों ने भारत के सम्बन्ध में जो अनुसन्धान किये हैं, उनका थोड़ा बहुत परिचय हमें है। रूसी इतिहासज्ञों ने इस विषय में जो अनुसन्धान किये है, उनका हमें कुछ ज्ञान नहीं। इस विषय पर आप कुछ प्रकाश डालें तो बहुत अच्छा हो।" प्रोफेसर ने स्वीकार किया कि ब्रिटिश और जर्मन इतिहासज्ञों की अपेक्षा रूसी इतिहासज्ञों को भारत के सम्बन्ध में काम करने को बहुत कम अवसर मिला है। इसका कारण यह था कि ब्रिटिश साम्राज्य को ज़ार के समय भी और बाद में भी रूस के प्रति विकट सन्देह बना रहता था और रूसियों को भारत जाने में बहुत कठिनाई होती थी। फिर भी थोड़ा बहुत जो कुछ रूसियों ने भारत के सम्बन्ध में लिखा है, वह उपयोगी है क्योंकि उनका दृष्टिकोण अंग्रेजों के दृष्टिकोण से भिन्न था और वे ऐसी चीजें हैं जो अंग्रेज लिख ही नहीं सकते थे।

सबसे पहला रूसी यात्री निकितिन पंद्रहवी शताब्दी में भारत गया था। निकितिन स्वयं साधारण स्थिति का व्यक्ति था और वहाँ रहते समय भारतीय जनसाधारण के सुख-दुःख का भागी बनकर रह रहा था। रूस लौटने के बाद बीमार हो जाने के कारण शीघ्र ही उसकी मृत्यु हो गई इसलिये वह अधिक नहीं लिख सका। उसके बाद भी कई लोग रूस से भारत गये। भारत से तो प्रायः सदा ही लोग रूस आते-जाते रहते थे। सोलहवीं और सत्रहवीं शताब्दी में रूस के अनेक नगरों बाकू और निजनीनोवोगोर्द आदि में मारवाडी और सिन्धी व्यापारियों के मुहल्ले बसे हुए थे। राजस्थान से जैन व्यापारी भी क्रान्ति के समय तक बुखारा में आते थे। मालूम नहीं कि इन लोगों ने भी रूसी यात्राओं के वृत्तांत लिखे हैं या नहीं।

भारत की यात्रा करने वाले बहुत पुराने रूसियों में से एक सेरासीमलेबेव थे। इन्होंने हिन्दुस्तानी भाषा का एक व्याकरण लिखा था। यह व्याकरण लन्दन में प्रकाशित हुआ था। उसके बाद बर्टलिंग जो जन्म से जर्मन था परन्तु रूस में बस गया था, यहाँ से भारत गया। इसने रूसी-संस्कृत कोष बनाया था जो बहुत पुराना हो जाने पर भी अभी तक

प्रयोग में आ रहा है। उन्नीसवीं सदी में इवान पावलोविच भी भारत गया। उसका ध्यान मुख्यतः बौद्ध धर्म की ओर था परन्तु उसे सामयिक लोगों से मिलने का भी अवसर हुआ। उसने आधुनिक घटनाओं के सम्बन्ध में भी लिखा है। उसने भारत में ब्रिटिश शासन से मुक्ति के आन्दोलन की बावत लिखा है। पंजाब जाकर इसने नामधारी सिक्खों से मुलाकात की और कूकाविद्रोह के बारे में बहुत-सी बातें व्यक्तिगत जानकारी से लिखी हैं। इस पुस्तक का काफी ऐतिहासिक महत्त्व होगा और वह शीघ्र ही प्रकाशित की जायेगी। इसी के बाद स्वेरबात्सकी भारत गया। उसने भी बुद्ध धर्म और ब्रिटिश शासन व्यवस्था दोनों के बारे में ही लिखा है।

भारत की आधुनिक समस्याओं के सम्बन्ध में अनुसन्धान की रुचि क्रान्ति के बाद से हमारे यहाँ अधिक बढ़ी है। इससे पूर्व रूसी विद्वान मुख्यतः संस्कृत और पाली का ही अध्ययन करते थे परन्तु क्रान्ति के बाद से मास्को विश्वविद्यालय में उर्दू और लेनिनग्राद विश्वविद्यालय में अन्य भारतीय भाषाओं के अध्ययन का प्रबन्ध किया गया है। भारत के सम्बन्ध में सबसे अधिक काम प्रसिद्ध विद्वान बार्निकोव ने किया है। बार्निकोव ने यहाँ हिन्दी, उर्दू, पंजाबी, मराठी, बगाली पढ़ाई जाने का प्रवन्ध किया। उन्होने एक पंजाबी-रूसी कोष तैयार करवाया—यह सुनते ही सरदार गुरुबक्श सिंह कुर्सी से उछल पड़े और उन्होंने एक प्रति के लिये अनुरोध कर दिया—प्रो० द्याकोव ने आश्वासन दिया कि उसकी प्रतियाँ सभी पुस्तकालयों में मौजूद हैं और आपको भी उसकी एक प्रति मिल जायेगी बार्निकोव ने रूसी और मराठी 'स्वयं शिक्षक' भी तैयार किया है। उनका तैयार किया एक बड़ा-रूसी-हिन्दी शब्द कोष छप रहा है जो मई मास तक पूरा हो जायेगा। रूसी-बंगाली शब्द कोष भी तैयार हो चुका है। बार्निकोव ने प्रेमसागर और तुलसीकृत रामायण और महाभारत के आदि पर्व का भी रूसी पद्य में अनुवाद किया है। शेष महाभारत का भी अनुवाद हो रहा है। कालिदास के नाटकों का भी रूसी पद्य में अनुवाद हो चुका है। यह अनुवाद कविता की दृष्टि से तो बहुत अच्छे है परन्तु हमें इनसे सन्तोष नहीं। प्रो० बार्निकोव की मृत्यु से भारत के सम्बन्ध में रूस में होने वाले काम को बहुत हानि पहुँची है। प्रो० बार्निकोव ने जो प्रकाण्ड काम भारतीय संस्कृति का परिचय सोवियत को देने का किया है, उसकी गूंज भारत में भी पहुँच चुकी थी हमने विश्वास दिलाया कि उनकी मृत्यु से होने वाली हानि को भारत ने भी बहुत अनुभव किया है। गत अक्टूबर मास में इलाहाबाद में जो प्रगतिशील लेखक सघ का सम्मेलन हुआ था, उसमें उनके प्रति आदर और उनकी मृत्यु पर शोक का प्रस्ताव पास किया गया था।

प्रो० द्याकोव ने बताया कि लेनिनग्राद की लाइब्रेरी में हस्तलिखित संस्कृत और पाली ग्रंथों का काफी बड़ा संग्रह है। राहुलजी ने इनके वर्गीकरण और सूची बनाने का काम आरम्भ किया था। राहुलजी के जाने के बाद उनके रूसी शिष्य इस काम को कर रहे हैं और आशा है कि ग्रंथों का यह संग्रह भारत के प्राचीन इतिहास की अनेक कमियों को पूरा करने में सहायक होगा। इन हस्तलिखित पुस्तकों में एक मूल्यवान पुस्तक वास्को डिगामा की लिखी हुई दिनचर्या भी है। भारत के सामयिक इतिहास पर प्रो०

रीजनर ने भी गुरु गोविन्द सिंह के समय से लेकर भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के आन्दोलन के आरम्भ तक का इतिहास लिखा है। भारत के सम्बन्ध में प्रकाशित पुस्तकों में से प्रो० बृजनारायण और रजनी पामदत्त की पुस्तकों 'इंडियन इकोनोमी' और 'माडर्न इंडिया' का अनुवाद रूसी में हो चुका है। भारत की आधुनिक समस्याओं के बारे में भी रूसी जनता पर्याप्त रूप से सचेत है और भारत के सम्बन्ध में ज्ञातव्य बातें हमारी मासिक पत्रिकाओं 'नया पूर्व' और 'क्रान्तिकारी पूर्व' में निरन्तर प्रकाशित होती रहती हैं। प्रो० द्याकोव की आयु लगभग साठ है उन्हें रक्तचाप की बीमारी भी है। इसलिये हमे उनके स्वास्थ्य का ध्यान कर अपने कौतूहल का दमन करना पड़ा।

× × ×

छः जनवरी :—डा० किचलू के स्तालिन पुरस्कार पाने पर उन्हें बधाई देने के लिये भारतीय राजदूत श्री कृष्ण मेनन ने भारतीय राजदूतावास में एक चाय पार्टी की थी। इस गोष्ठी में सभी भारतीय प्रतिनिधि, भारतीय राजदूतावास के लोग तो सम्मिलित थे ही, बहुत से प्रमुख रूसी नागरिक उदाहरणत: विदेशी विभाग के चीफ डिप्टी मिनिस्टर मिस्टर याकूब मलिक, इलिया एहरनबर्ग, तिखोनोव, द्याकोव और पुदोवकिन भी सम्मिलित थे। याकूब मलिक संयुक्त राष्ट्रसघ में कई बार प्रधान के पद पर काम कर चुके हैं। उनके नाम से सभी परिचित हैं इसलिये देखने का कौतूहल था ही। गम्भीर बातचीत से पहले अभी इधर-उधर की चल रही थी। किस साथी को कुछ वर्ष पहले भारतीय समाचार-पत्रों में चली एक चर्चा याद आ गई। जिन दिनों श्रीमती विजयलक्ष्मी पंडित मास्को में भारतीय राजदूत थीं उन्होंने भारतीय राजदूतावास के लिये स्वीडन में लाख सवा-लाख रुपये का फर्नीचर मंगाया था। ऐसा बहुमूल्य फर्नीचर देख लेने की इच्छा हम लोगों को भी हुई। उसके विषय में पूछा तो उत्तर मिला कि हम उन्हीं बहुमूल्य कुर्सियों और सोफों पर बैठे बातचीत कर रहे थे इसलिये उसे विशेष ध्यान से देखा और कोई विशेषता दिखाई न पड़ने पर उस फर्नीचर की विशेषता जाननी चाही। राजदूतावास के लोग बात को टाल देना चाहते थे परन्तु हमारे आग्रह पर उन्हें कहना ही पड़ा कि विशेषता जो कुछ है सामने ही है पर ब्रिटिश और अमरीकन राजदूतावासों का यह ढंग है कि वे मास्को से अपने लिये कुछ नहीं खरीदते। उनके लिये अधिकांश सामान स्वीडन से ही आता है। शायद उस देखा-देखी से भारतीय राजदूतावास के लिये भी स्वीडन से ही फर्नीचर मंगा लिया होगा पर अब सब कुछ यहाँ से लिया जाता है।

कृष्ण मेनन ने मिस्टर याकूब मलिक से हम लोगों का परिचय कराते हुए गीता मलिक (बंगाली महिला प्रतिनिधि) को कन्धे से सहारा देते हुए याकूब मलिक के सामने ला खड़ा किया। याकूब अन्य भद्र सोवियत नागरिकों की भांति प्रायः छः फुट ऊंचे 'दोहरे कद' के लहीम शहीम व्यक्ति हैं। उस समय वे अपने पद की नीली वर्दी पहने कुछ और भी विशाल लग रहे थे। सिर के बाल मशीन से बहुत महीन कतरे हुए। गीता मलिक बंगाली भद्र युवती, कुछ तो शरीर संक्षिप्त, कुछ अपनी पीली साड़ी में इतने बड़े व्यक्ति के सामने जाने के संकोच में और भी सिमटी हुई?

कृष्ण मेनन ने गम्भीरता और विनय से गीता की ओर संकेत करते हुए याकूब मलिक को सम्बोधन किया —"Here Mrs. Malik has come." (ये श्रीमती मलिक आ गईं।) मि० मलिक गीता मलिक की ओर देख कृष्ण मेनन की ओर आंखें फाड़े चुप रह गये।

"Yes, My husband's name is..................Malik." (जी, मेरे पति का नाम.......मलिक है) गीता ने मुस्कराकर याकूब मलिक की उलझन दूर की। मि० मलिक ने सन्तोष की सांस ले गीता से हाथ मिलाया। There are so many Malik and Mrs. Malik. (जाने कितने ही मलिक हैं और कितने ही श्रीमती मलिक हैं।) सभी लोग कहकहा लगाकर हँस पड़े।

श्री कृष्ण मेनन ने डा० किचलू के सम्मान के लिये उन्हें बधाई देने का प्रस्ताव करते हुए सोवियत जनता को धन्यवाद देकर विश्वास दिलाया कि भारत की जनता और सरकार विश्व-शान्ति के लिये सोवियत के सभी प्रयत्नों में मित्र-भाव से हार्दिक सहयोग देगी।

× × ×

अपने मेजबानों को अपना कार्यक्रम बताते समय हम लोगों ने सोवियत संघ में किसी एशिया के प्रजातन्त्र को देखने की भी इच्छा प्रकट की थी। इस विषय में दूरी की अड़चन थी। डा० बुटरोव ने इस विषय में कठिनाई का उल्लेख करते हुए कहा था कि एशिया के प्रजातन्त्रों में जाना हो तो सबसे समीप ज्योर्जिया है। ज्योर्जिया जाने के लिये रेल में दो रात और अढ़ाई दिन व्यय हो जायेंगे। आप लोगों को लौटने की भी जल्दी है। इस समय विमान से यात्रा करने के लिये ऋतु अनुकूल नहीं। बर्फानी आंधियाँ लगातार चल रही हैं। रास्ते में ऊंचा कोहकाफ पर्वत पड़ता है। हम इस प्रतीक्षा में है कि किसी दिन मौसम साफ हो तो जो हो सकेगा किया जायेगा। छः तारीख को उन्होंने अगले दिन सुबह चार बजे ही विमान से ज्योर्जिया चलने के लिये तैयार रहने को कहा। हमारे पासपोर्ट उन्हीं के पास थे।

यह सोचकर कि दूसरे प्रजातन्त्र में जाते समय शायद पासपोर्ट की आवश्यकता पड़े अपने पासपोर्टों के सम्बन्ध में पूछा। उन्होंने आश्वासन दिया कि पासपोर्ट की आवश्यकता न होगी। पासपोर्ट की बात चलने पर हममें से एक साथी ने कहा कि हमारे पासपोर्टों पर सोवियत में आने की मुहर न लगाई जाय तो अच्छा हो। उनके इस अनुरोध का समर्थन एक दूसरे साथी ने भी किया। रूसी साथी अलेक पूछ बैठा कि इससे आपको क्या अड़चन होगी ? हमारे कई साथियों ने उत्तर दिया कि लौटते समय वे पश्चिमी जर्मनी, फ्रांस, इटली आदि होते हुए जाना चाहते हैं। सभी देशों में प्रवेश के समय पासपोर्ट देखे जाते हैं। पासपोर्ट पर सोवियत की मुहर होने से हम लोगों को संदिग्ध और खतरनाक व्यक्ति समझ लिया जायेगा! हमारे अपने देश लौटने पर भी शायद पासपोर्ट पर सोवियत की मुहर होना लाभदायक न होगा। सम्भव है, हम फिर कभी विदेश जाना चाहें तो यह मुहर हमारे कम्यूनिस्ट या सोवियत मित्र होने का प्रमाण होगी।

"पासपोर्ट पर सोवियत की मुहर से सोवियत के प्रति यह आशंका क्या आपकी और अन्य देशों की सरकारों के प्रति सद्भावना का प्रमाण है।" अलेक ने गम्भीरता से पूछा—"आइरन करटेन (लोहे की दीवार) सोवियत खड़ी करता है या आपकी और दूसरे देशों की सरकारें?" इस प्रसंग से बातचीत में कुछ असुविधा का वातावरण तो आ ही गया था। दिल खोलकर बातचीत कर लेना ही उचित समझा—"इस बात से आप भी इन्कार नहीं कर सकते कि इच्छा होने से ही दूसरे देश के लोगों का सोवियत में चले आना सम्भव नहीं है। सोवियत में आने के लिये प्रवेश की आज्ञा लेनी पड़ती है जो आसान नहीं, आज्ञा देने से पहले आप अपना समाधान करते ही होंगे? इस सावधानी को भी तो लोग आइरन करटेन (लोहे की दीवार) कह सकते हैं।"

दूसरे रूसी साथी ने जवाब किया—"आशंका और संदेह दोतरफा होते हैं। सोवियत से दूसरे देशों में जाने वाले लोगों पर कितने प्रतिबन्ध लगाये जाते हैं?" —उन्होंने इंगलैण्ड में होने वाली स्त्रियों की किसी कांफ्रेंस में जाने वाली सोवियत नारी प्रतिनिधि पर रोक लगाये जाने का और हमारे देश में सांस्कृतिक और साहित्यिक कांफ्रेंसों में सम्मिलित होने के लिये जाने वाले सोवियत नागरिकों पर प्रतिबन्ध लगाये जाने के उदाहरण बता दिये और बोले कि सोवियत और पूँजीवादी संसार के सम्बन्ध विच्छेद की जिम्मेवारी किस पर है? १९१७ की क्रान्ति के बाद पूँजीवादी देशों ने सोवियत को चारों ओर से घेरकर समाजवादी क्रान्ति का प्रभाव बाहर न फैलने देने का भरसक प्रयत्न किया था। उस समय जब सोवियत को सभी प्रकार की सहायता की आवश्यकता थी, किसी भी प्रकार की सहायता न आने देने के लिये सम्बन्ध विच्छेद की दीवार सोवियत के चारों ओर खड़ी कर दी गई थी। उस समय सोवियत को समाजवादी क्रान्ति के भयंकर रोग से ग्रस्त समझकर पूँजीवादी देशों की सरकारों ने अपने आपको छूत से बचाने के लिये सोवियत को निषिद्ध देश करार दे दिया था। शेष संसार से अलग रखने के लिये जो घेरा हमारे चारों ओर डाला गया था उसे उस समय 'कोर्दोसेनितेर' (स्वास्थ्य रक्षक दीवार) कहा जाता था। यह दीवार हमारे चारों ओर लगातार बनी ही रही। अब उस दीवार की जिम्मेवारी भी हम पर डाली जा रही है।

पूँजीवादी देशों के असहयोग के बावजूद हमारी समाजवादी व्यवस्था की सफलता को देखकर हमें रोगी नहीं कहा जा सकता। आज पूँजीवादी समाज को हमारे रोग से नहीं बल्कि अपने स्वास्थ्य से डर है। आज अपना रोग हमारे देश में फैलाने में लगे हैं। हम उन्हें ऐसा अवसर नहीं देते तो वे आइरन करटेन या लोहे की दीवार की शिकायत करते हैं। हम देखते-सुनते विषैले सांपो को अपने घर में घुसकर उत्पात करने का अवसर नहीं दे सकते। अनेक घटनाओ से इस बात के प्रमाण मिल चुके है कि साम्राज्यवादी शक्तियों ने हमारे यहाँ अव्यवस्था पैदाकर हमारी योजनाओं के मार्ग में अड़चनों के सभी सम्भव उपाय किये है। अमरीका की सरकार छाती ठोककर यह घोषणा करती है कि हमारे देश और पूर्वी प्रजातंत्रों में अव्यवस्था पैदाकर हमारी योजनायें असफल कर देने के लिये वह अपने बजट में अरबों डालर रखती है। अभाव से पीड़ित देशों के लोगों को भी दुष्कर्म

करने के लिये खरीद कर यहाँ भेजा जा सकता है। ऐसी अवस्था में हम चौकस न रहकर स्वयं ही उनका शिकार कैसे बन जायें? अन्य देशों से सम्बन्ध हमारे लिये किसी प्रकार की आशंका का कारण नहीं है क्योंकि हमारी व्यवस्था हमें विकास और उन्नति की ओर ले जा रही है। हमें निर्बल और दोषपूर्ण व्यवस्था से क्या भय हो सकता है? आशंका उन्हीं लोगों को है जो अपनी व्यवस्था में दोष और अड़चनें अनुभव करते हैं और हमारी व्यवस्था के सम्पर्क से भयभीत हैं। हम सभी देशों की सर्वसाधारण जनता के प्रतिनिधियों को अपने देश में आमन्त्रित करते हैं, उनका स्वागत करते हैं और उनके लिये हमारे सब द्वार खुले हैं परन्तु हम कुटिलता और कुचक्र को रास्ता देने के लिये तैयार नहीं।

स्तालिनग्राद में हम लोगों ने जो फिल्म देखी थी वह मोस फिल्म के असिस्टेंट डायरेक्टर का० प्रोलोफ की बनाई हुई थी। प्रोलोफ भी मौजूद थे। फिल्म में परियों का समावेश करने की बात पर बात चली। उनका विचार था कि फोटोग्राफी और सिनेमा के कौशल द्वारा परियों का विषय लेकर सौन्दर्य उपस्थित कर सकने में कोई एतराज नहीं होना चाहिये। यहाँ से बात ऐक्टरों और कहानी लेखकों के पारिश्रमिक पर चल निकली। मैंने जानना चाहा कि यहाँ साधारणः अच्छा ऐक्टर क्या पारिश्रमिक पाता है। उन्होंने उत्तर दिया कि वेतन हो तो लगभग हजार बारह सौ रूबल और यदि पूरी फिल्म के लिये सौदा हो तो छः सात हजार रूबल। फिल्म कहानी लेखक के पारिश्रमिक के लिये उन्होंने बताया कम से कम चालीस हजार रूबल।

प्रोलोफ की बात से विस्मित हो उन्हें बताया कि हमारे यहाँ सर्वोत्कृष्ट ऐक्टर या ऐक्ट्रेस एक लाख रुपये पा सकती है परन्तु कहानी लेखक दस हजार भी नहीं पा सकता। इस बार उनके विस्मित होने की बारी थी। "यह कैसे सम्भव है?"—उन्होंने पूछा, "मूल वस्तु तो कहानी है। कहानी न होने से एक्टर क्या करेगा?" उन्हें समझाना चाहा कि हमारे यहाँ फिल्म कहानी पर नहीं एक्टर ऐक्ट्रेसो के नाम पर चलती है। बात उनकी समझ में न आ रही थी परन्तु मैं इः इसके लिये क्या तर्क दे सकता था?

●

गुर्जी (ज्योर्जिया)

बिलीसी (तिफलिस)

जिस देश में सूर्योदय नौ बजे हो वहाँ सुबह चार बजे को रात के चार बजे कहना ही अधिक उचित होगा। सुबह चार बजे गुर्जी (ज्योर्जिया) चलने के लिये तैयार होने का आदेश था। तान्या ने आश्वासन दिया कि वह सबको साढ़े तीन पर जगा देगी और चार बजे सब लोग अपने-अपने बैग लेकर होटल के स्वागत-कक्ष में आ जायं। गहरी नींद में बहुत जोर से टेलीफोन की घन्टी बजी। उठकर सुना तो तान्या की आवाज थी। "साढ़े तीन बज गये हैं"—उसने कहा—"उठिये और अपने साथी को भी उठाकर नीचे आइये। ठीक चार बजे चलना जरूरी है।"

नीचे पहुँचकर देखा, बुटरोव हम लोगों को गिन-गिनकर जल्दी-जल्दी चाय कलेवा लेकर गाड़ी में बैठने का आदेश दे रहे थे। वैसा ही किया भी। सोते हुए मास्को की सड़कों पर अछूती बर्फ की सफेद चादरें बिछी हुई थीं। दोहरी-तेहरी बिजली की पंक्तियों का प्रकाश उन पर खूब चमक रहा था। मोटरें फिसलती हुई नगर को पार कर नगर के बाहर विमानों पर अड्डे की ओर चली जा रही थीं। नगर के बाहर बत्तिया अधिक दूर-दूर थीं इसलिये घुप्प अंधेरा था। नगर के बाहर सर्दी ऐसी कि हाथ-पांव सुन्न हुए जा रहे थे हालांकि मोटरों में बिजली की अंगीठियां मौजूद थीं। मास्को विमानों के अड्डे पर समय से बीस मिनट पहले ही पहुँच गये इसलिए एक-एक प्याला चाय पी कुछ गरमी पा सके। भयकर ठिठुरन दूर हुई।

हम लोगों को बँटकर दो विमानों में बैठना पडा। विमान भारत में चलने वाले 'डाकोटा' के ढंग के थे। आकार भी वैसा ही परन्तु उपयोग में आने के कारण कुछ घिसे हुए। कुर्सियों के साथ यात्रियों को बांध देने वाली पेटियां नहीं थीं। यह देख कुछ आश्चर्य हुआ। हमारे यहाँ और दूसरे देशों में भी विमान के उठते और उतरते समय यात्रियों को कुर्सी में लगी पेटियां कस लेने के लिये कह दिया जाता है ताकि अपनी जगह से गिर न पड़ें। डा० बुटरोव से पेटी न होने के कारण गिर जाने की आशंका प्रकट की। उन्होंने तसल्ली दी—"हमारा पाइलट गिरने नहीं देगा।"

विमान चला। कई घंटों से बर्फ पर खड़े रहकर ठंडे हो गये विमान में बैठते ही जो सर्दी लगी, उसके कारण किसी के लिये कुछ बोल सकना संभव न रहा। मालूम होता था, जैसे पांव आरी से काटे जा रहे हैं। सारा शरीर बार-बार काँप उठता। जान पड़ता कनपटियों में कील से गड़े जा रहे हैं। घड़ी के हिसाब से तो यह हाल आध घंटे ही रहा होगा परन्तु एक-एक मिनट एक-एक घंटे के बराबर जान पड़ा। लगभग आधे घंटे में

विमान गरम हो गया। नीचे बर्फ से ढके मैदान सुन्दर लगने लगे। रोस्तोव के विमानों के अड्डे पर दस-पन्द्रह मिनट को नाश्ते के लिये ठहरे और फिर कोहकाफ की ओर उड़ चले।

सोवियत विमानों में अपने यहाँ के विमानों की तरह यात्रियों के लिये इंजन या विमान-चालक के स्थान की ओर न जाने का नियम बहुत कड़ाई से नहीं बरता जाता। हम लोगों के बैठने की जगह के सामने सामान रखने का कमरा था और उसके आगे इंजन और विमान-चालक के बैठने की जगह। बीच के दरवाजे खुले हुए थे। हम लोग कौतूहल से उस ओर देख रहे थे। विमान-चालक दो रहते हैं। उनमें से एक ने हम लोगों के बीच से होकर विमान के पिछले भाग की ओर जाते हुए मुस्कराकर अभिवादन किया। हम लोग पूछ बैठे कि क्या सामने जाकर सामने का दृश्य देख सकते हैं? उसके आपत्ति न करने पर हम लोग बारी-बारी से सामने जा विमान-चालकों के साथ बैठ दृश्य देखने लगे और विमान के कल-पुर्जों की बाबत भी समझने की चेष्टा करने लगे।

दो विमान-चालकों में से एक स्त्री थी। दोनों बारी-बारी से विमान चलाते थे और फुर्सत के समय समाचार पत्र या पुस्तक पढ़ने लगते थे। पढ़ते समय कान पर हैडफोन लगाकर रेडियो का गाना भी सुनते रहते। हम लोग उनसे अनेक प्रश्न पूछते रहे कि रास्ता किस तरह पहचानते हो, घना कोहरा और धुन्ध होने पर विमान को सम्भावित संकट से कैसे बचाते हो? उन्होंने हमें रेडर आदि यन्त्र दिखाकर विश्वास दिलाया कि चालक का दिमाग सही अवस्था में रहने पर दुर्घटना का कोई कारण नहीं हो सकता। एक विमान-चालक ने बताया कि वह अब तक बारह हजार घन्टे उड़ चुका है। इसमें युद्ध के समय जर्मनी में बम फेंकने के लिये जाने वाली यात्रायें भी शामिल थीं। उस समय अलबत्ता उसके विमान को दो बार चोट आई परन्तु उसका विमान गिरा नहीं। युद्ध में खाई चोटों को वह दुर्घटना नहीं समझता। उसका विश्वास था कि विमान-यात्रा सड़क पर पैदल चलने से भी अधिक निर्भय है। सड़क पर चलने वाला तो दूसरे की भूल से भी चोट खा सकता है क्योंकि बचने की जगह तंग रहती है, विमान चलाने वाले के लिए आकाश में जगह की तंगी का प्रश्न नहीं।

गुर्जी कोहकाफ का देश है। समुद्र तल से कोहकाफ की ऊंचाई चौदह हजार फुट से अधिक है। सभी चोटियां बर्फ से ढकी हुई थीं। भाग्य से सूर्य भी निकला हुआ था। छोटी बड़ी अनेकों बर्फानी चोटियों के जमघट में चोटियों के कुछ भाग सूर्य के सम्मुख होने के कारण उज्ज्वल और कुछ विमुख होने के कारण श्यामल जान पड़ रहे थे। कुछ चोटियों से सुनहरी, कुछ से गुलाबी और कुछ से नीली आभा झलक रही थी और कुछ श्वेत थीं। दर्शक को निर्वाक कर देने वाला एक अद्‌भुत सौंदर्य! कोहकाफ की परियों की कहानियां भी प्रसिद्ध हैं। इस अलौकिक स्थान में जिन परियों के निवास की कल्पना की गई है उनका सौंदर्य और रूप का वर्णन करने के लिए भी कल्पना को यथासम्भव परिश्रम करना आवश्यक था। कुछ ही दूर आगे जाकर कुछ नीचे परन्तु बर्फ से ढके पहाड़ों पर से गुजरते

समय दायीं ओर काले समुद्र का गहरा नीला विस्तार दिखाई दिया। कुछ और आगे बढ़ हरी पहाड़ियों और वनराशियों को पार कर हम लोग गुर्जी (ज्योर्जिया) की राजधानी 'बिलीसी' (तिफलिस) पहुँच गये।

बिलीसी (तिफलिस) आकर पहली बात मन में यही आई कि एशिया में आ गये। हम लोग लगभग एक बजे पहुँच गये थे। धूप खिल-खिला रही थी और ठंडी हवा बह रही थी। बिलीसी की शान्तिसभा के कुछ स्त्री-पुरुष स्वागत के लिये विमान-अड्डे पर आये थे। वे लोग ओवरकोट पहने हुए थे परन्तु हम लोगों की इच्छा हो रही थी कि अपने ओवरकोट और बालदार खाल की टोपियां उतारकर फेंक दें। मास्को की सर्दी के बाद बिलीसी ऐसा ही जान पड़ रहा था जैसे हेमन्त की रात बीत बसन्त का प्रभात हो गया हो!

बिलीसी में हम लोग 'इन्टूरिस्ट होटल' में ठहरे थे। होटलों के कमरों को भाप से गरम करने का प्रबन्ध तो यहाँ भी जरूर था परन्तु पहले दिन तो ऐसा जान पड़ा कि यह अनावश्यक है। दूसरे दिन अलबत्ता हमने थोड़ी बहुत गरमी की इच्छा अनुभव कर हीटर का पाइप कुछ खोल दिया। एशिया में आ जाने के ख्याल से हम सब ओर एशियाईपन भांपने की चेष्टा कर रहे थे। लोगों को दूर से "रे! रे! अरे! अरे!" पुकारते सुना तो वही अच्छा लगा। बिलासी के लोग-बाग योरुपियनों की तरह चुप-चुपीते नहीं बल्कि अपने लोगों की तरह खुशमिजाज लगे। होटल के सामने सड़क पर या दुकानों में जहाँ कहीं भी हमें देखते घेरकर खड़े हो जाते। हमारी भाषा न जानने की बेबसी उनके चेहरों पर झलक आती। एक नौजवान जो दो तीन बार सड़क पर मिला और शायद अंग्रेजी के दो-चार शब्द जानता था, हमें देखते ही हाथ उठाकर मुस्कराहट से "गुडबाई? गुडबाई?" पुकारने लगता। उसे गुडबाई और गुडमार्निङ्ग में कोई अंतर मालूम नहीं था।

इन्टूरिस्ट होटल के भोजन में भी एशिया का प्रभाव स्पष्ट था। मेज-कुर्सी, छुरी-कांटा, चम्मच तो योरुपियन ढंग का ही था परन्तु खाने का रंग और स्वाद भिन्न; उसमें मसाले भी मौजूद थे। मेज पर लाल मिर्च और चटनी भी। बैगन का भुर्ता, कबाब और कच्चा प्याज। मेहमानों को अधिक से अधिक खिला सकने का एशियाई आग्रह भी। अपनी भाषा, संगीत, साहित्य तथा दूसरे सांस्कृतिक पहलुओं की रक्षा करते हुए भी बिलीसी के लोगों ने पोशाक में योरुपियन ढंग ही अपना लिया है। विशेषकर स्त्रियों ने, शायद इसका कारण व्यवहार और पहनावे को औद्योगिक जीवन के ढंग पर ढालने की आवश्यकता है।

संध्या समय शान्तिसभा के लोगों ने हमें अपने यहाँ चाय के लिये बुलाया था। चाय से पहले सब लोग एक बड़े से हाल में इकट्ठे हो रहे थे। एक व्यक्ति काली वर्दी पहने दिखाई दिया। सिर उस्तरे से सफाचट, कंधों और आस्तीनों पर बहुत से फीते और सीने पर झलमल करते सोने के चार पदक। प्रत्येक व्यक्ति उसके लिये सम्मान से रास्ता छोड़कर अलग हो जाता था। हम लोग इतना तो अनुमान कर ही सकते थे कि निश्चय ही गत युद्ध में विशेष सम्मान प्राप्त कोई महासेनापति होगा। पर कौन?

अपने साथ मास्को से आई गैनरीटा से जिज्ञासा की—"यह कौन महापुरुष है?" गैनरीटा ने अपना अज्ञान प्रकट कर कहा कि वह किसी ज्योर्जियन से पूछकर बतायेगी। समीप ही खड़ी एक प्रौढ़ा से उसने पता लिया और स्वयं भी विस्मय से भौहें चढ़ा हमें बताया—"निश्चय ही वह महापुरुष है। उसे चार बार लेनिन स्वर्ण पदक मिल चुका है परन्तु वह जनरल नहीं। स्ताखानोवाइट इंजन ड्राइवर है। कम कोयला खर्च करके अधिक से अधिक तेज चाल इंजनों को दे सकने में उसने बहुत काम किया है?"

सौभाग्य से गैनरीटा ने जिस प्रौढ़ा से प्रश्न किया था वह अंग्रेजी खूब जानती थी। उन्होंने स्वयं ही आकर चार स्वर्ण पदकधारी इंजन ड्राइवर की महिमा का परिचय देना शुरू किया और उनकी श्रद्धा भी ठीक वैसी ही थी जैसी कि किसी महान विजेता सेनापति के प्रति हो सकती है। उसके बाद चाय पीते समय मैं बहुत देर तक यही सोचता रहा कि पूँजीवादी देशों में समाजवाद की बाबत बात करते समय प्रायः ही लोगों को यह समस्या चिन्तित करती है कि समाजवाद में व्यक्ति को अधिक श्रम करने, आविष्कार करने और योग्यता प्रदर्शन करने के लिए प्रोत्साहन कैसे मिलेगा?

बिलीसी के हमारे मेजबानों को यह चिन्ता थी कि गुर्जी में केवल तीन-चार दिन ठहरकर हम उनके देश का क्या परिचय पा सकेंगे? इसलिए उस रात उन्होंने गुर्जी के प्रदेश और जनता के रहन-सहन के ढंग और अपने नये निर्माणों का परिचय देने के लिये एक रंगीन फिल्म हमें दिखा दी।

गुर्जी हिमाच्छादित कोहकाफ पर्वत के आंचल में फैला, एक ओर काले समुद्र को लिये, सुन्दर नदियों से सिंचा; गल्ले की फसलों से लहलहाते मैदानों और फलों के उपवनों से भरी उपत्यकाओं का देश है। प्रकृति ने तो उसे समृद्ध बनाया ही था पर प्राकृतिक समृद्धि का वरदान उसे शताब्दियों तक तुर्की, फारसी और रूसी साम्राज्य लोलुपों का शिकार भी बनाता रहा। अब नई व्यवस्था ने उसे औद्योगिक रूप से भी समृद्ध कर सशक्त भी बना दिया है।

कुएं में छापाखाना

बिलीसी में विशेष ऐतिहासिक महत्त्व की चीज वह गुप्त छापाखाना है जिसे का० स्तालिन और उनके साथियों ने जारशाही के विकट दमन के समय क्रान्ति के विचारों के प्रचार और क्रान्ति की तैयारी के लिये एक कुएं में बनाया था। बिलीसी और गुर्जी के निवासी बातचीत में प्रायः ही याद दिला देते हैं कि का० स्तालिन गुर्जी के थे। उनका जन्म बिलीसी से लगभग अस्सी मील दूर 'गोरी' कस्बे में हुआ था। उन्होंने अपना बचपन यहाँ ही बिताया था। गुर्जी यद्यपि जार के समय उसके साम्राज्यवादी दमन का शिकार था परन्तु क्रान्ति के प्रयत्नों में यह कभी पीछे नहीं रहा। क्रान्ति की ऐतिहासिक स्मृतियों में से यह कुएं का छापाखाना विशेष महत्त्व का स्थान है।

१९०३ में जब का० स्तालिन जारशाही की जेल में थे, उन्होंने इस छापेखाने की योजना बनाकर भेजी थी। उस विकट दमन के समय जब मुंह खोलते ही आदमी की

गोली का शिकार हो जाता था, क्रान्ति के प्रचार का साधन गुप्त साहित्य ही हो सकता था। गुप्त साहित्य को छापना टेढ़ी समस्या थी। कोई प्रेस छापने के लिये तैयार न होता। प्रेसों पर जारशाही की इतनी कड़ी नजर रहती थी कि क्रान्तिकारियों के लिये साधारण अवस्था में अपना प्रेस बना लेना संभव नहीं था।

अनाज और चारा रखने की एक खत्ती थी। खत्ती में से एक सुरंग समीप अधबने सूखे कुएं तक चली गई थी। कुएं की आधी ऊंचाई से दूसरी सुरंग पड़ोस में एक रेलवे मजदूर के मकान के तहखाने में गई थी। यहाँ प्रेस था। प्रेस के इस रास्ते का पहला भाग जिन मजदूर साथियों ने बनाया था, उन्हें रास्ते के दूसरे भाग का और दूसरा भाग बनाने वालों को पहले भाग का कुछ परिचय नहीं था। प्रेस का एक रास्ता रेलवे मजदूर के मकान से भी था। परन्तु यह कभी-कभी ही, जब भारी सामान भीतर लाना आवश्यक होता, तभी खोला जाता। यह प्रेस १९०३ के अन्त से अप्रैल १९०६ तक काम करता रहा। औसतन पांच-छः हजार प्रतियां क्रान्तिकारी पत्र की रूसी, ज्योर्जियन और आरमेनियन भाषाओं में यहाँ नित्य छापी जाती थीं; इसके अतिरिक्त परचे और छोटी-मोटी पुस्तकें भी।

जारशाही पुलिस को यह तो सन्देह था कि रेलवे मजदूर के मकान के आस-पास से छपा हुआ साहित्य आता जाता है परन्तु प्रेस के स्थान का ठीक अनुमान करना कठिन था। बार-बार इस मकान की तलाशी ली गई परन्तु कुछ न मिला। सातवीं बार जब इस मकान की तलाशी ली जा रही थी, रेलवे मजदूर की सहृदया पत्नी ने पुलिस अफसरों की मुर्गी और शराब से इतनी खातिर की कि वे लोग उसे राजभक्ति का प्रमाण-पत्र देकर चल ही दिये थे कि इतने में बाहर खड़े सिपाहियों में से एक को खत्ती के बारे में कुछ सन्देह हो गया। खत्ती में नीचे उतरने पर सुरंग की राह भीतर जाने का साहस पुलिस को न हुआ। सन्देह में ही पुलिस ने मकान को आग लगाकर अपना कर्त्तव्य पूरा किया।

क्रान्ति के बाद १९३५ में इस प्रेस का जीर्णोद्धार करने का निश्चय किया गया और तब से यह ऐतिहासिक स्मृति के रूप में सुरक्षित है। छापे की मशीन और टाइप के केसों के साथ-साथ ही खाना खाने व पकाने के वे बर्तन भी सुरक्षित हैं जिनका उपयोग यहाँ काम करने वाले क्रान्तिकारी लोग करते थे।

बेरिया बाल-महल

इन्टूरिस्ट होटल के सामने ही, सड़क पार बांई ओर बिलीसी का बेरिया बाल-महल है। यों तो सोवियत में मजदूरों और बच्चों को क्लबों की इमारतें महलों के ही अनुपात में बनाई गई हैं और कहलाती भी महल ही हैं परन्तु बेरिया बाल-महल बिलीसी के बच्चों की क्लब बना दिये जाने से पहले भी महल ही था। तब इस इमारत में जार के ज्योर्जिया पर शासन करने वाले वाइसराय रहते थे। क्रान्ति के बाद इसे किसी राष्ट्रपति का राष्ट्रभवन न बनाकर, इसका और विस्तार कर इसे नगर का बाल-महल बना दिया गया।

इस बाल-महल में अड़तालीस बड़े-बड़े भवन हैं और दो सौ कमरे। एक बड़ा बाग भी धूप रहने पर बच्चों के खेलने के लिये है। आठ हजार लड़के-लड़कियां, सात से अट्ठारह वर्ष की आयु तक के इस क्लब के सदस्य हैं। दो सौ अध्यापक-अध्यापिकायें यहाँ बच्चों की देखभाल के लिये नियुक्त हैं। यह स्कूल नहीं, केवल बच्चों के मन-बहलाव और खेल की जगह है। यहाँ बच्चे खेल-खेल में औद्योगिक शिक्षा, संगीत, साहित्य और कला के प्रति रुचि पाकर इनकी जानकारी भी पाते हैं। बिलीसी में यही एक बाल-महल नहीं, इससे छोटे-छोटे और भी कई बाल-महल हैं। सब बाल-महलों को मिलाकर एक लाख बीस हजार बच्चों के लिये प्रबन्ध है। अभी बिलीसी में बच्चों की संख्या एक लाख ही है पर नगर बढ़ रहा है। नगर में प्रत्येक बच्चे को सप्ताह में कम से कम दो बार इन महलों में दो घन्टे के लिये आना पड़ता है। छुट्टियों के दिनों में दिन भर यहाँ कुछ न कुछ हुआ ही करता है।

हम यहाँ आये तो स्कूलों में बड़े दिन की छुट्टियां ही थीं। प्रायः साढ़े नौ बजे बाल-महल पहुँचे। ड्योढ़ी के साथ के एक बड़े से भवन में बच्चों का संगीत-नाट्य चल रहा था। बाकायदा रंगमंच, यवनिका और पर्दे; अभिनेता भी बच्चे ही थे परन्तु भिन्न-भिन्न पशुओं के हू-बहू रूप में; कोई बकरी, कोई गधा, कोई कुत्ता, कोई भालू बना हुआ पशुओं की सभा का अभिनय था। भवन बाल-दर्शकों से भरा हुआ था और वे आनन्द से विभोर होकर किलक रहे थे। कभी खिलखिला करके हंस पड़ते, कभी उत्साह से अपनी कुर्सियों से उछल पड़ते। कुछ बच्चे ढाई-तीन वर्ष की आयु के भी थे जिन्हें उनकी मातायें यह लीला दिखाने के लिये गोद में लिये बैठी थीं। हम लोगों के सहसा खेल के बीच में जा घुसने से कुछ विघ्न तो जरूर हुआ परन्तु बच्चों ने हमारे लिये तुरन्त जगह बना दी। नाटक समाप्त होने पर एक सामूहिक संगीत हुआ। संगीत की अध्यापिका इस बात के लिये सतर्क थीं कि सभी बच्चे मुंह खोलकर गा रहे है या नहीं।

इस संगीत भवन से निकल हमने बच्चों को खेल-खेल में शिक्षा देने के दूसरे विभागों का चक्कर लगाया। कुछ कमरों में एक ऐतिहासिक संग्रहालय था जहाँ बच्चों के लिये ज्योर्जिया और रूस के इतिहास में रुचि पैदा करने की सामग्री मौजूद थी। कुछ कमरों में विज्ञान की ओर रुचि आकर्षित करने का प्रबन्ध है। कुछ कमरों में रेल के इंजन, मोटरों और विमानों की मशीनें खिलौनों के रूप में बनी हैं। यहाँ बच्चे इन मशीनों को खोलते और जोड़ते हैं। कुछ कमरों में चित्रकारी और संगीत की शिक्षा का प्रबन्ध और कुछ कमरों में फोटोग्राफी भी सिखलाई जाती है।

एक कमरे में लगभग सोलह से अट्ठारह वर्ष की आयु के लड़के-लड़कियां एक अध्यापिका को घेरे हुए अपने लिखे लेख और कहानियां सुनाकर उन्हें सुधार रहे थे। बच्चों ने जानना चाहा कि हम लोगों में कोई लेखक या कवि भी हैं? उन्होंने बताया कि रूसी और ज्योर्जिया की भाषा में उन्होंने भारतीय लेखकों के अनुवाद पढ़े हैं। वे मुल्कराज आनन्द, हीरेन चट्टोपाध्याय, कृष्णचन्दर और वल्लाथोल आदि के नाम से परिचित थे।

यह पूछने पर कि उन्होंने कृष्णचन्दर की कौन-सी रचना पढ़ी है, एक लड़की ने बताया कि कृष्णचन्दर ने एक लड़की के नाम जो पत्र लिखा है।

राष्ट्रभाषायें और सोवियत राष्ट्रसंघ की भाषा

बाल-भवन का अपना पुस्तकालय भी है। जिसमें छियत्तर हजार पुस्तकें हैं। पुस्तकाध्यक्ष ने बड़े गर्व से हमें ज्योर्जियन भाषा में तुलसी रामायण का अनुवाद दिखाया। यह पूछने पर कि पुस्तकालय में किस-किस भाषा की पुस्तकें हैं, मालूम हुआ कि रूसी और ज्योर्जियन भाषा की पुस्तकें लगभग बराबर ही हैं। इससे कुछ विस्मय हुआ क्योंकि ज्योर्जिया की अपनी भाषा और लिपि रूसी से बिलकुल भिन्न है। सोवियत राष्ट्रसंघ के सभी राष्ट्रों में पूरी शिक्षा राष्ट्रों की अपनी-अपनी भाषाओं मे दी जाती है।

पुस्तकाध्यक्ष से प्रश्न किया कि इन बालकों की मातृभाषा ज्योर्जियन है। कम आयु के बच्चों के लिये बनाये गये इस पुस्तकालय में रूसी भाषा की इतनी अधिक पुस्तकों का क्या उपयोग हो सकता है? उन्होंने उत्तर दिया—'क्यों; हमारे यहाँ प्रत्येक बच्चा रूसी पढ़ना-लिखना और बोलना सीखता है।'

बात स्पष्ट करने के लिये अपने प्रश्न को दोहरा कर—'यहाँ बच्चों की मातृभाषा तो ज्योर्जिन है। किस आयु से या किस कक्षा से इन्हें रूसी पढ़ाई जाती है?' उत्तर मिला—'पहली कक्षा से।' फिर प्रश्न किया—'पहली ही कक्षा से मातृभाषा के साथ-साथ रूसी पढ़ाने का नियम केवल ज्योर्जिया में ही है अथवा सोवियत संघ के अन्य राष्ट्र में भी?' उपस्थित ज्योर्जियन और रूसी लोगों ने विश्वास दिलाया कि मातृभाषा के साथ पहली कक्षा से ही रूसी पढ़ाने का नियम सभी राष्ट्रों में है। सोवियत संघ के सभी राष्ट्रों में पूरी शिक्षा और शासन व्यवस्था अपनी-अपनी मातृभाषाओं में चलती है परन्तु रूसी भाषा सोवियत के सभी राष्ट्रों में परस्पर विचार-विनिमय का सांझा माध्यम है इसलिये सोवियत नागरिकों के विकास के लिये और सोवियत राष्ट्रों के पारस्परिक सम्पर्क के लिये रूसी भाषा की अनिवार्य उचित शिक्षा उपयोगी और परम् आवश्यक है।

हमारे अपने देश में राष्ट्रभाषा का प्रश्न विकट उलझन बना हुआ है। अनेक प्रगतिवादी लोगों ने भारत के सभी प्रदेशों के लिये हिन्दी के राष्ट्रभाषा नियत किये जाने पर आपत्ति करते हुए यह तर्क भी दिया है कि भारत की तरह सोवियत भी बहुभाषा-भाषी देश है। वहाँ सब प्रदेशों या राष्ट्रों की अपनी-अपनी अनेक मातृभाषायें हैं। उन प्रदेशों की मातृभाषा और राष्ट्रीयता को उचित महत्त्व देने के कारण से सोवियत राष्ट्रसंघ में रूसी को राष्ट्रभाषा नहीं बनाया गया; भारत में हिन्दी को राष्ट्रभाषा बना देना भारत के दूसरे प्रदेशों के साथ अन्याय है इसलिये अपने साथियों, विशेषकर कम्युनिस्ट साथियों का ध्यान इस ओर दिलाकर उनसे रूसी साथियों का यह उत्तर नोट कर लेने का अनुरोध भी किया।

भारत के लिये राष्ट्रभाषा के प्रश्न पर विचार करते समय यह भी ध्यान में रखना आवश्यक है कि सोवियत एक राष्ट्र नहीं बल्कि अनेक राष्ट्रों का संघ है। उन सबकी

अपनी-अपनी राष्ट्रीय मातृभाषायें हैं। अनेक राष्ट्रों के लिये एक राष्ट्रभाषा नियत कर देना बहुत से राष्ट्रों पर अन्याय समझा जा सकता था परन्तु सोवियत संघ के राष्ट्रों ने अनुभव के परिणाम स्वरूप सभी राष्ट्रों के सांझे हित की दृष्टि से रूसी को सोवियत राष्ट्रसंघ की सांझी भाषा स्वीकार कर लिया है। यदि भारत को एक राष्ट्र मानने के प्रश्न को विवादास्पद भी माना जाये तो भी देश के लिये एक सांझी भाषा नियत करना, चाहे वह हिन्दी ही क्यों न हो, किस तर्क से अन्याय माना जा सकता है? और यदि सोवियत राष्ट्रसंघ में सामूहिक विकास के लिये एक सांझी भाषा अनुभव के आधार पर उपयोगी समझी गई है तो क्या भारत के भिन्न-भिन्न भाषा-भाषी प्रान्तों के लिये जिनका ऐतिहासिक विकास एकता और मिश्रण की दिशा में रहा है एक सांझी भाषा उपयोगी नहीं होगी?

बाल-महल की एक रंगशाला में कठपुतलियों का नाच हो रहा था। कहानी तो मुर्गे, बिल्ली और कुत्ते में झगड़े की थी; जैसी कहानियां हमारे पंचतन्त्र में अनेक हैं परन्तु इन जन्तुओं के रूप और उनके व्यवहार इतनी पूर्णता से प्रस्तुत किये जा रहे थे कि देखकर साफ समझ में आ जाता था कि इन कठपुतलियों के सूत्र खींचने वाले लोग मंजे हुए कलाकार हैं। यह मास्को में ही मालूम हो चुका था कि बच्चों को ऊंचे दर्जे की कला का परिचय देने के लिये बाल-महलों में बड़े से बड़े, यहाँ तक कि बोलशोई रंगशाला और चाईकोवस्की संगीतशाला के कलाकारों का भी सहयोग प्राप्त किया जाता है। खेल इतने अच्छे ढंग से हो रहा था कि हम लोग खेल की झांकी भर ले आगे बढ़ जाने की बजाये खड़े होकर खेल को अन्त तक देखते रहे। खेल समाप्त होने पर कठपुतलियों के सूत्र खींचने वाले कलाकार ओट से निकल सामने आये तो दांतों तले उंगली दबानी पड़ी। यह बाल-महल के ही लड़के-लड़कियां थे। उनमें से किसी की आयु तेरह चौदह वर्ष से अधिक न थी।

एक खूब बड़े भवन में छः वर्ष से कम आयु के बच्चों का जमघट था। कुछ बच्चे तो इतने छोटे थे कि उनकी मातायें उन्हें गोद में लिये खड़ी थीं। भवन के बीचों-बीच फर्श पर एक देवदार का कृत्रिम पेड़ खड़ा था। पेड़ की हरियाली में जगह-जगह रुई चिपका कर ऐसे बना दिया गया था मानों भारी बर्फ पड़ी हो। शाखाओं में रंग-बिरंगे गुब्बारे और सैकड़ों खिलौने बधे थे। बिजली की सैकड़ों छोटी-छोटी बत्तियां भी वृक्ष की शाखाओं में जगमगा रही थीं। चार-पांच युवती अध्यापिकायें और एक युवक रुई भरे श्वेत वस्त्र और खूब सफेद लम्बी सी दाढ़ी-मूंछ लगाये, सफेद ऊंचा नोकदार टोपा पहने बाबा क्रिसमस बना हुआ छोटे-छोटे बच्चों को वृक्ष के चारों ओर नचा रहे थे। कुछ बच्चे बाइसिकलों, खिलौने की बड़ी मोटरों या बिना पहियों की बरफ पर फिसलने वाली गाड़ियों पर वृक्ष का चक्कर लगा रहे थे। इन बच्चों के चारों ओर स्वयं नाच सकने वाले बच्चे एक दूसरे का हाथ पकड़े गोल बांधे ल······ल······ल······ला!······ल······ल······ल······ला!······ला·········· ला!······की ताल देते हुए नाच रहे थे। बच्चे इतने निःशंक थे कि हमारे साथी सरदार गुरुबख्श सिंह की सफेद पगड़ी और लम्बी सफेद दाढ़ी को देख उन्हें दूसरा बाबा क्रिसमस समझ लिया और नचाने के लिये खींच ले गये।

बाल-महलों के कार्यक्रम में व्यायाम और स्वास्थ्य सुधार की शिक्षा को विशेष महत्त्व दिया जाता है। सबसे बड़ा भवन व्यायाम के लिये ही है। छोटे बच्चों की उछल-कूद और फुर्ती तो देखी ही थी परन्तु सोलह-अट्ठारह वर्ष की लड़कियों को भी केवल बनियान, जांघिया और मोजे पहने निर्विकार और उन्मुक्त रूप से व्यायाम करते देखा, यह नैतिकता का सबसे बड़ा पाठ था। गुर्जी कोहकाफ का देश है। कोहकाफ की परियों की दन्तकथायें प्रसिद्ध हैं। कभी वे कल्पना वस्तु ही रही होंगी परन्तु सोवियत की स्वास्थ्य सुधार की योजनायें परियों की कहानियों को वास्तविकता का रूप दे रही हैं परन्तु यह परियां शाहजादों के खिलौने नहीं सोवियत की आत्मनिर्भर नारियां हैं।

सोवियत वास्तव में बच्चों का स्वर्ग है क्योंकि वह अपने भविष्य में असीम विकास और सुधार की आशायें देखता है क्योंकि उसका दृष्टिकोण व्यक्ति के जीवन की नश्वरता से निश्चित नहीं होता बल्कि समाज के जीवन की अमरता से होता है। मास्को में नव वर्ष के उत्सव से एक दिन पहले भी हम लोग एक औद्योगिक-संघ के बाल-महल में गये थे। उस समय वहाँ बच्चों का उत्सव चालू था। एक बहुत बड़े भवन में बच्चों के लिये नाटक हो रहा था। एक बड़े भवन में हिंडोले लगे हुए थे। एक-एक भवन में मिकी माउस के ढंग की एक फिल्म चल रही थी। एक दूसरे भवन में जादू के खेल दिखाकर उसके रहस्य बताये जा रहे थे। सभी भवनों में मिलाकर कम से कम चार-साढ़े चार हजार बच्चे रहे होंगे। बाल-महल से निकलते समय प्रत्येक बच्चे को एक थैला उपहार का भेंट किया जाता था जिसमें दो नारंगियां, दो पैकेट चाकलेट और दो-दो मुट्ठी टौफी और लेमनड्राप थे। बच्चों के उत्सव में गये थे इसलिये हमें भी अनुशासन से क्यू में खड़े होकर थैला लेना पड़ा। मास्को में यह तो सुना था कि नगर के भिन्न-भिन्न भागों में बच्चों के ऐसे उत्सव नियमित रूप से किये जाते हैं और इस बात का ध्यान रखा जाता है कि कोई भी बच्चा इनमें सम्मिलित होने से शेष न रहे। उस समय यह ख्याल हुआ था कि यह सब कुछ मास्को जैसे बड़े नगर में ही सम्भव है परन्तु बितीसी में जो कुछ देखा वह मास्को से इमारतें छोटी होने पर भी वास्तविकता में उससे अधिक ही पाया।

बच्चों के विकास के प्रति विशेष ध्यान सोवियत जीवन की प्रमुख विशेषता है। सभी संस्थाओं और अवसरों पर, चाहे गम्भीर महत्वपूर्ण कार्य हों या विनोद का अवसर, बच्चों के लिये सुविधा का प्रबन्ध पहले किया जाता है। एक दिन हम लोग मास्को के समीप एक बाल-निवास देखने गये थे। यहाँ युद्ध में वीरगति प्राप्त लोगों के बच्चे या ऐसे बच्चे जिनके माता-पिता किसी रोग या दुर्घटना के कारण मर चुके थे, रखे जाते हैं। हमारे देश में या अन्य पूँजीवादी देशों में इस प्रकार की संस्थाओं को अनाथालय या यतीमखाना कहा जाता है। सोवियत में उन्हें बाल-निवास पुकारा जाता है। वहाँ किसी भी बच्चे को अनाथ समझने का कोई कारण नहीं। बच्चों की पोशाकों और व्यवहार से अभाव या दीनता का कोई भाव नहीं झलकता। मास्को के अच्छे स्तर के घरों जैसी ही साज-सज्जा और सुविधा इस बाल-निवास में थी। अविवाहित माताओं की सन्तानों और दूसरे बच्चों के साथ

व्यवहार में किसी प्रकार का अन्तर नहीं रक्खा जाता बल्कि इस सम्बन्ध में बच्चों को कुछ बताना भी आवश्यक नहीं समझा जाता।

अविवाहित दम्पतियों की सन्तानों के सम्बन्ध में प्रश्न करते समय हमारे एक साथी अपने देश की भाषा में प्रश्न कर बैठे—"यहाँ क्या कुछ अवैध (इललैजिटिमेट) बच्चे भी हैं।"

सोवियत साथियों को अवैध शब्द बुरा लगा। "इस देश में कोई बच्चा अवैध नहीं होता"—उन्होंने गम्भीरता से उत्तर दिया। सोवियत समाज किसी भी बालक को अवैध मानने के लिये तैयार नहीं। यदि बच्चों के माता-पिता के व्यवहार को उचित न भी समझा जाय तो भी उसके लिये सन्तान को दण्ड देकर उसका भविष्य खराब करना घोर अन्याय समझा जाता है। अविवाहित माताओं की सन्तानों का प्रश्न सोवियत में समस्या के रूप में नहीं है। कभी कहीं ऐसी घटना का हो जाना असम्भव तो नहीं परन्तु उसके लिये कारण नहीं रह गये हैं क्योंकि किसी भी स्त्री-पुरुष के परस्पर आकर्षित होने पर न तो विवाह के मार्ग में कोई अड़चन होती है और न सन्तान माता या पिता के लिये विपदा का कारण और बोझ बनती है। सोवियत समाज प्रत्येक स्त्री को प्रसव-काल में और सन्तान के पालन के लिये आवश्यक सुविधा और सहायता देता है इसलिये अपनी सन्तान की उपेक्षा करने का अस्वाभाविक मार्ग अपनाने की विवशता नारी को नहीं होती।

× × ×

ज्योर्जिया का अपना विश्वविद्यालय है और उनका दावा है कि उनके यहाँ विश्वविद्यालय में शिक्षा पाने वाले लोगों की प्रतिशत संख्या संसार में सब देशों से अधिक है। यदि यह ठीक है तो सार्वजनिक संस्कृति और सम्पन्नता का इससे बड़ा प्रमाण और क्या होगा? समाजवादी क्रान्ति से पहले ज्योर्जिया में कोई विश्वविद्यालय न था। इस समय विश्वविद्यालय में शिक्षा पाने वालों की संख्या पैंतीस हजार है। ज्योर्जिया के प्रायः हर गाँव में हाई स्कूल है। इस समय भी ज्योर्जिया में प्रत्येक चार सौ व्यक्तियों के लिये एक डाक्टर और प्रत्येक पांच सौ व्यक्तियों में से एक व्यक्ति 'कृषि विज्ञान' में विश्वविद्यालय के उपाधिधारी विशेषज्ञ है।

ज्योर्जिया के विश्वविद्यालय में सभी विषयों की उच्चतम शिक्षा ज्योर्जियन भाषा में हो दी जाती है। पाठ्य-पुस्तकों का अनुवाद रूसी से न करके उन्हें मौलिक रूप से ही ज्योर्जियन भाषा में तैयार किया जाता है परन्तु विश्वविद्यालय में भी रूसी साहित्य की शिक्षा आवश्यक विषय है। प्रत्येक विद्यार्थी को कम से कम तीन वर्ष तक किसी एक अन्य विदेशी भाषा का भी अध्ययन करना पड़ता है। ज्योर्जिया का प्रजातंत्र शिक्षा के लिये चालीस करोड़ रूबल प्रतिवर्ष खर्च करता है। जिसमें से छः करोड़ इस विश्वविद्यालय पर खर्च होता है। विद्यार्थियों को प्रतिवर्ष एक करोड़ सत्तर लाख रूबल छात्र-वृत्तियों में दिया जाता है। इस विश्वविद्यालय में पांच सौ अध्यापक हैं। अध्यापकों और विद्यार्थियों के नित्य जीवन में अधिक से अधिक सम्पर्क रखने के लिये प्रत्येक नौ विद्यार्थियों की

जिम्मेवारी एक अध्यापक पर रहती है। विद्यार्थियों में लड़के और लड़कियों की संख्या बराबर है। ज्योर्जिया के विश्वविद्यालय में भी विज्ञान और कलाओं की शिक्षा के बारह विभाग है। ज्योर्जिया खनिज पदार्थों में बहुत समृद्ध है इसलिये विश्वविद्यालय के भूगर्भ विज्ञान विभाग और संग्रहालय बहुत विशद हैं। यहाँ धातुओं की खोज और शोध का काम बहुत बड़े परिमाण में हो रहा है।

हमारे साथियों में से मिश्रजी का सम्बन्ध इलाहाबाद विश्वविद्यालय से है और श्री देसाई का बम्बई विश्वविद्यालय से। इन लोगों ने शिक्षा सम्बन्धी अनेक प्रश्न पूछे। रेक्टर ने उत्तर दिया कि उनके यहाँ मार्क्सवादी दर्शन का अध्ययन पृथक से नहीं; दर्शन-शास्त्र के अन्तर्गत ही होता है और दर्शन-शास्त्र का अध्ययन केवल मार्क्सवाद तक ही सीमित नहीं बल्कि संसार की सभी प्राचीन और आधुनिक विचारधाराओं का अध्ययन आवश्यक समझा जाता है। इसी प्रकार सभी देशों के इतिहास का अध्ययन भी पाठ्यक्रम में आवश्यक है।

ज्योर्जिया के विश्वविद्यालय भवन की मंजिलें तो केवल दो ही हैं परन्तु विस्तार बहुत अधिक है। ऊपर के एक बहुत बड़े भवन में जाने पर देखा कि वहाँ भी अनेक कृत्रिम वृक्ष लगाकर बच्चों के उत्सव के लिये तैयारियाँ की जा रही हैं। रेक्टर की पत्नी और अन्य प्रोफेसरों की पत्नियाँ भी उस काम में लगी हुई थीं। यहाँ विश्वविद्यालय के अध्यापकों, कार्यकर्ताओं और विद्यार्थियों के बच्चों के लिये नव वर्ष मनाने की तैयारी हो रही थी। सोवियत में पहले नववर्ष और कुछ दिनों के अन्तर से बड़ा दिन मनाया जाता है। मास्को में नववर्ष हो रहा था यहाँ बड़े दिन की तैयारियाँ थीं। मिठाई के थैलों का खूब बड़ा ढेर लगा था। सौभाग्य से हम लोग ऐसे ही अवसर से पहुँचते भी थे कि मिठाई का थैला मिल जाता। तकल्लुफ में इंकार भी जरूर करते ही थे परन्तु उससे थैले से वंचित न रह जाते। थैला हाथ में न लेने पर जेब में ठूँस दिया जाता।

× × ×

ज्योर्जिया जलवायु और भूमि की उदारता के कारण कृषि के लिये तो बहुत उपयोगी है। अन्न और फलों की पैदावार वहाँ बहुत होती ही है परन्तु समाजवादी क्रान्ति के बाद से वहाँ औद्योगिक प्रगति भी बहुत जबरदस्त हुई है। ज्योर्जिया में फौलाद की मिलें, मोटरों, कपड़े और जूते के कारखाने भी बनाये गये हैं। इसका प्रभाव सर्वसाधारण के जीवन और व्यवहार में स्पष्ट दिखाई देता है। पोशाक की दृष्टि से बिलीसी में लोग मास्को की अपेक्षा अधिक समृद्ध जान पड़े। सम्भव है कि बिलीसी में सुन्दर पोशाकें अधिक दिखाई देने का कारण यहाँ मास्को की अपेक्षा सरदी कम होने से सदा मोटे-मोटे ओवरकोटों में छिपे रहने की मजबूरी न होना ही हो।

एक दिन दोपहर बाद समय निकाल बिलीसी की कताई-बुनाई की मिल देखने भी गये। इस मिल में सूत की कताई और मोजों, बनियानों की बुनाई का काम होता है। कारखाने में लगभग तीन हजार मजदूर और एक सौ अस्सी इंजीनियर काम करते हैं।

मजदूरों में स्त्रियों की संख्या अस्सी या नब्बे प्रतिशत है। इंजीनियरों में तीस प्रतिशत। मजदूरों को सप्ताह में अड़तालिस घण्टे काम करना पड़ता है। मिल में खूब सफाई और खुली हवा के आने-जाने का प्रबन्ध था। रुई की धुनाई या कताई से गर्द और रुई के जर्रे उड़ते हुए दिखाई नहीं देते थे। कुछ मशीनों पर लाल झण्डियाँ लगी हुई थीं। ये उन मशीनों के लिये सम्मान का चिह्न था जिन पर अधिक काम निकाला जा रहा था। इन मशीनों के मजदूरों का वेतन भी अधिक था। यहाँ मजदूरों का मासिक छः सौ नहीं बल्कि आठ सौ रूबल है और इंजीनियरों की तनख्वाह दो हजार रूबल। एक भाग में नाइलोन के बहुत बढ़िया बिलकुल पारदर्शी मोजे बन रहे थे। इन्हें खरीदने वाले भी सोवियत में होंगे ही। यहाँ तीन हजार मजदूर सत्तर हजार तकले सुविधा से चला लेते हैं। इस बात की ओर विशेष ध्यान गया कि मशीनें सब सोवियत की बनी हुई थीं। हमारे कलकत्ते के साथी मिस्टर चटर्जी कताई और बुनाई की मशीनों के विषय में बहुत कुछ जानते हैं। उन्होंने मशीनों को ध्यान से देखकर बताया कि यह मशीनें हू-बहू इंगलिश मशीनों के ढंग पर बनी हुई हैं। अलबत्ता उनमें तकले अधिक थे और उनकी चाल भी अच्छी थी। मिस्टर चटर्जी का अनुमान है कि यह मशीनें, इंगलैंड से नमूने की मशीनें मंगाकर बना ली गई हैं।

हमारे यहाँ कानपुर, अहमदाबाद, बम्बई, शोलापुर में कपड़े की कताई, बुनाई के कारखाने ज्योर्जिया की अपेक्षा बहुत पुराने हैं परन्तु मशीनों के लिये अब भी इंगलैंड और अमरीका का मुँह देखा जाता है; स्वयं बनाने की चेष्टा नहीं की जाती शायद इसलिये कि स्वयं भारत में मशीनें बनाने का प्रयत्न करना विदेशों से किये गये आर्थिक समझौते के विरुद्ध होगा। ज्योर्जिया के इस नये कारखाने में भी मास्को के कारखानों की ही तरह बड़ा भारी क्लब है जिसमें तैरने के लिये छता हुआ तालाब और खूब बड़ी रंगशाला भी है। रंगशाला के साज-सज्जा के कमरे (ग्रीन रूम) में ज्योर्जिया की प्राचीन और अर्वाचीन पोशाकों के विचित्र-विचित्र नमूने भी देखे। कुछ जरीदार पोशाकें देख करके यही सन्देह हुआ कि किसी भारतीय महाराजा की पोशाकें वहाँ पहुँच गई हों।

× × ×

मास्को से चलने से पहले ही मेरे दांत में कष्ट था। बिलीसी पहुँचकर वह इतना बढ़ गया कि डा० बुटरोव से कहना ही पड़ा। मालती बिडेकर को भी कुछ कष्ट था हम लोग गैनरीटा के साथ हस्पताल पहुँचे। हस्पताल बिलीसी जैसे नगर के विचार से बहुत बड़ा जान पड़ा। बहुत से कमरों में भिन्न-भिन्न रोगों के विशेषज्ञ डाक्टर बैठे हुये थे जो रोगियों को देख रहे थे। भीड़ या कांय-कांय नहीं थी। डाक्टरों में अधिक संख्या महिलाओं की ही थी। दांतों की चिकित्सा के विभाग में डेंटिस्ट भी महिला ही थीं। दांतों में मुझे मसूड़े पीछे हट जाने के कारण प्रायः ही कष्ट हो जाता है। डेंटिस्ट लोग 'सिलवर नाइट्रेट' के टुकड़े को जलाकर बहुत सावधानी से जरा-जरा छुआ देते हैं। प्रायः तीन-चार दिन तक यह चिकित्सा करानी पड़ती है। इस हस्पताल में भी सिलवर नाइट्रेट ही लगाया गया परन्तु

दूसरे ढंग से। उसे ज्वाला में गरम करने की आवश्यकता नहीं समझी गई। महिला डेन्टिस्ट ने एक बार दवाई लगाकर पांच मिनट बाद दूसरी दवाई कुल्ले करने के लिये दी और फिर उसी समय दुबारा दवाई लगा दी। एक बार और यही प्रक्रिया की गई और शाम तक दांत बिलकुल ठीक भी हो गये। इससे जान बची क्योंकि उसी संध्या हमें बिलीसी से लगभग दो सौ मील दूर काले सागर के किनारे एक सोवियत गाँव और संयुक्त कृषि क्षेत्र देखने चले जाना था।

सोवियत किसान और संयुक्त खेती

गाड़ी मुँह अंधेरे ही 'काबुलेत्ती' स्टेशन पर पहुँची। स्टेशन के बाहर ही लारी खड़ी थी। प्रायः तीन-चार मील जाकर लारी एक आलीशान बंगले के सामने खड़ी हुई। बंगले के चारों ओर खूब बड़ा उपवन था। कुछ ही कदम आगे काले सागर की नीली लहरें दिगंत तक फैलती चली गई थीं। कुछ विस्मय से अपने रूसी साथियों से पूछा—"क्या यह संयुक्त खेती का गाँव है?" उनके उत्तर से समाधान हुआ; यह संयुक्त खेती का गाँव नहीं, काले समुद्र के किनारे एक स्वास्थ्यवर्धक स्थान (सैनाटोरियम) था जहाँ गरमियों और बसन्त में मजदूर अपनी छुट्टियां बिताने आते हैं। संयुक्त खेती का गाँव अभी कुछ मील आगे था। यहाँ हम केवल चाय और कलेवे के लिये ठहरे थे।

बंगला दुमंजिला था। कई बडे-बड़े कमरे थे। समुद्र के किनारे-किनारे ऐसे कई बंगले बहुत दूर तक बने हुए थे। किनारे पर छोटे-छोटे चिकने पत्थर बिछे हुए थे। जल खूब नीला और स्वच्छ। किनारे पर चीड़ और देवदार के ढंग के वृक्ष। पीछे दूर पहाड़ियों की अर्ध चन्द्राकार प्राचीर मानो प्रकृति ने कोहकाफ की परियों के सागर स्नान के पर्दे के लिये आंगन बना दिया हो। पहाड़ियों की चोटियां बरफ से ढंकी हुईं। सूर्य इस आंगन में झांकने के लिये उतावला हो रहा था और अपने इस कार्य से झेंप अनुभव कर उसका चेहरा भी लाल हो रहा था। उन बर्फानी चोटियों पर से फिसल कर आती सूर्य की किरणें, गहरे नीले सागर पर धूप-छांव रंग के रेशम के कपड़े जैसी सुनहरी झलक छितराये दे रही थीं। इस स्थान पर पहुँच हम लोग अपनी आयु का गाम्भीर्य भूल गये और उन चिकने पत्थरों पर दौड़ने किलकने और कूदने लगे! मालती बाई, लेखिका तो हैं ही, जाने कौन टीस उनके मन में जाग उठी? शायद जीवन के नीरस सूने पथ पर चलते-चलते थक जाने पर भी ऐसा विश्राम स्थान न पा सकने की कलख! वे किसी से कुछ कहे बिना चुपचाप मुँह उठाये समुद्र के किनारे-किनारे चल दीं। यदि हम लोग उन्हें पुकार न लेते तो जाने कितनी दूर कहाँ, चली जातीं। श्रद्धा माता को वह सागरतट पुण्य सलिला गंगा माता से भी अधिक पुण्य तीर्थ जान पड़ा। वे जिद्द करने लगीं कि जरूर स्नान करें। इस अलौकिक सौन्दर्य में पारलौकिक पुण्य की प्रचुरता भी दिखाई दे रही थी मानों स्वयं भगवान के स्नान का स्थान? उनसे तर्क करने की चेष्टा की कि यहाँ स्नान करने से पुण्य प्राप्ति की बात किसी शास्त्र में नहीं लिखी। पुण्य प्राप्ति में तो संदेह ही है अलबत्ता ठण्डे जल और ठण्डी हवा में निमोनिया निःसन्देह हो सकता है। काश्मीर की डल झील का सौन्दर्य इस

बड़े चित्र की संक्षिप्त प्रतिलिपि मान ली जा सकती है परन्तु डल तक पहुँच कौन लोग पाते हैं? और यहाँ जो बंगले बने हुए थे, वे तो थे ही मजदूरों के लिए!

सरदी के मौसम में यह स्थान प्रायः बन्द रहते हैं इसलिये हम लोगों के पहुँचने से पहले कोई व्यवस्था नहीं थी। हम लोगों के नित्य-नैमित्यिक से निवृत्त होते-होते, चाय-कलेवे की व्यवस्था हो गई। इस कलेवे में सबसे अधिक स्वाद आया मांस की खिचड़ी में। हम लोगों ने रूसी साथियों से कहा—"यह भोजन तो बिलकुल हमारे देश का है। हम लोग इसे पुलाव कहते हैं।" स्थानीय लोगों ने कहा कि नहीं, यह उन लोगों का सामान्य भोजन है और वे लोग इसे "शिलई पुलाव" कहते हैं। इस पर भी हम लोगों ने आग्रह किया कि यह एशिया का भोजन है। इस पर समझौता हो गया। उन्होंने स्वीकार किया—"यह एशिया ही तो है। बातूम का जहाजीपत्तन यहाँ से केवल पन्द्रह मील है। टर्की की सीमा लगभग पच्चीस मील।" लोग प्रायः मुसलमान हैं उनके नाम समद, अहमद और बशीर आदि!

यदि बस चलता तो भर पेट पुलाव खाने और दो तीन गिलास चाय पीने के बाद समुद्र किनारे ऊंचे पेडों से छनकर आती जाड़े की मीठी-मीठी धूप में लेट जाते और नीली-नीली लहरों की ओर देखते-देखते उठने का नाम न लेते परन्तु संयुक्त खेती की व्यवस्था देखने जाना ही था। तान्या से एक बार मीठा ताना सुन ही चुके थे कि भारतीय साथी काम और आराम का भेद भूल जाते है इसलिये घंटे डेढ़-घटे से अधिक विलम्ब न किया और संयुक्त खेती के गाँव हत्सुबान की ओर चल पड़े।

हत्सुबान ज्योर्जिया के अजरयान प्रदेश में, लगभग सोवियत की सीमा पर अन्तिम स्थान हैं इसलिये सब सड़कें अभी वहुत बढ़िया नहीं बन सकी हैं। काबुलेत्ती से निकलकर सड़क कच्ची थी। कस्बे के पास ही कई छोटे-छोटे तालाब थे जिन्हें बहुत साफ नहीं कहा जा सकता परन्तु उनमें तैरतीं सफेद बत्तखें बहुत अच्छी लग रही थीं। यह आशंका करने का कोई कारण नहीं कि कस्बे के लोग इन तालावों का जल पीते होंगे। काबुलेत्ती में नल एवं बिजली दोनों ही हैं। सड़क पर स्कूल जाते बच्चे न नंगे पाव थे और न चीथड़े पहने हुए। मालती बाई चुप पर सोवियत सीमा में प्रवेश करने के समय से इसी खोज में थीं कि कोई बच्चा नंगे पांव और चीथड़ों में दिखाई दे तो 'नोट' करें। उन्हें चुप में ही एक बालक फटे जूते पहने दिखाई दिया था उसके बाद नही।

हत्सुबान में हम लोग एक बड़े से दुमंजिले पक्के मकान के सामने ठहरे। यह संयुक्त खेती के गाँव का दफ्तर और क्लब था। आठ-दस आदमी हमारी प्रतीक्षा कर रहे थे। दो-तीन तो बाकायदा सूट-टाई और हल्के जूते पहने थे पर शेष किसान बन्द गले के कोट बिर्चिस और घुटनों तक के बूट चढ़ाये थे। संयुक्त खेती (कोलखोज) के प्रधान ने प्रस्ताव किया कि हम लोग पहले दफ्तर में चलकर बैठें और उनकी खेती की व्यवस्था समझ लें। उसके बाद गाँव के घरों, खेतों और दूसरी चीजों को देखें तो ज्यादा अच्छा रहेगा।

दफ्तर की दीवारों पर बहुत से नक्शे और चित्र संयुक्त खेती का विकास एवं उन्नति दिखाने के लिये लगे हुए थे। सोवियत नेताओं के चित्र तो थे ही पर झाड़-फानूस भी मौजूद थे। हम लोगों के बैठ जाने पर उन्होंने बताना शुरू किया :—

समाजवादी क्रान्ति से पहले इस प्रदेश की जलवायु और भूमि अच्छी होने पर भी यहाँ के किसानों की अवस्था बहुत दयनीय थी। टर्की की ओर से प्रायः ही छापेमार आकर लूट मार कर जाते थे। भूमि सब बड़े-बड़े जमींदारों की थी। किसान की अपनी भूमि अगर होती भी तो प्रायः उसके निर्वाह योग्य नहीं। यहाँ १९२८ में संयुक्त खेती आरम्भ की गई थी। उन्होंने गर्व से बताया उनके इस संयुक्त कृषि क्षेत्र का नाम "स्तालिन संयुक्त कृषि क्षेत्र" है। आरम्भ में यहाँ एक सौ किसान परिवार थे। अब यहाँ चार सौ बावन परिवार हैं और चौबीस हजार एकड़ खेती की जमीन है। आरम्भ में इस क्षेत्र की सम्मिलित आय छः लाख रूबल वार्षिक थी, अब अस्सी लाख रूबल है। आय की बढ़ती का कारण खेती की जमीन में बढ़ती और जमीन की पैदावार में बढ़ती तो है ही और इसके साथ अब यहाँ गल्ले के अतिरिक्त चाय, सेब, नारंगियां और नींबू भी पैदा किये जा रहे हैं जिसके दाम अच्छे मिलते हैं। पांच सौ साठ एकड़ भूमि में चाय के बाग लगा दिये हैं। शुरू में हमारे यहाँ ढाई एकड़ में डेढ़ टन चाय होती थी परन्तु सन् चौंतीस-पैंतीस में हमने वैज्ञानिक उपायों से काम लेना आरम्भ किया है और अब उतनी ही भूमि में साढ़े चार टन चाय पैदा हो रही है। अभी और उन्नति की आशा है।

हम लोगों को सबसे अधिक कौतूहल इस विषय में था कि जब खेती की सम्पूर्ण ज़मीन सांझी है और सभी किसान एक साथ काम करते हैं तो किसानों में उनके श्रम के अनुसार पैदावार का न्याय पूर्ण बटवारा या मज़दूरी किस प्रकार दी जाती होगी। ह्त्सुबान की संयुक्त खेती के प्रधान ने समझाया कि खेती की सम्पूर्ण भूमि राष्ट्र की है और राष्ट्र ने यह भूमि हम संयुक्त कृषकों को जब तक हम वंशपरम्परा तक खेती करते रहें, दे दी है। आरम्भ में संयुक्त खेती में सम्मिलित होने वाले किसानों ने अपने कृषि के पशु और हल या औजार आदि संयुक्त कृषि के संघ को देकर काम आरम्भ किया था परन्तु अब खेती प्रायः मशीनों से होती है। ट्रैक्टर और दूसरी कम्बाइन आदि मशीनें हमारे सम्मिलित कृषि संघ की सम्पत्ति नहीं हैं। हम लोग 'मशीन ट्रैक्टर स्टेशनों' से खेतों की जुताई-लुनाई आदि के लिये प्रबन्ध करके उन्हें उनके काम के दाम दे देते हैं। मशीन ट्रैक्टर स्टेशन अच्छा बीज प्राप्त करने, आवश्यक सड़कें, तालाब आदि बनाने और परामर्श में भी हमारी सहायता करता है। इसके लिये हम पहले से निश्चित की हुई रकम उसे दे देते हैं। अपनी सम्मिलित पैदावार में से हम इस भूमि के लिये राष्ट्र को लगान देते हैं। इसके बाद संयुक्त खेती के खेतों, गौशाला, बागान आदि से जो आय होती है उसे काम करने वालों को उनके श्रम और उनके श्रम से हुई पैदावार के हिसाब से नकद मज़दूरी और पदार्थों के रूप में बांट दिया जाता है।

श्रम का हिसाब एक दिन के लिये नियत भिन्न-भिन्न कामों के हिसाब से किया जाता है। उदाहरणतः एक व्यक्ति को कितनी जुताई गुड़ाई और लुनाई करनी चाहिये या उसे

गौशाला अथवा बाग में कितना काम करना चाहिये इस हिसाब से किया जाता है। इस प्रकार के दैनिक काम का निश्चय कृषि संघ की सदस्यों की सार्वजनिक सभा में होता है। काम का यह निश्चय साधारण अवस्था में किये जा सकने वाले परिमाण के विचार से किया जाता है परन्तु अधिकांश में कितना निश्चित काम की अपेक्षा बहुत अधिक काम कर लेते हैं। किसानों को मिलने वाली मजदूरी केवल श्रम के समय के हिसाब से नहीं दी जाती बल्कि नियत समय में काम अधिक होने पर उसे एक दिन का काम न गिनकर अधिक समय का काम माना जाता है। किसानों की आमदनी उनके व्यक्तिगत काम के दिनों की संख्या पर ही निर्भर नहीं करती बल्कि संपूर्ण सम्मिलित खेती की उन्नति और अवनति पर भी निर्भर करती है। कृषि संघ की आय में बढ़ती होने पर दैनिक कार्य की मजदूरी का दर स्वयं बढ़ जाता है और उसमें भी जो किसान व्यक्तिगत रूप से अधिक काम निकालते हैं उन्हें पांच प्रतिशत काम बढ़ाने पर दस प्रतिशत और बीस प्रतिशत काम बढ़ाने पर पचास प्रतिशत मजदूरी अधिक दी जाती है।

मज़दूरी या पैदावार का बंटवारा यों तो वर्ष के बाद होता है परन्तु निर्वाह के लिये प्रतिमास उन्हें पेशगी दे दी जाती है। इस पेशगी में नकदी के साथ-साथ ही आवश्यक पदार्थ भी सम्मिलित रहते हैं। साधारणत: दैनिक काम की मज़दूरी, संयुक्त कृषि संघ की सम्मिलित पैदावार के हिसाब से चौंतीस रूबल से लेकर अड़तीस रूबल तक पड़ जाती है। मज़दूरी के अतिरिक्त प्रत्येक किसान परिवार को घर बनाने के लिये जमीन दी जाती है। घर के साथ ही उसे अपने पारिवारिक उपयोग के लिये भी कुछ जमीन दी जाती है जहाँ वह साग-सब्जी और फल-फूल पैदा कर सकता है। अपनी यह पैदावार किसान चाहे तो अपने उपयोग में ला सकता है चाहे तो सीधे बाजार में अथवा सहकारी बाज़ार संघ के द्वारा बेच सकता है। प्रत्येक परिवार अपने लिये एक गाय, बीस पच्चीस भेड़ बकरी और मनचाही मुर्गियां और बत्तखें रख सकता है। किसानों के पारिवारिक उपयोग के लिये भूमि परिवार के आदमियों की संख्या के अनुसार पौन एकड़ से लेकर ढ़ाई एकड़ तक दी जा सकती है। पैदावार और नकदी की बंटाई से पहले किसानों की आम सभा करके सामूहिक हित के कामों क्लब, हस्पताल, बूढ़े लोगों की वृत्ति और भविष्य में सम्मिलित कृषि के विकास आदि के लिये एक भाग निकाल लिया जाता है।

सोवियत में कृषि की व्यवस्था दो प्रकार की है एक 'कोलखोज' अर्थात् संयुक्त कृषि क्षेत्र दूसरी 'सोवखोज़' अर्थात् राष्ट्रीय कृषि क्षेत्र। संयुक्त कृषि क्षेत्र में भूमि किसान की सांझी सम्पति होती है और उनकी आय उनके क्षेत्र की पैदावार पर निर्भर करती है। राष्ट्रीय कृषि क्षेत्र की भूमि राष्ट्र की सम्पत्ति होती है। किसानों की आय इस भूमि पर कृषि के भिन्न-भिन्न काम करने वाले मजदूरों की तरह होती है वे निश्चित वेतन पाते हैं। यदि वे अधिक काम करते हैं तो काम के निश्चित दर के अनुसार अधिक वेतन पाते हैं। उनके उचित श्रम करने पर भी किसी कारण पैदावार में कमी हो जाय तो उनकी आय पर प्रभाव नहीं पड़ता। सोवखोज़ में गायें, भेड़ें, बकरियां सब चीजें समाज की सांझी ही होती हैं। सोवियत में अधिकांश भूमि की कृषि सोवखोज़ द्वारा ही होती है।

मास्को लौटने पर कृषि के इन दोनों तरीकों के सम्बन्ध में कृषि विभाग के डिप्टी डायरेक्टर से बात करते समय हमने जानना चाहा था कि किसान इन दोनों में से किस ढंग की कृषि में भाग लेना अधिक पसन्द करते हैं। उनका पहला उत्तर अस्पष्ट था—"देश के जिस भाग में जो ढंग चालू है, किसान उसी के अनुसार काम करते हैं।"—मैंने आग्रह से पूछा—"क्यों दोनों ही तरीकों से किसानों को समान ही आय होती हैं?"—"नहीं, आय की दृष्टि से अधिकांश कोलखोज़ों में किसानों को कुछ अधिक फ़ायदा रहता है।" हम लोगों ने जानना चाहा कि भविष्य में सोवियत सरकार कृषि के किस ढंग को अधिक प्रोत्साहन देना चाहती है? उत्तर मिला—"कि सोवखोज़ को ही क्योंकि इससे पूरे राष्ट्र के लिये पैदावार को अधिक सुविधा से बढ़ाया जा सकता है और अन्त में किसान का भी उसी से लाभ होता है।"

हम लोग हत्सुबान कृषक संघ के प्रधान की यह व्याख्या और आंकड़े सुनते हुए मन ही मन किसानों के घरों में जाकर उनकी स्थिति स्वयं देख आना चाह रहे थे। उनकी बात समाप्त होने पर हम दुमंजिले के कमरे से नीचे उतरे। नीचे पचास साठ किसान स्त्री-पुरुष धूप में इकट्ठा हो हमारी प्रतीक्षा कर रहे थे। इन किसान स्त्रियों की पोशाकें देखकर ही दंग रह गये। जिसके शरीर पर देखिये बढ़िया मखमल या बढ़िया सर्ज। कलाई और गले में सोने के जेवर और सीने पर सोने के भारी-भारी ब्रोच, हाथ-पांव तो किसानों जैसे ही बड़े-बड़े परन्तु नये से नये फैशन के चमचमाते हुए ग्लेसकिट के जूते। मर्द भी बिर्चिसें और घुटनों तक के चमचमाते बढ़िया बूट चढ़ाये जिनकी कीमत मास्को और *बिलीसी के बाजार में सात-आठ सौ रूबल होगी।

इन किसान स्त्री-पुरुषों ने व्यक्तिगत प्ररिचय का आग्रह किया और फिर हमारे स्वागत में नाच दिखाने और हमारे साथ नाचने की इच्छा प्रकट की। पहले तो क्लब की रंगशाला में रंगमंच पर एक नाच हुआ। नृत्य की कला तो बहुत सूक्ष्म नहीं थी परन्तु नृत्य में भाग लेने वाले स्त्री-पुरुषों का स्वास्थ्य और उनकी पोशाकें बहुत अच्छी थीं। रंगमंच के नाच से सन्तुष्ट न होकर किसानों ने बाहर धूप में आकार ढोल और डफ बजाकर सामूहिक नाच शुरू कर दिया।

गौशाला समीप ही थी। एक झांकी उसकी भी ली। भैंसों जैसी बड़ी-बड़ी गायें सिलसिले में बंधी हुई थीं। दूध के बड़े-बड़े पीपों के पास पड़ी हुई नलियों और यंत्रों को देखकर अनुमान हुआ कि दूध दुहने का काम मशीनों से लिया जाता है। गोबर की थोड़ी बहुत बदबू जरूर थी शायद इसलिये कि खाद के ढेरों को दबा नहीं दिया गया था। एक प्रौढ़ा गौशाला से निकली। उसके हाथ में झाड़ू बंधा बांस था। निश्चय ही वह सफाई का काम करती होगी। वह रुई भरा कोट पहने हुई थी और घुटनों तक ऊंचे बहुत मोटे भारी-भारी बूट। सिर पर बंधा हुआ रूमाल भी बेरंग और पुराना था। मैं और मालती बाई उसकी ओर बढ़ गये। मन में सोचा कि सच्चाई इससे खुलेगी। दुभाषियों को भी साथ न लिया। अपने रूसी भाषा के ज्ञान के भरोसे पांच सात बार उससे प्रश्न किया "स्कोलको

रूबली ?"......स्कोलको रूबली ?" पर वह कुछ समझी नहीं तब तान्या को बुलाकर प्रश्न किया कि इसकी तनखाह कितनी है इस पर भी प्रौढ़ा कुछ समझी नहीं। "तनखाह क्या होती है ?"—उसने पूछा। तो सीधा प्रश्न किया कि तुम काम करती हो तुम्हें मिलता क्या है ? अब बात प्रौढ़ा की समझ में आई तब उसने बांस को दोनों हाथों से संभाल मुस्कराकर बताया दो माह पहले जो बंटवारा हुआ था तो उसे रूबल तो बारह हजार मिले थे परन्तु वह एक-एक उंगली उठाकर गिनाती गई इतना गल्ला, इतना मक्खन, इतनी चाय, इतनी चीनी और जाने क्या-क्या।

किसानों के मकान एक साथ सटे हुए नहीं बल्कि खूब दूर-दूर बंगलों की भांति थे। अधिकांश मकानों में नीचे की मंजिल पत्थर की और ऊपर की मंजिल लकड़ी की थी। मकान छोटे-बड़े थे, दो कमरों से चार-पांच कमरे तक। मकान हवादार थे और खिड़कियां कांच मढ़ी हुई। पलंग और मेज-कुर्सी कहीं बहुत साधारण, कहीं बहुत बढ़िया। घरों में प्रायः वृद्धायें ही बच्चों के पास थीं।

कई मकान देख चुकने के बाद एक बड़े से मकान की तरफ गये। यहाँ हमारे विरोध में कुत्तों के बहुत देर तक भूँकने के बाद एक छः-सात वर्ष का लड़का बाहर निकला। दुभाषिये के समझाने पर वह पेड़ों से भरे ढलवान की तरफ जाकर जोर-जोर से पुकारने लगा। उसकी पुकार के उत्तर में एक वृद्ध के दर्शन हुए। रुई भरा कोट और तनीदार कनटोप पहने, जैसे गढ़वाल या अलमोड़े जिले का कोई ठाकुर हो। कपड़ो और नमदे के जूतों पर जहाँ तहां मिट्टी के दाग। वृद्ध ने अतिथियों को आया देख अपनी लड़की और बहू को पुकारा। लड़की गाँव के स्कूल में अध्यापिका है। पुत्र बातूम में वकालत करता है। बहू विश्वविद्यालय में पढ़ रही है परन्तु बड़े दिन की छुट्टियां बिताने ससुराल आई थी।

इन लोगों ने भीतर चलने का आग्रह किया। हम लोग अनेक प्रश्न पूछते जा रहे थे। लड़की और बहू ने आग्रह किया कि पहले हम बैठ जायें तब बात करेंगे। घर भर से कुर्सियां इकट्ठी की गईं और काफी हो भी गईं। बहू और लड़की एक-एक टोकरी सेब और नारंगियां निकाल लाईं फिर एक बहुत बड़ी तश्तरी में ढक्कन लगे कनस्तर से बिस्कुट उड़ेले गये, चाकलेट और टौफी भी। ज्योर्जियन अंगूरी शराब की बोतलें भी आदमियों की संख्या से अधिक ही मेज पर आ गईं। तश्तरियां और गिलास भी निकाले गये। बर्तन काफी अच्छे थे। कमरे में एक ओर पियानो भी रखा हुआ था जिसे हमारे दुभाषिये अलेक ने टुनटुनाना शुरू कर दिया।

हम लोगों ने संकोच से पूछा कि इस परिवार को कितनी आमदनी होगी ? वृद्ध ने संकोच और विनय से कहा मैं भाग्यशाली हूँ। भरा-पूरा परिवार है। सभी लोग कमा रहे हैं मुझे कोई कठिनाई नहीं है। हमारे बार-बार आग्रह करने पर उसने उत्तर दिया, "इस वर्ष मैंने अपने बाग से अठारह हजार रूबल के तो नींबू ही बेचे हैं।" संयुक्त कृषि से क्या मिला यह उसने नहीं बताया शायद सोचता हो कि वह तो सभी जानते हैं। जो गल्ला, मांस, मक्खन, दूध मिला वह अलग।

इसके बाद वृद्ध से आमदनी की बात पूछने में स्वयं ही संकोच होने लगा। वृद्ध की आयु पूछने पर मालूम हुआ कि सड़सठ वर्ष थी। प्रश्न किया कि समाजवादी क्रान्ति से पहले की भी कोई बात याद है? "खूब याद है"—वृद्ध सहसा गम्भीर हो गया। हम लोगों ने पूछा—"तब कैसी जिन्दगी थी?" "तब जिन्दगी, क्या मौत थी"—उसने उत्तर दिया—"ढाई सौ कदम जमीन थी वह भी पराई। एक बैल और एक गाय। एक ही छप्पर में मैं और बच्चों की माँ पशुओं के साथ जाड़ा काट लेते थे या चूल्हे के चारों ओर सोकर रात काट लेते थे।" हम लोगों ने पूछा—"बच्चों की माँ भी क्या यहीं हैं?"—लड़की ने हंसकर कहा—"हां, हां पर वह मेहमानों से शर्माती हैं। पोते को खिला रही होगी।"

वृद्ध किसान मितभाषी था इसलिये अधिक बहस करना संभव नहीं था। हमारे परम गांधीवादी साथी बिनू भाई शाहजी ने वृद्ध किसान के आतिथ्य के लिये धन्यवाद देते हुए कहा—"भगवान आपका और आपके दिव्य नेताओं का कल्याण करे और हमारे नेताओं को भी ऐसी ही सुमति दे कि हमारे देश के किसान भी आप लोगों जैसा जीवन बिता सकें।" जिस समय शाहजी भगवान से यह प्रार्थना कर रहे थे मैं मन में यह सोच रहा था कि इस किसान और इस जैसे किसानों के लिये व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का और क्या अर्थ होगा? क्या इन्हें जबरदस्ती समाजवादी व्यवस्था के शिकंजे में जकड़कर रखने की जरूरत है। सोवियत की नई व्यवस्था का इनसे बड़ा समर्थक कौन होगा? अलबत्ता ये लोग सामन्तवाद और पूँजीवाद के समर्थन की स्वतंत्रता अपने देश में किसी को क्यों देने लगे। हम लोग उनकी व्यक्तिगत स्वतंत्रता के अभाव के लिये चाहे आँसू बहाएं।

किसान के उस कमरे की खिड़की से दिखाई दे रहा था कि दिन ढल रहा है। हम अभी और भी चक्कर लगाना चाहते थे इसलिये विदा लेकर चले। बाहर निकलने पर आंगन में वृद्धा गृहणी के भी दर्शन हो गये। वे स्वयं मैले-मटियाले रुई भरे कपड़े पहने बरफ के सामन उजले ऊनी स्वेटर और टोपे में लिपटे गुलाब के फूल से खिले अपने पोते को अपनी गोद में लिये खड़ी थीं। हम लोगों ने उन्हें भी धन्यवाद और बधाई देने के लिये हाथ मिलाना चाहा परन्तु वह शरम के मारे सिकुड़ी जा रही थीं। उनकी बेटी और बहू ने मुस्कराकर क्षमा सी माँगी—"अम्मा बहुत पुराने ख्याल की हैं।" आखिर पति के बार-बार कहने और लड़की और बहू के जबरदस्ती उनका हाथ खींचकर आगे कर देने पर उन्होंने बारी-बारी से हम लोगों को अपना हाथ छू लेने देना स्वीकार कर लिया।

दिन ढल चुका था। हम लोग टीलों पर से होते हुए गाँव के दूसरे किनारे जा रहे थे। टीले बहुत ऊंचे नहीं थे। प्रायः घास, बड़े वृक्षों और फलदार वृक्षों से छाये हुए। दृश्य कुछ-कुछ कुल्लू की घाटी जैसा। हम सबको इस्मत गित्तुवात्से ने संध्या के भोजन का निमंत्रण दिया था। गाँव में वृद्धा इस्मत का बड़ा मान और स्थिति है। वह समाजवादी श्रम की वीर सैनिक का लेनिन स्वर्ण पदक पा चुकी हैं। उनकी बेटी कुलिका ने युवा अवस्था में ही यह सम्मान पा लिया है। इस्मत ने भोजन के अवसर पर बहुत से स्थानीय लोगों को भी बुलाया था। भोजन के लिये मेजें और कुर्सियां बरामदे में ही लगाई गई थीं।

जगह तंग पड़ी तो एक और कमरे में भी प्रबन्ध किया गया। मेरी कुर्सी इस्मत के समीप ही थी। वे बोल कम पाती थीं पर मुस्करा जरूर देती थीं। मुस्कराते समय उनके दांत देखकर विस्मय हुआ। दांत क्या; दांत थे ही नहीं। ऊपर नीचे नकली बत्तीसी लगी हुई थी पूरी सोने की।

हमारे अपने संस्कार के कारण सोने की बत्तीसी देखने में बहुत सुन्दर तो नहीं लग रही थी परन्तु असाधारण बात तो अवश्य थी। उस ओर मेरा ध्यान जाने का एक और भी कारण था। भारत से चलने से एक महीने पूर्व मेरी पत्नी को एक दांत उखड़वाना पड़ गया था। जब उखड़े हुए दांत की जगह नया दांत लगवाने के लिये गये तो डेंटिस्ट ने सलाह दी कि स्थाई दांत भी लगाया जा सकता है जिसे साफ करने के लिये निकालने की जरूरत नहीं रहेगी लेकिन स्थाई दांत सोने का ही बन सकता है। पत्नी को सोने का दांत लगवा लेने का चाव तो जरूर हुआ परन्तु सोने के दांत की कीमत एक सौ बीस रुपये सुनकर उत्साह ठंडा पड़ गया इसलिये जब भी सोने का दांत दिखाई देता, उस ओर ध्यान जरूर जाता। मास्को पहुँचकर भारत और यूरोप की अपेक्षा सोने के दांत लगाये आदमी काफी अधिक दिखाई दिये थे। बिलीसी में मास्को की अपेक्षा भी अधिक। हत्सुबान में जो थोड़े बहुत किसान स्त्री-पुरूष दिखाई दिये, उनमें सोने के दांत के बिना शायद कोई ही दिखाई दिया हो। संदेह हुआ कि कहीं सोने के दांत लगवा लेने के शौक में ही तो अच्छे भले दांत नहीं उखड़वा डालते। इस्मत तो ऊपर नीचे सभी दांत सोने के लगाये बैठी थीं। सभी दांत सोने के लगा लेना सुरुचि का चिन्ह चाहे न माना जाय, परन्तु उसके लिये साधन तो चाहिये ! निश्चय ही इस्मत की उतनी कमाई रही होगी। उनके मकान के नीचे पशु बांधने के लिये बनाई गई जगह में एक अच्छी लम्बी चौड़ी 'पोवियेदा' मोटर भी खड़ी थी।

मोटरों के विषय में पूछने पर पता लगा है कि गाँव में चार सौ बावन परिवार हैं उनमें से सत्तर से अधिक के पास निजी छोटी मोटरें हैं और इक्कीस या बाइस परिवारों के पास बड़ी-बड़ी और गाँव की तीन-चार सांझी सवारी की बसें भी हैं। इन्हीं में से एक पर हम सवारी कर रहे थे। इस बात में सन्देह नहीं कि हत्सुबान या सोवियत के संयुक्त कृषि के गाँव में मास्को और लेनिनग्राद की अपेक्षा अधिक सम्मृद्धि है। गाँव के लोग अपनी आवश्यकता की बहुत सी चीजें तो स्वयं पैदा कर ही लेते हैं। इसके अतिरिक्त मास्को, लेनिनग्राद में न्यूनतम मजदूरी बीस रूबल प्रतिदिन है, बिलीसी में छब्बीस-सत्ताईस रूबल और ईत्सुबान में चौंतीस से अड़तीस रूबल। पूँजीवादी व्यवस्था के संस्कारों का अभ्यास लिये हम लोगों को यह बात विचित्र लगती है क्योंकि हमारे यहाँ सबसे अधिक सम्मृद्धि राजधानी या देश के सबसे बड़े नगर में और सबसे अधिक गरीबी गाँव में पाई जाती है।

सोवियत में इससे उलटा है; या कहिये कि वहाँ स्वाभाविक और सीधी व्यवस्था है। आरम्भिक उत्पादक तो गाँव के किसान ही हैं। यदि वे अपने श्रम का उत्पादन अपने पास

रख सकें तो उनकी सम्मृद्धि स्वाभाविक है। इस्मत गित्तुवात्से अगर सोने की बत्तीसी लगाये हुए थीं तो विस्मय क्या? इस्मत और उनकी बेटी कुलिका की गत वर्ष की आमदनी साठ हजार रूबल थी और इस आमदनी का आधार उन लोगों की पैत्रिक सम्पत्ति नहीं थी, न व्यावसायिक चातुर्य द्वारा दूसरे के श्रम का फल हथिया लेने की सफलता। उनकी आमदनी का आधार था उनके अपने हाथों की मेहनत और नियमित समय में अधिक काम निकाल सकने का कौशल। उन दोनों ने वर्ष भर में आठ सौ सत्तावन दिनों की मजदूरी पाई थी। इस आर्थिक लाभ के अतिरिक्त माँ और बेटी ने समाजवादी श्रम के वीर सैनिक के सम्मान में स्वर्ण पदक भी पाये थे।

भोजन के लिये इस्मत के बरामदे में बैठे थे। भीतर के कमरों के दरवाजों पर बरफ के समान श्वेत चिकिन के पर्दे लटके हुए थे। किसी के घर में निमंत्रित होने पर परदा के पीछे झांकना सौजन्य नहीं समझा जायेगा परन्तु कौतूहल भी मनुष्य की एक बड़ी निर्बलता है। परदों के पीछे नजर जा सकती थी इसलिये गई ही और देखा कि सोने के कमरे में बिस्तरे दूधिया सफेद बिस्तरपोशों से ढंके थे। पलंग या तो क्रोमियम की कलई किये हुए फौलाद के थे या वैसी किसी दूसरी चीज के। इस्मत उसी मूजिख (किसान) वंश की सन्तान है जो जार के समय की व्यवस्था में पशुओं के समान जीवन व्यतीत करते थे। जिसका मुख्य भोजन बाजरे का दलिया था। आज उसकी मेज पर कई तरह की रोटियां, दो-तीन तरह के मांस, तली हुई मछली, मुर्गी, शोरबे और भारतीय स्वाद के लिये चावल और पहाड़ी मिर्च का रसेदार शाक, सेब, नाशपातियां, अंगूरी शराबें, नीबू और नारंगी के शरबत की बोतलें सुन्दरता से रखी हुई थीं कि कोई चीज उठाते समय गिलास या बोतल गिर जाने की आशंका नहीं रहती थी। भोजन अधिक देर तक खाते रह सकने के लिये गाना-बजाना भी शुरू हो गया। अजरयानी भाषा में गाने हुए। ज्योर्जियन और रूसी में हुए फिर हिन्दी, बंगला और मराठी में हुए। हमारे मेजबान दावत समाप्त ही नहीं होने देना चाहते थे परन्तु हमें रात की गाड़ी से गोरी पहुँचना था इसलिये धन्यवाद देकर उठ ही गये।

चलने से पहले हम लोगों ने अनुरोध किया कि इस्मत हमारे देश के लोगों के लिये कोई संदेश दें। इस्मत का चेहरा लज्जा से लाल हो गया। हाथ हिलाकर "नहीं......नहीं" कह उसने क्षमा चाही। हम लोगों की जिद्द से इस्मत को संदेश देने के लिये खड़ा होना ही पड़ा। बहुत धीमे स्वर में उसने कहा "हिन्दुस्तानी साथियों से मिलकर बहुत प्रसन्नता हुई।" ओर वे चुप हो गईं। कुछ और बोलने का अनुरोध किया गया तो बोलीं—"आप लोग फिर जरूर आइयेगा।" "कुछ और! कुछ और!" हमारे आग्रह करने पर उसने कहा— "सब लोगों की श्रम करने की शक्ति बढ़े और हम सब लोग और भी अधिक सुखी हों।" तालियों के कोलाहल में इस्मत धप्प से कुर्सी पर बैठ गई। लज्जा के मारे उसे पसीना आ गया था।

इस्मत के मकान में तो बिजली का प्रकाश था परन्तु बाहर पहाड़ी देहात की संकरी राह पर घुप्प अंधेरा। हम लोगों की लारी लगभग एक फर्लांग दूर सड़क पर खड़ी थी।

हत्सुबान के किसान लड़कों ने हमें अंधेरे में गिरने की आशंका से बचाने के लिये लम्बी लकड़ियों पर कपड़ा बांध तेल डाल मशालें बना लीं और हमें राह दिखाते हुये लारी तक पहुँचाने के लिये साथ हो लिये।

अंधेरी सड़क पर से लारी काबुलेत्ती स्टेशन की ओर चली जा रही थी। हमारे साथियों में से जिलानी, हाजरा और दर ने कोई हिन्दी गाना छेड़ दिया था। लोग गाते जा रहे थे। मैं गा नहीं सकता इसलिये सोचता चला जा रहा था; इस्मत की बात—"और सुखी हों।" अभी और क्या सुख चाहती है? तब याद आई आध्यात्मिकता में विश्वास रखने वालों की बात कि खाना, कपड़ा, जेवर और सवारी ही संसार में सब कुछ नहीं हैं। इसके अतिरिक्त भी सन्तोष देने वाली चीज कुछ और है। वह सन्तोष देने वाली चीज और क्या है; जिसे मनुष्य खाना, कपड़ा और सवारी गहना न होने पर भी पा लेता है। वह चीज शायद भारत की सर्वसाधारण जनता के पास अवश्य होगी।

स्तालिन की जन्मभूमि

मास्को से बिलीसी जाते समय विमान-चालकों से बात करते जा रहे थे। कोहकाफ की पर्वत श्रेणियां लांघकर विमान कुछ नीचे आ गया था। पृथ्वी नीचे बड़े भारी नक्शे की भांति फैली हुई थी जिसमें नदियां, तालाब, जंगल, सड़कें और गाँव पहचाने जा सकते थे। विमान-चालक ने दुभाषिये साथी की मारफत नीचे एक गाँव दिखाकर बताया, "वह है का० स्तालिन की जन्मभूमि गोरी"। उस ऊंचाई से दिखाई तो भला क्या देता अलबत्ता का० स्तालिन की जन्मभूमि के इतने समीप आ जाने से उसे देखने की इच्छा हुई और डा० बुटरोव से उसके लिये सभी ने अनुरोध किया। इसी अनुरोध के अनुसार हम लोग काबुलेत्ती स्टेशन से रात को दस बजे गाड़ी पर चढ़कर सुबह पांच बजे गोरी पहुँच गये। स्टेशन के समीप ही एक बहुत सुन्दर दो मंजिले मकान में सूर्योदय तक के लिये हमें ठहरा दिया गया।

पिछली रात गाड़ी में सोने से पहले चौबेजी ने मुझे ताकीद कर दी थी कि सुबह उठने पर उन्हें उनकी वर्षगांठ के लिये बधाई देकर नव वर्ष के लिये शुभ कामना कर दूँ। उस रोज़ उनका जन्मदिन था। उनकी ताकीद भूला नहीं था। चौबेजी को स्वयं बधाई देने के साथ-साथ मादाम पालोवा को भी चौबेजी के जन्म दिन पर बधाई दे देने के लिये अनुरोध कर दिया। उन्होंने बड़ी उदारता से चौबेजी को बधाई दे शुभकामना प्रकट की। अब सभी ओर से चौबेजी पर बधाइयां और शुभकामनाएँ बरसने लगीं और चौबेजी झेंप कर बिगड़ने लगे—"यह क्या तमाशा कर दिया तुमने?" गोरी में का० स्तालिन ने जिस मकान में जन्म लिया था उसे देखने जाने से पहले नाश्ता कर लेने के लिये आदेश मिला। नाश्ते की मेज पर तीन चार रोटियां प्रायः दो दो गज़ लम्बी, बिच्छू की तरह पूंछ और डंक सा उठाये दिखाई दीं और बहुत सी अंगूरी शराब की बोतलें। सुबह-सुबह जलसे का यह सब विभ्राट देखकर कारण का अनुमान कर रहे थे कि रूसी साथियों ने गिलास भर-भरकर चौबेजी को उनके जन्म दिन के शुभ अवसर पर स्तालिन के जन्म की पुण्यभूमि

में होने के संयोग पर बधाई देना आरम्भ कर दिया। चौबेजी अच्छी खासी मुसीबत में पड़ गये। इतनी बधाइयों के उत्तर में आखिर उन्हें भी कुछ तो बोलना ही पड़ा। रूसी साथियों के लिये किसी के भी व्यक्तिगत भावों की उपेक्षा कर जाना सम्भव नहीं जान पड़ता शायद इसलिये कि उनके समाज में व्यक्तित्व के लिये कोई स्थान ही नहीं।

गोरी के एक छोटे से गन्दे से मोहल्ले में सन् १८७९ में २१ दिसम्बर को का० स्तालिन का जन्म हुआ था। जैसा मुहल्ला था वैसा ही मकान। केवल दो कोठरियां। उसमें से भी एक अपेक्षाकृत अच्छी कोठरी में मकान मालिक रहता था। दूसरी कोठरी में जुगाश्वेलो परिवार अर्थात् स्तालिन के माता-पिता। कमरों के नीचे तहखाने थे जिनमें ये लोग अपना रसोई घर बनाए थे। चूल्हे की गरमी से कमरा गरम रहने में सहायता मिलती थी। चार वर्ष की आयु तक स्तालिन इसी मकान में रहे।

सन् १९३५ में ज्योर्जिया की सोवियत सरकार ने इस मकान को ऐतिहासिक स्मृति चिह्न के रूप में सुरक्षित रखने के लिये स्तालिन की माता के हवाले कर दिया था। अब तक तो यह मकान आंधी-वर्षा और बर्फ की चोटों से भूमिसात हो गया होता परन्तु सोवियत सरकार ने इस मकान की रक्षा के लिये छतरी की तरह दूसरा मकान उसके ऊपर बनवा दिया है। यह छतरी इसके ऊपर बहुत सुन्दर पत्थर की बनी हुई है और इसकी छत पारदर्शी है। अब यह स्मृति चिन्ह हर प्रकार की मौसमी चोटों से बचाव भी है और दर्शक उसे प्रकाश में ऊपर से नीचे तक भली प्रकार देख सकते हैं।

मकान की उस कोठरी को जिसमें स्तालिन का जन्म हुआ था और जहाँ उन्होंने आयु के चार वर्ष बिताये थे, ठीक उसी अवस्था में रखा गया है जैसे कि स्तालिन की माता अपने घर को रख सकती थीं। एक दीवार के साथ खटिया पड़ी है दूसरी दीवार के साथ एक काठ की बेंच, वैसी ही काठ की एक कुर्सी और काठ का एक आलमारीनुमा सन्दूक जिस पर तांबे का एक समावार, चाय के लिये पानी उबालने का बर्तन, एक लैम्प भी रखा है। सन्दूक के ऊपर दो तीन किताबें भी हैं जिन्हें संभवतः स्तालिन के पिता पढ़ते होंगे। खटिया बहुत मामूली बिछावन से ढंकी है।

सोवियत सरकार ने मकान को ऐतिहासिक स्मारक बनाकर अब उसके चारों ओर एक छोटी सी फुलवाड़ी भी लगा दी है। का० स्तालिन के मकान को ढके छतरी के समीप ही दूसरा एक अच्छा बड़ा और सुथरा मकान है। इस मकान में साथी स्तालिन के जीवन की ऐतिहासिक घटनाओं से सम्बन्ध रखने वाली वस्तुओं, चित्रों और लेखों आदि का संग्रह है। यहाँ स्तालिन के माता-पिता की और स्तालिन के बचपन की कई तस्वीरें हैं जो समय के प्रभाव से अस्पष्ट हो चली हैं।

यहाँ साथी स्तालिन की बचपन में लिखी कवितायें भी हैं जो उनके स्कूल की हस्तलिखित पत्रिका में प्रकाशित हुई थीं। स्तालिन के स्कूल की परीक्षायें योग्यता से पास करने के प्रमाण-पत्र भी हैं और साथ ही स्कल के इंसपेक्टर की रिपोर्ट भी मौजूद है जिसमें धार्मिक व्याख्यानों के प्रति स्तालिन की उपेक्षा की शिकायत है। स्तालिन बचपन से

ही न केवल कविता में ही रुचि रखते थे बल्कि साहित्य के अन्य क्षेत्रों और संगीत आदि में भी।

पन्द्रह वर्ष की आयु में स्तालिन ज्योर्जिया की स्वतन्त्रता के लिये क्रान्ति के संघर्ष में सम्मिलित हो गये थे और १८९६ में उन्होंने एक क्रान्तिकारी दल का संगठन कर लिया था। १८९६ में वे क्रान्तिकारी प्रवृति के कारण कॉलिज से निकाल दिये गये। इसके बाद से १९१७ तक उनका जीवन गुप्त क्रान्तिकारी आन्दोलन, जेल एवं देश निकाले की कहानी ही रही।

इस संग्रहालय में साथी स्तालिन के क्रान्तिकारी दल द्वारा आरमीनियन, ज्योर्जियन और रूसी भाषाओं में प्रकाशित की गई अनेक पत्र-पत्रिकाओं और घोषणा पत्रों की प्रतियाँ भी सुरक्षित हैं। इस्क्रा का १९०२ का वह अंक भी सुरक्षित है जिसमें स्तालिन द्वारा तिफलिस (बिलीसी) में दो हजार मजदूरों के प्रदर्शन कराने पर लेनिन ने लिखा था कि इस प्रदर्शन को राजनैतिक संघर्ष और मजदूर आन्दोलन के समन्वय का पहला कदम समझा जाना चाहिये। स्तालिन और लेनिन की फिनलैण्ड में १९०५ की पहली मुलाकात के और १९०६ के सोशल डैमोक्रेटिक पार्टी के साथ स्तालिन के चित्र भी अन्य अनेक ऐतिहासिक चित्रों के साथ सुरक्षित हैं। यह संग्रहालय स्तालिन के जीवन की ही नहीं, वास्तव में समाजवादी क्रान्ति की ऐतिहासिक घटनाओं की स्मृतियों का संग्रहालय है।

संग्रहालय की पंजिका में भारतीय प्रतिनिधियों की ओर से लिखी गईं यह पंक्तियां सुरक्षित रहेंगी—"वियाना शान्ति कांग्रेस में भाग लेने वाले भारतीय प्रतिनिधि समय के मार्ग पर बने हुए साथी स्तालिन के इन पद चिह्नों को देखकर बहुत प्रभावित हुए हैं। यह स्मारक भावी पीढ़ियों को याद दिलाता रहेगा कि मनुष्य की स्वतन्त्रता के लिये संघर्ष का क्या मार्ग रहा है और उसके लिये क्या मूल्य दिया गया है; वह मार्ग कितना कठिन है। स्वतन्त्रता का मार्ग निरन्तर संघर्ष का मार्ग है। महापुरुषों के जीवन हमें याद दिलाते रहते हैं कि जीवन की पूर्णता का वर्ग यही है।

×

गोरी से हम लोग सड़क के रास्ते बस से बिलीसी के लिये चले। दिन सुहावना था। बर्फ नहीं पड़ रही थी। हल्के-हल्के बादल थे। धूप-छांव का खेल चल रहा था। सड़क के दायें-बायें कहीं-कहीं टीलों पर कुछ बर्फ दिखाई दे जाती। रास्ता काफी लंबा लगभग साठ मील था। सड़क अच्छी थी, मार्ग के दोनों ओर जहाँ भी खेत दिखाई दिये निस्सीम विस्तार के रूप में। रास्ते में एक ट्रैक्टर-मशीन-स्टेशन पड़ा। बिलीसी पहुँचने में बहुत विलम्ब न हो जाये इस ख्याल से देखने के लिये नहीं जा सके। ट्रैक्टर-मशीन-स्टेशन को सामूहिक कृषि क्षेत्रों की व्यवस्था की स्नायु-ग्रन्थी समझा जा सकता है। प्रत्येक सामूहिक कृषि के लिये कृषि की भारी-भारी मशीनें ट्रैक्टर और कम्बाइन आदि की पृथक-पृथक व्यवस्था करना सुविधाजनक न होगा और अपव्यय भी होगा इसलिये कई सामूहिक कृषि क्षेत्रों के बीच में एक ट्रैक्टर-मशीन-स्टेशन रहता है और इन क्षेत्रों में मशीन से किये जाने

वाले सब काम अपना मेहनताना लेकर कर देता है। इसके अतिरिक्त कृषि के सम्बन्ध में वैज्ञानिक परामर्श आदि देना भी इन्हीं केन्द्रों का काम है। बहुत सी मशीनें और ट्रैक्टर आदि पंक्तियों में खड़े हुए थे जैसे छावनियों में टैंक, तोपें और फौजी लारियां आदि खड़ी रहती हैं।

बिलीसी से पन्द्रह-बीस मील इधर की बहुत ऊँचे गगनचुम्बी प्राचीन गिरजे का गुम्बद दिखाई दिया। गिरजा एक बहुत पुरानी दीवार की परिधि से घिरा हुआ है। साथियों ने इसे देखने की इच्छा प्रकट की इसलिये यहाँ रुक गये। चारदीवारी से घिरे हाते में ही पादरी साहब का निवास-स्थान है। हम लोगों के गिरजा देखने के अनुरोध की बात सुनकर वे मकान से बाहर आ गये। यह गिरजा और 'पवित्र पिता' (होली फादर) प्राचीन रोमन कैथोलिक परिपाटी की ईसाई शाखा के हैं। छरहरा; असाधारण लम्बा कद, कन्धों से ऐड़ी तक काला चोंगा पहने हुए और सिर पर लगभग एक हाथ ऊँची चौड़ी छत की गोल सफेद टोपी, जैसे सिर पर ऊँची हल्की बाल्टी उठाये हों। खूब लम्बी घनी खिचड़ी, दाढ़ी-मूंछ, दाढ़ी के नीचे एक खूब लम्बी रत्न जटित सलीब लटकी हुई, आंखों पर मोटे शीशे का गोल चश्मा। मालूम हुआ कि पवित्र पिता (होली फादर) पासशुदा डाक्टर हैं और नाम गोब्रोन है। अपने धार्मिक सन्तोष के लिये पादरी का काम करते हैं। धर्म पिता ने बड़े प्रेम से घूम-घूमकर इस प्राचीन गिरजाघर का परिचय दिया। यह गिरजा आरम्भ में पांचवीं या छठी सदी में बनाया गया था। ज्योर्जिया के रूस के अधिकार में आने से बहुत पहले ज्योर्जिया के सम्राटों के ईसाई धर्म स्वीकार कर लेने पर इस गिरजे का पुनः निर्माण हुआ था। गिरजे के चारदीवारी के बाहर बेतरतीब, पुराने ढंग का सा गाँव है। ऐसे गाँव में इतने बड़े गिरजे का अस्तित्व असंगत जान पड़ा। धर्म पिता से मालूम हुआ कि गाँव का नाम मजखैट है और यह स्थान एक समय ज्योर्जिया की राजधानी थी। उन्होंने आस-पास की पहाड़ियों पर कुछ अति प्राचीन मकानों के भग्नावशेषों की ओर संकेत किया।

गिरजा के द्वार की मेहराब में दरार आ गई है। उस पर लोहे का चौखटा चढ़ाकर गिरने से बचा दिया गया है। गुम्बद पर बाहर और भीतर नई मरम्मत के चिह्न हैं। धर्म-पिता ने बताया कि सोवियत सरकार ऐतिहासिक स्मारक के रूप में गिरजे की मरम्मत कराती रहती है। पिछले वर्ष इस पर बहुत अधिक धन व्यय हुआ था। पूजा और आरती की वेदी पर बनी मूर्तियों पर सोने के पत्र चढ़े हुए हैं। धर्म-विरोधी कम्युनिस्ट सरकार ने इस सोने का लालच नहीं किया। सामने और दायें-बायें अनेक मूर्तियां हैं। भित्तियों पर उसी प्रकार के रंगों में चित्र बने हुए हैं जैसे अजन्ता की गुफाओं में हैं। इन सब चित्रों और मूर्तियों की रक्षा पर विशेष ध्यान दिया जाता है। धर्म-पिता को डाक्टर होने के नाते गाँव के लोगों की शारीरिक चिकित्सा के लिये सरकार से जीविका प्राप्त होती है। लोगों की आत्मिक चिकित्सा वे अपने आध्यात्मिक सन्तोष के लिये करते हैं।

मजखैट के बच्चे, कुछ स्त्रियां और दो-चार नौजवान हम लोगों के आगमन से आकर्षित हो गिरजे में सिमट आये थे। उनके चेहरे-मोहरे परिपुष्ट और कपड़े जूते भी

अच्छे-खासे थे परन्तु गाँव के मकान बहुत बेरौनक और कच्ची गलियां भी गन्दी। कीचड़ में मुर्गियां और बत्तखें छपछपाती फिर रही थीं। यह एक ही गन्दा गाँव सोवियत में देखने का अवसर हुआ। सुना था कि यात्रियों को सोवियत देश में सजा-बजाकर रखे हुए गिने-चुने स्थान ही दिखा दिये जाते हैं। साधारणत: देश की अवस्था दयनीय हैं परन्तु यात्रियों को उसे देखने नहीं दिया जाता। इस गाँव को देखकर यही सन्देह हुआ कि क्या हमारे दुभाषिये और पथ-दर्शक रूसी साथियों को यह मालूम ही नहीं था कि ऐसा गाँव रास्ते में आ जायेगा और यदि भूल से इस ओर आ ही गये थे तो कतरा कर गाँव के बाहर से जाने वाली सड़क से ही निकल जाते। गाँव की अवस्था के विषय में डा० बुटरोव से बात भी हुई और उन्होंने स्वीकार किया कि इस गाँव का पुन: निर्माण नहीं हो सका है। कारण पूछने पर उन्होंने निस्संकोच उत्तर दिया कि कारण तो स्थानीय लोग ही बता सकेंगे। मजखैट से दो ही फर्लांग नदी के पार समतल भूमि पर कुछ पक्की इमारतें बनती दिखाई दीं। सम्भव है नया मजखैट बन रहा हो।

बिलीसी के सांस्कृतिक स्थान

बिलीसी हम लोग तीसरे पहर लौटे। भोजन करने के बाद संध्या समय केवल ओपेरा (संगीत नाट्य) देखने का ही श्रम किया जा सकता था। 'पालिश्वेली' ओपेरा थियेटर में गये। ओपेरा (संगीत नाट्य) में भाषा की कठिनाई और संगीत की परिपाटी का ज्ञान न होने से केवल स्थान की भव्यता और रंगमंच की साज-सज्जा की ही सराहना कर सकते थे इसलिये रंगशाला के प्रबन्धकर्त्ता से बातचीत कर कुछ जानकारी प्राप्त करनी चाही। सोवियत के अन्य नगरों की तरह बिलीसी की रंगशालायें भी सरकारी सहायता पर चलती हैं। पालिश्वेली रंगशाला में ४९२ कलाकार हैं और उनका मासिक वेतन पांच लाख रूबल दिया जाता है।

१९ जनवरी बिलीसी में हमारा अन्तिम दिन था। ज्योर्जियन मित्र अभी बहुत सी चीजें और दिखाना चाहते थे परन्तु सम्भव यही था कि जो कुछ बहुत समीप हो, वही देख लिया जाय। उन्होंने बताया कि नगर का सांस्कृतिक उद्यान हमें अवश्य देखना चाहिये। पूछा—"कितनी दूर होगा।" उन लोगों ने नगर के साथ खड़े ऊँचे पहाड़ की चोटी की ओर संकेत किया—"वह सामने ही है।" पूछा—"वहाँ जाने में कितना समय लगेगा ?" उत्तर मिला—"पांच-सात मिनट।"

दो मिनट में होटल से मोटर में पहाड़ की नींव पर पहुँच गये। यहाँ से चोटी तक बिजली की रस्सी से चलने वाली (फेनीक्युलर) रेल जाती है। स्टेशन छोटी सी इमारत है। सामने गाड़ी का एक डिब्बा दिखाई देता है। यह डिब्बा प्रति दस मिनट बाद ऊपर की ओर चलता है और ऊपर से एक डिब्बा नीचे आता है। चढ़ाई बहुत आड़ी है, लगभग ७५° का कोण बनाकर लाइन बनी हुई है। डिब्बों के ऊपर जाने और नीचे आने की एक ही लाइन है। बीचों-बीच कैंची बना दी गई है। यहाँ ऊपर और नीचे जाने वाले डिब्बे अगल-बगल से निकलकर मुख्य लाइन पर हो जाते हैं। नींव के स्टेशन से चोटी के स्टेशन

की ऊँचाई लगभग ढाई हजार फुट है। चोटी पर बना स्टेशन बहुत ही भव्य है। कई बड़े-बड़े हालों में दर्शकों के लिये चाय-पानी की दुकानें तथा विश्राम के लिये जगहें बनी हुई हैं। वाचनालय और पुस्तकालय भी है। दूसरी मंजिल के कमरों में संगीत और बिलियर्ड आदि का प्रबन्ध है। तीसरी मंजिल की छत कांच की है। यहाँ लोग वर्षा या बरफ गिरते समय आराम से कुर्सियों पर बैठकर नीचे नगर को और दायें-बायें फैली हुई बर्फानी चोटियों और घाटियों की बहार देखते रह सकते हैं। दर्शकों के लिये जहाँ और सब सुविधाओं की व्यवस्था है वहाँ दो तीन कमरों में गोद के बच्चों के लिये विशेष प्रबन्ध है। यहाँ दाइयां मौजूद रहती हैं। बच्चों के सोने के लिये छोटे-छोटे पलंग और आलमारियों में बहुत से खिलौने भरे हुए हैं। अभिप्राय यह है कि गोद के बच्चों वाली स्त्रियां भी यहाँ आ सकती हैं और बच्चों को दाइयों को सहेज स्वयं सैर-सपाटे के लिये जा सकती हैं। माँ और बच्चे दोनों का विनोद अपने-अपने ढंग से हो सकता है। सोवियत में कोई भी स्थान या संस्था ऐसी नहीं जहाँ बच्चों के लिये प्रबन्ध न हो। सोवियत में बच्चों का ही स्थान और अधिकार सबसे प्रमुख है।

यहाँ नगर से अढ़ाई हजार फुट की ऊँचाई पर बिलीसी का "स्तालिन संस्कृति-उद्यान" फैला हुआ है। यों तो प्रकृति ने ही स्थान को रमणीय बनाया है उस पर मनुष्य के लिये सम्भव सभी उपायों का उपयोग भी हुआ है। खूब प्रशस्त कुंज और क्यारियां सदाबहार पेड़-पौधो से भरी हुई हैं और स्थान-स्थान पर फव्वारे। स्टेशन के सामने स्तालिन की एक विशालकाय मूर्ति भी बनी हुई है। उद्यान में घास के बड़े-बड़े मैदान हैं जहाँ फुटबाल इत्यादि खेला जा सकता है। बाग का फैलाव कई एकड़ है परन्तु कहाँ बाग समाप्त होकर जंगल आरम्भ हो जाता है, बता सकना कठिन है। बाग के समतल ही आस-पास फैली हुई नीलंगू पहाड़ियों पर जमी हुई बरफ भी ऐसी ही मालूम होती है कि श्वेत स्फटिक के दर्पण बाग की शोभा उभारने के लिये जमा दिये गये हों। बाग वनस्पति और हिम के मेल से बनाया गया जान पड़ता है। नगर से ढाई हजार फुट ऊँचे उठ आने की बात भी नहीं भूलती क्योंकि बिलीसी नीचे कालीन की तरह बिछा दिखाई देता रहता है। यही अनुभूति होती है कि स्वर्ग की ओर अलौकिक स्थान में उठ आये हों, वही अलौकिक स्थान कोहकाफ की परियों का देश जिसकी दंतकथायें संसार भर में प्रसिद्ध हैं और जो पच्चीस वर्ष पूर्व मनुष्य के चरणों के लिये दुर्गम और कल्पना से ही प्राप्य था आज सचमुच बिलीसी के सर्वसाधारण के लिये क्रीड़ास्थल बन गया है।

दोपहर बाद बिलीसी का संग्रहालय भी देखा। मुख्यतः ऐतिहासिक और सांस्कृतिक वस्तुओं का ही संग्रह है। प्रवेश द्वार के समीप ही प्रस्तर युग के मानव परिवार की मूर्तियों का एक समूह है जो तत्कालीन जीवन की व्याख्या एक ही झलक में कर देता है। खुदाई संग्रहालय में मिली कुछ ऐसी सामग्री है जिसे संग्रहालय के ऐतिहासिक अध्यक्ष संसार में सबसे पुरानी अर्थात् ईसा से तीन हजार वर्ष पुरानी बताते हैं। मैंने जानना चाहा कि मोहनजोदड़ो और हड़प्पा में वैसी ही चीज़ें मिली हैं या नहीं? उनका दावा था कि उनके यहाँ कुछ चीजें ऐसी भी हैं, उदाहरणतः तांबे की एक नली, जैसी चीज़ें मोहनजोदड़ो और

हड़प्पा में नहीं मिलीं। यह प्रश्न विवादास्पद है क्योंकि मोहनजोदड़ो और हड़प्पा में फव्वारे और जमीनदोज नालियां पाये गये हैं। यह समझना कठिन है कि जो लोग जमीनदोज नालियां और फव्वारे बना सकते हों नाली बनाना न जानते हों। अस्तु संग्रहालय की व्यवस्था और अध्यक्ष का उत्साह अवश्य सराहनीय था। संग्रहालय के एक भाग में बिलीसी के प्राचीन राजवंशों के स्वर्ण और रत्नजटित आभूषणों का भी संग्रह है जिस पर सशस्त्र पहरा रहता है। संग्रहालय के बीच सशस्त्र पहरे की क्या आवश्यकता हो सकती हैं? परन्तु एक बार पहरा लगा दिया गया होगा तो चला ही जा रहा है।

सूर्यास्त से पहले बिलीसी सागर देखने भी गये। योरी नदी बिलीसी के समीप ही बहती है। अब तक उसका बहाव प्रायः व्यर्थ ही था क्योंकि नदी आस-पास की भूमि से गहराई में है। अब नदी के उद्‌गम की ओर ऊँचाई पर बाँध लगाकर एक नहर काट ली गई है और उसे कई सुरंगों में से बहाकर बिलीसी नगर के समीप एक विस्तृत सूखी घाटी में डाल दिया गया है। नहर से आया नदी का जल घाटी में इकट्ठा हो सागर का रूप लेता जा रहा है। नगर के इतने समीप कई मील लम्बी-चौड़ी यह झील नगर के सौंदर्य को तो बढ़ायेगी ही परन्तु साथ ही इसमें से दो और नहरें बना दी गई हैं जिससे डेढ़ लाख एकड़ जमीन की सिंचाई और हो सकेगी। दो नये बिजली घर भी बन सकेंगे।

उस संध्या बिलीसी की शान्तिसभा ने वियाना विश्वशांन्ति कांग्रेस से लौटे अपने प्रतिनिधियों से कांग्रेस का विवरण सुनने के लिये एक सार्वजनिक सभा का आयोजन किया था। सभाभवन ठसाठस भरा था। सभा में भारतीय प्रतिनिधियों को भी आमंत्रित किया गया। सभा में पहले बिलीसी की डाक्टर निन्ना ने कांग्रेस की रिपोर्ट पेश की। डाक्टर कुमारप्पा, दलजीतकौर, रमेशचन्द्र और सोवियत शान्तिसभा के मन्त्री कोतोव भी बोले। उन्होंने कहा—"यद्यपि सोवियत की सैनिक-शक्ति बड़े से बड़े साम्राज्यवादी आक्रमण का मुंहतोड़ जवाब देने के लिये पर्याप्त है, सोवियत की जनता अपनी शक्ति का प्रदर्शन करने के लिये नहीं बल्कि सद्‌भावना से शांति के लिये ही उत्सुक है। जय और पराजय के बल से कायम की गई शांति केवल भावी युद्धों की चिनगारियाँ बोती है जो पराजित देशों के शक्ति संचय कर लेने पर दावानल की भाँति भभक उठती है। शांति का वास्तविक मार्ग केवल पारस्परिक सद्‌भावना एवं विश्वास ही हो सकता है।" साथी रमेशचन्द्र ने एक बहुत अच्छी बात सोवियत साथियों के स्वागत के उत्तर में कही—"आपका राष्ट्र विज्ञान की शक्ति और मानवता की भावना में विश्वास करने वाला राष्ट्र है। आपने विज्ञान की शक्ति से एक नहर बनाकर डान और वोल्गा नदियों को मिला दिया है। आप अपनी सद्‌भावना की शक्ति से सोवियत राष्ट्रसंघ और भारतवर्ष की जनता के बीच प्रेम की नहर बनाकर उन्हें भी मिला रहे हैं।"

रात में ज्योर्जियन मित्रों ने बिदाई के प्रीतिभोज का आयोजन किया था। इस भोज में बिलीसी के प्रमुख कवि, कवयित्रियां, लेखक-लेखिकायें और कलाकार भी आये थे। ज्योर्जिया के लोगों को अपने अंगूरों और अंगूरी शराब पर बहुत गर्व है। डटकर बोतलें

पीते हैं। इस अंगूरी शराब से बदहवासी का नशा नहीं होता । हम लोगों को संकोच करते देख वे उसके स्वास्थ्य गुण की प्रशंसा कर हमें उत्साहित करना चाहते थे। उनका दावा है कि ज्योर्जिया के लोग संसार में सबसे अधिक दीर्घजीवी होते हैं। चाहे जिस गाँव में जाकर देख लीजिये, सौ वर्ष से अधिक आयु के आदमी आपको मिल ही जायेंगे। यह इसी अंगूरी रस का प्रभाव तो है। इस भोज में भी वे लोग सफेद अंगूरी शराब, लाल अंगूरी शराब और शैम्पेन बहा देना चाहते थे। भोजन के परिमाण और प्रकार भी बहुत अधिक थे। खाते और पीते-पीते कोई ज्योर्जियन साथी सारंगी जैसा बाजा बजाने लगता और गाना शुरू हो जाता, फिर खाना और पीना, फिर नाच और गाना! और फिर खाना-पीना!! बिलासी के प्रमुख नर्तक और नर्तकी दोनों आये हुए थे। उन्होंने हमारे साथी स्त्री-पुरुष प्रतिनिधियों को खींच-खींचकर साथ नचाना शुरू किया। मालती बाई, दलजीत कौर, पैरीन, गीता, हाजरा और दूसरे साथियों में से भी उन्होंने प्रायः किसी को नहीं छोड़ा। उनका आत्मीयता भरा आग्रह ऐसा ही था कि इंकार किया नहीं जा सकता था। वातावरण ही कुछ ऐसा हो गया कि रावलजी जैसे वृद्ध स्वयं ही गाने लगे।

परन्तु इस विकट खान-पान और नाच-गान में भी सोवियत साथियों की व्यावहारिक बुद्धि मन्द नहीं पड़ गई थी। हम लोगों और हमारे देश के प्रति शुभकामनायें प्रकट करते हुए उन्होंने हमें विदेशी गुलामी के बन्धनों से छूट जाने पर बधाई देकर कहा—"भारत जैसा महान देश यदि स्वेच्छा से विदेशी आर्थिक सहायता के बन्धनों में बंधता जायेगा तो वह आत्मनिर्भर न हो सकेगा। क्या भारत की जनता इस प्रकार की दासता की आशंका को भांप कर उसके प्रति सतर्क नहीं है ? क्या वे इस प्रकार के विदेशी-साम्राज्यवादी कुचक्रों को नहीं पहचानते ? भारत की जनता शांति में तो विश्वास रखती है परन्तु क्या पूर्ण आत्मनिर्भरता और आत्मनिर्णय के अधिकार के बिना शांति सार्थक हो सकती है....... ?"

अपने साथियों ने इस अवसर पर आतिथ्य के लिये धन्यवाद देने का बोझ मेरे कंधों पर डाला और मैंने संक्षेप में कहा—"हमारे देश की जनता ने स्वतंत्रता के लिये संघर्ष में असाधारण बलिदान किये हैं इसलिये हम अपनी स्वतंत्रता के प्रति खूब सतर्क हैं। हम लोग इतने बेखबर नहीं कि बंधनों को जेवर समझ कर अपना लें। हम अपने सोवियत मित्रों को विश्वास दिलाना चाहते हैं कि हमने ब्रिटिश साम्राज्य की दासता के कुएं से निकलने का यत्न इसलिये नहीं किया था कि हम दूसरी साम्राज्यवादी शक्तियों की दासता की खाई में डूब जायें। हम शांति चाहते हैं, इसमें संदेह नहीं परन्तु विवश होकर अत्याचार सहते जाने की निष्क्रिय शांति नहीं क्योंकि ऐसी अवस्था में हमारा मन शांत नहीं होगा.......।" सोवियत साथियों को मेरी बात बहुत पसंद आई। 'ओग्न्योक' पत्रिका के संवाददाता 'पोमन्याशी' ने तुरंत समीप आ मेरे गले में बांह डाल सराहना की—"योर.......स्पीच.......ब्यूटिफुल!"

●

स्तालिनग्राद

बारह जनवरी, बिलीसी से लगभग साढ़े नौ बजे विमान से चल रोस्तोव के रास्ते हम लोग दो अढ़ाई बजे स्तालिनग्राद पहुँच गये। हरे-भरे एशिया को छोड़कर एक बार फिर सब ओर बर्फ से ढके देश में आ गये। विमान के अड्डे का मैदान भी सीमेंट की तरह जमी हुई बर्फ से पटा हुआ है। विमान के अड्डे से नगर लगभग बीस मील दूर है। हम लोग पांच छः कारों में नगर की ओर चले। गाड़ियाँ समानान्तर चली जा रही थीं। सड़क का कहीं कोई चिह्न दिखाई न दे रहा था। पूछा—"यहाँ सड़क-वड़क का बंधन नहीं है?" उत्तर मिला कि इस ऋतु में सभी एक समान है। बर्फ पिघलने पर ही सड़क का प्रश्न होगा। बर्फ के सपाट मैदान में कहीं कोई एक आध झाड़ी ही दिखाई दे जाती थी। नगर के समीप काठ के बने छोटे-छोटे मकान दिखाई देने लगे और फिर सड़क के दोनों ओर खूब बड़े-बड़े ऊँचे मकान। होटल तक पहुँचने में दो या तीन ही बम से गिरे मकान दिखाई दिये जिनकी छतें उड़ी हुई थीं, दीवारों के कुछ भाग अब भी खड़े हुए थे और लोहे के बड़े-बड़े शहतीर दीवारों में फंसे हुए, जैसे विराटकाय पशुओं के टूटे हुए अस्थि पंजर हों, जो बहुत पुराने हो जाने से काले भी पड़ चुके थे।

स्तालिनग्राद के युद्ध और ध्वंस की कहानी जगत प्रसिद्ध है। ध्वस्त नगर के मुहल्लों में शायद ही कहीं एक-आध मकान सुरक्षित रह गया होगा। अधिकांश मुहल्लों में एक भी नहीं। हमारे जाने पर कहीं एक-आध मकान ही गिरा हुआ दिखाई देता था। शेष सब बन चुका है। संसार के इतिहास में कुछ स्थानों के नाम अमर हैं जहाँ लोगों ने अपनी स्वतंत्रता की रक्षा के लिये बलिदान के अपूर्व उदाहरण प्रस्तुत किये थे। उस परम्परा में स्तालिनग्राद सबसे आगे बढ़ गया है। संसार में सबसे बड़े विध्वंस और सबसे बड़ी दृढ़ता का उदाहरण स्तालिनग्राद ही है। और वीरता का सबसे बड़ा तीर्थ! स्तालिनग्राद की ओर जाते समय आशा थी कि अपने देश की रक्षा के लिये आत्म-बलिदान करने और ध्वंस को सहन करने का हृदय विदारक चित्र आंखों के सामने आयेगा; परन्तु वहाँ गर्व से सिर ऊँचा उठाये महलों को देख मनुष्य के विकास की नई व्यवस्था की निर्माण शक्ति का क्रियात्मक रूप देख मन सराहना से भर गया।

स्तालिनग्राद की नगरपालिका के प्रधान (मेयर) हम लोगों से मिलने होटल में आये और भोजन के लिये बैठते ही उन्होंने भारतीय प्रतिनिधियों के स्वागत और 'भारत-सोवियत मैत्री' के लिये टोस्ट से प्रस्ताव किया। डाक्टर कुमारप्पा ने दूसरे टोस्ट से उत्तर दिया—"फासिज्म की बर्बरता से संसार की रक्षा करने वाले शौर्य के उच्चतम आदर्श स्तालिनग्राद का हम अभिवादन करते हैं।"

संध्या समय नगर के प्रधान ने हमें नगर की निर्माण सभा के दफ्तर में आमन्त्रित किया। हम यहाँ भी इन्टूरिस्ट होटल में ठहरे थे। निर्माण सभा की इमारत होटल के सामने ही कुछ दूर पर है। स्तालिनग्राद पर नाजी आक्रमण के समय नगर का यह भाग नाजियों के अधिकार में चला गया था और नाजी सेना के मुख्य सेनापति जनरल पौलस ने इसी मकान में अपना मुख्य केन्द्र कायम किया था। स्तालिनग्राद नगर के पांच भागों में से तीन भाग नाजियों के हाथ में चले गये थे और इन भागों में शायद ही कोई मकान पूरा खड़ा रह गया हो। उस युद्ध की कहानी दोहराना अनावश्यक होगा। प्रत्येक मकान लड़ाई का क्षेत्र था। लाल सेना और स्तालिनग्राद के नागरिकों ने मकानों की एक-एक कोठरी और एक-एक मंजिल पर नाजी आक्रमणकारियों का मुकाबला किया था। कई मकान तो महीनों लाल सेना और नाजी सेना में बँटे रहे। नगर के पांच भागों में से तीन भाग खोकर भी लाल सैनिकों और स्तालिनग्राद के नागरिकों का साहस और निश्चय अडिग रहा और उन्होंने शत्रु को अपने नगर से बाहर निकाल कर ही दम लिया। स्तालिनग्राद में मुक्ति का युद्ध २ फरवरी १९४३ को समाप्त हुआ। उसी समय से नगर का निर्माण आरम्भ कर दिया गया।

नगर के नवनिर्माण की योजना के अनुसार नगर के बीचोंबीच शहीद 'लाल सैनिकों का चौरस बनाया गया है।' चौरस के केन्द्र में स्तालिन की विशाल मूर्ति है और उसके समीप नगर की रक्षा और मुक्ति में निछावर होने वाले लाल सैनिकों का स्मारक है। इन लाल सैनिकों के साथ ही स्पेन के फैसिस्त विरोधी जनता के प्रसिद्ध नेता दोलो रे इबारूरी का पुत्र भी समाधिस्थ है जो स्तालिनग्राद में नाजियों के विरुद्ध इस नगर की रक्षा के लिये अवैतनिक सैनिक के रूप में लड़कर शहीद हुआ था। उसकी स्मृति इस सत्य का प्रतीक रहेगी कि स्वतंत्रता प्रेमी जनवादी न केवल अपने देश से प्रेम करता है, अपनी स्वतंत्रता को महत्त्व देता है बल्कि वह सभी देशों के साथ न्याय के लिये संघर्ष करना अपना कर्त्तव्य समझता है।

उस संध्या नगर-प्रधान ने हमें नगर निर्माण समिति के कार्यालय में आमन्त्रित कर नगर के नव-निर्माण की योजना के नक्शे आदि दिखलाये और योजना को पूरा करने का कार्यक्रम समझाया। युद्ध के बाद सबसे पहले नगर के ध्वंस हो गये उद्योग-धन्धों, मिलों और कारखानों का निर्माण किया गया। १९४९ में नगर की सभी मिलें और कारखाने युद्ध के नुकसान को पूरा कर भावी विकास की योजनाओं में लग गये थे। यह इसलिये आवश्यक था कि लोगों के बेकार रहने की समस्या न उठ खड़ी हो। इसके बाद सार्वजनिक संस्थाओं के लिये उचित इमारतें बनाने और नागरिकों के निवास का उचित प्रबन्ध करने की ओर ध्यान दिया गया। युद्ध से पहले जितने मकान नगर में थे, उतने तो प्रायः बन ही चुके हैं परन्तु अब नगर की योजना पहले से बहुत बड़ी बनाई गई है। नगर में उद्योग-धन्धों की बहुत प्रगति हुई है और जनसंख्या भी बढ़ गई है। लाल सेना के शहीदों के चौरस से वोल्गा नदी पर बने पत्तन के मार्ग पर नगरसभा के लिये एक सत्रह मंजिली इमारत बनाने की व्यवस्था की गई है। बहुत से हस्पताल, स्कूल, क्लब और

डाकखाने नगर में बन चुके हैं। परन्तु अभी और भी बनाये जा रहे हैं। इन्हें नगर के भिन्न-भिन्न भागों में इस प्रकार बाँटा गया है कि नगर के किसी भी भाग के लोग दस मिनट में डाकखाने; हस्पताल, स्कूल या क्लब में पहुँच सकें।

नगर में एक साथ पाँच सौ इमारतों पर काम चलता रहता है। लगभग सभी काम ईंट, गारा, पानी, शहतीरें आदि ऊपर पहुँचाने का काम मशीनों से लिया जाता है। इमारतों, बागों और वृक्षों के लगाने का पूरा काम पन्द्रह वर्ष में हो पायेगा। उस समय नगर के भिन्न-भिन्न भागों की रूपरेखा और दृश्य कैसे होंगे उनके रंगीन चित्र निर्माण समिति के कार्यालय में लगे हुए हैं। इन चित्रों के अनुसार स्तालिनग्राद वोल्गा के विस्तृत जलप्रवाह के तट पर एक 'उद्यान-नगर' के रूप में होगा। संसार के अनेक नगरों के चित्र देखने का अवसर मिला है। भावी स्तालिनग्राद नगर की तुलना कोई वर्तमान नगर नहीं कर सकता। हाँ, यह असम्भव नहीं कि भविष्य में दूसरे देशों में इससे भी सुन्दर नगर बसाये जायें। स्तालिनग्राद की इन नवीन योजनाओं की सफलता में कुछ वर्ष पहले संदेह किया जा सकता था परन्तु नवीन सामाजिक व्यवस्था ने युद्ध में ध्वंस हो गये पूरे स्तालिनग्राद नगर को साफ कर नौ वर्ष में नगर को वर्तमान अवस्था में बना लिया है या 'डान' नदी को नहर द्वारा उठाकर वोल्गा नदी में डाल दिया है, उनके लिये क्या कुछ कर डालना कठिन है ?

उस संध्या एक रंगीन सोवियत फिल्म 'सादको' देखी। अभिनय और अद्भुत दृश्यों को उपस्थित करने के कौशल के अतिरिक्त याद रहने लायक बात यह थी कि कहानी का नायक सुख और सन्तोष की खोज में भारतवर्ष भी पहुँचता है। भारतवर्ष के कुछ आधुनिक और कुछ सामन्तकालीन मिले-जुले जीवन का प्रतिबिम्ब हमारे आधुनिक बाजारों, आगरे और फतेहपुरी के प्राचीन किलों और महलों से लिया गया है। निम्न श्रेणी के दैन्य जीवन की छाया भी है और राजसी ठाट-बाट, बारह-दरियों और फव्वारे के दृश्य भी दिखाये गये हैं। दोनों का ही प्रदर्शन इस देश में बनने वाली फिल्मों की अपेक्षा अधिक यथार्थ हैं। कहानी का नायक अनेक देशों में ही नहीं, सुख-सन्तोष की खोज में पाताल में परियों के देश में भी जाता है। परियों के देश का जल मार्ग और परियाँ की कल्पना भी बहुत ही सुन्दर प्रस्तुत की गई थी! इससे पूर्व मास्को और बिलीसी में भी ओपेरा, बैले और फिल्म में भी सभी जगह कथानकों में परियों का प्रसंग देखने में आया था। कला में परियों का प्रसंग नहीं आना चाहिये, ऐसा कोई नियम यथार्थवाद की दृष्टि से नहीं बना दिया जा सकता परन्तु मेरा व्यक्तिगत ख्याल है कि कथानकों को रोचक बनाने के लिये अथवा विचारों को प्रकट करने के लिये परियों या काल्पनिक वस्तुओं को माध्यम बनाना यथार्थ कल्पना की कसौटी से एक प्रकार की न्यूनता ही है। क्या हम सभी विचारों को प्रकट करने के लिये यथार्थ-जीवन से रूपक या कथानक नहीं ले सकते ?

मराठी उपन्यास लेखिका मालती बाई का ध्यान मैंने सोवियत कला में परियों के बाहुल्य की ओर दिलाया। यह उन्हें भी खल रहा था। उन्होंने मुझसे ही प्रश्न किया कि

सोवियत कलाकारों के अत्यन्त यथार्थवादी होने पर भी उनकी कला में परियों के माध्यम के प्रयोग और बाहुल्य का कारण क्या हो सकता है? इस विषय में क्रेमापालोवा और दूसरे सोवियत साथियों से भी बात की थी उन्होंने इसकी कोई व्याख्या न कर केवल यही कहा था कि संयोगवश हम लोगों ने परियों के ही प्रकरण अधिक देखे होंगे, साधारणतः ऐसी बात नहीं है। इस उत्तर से समाधान नहीं हुआ। मुझे सोवियत कला में परियों के प्रसङ्ग का कारण यही जान पड़ा कि सोवियत कलाकार समाजवादी नैतिकता और सामाजिक भावना को बुद्धि से तो ग्रहण कर चुके हैं परन्न इस नैतिकता के व्यवहार की परम्परा अभी उनके सामने नहीं है। यह नैतिकता सोवियत समाज में कार्यरूप में भी परिणित हो रही है परन्तु वह अभी समाज का अनायास, परम्परागत् स्वभाव नहीं बन पाई। यह सोवियत समाज की सचेत चेष्टा है संस्कारगत् स्वभाव नहीं। इसके लिये प्रचुर उदाहरण और दृष्टान्त समाज में नहीं मिल सकते। सोवियत कलाकार सामंतवादी और पूँजीवादी नैतिकता को मान्यता देने के लिये गढ़ी गई कला को भी प्रश्रय नहीं देना चाहते इसलिये सुलभ, निरीह कल्पनाओं से ही अपनी कलात्मक आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं। किसी भी नैतिकता के समाज के संस्कारों और भावों में परिणित हो जाने के लिये कुछ समय दरकार होता है। तभी वे हमारे संस्कारों और स्वभाव का रूप ले सकती हैं और हम समाज के अनायास व्यवहार में उनकी कल्पना करते हैं। कलाकार अपना मसाला विधि-निषेधों से नहीं समाज के जीवन और व्यवहार से पाता है। सोवियत समाज में नवीन नैतिकता और न्याय को क्रियात्मक रूप दिया जा रहा है परन्तु इन आदर्शों के अनुकूल कला के मूर्त्त बना लेना वहाँ के लेखकों के लिये अभी अनायास कार्य नहीं हो पाया है। दूसरी ओर हमारे देश के प्रगतिशील आलोचक है जो अपने लेखकों पर सदा इसीलिये चाबुक ताने रहते हैं कि अपनी कला द्वारा वे समाज के नव-निर्माण के मूर्त क्यों प्रस्तुत नहीं कर रहे ?

× × ×

दूसरे दिन अच्छी खासी धूप थी। जहाँ तक दृष्टि जाती, चमकती बर्फ से आँखें चकाचौंध हो जातीं। सड़क के दोनों ओर बहुत ऊँची-ऊँची इमारतें बहुत दूर तक चली गई हैं। यह नगर का वोरोशिलोव मुहल्ला था। इमारतें सभी बिलकुल नई हाल ही की बनी हुई हैं क्योंकि युद्ध से पहले की इमारतों की कोई दीवार भी यहाँ नहीं बची थी। जिस नगर पर एक हजार विमान प्रतिदिन महीनों तक बम फेंकते रहे हों, वहाँ क्या शेष रह सकता था। इस बमबारी में जो लोग गिरे हुए मकानों में भी जमे रहकर लड़ते रहे, अपने प्राणों के लिये नहीं आदर्शों के लिये ही लड़ रहे थे। अपने आदर्शों में उनकी कैसी निष्ठा रही होगी? सड़क के किनारे प्रत्येक कुछ कदम पर बने खम्भों या पंक्ति दूर तक चली गई है। इन खम्भों पर छोटी-छोटी तोपें लगी हैं। ड्राइवर ने बताया कि नाजियों के विरुद्ध इसी लाइन पर मोर्चा कायम किया गया था। लाइन के दोनों ओर अभी तक भी खाइयों के चिह्न हैं। खंभों की पंक्ति के पूरब की ओर लाल सैनिक थे और पश्चिम की ओर जर्मन। दोनों खाइयों के बीच के अन्तर को पार करने के लिये नाजी टैंक लगातार

हमले करते रहे परन्तु वे इस अन्तर को कभी पार न कर सके क्योंकि यहाँ नागरिकों और लाल सिपाहियों को स्तालिन की आज्ञा थी कि गोला बारूद और शस्त्र समाप्त हो जाने पर शत्रु को उघड़े हुए सीनों की दीवारों से रोको! इस मोर्चे पर चार लाल सैनिक ने तीस नाज़ी टैंकों का सामना किया था। लाल सैनिकों के पास केवल हाथ से फेंकने वाले बम थे। दिन भर की घमासान के बाद पन्द्रह टैंक वहीं समाप्त हो गये और पन्द्रह को पीठ दिखा देनी पड़ी। चार लाल सैनिकों में से संध्या समय केवल एक बचा रहा। इस मोर्चे के दूसरे भाग पर तैंतीस पैदल लाल सैनिकों ने सत्तर टैंकों का मुकाबला किया। सत्ताइस टैंक टूट गये और शेष को लौट जाना पड़ा। यह दो घटनायें पूरे स्तालिनग्राद नगर के व्यवहार की साधारण घटना है। इसी रास्ते हम लोग स्तालिनग्राद का ट्रैक्टर बनाने वाला कारखाना देखने गये।

कारखाने में काम का ढंग और व्यवस्था प्राय: वैसी है जैसी मास्को के मोटर कारखाने में। मजदूरों का व्यवहार और भी गर्वीला और निश्शंक। कारखाने के आकार और उत्पादन शक्ति का अनुमान करने के लिये यह काफी है कि इस कारखाने से प्रतिदिन अस्सी ट्रैक्टर बनकर बाहर निकल जाते हैं। हम लोगों के देखते-देखते ही तीन ट्रैक्टर बाहर हो गये। ट्रैक्टरों के ड्राइवर बाहर जाते समय हम लोगों को भी साथ बैठाकर बाहर ले गये।

लौटते समय इस कारखाने के क्लब की भी झांकी ली। क्लब वोल्गा नदी के किनारे बना है। बर्फ से जमी हुई वोल्गा इस समय रुई से ढके मैदान की भाँति जान पड़ रही थी। बर्फ के उस विस्तार पर से आती हुई हवा हमारे मोटे-मोटे ओवरकोटों को बेंधकर शरीर में छिदी जा रही थी। क्लब का वोल्गा की ओर का बरामदा शीशों से मढ़ा हुआ था और मजदूरों के छोटे-छोटे बच्चे इन बरामदों में किलकारियाँ भरते हुए खेल रहे थे। सात बरस की एक गुड़िया सी बच्ची प्यानो बजाना सीखती बड़ी प्यारी लगी। दुभाषिये की मारफत पूछा कि यह किसकी बिटिया है। मालूम हुआ कि वह कारखाने के किसी इंजीनियर की लड़की थी और उसे सिखाने वाली, उससे दो वर्ष बड़ी लड़की मजदूर की लड़की थी।

क्लब में संगीतशाला, रंगशाला और तरह-तरह के विनोद के विभाग तो थे ही, कई कमरों का एक बड़ा विभाग नवयुवक मजदूरों को वैज्ञानिक और औद्योगिक शिक्षा देने के लिये था ताकि वे इंजीनियर और आविष्कारक बन सकें।

सोवियत देश की सफलताओं में 'वोल्गा-डान' नहर का विशेष महत्त्वपूर्ण स्थान है। इस स्थान को देखने की हम लोगों को बहुत इच्छा थी। नगर से प्राय: आठ-नौ मील दक्षिण की ओर यह नगर वोल्गा से मिलती है। वोल्गा और नहर दोनों बरफ से जमी हुई थी। इससे हम लोगों को एक लाभ यह हुआ कि नहर की गहराई और उसके जल को रोकने वाले फाटकों आदि की बनावट देखने का अवसर मिल गया क्योंकि यह मनुष्य की कृति है इसलिये इसको नहर ही कहना होगा परन्तु झांकने से वह किसी प्राकृतिक, भयंकर

गार से कम मालूम नहीं होती। यह रचना निश्चय ही प्रकृति पर मनुष्य की विजय का एक बड़ा कदम है। नगर के ऊपर एक विशाल द्वार बना हुआ है। इस द्वार के ऊपर यह वाक्य है—"साम्यवाद की निर्माता सोवियत जनता की जय हो!" वोल्गा और डान नहर से घिरी हुई जगह में एक सुन्दर बगीचा लगाया जा रहा है। सब ओर नये लगाये गये वृक्षों की पंक्तियाँ हैं और उनके बीच एक खूब ऊँचे स्तम्भ पर स्तालिन की मूर्ति लगभग कुतुबमीनार के बराबर ऊँची वोल्गा की ओर दृष्टि किये खड़ी है।

वोल्गा-डान नहर सोवियत जनता के जीवन में एक नवीन युग का आरम्भ है। प्रकृति को जीतकर सोवियत जनता ने लाखों एकड़ बंजर जमीन को उपजाऊ खेतों में बदल लिया है। इस प्रायः रेगिस्तान से दिखाई देने वाले प्रदेश में जंगलों की श्रेणियाँ लगा दी गई हैं। पूरे प्रदेश का जलवायु ही बदल गया है। इस नगर के बन जाने से स्तालिनग्राद जहाजों का एक महत्त्वपूर्ण पत्तन बन गया है। सोवियत के उत्तरी सागर तट से यहाँ तक पहुँचने का मार्ग पहले की अपेक्षा चार हजार मील कम हो गया है।

वोल्गा-डान नहर से लौटते समय हम लोग स्तालिनग्राद के पत्तन से होकर आये। वोल्गा तो जमी हुई थी परन्तु पत्तन की बनावट का सौन्दर्य देखा ही जा सकता था। नदी किनारे बनी हुई सीढ़ियों और स्तूपों को देखकर यह अनुमान नहीं होता कि यह स्थान कारोबार और व्यवसाय के प्रयोजन से बनाया गया है बल्कि बहुत कुछ यूनान की कविताओं में वर्णित नाटकों के मण्डपों जैसा ही लगता है। इस समय वोल्गा जमकर पत्तन के सामने धूप में चमकता हुआ मैदान बनी हुई थी। मार्च में जब नदी नीले जल की लहरों से ढलमल करने लगेगी तो इसकी क्या शोभा होगी? और उसके साथ यह सोवियत के कितने विस्तृत भाग की पोषक धमनी बन जायेगी।

पत्तन से लाल सेना के शहीदों का चौरस सामने ही पड़ता है। हमारे मेजबान ने गर्व से बताया—'इस स्थान तक नाजी कभी भी नहीं पहुँच सके थे। १९४२ और १९४३ के जाड़ों में भी वोल्गा इसी प्रकार जमी हुई थी। नाजियों के आक्रमणों से नित्य हजारों आदमी जख्मी होते थे और हम लोग रात में अंधेरा हो जाने पर उन्हें उठाकर चिकित्सा के लिये जमी हुई नदी के पार पहुँचा आते थे।'—जिस समय वे नदी के बर्फ से जम जाने के कारण रात में होने वाली सुविधा की बात सुना रहे थे, धूप खूब खिलखिला रही थी परन्तु हम मोटे-मोटे ओवरकोट पहने रहने पर भी ठंडी हवा से कांप रहे थे और हमारे कुछ साथी जो स्थान के सौन्दर्य से विवश होकर चंचलता का दमन नहीं कर पा रहे थे बर्फ पर फिसल-फिसलकर गिर रहे थे। ऐसे स्थान में रात के अंधेरे में, जब आकाश से निरन्तर बमों की वर्षा हो रही हो, अपने जख्मी साथियों को कन्धे पर उठाकर बर्फ से पटी नदी पार करना........!

दोपहर बाद नगर के प्रधान हमें नगर के सिरहाने दक्षिण पश्चिम की ओर तकिये की तरह ऊँची उठी हुई 'मामायेव' पहाड़ी पर ले गये। नगर पर आक्रमण के पहले हल्ले में नाजियों ने इस पहाड़ी को ले लिया था। इस पहाड़ी से नगर का प्रत्येक भाग दिखाई दे

सकता है। नाजियों ने इस पर तोपे चढ़ा ली थीं और पूरे नगर पर निरन्तर गोलों की बौछार कर रहे थे। इस पहाड़ी का शत्रु के हाथ में रहना बहुत विपत्ति का कारण था। का० स्तालिन ने आदेश दिया कि इस पहाड़ी को शत्रु से वापिस ले लेना चाहिये और लाल सेना के सैनिकों ने यह पहाड़ी नाजियों से छीन ही ली। इस पहाड़ी पर ही सम्भवतः युद्ध के भविष्य का निश्चय हो गया था परन्तु इस विजय के लिये लाल सैनिकों ने पूरी पहाड़ी को अपने रक्त से तर कर दिया। इस समय यह पहाड़ी बर्फ से ढकी हुई थी। पहाड़ी के शिखर पर इसे जीत लेने वाले लाल सैनिकों की समाधि बनी हुई है। यह पहाड़ी ही क्या, पूरा स्तालिनग्राद नगर वीर देशभक्तों की समाधियों से भरा हुआ है। जगह-जगह छोटे-छोटे परन्तु सुन्दर स्तूपों पर लटकी विजय मालायें उस अजेय देश-प्रेम की मूक घोषणा कर रही है, उन स्थलों का पता दे रही है जहाँ देशभक्तों ने दासता के विरोध में शरीर अर्पण किये थे। यह स्तूप जिसने मानवता की स्वतन्त्रता की रक्षा के लिये स्तालिनग्राद को अमर तीर्थ बना दिया है। स्थान-स्थान पर शान्ति की घोषणायें दिखाई देती हैं। ऐसे वीरों की शान्ति के लिये माँग संसार को शान्ति का वास्तविक आश्वासन दे सकती है।

उस संध्या हम लोग स्तालिनग्राद का संग्रहालय देखने गये। संग्रहालय का भवन भी स्वयं एक स्मारक है। अक्टूबर १९१७ की क्रान्ति के बाद जारशाही के समर्थक अनेक रूसी जनरल ब्रिटेन और अमरीका की सहायता से समाजवादी सरकार के विरुद्ध लड़ रहे थे। वे लोग समाजवादी सरकार की लाल सेनाओं को पीछे धकेलते हुए जारित्सिना तक पहुँच गये थे। उस समय स्तालिनग्राद का नाम जारित्सिना था। लाल सेना की लगातार पराजय से समाजवादी सरकार की स्थिति बहुत संकटापन्न हो गई थी। का० स्तालिन को जारशाही की सेनाओं को रोकने के लिये जारित्सिना भेजा गया। स्तालिन के यहाँ पहुँचते ही विजय की दिशा बदल गई। उस समय भी जारित्सिना से शत्रु के दांत खट्टे कर समाजवादी व्यवस्था की रक्षा के लिये अपूर्व शौर्य का परिचय दिया था। जारित्सिना के इस शौर्य के सम्मान में नगर को लाल झण्डा अर्पण किया गया था। १९४२ में भी स्तालिनग्राद की सेना की एक टुकड़ी लगातार इसी झण्डे के नीचे लड़ती रही और उसने इसे कभी नीचा नहीं होने दिया। शौर्य की अमर कीर्ति के प्रतीक इस लाल झण्डे को देखने का भी हमें सौभाग्य प्राप्त हुआ। जारित्सिना की जनता के अनुरोध से ही १९२५ में नगर का नाम स्तालिनग्राद रखा गया था। जनता का वह प्रार्थनापत्र और सोवियत सरकार की स्वीकृति इस संग्रहालय में मौजूद है। १९१८ में जारशाही सेना के जनरलों से छीनी हुई तलवारें भी यहाँ हैं और दूसरे महायुद्ध के स्मारकों से तो संग्रहालय भरा हुआ है।

युद्ध से पहले १९४० में नगर की जैसी अवस्था थी उसके चित्र मौजूद हैं और २३ अगस्त १९४२ में जब एक हजार नाजी बममारों के नगर पर एक साथ बम बरसाकर आग लगा देने के बाद नाजियों के हजारों टैंक नगर पर टूट पड़े थे और पूरे नगर के मकान गिर गये थे, उसके चित्र भी मौजूद हैं। इस दृश्य को मिट्टी की मूर्ति बनाकर यहाँ रखा गया है। ध्वस्त नगर के मध्य भाग में केवल दो मकान खड़े हैं। एक मकान जिसमें

नाजियों ने अपनी मुख्य छावनी बना ली थी। दूसरे मकान को लाल सेना के सार्जेंट पावलोव ने नाजियों से छीनकर अपना मोर्चा बना लिया था। नाजी सेना इस मकान पर अट्ठावन दिन तक दिन-रात आक्रमण करती रही परन्तु पावलोव और उसके साथियों ने यह मोर्चा न छोड़ा। इसी प्रकार लाल सेना के एक सैनिक का रिवाल्वर सुरक्षित है जिसने उस रिवाल्वर से ही तीन सौ फासिस्त आततायियों को मारा था।

उस रात स्तालिनग्राद के 'गोर्की रंगशाला' में विक्टरह्यू गो के प्रसिद्ध उपन्यास 'हंचबैक आफ द नोत्रेदाम्' का अभिनय देखा। यह पुस्तक दो बार पढ़ी हुई थी इसलिये रूसी भाषा का ज्ञान न होने पर भी कथा का तारतम्य समझने में बहुत कठिनाई नहीं हुई। अभिनय इतना अच्छा था कि भाषा न जानने पर भी पात्रों के अभिनय और भाव-भंगिमा से ही वार्तालाप का भाव समझा जा सकता था। यदि यह नाटक न देख लिया होता तो सोवियत कला में परियों के राज की शिकायत मन में रह जाती।

स्तालिनग्राद छोड़ने से पहले फैसिज्म के क्रूर अत्याचारों से संसार की रक्षा करने के लिये अपने प्राण उत्सर्ग करने वाले शहीद लाल सैनिकों के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित करने की बात कैसे भुला दी जा सकती थी! इसलिये गोर्की रङ्गशाला से निकल हम सभी भारतीय प्रतिनिधि इस समाधि पर फूल चढ़ाने के लिये गये।

लेनिन की समाधि

वियाना से मास्को पहुँचने पर हम लोग सबसे पहले लेनिन की समाधि के दर्शन कर लेना चाहते थे। ऐसा हो न सका क्योंकि उस समय समाधि में मरम्मत वगैरह हो रही थी। स्तालिनग्राद से लौटने पर ही समाधि को देखने का अवसर मिला।

हम लोग लगभग दस बजे विस्तृत लाल चौरस में समाधि के सामने पहुँचे। मास्को की सर्दी का मौसम। गहरे बर्फानी बादलों से पटे आकाश में सूर्य का कहीं पता नहीं। पौ फटते समय का धुन्धलका छाया हुआ था। धुनी हुई रुई के फाहों जैसी बर्फ उड़ती हुई आकर हमारे कपड़ों पर बैठती जा रही थी। हमसे पहले पहुँचे लोग समाधि के द्वार से बहुत दूर तक दो-दो की पंक्तियों में खड़े थे। यह पंक्तियाँ समाधि के द्वार से फर्लांग भर तक पूरे चौरस को लांघकर सड़क पर भी दूर तक चली गई थीं।

पंक्तियों में खड़े बहुत से लोगों के हाथों में बहुत सुन्दर फूलों के गुलदस्ते थे। मास्को की बर्फानी सरदी में ऐसे सुन्दर फूल? सम्भवतः यह फूल सोवियत राष्ट्रसंघ के दक्षिणी भागों में लाये गये होंगे। इन पंक्तियों में खड़े बहुत से लोगों की पोशाकों से भी एशियाई रंग-ढंग की झलक मिल रही थी।

समाधि के भीतर जाकर उस अमर कीर्ति ऐतिहासिक महापुरुष के दर्शन पाने के लिये घन्टे भर तक पंक्ति में खड़े हो सरकते-सरकते समाधि तक पहुँच सकने में भी हम लोगों को सरदी और थकान की आशंका नहीं हुई बल्कि जान पड़ा कि उस समाधि के दर्शन के लिये आई श्रद्धालु भीड़ के साथ अपनी बारी से दर्शन का अवसर पाना ही अधिक उचित होगा।

अतिथि होने के नाते हम लोगों को प्रतीक्षा के लिये खड़े होने नहीं दिया गया। अपने प्रतिनिधि मंडल की ओर से ही नहीं अपने देश की जनता की ओर से लेनिन महान की स्मृति में श्रद्धांजलि रूप फूल-पत्तों का एक बड़ा हार (रीद) लेते गये थे। इस हार में एक लाल कपड़े पर सुनहरी रंग से हिन्दी में यह शब्द लिखकर गूंथ दिये थे—'मानवमात्र की स्वतन्त्रता और संसार की शान्ति के लिये जीवन अर्पण करने वाले लेनिन महान की पुण्य स्मृति में भारतीय जनता की श्रद्धांजलि रूप में अर्पित'। दो साथी इस भारी हार को उठाये आगे-आगे चल रहे थे और शेष लोग जोड़ी-जोड़ी से उनके पीछे। समाधि स्फटिक की तरह चमकीले लाल संगमरमर की बनी है और उस पर काले रङ्ग के संगमरमर की वर्गाकार वेदी बनी है; गुरु गम्भीर दिव्यता का मूर्त्त!

समाधि में प्रवेश करते ही सामने लाल संगमरमर की वेदी है। इस वेदी की दीवारों के साथ पहले आये प्रतिनिधि मण्डलों द्वारा अर्पित बड़े-बड़े हार खड़े थे और वेदी के ऊपर बहुत से गुलदस्ते। इस वेदी के नीचे अमर कीर्ति वीर का शरीर सोया हुआ है। वेदी के दायें और बायें से चौड़े-चौड़े जीने नीचे की ओर उतर जाते। हम लोग बाईं ओर के जीने से नीचे उतरे।

काले संगमरमर का प्रशस्त चौरस हाल। अस्सी फुट लम्बा और उतना ही चौड़ा। हाल के बीचोंबीच लाल पत्थर की मनुष्य के कद से ऊँची वेदी। वेदी पर स्वच्छ कांच का बिजली की शलाखाओं से दीप्त, आयताकार, सब ओर से बन्द मण्डप दिखाई देता है। वेदी पर जाने के लिये चौड़े जीने से मार्ग बना हुआ है और दूसरी ओर से जीना उतर कर हाल से बाहर ऊपर समाधि के द्वार पर चला जाता है।

जीने से वेदी पर पहुँचने पर कांच के बन्द मण्डप में लेनिन महान का निद्रित शरीर खाकी सैनिक वर्दी में दिखाई देता है। पलकें गहरी नींद में मुंदी हुई हैं। चेहरे पर जरा सा रोग की सिकुड़न नहीं। स्वस्थ निद्रा की शान्ति। जैसे वह अपने कर्त्तव्य को खूब निबाहकर विश्राम के लिये नींद ले रहा हो। वीर सैनिक की इस शान्त निद्रा में विघ्न नहीं पड़ना चाहिये इसलिये पूरी स्तब्धता है। उसके सम्मान में दो लाल सैनिक संगीनें ताने, एक सिरहाने और पैताने निश्चल खड़े हुए हैं।

'अमर कीर्ति वीर सैनिक का शान्ति से नींद लेना ठीक है। उसने अपने उत्तरदायित्व और कर्त्तव्य को निबाह दिया है पर जो लोग अभी कर्त्तव्य के आधे मार्ग में हैं, वे उसे देखकर कर्त्तव्य पूर्ति की चेतना एवं स्फूर्ति पाते हैं। उसके दर्शन से ही कर्त्तव्यबोध की चेतना स्फुरित हो उठती है।

लेनिन के निद्रागत शरीर के सामने से परिक्रमा करते हुए पांव ठिठक कर एक मिनट के लिये निश्चल हो गये। अन्य साथियों की ओर देखा। मेरे ही पांव निश्चल नहीं हो गये थे, यही बात सभी के साथ थी। वृद्ध रावलजी, सरदार गुरुबख्श सिंह, मिस्टर आदित्यन, मालती बिडेकर, गीता मलिक सभी हाथ बाँधे निश्चल खड़े उस निद्रागत शरीर की ओर अपलक टक लगाये थे।

इस अमर कीर्ति जननायक से कई हजार मील दूर रहकर भी हम सब लोग अपने हृदयों में उसके प्रति विश्वास और श्रद्धा संजोते आये थे। उसे देखने का या उसकी वाणी सुनने का अवसर कभी न पाकर भी संसार की असंख्य जनता उसे अपना नेता और त्राता मानती आई है। यह उस सत्य की शक्ति है जिसे प्रकट कर उसने रौंदी हुई मानवता को समर्थ बना दिया है।

उस निद्रागत, दीप्त चौड़े माथे की ओर दृष्टि लगाये मन सोचने लगा, पहले-पहल कब इसका नाम सुना था? कब उसका अनुयायी होने के विश्वास से बल पाया था? बहुत दिनों की बात है। तीस वर्ष पहले विद्यार्थी जीवन की बात, जब शहीद भगत सिंह और सुखदेव के साथ मैं लाहौर के नेशनल कालिज का विद्यार्थी था। हम लोग अंग्रेजी राज की गुलामी और दमन से व्याकुलता अनुभव करते थे। अपने देश में स्वतन्त्रता के लिये जनता के बलिदानों को विफल होता देख रहे थे। तब इसी लेनिन महान की बातें पढ़कर समझ में आया था कि दलित राष्ट्रों और पीड़ित मानवता की मुक्ति की राह क्या है। तब से अनेक सुखों-दुखों में, विफलता और निराशाओं में उसी का सन्देश-मार्ग बना रहा। कभी अपनी उपेक्षाओं ने मस्तिष्क को धुंधला भी कर दिया और कभी कर्त्तव्य की भावना ने फिर याद भी दिला दी।

उस निद्रागत वीर के सामने व्यक्तिगत रूप से खड़े होकर मैं अपनी निजी बात ही सोच रहा था परन्तु वह तो सम्पूर्ण मानवता का था परन्तु साथ ही प्रत्येक पीड़ित और सचेत व्यक्ति का अपना निजी पथदर्शक भी!......विशेषकर उन लोगों के लिये जिन्होंने क्रान्ति के मार्ग पर अपने जीवन की बाजी लगा दी हो!

उस क्षण जैसा भावोद्रेक मैं अनुभव कर रहा था वैसा ही भारत से आये दूसरे सभी साथी भी कर रहे थे। वे ही क्या, इस देश की करोड़ों जनता उसे देखे बिना उसके बताये मार्ग से अपने लिये जीवन की आशा का विश्वास पाती है। मेरे देश की जनता ही क्या संसार के सभी देशों की जनता चीन, कोरिया, बर्मा की जनता, अफ्रीका, अमरीका और योरुप की जनता उसे अपना नेता और त्राता मानती है और उसके पार्थिव शरीर के दर्शन किये बिना भी उसके निर्देशों में अपनी मुक्ति का विश्वास कर उसके प्रति श्रद्धा संजोये है। वह अमर कीर्ति जननेता सचमुच ही जीवित है क्योंकि वह असंख्य जनता के हृदयों में जीवित आशा का अवलम्ब है।

उसके दर्शन के लिये बाहर बर्फ में खड़े होकर प्रतीक्षा करते हजारों लोगों की पंक्ति की बात याद आई। कदम हिले और हम लोग दूसरी ओर के जीने से ऊपर समाधि के द्वार पर आ गये।

लेनिन की समाधि के सामने लाल चौरस का खूब बड़ा मैदान है। मास्को की बड़ी सार्वजनिक सभायें और प्रदर्शन यहाँ ही होते हैं। समाधि के दायें-बायें और पीछे फूलों के लिये पत्थर की रविशें एक के पीछे दूसरी जीनों की तरह बनी हैं। इनके साथ सदाबहार सरू के वृक्ष भी लगे हैं। यह रविशें इस समय बरफ से भरी थीं और गहरे बर्फानी बादलों

से पटे आकाश और घने सरू वृक्षों के नीचे उजली-उजली सफेद पटरियों की तरह भली लग रही थीं। समाधि के पीछे रविशों के साथ ही क्रेमलिन की बहुत भारी और ऊँची दीवार है। दीवार के भीतर से क्रेमलिन के बहुत ऊँचे तिकोने स्तूपों की चोटी पर सोवियत का राष्ट्र-चिह्न सुनहरी तारा दिखाई देता रहता है। बर्फ पड़ती रहने पर भी हम लोग कुछ देर यहाँ घूमते रहे।

मन ही तो है; कभी बेढंगी बातें भी मन में आ ही जाती हैं। मन में आया, अपनी समस्याओं के सुलझाव और मुक्ति का मार्ग पहचानने के लिये अपने देश से इतनी दूर से संकेत पाने की जरूरत थी? क्या यहाँ पर निर्भरता नहीं? फिर स्वयं ही यह विचार कुत्सित लगा। क्या किसी दिन सारे संसार को बुद्ध ने भारत से सत्य का संकेत और निर्देश नहीं दिया था? क्या सत्य को भी भूमि, राष्ट्रों और जातियों की सीमाओं में बाँटकर और बाँधकर रक्खा जाना चाहिये? सत्य बँधा रह ही नहीं सकता इसीलिये वह मानवता को सभी गहराइयों से उभारकर उसके सब भेदों को भी दूर कर देगा.......।

सोवियत अदालत

"क्या सोवियत में अदालतें भी हैं?" यह प्रश्न बहुत से लोगों ने पूछा है। बहुत से लोगों का विचार है कि जब समाजवादी सोवियत संघ में व्यक्तिगत या पारिवारिक सम्पत्ति का चलन नहीं तो अदालतों की क्या आवश्यकता? क्योंकि अदालत में जाने की आवश्यकता सम्पत्ति के सम्बन्ध में उठाने वाले झगड़ों के कारण ही होती है। फौजदारी झगड़ों का मूल भी प्रायः सम्पत्ति के लिये विवाद में ही होता है।

प्रसंग वश यह भी कह दिया जाये कि सोवियत में समाजीकरण केवल ऐसी सम्पत्ति का किया गया है जो दूसरों से श्रम करवाकर मुनाफा कमाने का साधन हो सकती है उदाहरणतः भूमि, कारखाने, खानें, किराये पर चलने वाले यातायात के साधन और किराये पर दिये जाने वाले मकान आदि। व्यक्तिगत और पारिवारिक उपयोग में आने वाली वस्तुएं सोवियत में अब भी व्यक्तिगत और पारिवारिक सम्पत्ति हैं। अस्तु सोवियत देश में अदालतें और कचहरियाँ हैं, जज और वकील हैं। जेलखाने भी हैं परन्तु उनकी संख्या बहुत कम हो गई है क्योंकि सोवियत में अपराधों की संख्या बहुत घट गई है और घटती जा रही है। कत्ल और खून की घटनायें होती ही नहीं। कैद की सजा भी इतने कम मामलों में देने की आवश्यकता होती है कि कई जेलखानों को बन्द करके उनसे गोदामों का काम लिया जा रहा है। फिर भी लोगों में झगड़े हो ही जाते हैं। व्यक्तिगत सम्पत्ति के सम्बन्ध में भी विवाद हो जाता है। भिन्न-भिन्न संस्थाओं के अधिकारों के सम्बन्ध में उलझनें हो जाती हैं। व्यक्तियों और शासन के आधिकार में न्याय का प्रश्न उठ खड़ा होता है। पति-पत्नी में तलाक लेने, देने की नौबत आ जाती है। यह सब मामले अदालतों में निश्चित दंड-विधान के अनुसार ही तय होते हैं।

हम लोगों को जिस अदालत में जाने का मौका मिला वह 'पीपल्स कोर्ट' (जनता की ा) था। सोवियत में अदालतें तीन तरह की हैं। 'पीपल्स कोर्ट' दूसरी 'टैरीटोरियल

या रीजियोनल कोर्ट' और 'सुप्रीम कोर्ट'। 'पीपल्स कोर्ट' भिन्न-भिन्न क्षेत्रों के लिये सुविधानुसार एक नगर में भी बहुत से रहते हैं। साधारणतः सभी मामलों का निर्णय पीपल्स कोर्ट में होता है। टैरीटोरियल या रीजियोनल कोर्ट में सरकार से सम्बन्ध रखने वाले गम्भीर मामलों पर विचार होता है। इन दोनों अदालतों के मामलों पर पुनः विचार की आवश्यकता हो तो सुप्रीम कोर्ट करता है।

पीपल्स कोर्ट के जज सर्वसाधारण द्वारा चुने जाते हैं। जजों के साथ-साथ प्रत्येक पीपल्स कोर्ट के लिये स्थानीय आवश्यकता के अनुसार साठ या सत्तर असैसर (पंच) भी चुन लिये जाते हैं। किसी व्यक्ति के जज निर्वाचित होने पर उसे कानूनी शिक्षा लेनी होती है। असैसर चुने जाने पर यह शिक्षा आवश्यक नहीं। निर्वाचित जज के अतिरिक्त प्रत्येक मामले में दो असैसर भी बैठते हैं। जज तो निश्चित समय के लिये एक ही व्यक्ति होता है परन्तु असैसर बदलते रहते हैं। निर्णय के सम्बन्ध में अधिकार जजों और असैसरों के एक ही जैसे होते हैं।

सोवियत में वकालत का पेशा भी है परन्तु वकीलों की संख्या जजों से भी कम है। मास्को नगर की जनसंख्या पचास लाख है। इस जनसंख्या के लिये मास्को नगर में सब मुहल्लों के असैसरों और जजों को मिलाकर संख्या पांच हजार तक होगी परन्तु वकीलों की संख्या शायद डेढ़ सौ ही है। वकीलों का अपना व्यावसायिक संघ है। आवश्यकता होने पर वादी या प्रतिवादी इस संघ से वकील के लिये बात करते हैं और उनके मामले के लिये उपयोगी वकील संघ नियत कर देता है। वादी या प्रतिवादी यदि पारिश्रमिक नहीं दे सकता तब भी वकील को उसकी सहायता करनी ही पड़ती है। कुछ मामलों में मजदूर संघ या व्यावसायिक संघ अपने आदमियों का कानूनी खर्च उठाते हैं, कुछ मामलों में वकील का पारिश्रमिक सरकार को देना पड़ता है। उदाहरणतः किसी भी व्यक्ति पर सरकार द्वारा अभियोग चलाया जाने पर सफाई के वकील का खर्च सरकार देती है। यदि किसी स्त्री को अपनी सन्तान के निर्वाह-खर्च के लिये पति पर मुकद्दमा चलाना पड़े तो भी वकील का पारिश्रमिक सरकार देती है।

पीपल्स कोर्ट की कार्यवाही साधारणतः सार्वजनिक रूप से होती है। केवल ऐसे मुकद्दमों में जहाँ सरकारी रहस्यों की रक्षा की आवश्यकता हो, मुकद्दमे की सुनवाई गुप्त रूप से की जाती है। यदि तलाक के मुकद्दमे में वादी और प्रतिवादी मुकद्दमे की कार्यवाही गुप्त रखी जाने का अनुरोध करें तो यह अनुरोध मान लिया जाता है। हाँ, हम लोग मुकद्दमा देखने गये। वादी एक पत्नी थी। पति के विरुद्ध उसकी शिकायत थी कि वह घर से अलग रहकर उच्छृंखल व्यवहार कर रहा है। अपनी आमदनी घर में नहीं देता। उन दोनों का एक पुत्र है। यदि पति घर में नहीं रहना चाहता तो उसे सन्तान के निर्वाह के लिये अपनी आमदनी का उचित भाग देना ही चाहिये।

पति महाशय ने सफाई दी कि वह सन्तान उनकी नहीं है। शादी तो उनकी उस सन्तान की माँ से अवश्य हुई थी परन्तु शादी के बाद पता चला कि स्त्री उच्छृंखल

स्वभाव की है इसलिये वह उससे प्रेम नहीं कर सकता और न उसके साथ रहने के लिये तैयार है। वह सन्तान के लिये भी जिम्मेवार नहीं क्योंकि यह सन्तान शादी के छः माह बाद ही उत्पन्न हो गई थी इसलिये सन्तान उसकी नहीं बल्कि किसी अन्य व्यक्ति की है जिसका सम्बन्ध इस स्त्री से यह विवाह होने से पहले ही था।

पत्नी ने स्वीकार किया कि सन्तान विवाह के छः मास बाद हो गई थी यह ठीक है परन्तु है इसी व्यक्ति की। विवाह से छः सात मास पहले से उनमें प्रेम था और विवाह से पहले ही यौन-सम्बन्ध भी था इसलिये सन्तान उसके पति की है। पति महोदय इस बात से इनकार कर रहे थे। मामला पेचीदा था ही क्योंकि इस बारे में गवाही माँगना कठिन था। वकील ने पति से जिरह की।—तुमने इस स्त्री से विवाह क्यों किया था।

पति—तब मैं इससे प्रेम करता था।

जज—विवाह से कितने दिन पहले से ?

पति—लगभग एक वर्ष से।

वकील—यह स्त्री भी तुमसे प्रेम करती थी ?

पति—जी हाँ।

वकील—तुम विवाह करने के लिये प्रेम करते थे या दिल बहलाने के लिये।

पति—विवाह के लिये।

वकील—प्रेम में क्या करते थे।

पति—हम लोग समय मिलने पर सदा एक साथ रहते थे।

वकील—तुम कभी-कभी दूसरी स्त्रियों के साथ भी रहते थे ?

पति— जी कभी नहीं सदा इसी के साथ।

वकील—कभी-कभी इस पर सन्देह होता होगा ?

पति—जी कभी नहीं।

वकील—अब इसके चरित्र पर सन्देह हो गया ?

पति—जी हाँ। यह उच्छृंखल व्यवहार करती है।

वकील—विवाह से पूर्व जब यह दूसरे व्यक्ति से यौन सम्बन्ध रखती थी तब तुम्हें मालूम नहीं होता था ? अब कुछ ज्यादा समझदार हो गये हो ?

जज और असैसरों ने फैसला दे दिया कि पति का यह बयान विश्वास योग्य है कि वह अपनी भावी पत्नी से प्रेम करता था और उसे यह विश्वास था कि वह भी उससे प्रेम करती है। इस आदमी का इस स्त्री से विवाह कर लेने का पक्का इरादा था। दोनों का विवाह हुआ इसमें भी सन्देह नहीं। स्त्री स्वीकार करती है कि विवाह से पहले इनमें यौन सम्बन्ध हो चुका था। पुरुष इससे इनकार करता है। प्रेम और विवाह का दृढ़ निश्चय होने

पर दोनों में यौन-सम्बन्ध हो जाना अस्वाभाविक नहीं था। पति की यह बात विश्वास योग्य नहीं है कि उसमें और इस स्त्री में प्रेम होते हुए भी वह अन्य व्यक्ति से यौन-सम्बन्ध रखती थी। पति यह भी स्वीकार करता है कि विवाह से पहले प्रेम की अवस्था में वे प्रायः एक साथ रहते थे। यदि अब वह स्त्री की उच्छृंखलता भांप सकता है तो उस समय न भांप सकने का कोई कारण न था। यदि इस स्त्री का आकर्षण या सम्बन्ध विवाह से पूर्व किसी अन्य व्यक्ति से होता तो यह स्त्री उसी पुरुष से विवाह करती। स्त्री के लिये इस आदमी से विवाह करने का कोई कारण न होता। ऐसी अवस्था में विवाह से पूर्व पत्नी के गर्भ में आई हुई सन्तान इसी व्यक्ति की है और यह सन्तान के लिये उत्तरदायी है। इसे अपनी पत्नी और सन्तान के साथ रहना चाहिये यदि यह ऐसा नहीं करता तो इसके वेतन का चौथाई भाग पत्नी को सन्तान के पालन के लिये दिया जाना चाहिये।

जिन दिनों लन्दन में था, कृष्णा-हसन ने सोवियत की न्याय प्रणाली के बारे में पूछताछ की। मैंने उन्हें यह कहानी सुना दी। कृष्णा लन्दन में कानून पढ़ रही हैं। छः महीने या वर्ष भर में बैरिस्टर बन जायेंगी। सोवियत अदालत का यह न्याय सुन वह हँसी के मारे कुर्सी से उछल पड़ीं। कुछ विस्मय से मैंने हँसी का कारण पूछा। अब कृष्णा ने परेशानी प्रकट की—"बट इट इज सो सिम्पिल इट इज ओनली कामनसेंस नाट ला!" (यह तो इतनी सीधी बात है केवल साधारण बुद्धि की बात! कानून नहीं!) यह भी कोई मुकद्दमा है? मुकद्दमे का तो अर्थ ही साधारण से असाधारण बात निकालना। अगर मुकद्दमे ऐसे ही हों और केवल साधारण बुद्धि से काम लिया जावे तो वकील बैरिस्टर क्या करेंगे?

कृष्णा का एतराज सही है। हमारे देश या अन्य पूँजीवादी देशों के न्यायालयों में न्याय साधारण बुद्धि से नहीं किया जाता। यहाँ न्याय का अर्थ ही कानून की पेचीदगियों से न्याय को बाँध देना है। वर्ना अच्छे-बुरे वकील में अन्तर ही क्या? बहुत वर्ष पहले उत्तर प्रदेश और पजाब की सीमा की एक बड़ी जायदाद के सम्बन्ध में मुकद्दमा चल रहा था। जायदाद दोनों ओर आधी-आधी होने के कारण लाहौर और इलाहाबाद हाईकोर्टों में मुकद्दमे चल रहे थे। दोनों हाईकोर्टों ने एक दूसरे के विरुद्ध फैसला दिया क्योंकि फैसला हाईकोटों में कानून की व्याख्या करने वाले वकीलों की वृद्धि पर ही निर्भर करता था। पंजाब के द्वाबे में जब कभी जाटों में किसी बात पर झगड़ा बढ़ जाता तो मूँछों पर ताव देकर धमकी दी जाती—"बहुत अच्छा, भगतराम को भुगताने के लिये तीन-चार बीघे खेत ही तो बेचने पड़ेंगे।" इसका अर्थ था कि कत्ल करके वकील भगतराम को फीस देकर अदालत से बरी हो जायेंगे। इन दिनों जालन्धर के बैरिस्टर भगतराम का बहुत नाम था कि वे किसी को भी फांसी के तख्ते से बचा सकते हैं। यह है सर्वसाधारण के मन में अदालती न्याय के प्रति धारणा। सभी जिलों में कोई न कोई भगतराम जैसा वकील रहता ही है। किसी भी वकील के बहुत बड़ी फीस माँग सकने का अर्थ यही होता है कि वह अपने मुवक्किल के लिये अदालत से जो चाहे करा सकता है। यह केवल धारणा ही नहीं, हमारे समाज के न्याय का अनुभव है। ऐसा न्याय साधारण बुद्धि के आधार पर कैसे चल

सकता है? हमारे न्यायालयों और वकीलों का अस्तित्व है ही इसलिये कि साधनवान लोग जो चाहें कर सकें। कानून का प्रयोजन यह है कि मनमानी करने का अवसर केवल उन लोगों के लिये सीमित रहे जो धन बल से कानून का मनमाना अर्थ निकलवा सकते हैं।

हमारे कानून की पेचीदगियों का प्रत्यक्ष प्रमाण है हमारे वकीलों के निजी पुस्तकालय। केवल कानून की ही पुस्तकें, उन पर टीका-टिप्पणियाँ और नजीरें एकत्र कर ली जायें तो एक भारी पुस्तकालय बन सकता है। सत्य तो यह है कि जितनी पुस्तकें कानून के सम्बन्ध में हमारे समाज में हैं उसका दसवां भाग भी किसी अन्य विषय पर नहीं। हमारा कानून सिद्धान्त रूप से देश के सभी व्यक्तियों के लिये समान अधिकार की घोषणा करता है परन्तु वकीलों की सहायता से अदालतों द्वारा कानून के उपयोग में लाने का व्यावहारिक रूप हो जाता है साधनवानों की मनचाही करने के लिये कानून और सरकार की सहायता और समाज पर उनका शासन। यह बात सीधी-सादी बुद्धि से न्यायानुकूल नहीं जान पड़ती इसलिये हमारी अदालतें अथवा कानून सीधी-सादी बात को नहीं बल्कि समाज में मौजूद व्यवस्था के विशेषज्ञों की बात को ही मानते हैं। प्रयोजन होता है सर्वसाधारण की बुद्धि से अन्याय जान पड़ने वाले काम को न्याय की मान्यता देकर उसके समर्थन में शासन की शक्ति का प्रयोग कर सकना।

पूँजीवादी प्रजातन्त्र व्यवस्था में शासक वर्ग प्रजा और जनता से शासन की शक्ति लेकर कानून के साधन से इस शक्ति का प्रयोग प्रजा के ही विरुद्ध करता है। इस काम को न्याय का रूप देने के लिये काफी पेचीदगियों की आवश्यकता होती है इसलिये पूँजीवादी समाज के कानून का उपयोग भी बहुत पेचीदा होता है। सोवियत समाज के सम्पूर्ण अदालती कानून छोटी-छोटी सात पुस्तकों में आ जाते हैं जिन्हें कोट की जेब में रख लिया जा सकता है और इन कानूनों का व्यवहार सर्वसाधारण के भरोसे के और उन्हीं द्वारा चुने हुये लोग करते हैं।

लेनिनग्राद

मास्को से रात भर आराम से यात्रा कर सोलह जनवरी दोपहर के समय लेनिनग्राद पहुँचे। लेनिनग्राद शान्ति सभा के कुछ लोग स्टेशन पर मौजूद थे। नगर शान्ति सभा के प्रधान प्रसिद्ध अभिनेता चरकासोव और मन्त्री प्रोफेसर ओल्गा कोस्तांस्तीनोवना भी थीं। चरकासोव सोवियत सिनेमा प्रतिनिधि मंडल के साथ भारत में आ चुके हैं। वे हम लोगों से ऐसे मिले मानों हम सबसे उनका व्यक्तिगत सम्बन्ध हो। प्रोफेसर ओल्गा भी बड़ी आत्मीयता से मिलीं परन्तु उनके रूप, रंग और शिष्टाचार से ऐसा जान पड़ता था कि जार के समय की कोई अभिजात बैरोनेस या काउन्टेस (रानी साहिबा) टाल्सटाय के उपन्यास के पृष्ठों से निकल प्रत्यक्ष हो गईं।

हम लोगों के निवास का प्रबन्ध 'आस्तोरिया' होटल में था। क्रान्ति से पहले यह ब्रिटिश होटल था और बड़े-बड़े अंग्रेज व्यवसायी और राजदूत आदि इसी में ठहरा करते थे। अब यह लेनिनग्राद सोवियत की सम्पत्ति है। होटल की इमारत और कमरे मास्को के होटलों या सोवियत की इमारतों की तुलना में छोटे ही है क्योंकि इमारत क्रान्ति से पहले की है परन्तु सजधज और आराम ऐसाइश में गत्सीनित्सा सोवियतस्काया से कम नहीं। कमरे छोटे होने के कारण हमारे अभ्यास के अधिक अनुकूल जान पड़े। भोजन इत्यादि का ढंग और फैलाव मास्को जैसा ही। मास्को होटल में भोजन पुरुष परोसते थे। यहाँ यह काम स्त्रियाँ कर रही थीं। दोनों में व्यवस्था का न सही अनुभूति का अन्तर जरूर है। ड्रेस-सूट पहने बैरे के भोजन परोसने पर रोब तो ज्यादा जान पड़ता है परन्तु खिलाने-पिलाने में अधिकार भरी आत्मीयता स्त्रियों को ही अधिक शोभा देती है।

यात्रा से आने के बाद या जो भी कारण रहा हो, भूख नहीं थी इसलिये खाने की उपेक्षा की। परोसने वाली की नजर से यह नहीं बचा। वह उपेक्षित तश्तरी को उठा ले गई। कुछ ही क्षण में मुस्कराती हुई दूसरी चीज लेकर लौटी। धन्यवाद देकर उसे भी वैसे ही रहने दिया तो उसने दुभाषिये की मारफत भोजन के प्रति उपेक्षा का कारण पूछा और जानना चाहा कि क्या चीज पसन्द आयेगी? दोष भोजन में न बताकर अपने ही पेट में बताया पर उसका समाधान न हुआ। संध्या समय भी जब भोजन में विशेष उत्साह न दिखा सका तो उसने चिन्ता प्रकट की कि इतना कम खाने से कैसे काम चलेगा और 'मालीकुशा' (कम खानेवाला) होने का आरोप लगा दिया।

भोजन के समय का० चरकासोव और प्रो० ओल्गा भी साथ थीं। प्रोफेसर ओल्गा तो इसी बात के लिये सतर्क थीं कि सभी लोग अच्छी तरह से खा रहे हैं या नहीं हालांकि

इसके लिये परोसने वालियाँ ही काफी चिन्तित थीं। चरकासोव भारत में मिले अभिनेताओं और दूसरे आदमियों के, एक-एक का नाम ले-लेकर हाल-चाल पूछ रहे थे। हमने उनसे पूछा कि भारत पहुँचते ही उनका पहला अनुभव क्या हुआ था। वे ठहाका मारकर हँस पड़े। "पहला अनुभव यह हुआ कि हम भारत में ३० दिसम्बर की संध्या पहुँचे थे। विमान से उतरते ही हमसे पूछा गया कि आपके पास कोई निषिद्ध या कर देने योग्य वस्तु तो नहीं है। हमने पूछा कि यहाँ क्या निषिद्ध है, बताइये तो समझ में आये। उन्होंने बताया कि शराब निषिद्ध है। उत्तर दिया—'शराब तो है' हम लोग 'वोडका' की एक बोतल नव वर्ष मनाने के लिये साथ लेते गये थे। नव वर्ष आरम्भ होने में अभी एक दिन था हमारी 'वोडका' को बम्बई में प्रवेश होने की आज्ञा नहीं थी पर हम उसे इतनी दूर तक उठाकर लाये थे। हम फिर विमान में ही बैठ गये और वोडका को समाप्त कर लिया। देश के कानून की भी रक्षा हो गई और हमने नववर्ष भी एक दिन पहले मना लिया।"

"दूसरा अनुभव यह हुआ कि मैं तो भारतवर्ष को देखने गया था और भारत-मुझे ही देखने लगे। एक तो कुदरत की दया से मैं हूँ भी लम्बा, यहाँ भी लोग मुझे लम्बा ही समझते हैं। भारत में तो ऐसा मालूम होता था कि मैं पांव में स्टूल बाँधकर चल रहा हूँ। पांव में स्टूल बाँधने की बात से एक और बात याद आई। हम लोग यहाँ से लन्दन होते हुए गये थे। लन्दन में वर्षा हो रही थी। जूतों को कीचड़ से बचाने के लिये रबड़ के बरफानी जूते खरीदना चाहता था पर लंदन में मेरे पांव का जूता मिलना आसान नहीं था। सारा लन्दन छानकर एक जोड़ा मिल सका। उस रोज बाजार में जरा कीचड़ था। रबड़ के वही जूते पहने बाजार में निकल गये। अब जिसे देखो वह मेरे पांव की तरफ देख रहा है। बड़ी झेंप मालूम हुई। डेरे के आदमी भी उन्हें देखकर हैरान होने लगे। जूतों को फेंका जा नहीं सकता था क्योंकि मेरे असाधारण नाप के जूते ब्रिटिश साम्राज्य के लिये भी बनाने कठिन हैं।"

चरकासोव बात पर बात सुनाये जा रहे थे। भारत के पहनावों और प्राकृतिक दृश्यों का वर्णन वे इतनी खूबी से कर रहे थे कि उन बातों को जानते हुए भी उनमें रस आ रहा था। ठीक वैसे ही जैसे अपने चेहरे को जानते हुए भी उसे दर्पण में बार-बार देखने से भी बुरा नहीं लगता। यदि चरकासोव समय का ख्याल कर स्वयं ही बात समाप्त न कर देते तो हम लोग संध्या तक भी न उठ पाते। "अच्छा अब शाम को"—मुझे एक फिल्म की शूटिंग में अभी पहुँचना है। वे उठ खड़े हुए और आज्ञा ले चले गये।

दोपहर के भोजन के बाद हम सब लोग नगर देखने निकले। लेनिनग्राद का एक साथी पथप्रदर्शक के रूप में साथ चला गया। वह अंग्रेजी खूब बोल लेता था। उसने अपने नगर का परिचय दिया—"हमारा नगर बहुत ऐतिहासिक स्थान है। पीटर प्रथम ने १७०३ में इस नगर की नींव डाली थी। अक्टूबर १९१७ में यहाँ ही समाजवादी क्रान्ति का आरम्भ हुआ था। १९१९ में विदेशी साम्राज्यवादी शक्तियों ने समाजवादी व्यवस्था को नष्ट कर देने के लिये सोवियत संघ पर आक्रमण किया था। लम्बे अरसे तक वे इस नगर

को घेरा डाले रहे परन्तु लेनिनग्राद ने उसके दाँत खट्टे कर दिये और वे भीतर कदम न रख सके। उस दृढ़ता के लिये हमारे नगर ने लाल झण्डे का सम्मान प्राप्त किया था। १९४२ से नाजियों ने भी सौ दिन तक लेनिनग्राद को घेरा डाल रखा। उनके बममार विमान नगर पर आक्रमण करते रहे परन्तु हमने उन्हें नगर में कदम नहीं रखने दिया। इस वीरता के लिए नगर ने लेनिन का पदक पाया। नगर का आरम्भिक नाम पीटर्सबर्ग था। १९२४ में हमारे नागरिकों के अनुरोध से और सोवियत जनता की इच्छा से नगर का नाम लेनिनग्राद रख दिया गया। यहाँ प्रत्येक बाजार, चौक और गली की अनेक ऐतिहासिक स्मृतियाँ हैं·······।"

मास्को से चलते समय कवि निकोलाई तिखोनोव ने हम लोगों से कहा था—"यह बहुत अच्छा है कि आप लोग लेनिनग्राद भी जा रहे हैं। आप उस नगर के सौन्दर्य को सदा याद रखेंगे।" कोतोव ने विरोध किया था—"मास्को की तुलना में लेनिनग्राद क्या है ?" तिखोनोव ने मुस्कराकर दोनों नगर देख लेने के बाद निर्णय हमी पर छोड़ दिया था। हमारे मास्को होटल की सेविका (मेड) क्लारा को भी जब पता लगा कि हम लेनिनग्राद जा रहे हैं, उसने भी उंगली उठा-उठाकर हमें समझाने का यत्न किया था—"लेनिनग्राद ओचेन ओचेन खोरोशो" (लेनिनग्राद बहुत-बहुत अच्छा है)। स्वयं भी देखा कि लेनिनग्राद वास्तव में ही बहुत सुन्दर है। मास्को प्रकाण्ड है परन्तु लेनिनग्राद सुन्दर। इमारतें इस अनुपात और ढंग से नेवा नदी और समुद्र की खाड़ियों के किनारे भव्य रूप में बिछी हुई हैं मानों भवन निर्माण कला की प्रदर्शनी सजा दी गई है। इस समय नेवा नदी और समुद्र का जल दोनों ही जमकर उजले श्वेत मैदान बने हुए थे। इस सफेदी का अपना सौन्दर्य था। जब यह जल नीले रंग में लहरा उठता होगा, किनारे के वृक्ष हरे हो जाते होंगे तो दूसरी ही बात होती होगी।

नेवा नदी के किनारे हम लोग बस से उतर पड़े। एक ओर हरे रंग में जार का प्रसिद्ध हेमन्त प्रासाद (विन्टर पैलेस) था और नेवा नदी के पार 'पीटर और पाल' किला पीले रंग में दिखाई दे रहा था। इस किले में समाजवादी क्रान्ति के प्रसिद्ध नेताओं ने अपनी कैद के बहुत दिन गुजारे थे। गोर्की, चेरनेवस्की और लेनिन के बड़े भाई इसी किले में बंद रहे थे। अब यह किला एक ऐतिहासिक संग्रहालय बना दिया गया है। जार के हेमन्त प्रासाद का हरा रंग और विशाल सफेद खम्भे अब भी ठीक ऐसे सुरक्षित हैं मानों अभी बनकर तैयार हुए हैं। दाईं ओर एक और लम्बी, पीले रंग की सुन्दर इमारत है। यह जार की जहाजी सेना का केन्द्र था। अब इसमें सोवियत की जलसेना का स्कूल है। नेवा के पार बाईं ओर ज्दानोच विश्वविद्यालय के मध्य-भवन दिखलाई पड़ते हैं। वहाँ साढ़े बारह हजार विद्यार्थी पढ़ते हैं। लेनिन इसी विश्वविद्यालय के विद्यार्थी थे। क्रान्ति के बाद सोवियतों की पहली कांग्रेस यहीं हुई थी। जार के हेमन्त प्रासाद पर गोले फेंककर समाजवादी क्रान्ति का आरम्भ करने वाला सैनिक जहाज 'अरोरा' (उषा) भी नेवा में ही खड़ा है।

हेमन्त प्रासाद से लौटते हुए एक विशाल चौरस में से गुजर रहे थे। पथ प्रदर्शक ने बताया इसे 'दिसम्बर स्क्वायर' कहते हैं। जार के विरुद्ध पहले सैनिक विद्रोह (समाजवादी क्रान्ति से पहले) का प्रदर्शन यहीं हुआ था। विद्रोह दबा दिया गया था और सब नेता फाँसी पर चढ़ा दिये गये थे। सैन्टईजाक का गिरजाघर भी न भूल सकने वाली इमारत है। गिरजाघर तीन सौ फुट ऊँचा है। यहाँ एक ही पत्थर के साबुत टुकड़ों से बने हुए बहुत ऊँचे-ऊँचे एक सौ बारह खम्भे हैं। गिरजाघर के सामने बड़ी भारी चट्टान पर जार निकोलस प्रथम की घुड़सवार मूर्ति है। घोड़ा अपने शरीर को पिछले दो सुमों पर तौले है, मानों अभी कूद जायेगा। भारी मूर्ति और घोड़ा इस मुद्रा में है कि उनके अधर में सम्भले रहने पर आश्चर्य होता है। जिन दिनों लेनिनग्राद नाजी आक्रमण से घिरा हुआ था और दिन-रात बम बरस रहे थे, इस मूर्ति को और अन्य ऐतिहासिक स्मारकों को रेत के बोरों और लकड़ी के तख्तों से ढंक दिया गया था। सोवियत के लोगों को निकोलस के प्रति कोई श्रद्धा नहीं। उसे तो वे योरुप के ऐतिहासिक खूँखार तानाशाहों में गिनते है। इस मूर्ति को बचाने की चिन्ता मूर्ति के कला सौंदर्य और उसे गढ़ने वाले कलाकार के सम्मान के लिये ही है।

महल-चौक १९०५ के खूनी रविवार के लिये प्रसिद्ध है। यहाँ जार के सामने प्रार्थना पत्र लेकर आने वालें शान्त नागरिकों के जलूस पर गोली चलाई गई थी। एक हजार व्यक्ति मारे गये थे और दो हजार जख्मी हुए थे। इसी चौक के किनारे वह मकान है जिसमें समाजवादी क्रान्ति का पहला केन्द्र कायम किया गया था। लेनिन और स्तालिन ने जार के जनरलों के विरुद्ध युद्ध का संचालन इसी स्थान से किया था। समीप ही लेनिन संग्रहालय है। संग्रहालय के आँगन में फौलाद से मढ़ी फौजी मोटर खड़ी है। क्रान्ति के समय लेनिन ने विदेश से लौटकर पहला व्याख्यान इसी मोटर पर खड़े होकर दिया था। मोटर पर लिखा हुआ है, "पूँजीवाद की नाशक समाजवादी क्रान्ति जिन्दाबाद!" इस मोटर के पास खड़े होकर हम लोगों ने भी एक तस्वीर खिंचवा ली।

लेनिनग्राद के एतिहासिक और सुन्दर स्थानों का ब्योरेवार वर्णन बहुत कठिन है। लेनिनग्राद सौंदर्य और इतिहास का समन्वय है। अँधेरा हो गया था, बिजली के कारण अँधेरा तो नहीं हुआ प्रकाश ही बदल गया था पर रात तो हो ही गई थी इसलिये बैले देखने चले गये। इस बैले को देखने का विशेष चाव इसलिये था कि हमने अब तक सभी बैले 'सिंड्रेला' 'स्वान लेक' आदि परियों की कहानियों के ही देखे थे। 'क्रासनाया माक' (लाल फूल) नृत्य-नाट्य चीन की क्रान्ति के सम्बन्ध में आधुनिक कहानी है। इसे देखकर ही हम लोग बैले अथवा नृत्य-नाट्य की कला के रस का परिचय पा सके। संक्षेप में इतना ही कहा जा सकता है कि कला का बहुंत ही उत्कृष्ट नमूना था। का० चरकासोव ने अपनी बात रखी और रात भोजन के समय आ गये। सोवियत समाज में कला और कलाकार के स्थान पर बात होती रही। बात बदलकर सफल अभिनय के विषय पर चल पड़ी। चरकासोव कह रहे थे कि अभिनेना सफल अभिनय तभी कर सकता है जब वह नायक या पात्र के भावों को आत्मसात कर ले। अभिनय में रूप का भी बड़ा महत्त्व है,

क्योंकि भाव को भी रूप में ही देखा जाता है। बात करते-करते चरकासोव सहसा बोले—"कहिये तो मैं आपको उदाहरण दूँ। आप देखिये कि एक शब्द बोले बिना केवल रूप और व्यवहार से भाव की अभिव्यक्ति कैसे हो सकती है। पहले आप एक अंग्रेज नौकरशाह का उदाहरण देखिये।"

वे अपनी कुर्सी से उठ आठ-दस कदम पर हमारी ओर पीठ कर खड़े हो गये। एक ही मिनट बाद वे पलटकर लौटे तो पहचानना कठिन था। चेहरे पर एक ऐंठन, माथे पर चिन्ता की लकीरें, आँखें भी कुछ छिपी-छिपी सी। गंजे सिर पर बाल एक खास ढंग से चिपके हुए, मानों कोई बहुत खुर्राट अंग्रेज कमिश्नर साहब लोगों की छूत से डरते-डरते किसी परेशानी में खड़े हों। इसके बाद उन्होंने कहा कि अब आप देखिये कि भूगोल विज्ञान की खोज में अपने आपको भूला हुआ प्रोफेसर कैसे व्यवहार करता है। वे फिर एक मिनट के लिये आठ-दस कदम पर चले गये। इस बार बिलकुल ही भिन्न रूप और व्यवहार। अपने आपको भूला हुआ सा एक आदमी जिसके सिर के बाल सिर के भीतर की गर्मी से काटों की तरह खड़े थे। वह किसी विचार में पेन्सिल से अपना सिर खुजा रहा था और फिर किसी चीज की खोज में एक के बाद दूसरी जेबों की तलाशी ले रहा था। इसके बाद चरकासोव एक ही मिनट में दाँत बाहर निकाले हुए और झिपी-झिपी सी आँखें, सिर प्रायः गंजा, गरदन ऐंठी हुई जापानी फौजी अफसर से दिखाई देने लगे। एक मिनट बाद हँसकर उन्होंने कहा अब आप देखिये कि कोई शौकीन आदमी जब गंजा होने लगता है तो कैसे निराशा प्रकट करता है। यह सब देखकर हम लोग हँसी से लोट-पोट हो रहे थे। एक मिनट बाद चरकासोव चोरी के लिये अवसर की तलाश में घूमते गुंडे का रूप धर सामने आ गये।

हम लोगों ने चरकासोव से पूछ लिया कि अभिनय की ओर उनकी रुचि हुई कैसे? "यह भी एक कहानी है"—उन्होंने कहानी सुनानी शुरू की—"समाजवादी क्रान्ति के समय मैं यहाँ मेडिकल कालेज में पढ़ता था। हमारे देश में समाजवादी व्यवस्था सफल न होने देने के लिये साम्राज्यवादी शक्तियों ने हम पर चारों ओर से आक्रमण कर दिया था। हमारे लाल सैनिक सब ओर मोर्चों पर जी-जान से लड़ रहे थे। हमारी सेना के पास न पर्याप्त हथियार थे न भोजन, न वस्त्र ही उन्हें ठीक मिल सकते थे। शत्रुओं के पास सभी चीजों की अधिकता थी। हमारे सैनिक सभी तरह की कठिनाइयों में दृढ़ता से डटे हुए थे। कई बार उन्हें भूखों ही कई-कई दिन तक मोर्चों पर जमे रहना पड़ता। वे पन्द्रह-पन्द्रह दिन तक बर्फ और कीचड़ भरे मोर्चों में दिन-रात लड़ते रहते। उनके जख्मी हो जाने पर उन्हें मरहम-पट्टी के लिये लेनिनग्राद में लाया जाता था। मेडिकल कालेज के विद्यार्थी उनकी मरहम-पट्टी और दवा-दारू करते थे। उन जख्मी सिपाहियों के पीड़ा और थकान से उतरे हुए चेहरे देखकर मुझे बहुत दुःख होता था। हम उनके जख्मों की मरहम-पट्टी कर देते थे परन्तु उनके हृदयों पर लगे घावों का हमारे पास क्या इलाज था? उनमें से बहुतों के भाई और पिता मारे जा चुके थे। वे अपनी माताओं, पत्नियों और सन्तानों से कब से बिछुड़े हुए थे। उनका कोई समाचार भी वे नहीं पा सकते थे। सामने बहुत प्रबल दुश्मन

से गोला-गोली और पीछे नई स्थापित हुई कमजोर, अनिश्चित नई व्यवस्था। उन्हें अपना भविष्य भी अंधकारपूर्ण दिखाई देता था। यह सिपाही मूर्तिमान पीड़ा और निराश जान पड़ते थे।"

"मैंने अनुभव किया कि इन सिपाहियों का ध्यान कुछ समय के लिये उनकी संकटमय अवस्था में बंटाना आवश्यक है वरना ये लोग निरंतर निराशा और वेदना से पागल हो जायेंगे। मैं उन सिपाहियों के बीच बैठकर कहानियाँ सुनाने लगता, कभी गाना गाने लगता। उनका ध्यान मेरी ओर आकर्षित होने लगा। तब मैं कहानी सुनाते समय भाव-भंगी और अभिनय से कहानी को अधिक आकर्षक और रोचक बनाने लगा। कभी मैं हास्यरस का अभिनय करता। सिपाही ठहाके मारकर हँसने लगते। कभी मैं इतनी करुणापूर्ण कहानी का अभिनय करता कि सिपाही अपना संकट भूल, कहानी के पात्रों के प्रति सहानुभूति से आँसू टपकाने लगते। इस प्रकार सिपाहियों के कुछ समय के लिये अपनी विपदा और निराशा को भूल जाने का प्रभाव उनके स्वास्थ्य पर बहुत अच्छा पड़ा। अपनी इस सफलता से उत्साहित हो मैंने मनुष्य के जीवन में कला के मूल्य को समझा और इसी की साधना में लग गया.......।"

यद्यपि काफी विलम्ब हो गया था परन्तु हमारे बुजुर्ग कलाकार रावलजी चरकासोव का एक फोटो लिये बिना उन्हें छोड़ने को न माने। चरकासोव इतनी सी बात के लिये क्या निराश करते। कई फोटो लिये गये। एक फोटो हम सब लोगों ने चरकासोव को घेरकर लिया और वह हम सबके पास उस कलाकार की स्मृति के रूप में सुरक्षित रहेगा।

तीसरी मंजिल पर अपने कमरे में जा प्रवदा के लिये अपना लेख पूरा करने मेज पर बैठ गया। चरकासोव के जीवन की कहानी और उसके अद्‍भुत अभिनय की बात बार-बार याद आ रही थी। उसकी तुलना में अपने यहाँ के सिनेमा के अभिनेताओं की बात भी। सोच रहा था कि ऐसा अभिनय कभी किसी दूसरे अभिनेता का देखा है या नहीं? पालमुनी, ग्रेटागार्बो की बात सोचते-सोचते याद आ गई प्रसिद्ध नर्तक श्री उदयशंकर के गुरु श्री नम्बूदरी पाद की बात।

१९४२ में बहुत से राजनैतिक बंदियों ने जेल में अनशन कर दिया था। उनके एक सम्बन्धी चाहते थे कि श्रीमती विजयलक्ष्मी इस विषय में अंग्रेजी सरकार पर कुछ जोर डालें या बीच-बचाव कर दें तो अनशन टूट सके। विजयलक्ष्मी उस समय जून की गर्मी अल्मोड़ा से आगे 'खाली' में काट रही थीं। यह सज्जन मुझे अपने साथ खाली ले गये। एक दिन अल्मोड़ा में भी बिताना पड़ा। उन दिनों अल्मोड़ा में उदयशंकर का कला-केन्द्र चालू था। हम लोग जिस समय कला-केन्द्र पहुँचे, अभ्यास और शिक्षा का समय समाप्त हो चुका था। वहाँ के शिक्षा-क्रम के सम्बन्ध में ही कुछ बातें जान सकते थे। नाट्य, नृत्य आदि देखने का अवसर न था। उदयशंकर के भाई राजेन्द्रशंकर हमारे असमय आने पर खेद प्रकट कर जो कुछ सम्भव था, बता रहे थे। हमारा परिचय उन्होंने गुरु श्री नम्बूदरी पाद से भी करा दिया। वे उसी समय अपनी कई घंटों की पूजा समाप्त कर उठे थे। प्रसन्न

और उदार भावना में थे। परिचय पाकर दो ही चार बातों में उन्होंने अभिनय के सम्बन्ध में क्रियात्मक दृष्टांत देना स्वीकार कर लिया।

श्री नम्बूदरी पाद पहले शिव के ताण्डव रूप और वत्सल रूप का भाव चेहरे पर दिखाया और फिर विकट साधना का परिचय देने के लिये "नर-नारीश्वर" का अभिनय केवल मुख मण्डल से ही किया। वे पाल्थी लगाये बैठे थे। उनके चेहरे पर, मस्तक से ठोड़ी पर बँटे एक भाग से पुरुष की वीर-गम्भीर मुद्रा स्पष्ट झलक रही थी और दूसरे भाग से नारी के सुकोमल, लज्जा और लावण्य की मुद्रा भी उतनी ही स्पष्ट थी। इतना ही नहीं, उन्होंने सूर्यास्त और चन्द्रोदय के समय चकवी से बिछुड़ते चकवे का भी अभिनय किया। चकवे के चेहरे का जो भाग नवोदित चंद्रमा की ओर था क्रुद्ध लाल आँख से देख रहा था। उत्तेजना में उसके होंठ फड़फड़ा रहे थे और गाल थिरक रहे थे। चकवे के चेहरे का दूसरा भाग जो चकवी की ओर था, करुणारस की प्रतिमूर्ति था। आँखों से आँसू टपक रहे थे। चेहरे की थिरकन विवशता और क्रंदन की थी। होंठों का कम्पन भी करुणा रस का द्योतक। एक साथ चेहरे पर दो भावों की पूर्ण अभिव्यक्ति ! अभिनय की इससे ऊँची साधना की और कल्पना क्या हो सकती है? ऐसी साधना मैं अपने ही देश में देख चुका था। चारकासोव ने ऐसी ऊँची साधना की बात भी नहीं सोची होगी। दोनों में एक दूसरा अंतर भी है। चारकासोव की कला जनता के लिये है। श्री नम्बूदरी पाद की कला केवल देव आराधना की प्रक्रिया मात्र थी। वे प्रतिदिन पाँच छः घंटे बहुत बड़े शिवलिंग की पूजा करते थे। उनका अभिनय केवल देवभोग्य था जनभोग्य नहीं। सम्भव है, समय ने उनके विचारों पर कुछ प्रभाव डाला हो इसीलिये वे उदयशंकरजी के आश्रम में शिक्षा देने के लिये तैयार भी हो गये थे।

श्री नम्बूदरी पाद का स्वर्गवास हो गया है परन्तु इस कला की परम्परा हमारे देश में अब भी है चाहे वह अभी देवमन्दिर की पवित्र चारदीवारी से बँधी हुई है। एक और भी बात सुनने में आई कि उदयशंकर जब सोवियत में आये थे एक बहुत दक्ष बालेरिना का नृत्य देखकर वह कला सीखने की इच्छा प्रकट की थी! बालेरिना का निस्संकोच उत्तर था—"तुम्हारे भरत नाट्यम और कथकली से हमारे बैले की कोई तुलना नहीं। पहले अपनी कला की सुध लो।" बैले भी तो जार और उसके सामन्त वर्ग के कलात्मक विनोद के लिये ही सीमित था।

हेमन्त प्रासाद

१७ जनवरी, लेनिनग्राद का सबसे बड़ा संग्रहालय 'हर्मिटाज' देखने गए। हर्मिटाज शब्द का अर्थ साधना कुटीर या सन्त आश्रम ही होना चाहिये परन्तु यह नम्र नाम रूस के निरंकुश सम्राटों ने अपने सबसे बड़े महल हेमन्त प्रासाद को दिया था। त्याग की भावना के आडम्बर से दैन्य का ऐसा परिहास सम्पन्न लोग सदा ही करते आये हैं, महल को 'पर्णकुटी' हमारे यहाँ भी पुकारा ही जाता है। हेमन्त प्रासाद को अब कलात्मक वस्तुओं का संग्रहालय बना दिया गया है पर वह स्वयं भी कला और आश्चर्य की वस्तु है।

सम्भवतः वह संसार भर में सामन्तवादी युग का सबसे बड़ा प्रासाद है क्योंकि जार सामन्तवादी युग के सबसे बड़े शोषक भी थे। यह प्रासाद अठारहवीं शताब्दी में बनाया गया था परन्तु कल का ही बना जान पड़ता है। लेनिनग्राद पर नाजी आक्रमण के समय बमवारों ने इस पर तीस बम फेंककर काफी हानि पहुँचा दी थी। जब नौ सौ दिन तक लेनिनग्राद पर दिन-रात बम वर्षा होती रही थी उस समय हेमन्त प्रासाद ही क्या हजारों दूसरे मकान गिरे थे परन्तु लेनिनग्राद में कहीं भी ध्वंस के चिह्न अब दिखाई नहीं देते। न हेमन्त प्रासाद को देखकर यह अनुमान लगाया जा सकता है कि किस स्थान पर बमों की चोट के कारण मरम्मत की गई होगी।

इस समय इस संग्रहालय में बीस लाख वस्तुओं का संग्रह है। यह चीजें एक सौ साठ बड़े-बड़े हालों में सजाकर रखी गई हैं। स्थान की कमी अनुभव हो रही है इसलिये एक सौ पन्द्रह नये हाल और बनाने की योजना है। संग्रहीत वस्तुओं में सभी प्रकार की वस्तुयें हैं। जारों द्वारा पृथ्वी के कोने-कोने से चुनकर इकट्ठे किये गये प्राचीन उत्कृष्ट चित्र और अन्य कलाओं के नमूने हैं। यहाँ तक कि मिस्र से लाई हुई 'ममी' भी मौजूद हैं। आधुनिक चित्रों और कलात्मक वस्तुओं को छोड़कर जारों के जीवन से सम्बन्ध रखने वाली वस्तुओं का संग्रह भी बहुत बड़ा है। विशेषकर पीटर प्रथम से सम्बन्ध रखने वाली वस्तुओं का बहुत ही ब्योरेवार संग्रह है। उसकी पोशाकें, उसके हथियार, उसके बर्तन, उसके बनाये हुए खिलौने और यंत्र सभी सुरक्षित हैं।

पीटर के सम्बन्ध में संग्रहालय के परिचायक को आदर से बात करते देख कुछ विस्मय हुआ। मैंने रूसी साथी से अपने विचार प्रकट किये—"पीटर जैसा भी रहा हो, था तो क्रूर और शोषक तानाशाह। उसकी क्रूरता की अनेक दतंकथायें प्रसिद्ध है।" रूसी साथी ने उत्तर दिया—"नहीं पीटर बहुत बड़ा निर्माता, कलाकार, वैज्ञानिक और प्रगतिशील विचारक था। अपने शासन काल में वह सामन्तों के दमन का विरोधी और जनता का समर्थक था। पूँजीवादी इतिहास लेखकों ने उसका वास्तविक चित्र नहीं बल्कि बनावटी, क्रूर चित्र इतिहास में प्रस्तुत किया है।"

पीटर के इतिहास पर बहस कर सकना मेरे लिये सम्भव नहीं परन्तु पीटर की यह प्रशंसा गले से उतरी नहीं। पीटर चाहे व्यक्तिगत रूप से प्रगतिवादी और दयालु ही रहा हो परन्तु वह जिस व्यवस्था का प्रतीक था, उसे मैं जनवादी नहीं मान सकता। मेरे विचार में वह प्रगतिवादी जरूर था परन्तु उसी दृष्टिकोण से कि वह सत्रहवीं और अठारहवीं शताब्दी में योरूप की तुलना में बहुत पिछड़े हुए रूस में औद्योगिक विकास को प्रोत्साहन देकर और रूढ़िवादी प्रथाओं को तोड़कर अपने साम्राज्य को अन्य औद्योगिक साम्राज्यवादी योरुपियन देशों से पीछे नहीं रहने देना चाहता था। उसका शासन सामन्तों के आधार पर ही था। वह सामन्तवाद का विरोधी कैसे हो सकता था? अस्तु, रूस के लोग पीटर को चाहे जैसा समझें, इसमें सन्देह नहीं कि हेमन्त प्रासाद समाजवादी युग के इतिहास का, सम्भवतः संसार का सबसे बड़ा संग्रहालय है। सामन्तवाद से विरोध होते हुए भी सोवियत के लोगों को अपने इस कला भण्डार के लिये बहुत गर्व है।

श्रमिकों की रक्षा के लिये वैज्ञानिक खोज विभाग

श्रमिकों की रक्षा के लिये वैज्ञानिक खोज की बात कुछ पहेली सी मालूम हो रही थी इसलिये समय कम रहने पर भी इसे देखने, समझने के लिये दोपहर बाद वहाँ गये। क्रान्ति से पहले यह मकान किसी शक्तिशाली सामन्त का महल था। इस समय यहाँ श्रमिकों की रक्षा के लिये वैज्ञानिक खोज का काम हो रहा है। महल शब्द से ही मकान के विस्तार, कलात्मकता और सौंदर्य का अनुमान हो सकना चाहिये।

विभाग के संचालक ने अपनी खोज का क्रियात्मक काम दिखाने से पहले अपने काम का उद्देश्य समझा देना आवश्यक समझा :—"कामरेड स्तालिन का यह सिद्धान्त है कि संसार में सबसे बड़ी शक्ति या समाज की पूँजी मनुष्य है। हम इसी सिद्धान्त पर चल रहे हैं। हमारा काम है कि जिन अवस्थाओं में श्रमिकों को उत्पादन के लिये श्रम करना पड़ता है उनका निरीक्षण करें। यदि उनके काम की परिस्थितियों में जान का खतरा हो तो उस खतरे को दूर किया जाय। यदि उनके स्वास्थ्य को हानि पहुँचने की सम्भावना हो तो ऐसे कारणों को दूर किया जाय। श्रमिकों के स्वास्थ्य को हानि पहुँचने के कई कारण हो सकते हैं उदाहरणत: रासायनिक कारखानों में पैदा होने वाली गैसें, धातु पिघलाने और ढालने वाले कारखानों में धातुओं के बहुत सूक्ष्म कणों और धूल का वायु में भर जाना। भट्ठियों की आंच का सेक या बिजली की चिनगारियाँ से वैल्डिग आदि करने वालों की आँखों पर बुरा प्रभाव पड़ना। हम अपने समाज में उत्पादन को अधिक से अधिक मात्रा में बढ़ाना चाहते हैं परन्तु उसके लिये अपने श्रमिकों के स्वास्थ्य की उपेक्षा नहीं कर सकते। यह खोज विभाग 'अखिल सोवियत औद्योगिक संघ' की केन्द्रीय समिति के नियन्त्रण में है परन्तु इसका व्यय सरकार देती है। पहली पंचवर्षीय योजना में सरकार ने इस खोज विभाग के लिये पाँच करोड़ रूबल दिये थे। इस प्रकार की खोज के लिये पाँच मुख्य केन्द्र काम कर रहे हैं।"

हम लोग पहले कारखानों में स्वच्छ वायु पहुँचाने वाले यंत्रों का आविष्कार करने के विभाग में पहुँचे। उस कमरे में कई बड़े-बड़े यंत्र रखे हुए थे जो बड़े-बड़े कारखानों के हालों में आवश्यकता अनुसार ताजी वायु पहुँचाते रहते हैं। कुछ यंत्र कारखाने के भीतर की वायु को एक ओर से समेटकर उसे छान और साफ करके दूसरी ओर से निकाल देते हैं। दूसरे विभाग में गरमी कम करने के उपाय दिखाये गये। अनुभव से यह बात समझाने के लिये कमरे को बहुत गरम कर दिया गया। इतना गरम कि छटपटाहट अनुभव होने लगी। कमरे के बीचों-बीच मशीन पर काम करने वाले आदमी की कुर्सी थी। हम लोग बारी-बारी से उस कुर्सी पर जाकर बैठे। कुर्सी पर गरमी बिलकुल नहीं थी। कुर्सी के ऊपर ताजी वायु का झरना लगा हुआ था जो काम करने वाले व्यक्ति के चारों ओर ठंडी और ताजी हवा बनाये रखता था। कमरे में सवा-सौ डिग्री गरमी होने पर भी कुर्सी पर बैठा आदमी ठंडक अनुभव करता था। संचालक ने हमें बताया कि गरमी घटाने का यह प्रबन्ध सोवियत के बड़े-बड़े कारखानों में कर दिया गया है।

दूसरे विभाग में बिजली से काम करने वाले आदमियों की सुरक्षा पर खोज का काम हो रहा था। यहाँ चीफ इंजीनियर एक महिला थीं। दुबली-पतली, यूनीवर्सिटी की विद्यार्थी जैसी। उन्होंने बताया कि औद्योगिक क्षेत्र में सबसे उपयोगी शक्ति बिजली है परन्तु वह उतनी ही खतरनाक भी हो सकती है। हमारे यहाँ कई-कई हजार वोल्ट की बिजली के तार दूर-दूर तक जाते हैं। उनमें खराबी आ जाने पर उनकी मरम्मत का काम बड़ा कठिन होता है। इसके अतिरिक्त बिजली दिखाई तो नहीं देती परन्तु उसकी शक्ति अधिक होने पर गज-गज भर तक चिंगारी फेंकती है। इंजीनियर ने इस प्रकार की परिस्थितियों में मजदूरों को खतरे से सुरक्षित रखने के उपाय समझाये। जब मजदूरों के लिये तारों को छूना आवश्यक ही हो तो उन्हें पृथ्वी या पृथ्वी को छुए हुए पदार्थों से बहुत दूर कर दिया जाता है। पदार्थों को बिजली के लिये दुर्गम (बैड कन्डक्टर) किस प्रकार बनाया जाता है और सुरक्षा के लिये भिन्न-भिन्न प्रकार के दुर्गम पदार्थों के व्यवधान कैसे दिये जाते हैं आदि-आदि।

एक विभाग में महीन कामों को करते समय चकाचौंध पैदा किये बिना पर्याप्त प्रकाश पहुँचाने के सम्बन्ध में परीक्षण किये जा रहे थे। इसी विभाग में नगरों में बिजली लगाने के ऐसे तरीकों पर विचार किया जा रहा था कि चकाचौंध भी न हो और परछाइयाँ भी न पड़ें। इन परीक्षणों का उद्देश्य चकाचौंध के कारण होने वाली मोटर दुर्घटनाओं को रोक सकना भी था।

प्रकाश सम्बन्धी परीक्षण करने वाले दूसरे विभाग में ऐसे चश्मों का आविष्कार किया गया है जो प्रकाश की आँखों पर पहुँचने वाली गरमी को तो रोक दें परन्तु प्रकाश को कम न होने दें। हमारे देश में सूर्य के प्रखर होने पर इस प्रकार का चश्मा बहुत उपयोगी हो सकता है इसलिये इसे हम लोगों ने ध्यान से देखा। इस विभाग के वैज्ञानिक ने हमारे सामने इतना प्रकाश कर दिया कि उसकी आंच आँखों पर ही नहीं चेहरे पर भी अनुभव होने लगी। इसके बाद उसने प्रकाश और हमारे बीच में लगे हुए झरने को खोल दिया। पानी का एक परदा हम लोगों और प्रकाश के बीच में बन गया। इससे प्रकाश की आंच तो दूर हो गई पानी की चादर से छनकर आने वाला प्रकाश भी कम हो गया। पानी के झरने को रोककर उसने हमें अपने नये बनाये हुए चश्मे लगाने के लिये दिये। इन चश्मों के लगाने पर चेहरे पर तो आंच अनुभव होती थी परन्तु आँखें पूरा प्रकाश पाकर भी गरमी अनुभव नहीं कर रही थीं।

वैज्ञानिक ने अपने इस आविष्कार का रहस्य बताने में भी संकोच नहीं किया। उसने बताया कि बात मामूली है। इन चश्मों के शीशों की बाहरी सतह पर एक प्रकार का पालिश कर उसे पारदर्शी दर्पण बना दिया गया है जो प्रकाश को नहीं रोकता परन्तु गरमी को उसी प्रकार लौटा देता है जैसे दर्पण पर पड़ने वाला प्रकाश उससे टकराकर लौट जाता है।

अभी बहुत से विभाग शेष थे। हमीं लोगों के पास समय नहीं था। इसलिये लौटने की आज्ञा लेते हुए हमारे बङ्गाली साथी जिल्नानी ने संचालक को धन्यवाद देते हुए कहा—

"हम लोग सोवियत में लोहे का परदा होने की बात सुनते थे यहाँ आने पर लोहे का परदा (आइरन करटेन) तो अभी तक दिखाई नहीं दिया अलबत्ता पानी का परदा जरूर देख लिया है और वह भी इसलिये नहीं कि लोग देख न सकें बल्कि इसलिये कि सुविधा से देख सकें।"

गोर्की सांस्कृतिक प्रासाद

मास्को में स्तालिन मोटर कारखाने के मजदूरों का सांस्कृतिक प्रासाद देखा था परन्तु वह नववर्ष के उत्सव का अवसर था। उत्सव और जीवन की साधारण अवस्थाओं में बहुत अन्तर रहता है इसलिये उस संध्या समय कम रहने पर भी लेनिनग्राद के मजदूरों का गोर्की सांस्कृतिक प्रासाद भी देखने गये। लेनिनग्राद में मजदूरों के और भी कई सांस्कृतिक प्रासाद और सैकड़ों क्लब हैं परन्तु हमारे सौभाग्य से गोर्की सांस्कृतिक प्रासाद ही हमारे होटल के समीप था। इस सांस्कृतिक प्रासाद या क्लब की इमारत मास्को के स्तालिन मोटर कारखाने के मजदूरों के सांस्कृतिक प्रासाद जैसी प्रकांड तो नहीं परन्तु सौन्दर्य में अधिक ही जान पड़ी। यही बात मास्को और लेनिनग्राद की अन्य इमारतों की तुलना के सम्बन्ध में कही जा सकती है। मास्को की इमारतों को आखिरी मंजिल तक देख पाने के लिये ठोड़ी को इतना अधिक उठाना पड़ता है कि गरदन में बल आ जाय। कुछ लोगों को उसमें अति यांत्रिकता की एकरसता भी दिखाई दे सकती है। लेनिनग्राद को जार के समय भी सौंदर्य और शोभा पर ध्यान रखकर बसाया गया था। अब उसमें और वृद्धि की गई है। हर एक बाजार या सड़क अपने ढंग की है। इमारतें भी गरदनतोड़ ऊँचाई तक उठी हुई तो नहीं परन्तु प्रत्येक का अपनी भव्यता और अलग रूपरेखा है जैसे कि सामन्त लोग एक दूसरे से भिन्न अपनी स्थिति दिखा सकने में ही सन्तोष पाते थे।

गोर्की सांस्कृतिक प्रासाद की अपनी रंगशाला है और इतनी बड़ी कि उसमें २२०० व्यक्ति एक साथ बैठ सकते हैं। यहाँ सदस्यों में अभिनय और संगीत का शौक भी खूब है। प्रासाद की अभिनय और संगीत क्लब के सदस्यों की संख्या भी दो हजार है। प्रासाद में गाना-बजाना, नाच और बैले नाच सीखने का भी पूरा प्रबन्ध बच्चों और वयस्कों के लिये अलग-अलग है। एक कमरे में एक रूसी फिल्म 'पत्थर का फूल' का नृत्य-नाट्य बनाकर उसका अभ्यास किया जा रहा था।

प्रासाद का अपना एक बहुत बड़ा, एक लाख बीस हजार पुस्तकों का पुस्तकालय है। जिसमें बच्चों का कमरा तो देखते ही बनता है। चित्र और अनेक आकर्षक वस्तुओं की संख्या यहाँ पर इतनी है कि बच्चों के दिमाग को कुरेदे बिना रह ही नहीं सकतीं। एक बड़े कमरे में किसी कवि को घेरकर उसकी कविता के सम्बन्ध में ही बहस चल रही थी लेखकों, कवियों और कलाकारों के लेनिनग्राद आने पर उन्हें यहाँ निमन्त्रित करके, उनके व्याख्यान कराये जाते हैं। एक और बड़े कमरे में गरमा-गरम बहस आने वाले चुनाव के सम्बन्ध में ही चल रही थी क्योंकि २२ फरवरी को ही चुनाव होने वाले थे। इस कमरे के साथ ही और भी बड़े कमरे में दूसरी प्रकार का शोर हो रहा था। बीसियों वायलिन,

अकोर्डियन और बालालाइका (रूसी सारंगी)......चीं......चीं......पीं......पीं कर रही थीं और स्त्री-पुरुषों के लगभग डेढ़ सौ जोड़े बाल-डान्स कर रहे थे। बाल-डान्स जो कि पूँजीवादी देशों में साधारण मध्यम श्रेणी की पहुँच से बहुत ऊपर की चीज है। इस सांस्कृतिक प्रासाद में सभी स्त्री-पुरुष नागरिक स्वतन्त्रता से आ, जा सकते हैं और सदस्य भी बन सकते हैं। हम लौटने के लिये आज्ञा माँगना चाहते थे तो मालूम हुआ कि रंगशाला में गोर्की की किसी बड़ी उत्कृष्ट कहानी का नाटक आरम्भ होने ही वाला है। एक ही संध्या इस प्रासाद में यह सब कुछ चल रहा था और इन्हीं लोगों के बारे में यह सुनते आये थे कि खाने, पहनने को पाकर भी वे लोग स्वतन्त्र नहीं क्योंकि उन्हें मुँह खोलने का अवसर नहीं। यदि बस चलता तो रात इसी प्रासाद में बिता देते परन्तु हमें तो आधी रात को मास्को के लिये गाड़ी पकड़नी थी।

मास्को से विदाई

मास्को में अब दो ही दिन के लिये और थे। कुछ साथी सोवियत यात्रा की स्मृति में छोटी-मोटी चीजें खरीद लेने के लिये बाजारों में घूम रहे थे, कुछ लौटते समय योरुप के अन्य देशों में जा सकने के लिए उन देशों के दूतावास से प्रवेश-पत्र (वीसा) लेने में उलझे हुए थे। सोवियत साथियों के निमन्त्रण भी अभी समाप्त नहीं हुए थे। जो लोग विशेष व्यक्तियों से मिलना चाहते थे वे उस चिन्ता में थे। हम दो-चार व्यक्ति इसी चिन्ता में थे कि कम समय में बड़ी-बड़ी चीजें देख लेने की जल्दी में जो सामान्य वस्तुएं नहीं देख पाये उनका भी कुछ परिचय मिले इसलिये किसी निश्चित प्रयोजन के बिना भी कभी चौबेजी के साथ बाजार घूम आता और कभी गीता मलिक और हाजरा बेगम गुड़िया या बच्चों के फ्राक खरीदने जातीं तो हम लोग बण्डल उठा लाने के लिये ही उनके साथ हो लेते।

यूं घूमने-फिरने का प्रयोजन डा० कुमारप्पा से सुनी हुई एक बात की तसदीक कर लेने की इच्छा थी। उन्होंने बताया था कि उनकी पिछली लेनिनग्राद की यात्रा में उन्हें एक बूढ़ा अंग्रेजी जानने वाला रूसी मिल गया था जो देश-विदेश घूमा हुआ था। जब वह उससे बात कर रहे थे तो पुलिस के एक आदमी ने आकर टोक दिया और उस आदमी की बात छोड़ पुलिस के सिपाही के साथ चले जाना पड़ा। पुलिस के सिपाही ने उस व्यक्ति से क्या बात की; वह उसे कहाँ ले गया; वह तो कुमारप्पा रूसी भाषा के अज्ञान के कारण जान न सकते थे। उनका अनुमान है कि उस रूसी की ठुकाई विदेशी यात्री से बात करने के कारण हुई होगी।

बाजारों में यों घूमते समय हम दुभाषियों को साथ नहीं ले जाते थे। गीता मलिक के रूसी ज्ञान का ही भरोसा था और उसके कारण मजाक भी अच्छा खासा बन जाता। मास्को में तो कई बार बिना रूसी दुभाषिये या संरक्षक के बाजार गये, चाय-पानी की दुकान पर चाय भी पी। चाय मंगाने में और दाम पूछने में हमारे रूसी ज्ञान के कारण मजाक भी खूब हुआ! काबुलेत्ती से लौटते समय गाड़ी में मेरे मोजों के गेटिस खो गये थे।

बिलीसी में जब किसी रूसी साथी के बिना अकेले गेटिस खरीदने गये तब भी अपनी बात समझाने में अच्छा परिहास हुआ और आखिर इशारों से ही काम बना। स्तालिनग्राद में भी सब साथियों से अलग और बिना किसी रूसी संरक्षक को लिये मैं जिलानी के साथ घूमने गया था परन्तु किसी भी अवसर पर कभी ठुकाई नहीं हुई।

इस प्रसंग का प्रयोजन यही है कि रूसी नागरिकों से मिलने-जुलने में हम लोगों को कोई बन्धन अनुभव नहीं हुआ। शायद यह बन्धन हमारे रूसी बोल सकने की अवस्था में या अंग्रेजी बोल सकने वालों की संख्या काफी होने पर ही होता पर ऐसी बात थी नहीं इसलिये उस कसौटी पर निर्णय न कर सकने पर भी यह तर्क तो किया ही जा सकता है कि सोवियत में व्यक्तिगत स्वतंत्रता के अभाव के क्या कारण हो सकते हैं?

व्यक्तिगत स्वतन्त्रता के विषय में बात करते समय यह प्रश्न तर्कसंगत होगा कि किस बात के लिये स्वतन्त्रता? और कैसे भय, बन्धनों और आशंकाओं से स्वतन्त्रता? स्वतन्त्रता केवल काल्पनिक वस्तु नहीं है। व्यक्ति का अपने निर्णय और मन चाहे ढंग से व्यवहार कर सकना, बात कह सकना और आशंकाओं से मुक्त होना ही स्वतन्त्रता है। कुछ दिन इंगलैण्ड में रहते समय और अपने देश में लौटकर भी प्रायः ही यह प्रश्न पूछा गया है कि सोवियत प्रजा को भौतिक आवश्यकतायें सन्तोष से पूरी हो सकने का अवसर होने पर भी क्या व्यक्तिगत स्वतन्त्रता है? "कुत्ते को खाने को तो पेट भर मिलता है पर भौंकने की भी इजाजत है या नहीं?"

हमारे देश में अथवा अन्य देशों में अवसर होने पर प्रजा किस प्रकार के विचार प्रकट करती है अथवा किन बातों के लिये असंतोष प्रकट करती है? सर्वसाधारण जनता की माँगें दो-तीन मुख्य बातों में समा जाती हैं। वे अपने रोजगार या व्यवसाय की रक्षा चाहते हैं, उन्हें बेकारी का भय रहता है। वे अपने परिश्रम के लिये उचित वेतन या मजदूरी चाहते हैं और अन्तिम बात जिसमें सभी कुछ समा जाता है वे अपने जीवन और भाग्य के विषय में स्वयं निर्णय करने का अवसर और अधिकार चाहते हैं। ससार भर के सभी आन्दोलनों और क्रान्तियों की माँगें इन तीन बातों में आ जाती हैं। इन्ही माँगों को पूरा कर सकने के लिये प्रजातंत्र प्रणाली में छापने की स्वतन्त्रता, बोलने की स्वतन्त्रता और आन्दोलन की स्वतन्त्रता की माँग की जाती है। जब प्रजा के अधिकांश की माँगें पूरी होती रहती हैं देश की व्यवस्था को अनायास ही प्रजा का सहयोग मिलता रहता है। प्रजा की यह माँगें पूरी न होने पर प्रजा असंतोष प्रकट करती है और व्यवस्था को उस असंतोष का दमन करना पड़ता है। इन मौलिक माँगों की दृष्टि से हम सोवियत प्रजा से किस प्रकार के असंतोष की आशा कर सकते हैं? साधारणतः स्वतन्त्र व्यवहार की आशा जीवन के लिये अवसर छिनने से भयभीत लोगों से की जा सकती है अथवा निर्भय लोगों से?

सोवियत के नागरिकों को पेट भर खाने के बाद मनोविनोद के लिये कैसे अवसर हैं, इसकी चर्चा तो अनेक प्रसंगों में आ ही चुकी है। असल प्रश्न है विचार या मन का

असंतोष प्रकट करने की स्वतन्त्रता और अवसर का। यह विचारना उपयोगी होगा कि सोवियत की प्रजा पर कैसे विचार और असंतोष प्रकट करने के लिये बंधन हो सकते हैं? सोवियत की प्रजा से कैसे विचारों की और कैसे असंतोष की आशा की जा सकती है? सोवियत की प्रजा का ५०% भाग मजदूरों और शासन व्यवस्था से तनखाह पाने वालों का है। इन लोगों की अवस्था जारशाही के समय की अपेक्षा समाजवादी व्यवस्था में बहुत सुधर गई हैं! अपने संगठनों द्वारा अपने रोजगार के सम्बन्ध में भी भाग लेने का अवसर उन्हें है और बेरोजगारी, बीमारी और वृद्धावस्था में निस्सहाय हो जाने की आशंका से मुक्ति भी मिली हुई हैं। प्रजा का लगभग ४७% भाग किसान हैं जो समाजवादी व्यवस्था में जमींदारी समाप्त कर अपने रोजगार के लिये सभी आधुनिक वैज्ञानिक सुविधायें पाकर जमींदारों के लिये भी अप्राप्य संतोष का जीवन व्यतीत कर रहे हैं। २½% लोग ऐसे हैं जो सहकारिता द्वारा अपने धन्धों को चला रहे हैं। ये लोग चाहें तो अपने रोजगार की पैदावार बाजारों में बेच सकते हैं अन्यथा सरकार उसे खरीद लेती है। हजार में लगभग आठ व्यक्ति अब भी ऐसे हैं जिनकी कोई सामाजिक स्थिति नहीं है। इन्हें चाहे मानसिक अव्यवस्था के कारण कोई भी काम करने के अयोग्य या अपराधी वृत्ति अथवा जो कुछ समझ लिया जाय। ऐसी अवस्था में सोवियत की सर्वसाधारण प्रजा से किस प्रकार के विचारों की, किन माँगों की और किस बात के लिये असंतोष की आशा की जा सकती है?

यह आशा नहीं की जा सकती कि सोवियत की जनता खा-पीकर निश्चिन्त सो जाती है और वे लोग कुछ सोच-विचार नहीं करते। व्यक्ति को पेट की चिन्ता से जितनी स्वतन्त्रता मिलती है उतना ही वह समस्याओं की ओर झुकता है, उसमें महत्वाकांक्षायें उत्पन्न होती हैं। ऐसी अवस्था में ही विचारों की स्वतन्त्रता के लिये अवसर होता है। सोवियत प्रजा भी अवश्य सोचती विचारती होगी। सोवियत जनता भौतिक संतोष के साधन और अवसर पाकर भी निष्क्रिय और निर्जीव तो हो नहीं गई है। अवश्य ही उनकी कुछ आकांक्षायें और माँगें होंगी? सोवियत जनता से कैसी महत्त्वाकांक्षा और माँगों की आशा की जा सकती है? निश्चय ही उनकी महत्त्वाकांक्षा और माँग होगी कि उनकी अवस्था और अधिक सुधरती चली जाये, यही वर्तमान सोवियत व्यवस्था नीति का मुख्य उद्देश्य भी है। राजनैतिक दृष्टि से सोवियत प्रजा ऐसी स्वतन्त्रता की माँग अवश्य करेगा कि उनके देश में जारी की गई और उन्हें पशु से मनुष्य बना देने वाली व्यवस्था पर कोई आंच न आ सके। सोवियत की वर्तमान शासन व्यवस्था मे प्रजा की ऐसी स्वतन्त्रता की माँग में किसी प्रकार की बाधा की कल्पना नहीं की जा सकती।

सोवियत में पूँजीवादी व्यवस्था के पक्ष में सहानुभूति प्रकट न कर सकने के अवसर के अभाव को ही पूँजीवादी जगत सोवियत में व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का अभाव समझता है। सोवियत में पूँजीवादी श्रेणी अब है ही नहीं। पूँजीवादी श्रेणी न होने का अर्थ यह नहीं कि पूँजीवादी श्रेणी को कत्ल कर दिया जाता है बल्कि यह कि आर्थिक व्यवस्था ऐसी बना दी गई है जिसमें किसी व्यक्ति को दूसरे के श्रम से जीविका या मुनाफा कमा लेने का अवसर

नहीं रहा। यह यथार्थ का विद्रूप है कि समाजवादी व्यवस्था तो पूँजीवादी श्रेणी के बिना चल सकती है परन्तु पूँजीवादी व्यवस्था मजदूर श्रेणी या साधनहीन लोगों के बिना चल ही नहीं सकती। सोवियत की प्रजा के कितने लोगों से यह आशा की जा सकती है कि वे पूँजीवादी व्यवस्था के पक्ष में आंदोलन करना चाहेंगे? सोवियत की प्रजा को अपने हितों की रक्षा कर सकने के लिये सभी प्रकार का अवसर होने और अपने देश में अपने शत्रुओं को पनपने का अवसर न देने की पूर्ण स्वतंत्रता की ही यह परिणाम है कि वहाँ उस व्यवस्था के विरोध का या पूँजीवादी व्यवस्था के समर्थन का कोई अवसर नहीं है। सोवियत प्रजा इसे अपना दमन नहीं समझती बल्कि इस व्यवस्था से अपने आपको पूर्णतः निर्भय समझती है।

यदि प्रश्न यह हो कि सोवियत की प्रजा अपनी इच्छा और अपने विचार अपनी सरकार के सामने प्रकट कर सकती है या नहीं और उन्हें उसके अनुसार चलने के लिये बाध्य कर सकती है या नहीं, तो सोवियत में शांति आंदोलन का जोर उसका बहुत अच्छा उदाहरण है। अपने शांति आंदोलन द्वारा सोवियत की जनता शांति के लिये अपनी इच्छा का दबाव केवल अपनी ही सरकार पर डाल सकती है, अन्य देशों की जनता और सरकारों पर नहीं। किसी भी देश की प्रजा दूसरे देश की सरकार पर कोई दबाव नहीं डाल सकती; विशेषकर जो लोग सोवियत को 'लोहे की दीवार से घिरा हुआ' समझते हैं वे सोवियत देश में चलने वाले शांति आंदोलन का प्रयोजन अन्य देशों की सरकारों अथवा जनता पर प्रभाव डालना कैसे मान सकते हैं? सोवियत की जनता के शांति आंदोलन का प्रभाव सोवियत सरकार की नीति पर पड़ा है, यह सोवियत सरकार की अन्तर्राष्ट्रीय नीति से प्रमाणित हो रहा है।

समाज में व्यक्ति की स्वतंत्रता उसके अपने साधनों और अन्य व्यक्तियों के पास उसकी अपेक्षा कम या अधिक साधन होने पर भी निर्भर करती है। व्यक्ति अपने साधनों से ही अपनी इच्छा पूर्ण कर सकता है। जब वह अपनी इच्छाओं और आवश्यकताओं को पूरा नहीं कर सकता, उसकी स्वतंत्रता का कुछ अर्थ नहीं रह जाता। साधनों के अभाव में अपनी आवश्यकतायें पूरी न कर पाना तो दुखदायी होता ही है परन्तु दूसरों के साधनों के वश हो जाना अतिदुखदायी असली परतंत्रता होती है। किसी एक व्यक्ति के दूसरों की अपेक्षा बहुत अधिक साधनवान होने से उसे दूसरों की स्वतंत्रता के दमन का और अपनी स्वतंत्रता के बढ़ाने का भी अवसर हो जाता है। ऐसी अवस्था में समान अधिकार के कानून एक ओर धरे रह जाते हैं। इस स्थिति के कारण पूँजीवादी प्रजातंत्रों में साधनहीनों की वैज्ञानिक स्वतंत्रता का कुछ अर्थ नहीं और उनकी परवशता का मूल सभी साधनों का समाज में कुछ एक लोगों के हाथ में सिमिट जाना है। सर्वसाधारण के लिये व्यक्तिगत स्वतंत्रता का अवसर केवल उसी अवस्था में सम्भव है जब जीवन रक्षा, विकास और सामाजिक व्यवस्था को चलाने के साधनों पर पूरी प्रजा का समान अधिकार हो। ऐसी अवस्था में सर्वसाधारण के लिये व्यक्तिगत स्वतंत्रता की आशा यदि कहीं की जा सकती है तो केवल समाजवादी सोवियत में ही और उसका क्रियात्मक उदाहरण आप उस देश के

बाजारों, होटलों और स्टेशनों पर सभी जगह देखते हैं। आप कुछ लोगों के व्यवहार में टुकड़ा फेंक सकने का अहंकार और सर्वसाधारण व्यवहार में मोहताजी का दैन्य नहीं देखेंगे।

बहुत से लोगों ने यह भी पूछा है कि क्या सोवियत के कंसेन्ट्रेशन कैम्प को देखने का अवसर हमें मिला है? या वहाँ कंसेन्ट्रेशन कैम्प हैं था नहीं? हमने ऐसे कैम्प नहीं देखे और न हममें से किसी ने इस सम्बन्ध में कोई पूछताछ ही की। इसका सीधा कारण यही था कि हमें वहाँ ऐसे कैम्पों की आवश्यकता का वातावरण नहीं जान पड़ा। हमने जो कुछ नहीं देखा या जो कुछ हमें दिखाया नहीं गया उसकी कल्पना करके दमन की बात सोचने की अपेक्षा क्या यह अधिक युक्ति संगत नहीं कि जो कुछ मैंने अपनी आँखों देखा है उसके ही आधार पर सोचा जाय कि सोवियत में कंसेन्ट्रेशन कैम्पों की जरूरत हो सकती है या नहीं?

हम लोग दावे से यह नहीं कह सकते कि सोवियत में कंसेन्ट्रेशन कैम्प हैं ही नहीं। सम्भव है हों परन्तु वहाँ कैसे लोगों को या किस श्रेणी के लोगों को ऐसे कैम्पों में बन्द रखना आवश्यक समझा जायेगा? सोवियत की आर्थिक व्यवस्था में हमारे समाज जैसा श्रेणी भेद इस समय नहीं है इसलिये एक श्रेणी द्वारा दूसरी श्रेणी के दमन का प्रश्न नहीं उठता। कंसेन्ट्रेशन कैम्पों की आवश्यकता उसी समय होती है जब देश में चालू व्यवस्था के विरोधी राजनैतिक बंदियों की बड़ी संख्या को सम्भाल कर रखने की समस्या हो या समाज का छोटा सा भाग समाज के बहुत बड़े असंतुष्ट भाग पर अपना शासन कायम रखने का यत्न कर रहा हो। किसी ऐसी अवस्था के कुछ मौलिक कारण होते हैं जिन्हें छिपाया नहीं जा सकता और वे कारण सोवियत की व्यवस्था में नहीं हैं। पिछले महायुद्ध में अपनी व्यवस्था की रक्षा के लिये सोवियत के सर्वसाधारण का आत्मबलिदान उनके असन्तोष का प्रमाण नहीं माना जा सकता। यदि सोवियत में इस समय भी कंसेन्ट्रेशन कैम्प और राजनैतिक बन्दी मौजूद हैं तो उनका दमन किसी श्रेणी के रूप में नहीं हो सकता। हाँ, यह कल्पना की जा सकती है कि कुछ प्रभावशाली लोगों की व्यक्तिगत स्पर्धा के कारण उनके कुछ व्यक्तिगत प्रतिद्वन्द्वियों का दमन हो रहा हो? ऐसे दमन की भी निन्दा ही की जानी चाहिये पर कल्पना की इतनी उड़ान भरने पर भी हम सोवियत में पाँच-दस व्यक्तियों के प्रति ही अन्याय और दमन की कल्पना कर सकते हैं जनता या सर्वसाधारण के दमन की नहीं और यह भी केवल कल्पना ही है!

× × ×

२० जनवरी दोपहर बाद हमारे मास्को से चल देने से पहले मास्को के पत्रकारों और संवाददाताओं ने हमसे बातचीत का आयोजन किया था। वे जानना चाहते थे कि हम लोगों ने उनके नगरों और व्यवस्था में क्या देखा, उस सम्बन्ध में हमारा क्या मत था। सोवियत की कला, व्यापार, शिक्षा प्रणाली आदि सभी विषयों पर बात हुई। वे भारत में शांति आंदोलन के सम्बंन्ध में कुछ बातें ब्योरेवार जानना चाहते थे। श्री रमनलाल ने

सोवियत कला के सम्बन्ध में, मि० चटर्जी ने सोवियत और भारत में व्यापारिक संभावनाओं के सम्बन्ध में विचार प्रकट किये और मुझे भारत के शांति आंदोलन के सम्बन्ध में कुछ कहना पड़ा।

संध्या समय 'गत्सीनित्सा सोवियतस्काया' के एक खूब बड़े कमरे में हम लोगों को विदाई का प्रीतिभोज दिया गया। इस बीच जितने भी जाने-माने सोवियत नागरिकों, कलाकारों, डाक्टरों और वैज्ञानिकों से परिचय हुआ था, इस समय वे सभी उपस्थित थे। इतने ही दिन में उनसे पर्याप्त आत्मीयता हो गई थी जो संदेह और आशंका के वातावरण में सम्भव नहीं। इस प्रीतिभोज के समय विशेष महत्त्व की चीज थी, हमारे नाम आया सोवियत के बच्चों का एक पत्र। एक दिन हम लोग मास्को से कुछ दूर एक 'बालनिवास' देखने गये थे। उसी बालनिवास के बालक-बालिकाओं ने अपने हस्ताक्षरों से यह पत्र हमें भेजा था। पत्र का भाव यों है :—

"प्यारे शांति के मित्रों!

यह पत्र मोलोतोव विभाग के ओखान्सकी, तीन नम्बर बालनिवास के पाइनियरों की ओर से है।

युद्ध आरम्भ होने के समय हम लोग बिलकुल बच्चे थे परन्तु विजय-दिवस मनाये जाने की बात हमें खूब याद है। हममें से बहुतों को युद्ध की कई भयंकर बातें भी याद हैं। हमारे कई साथी गोलियों और बमों से चोट खाकर मर गये। कई लड़के और लड़कियाँ उनकी आँखों के सामने उनकी माताओं को मार दिये जाने के कारण पागल हो गये। खैर, वे दिन बीत गये।

अब हम इस बालनिवास में हैं और माँ का प्यार भी पा रहे हैं। हम लोग खूब खेलते हैं और पढ़ते हैं। हम जानते हैं कि हमें बहुत बड़े-बड़े काम करने हैं। हमें कम्युनिज्म की स्थापना करनी है। हम लोग बड़े-बड़े बाग लगायेंगे, अनाज और साग-सब्जियों के खेत बनायेंगे। यद्यपि हम अभी बच्चे हैं परन्तु हम यह जानते हैं कि मनुष्य समाज का कल्याण परस्पर-सहयोग और सेवा द्वारा ही हो सकता है। हममें से कोई किसान बनेगा, कोई इंजीनियर, कोई डाक्टर परन्तु हम सब लोग अपनी मातृभूमि को सम्पन्न और सुन्दर बनायेंगे और मनुष्यता की सेवा करेंगे। हम लोग कायर नहीं हैं परन्तु युद्ध से हमें बहुत घृणा है। संसार के सभी आदमियों को यह सुनकर प्रसन्नता हुई होगी कि आपके देश को शांति रक्षा के लिये 'अन्तर्राष्ट्रीय स्तालिन शांति पुरस्कार' दिया गया है। हमें विश्वास है कि आप अपने शांति के प्रयत्नों को और भी बढ़ायेंगे और युद्ध चाहने वालों और एटम बमों से संसार की रक्षा करेंगे। यद्यपि हम लोग अभी लड़के-लड़कियाँ ही हैं परन्तु हम शांति स्थापना के लिये सब कुछ करने को तैयार हैं।

हमारे बालनिवास में शांति आंदोलन के समर्थन के लिये एक सभा हुई थी। इस सभा में यह निश्चय किया गया था कि शांति कांग्रेस के भारतीय प्रतिनिधियों और डाक्टर किचलू को हम लोग एक-एक पायनियर नैकटाई अपने आदर और प्रेम के चिह्न स्वरूप भेंट करें। कृपया उसे स्वीकार कीजिये।

प्यारे शांति के मित्रो! हम आपको शांति के रक्षक अपने प्यारे नेता का० स्तालिन के यह उत्साहवर्धक शब्द याद दिलाना चाहते हैं—"यदि जनता शांति की रक्षा का काम अपने हाथ में ले ले और उसके लिये पूरा यत्न करे तो जनता निश्चय ही विश्वशांति की रक्षा कर सकती है।" हमें शांति और समृद्धि के मार्ग पर ले जाने वाले हमारे नेता स्तालिन दीर्घजीवी हों! सप्रेम

ओखान्सकी के सब पाइनियरों की ओर से
—पाइनियर कौंसिल के सदस्य

अल्लैक्सन नार्तसोव, ल्यूबा किस्लेवा, ज्यूरा गुब्किन, शूरा पेतुखोव, क्लारा उगोल्नीकोवा, लेना नोवोसेलेवा, नाद्या क्रासिल्नीकोवा, गाल्या मुस्तफीना"

पाइनियरों द्वारा भेजे हुए लाल तिकोने रूमाल उन लोगों की ओर से सोवियत साथियों ने हमारे गले में बाँध दिये।

इस प्रीतिभोज में सचमुच ही ऐसा मालूम हो रहा था कि पुराने मित्रों से विदाई ले रहे हैं। शैम्पेन के गिलासों से सोवियत के साथियों ने भारत के लिये, भारतीयों ने सोवियत राष्ट्रसंघ के लिये और दोनों ने विश्वशान्ति के लिये शुभकामनायें कीं।

वातावरण में काफी भावुकता आ गई थी। भारतीय प्रतिनिधियों ने विश्वास दिलाया कि वे अपनी आँखों देखकर सोवियत से यह धारणा लेकर जा रहे हैं कि यह देश नाश नहीं बल्कि निर्माण के मार्ग पर चल रहा है और उसका व्यवहार विश्वशांति के लिये सहायक होगा। शांति प्रिय भारतीय जनता विश्वशांति के प्रयत्न में सोवियत जनता को अपने पूर्ण सहयोग का विश्वास दिलाना चाहती है। उस समय अजरबैजानी गायक रशीद बेईवुतोव ने सहसा हिन्दी में एक गीत छेड़ दिया। उसका उच्चारण और गीत की हूबहू तर्ज सुनकर हम लोग विस्मित हो ही रहे थे कि रशीद एक बंगाली गीत गाने लगा और बंगला गीत समाप्त कर एक पंजाबी गीत। रशीद एक सोवियत प्रतिनिधि मण्डल के साथ कुछ दिन के लिये भारत आया था। उसी समय उसने इन गीतों की धुनें सीखकर इन्हें लिख लिया था। यह विश्वास कर लेना कठिन है कि रशीद इतने थोड़े समय में इन तीनों भाषाओं को सीख गया होगा परन्तु उसके गाने के ढंग से जान पड़ता था कि वह उन गीतों के भाव समझता है। इन गीतों से हम लोगों को उत्साहित होते देख रशीद ने अपने नोटबुक में से एक और पृष्ठ खोला और पियानों पर गाने लगा—"सारे जहाँ से अच्छा हिन्दोस्तां हमारा"। 'हिन्दोस्तान' के प्रति आदर प्रकट करने के लिये सभी सोवियत साथी खड़े हो गए। सोवियत साथियों ने इसी गीत के साथ भारतीय अतिथियों को आलिंगन में ले बिदाई दी!

सुबह छः बजे विमान में बैठ पिछली रात जागते रहने के कारण ऊंघते हुए हम लोग तीन बजे फिर 'लोहे की दीवार के इस ओर' वियाना पहुँच गये। वियाना भी बर्फ से ढका हुआ था परन्तु धूप खिलखिला रही थी।

लोहे की दीवार के इस ओर

वियाना से लन्दन

ज्यूरिच से वियाना जाते समय यात्रा का अधिकांश भाग रात के अंधेरे में ही बीता था। वियाना से ज्यूरिच की राह लन्दन के लिये इंटरनेशनल एक्सप्रेस ठीक सुबह छः बजे चलती है। दिन भर की दौड़ में आस्ट्रिया और स्विटजरलैंड की भूमि की झांकी पाने का अवसर था। रेल लाइन के दोनों ओर जहाँ तक भी दृष्टि जाती बरफ से ढंके मकान, गाँव और खेत दिखाई देते। गाड़ी बिजली से खूब तेज चल रही थी। यहाँ सोवियत की तरह क्षितिज तक चले जाने वाले खेत नहीं थे परन्तु अपने यहाँ की तरह बहुत छोटे-छोटे और टेढ़े-मेढ़े खेत भी न थे। आस्ट्रिया या मध्य योरुप के औद्योगिक विकास से जैसे उद्योग-धन्धे झोपड़ी में बैठकर बुनाई करने वाले जुलाहे और चर्खा बनाने वाले बढ़ई के हाथ नहीं रहे वैसे ही खेती भी गरीब किसान के बस की बात नहीं रही। गरीब किसान की भूमि अच्छे बड़े किसानों के पेट में समाकर गरीब किसान मजदूर बन जाने के लिये नगरों में सिमट गये और किसानी उन्हीं के बस की बात रह गई जो आर्थिक स्थिति से पोढ़े थे। किसानों के मकान या फार्म-हाउस अपने यहाँ के छोटे-मोटे जमींदार की स्थिति के ही हैं। सलीका और सफाई गाँवों में भी कम नहीं। जंगल जैसी कोई भूमि या भाग कम ही दिखाई देता है। कहीं यत्न से बचाकर रखे हुए जंगल जंगल नहीं, उपवन ही जान पड़ते हैं। हमारे मास्को से लौटने के समय तक यहाँ सभी जगह बर्फ गहरी और खूब सफेद हो चुकी थी। जान पड़ता था कि श्वेत स्फटिक के धरातल पर काले रङ्ग की पच्चीकारी के विराट विस्तार से गुजर रहे हैं।

वियाना से श्री पटेल, बिनुभाई शाह और मैं एक साथ चले थे। वे दोनों तम्बाकू न पीने वाले डिब्बे में बैठे और मैं इच्छा होने पर तम्बाकू पी सकने की स्वतंत्रता बनाये रखने के लिये तम्बाकू पी सकने वाले डिब्बे में। गाड़ी कई-कई स्टेशन लांघकर मुश्किल से ही तीन-चार मिनट के लिये ठहरती थी। यात्री भी केवल इस गाड़ी में लम्बे सफर वाले ही आ सकते थे। मेरे साथ शुरू से केवल एक डच नवयुवक बैठा था। मेस्ट अंग्रेजी मजे में बोलता था। हम लोगों का साथ कितनी देर तक रहेगा ? इस प्रश्न पर परिचय हुआ और थोड़ी बहुत बात चलती रही। मेस्ट खूब प्रसिद्ध फिलिप कम्पनी के रासायनिक विभाग में काम करते हैं और आस्ट्रिया में कच्चा माल खरीदने के लिये नियत हैं। वह पन्द्रह दिन की छुट्टी का आनन्द लेने साल्सबर्ग जा रहा था। फिलिप कम्पनी रेडियो और बिजली का सामान बनाने-बेचने के अतिरिक्त वेजीटेबल घी और कई तरह के साबुन वगैरा के धन्धे भी चलाती है। मैंने मेस्ट से यह जानना चाहा कि हालैण्ट में वेजीटेबल घी केवल भारत

के लिये ही बनाया जाता है या योरुप में भी उसका व्यवहार होता है। मालूम हुआ कि योरुप में भी इसका खूब व्यवहार होता है। कुछ लोग वेजीटेबल मार्गरीन का व्यवहार सस्ते होने के कारण करते हैं और कुछ लोग मांस या पशु शरीर से बने पदार्थों से परहेज करने के कारण ही गाय का मक्खन या घी नहीं खाते। वे लोग भी वनस्पति मक्खन का ही व्यवहार करते हैं। मेस्ट का विचार था कि भारत में वेजीटेबल घी इसलिये खाया जाता है कि हिन्दू गो मांस या गाय के शरीर से उत्पन्न पदार्थ नहीं खाते। उनके लिये यह समझ लेना सरल नहीं था कि गाय के मांस से तो परहेज हो और गाय के अंश दूध से परहेज न हो। मैंने उन्हें समझाया कि हिन्दू गाय का मांम अपवित्र और दूध पवित्र समझते हैं। उन्होंने ऐसे तर्क का आधार जानना चाहा। समझाया यह बात तर्क की नहीं विश्वास की है।

रासायनिक के तौर पर मेस्ट का विचार था कि वनस्पति से बनाये मक्खन या घी में गाय के दूध से बनाये गये मक्खन या घी से कोई न्यूनता नहीं होनी चाहिये क्योंकि गाय के शरीर की मशीन भी तो वनस्पति से ही दूध बनाती है। डच सरकार वनस्पति से बनाये गये मक्खन या घी की रासायनिक जाँच करके यह देखती रहती है कि वह मनुष्य के स्वास्थ्य के लिये उपयोगी है या नहीं। हालैण्ड में वनस्पति मक्खन को गाय के मक्खन में मिला देने की कोई सम्भावना नहीं बल्कि आशंका इस बात की हो सकती है कि वनस्पति मक्खन में पशु शरीर के अंश न मिल जायं। इस खबरदारी के लिये तरीका यह है कि मशीनें एक सप्ताह वनस्पति से मक्खन बनाती हैं दूसरे सप्ताह वही मशीनें पशु शरीर के अंशों से मक्खन या मार्गरीन बनाती हैं। फिर वनस्पति से मक्खन या मार्गरीन बनाना आरम्भ करने से पहले मशीनों को बिलकुल साफ कर दिया जाता है। पशु शरीर के अंश से बनायी जाने वाली मार्गरीन में यदि वनस्पति का अंश आ जाये तो कोई बात नहीं परन्तु वनस्पति से बनाई जाने वाली मार्गरीन में पशु का अंश नहीं आना चाहिये। उन्होंने बताया कि हालैण्ड, जर्मनी और मध्य योरुप में भी ऐसे बहुत से लोग हैं जो सैद्धान्तिक रूप से पशु शरीर के भोजन से परहेज करते हैं और दूध का भी व्यवहार उचित नहीं समझते।

वियाना की शान्ति कांग्रेस की बात चलने पर मेस्ट ने बताया कि उस समय वह हैम्बर्ग में था। मेरे यह बताने पर कि कांग्रेस में अढ़ाई हजार प्रतिनिधि आये थे, उसे विस्मय और उत्साह हुआ। मेस्ट ने हैम्बर्ग (पश्चिम जर्मनी) के पत्रों में पढ़ा था कि कांग्रेस प्रायः हो ही नहीं पाई। कुछ कम्युनिस्टों ने व्याख्यान दिये और हाल में सब कुर्सियाँ खाली पड़ी थीं। योरुप में प्रेस की स्वतन्त्रता का यह अच्छा उदाहरण मिला। मेस्ट ने कहा—'पर शान्ति का विरोध कोई भी समझदार आदमी खासकर जिसने युद्ध की अवस्था और परिणाम देखा हो, कैसे कर सकता है? हमारा देश तो छोटा सा है। हमें युद्ध से मतलब नहीं पर बड़े-बड़े देश लड़ते हैं तो जबरन हमें बीच में घसीट लिया जाता है। पिछले युद्ध में भी ऐसा ही हुआ। जर्मनी ने इंगलैण्ड से आक्रमण की राह रोकने और नार्वे पर आक्रमण करने के लिये पहले हम पर पंजा जमाना आवश्यक समझा। पिछले

युद्ध की बात बताते समय मेस्ट ने एमस्टर्डम की घटना बतायी कि युद्ध के समय हवाई बमों से इतने लोग जख्मी नहीं हुए जितने कि शान्ति स्थापित होने के दिन। बात यह थी कि जब जर्मन सेनायें रूस में व्यस्त हो गईं और हालैण्ड में मित्र राष्ट्रों से सहायता पाकर जर्मनी के विरुद्ध सिर उ॰॰ाया तो नाजियों ने एमस्टर्डम छोड़ देने की घोषणा कर दी। उस रात एमस्टर्डम में सब लोग श॰ान्ति और स्वतन्त्रता का उत्सव मनाने के लिये बाजारों में निकल आये। दिवाली मनाई जा रही थी। ठीक इसी अवसर पर नाजियों ने आकर खूब भारी बम वर्षा कर डाली। इस कांड में मेस्ट के दो भाई मारे गये। स्वयं उनकी टांग बहुत जख्मी हो गई। कई मास हस्पताल में बीते। अब भी डच लोग अपने देश में बड़ी सेना रखना या शस्त्रीकरण व्यर्थ अपव्यय ही समझते हैं। डच सरकार युद्ध के लिये तैयार रहने का व्यय बन्द कर देना चाहती थी परन्तु उनके ऐसा करने पर अमरीका ने आर्थिक सहायता रोक लेने की धमकी दे दी। अमरीका तो ऐसी शान्ति चाहता है जिसमें सब लोग अमरीका के आर्थिक साम्राज्य का अंग बन जायें।'

मेस्ट ने मेरे कैमरे की ओर संकेत कर पूछा—'यह जर्मन कैमरा है? अब हालैण्ड में भी बहुत अच्छे कैमरे बन रहे हैं।' यह बताने पर कि कैमरा रूसी है, मास्को से लिया है उसने कौतूहल से कैमरे को खोलकर देखा और अनुमान प्रकट किया—'कैमरा तो बिलकुल लाइका जैसा है, शायद रूसी पूर्वी-जर्मनी से ऐसे कैमरे बनवाकर अपनी मोहर लगा लेते हों?'

कुछ हँसी आई और मैने पूछा—'ऐसा सन्देह क्यों किया जाये?' रूस में इतनी अच्छी औद्योगिक योग्यता है ऐसा मेस्ट ने कभी सुना नहीं था। यही सुना था कि रूसी केवल युद्ध का फौजी सामान ही बनाते हैं और सारे योरुप पर छा जाने के लिये युद्ध की बड़ी भारी तैयारी कर रहे हैं। मैंने मास्को के मोटर कारखाने, स्तालिनग्राद की ट्रैक्टर फैक्टरी और वोलगा-डान नहर की चर्चा पर पूछा—'पिछले युद्ध में रूस को अपना यत्न से बनाया द नीपर बाँध तोड़ देना पड़ा था। इस बार उन्हें वोलगा-डान नहर नष्ट करनी पड़े तो कैसा हो? क्या रूस का साहस है कि स्वयं युद्ध छेड सके? पश्चिम जर्मनी, इटली या यूगोस्लाविया से हजारों बममार रूस पर आक्रमण कर सकते हैं। वह पूरे महादेश जितने अपने देश में कहाँ-कहाँ मोर्चा बन्दी करेगा? रूस तो अपना भविष्य युद्ध टाल सकने में ही समझता है।' मेस्ट कुछ देर चुप रहकर बोला—'पर अमरीका को यह अहंकार है कि उनके देश पर आक्रामण होने का कोई सरल उपाय नहीं। प्रशान्त महासागर की ओर से जापान ने पर्लहारबर पर बम जरूर फेंक दिये थे सो अब उन्होंने सारा प्रशान्त सागर घेर लिया है।'

एक स्टेशन पर गाड़ी रुकी और भड़कीला लाल ॰ंग का स्कर्ट पहने वैसी ही लिपस्टिक लगाये एक गदबदी सी चंचल नेत्र नवयुवती ने गाड़ी में प्रवेश किया। युवती के गुडमार्निङ्ग के उत्तर में मेस्ट ने पूछा—'बर्फ के खेल के लिये जा रही हो क्या?'

'खेलने के लिये तो नहीं। हाँ, जरा देखने और बहलाव के लिये'—युवती ने उत्तर दिया और साल्सबर्ग से कुछ दूर अपनी मंजिल का नाम बताया। युवती के उच्चारण से

ही स्पष्ट था कि अमरीकन है। मेस्ट उस स्थान से परिचित था बोला—'लेकिन वहाँ रेल नहीं जाती। टैक्सी तो बहुत महंगी पड़ेगी। सुना है, वैसे भी जगह महंगी है।'

'हाँ'—युवती ने माना—'पर हम लोगों के लिये तो फौजी जीपें रहती हैं। वहाँ ठहरने का किराया भी नाम मात्र तीन-चार शिलिंग (बारह आने के लगभग) होता है। अमरीकन काबिज-फौज ने अपने आदमियों के लिये प्रबन्ध किया हुआ है। मैं तीन साल से यहाँ हूँ। हर साल जाती हूँ।

'बड़ी खुश किस्मत हो!'—मेस्ट ने स्पर्धा प्रकट की और पूछा—'इस भाग में तो फ्रांस का अधिकार है न?'

युवती ने बताया—'इस स्टेशन से आगे फ्रांस का है और इससे पहले अमरीका था।' हम रूसी भाग से निकल आये थे। युवती ने होंठ सिकोड़ कर कहा—'फ्रेंच यहाँ रहना नहीं चाहते। ब्रिटिश और अमरीकन भी चले जाना चाहते हैं परन्तु रूसी जाने के लिये तैयार नहीं!'

'हूँ, यह बात है?'—मेस्ट ने हुँकारा भरा। अब मुझसे परिचय हुआ। युवती ने मुझे मिस्त्री समझा था। उनका भ्रम दूर किया। यह मालूम होने पर कि मै वियाना से आ रहा हूँ युवती ने प्रश्न किया—'वियाना के रूसी भाग में भी लोगों की दयनीय अवस्था देखी होगी?'

'हाँ, रूसी भाग में अमरीकन और ब्रिटिश भाग की अपेक्षा लोगों की अवस्था बहुत अधिक अच्छी तो नहीं पर कुछ रूसी दुकानों पर आवश्यक सामान बहुत सस्ता मिल सकता है। अलबत्ता मास्को में अवस्था जरूर बहुत अच्छी है।'

युवती की भंवें चढ़ गई—'मास्को?'

'हाँ, मैं वहाँ से ही आ रहा हूँ'—युवती विस्मय से देख रही थी कि कोई आदमी मास्को से जिन्दा कैसे लौट आ सकता है? एक गहरी सांस ले उसने पूछा—'आखिर मास्को तुम जा कैसे पाये?' बताया—'मै अकेला नहीं, हम बीस आदमी गये थे और सभी लौट आये है।' फिर उन्होंने कोई बात नहीं की। बहुत से सिगरेट निकालकर पूछा—'अमरीकन सिगरेट हैं, पियोगे?' मैंने अपनी जेब से पैकेट निकालकर उत्तर दिया—'मैंने अमरीकन सिगरेट बहुत पिये हैं। आपने रूसी सिगरेट शायद ही पिया हो? देखियेगा?'

'नहीं, कभी नहीं देखा। देखूं?⋯⋯गला तो नहीं पकड़ता?'—युवती ने रूसी सिगरेट और मैंने अमरीकन सिगरेट सुलगा लिया। कुछ कश खींच उन्होंने कहा—'बुरा तो नहीं पर मुझे इसकी आदत नहीं है।' साल्सबर्ग के बारे में बात चलती रही। अब रेल लाइन के दोनों ओर पहाड़ दिखाई दे रहे थे। धूप भी निकल आई थी। प्रायः एक बजे वे लोग साल्सबर्ग में उत्तर गये। बीच में शाह साहब दो-तीन बार केवल जांघिया पहने, एक खाली बोतल लिये व्याकुल से भटकते दिखाई दिये। वे प्यास मिटाने के लिये सादा पानी ढूंढ़ रहे थे। स्टेशन पर भूख मिटाने के लिये फल और बिस्कुट तो मिलते थे पर पानी दिखाई न देता था। उन्हें सलाह दी—'रेस्टोरांकार में शायद पानी हो!'

'वहाँ भी पूछा। कहता है, काफी और बियर है। पानी कहाँ? सादा पानी तो जम जाता है।'—पर कुछ देर बाद रेस्टोरांकार वाले ने सादे जल के प्रति शाहजी की निष्ठा से प्रभावित हो उन्हें दो-तीन बोतल सादा जल दे ही दिया। उसने अपना भी कल्याण हुआ। यह बात नहीं कि योरुप में लोग सादा जल पीते ही न हों। हाँ, होटलों और भोजनालयों में प्रायः सादा जल नहीं मिलता। कारण स्पष्ट है कि उसके दाम नहीं लगते। जहाँ लाभ ही लक्ष्य हो ऐसी चीज क्यों रखें जिससे कुछ लाभ नहीं।

योरुप में स्टेशनों पर भीड़ नहीं दिखाई देती। गाड़ियाँ भी जल्दी-जल्दी गुजरती रहती हैं। लोग स्टेशनों पर बैठकर या मुसाफिर खाने में बिस्तर लगाकर घण्टों गाड़ी की प्रतीक्षा नहीं करते। गाड़ी के समय पर ही आते हैं। मुसाफिर बिस्तर लादकर नहीं चलते, एकाध बैग या सूटकेस ही रहता है। कुलियों की भीड़ नहीं होती न खोमचे वालों की पुकारों की बहार होती है। स्टेशन पर साधारणतः एक ही दुकान रहती है जहाँ कोई प्रौढ़ा फल, बिस्कुट, चाकलेट और कागज के गिलासों में काफी या बियर की बोतलें बेचती हैं। स्टेशन जरा बड़ा हुआ तो एक दो रेढ़ियाँ और हो गई। रेढ़ी वाले भी चीख-पुकार नहीं करते। खिड़की के पास आ धीमे से कह देते हैं—'खाने पीने की चीज।'

साल्सबर्ग से लौटते कुछ लोग भीतर आये। दो नौजवान स्कीइंग का सामान लिये और एक प्रौढ़ महिला काला कार्डीगन और पतलून पहने थीं। प्रौढ़ा के चेहरे पर झुर्रियों का यह हाल था जैसे गीली धरती पर कौओं के झुण्ड के झुण्ड पंजों के निशान छोड़ गये हों। गहरी लिपस्टिक जमी हुई। कानों, गले, कलाइयों और उंगलियों पर खूब जेवर। बूटों से अनुमान होता था कि यह भी स्कीइंग करके आई हैं। उनकी आयु के विचार से विस्मय हो रहा था। वे कुछ देर सामने चुप बैठी अखबार पढ़ती रहीं। मैं बाहर का दृश्य देखता जा रहा था। ग्लेशियरों के दायें-बायें से निकलते जा रहे थे। मंजी हुई चांदी के समान उजले प्रकाण्ड हिम शैल के बीच-बीच में हिम को फाड़कर निकली या ढकने से शेष रह गई विशाल काली चट्टानें। कहीं जमी हुई छोटी-छोटी झीलें चाँदी के आंगनों जैसी। कहीं कल कल करती छोटी-छोटी नदियाँ भागती हुई जैसे बच्चे विनोद मे किलकारी भरते हुए माँ की गोद से भाग रहे हो। प्रौढ़ा जरा खिड़की खोलना चाहती थीं। स्वयं खोल नहीं पाईं। मैंने अंग्रेजी में सान्त्वना दी—'मैं खोले देता हूँ' और उन्होंने अंग्रेजी में ही धन्यवाद दिया। बातचीत चल पड़ी। वे लन्दन की रहने वाली थीं और बर्फ के खेलों के लिये आई थीं।

यह मालूम होने पर कि मैं मास्को से आया हूँ, वे अनेक प्रश्न पूछती रहीं विशेषकर थियेटर, बैले और ओपेरा के विषय में। वहाँ की रंगशालाओं और रंगमंच का वर्णन सुन उन्हें विस्मय हो रहा था और उन्होंने मत प्रकट किया आखिर वे सरकार द्वारा बनाई गई रंगशालायें हैं। हमारे यहाँ तो वह जनता की निजी चीजें हैं। हमारी चीजें सौ बरस पुरानी हैं, वे आज बना रहे हैं। आज तो बड़ी से बड़ी चीज बन सकती है। मास्को थियेटरों में भीड़ की बात सुनकर उन्होंने कहा—"लंदन में तो थियेटर देख लेना हर एक के बस की बात ही नहीं। ऊँचे दर्जे के टिकट भी कभी-कभी महीना भर पहले बुक कराने से ही मिल

सकते हैं।" वे इंगलैण्ड में राशन की कठिनाई और बाहर जाने पर पच्चीस पौंड से अधिक रुपया न ले जा सकने के प्रतिबन्ध की बातें सुनाती रहीं।

दोनों नवयुवक रात नौ बजे गाड़ी से उतर गये। हम दोनों ही कम्पार्टमेंट में थे। "अब कोई मुसाफिर न आये तो अच्छा है"—वृद्धा मुस्कराकर बोलीं। "ऐसा हो जाय तो फिर कहना ही क्या?" मैंने अनुमोदन किया। सफर तो हम लोग सैकंड-क्लास की ही गाड़ी में कर रहे थे परन्तु सोने के लिये जगह रिजर्व नहीं कराई थी। उसके लिये पांच पौंड (७०) और देने पड़ते थे। वियाना से लन्दन के पन्द्रह पौंड (२०२) देकर ही संतोष कर लिया था। कम्पार्टमेंट का दरवाजा उढ़का दिया पर भीतर से चिटखनी नहीं लगा सकते थे। दरवाजे के कांच पर पर्दा खींच दिया और बत्ती बुझा दी। नये मुसाफिरों से सोते हुओं को न जगाने की सज्जनता का भरोसा कर अपनी-अपनी सीटों पर सीधे हो गये। रात में कई बार गाड़ी खड़ी हुई। लोगों के गैलरी से गुजरने की खटपट भी सुनाई दी पर किसी ने विघ्न नहीं डाला। बस एक बार फ्रांस की सीमा आने पर पासपोर्ट देखने वाले आये और वीसा देख हमारी निद्रा में विघ्न डालने के लिये क्षमा माँग चले गये।

नींद खुली तो वृद्धा को भी उठकर जूते पहनते देखा। शुभ प्रभात की कामना कर मैंने कहा—"रात में तो किस्मत साथ दे गई। अब इस समय यदि गरम चाय की प्याली और मिल जाय तो चमत्कार हो।"

"क्या सुबह ही चाय की आदत हैं?"—उन्होंने पूछा और आश्वासन दिया—"एक मिनट ठहरो।" उन्होंने अपने बेग में से थर्मस निकाली और चाय भी मिल गई। सात बज चुके थे। सूर्योदय का समय था परन्तु बाहर गहरा कोहरा छाया था और बादल भी थे। आस्ट्रिया और स्विटजरलैण्ड की सी गहरी बरफ अब न थी। बस मामूली सी बरफ जहाँ तहाँ। 'कैले' (फ्रांस का बन्दरगाह) डेढ़ सौ मील और रहा होगा। धरातल प्रायः समतल ही था। कहीं गाँवों के पड़ोस में फूस, कपड़े या कागज की छांव खड़ी कर तरकारी या फूल पैदा कर लेने का यत्न दिखाई दे रहा था। कई जगह युद्ध के ध्वंस अभी वर्तमान थे। मन में आ रहा था कि यह विक्टर ह्यूगो, मोपासां, बेलजाक और अनातोल-फ्रांस की रंगीली, कला और कल्पनामयी भूमि है। इसे भी जानने का अवसर है। कुछ दिन यहाँ भी ठहरा जा सकता है परन्तु भाषा की कठिनाई? और यह भी खयाल था कि वर्तमान संसार की दो प्रतिद्वन्द्वी विचारधाराओं के प्रतीक मास्को और लन्दन को देख पाना ही पर्याप्त है या तो पूरा जीवन लगाकर भी पूरे संसार को देख लेना सरल नहीं।

कैले से छोटे जहाज में इंगलिश चैनेल पार कर फोकस्टोन स्टेशन में फिर लन्दन के लिये गाड़ी लेनी थी। वियाना से खरीदे टिकट में यह सब किराया सम्मिलित था। जहाज पर आश्वासन की सांस ली कि अब ऐसे देश में आ गया हूँ जहाँ मेरी बात सब लोग समझ सकेंगे और मैं भी उच्चारण की दुविधा को छोड़ सबकी बात समझ सकूंगा। आस्ट्रिया, रूस, ज्योर्जिया और स्विटजरलैण्ड में भाषा का व्यवधान एक परवशता में डाल देता था। उस परवशता से मुक्ति बड़ी सान्त्वना दे रही थी। जहाज पर कई दिन बाद उसी

ढंग से चाय का एक प्याला पिया जैसा कि अपने घर या देश में पीने का अभ्यास था और बड़ा सुख मालूम हुआ। समुद्र शांत था। कुछ ही देर में इंगलैंड की भूमि के चाक के टीले और किनारे के मकान दिखाई देने लगे। यह छोटा सा द्वीप? इसने संसार के इतिहास में कितना बड़ा स्थान अपना लिया है!

फोकस्टोन में जहाज से उतर चुंगी पार हो गाड़ी में बैठने तक ब्रिटिश व्यवहार का नमूना मिल गया। कैले में गाड़ी से दो सूटकेस और एक बेग उठा चुंगी पार कर जहाज पर पहुँचा देने के लिये फ्रांसीसी कुली ने प्रत्येक अदद का एक शिलिंग (॥=) माँग लिया और एतराज करने पर कि यह तो ज्यादा है कोरा उत्तर था कि यहाँ यही रेट है। चुंगी में काफी देर लगने पर कुली से पूछा कि इतनी देर क्यों हो रही है? उसने आँख दबाकर सुझाव दिया उसे (चुंगी के आदमी को) कुछ दे दो! मैंने विरोध किया—"क्यों? मैं फ्रांस नहीं इंगलैण्ड जा रहा हूँ। फ्रांस से कुछ खरीदा नहीं वहाँ एक घंटे भी ठहरा नहीं। चुंगी किस बात की?" खैर जैसे-तैसे बिना दिये ही कुछ मिनट में निस्तार हो गया।

फोकस्टोन में मास्को से लिये कैमरे पर एतराज किया गया कि यह तो काफी कीमती चीज है। उत्तर दिया—"बेचने के लिये नहीं है और मुझे यहाँ रहना नहीं। केवल कुछ दिन में झांकी ले लेनी है।" चुंगी के आदमी को न केवल विश्वास हो गया बल्कि उसने कैमरा ले उसके खोल पर चिन्ह बनाकर कहा—"यह चिन्ह मिटे नहीं ताकि ट्रेन में कोई एतराज न करे।" कुली ने भी गाड़ी में असबाब रखकर साफ कह दिया कि आप जो भी दे दें, उचित है। रेट बहुत कम है। एक शिलिंग पाकर भी उसने मुस्कराकर—"थैंक यू वैरी मच सर" कहकर विदा ली।

फोकस्टोन से गाड़ी तेजी से लंदन की ओर जा रही थी। इंगलैंड में बरफ नहीं थी। सूर्य बादलों में से आँखमिचौनी खेल रहा था। गाँव और सड़कें साफ सुथरे। नाले और टीले सभी चीजों को संवारने का यत्न। लंच के समय मेज पर जिन प्रौढ़ सज्जन से सामना हुआ उन्होंने मौसम के बारे में बात कर अनुमान प्रकट किया कि मैं हिन्दुस्तानी हूँ और मैंने स्वीकार कर लिया। उन्होंने जिज्ञासा की—"अब भारत में कैसी स्थिति है?" जानना चाहा—"अब से आपका क्या अभिप्राय है?"—उन्होंने स्पष्ट किया कि उनका अभिप्राय भारत में स्वतंत्र शासन हो जाने यानि १९४७ के बाद से है।

उसने पूछा—"क्या आप कभी भारत हो आये हैं?" उन्होंने बताया वे तीन वर्ष भारत में थे। पिछले युद्ध के समय वे ब्रिटिश-भारतीय सेना में कमाण्डर-इन-चीफ के स्टाफ में रंगरूट भरती के इंचार्ज थे। भारत के प्रायः सभी भाग, जहाँ से रंगरूट भरती किये जाते थे, उनके देखे हुए थे। मन में खयाल आया, भारत में तो साहब फर्स्ट क्लास में ही चलते होंगे। शायद गाड़ी रिजर्व रहती हो। बात भी दूसरे लहजे में करते होंगे पर इस समय कोट काफी घिसा हुआ था और मेरे साथ सैकण्ड क्लास में ही सफर कर रहे थे। बाद में बहुत से ऐसे साहबों की बातें सुनीं जो भारत में गवर्नरी करने के बाद इंगलैण्ड में जूतों के कारखाने की मैनेजरी से ही गुजारा करते हैं। उन्हें उत्तर दिया—"देश के बँटवारे

से काफी गड़बड़ी हो गई थी परन्तु अब सभी तरह अवस्था पहले से अच्छी है।" साहब ने विस्मय प्रकट किया—"क्यों; अखबारों में तो अन्न समस्या काफी विकट होने के समाचार थे।"

"अन्न समस्या विकट हो गई थी, है भी जरूर परन्तु १९४७ के बाद तुरंत ही देश की भूमि सिमिट नहीं गई और न जनसंख्या ही एकदम बढ़ गई है। पहले देश में पैदा होने वाले अन्न के बँटवारे की जो व्यवस्था थी वह गड़बड़ हो गई है। भूमि और फसलों का फिर से समन्वय हो जायेगा तो अन्न संकट वैसा नहीं रह सकता। अन्न की पैदावार बढ़ाने के लिये नयी भूमि तोड़ी जा रही है और सिंचाई के लिये बड़ी-बड़ी योजनायें आरम्भ की गई हैं। पहले वे साधन बेकार पड़े थे।"

साहब ने कुछ सन्देह से हुँकारा भरा और पूछ बैठे—"काश्मीर की समस्या का क्या होगा?"—"काश्मीर की समस्या तो अब बनी ही रहेगी"—मैंने उत्तर दिया—"क्योंकि उसे हिन्द और पाकिस्तान ने स्वयं हल न कर यू० एन० ओ० के हवाले कर दिया है। अब यू० एन० ओ० हल करे तब हो?"

साहब ने सुझाव दिया—"क्या यह ठीक नहीं कि जम्मू और काश्मीर को बाँटकर जम्मू भारत को और काश्मीर पाकिस्तान को दे दिया जाये?"

"मुझे क्या अधिकार है कि मैं काश्मीर को दो टुकड़ों में बाँट दिये जाने की अनुमति दे दूँ?"—मैंने पूछा—"जम्मू और काश्मीर को बाँट देने से केवल यह होगा कि लड़ाई का मोर्चा बदल कर काश्मीर और जम्मू के बीच कायम हो जायेगा। भारत और पाकिस्तान के बँटवारे से क्या समस्या हल हो गई?"

साहब ने आपत्ति की—"भारत और पाकिस्तान का बँटवारा तो मुस्लिम लीग और कांग्रेस की इच्छा से हुआ है।" "कांग्रेस की इच्छा से तो नहीं कहा जा सकता"—मैंने कहा—"कांग्रेस तो बँटवारे के विरुद्ध थी परन्तु परिस्थितियाँ ऐसी बना दी गईं कि कांग्रेस के लिये अनिच्छा से भी बँटवारा स्वीकार करना अनिवार्य हो गया। देश के मुसलमान भी उस समय कल्पना नहीं कर सकते थे कि बँटवारे का अर्थ क्या होगा? बँटवारे का प्रश्न भारतीयों पर छोड़ दिया जाना चाहिये था। ऐसे ही काश्मीर का फैसला काश्मीरियों पर छोड़ देना ही न्याय है। काश्मीर का फैसला करने का अधिकार तो स्वयं काश्मीर के ही लोगों को है।"

"लेकिन क्या कांग्रेस और लीग आपस में फैसला कर सकती थीं? ऐसे ही काश्मीरी स्वयं अपनी समस्या का फैसला कर सकेंगे?"—साहब ने आग्रह किया। मैंने पूछा—"ब्रिटेन और अमरीका यह क्यों समझे बैठे हैं कि दूसरे राष्ट्रों की समस्याओं की जिम्मेवारी उन पर है। पाँच साल पहले ब्रिटेन का खयाल था कि भारतवासी अपना शासन स्वयं करने के योग्य नहीं हैं। अमरीका अभी तक चीन की समस्या सुलझाने की जिम्मेवारी छोड़ना नहीं चाहता।"

"नहीं यह बात नहीं है। अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति विरोधी प्रवृत्तियों के विरुद्ध सतर्क रहना सभी राष्ट्रों का कर्त्तव्य है।"—वे बोले! मैंने भी आग्रह किया—"दूसरे राष्ट्रों के मामले में दखल देना ही अशान्ति की जड़ है। कल्पना कीजिये कि रूस घोषणा कर दे कि चांग-काई-शेक के चीन पर आक्रमण करने से अशान्ति की आशंका है इसलिये फार्मोसा पर धावा बोला?" हम लोगों की बात आगे न चल सकी। हम लोग लंदन के समीप पहुँच रहे थे। मैं कुछ ऊँचाई पर चलती गाड़ी से नगर को देखने लगा।

चौबेजी मुझे वियाना में छोड़ दो-तीन दिन पहले ही विमान से लंदन आ गये थे। विक्टोरिया स्टेशन पर वे ओवरकोट लादे दिखाई दिये। चौबेजी को लंदन आते ही रंगभेद का कुछ अनुभव हो गया था। उन्होंने कहा—"किसी होटल में ठहरना हो तो पहले यह तय कर लेना उचित है कि भारतीय के लिये जगह चाहिये? या मैं जहाँ ठहरा हूँ वहीं चलो।" वे एक लैंडलेडी के यहाँ ठहरे थे, वहीं जाने का निश्चय किया। इसके बाद जितने भी भारतीयों से मिलना हुआ, यहाँ तक कि जो ब्रिटिश स्त्रियों से विवाह किये हैं सभी ने रंगभेद की शिकायत की। पहले से अंतर जरूर पड़ा है पर रंगभेद समाप्त नहीं हो गया।

हम लोग क्रामवेल रोड पर ठहरे थे। क्रामवेल रोड सफेदपोश लोगों की जगह है। उसी हिसाब से किराया भी दस रुपये रोज। केवल कमरे और सुबह एक बार नाश्ते का दाम। कमरे के किराये में बिस्तर भी शामिल रहता है। महंगा तो मालूम हुआ पर एक बार टिकने की जगह तो चाहिये थी। अपना सामान रख पहले एक मित्र का ही पता लेने चले। चौबेजी दो-तीन दिन में लंदन का तरीका कुछ समझ चुके थे। उन्होंने बताया—"यहाँ टैक्सी किराये करना एकदम सिर मुड़ाना होगा। बस सस्ती है पर किस नम्बर की बस से कहाँ तक जाकर उतरा जाय, यह सब सीखने में कुछ समय लगेगा। सबसे सस्ती और कभी चक्कर में न डालने वाली सवारी है 'ट्यूब' (सुरंगरेल)।

लंदन की ट्यूब

मास्को में "मैट्रो" देखी थी और लंदन में ट्यूब भी देखी। दोनों को ही अपनी इन लाइनों पर गर्व है। वास्तव में मास्को की मैट्रो और लंदन की ट्यूब दो भिन्न संस्कृतियों की प्रतीक हैं। इसमे सन्देह नहीं कि किसी भी बड़े औद्योगिक नगर में यातायात की प्रधान धमनी ट्यूब ही होती है। यातायात का जितना प्रवाह, जितने कम समय में, नगर के बाजारों और गलियों में विघ्न डाले बिना ट्यूब से नगर के भिन्न-भिन्न भागों को चला जाता है, किसी दूसरे साधन से सम्भव नहीं जान पड़ता। मास्को मैट्रो के स्टेशन एक दूसरे से भिन्न रंगों और रूपरेखाओं में बने हैं। किसी स्टेशन पर सुन्दर मूर्तियाँ हैं, किसी स्टेशन पर भिन्न प्रकार के श्रमों के प्रतीक चित्र और किसी पर दूसरी ही कला के नमूने। उन स्टेशनों पर की गई सजावट का प्रयोजन शोभा ही है। मैट्रो को अंडर ग्राउंड रेलवे की बजाय अंडर ग्राउंड पैलेस (महल) कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी। प्रकाश भी सुन्दर झाड़-फानूसों द्वारा किया गया है।

लंदन की ट्यूब मैट्रो की अपेक्षा बहुत विस्तृत है। छोटे-बड़े स्टेशनों की संख्या सौ से भी अधिक होगी पर सभी स्टेशन एक ही ढंग के हैं। स्टेशनों की दीवारों का कभी ही कोई भाग खाली दिखाई देता है। सभी जगह चित्र और कुछ न कुछ लिखावट दिखाई पड़ती है पर क्या? विज्ञापन! और एक ही विज्ञापन सब स्टेशनों पर! विज्ञापनों का क्रम भी एक ही। ओवल्टीन पीकर सुखद नींद में सोई हुई दिखाई देने वाली वही रमणी सभी स्टेशनों पर। लाल पालिश लगे नोकीले नाखून, पारदर्शी मोजों में सुडौल जनानी पिंडलियां, स्तनों को नोकीले बना देने वाले पारदर्शी अंगिये, बगल को निर्गंध और चिकना बना देने वाले बालसफालोशन, बाल घने, घुंघराले और लम्बे करने वाले लोशन, जवानों को मोहक बना देने वाली नेकटाइयाँ, हवा की तरह हजामत कर देने वाले उस्तरों के ब्लेड, जाड़े बरसात से वचाने वाले ओवरकोट! स्वास्थ्य और सुरूर देने वाली शराबें! ताकत देने वाला ओक्सो, दुबला करने वाली वाइल्डबीन की गोलियाँ। एक ही काम की कई चीजों के विज्ञापन और सभी के लिये सर्वोत्तम होने की कसम! एस्केलेटर से नीचे उतरते और ऊपर चढ़ते समय दायें बायें, सामने की मेहराबों पर, गाड़ी के प्लेटफार्मों पर और स्वयं गाड़ियों में भी सभी जगह यही विज्ञापन! विज्ञापन! पिक्केडिल्ली ट्यूब स्टेशन के तहखाने में ही एक खूब बड़ा गोल बाजार सा बना है। गनीमत यह है कि यहाँ बिक्री नहीं होती। शीशे के पर्दों से बन्द दुकानों में केवल विज्ञापन होता है। यहाँ आप अर्धनग्न स्त्रियों के शरीरों पर सुन्दर वस्त्रों की बहार देखते हैं। विज्ञापन समझाना चाहता है कि ऐसे सुन्दर शरीर को ढकने के लिये उसी की दुकान का कपड़ा चाहिये। "व्यापार से मुनाफा कमाने की निर्बाध होड़ का कानूनी अधिकार!" इसी स्वतंत्रता के दलदल में लन्दन के सर्वसाधारण हाथ-पांव हिलाने का अवसर न रह जाने पर भी स्वतंत्र होने का विश्वास बनाए हैं। व्यक्ति सोचने या तर्क करने के लिये ठहरे बिना समाज की व्यवस्था की क्यू में मिल पाये स्थान पर खड़ा है। इस व्यवस्था में व्यक्तित्व के लिये चाहे लिहाज न हो पर औद्योगिक और यांत्रिक पूर्णता में कमी नहीं है।

लंदन की ट्यूब मास्को की मैट्रो की अपेक्षा कहीं अधिक फैली हुई है। समय की बहुत पाबन्दी है। एक के बाद दूसरी गाड़ी जल्दी-जल्दी आने-जाने में भी खूब चुस्त। गाड़ी का एक मिनट लेट होना भी लोगों को खल जाता है। लंदन की यह ट्यूब सर्वसाधारण के यातायात का साधन है परन्तु लंदन समाज के शासक व्यवसायी वर्ग के लिये उनके व्यवसायों के विज्ञापन का साधन है। वे स्वयं इससे सफर नहीं करते। यह श्रेणी सदा मोटरों में चलती है। लंदन की यह ट्यूब अभी कुछ ही समय पहले तक एक कम्पनी का मुनाफा कमाने का व्यवसाय था। दो-तीन बरस से ही उसे राष्ट्रीय कारोबार बना दिया गया है। पर क्यों? व्यक्तिगत सम्पत्ति और व्यावसायिक स्वतन्त्रता की नैतिकता को अपनी परम्परागत संस्कृति मानने वाले अंग्रेजों ने इस व्यवसाय का राष्ट्रीयकरण क्यों कर दिया? निश्चय ही उन्होंने रूस के अनुरोध से ऐसा नहीं किया। आत्मरक्षा के लिये ही ऐसा किया है। समाजवादी राष्ट्र यदि अपने घर में चुप बैठे रहें तो भी पूँजीवाद को समाजवादी ढंग अपनाने पड़ रहे हैं। यह क्या समाजवाद के प्रति नाराजगी का काफी कारण नहीं?

बाजार और रेस्तोरां

विदेश में सबसे अधिक परेशानी तब अनुभव होती है जब अनजानी जगह में पेट भर खाने-पीने के बाद अनुमान से कहीं बडा बिल आपके सामने रख दिया जाय। बिल चुकाने में परेशानी दिखाने पर विद्रूप का पात्र बनना पड़ता है और चुपचाप चुका देने की विवशता में शायद अपने पेट को ही धिक्कारना पड़े कि 'इतना खा गया'! जब भरोसा ही भोजनालयों का हो तो उनका कायदा और दाम समझ लेना उचित है। चौबेजी पहले आकर इतनी खोज खबर ले चुके थे। उन्होंने समझा कि अपने लिये 'ए० बी० सी०' रेस्तोरां या 'लायन्स कार्नर हाउस' से आगे बढ़ना ठीक नहीं। ए० बी० सी० और लायन्स संध्या आठ-साढ़े आठ बजे बन्द हो जाते हैं। कुछ रेस्तोरां इसके बाद भी खुले रहते हैं परन्तु वे महंगे होते हैं।

यदि दिल्ली-लखनऊ में अन्नपूर्णा रेस्तोरा देखे हों तो ए० बी० सी० और लायन्स का कायदा समझ में आ जाता है। अंतर यह है कि ए० बी० सी० और लायन्स अन्नपूर्णा से बहुत बड़े यानि चार-पाँच गुणा से लेकर दस-बारह गुणा और कुछ बीस गुणा बड़े भी हैं। ए० बी० सी० और लायन्स में भी फरक है। ए० बी० सी० निम्न-मध्यम श्रेणी के लिये हैं; लायन्स जरा सम्हले हुए लोगों के लिये। लायन्स में भी दो-चार दर्जे हैं। कहीं प्रतीक्षा के लिये लाइन में खड़ा रहना पड़ता है, कहीं प्रतीक्षा में बैठने के लिये कुर्सियाँ रहती हैं और नीचे दरियाँ भी बिछी रहती हैं। साधारणतः ग्राहक लाइन में खड़े हो हाल के भीतर बनी दुकान की ओर बढ़ते जाते हैं। पहले ट्रे या बड़ी थालियो का ढेर रहता है। एक ट्रे उठाकर लाइन में आगे बढ़िये। भोजन की चीजें सामने रहती हैं। दाम भी लिखे रहते हैं। मन चाही चीज उठा लीजिये। दुकान के अंत में बैठी बुढ़िया गिनकर दाम ले लेगी। आपकी मर्जी है चाहे एक टुकड़ा रोटी और एक प्याली चाय से ही संतोष कर लीजिये या पेट भरने योग्य लेकर। हाल में जहाँ मेज पर कोई कुर्सी खाली दिखाई दे, बैठकर खा लीजिये। लायन्स में कुछ जगह चाय कॉफी आपकी मेज पर पहुँचा दी जाती है और एक आदमी शराब के लिये भी पूछता रहता है। बिल भी वहीं लाया जाता है। इतने में ही दाम में कुछ फरक पड़ जाता है।

सस्ते रेस्तोरां में हरी सब्जियाँ, सलाद-टमाटर और ताजे मांस प्रायः नहीं दिखाई देते। लंदन में इन चीजों का अकाल सा है। अंडे, मांस और चाकलेट आदि का युद्ध के आठ वर्ष बाद भी राशन चल रहा था। अंडा एक व्यक्ति के लिये सप्ताह मे एक ही मिल सकता था और मांस एक व्यक्ति के लिये लगभग चार छटांक। लंदन में "ब्लैक" कम चलता है परन्तु चलता ही न हो, सो बात नहीं। ब्लैक कम चलने के कारण है, ब्लैक के विरुद्ध सर्वसाधारण का सरकार से सहयोग। हमारे देश में सरकार को धोखा देना बेईमानी नहीं समझी जाती। विदेशी सरकार हमारे देश की प्रजा में यह भावना छोड़ गई है और वर्तमान सरकार ने अभी तक जनता का भरोसा पा सकने लायक कोई काम किया नहीं। इंगलैण्ड में सरकार दूध, मक्खन आदि के व्यवसाय में सहायता (सबसीडी) देकर दाम

कम रखती है। परन्तु कुछ दिन से दाम शनैः-शनैः बढ़ रहे हैं। कारण यह है कि सरकार को युद्ध की तैयारियों के लिये इतना खर्च करना पड़ता है कि जन सहायता के लिये धन बच नहीं पाता। ब्रिटिश सरकार या तो जंगी जहाज और जंगी विमान बना ले या अपनी प्रजा को दूध ही पिला ले! सोवियत में दामों के घटने की बात सुनते थे यहाँ बढ़ने की। लंदन में मेरे रहते समय चाकलेट पर से राशन हट गया था और उसी समय चाकलेट के दाम बढ़ गये थे।

लंदन के ऐसे या दूसरी तरह के रेस्तोरां में खाने के लिये आने वाले लोगों की श्रेणी उनके रेस्तोरां के चुनाव और कपड़ों से तुरन्त पहचानी जा सकती है। मास्को जैसा हाल नहीं है कि सभी रेस्तोरां में सभी तरह के स्त्री-पुरुष ठेलमठेल करते चले आयें। मास्को में रेस्तोरां का वर्गीकरण उनमें मिलने वाली वस्तुओं और खर्च होने वाले दामों से तो हो सकता है परन्तु उनके ग्राहकों की श्रेणियाँ पृथक-पृथक नहीं हैं। बड़े से बड़े रेस्तोरां में भी मजदूर लोग निश्शंक खाते-पीते दिखाई दे सकते हैं लेकिन लंदन के ए० बी० सी० रेस्तोरां में भी मजदूर कभी कठिनाई से ही, रविवार के दिन, दिखाई देता है तब भी कुछ सकपकाया सा। लंदन और मास्को के रेस्तोरां में एक विशेष भेद यह है कि मास्को में लोग रेस्तोरां में आते हैं तो कुछ देर दिल बहलाकर खाते-पीते रहते हैं। चाय पीते-पीते भी देर तक गप्प चल सकती है। कई रेस्तोरां में ताश और शतरंज भी दिखाई देती है। लंदन के रेस्तोरां में लोग कुछ चुपचपीते से आते हैं और खाना-पीना निगल या सटक कर लौट जाने की जल्दी में रहते हैं। कहीं दो व्यक्ति बात भी करते हैं तो जैसे कोई सुन न ले। मास्को के लोगों की तरह बैठकर कहकहे नहीं लगाते। लंदन के लोगों पर एक आतंक सा जान पड़ता है। स्वतंत्र होते हुए भी विवशता का सा भाव ? समझा जाता है कि अंग्रेज की यह चुप्पी उसकी राष्ट्रीय पहचान है पर बात कुछ स्वाभाविक नहीं जान पड़ती। ए० बी० सी० में ढाई-तीन शिलिंग में पेट भर सकता है। लायन्स में साढ़े तीन-चार शिलिंग में। 'भले' आदमियों के लिये 'सर्विस रेस्तोरां' हैं जहाँ खाना मेजों पर परोसा जाता है। यहाँ दोपहर का खाना छः शिलिंग में पड़ता है और छः पेंस या एक शिलिंग परोसने वाले बैरे के लिये टिप (बख्शीश) के समझिये। ए० बी० सी० और लायन्स में जगह के लिये प्रायः ही लाइन लगानी पड़ती है। कभी-कभी जगह नहीं भी मिलती परन्तु सर्विस रेस्तोरां के समीप से जाते समय यदि खिड़की के कांच में से झांक कर देखिये तो कुर्सियाँ प्रायः खाली और काला सूट पहने और काली बो लगाये बैरे जम्हाई लेते हुए दिखाई देते हैं। इससे लंदन के सर्वसाधारण के खर्च कर सकने के सामर्थ्य का और उन्हें जीवन में मिलने वाले संतोष और स्वतन्त्रता का कुछ अनुमान हो सकता है।

लंदन के सामाजिक जीवन का बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान है। 'पब' अर्थात् पब्लिक बार या 'मधुशाला'। पब में अंग्रेज की चुप्पी टूट जाती है। मुहल्ले भर के लोग प्रायः पब में इकट्ठे होकर ही एक दूसरे का परिचय पा सकते हैं। पब में शराब चलती है। साधारणतः सात पेंस में बीयर का गिलास लेकर लोग गप्प लगाने बैठ जाते हैं। पब के भी दो भाग और दो दरवाजे होते हैं। एक दरवाजे पर 'बार' लिखा रहता है और दूसरे दरवाजे पर

'प्राइवेट बार'। दोनों जगह एक ही चीज बिकती है पर प्राइवेट बार में कुर्सियों का रोगन जरा अच्छा होता है और भीड़ कम होती है। यहाँ बियर के गिलास का दाम एक पेंस अधिक लगता है। यहाँ वे लोग बैठते हैं जो अपने आपको सम्भ्रान्त समझते हैं और जिनका कालर साफ होता है। लंदन में लोगों को सम्भ्रान्त माने जाने का शौक बहुत है परन्तु ऐसा सामर्थ्य सौ में से एक का भी नहीं जान पड़ता। इसका सीधा प्रमाण यह है कि लंदन में सम्भ्रान्त ढंग के रेस्तोरां की संख्या एक-दो प्रतिशत से अधिक नहीं और इनमें भी भीड़ दिखाई नहीं देती। सम्भ्रान्त श्रेणी का अंग्रेज चाहता भी यही है। सर्वसाधारण उसके समीप न फटक सकें। उन्हें दूर बनाये रखने के लिये काफी दाम देने के लिये तैयार रहता है। उदाहरणतः ऐसे क्लब जिनमें फीस देने वाले सदस्य ही जा सकते हैं। लंदन के क्लब सोवियत के क्लब की तरह नहीं है कि जो कोई चला जाय।

लंदन के बाजारों में रौनक मास्को से अधिक ही जान पड़ती है क्योंकि यहाँ के बाजार मास्को के मैदानों जैसे चौड़े बाजारों की तरह नहीं हैं। बाजार में दायें या बायें चलते दोनों ओर की दुकानों पर एक साथ नजर जा सकती है। साज-सजावट भी खूब है परन्तु मास्को की तरह सजावट के लिये ही बिजली का अपव्यय नहीं किया गया है। सिनेमा घरों को छोड़कर विज्ञापन को ही सजावट का रूप दिया गया है। मास्को में विज्ञापन कहीं-कहीं ही दिखाई देते हैं और वे भी केवल विज्ञापन के लिये ही नियत स्थानों पर। वहाँ विज्ञापन सिनेमा फिल्मों और नाटकों के होते हैं, कहीं-कहीं प्रसाधन की वस्तुओं उदाहरणतः 'यूद कोलोन' या किसी इत्र के या शराब के! मानो कोई नयी चीज तैयार होने की घोषणा हो। लंदन में सब जगह और सब चीजों के, मोटरकार से लेकर माचिस तक के विज्ञापन दिखाई देते हैं। मास्को की दुकानों की बड़ी-बड़ी खिड़कियों में तैयार पोशाकें पहने बच्चों और स्त्री-पुरुषों की मूर्तियाँ दिखाई देती हैं और यों भी कपड़ों और पोशाकों की प्रदर्शनी सी दिखाई देती है परन्तु लंदन में जिस आकर्षक ढंग से यह विज्ञापन किया जाता है, उसे मास्को नहीं पहुँचता। लंदन की दुकानों मे जैसे निरावरण युवतियां हाव-भाव से शरीर के बहाने पोशाक दिखाती हैं, वह कला मास्को में इतनी परिष्कृत नहीं है शायद इसलिये कि वहाँ पोशाकों की दुकानों में लंदन की तरह प्रतिद्वन्द्विता नहीं है।

लंदन की दुकानों में ग्राहक को मास्को, स्तालिनग्राद और बिलीसी की अपेक्षा अनुनय और आग्रह भी अधिक दिखाई देता है बल्कि एक बार दुकान में जाकर दाम पूछ लेने पर कुछ खरीदे बिना आ जाने के लिये कुछ दृढ़ता दरकार होती है। दुकानदार (सेल्समैन या सेल्सगर्ल) अपने सौदे की प्रशंसा और उसे खरीद लेने के लाभ इतने अधिक बखानेंगे कि ग्राहक परास्त हो जाय। आखिर यह भी तो एक कला है। कुछ दुकानों के दरवाजों में खड़े दुकानदार जरा भीतर आकर देख लेने का भी अनुरोध करते मिलेंगे। लंदन के ईस्टएंड मुहल्ले में तो ऐसा ही जान पड़ता है कि बम्बई में आ गए हों। सोवियत के बाजारों में ऐसा विनय कहीं नहीं दिखाई देता परन्तु अपने यहाँ के या खासकर अदन और पोर्ट सैय्यद के दुकानदारों की तरह लंदन के दुकानदार पीछे कभी नहीं पड़ेंगे। लंदन में बहुत

सी दुकानों पर अर्थात् बड़ी-बड़ी दुकानों को छोड़कर थोड़ा-बहुत मोल-भाव भी हो जाता है जो सोवियत में नहीं होता। कुछ एक दुकानों को छोड़कर सोवियत की दुकानों की तरह भीड़ भड़क्का नहीं दिखाई देता। साधारणत: यही जान पड़ता है कि दुकानों की संख्या आवश्यकता से अधिक है। प्राय: एक ही बड़ी दुकान की शाखायें जगह-जगह दिखाई देती हैं। छोटी-मोटी पूँजी से दुकान जमा लेने का अवसर नहीं जान पड़ता। कबाड़ी या जूता मरम्मत की दुकान और ठेले पर फेरी लगा लेने की बात दूसरी है। कुछ सुविधायें लंदन में ऐसी हैं जो सोवियत बाजारों में नहीं दिखाई दीं उदाहरणत: धोबी कम्पनी की लारी का गली में आ खड़ा हो जाना और आपके कपड़े चटपट धोकर वहीं थमा देना। बाद में कपड़े सुखा इस्त्री आप स्वयं कर सकते हैं। गुसलखाने की लारी गली में आ खड़ी हो जाय तो आप दाम देकर उसमें स्नान भी कर ले सकते हैं क्योंकि ऐसे मकान लंदन में बहुत कम हैं जिनमे स्नान की जगह हो।

सेंटपाल कैथेड्रल और पुनर्निर्माण

लंदन के लोग सोवियत में धर्म सम्बन्धी स्वतंत्रता के विषय में बहुत प्रश्न करते हैं। स्वभावत: धारणा होती है कि यहाँ लोग बहुत ही धर्म परायण हैं। ग्रेट ब्रिटेन में धार्मिक स्वतंत्रता है परन्तु राज धर्म ईसाईयत है। शेष धर्मों को कानूनी समान अधिकार होने पर भी वैसा अवसर तो नहीं हो सकता जैसा ईसाईयत का है। प्रमाण के लिये लंदन के एक मंदिर और मसजिद को गिरजाघरों की तुलना में देख लीजिये। ससार के सबसे बड़े साम्राज्य के धर्म की प्रतिष्ठा के उपयुक्त ही यहाँ के प्रधान धर्म स्थान सेंटपाल कैथेड्रल और वेस्ट मिस्टर एबे भी गगनचुम्बी शिखर उठाये खड़े इस देश की धर्म के प्रति आस्था की घोषणा कर रहे हैं।

एक रविवार सुबह नौ बजे ही चौबेजी के साथ सेंटपाल कैथेड्रल देखने गये। हिटलर ने स्वयं ईसाई होकर भी महमूद गजनवी की नीति के अनुसार सेंटपाल पर गोले बरसाकर इसे ध्वंस कर देने की चेष्टा की थी। शायद उसका मंशा रहा हो कि इतने बड़े गिरजाघर को गिरता देख अंग्रेजों के हृदय दहल जायेंगे और अंग्रेज उसके आगे घुटने टेक देंगे। नाजियों द्वारा विमानों से फेंके गये बम गिरजे के तो एक ही भाग को छूकर रह गये पर आस-पास मकानों की बरबादी खूब हुई है। युद्ध के बाद आठ साल बीत गये हैं और गिरे हुए मकानों की जगह अब भी खाली पड़ी है। लंदन के ईस्टएण्ड स्लोन स्क्वायर, औक्सफोर्ड स्ट्रीट, पिक्केडिल्ली और रौनक की दूसरी कई जगहों में भी बहुत से मकान अभी तक गिरे ही पड़े हैं। जितने मकान बमों से गिरे थे उनमें से बहुत कम ही फिर से बन पाये हैं। कई जगह बम गिरे मकानों की जगह को मैदान बनाकर 'कारपार्क' बना दिये गये हैं। अभिप्राय यह है कि बस्ती घनी और मकानों का किराया बहुत अधिक होने के कारण मोटर रखने के लिये गैराजों की कठिनाई है। गैराज का किराया भी बहुत पड़ जाता है। इन सफाचट हो गई जगहों में लोग कुछ किराया देकर अपनी गाड़ियाँ रख सकते हैं।

कुछ अंग्रेजों से साफ-साफ बात करने का अवसर होने पर पूछा—'आठ बरसों में भी यह मकान फिर से क्यों नहीं बन पाये'? प्रश्न का उत्तर कई प्रकार से मिला। जो अंग्रेज अब भी यह गर्व लिये हुए हैं कि लंदन संसार का सबसे बड़ा नगर और संसार के सबसे बड़े साम्राज्य की राजधानी है, उनका उत्तर था—'स्थानों और मकानों के महत्त्व और आवश्यकता का खयाल कर क्रम-क्रम से बन रहा है।' कुछ का उत्तर था—'अब कहाँ से बने? अब साधन कहाँ हैं? रोजमर्रा का गुजारा ही चल जाय तो बहुत है।' कुछ ने यह भी कहा—'लंदन अप्राकृतिक तौर पर बढ़ गया था। इतने आदमियों के एक जगह रहने की क्या जरूरत है? यह अस्वाभाविकता दूर होनी चाहिये। थोड़ा बहुत और भी गिर जाये तो अच्छा हो। हमें जीवन का बनावटी अप्राकृतिक तरीका छोड़कर अपने ही साधनों से निर्वाह करना सीखना चाहिये।' यह सोचकर लंदन के प्रति सहानुभूति अनुभव की जा सकती है कि लंदन के वे दिन हवा हुए जब संसार के कोने-कोने से द्रव्य खिंचकर यहाँ चला आता था। कुछ तो साम्राज्यवादी होड़ ने इस बूढ़े साम्राज्य की कमर तोड़ दी। कुछ अमरीकी की होड़ चौपट किये दे रही है। लंदन में गिरे मकानों को देख स्तालिनग्राद की याद आ जाती है। यहाँ तो कहीं-कहीं ही मकान गिरे थे स्तालिनग्राद तो पूरा ही ध्वंस हो गया था। स्तालिनग्राद तो पूरा का पूरा नया और पहले से अधिक भव्य बनकर खड़ा हो गया है। गिरे हुए मकान कहीं-कहीं ही दिखाई देते हैं। यह भी नहीं माना जा सकता कि लंदन का दिवाला निकल गया और सब धन स्तालिनग्राद में ही बरस पड़ा है पर यह स्पष्ट है कि लंदन के पुनर्निर्माण के पीछे व्यक्तियों के साधनों और सामर्थ्य की शक्ति है और स्तालिनग्राद के पुनर्निर्माण के पीछे सामाजिक शक्ति। अंग्रेज अपने इसी सामाजिक असामर्थ्य को अपने व्यक्तिगत स्वातंत्र्य, सौभाग्य और गर्व की बात समझें तो उनसे लड़ने कौन जाय?

अस्तु, प्रसंग तो था सेंटपाल कैथेड्रल का। सेंटपाल में जाकर देखा कि वास्तव में ही बहुत भव्य और विराट गिरजाघर है। भगवान की महिमा के अनुरूप ही उन्हें याद करने के लिये बने इस मकान में, इसे बनाने वाला मनुष्य उतना ही छोटा और क्षुद्र जान पड़ता है जैसे पहाड़ के अनुपात में गिलहरी। इस गिरजे के विराट आकार को देखकर विश्वास हो जाता है कि मनुष्य निश्चय ही अपने से बहुत बड़े भगवान की सृष्टि कर सकता है। भक्त मनुष्य की वह क्षुद्रता और भी स्पष्ट हो रही थी क्योंकि रविवार की सुबह होने पर भी गिरजा प्रायः खाली ही था। हम लोग प्रार्थना समाप्त होते-होते ही पहुँच गये थे। विस्मय यही हुआ कि इंगलैण्ड की जिस धर्मपरायण जनता को स्वयं इतना बड़ा गिरजा बनाकर भी गिरजाघर जाना याद नहीं रहता वह सोवियत की जनता के गिरजा जा सकने की स्वतंत्रता के लिये कितनी चिंतित रहती है।

सेंटपाल कैथेड्रल में अंग्रेज जांय या न जांय इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि वह बहुत ही भव्य और संसार की गिनी-चुनी इमारतों में से एक है। भीतर छतों की मेहराबें इतनी ऊँची हैं कि ठीक सिर के ऊपर छत देखने के प्रयत्न में मेरुदंड तिड़क जाने का भय हो सकता है। कला और इतिहास की दृष्टि से भी उसका महत्त्व कम

नहीं। वेदी के दाहिने राज घराने के और सरदार भक्तों के लिये कुर्सियों की पृथक पंक्तियाँ हैं। भगवान मसीह ने तो रंक और दरिद्रों के लिये ही प्राण दिये थे परन्तु यहाँ उनके दरबार में ऊँचा आसन उन्हीं अमीर उमरा के लिये है जिनके लिये वे स्वर्ग का द्वार बंद रहने की बात कह गये हैं। पर यह हो क्यों न? सेंटपाल का गिरजा बनवा देना रंक और दरिद्र के बूते की बात तो थी नहीं वह तो राजाओं का ही बनवाया हुआ है। वेदी के दाहिने हाथ दीवार के साथ-साथ इंगलैण्ड के इतिहास स्मरणीय राजाओं की समाधियों के रूप में उनकी अर्थी पर लेटी हुई मूर्तियों के नीचे उनके कफन रखे हैं। बाईं ओर साम्राज्य निर्माता प्रसिद्ध योद्धाओं और सरदारों की स्मारक मूर्तियाँ हैं। इनमें सागर विजयी नेलसन और भारत में अंग्रेजी शासन को दृढ़ कर गये एक गवर्नर जनरल शायद वेलेजली भी मौजूद हैं। एक गाल पर चांटा पड़ने पर दूसरी गाल सामने कर विरोधी का मन जीतने का उपदेश देने वाले धर्म के इस मन्दिर की शोभा दूसरों का देश छीन लेने में सफलता पाने वालों की स्मृति से ही हो रही है।

रविवार के दिन गिरजाघर जाने की उपेक्षा से ही यह समझ लेना कि अंग्रेज आध्यात्मिक दृष्टिकोण को महत्व नहीं देते, ठीक न होगा। इस विषय में अंग्रेजों से बातचीत होने पर यही जान पड़ता है कि उनका दृष्टिकोण अत्यन्त अपार्थिव या आध्यात्मिक होता जा रहा है यानि इतिहास का सबसे बड़ा साम्राज्य बना देने के बाद उसे बिखरता देख उन्हें वैराग्य का ज्ञान हो रहा है। अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति का प्रसंग चलने पर वह निःशस्त्रीकरण के लिये पाँच सबल राष्ट्रों के समझौते के सुझाव को या समाजवादी और पूँजीवादी व्यवस्थाओं को अपने-अपने देश में अपनी विचारधारा और व्यवस्था के अनुसार चलाने की स्वतंत्रता के विषय में बातचीत करना निरर्थक समझेगा। वह विश्वशान्ति या अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति का उपाय समझता है। दृष्टिकोण को भौतिकता से मोड़कर मानसिक शान्ति की ओर ले जाना। यह यथार्थ परिस्थितियों के विश्लेषण की अपेक्षा रहस्यवाद में अधिक रुचि दिखाता है। यह सुनना चाहता है कि यह संसार माया-मिथ्या है ताकि अपना साम्राज्य खो देने के लिये उसे दुख न हो। ठीक वैसे ही जैसे हिन्दू श्मशान की ओर जाते समय कहते जाते हैं केवल 'हर का नाम सत्त है।' वह यह भी मान लेने के लिये तैयार हैं कि उनके देश ने भौतिक समृद्धि के मार्ग पर जो अंधी दौड़ लगाई है उसी के परिणाम में अब वह स्वयं अपने लिये रुकावटें और बाधायें उत्पन्न कर चुका है। वह अपने साम्राज्य के पतन से दुखी न होने की मानसिक अवस्था का अभ्यास कर रहा है।

आधुनिक मध्यवर्गीय अंग्रेज भारतीय जनता के जीवन की समस्याओं से उदाहरणतः हम किस प्रकार अपनी अन्न समस्या को या औद्योगीकरण की समस्या को हल कर रहे हैं या अन्तर्राष्ट्रीय शक्ति संतुलन में हमारा क्या स्थान है इस बात से प्रायः कोई वास्ता नहीं रखता। वह भारत से यही आशा करता है कि भारत सांसारिकता से विमुख होकर संतोष पाने का मार्ग बता सकेगा।

लंदन में भीख, शिक्षा, कला और साहित्य

अपने देश में भिखमंगों की विकट समस्या है इसलिये दूसरे देशों में भी इस समस्या की ओर ध्यान जाता है। सोवियत में खोजने पर भी हमें भिखमंगे नहीं मिले। लंदन में वे अनायास ही बहुत जगह दिखाई देते रहते हैं परन्तु लंदन के भिखमंगे हमारे नगरों के भिखमंगों की तरह परेशान नहीं करते। यदि वे ऐसा करें तो पुलिस उन्हें तुरन्त गिरफ्तार कर लेती है। वहाँ भिखमंगे प्रायः पैदल-पटरी के किनारे खड़े हो कोई बाजा लेकर बजाते रहते हैं, कभी दो-चार मिलकर बैण्ड भी बजाते दिखाई देते हैं। पिक्केडिल्ली और रस्सल स्क्वायर में उन्हें एक छोटी गाड़ी पर रखे लकड़ी के बड़े पीपे (म्युजिकल ड्रम) का हत्था घुमाते देखा। इस पीपे में से कई तरह के बाजे एक साथ ताल सुर से बजते रहते हैं। सेन्टजेम्स स्ट्रीट में एक भिखमंगा कुछ अधिक शोख था। वह उस्तरे से सिर मुंडाकर पैदल-पटरी पर नाचता रहता था। कुछ भिखमंगे बहुत शीलवान होते हैं। वे अपनी टोपी पैसों के लिये पैदल-पटरी पर रख स्वयं चुपचाप दीवार से पीठ लगाये खड़े धीमे स्वर में आशीर्वाद देते रहते हैं।

भीख के सम्बन्ध में एक दो बातें विचित्र भी लगीं। किसी बच्चे को भीख माँगते नहीं देखा और जहाँ तक याद है, स्त्री को भी नहीं। कुछ भिखमंगे अपङ्ग थे, एकाध की टांग या बांह कटी हुई थी। हो सकता है, वे युद्ध के कारण पगु हो गये हों। पर युद्ध के कारण पंगु होने वालों को तो सरकार से वृत्ति मिलती है। ऐसी एक लड़की से परिचय भी हुआ। वह लंदन पर बमवर्षा में मकान गिरने से चोट खा गई थी। मस्तिष्क पर भी कुछ असर आ गया था। अब वृत्ति पा रही थी और मूर्तिकला सीख रही थी। लंदन में कोई भीख नहीं माँग सकता। भीख माँगने के लिये लाइसेन्स लेना पड़ता है। लाइसेन्स उन्हीं लोगों को दिया जाता है जो जीविका कमा न सकने का कोई उचित कारण बता सकें। जीविका न कमा सकने वाले लोगों को भीख माँगने का लाइसेन्स दे दिया जाता है। ब्रिटिश-साम्राज्य की महामहिम सरकार उनके निर्वाह की जिम्मेवारी नहीं ले सकती। जो लोग अपंग नहीं अथवा डाक्टरों की राय में जीविका कमाने के योग्य हैं, श्रम करना भी चाहते हैं उन्हें रोजगार देने की जिम्मेवारी सरकार नहीं लेती। सोवियत सरकार की तरह ब्रिटिश सरकार अपनी प्रजा के रोजगार के लिये उत्तरदायी नहीं।

लंदन में जैसे गा-बजाकर भीख माँगने वाले दिखाई देते हैं वैसे ही चित्रकला के बल पर भीख मांगने वाले भी दिखाई देते हैं। किसी भी ऐसी सड़क पर जहाँ भीड़ जरा कम हो, पैदल-पटरी की कुछ जगह साफ कर, रंगीन चाक से कुछ चित्र बनाये हुए दिखाई देते हैं। यदि कुछ मिनट खड़े होकर देखिये तो प्राकृतिक और ग्रामीण दृश्यों, कुत्तों अथवा घोड़ों के यह चित्र काफी अच्छे जान पड़ेंगे। इन चित्रों के चित्रकार समीप ही टोपी उल्टी किये या कोई डिब्बा भीख के लिये रखे बैठे दिखाई देते हैं। इन लोगों की अवस्था से अनुमान करना पड़ता है कि चित्रकला की शिक्षा पाने का अवसर इन लोगों को न मिला होगा। इन लोगों में इतना हस्तकौशल है कि शिक्षा पाने पर यह अवश्य ही अच्छे चित्रकार बन सकते थे परन्तु इनकी शिक्षा का उत्तरदायित्व कौन लेता? इनके सफल कलाकार बन

सकने के लिये यह आवश्यक था कि वे ऐसे परिवार में जन्म लेते जो इन्हें 'लंदन स्कूल आफ आर्ट्स' में शिक्षा दिला सकता। यों यहाँ प्रत्येक व्यक्ति स्वतन्त्र और कानून की दृष्टि में समान है। यदि व्यक्ति को अपनी जन्मजात प्रतिभा के विकास के लिये भी अवसर नहीं तो उसकी स्वतन्त्रता का मूल्य क्या? लंदन या ग्रेट ब्रिटेन के आदर्श प्रजातन्त्र में सर्वसाधारण व्यक्ति अपने विकास के लिये, कितनी स्वतन्त्रता और अवसर अनुभव करते हैं, इसका परिचय "आज" के लंदन स्थित संवाददाता श्री ओम प्रकाश आर्य के अनुभव से हो सकता है। एक दिन वे लंदन के एक प्राइमरी स्कूल में गये और विद्यार्थियों से प्रश्न किया कि पढ़-लिखकर वे क्या बनेंगे? बालक विद्यार्थियों के उत्तर थे, पोस्टमैन! बस ड्राइवर! पुलिस कांस्टेबल! रेलवे गार्ड! यह है उज्ज्वल स्वतन्त्र भविष्य जो ग्रेट ब्रिटेन के सर्वसाधारण के सामने है। सोवियत में ऐसा ही प्रश्न लड़कियों के एक स्कूल में मालती बाई बिडेकर ने किया था। वह बात यथा प्रसंग कह चुका हूँ।

इंगलैण्ड में सभी बालकों की महत्वाकांक्षाएँ पोस्टमैन, बस ड्राइवर, पुलिस कांस्टेबल और रेलवे गार्ड बनने तक सीमित हों ऐसी बात नहीं है। इंगलैण्ड में सर्वसाधारण पैदा ही इन कामों के लिये होते हैं और कुछ लोगों का जन्म ही शासक बनने के लिये होता है। इस श्रेणी के लिये स्कूल भी दूसरे हैं उदाहरणतः 'हारो और ईटन' जैसे पब्लिक स्कूल। इन स्कूलों को पब्लिक स्कूल निषेधात्मक अर्थ में ही कहा जाता है क्योंकि इन स्कूलों के चारों ओर खर्चीली भिक्षा की बाड़ लगाकर साधारण पब्लिक का प्रवेश वहाँ निषिद्ध कर दिया गया है। लंदन के पेशेवर नगर दिखाने वाले परिचायक यात्रियों को यह स्कूल दिखाते समय अभिमान से कहते हैं कि ग्रेट ब्रिटेन के प्रधानमंत्रियों में से १५ या २० इसी स्कूल के विद्यार्थियों में से हो चुके हैं। इतना ही नहीं, संसार के अन्य कई देशों में भी इस स्कूल में शिक्षा पाये विद्यार्थी प्रधानमंत्री हो चुके हैं उदाहरणतः भारत के वर्तमान प्रधानमंत्री पं० जवाहरलाल नेहरू भी हारो स्कूल के विद्यार्थी थे। इंगलैण्ड में ऐसे दो प्रकार के स्कूल न केवल विकट श्रेणी भेद के प्रतीक और परिणाम हैं बल्कि शासक श्रेणी और शासित श्रेणी के भेद को बनाये रखने का साधन भी हैं। इन स्कूलों के आशीर्वाद से अमीर घरों की अधिकांश संतानें अभिजात होने के कारण ही शासक बन जाती हैं। उदाहरण प्रत्यक्ष ही हैं। जिस पब्लिक के लिये इन पब्लिक स्कूलों की राह बन्द है वे ब्रिटेन के आदर्श प्रजातन्त्र में, कानूनी समान अधिकार और स्वतन्त्रता से संतुष्ट है।

हाँ, रास्ते के चित्रकारों यानी पेवमेंट आर्टिस्ट्स की बात कर रहा था; यह भी असम्भव नहीं कि इनमें से कई अब भी वास्तव में अच्छे कलाकार हों परन्तु उनके पास चित्रकला के लिये आवश्यक सामग्री खरीदने के लिये दाम कहाँ? चित्र बना सकने के लिये जगह और चित्र बनाते समय पेट भर सकने के लिये साधन कहाँ हैं? सबसे बड़ी समस्या यह है कि उनके बनाये चित्र खरीदेगा कौन? यह ठीक है कि लंदन और न्यूयार्क में एक-एक चित्र के दाम कई-कई हजार पौंड या डालर पड़ जाते हैं लेकिन किसी-किसी चित्र के ही। साधारणतः पूँजीवादी संस्कृति में कलाकार का भूखों मरना कलाकार की प्रकृति का आवश्यक परिणाम माना जाता है। कुछ लोग तो उसकी कला के निखार के

लिये ऐसी तपस्या आवश्यक भी समझते हैं। किसी चित्र के बड़े दाम तभी पड़ सकते हैं जब वह चित्रों के किसी बहुत बड़े दलाल की मार्फत बिके या किसी चित्र के असाधारण बड़े दाम पड़ने में कला के दलाल का ही अधिक लाभ हो। प्रायः इसीलिये कलाकारों के मर जाने के बाद ही उनकी कला को मान्यता दी जाती है या बहुत बड़े दाम पड़ने का कारण किसी बहुत बड़े पूँजीपति की बड़े दाम देने के माध्यम से प्रसिद्धि की इच्छा होती है। जो भी हो; चित्रों के लिये इतने बड़े दाम दे सकने वाले लोगों की संख्या कितनी है? बहुत होगा करोड़ों में दो-चार। पूँजीवादी समाज में चित्रकला ऐसे ही संरक्षकों पर या दो-चार सरकारी अजायबघरों और चित्रशालाओं की कृपा पर ही निर्भर करती है परन्तु सोवियत देश में मजदूरों-किसानों के क्लबों या होटलों के बड़े हालों में, होटलों के प्रत्येक कमरे में, सीढ़ियों में, रेस्तोरां में, रेल स्टेशन के मुसाफिरखानों में सभी जगह तैल चित्रों की भरमार है। वे सब चित्र निश्चय ही कला के सबसे ऊँचे स्तर के तो नहीं हो सकते परन्तु समाज में चित्रों की इतनी बड़ी माँग कितने व्यक्तियों को चित्रकला पर निर्भर रह सकने का अवसर दे सकती है? यह इसीलिये कि सोवियत देश में कला केवल साधनों की मालिक श्रेणी के ही लिए नहीं है सम्पूर्ण साधन समाज के होने के कारण कला भी संपूर्ण समाज के लिये ही है। पूँजीवादी समाज में जब कलाकार साधनहीन है तो कलाकार या तो कला को छोड़ पेट पाले या उसे भिखमंगा बनना ही पड़ेगा।

इंगलैण्ड में कला एक श्रेणी विशेष की ही चीज है यह 'टेट गैलरी' और 'नेशनल आर्ट गैलरी' का चक्कर लगाने से भी जान पड़ता है। इसमें तो संदेह नहीं कि लंदन के इन दोनों कला संग्रहालयों में वह बहुत कुछ है जिसे धन बटोर सकता है प्राचीन कलाकारों की मौलिक कृतियाँ भी हैं लेकिन ये संग्रह चित्रों की संख्या के विचार से न तो लेनिनग्राद के 'हर्मिटाज' और मास्को के 'चाइकोवस्की संग्रहालय' को पहुँच सकते हैं। कला का संग्रह कर सकना अवसर की भी बात हो सकती है परन्तु कला में सर्वसाधारण की रुचि होना दूसरी बात है। 'नेशनल आर्ट गैलरी' और 'टेट गैलरी' में भी जाने पर भीड़ जैसी कोई चीज दिखाई नहीं दी हालांकि लंदन की जनसंख्या मास्को से ड्योढ़ी तो है ही। इसके अतिरिक्त लंदन में इन दोनों संग्रहालयों में प्रवेश निःशुल्क है और मास्को में टिकट खरीदना पड़ता है। लंदन के कला संग्रहालयों में जो लोग दिखाई दिये वे उसी श्रेणी के लोग थे जिन्हें खाने-पीने के बाद समय गुजारने के लिये या चाय और दावत की मेज पर बात चालू रखने के लिये कला की बात करनी पड़ती है। शारीरिक श्रम से निर्वाह करने वाली श्रेणी या सर्वसाधारण लोग भी इंगलैण्ड में कला की बात सोचते हों ऐसा नहीं जान पड़ा।

चमन रेवरी लंदन में औद्योगिक संघों के आन्दोलनों और इतिहास पर खोज कर रहे हैं। व्यक्तिगत रूप से उनकी रुचि साहित्य और कला में ही अधिक है। मेरे लंदन में रहते समय एक संध्या 'इंस्टीट्यूट आफ कन्टेम्पोरेरी आर्ट' (आधुनिक कला संस्थान) की विशेष बैठक थी। इस बैठक में फ्रांस के बहुत सफल नवयुवक उपन्यास लेखक नेपियर फ्रेंच कथा-साहित्य के विषय में कुछ परिचय देने वाले थे। इस इंस्टीच्यूट की बैठकों में जाना

व्ययसाध्य है क्योंकि मेम्बरों और उनके अतिथियों को भी टिकट खरीदना पड़ता है और टिकट के दाम भी काफी होते हैं।

नेपियर अट्ठाइस-तीस वर्ष के युवक जान पड़े। छरहरा बदन, खुले हाथ पांव, खरखरे से बाल, भोला प्यारा सा चेहरा जैसे खेलकूद में रस लेने वाला बेफिक्र नौजवान परन्तु I. C. A. में एकाध श्रोता बड़े ध्यान से उनकी बातें सुन रहे थे जैसे गंभीर ज्ञान के प्रकाश की आशा हो। नेपियर अंग्रेजी नहीं बोल पाते। उनकी बात का अनुवाद किया जा रहा था। उन्होंने अपने दोनों उपन्यासों की चर्चा की कि गत महायुद्ध की घटना भूमि पर लिखे गये हैं परन्तु कथावस्तु और विचार दोनों में पृथक-पृथक हैं। इसके बाद वे अन्य कथा लेखकों की चर्चा करने लगे। चर्चा संक्षिप्त थी केवल लेखकों के राजनैतिक लेबलों के रूप में, अमुक कम्युनिस्ट है, अमुक फैसिस्ट है, अमुक सोशलिस्ट है।

चमन रेवरी ने मेरे कान में कहा—"यह काम की बात तो कुछ बता नहीं रहा। एक प्रश्न पूछूं।" और खड़े हो उन्होंने प्रश्न किया—"सार्त्र की रचनाओं के बारे में आपका और अन्य फ्रेंच साहित्यिकों का क्या विचार है?" नेपियर ने हाथों की उंगलियां कई बार फैला और सिकोड़कर उत्तर दिया—"सार्त्र कम्युनिस्ट बनना चाहता है। कम्युनिस्ट उसकी कड़ी आलोचना करते हैं तो वह खिन्न होकर कम्युनिस्टों पर चोट भी करता है। अन्तःकरण से वह कम्युनिस्ट ही है।" इस उत्तर से हम लोग कोई खास बात जान न सके। रेवरी ने फिर प्रश्न किया—"कोई लेखक सोशलिस्ट है या कम्युनिस्ट, इस बात की चिन्ता के अतिरिक्त कला की दृष्टि से भी तो उसकी रचना का मूल्यांकन किया जा सकता है? सार्त्र के विषय में आपकी राय इसी दृष्टि से जानना चाहता हूँ" नेपियर ने होंठ सिकोड़कर उत्तर दिया—"सार्त्र अब फिर कम्युनिस्टों की ओर हाथ बढ़ा रहा है।" अब बहुत से लोग फ्रेंच में बोलने लगे। अंग्रेजी में अनुवाद की बात जाती रही। जान पड़ता था कि बहुत से लोग फ्रेंच भाषा का ज्ञान प्रकट करने का अवसर नहीं खो देना चाहते थे। सभापति ने नेपियर को सभा के लोगों का ज्ञान बढ़ाने की कृपा के लिये धन्यवाद दे दिया और बैठक समाप्त हो गई। मुझे बेचारे रेवरी के दो पौंड फिजूल खर्च हो जाने का ही अफसोस हुआ।

'आधुनिक कला संस्थान' (I. C. A.) में केवल साहित्य विमर्श ही नहीं होता बल्कि चित्रकला पर भी चर्चा होती है। चित्रों के दो-तीन बहुत ही आधुनिक नमूने संस्थान की दीवारों पर लगे थे। इन चित्रों को काफी समय देखने पर भी उनमें किसी आकृति का अनुमान न कर सके। अलबत्ता बहुत से रंगों के छीटे एक साथ पड़े जान पड़ते थे, जैसे बहुत से रंगों से होली खेलने पर किसी के कपड़ों-की अवस्था हो सकती है। माना जा सकता है कि कला के कुछ ऊँचे स्तर अभ्यासगम्य होते हैं। उनका रस ले पाने के लिये ज्ञान की कुछ भूमिका आवश्यक होती है। इस विषय में 'लंदन स्कूल आफ आर्ट्स' के विद्यार्थियों से भी बात की। ऐसे दो एक चित्र बहुत ख्यात फ्रेंच कलाकार के जो बिलकुल आकृतिहीन तो न थे परन्तु जिनमें आकृति की अपेक्षा रंगों को ही महत्त्व दिया गया है—

उदाहरणतः नीले सोफे पर गुलाबी रंग में नारी के नग्न शरीर की गुलाबी सी अस्पष्ट आकृति और समीप पीले रंग के फूलों का गुच्छा भी देखे। रंगों की चटक की बात स्वीकार करके भी मैं उसमें कोई रसानुभूति नहीं कर सका। रंगों का समन्वय भी कला है, पर उसमें ही कला की चरम अभिव्यक्ति हो जाय, यह मान लेने को जी नहीं चाहता। ऐसी कला तो हमारी ग्रामीण स्त्रियाँ परम्परा से निभाती आ रही हैं। राजपूताने में लहंगे, चुनरी और अंगिया के रंगों का जो परम्परागत समन्वय चला आ रहा है, क्या वही चित्रकला की अन्तिम सीमा है? मुझे ऐसा अनुभव हुआ कि पश्चिम की चित्रकला अतिपार्थिव यथार्थवाद पर निर्भर करने के कारण अन्तर्विरोधों से भरी अपनी आधुनिक परिस्थिति में गतिरोध और अभिव्यक्ति के लिये मूर्त्तों का अभाव अनुभव कर रही है। कल्पना और भाव से मूर्त्तों की रचना करने की जो प्रवृत्ति भारतीय चित्रकला की एक विशेषता है, उदाहरणतः राग, रागिनियों के चित्र या चगतई द्वारा प्रतीक्षा, विदा, वात्सल्य, अनुराग और प्रतिहिंसा का काल्पनिक मूर्तों द्वारा चित्रण, ऐसी प्रवृत्ति योरुप में अभी नहीं जाग पायी। टेट गैलरी में ऐसे कुछ चित्र प्राचीन कलाकारों विलियम ब्लेक आदि के हैं जिनके आधार धार्मिक भावनायें थीं पर पश्चिमी कलाकार इस ओर बढ़ नहीं पाया।

जैसा गतिरोध और अवसर की कमी चित्रकला के क्षेत्र में दिखाई देती है वैसा ही साहित्य के क्षेत्र में भी है। युद्ध के बाद से दी क्राइटेरियन, लाइफ एण्ड लैटर्स, एडेल्फी, लंडन मर्करी, पियर्सन मैगजीन आदि बहुत सी साहित्यक पत्रिकाएं बन्द हो गई हैं। इन पत्रिकाओं के बन्द हो जाने से नये लेखकों के लिये अवसर भी कम हो गया है। नये लेखकों की बात छोड़ दीजिये, अधिकांश पुराने लेखकों की भी अवस्था बहुत अच्छी नहीं है। कई लेखकों से बातचीत करने पर यही पता लगा कि साहित्य के क्षेत्र में कलम के जोर पर सुविधा से निर्वाह करने वालों की संख्या इंगलैण्ड में आधी दर्जन से अधिक नहीं है। साधारणतः उपन्यासों की तीन हजार प्रतियाँ एक बार में छपती हैं। इसमें से दो हजार पुस्तकालयों में चली जाती है। 'पैलिकन' और 'पैंगुइन' सीरीज की बात दूसरी है। कालान्तर में प्रकाशन के इस विराट केन्द्रीकरण का प्रभाव क्या होगा? छोटे-मोटे प्रकाशकों का समाप्त हो जाना और लेखकों पर शेष रह गये दो एक प्रकाशकों का पूर्ण नियंत्रण। पूँजी के स्वार्थ का विचारों पर ऐसा नियंत्रण लेखक के लिये स्वतंत्र अस्तित्व का कोई अवसर नहीं छोड़ता क्योंकि पूँजीपति श्रेणी के रहते शासन कभी उसके हाथ से मुक्त नहीं हो सकता।

अंग्रेज कहानी लेखकों और कवियों का विचार है कि युद्ध के बाद से साहित्य की खपत में भारी कमी आ जाने का कारण सिनेमा, रेडियो, टेलीविजन आदि का अधिक प्रचार हो जाना है। यह अनुमान ठीक नहीं जान पड़ता। सोवियत में भी सिनेमा, रेडियो और टेलीविजन की कमी नहीं इंगलैंड से कुछ अधिकता ही जान पड़ती है। सोवियत में पिछले इन वर्षों में पुस्तकों की खपत ८४ प्रतिशत बढ़ गई है। वास्तविक कारण वही है जो हमारे अपने देश में। उत्साही कलाकार नित्य नयी पत्रिका निकालते हैं और वह दो अंक प्रकाशित कर समाप्त हो जाती है। यहाँ भी हम साहित्यिक पत्रिकाओं का जीवन

असम्भव होता देख रहे हैं। कारण है साधनहीन प्रकाशकों का साधनवान प्रकाशक से व्यावसायिक प्रतिद्वन्द्विता में पिट जाना। आज कोई पत्र सफल नहीं हो सकता जब तक उसमें काफी विज्ञापन न हो। अब स्थिति एक कदम और आगे बढ़ गई है और पत्र-पत्रिकाएँ निरे विज्ञापनों के सहारे भी नहीं बल्कि इनामी पहेलियों के सहारे चल रही हैं। पत्र-पत्रिकाओं में साहित्य और समाचार का अंश केवल शोभा मात्र के लिये या भोजन में नमक की तरह रहता है। जब कहानी, कविता और आलोचना का पुट लिये सचित्र विज्ञापनों और पहेलियों से भरा पत्र बाजार में छः आने में मिल सकता है तो निरे साहित्यिक पत्र को गाहक दस बारह आने में कैसे खरीदेगा ?

जैसी कहानियाँ लंदन के पत्रों के साप्ताहिक संस्करणों में देखीं या यहाँ प्राप्य अंग्रेजी पत्रों में कुछ समय से प्रकाशित हो रही हैं; उनमें भाषा, शैली और ग्राह्यता का तत्त्व ठीक होने पर भी पाठक अन्त में यही सोचता है, "बात क्या बनी ?" साहित्य के स्तर के इस पतन के लिये प्रकाशक पाठक वर्ग को दोष देते हैं। उनका कहना है कि जनता विचारात्मक साहित्य की अपेक्षा रोमांचक साहित्य ही अधिक चाहती है। प्रकाशक के इस विचार के दो कारण समझे जा सकते हैं प्रथम तो कला पारखी जनता का निर्णय प्रकाशक तक पहुँचने का साधन ही कहाँ है ? दूसरा यह कि वर्तमान आर्थिक आतंक में जनता इतनी विक्षिप्त है कि वह साहित्य को विचार-विमर्श का साधन बनाने की अपेक्षा अपने-आपको भुलाने का ही साधन बनाना चाहती है। प्रकाशक ऐसे साहित्य को सस्ता और सुलभ देख जनता की विक्षिप्त मानसिक अवस्था में अपने व्यावसायिक लोभ के लिये उसे विकृति के ढलवान पर लुढ़कने में और सहायता देता है।

लंदन में सिनेमा-नाटकों की भी कमी नहीं। ऐसे भी सिनेमा हाल है जिनमें तीन हजार तक दर्शक बैठ सकते हैं। यहाँ भी सौन्दर्य की अपेक्षा व्यवसाय का ही दृष्टिकोण प्रधान है। हाल को सुन्दर बनाने की अपेक्षा अधिक लोगों का सुविधा से बैठा सकने का ही प्रबन्ध किया जाता है ? अंग्रेजी पर 'हालीवुड' का प्रभाव बहुत गहरा है। पारखी लोग अंग्रेजी फिल्मों से असंतोष अनुभव कर प्रायः दूसरे देशों से आई फिल्में देखना ही पसन्द करते हैं। लंदन में दिखाए जाने वाले फिल्म तो लंदन की विशेषता नहीं हैं। वे फिल्में दुनिया भर के सिनेमाओं में भी दिखाई जाती हैं। रंगमंच के विषय में बात दूसरी है। ओल्डविक में प्रायः शेक्सपियर के नाटक अब भी चलते रहते हैं। तत्कालीन यथार्थ उपस्थित करने और अभिनय की दृष्टि से यह रंगमंच बहुत उत्कृष्ट है। ओल्डविक में भीड़ भी खूब रहती है। टिकट कुछ दिन पहले से न लिये रहने से निराशा ही होती है। ओल्डविक जैसी भीड़ दूसरी रंगशालाओं में नहीं होती। सेंट जेम्स थियेटर में उस समय 'एस्केपेड' का नया अप्रकाशित नाटक चल रहा था। इस नाटक की कथा युद्ध की विभीषिका से संत्रस्त एक विद्यार्थी के अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति के लिये प्रयत्न करने की थी। नाटक में अभिनय बहुत अच्छा था और वैसा ही चुस्त उसका वार्तालाप था पर यह सर्वसाधारण की चीज नहीं था। एक विशेष नाटक-समाज की ओर से इसका आयोजन था। 'यूनिटी थियेटर' प्रगतिवादी लोगों के क्लब की रंगशाला है। यहाँ एक आधुनिक

हंगेरियन नाटक अंग्रेजी में चल रहा था। अभिनय तो जरूर अच्छा था परन्तु साधन और सरंजाम, जैसे कि पूँजीवादी व्यवस्था में प्रगतिवादियों के होते हैं, संक्षिप्त ही थे।

जनप्रिय रंगमंच का उदाहरण 'पिगाल टु पिक्केडिल्ली' भी देखा। इसे सभी आधुनिक साधनों से सम्पन्न नौटंकी कहा जा सकता था। ओछा हास्य और नग्नता का प्रदर्शन। बैले की नकल भी थी परन्तु इस नृत्य की गरिमा और सूक्ष्मता दोनों का अभाव होने के कारण केवल नारी की जांघों, स्तनों, कमर और बांहों का प्रदर्शन ही रह गया था। ग्रेट ब्रिटेन के नैतिक कानून के अनुसार रंगमंच पर नग्न नृत्य का निषेध है इसलिये नर्तकियों को कानूनन नग्न नहीं कहा जा सकता था। उनके शरीर पर कुछ इंच कपड़ा अवश्य था परन्तु दर्शकों को उत्तेजना की अनुभूति देने के लिये रंगमंच पर बनाये वृक्षों के नीचे नग्न युवतियों को भी बैठा दिया गया था। यह युवतियाँ विशेष मुद्रा में ही बैठी हुई थीं। वे कानूनन आँखों के अतिरिक्त और कोई अंग नहीं हिला सकती थीं। शायद इन युवतियों के लिये किसी प्रकार की कलात्मक शिक्षा पाये बिना ही रोटी कमा लेने का यह साधन सुविधाजनक है। लंदन में स्त्री की दयनीय आर्थिक स्थिति के कारण ऐसी युवतियाँ दुर्लभ नहीं। नाटकों और सिनेमाघरों में भी एक बात देखकर विस्मय हुआ कि हमारे यहाँ की 'पाँच आना क्लास' से भी नीचे एक क्लास वहाँ है अर्थात बहुत से लोग सस्ते के विचार से खड़े होकर ही सिनेमा, नाटक देख लेते हैं।

लंदन की लाजवंती भिखमंगियाँ

'टु बैग आई वाज अशेम्ड' (मैं माँगते लजाती थी) अंग्रेजी का एक खूब चालू उपन्यास है। आत्मकथा के रूप में एक युवती की कहानी है जिसे पेट भरने के लिये भीख माँगते लाज लगती थी इसलिये वह वेश्यावृत्ति से निर्वाह करने लगी! भीख माँगने और वेश्यावृत्ति में से क्या अधिक लज्जास्पद है; यह विवाद छोड़कर इतना ही कहना पर्याप्त है कि लंदन में उपरोक्त नायिका के जीवन से 'शिक्षा' लेने वाली युवतियों की कमी नहीं। हाँ, यह भी बात है कि इंगलैंड में भीख माँगने के लिये तो सरकार से अनुमति या लाइसेंस लेना पड़ता है परन्तु वेश्यावृत्ति के लिये न लाइसेंस दिया जाता है न लेना आवश्यक है।

लंदन पहुँचने की पहली संध्या ही इस समस्या का परिचय मिला। जिस मित्र को ढूंढ़ने गये थे, वह मिला नहीं। संध्या के छः बज गये थे। अंधेरा तो लंदन के बाजारों में होता ही नहीं, पर दुकानें पाँच ही बजे बंद हो जाती हैं। भोजन साढ़े सात आठ बजे खाना चाहते थे। प्रसिद्ध हाइड पार्क के कोने से जा रहे थे। सोचा एक झांकी प्रसिद्ध बाग की लेते चलें। गुंजान लंदन में इतना विस्तृत बाग देखकर बहुत अच्छा लगा। बाग में कई सड़कें समानान्तर चली गई हैं। मुख्य सड़क पर बिजली की बत्तियाँ हैं परन्तु समानान्तर सड़कों पर अंधेरा है। लंदन में प्रायः ही बादल और कोहरा बना रहने के कारण और बाग में खूब बड़े वृक्ष होने के संध्या समय बागों में अंधेरा और भी गहरा रहता है। सड़कों के किनारे और जगह-जगह भी बेंचें पड़ी हैं। सर्दी अधिक थी। शायद इसलिये सड़क पर

टहलने वाले विरले ही दिखाई दे रहे थे, पर इस सर्दी में भी वृक्षों के नीचे जहाँ-तहाँ बैठे एक-एक, दो-दो लोगों की छाया सी दिखाई पड़ रही थी।

चौवेजी और मैं प्रकाशित मुख्य सड़क पर अधिक दूर नहीं गये। बेचों पर बैठी युवतियाँ और अर्ध-प्रौढा सी स्त्रियाँ दिखाई देने लगीं। धीमे से मुँह से सीटी बजाने का स्वर, फिर 'हल्लो!' पहला विचार यही होता है कि कोई किसी को बुला रहा होगा, अपने को क्या? परन्तु आस पास किसी दूसरे को न देख मानना ही पड़ेगा कि सम्बोधन, हमारे लिये है। बेंच पर बैठी सम्बोधन करने वाली स्त्री की मुस्कराहट भी इस अनुमान का समर्थन कर रही थी। अब की हल्लो सुन जरा ठिठके। स्त्री के चेहरे पर मुस्कराहट और फैल गई और सुनाई दिया—"वांट ए प्लेराउण्ड?" (कुछ खिलवाड़ हो जाय?) ऐसा सुझाव कई मुहावरों से दिया जाता है उदाहरणतः "दिल बहलाव हो जाय" "जरा घूमने कहीं चलते हो?" "साथ चाहते हो?" आदि आदि। हम लोगों ने साहस कर युवती के प्रस्ताव के सम्बन्ध में कठिनाई सुझाई कि हम तो दो जने हैं। "तो यहाँ क्या लड़कियों की कमी है?"—उसका उत्तर था। हम लोग आगे बढ़ गये। सरदी और अंधेरा था इसलिये बहुत दूर नहीं, हाइड पार्क कार्नर वाले फाटक से बाग के भीतर बनी झील तक ही गये। अंधेरे में सड़क के समीप दोनों ओर वृक्षों के नीचे बेंचों या जमीन पर बैठे, लेटे लोग दिखाई पड़ रहे थे। बाग की मुख्य सड़क पर लंदन के सुडौल, सुदर्शन छः फुटे पुलिस मैन भी थोडी-थोडी देर बाद अपने भारी-भारी बूटों से धीमे-धीमे ठक-ठक चहलकदमी करते हुए, सुव्यवस्था और शान्ति की चौकसी में, इधर-उधर नजरें दौड़ाते हुए निकल जाते थे।

लंदन में किसी भी संध्या सात बजे के बाद लैस्टर स्क्वायर, चेल्सी, स्लोन स्क्वायर, रस्सल स्क्वायर, ट्रफालगर, ग्रीनपार्क आदि स्थानों में, जहाँ भीड़ काफी होती है घूमने जाइये तो ऐसी युवतियाँ आमंत्रण में घूरती हुई गलियों के नुक्कड़ों पर खड़ी दिखाई दे जायेंगी। उन्हें खोजना नहीं पड़ता बल्कि न देखना ही असम्भव है। लंदन में कभी कोई भली लड़की या युवती आपको पैदल-पटरी पर धीमे-धीमे चलती नहीं दिखाई देगी क्योंकि धीमे-धीमे चलती युवती को ग्राहक की प्रतीक्षा में घूमती स्ट्रीटगर्ल (बाजारू छोकरी) समझ लिया जाता है। पैदल-पटरी और गलियों की नुक्कड़ों पर ही नहीं चाय पानी की दुकानों में भी, यदि आप निगाहें चाय की प्याली में ही न डुबाये रहें तो, कई बार आँखें चार होंगी, कभी मुस्कराहट दिखाई देगी और कभी कामुकता का सुझाव देने वाले दूसरे ढंग। आमोद-प्रमोद की जगहों में कभी-कभी कोई आदमी कान में धीमे से 'ड्रिंक, डांस एंड गर्ल्स! (शराब, नाच और छोकरी!) के लिये निमंत्रण देता हुआ गुजर जायेगा।

प्रश्न यह है कि क्या लंदन के बाजारों, पार्कों और रेस्तोरां में मंडराने वाली ऐसी हजारों सभी लड़कियाँ तमाशबीन और उच्छृंखल हैं? वे ऐसा व्यवहार अपने दिल बहलाव के लिये करती हैं? उच्छृंखलता और तमाशबीनी में पसन्द का सवाल रहता है, पैसे की आशा नहीं। इन युवतियों की स्थिति इससे ठीक उल्टी है, अर्थात वे किसी को पसन्द-नापसन्द नहीं करतीं, पसन्द कर ली जाने का अनुरोध सभी से करती हैं। स्पष्ट ही यह

उनका शौक नहीं, मजबूरी है। यह ठीक है कि लंदन में चकले नहीं, जो हैं वे गुप्त हैं क्योंकि अंग्रेजों की नैतिकता वेश्यावृत्ति के लिये लाइसेंस दे देना सहन नहीं कर सकती परन्तु वेश्यावृत्ति को अपराध भी वे करार नहीं दे सकते। वे अपने समाज में स्त्री की स्थिति से बेखबर नहीं।

पार्कों और पैदल पटरियों पर जहाँ यह युवतियाँ मंड़राती रहती हैं, वहाँ सतर्क पुलिसमैन भी चहल-कदमी करते रहते हैं। यह पुलिसमैन इन छोकरियों के व्यवसाय की व्यक्तिगत स्वतंत्रता में बाधा नहीं डालते परन्तु यदि वे नागरिकों को परेशान करने लगें अर्थात मुँह लगने लगें या उनके दामन पकड़ने लगें तो वे तुरन्त उन्हें पकड़कर थाने ले जायेंगे। या किसी स्त्री-पुरुष को दलाली करते देखें तो उसे भी गिरफ्तार कर लेंगे। नागरिकों की व्यक्तिगत स्वतंत्रता की रक्षा के नाते पुलिसमैन का एक और भी कर्त्तव्य है :—यदि कोई व्यक्ति किल्लोलरत जोड़ों की ओर घूरने के लिये खड़ा होकर या उन पर हँसकर उन्हें 'खिन्न' (एनोय) करे तो पुलिसमैन ऐसे 'अभद्र' व्यक्ति को भी तुरन्त गिरफ्तार कर लेगा।

लंदन की वेश्यावृत्ति की समस्या का व्यावहारिक रूप वहाँ के पत्रों में प्रकाशित एक मुकद्दमे से स्पष्ट हो जाता है। एक अमरीकन युवक यात्री अपनी युवा पत्नी के साथ संध्या समय लैस्टर स्क्वायर से चला जा रहा था। अचानक स्थानीय बाजारू छोकरियों ने इस अमरीकन युवती को नोंचकर उसके कपड़े फाड़ डाले। बीच बचाव करने में युवक के कपड़े भी नुच गये। पुलिस ने इन छोकरियों को गिरफ्तार कर लिया झगड़े का राज मुकद्दमे में खुला। वह यात्री लैस्टर स्क्वायर से दो-तीन बार लड़कियों को ले जा चुका था। अमरीकन युवकों की जेब भारी होने की आशा में लंदन की बाजारू छोकरियाँ उनकी ओर ध्यान भी अधिक देती हैं। इनके लिये उनमें ईर्ष्या हो जाना भी अस्वाभाविक नहीं। उस संध्या युवक के साथ एक अपरिचित युवती को देख स्थानीय छोकरियों को क्रोध आ गया। उनका अनुमान था कि किसी दूसरे मुहल्ले में वृत्ति करने वाली छोकरी ने उनके क्षेत्र में आकर शिकार फंसा लिया है इसलिये वे उत्तेजना में उसे पीट देना चाहती थीं।

मैजिस्ट्रेट ने इन लड़कियों को पर्याप्त दण्ड न दे सकने की अपनी विवशता पर खेद प्रकट करते हुए फैसला दिया कि कानूनन इन लड़कियों को केवल दंगा करने के लिये ही दंड दिया जा सकता है परन्तु इनका उससे बड़ा अपराध तो है वेश्यावृत्ति जो हमारा कलंक बन गया है। लेकिन इंगलैण्ड में वेश्यावृत्ति कानूनन अपराध नहीं। प्रश्न यह है कि इंगलैण्ड की नैतिक धारणा किसी स्त्री को वेश्यावृत्ति के लिये लाइसेंस देने में तो लज्जा अनुभव करती है; वह इस काम को अपराध क्यों नहीं करार दे सकती? शायद ऐसा करना बड़ी भारी जिम्मेवारी होगी जिसे ग्रेट ब्रिटेन के साम्राज्य की शक्ति सम्भाल नहीं सकती। ग्रेट ब्रिटेन वेश्यावृत्ति को अपनी सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था का अनिवार्य अंग मानकर उसकी उपेक्षा के लिये विवश है। क्या ग्रेट ब्रिटेन इस बात की जिम्मेवारी ले सकता है कि वह अपने देश के प्रत्येक स्त्री-पुरुष को उनकी योग्यतानुसार जीविका दे?

ऐसी अवस्था में वेश्यावृत्ति को अपराध करार दे देने वह और भी भयंकर कुकर्म का रूप ले लेगी।

सोवियत में वेश्यावृत्ति अपराध है क्योंकि सोवियत व्यवस्था अपने देश के प्रत्येक स्त्री-पुरुष को उसकी योग्यतानुसार जीविका देने की जिम्मेवारी लिये है। इंगलैण्ड में और इस देश में भी बहुत से लोग यह विश्वास नहीं कर पाते कि सोवियत में वेश्यावृत्ति कानूनी तौर पर निषिद्ध होने के कारण ही वहाँ यह अनैतिकता वास्तव में भी नहीं है। उनका तर्क है कि यौन उच्छृंखलता एक अंश तक मनुष्य-समाज के स्वभाव का अंग है और वेश्यावृत्ति इस उच्छृंखलता का व्यावहारिक रूप या अनिवार्य परिणाम है। सोवियत में वेश्यावृत्ति की सम्भावना पर विचार करने के पहले यह निर्णय कर लेना आवश्यक है कि मूल्य देकर यौन इच्छा की तृप्ति देना ही वेश्यावृत्ति है। इसके बाद प्रश्न उठता है कि वे कौन सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियाँ हैं जो मूल्य लेकर यौन इच्छा की तृप्ति देने की परिस्थिति और अवसर पैदा करती हैं? इंगलैण्ड या लंदन का उदाहरण इसलिये उपयोगी है कि पूँजीवादी संस्कृति की दृष्टि से उस देश और नगर को सबसे अधिक उन्नत समझा जा सकता है। लंदन की वेश्यायें अपनी यौन उच्छृंखलता की तृप्ति के लिये चेष्टा नहीं करतीं उनका प्रयोजन पेट भरना ही है। वेश्यावृत्ति का कारण वेश्याओं की यौन उच्छृंखलता नहीं बल्कि समाज के दूसरे लोगों की यौन उच्छृंखलता है। इस उच्छृंखल प्रवृत्ति के सामने बहुत सी लड़कियों को परास्त क्यों हो जाना पड़ता है? अंग्रेज समाज न केवल अपने समाज की स्त्रियों के निर्वाह के लिये जीविका देने की जिम्मेवारी नहीं लेता बल्कि इंगलैंड की परम्परागत आर्थिक व्यवस्था के अनुसार स्त्रियों को पुरुष के समान ही काम करने पर भी मजदूरी आधी मिलती है। विवाहित स्त्रियों को साधारणतः स्थायी नौकरी देना इसलिये हानिकर है कि प्रसवकाल आने पर उन्हें सवेतन छुट्टी देने का बोझ व्यवसायी पर पड़ने का भय रहता है।

यह बात नहीं कि सोवियत समाज में लोग आमोद और विनोद प्रिय न हों। वहाँ के होटलों और रेस्तोरां में लोगों को रात के तीन बजे तक पीते, गाते और नाचते देखा जा सकता है परन्तु इस प्रमोद में यौन के सौदे का अवसर नहीं क्योंकि सोवियत समाज में परिस्थितियाँ इसके ठीक प्रतिकूल हैं। वहाँ सोवियत व्यवस्था पुरुषों की ही तरह स्त्रियों के लिये भी जीविका का अवसर या रोजगार देने की जिम्मेवारी लिये है। किसी भी कारोबार या उद्योग में स्त्री के लिये बाधा नहीं। पुरुष के समान काम करने पर वह पुरुष के समान ही वेतन पाती है। ऐसी अवस्था में स्त्री को अपना शरीर बेचने की जरूरत नहीं और न कोई दूसरा खरीद सकने की अधिक सशक्त स्थिति में है। स्त्री को स्त्री होने के कारण कोई बाध्यता या विवशता नहीं, कुछ सुविधायें जरूर हैं। पुरुष को साधनों के बल से स्त्री पर आधिपत्य जमाने का कोई अवसर नहीं। इसीलिये जहाँ लंदन के समाज में अविवाहित युवक और युवतियों का प्राचुर्य है सोवियत में नवयुवक और युवतियाँ प्रायः वयः प्राप्त होते ही विवाह कर लेने की जल्दी में रहते जान पड़ते हैं। सोवियत में इंगलैंड या योरुप के अन्य देशों की तरह 'छुट्टी' स्त्रियां नहीं हैं। सोवियत में उच्छृंखल स्वभाव स्त्री-पुरुषों से

यह आशा तो की जा सकती है कि वे उच्छृंखल स्वभाव के कारण विवाहित जीवन की सीमा के बाहर भी यौन तृप्ति की निन्दनीय चेष्टा करें पर वहाँ मूल्य के जोर पर यौन तृप्ति के क्रय-विक्रय की प्रणाली चलने का अवसर नहीं। सोवियत समाज और इंगलैण्ड के समाज में इस भेद का कारण सोवियत के लोगों का संयमी और इंगलैण्ड के लोगों का असंयमी होना नहीं बल्कि दो प्रकार की भिन्न सामाजिक और आर्थिक व्यवस्थायें हैं।

यौन प्रवृत्तियों के संतोष का समाज द्वारा स्वीकृत, नीति संगत और स्वाभाविक मार्ग है विवाहित जीवन। पश्चिमी पूँजीवादी समाज में मध्यम और निम्न-मध्यम-श्रेणियों के नवयुवकों में विवाह की जिम्मेवारी उठाने के प्रति विरक्ति स्पष्ट है। इसके कई कारण हैं; जीवन निर्वाह का स्तर ऊँचा होकर खर्चीला होते जाना और उसके साथ ही आर्थिक संकट के कारण बेरोजगारी का आतंक सदा बना रहना। विवाहित और पारिवारिक जीवन के लिये स्वाभाविक अवसर न रहने पर भी यौन की स्वाभाविक प्रवृत्ति तो रहती ही है बल्कि पारिवारिक बंधनों के अभाव में इस प्रवृत्ति पर नियंत्रण शिथिल हो जाता है। ऐसी अवस्था में समाज का आधा भाग अर्थात पुरुष स्थायी जिम्मेवारी लिये बिना थोड़े समय के खिलवाड़ का दाम देकर अपनी कामना पूर्ति कर लेने के लिये समाज के दूसरे भाग, नारी को वेश्या बनाने का यत्न करता है। पुरुष की ऐसी चेष्टाओं से नारी अपने आपको बचा नहीं पाती क्योंकि परिस्थितियाँ सब तरह उसके विरुद्ध हैं; आर्थिक रूप से वह विवश है। यौन प्रवृत्ति के लिये वैवाहिक जीवन की सम्भावना बहुत कम है। यदि स्त्री संयम का यत्न भी करे तो पुरुष उसके संयम पर सभी साधनों से आक्रमण करने के लिये तैयार है। लंदन की वेश्या जिसे स्ट्रीट गर्ल्स का 'सम्मानजनक' नाम दिया जाता है, संध्या समय बन-ठनकर वह पार्कों और बाजारों में तमाशबीनी के लिये नहीं भीख माँगने के लिये जाती हैं। हाथ पसार कर वह नहीं माँग सकतीं क्योंकि भीख माँगने का लाइसेंस उन्हें नहीं मिल सकता और हाथ पसारने में उसे लाज भी लगती है। अपना शरीर देकर पैसा पा लेने के लिये लाइसेंस की आवश्यकता नहीं क्योंकि यह पूँजीवादी व्यक्तिगत और व्यावसायिक स्वतंत्रता के विरुद्ध नहीं।

लंदन के पत्र और चेतना का स्तर

लंदन को अखबारों का नगर कहा जा सकता है। वहाँ सब समय और सब स्थानों पर अखबार ही अखबार दिखाई देते हैं। एक-एक अखबार के दिन भर में कई-कई संस्करण छपते हैं। अखबारों का रिवाज इतना है कि घर में पिता और पुत्र अपना-अपना अखबार अलग-अलग खरीदेंगे। ट्यूब में जाइये तो जिसे देखिये अखबार में नजर गड़ाये है। यह अखबार रूप-रंग में हमारे देश के अखबारों जैसे दिखाई देने पर भी हैं बहुत भिन्न। इस देश से लंदन जाने वाला व्यक्ति अखबार खरीदने पर सरसरी दृष्टि से पूरा अखबार देख जायेगा और समझ न सकेगा कि वह पढ़े क्या?

हमारे देश के अखबारों में पहले पृष्ठ पर पहला समाचार प्रायः ही अन्तर्राष्ट्रीय या राष्ट्रीय महत्त्व की घटना होती है। अखबार का अधिकांश भाग ऐसी ही सार्वजनिक

महत्त्व की राजनैतिक आर्थिक और सामाजिक घटनाओं से भरा रहता है। हाँ, यहाँ के अंग्रेजी अखबारों में अन्तिम पृष्ठ पर कुछ खेल-कूद के समाचार भी रहते हैं। हमारे अखबारों में शायद साल भर में कभी ही पहले पृष्ठ पर क्रिकेट के मैच का समाचार बड़े अक्षरों में छपता हो परन्तु इंगलैण्ड के पत्रों के प्राय: ही पहले पृष्ठ पर, पहली खबर लंदन के बाजार में चौथी मंजिल की खिड़की से किसी स्त्री के बदहवास होकर कूदने की धमकी देने की, क्रिकेट-फुटबाल के मैच की या किसी सिनेमा नायिका के तलाक की हो सकती है। इसके बाद भी शहर में आग लगने या बाढ़ की खबरों को ही महत्त्व दिया जाता है। पहले पृष्ठ के बीच में कहीं महारानी के विन्सर महल से बकिंघम महल चले जाने की भी सूचना हो सकती है। दूसरे-तीसरे पृष्ठों पर भी बस और ट्यूब का किराया घटने या बढ़ने के समाचारों को ही विशेष स्थान दिया जाता है अथवा कोट या फ्राक के नये चालू होने वाले फैशनों की बात रहती है। एक दिन 'डेली मिर्रर' या 'न्यूज आफ दी वर्ल्ड' के दूसरे पृष्ठ पर मोटे अक्षरों में लंदन में बादामी जूतों की अधिकता हो जाने की ही खबर देखी।

हमारे पत्रों में राजनीति का अश अधिक होने का मुख्य कारण यह जान पड़ता है कि हमारे देश में पत्रों के व्यवसाय का जन्म ही अधिकांश में राजनैतिक संघर्ष के साधन के रूप में हुआ था और उसी परम्परा पर उनका विकास भी हुआ। हमारे पत्र अंग्रेजी शासन व्यवस्था में व्यावसायिक लाभ की अपेक्षा संघर्ष और त्याग का ही मार्ग अपनाये रहे। वह बात अब नहीं रही है परन्तु परम्परा को बदलने मे कुछ समय लगता है। इंगलैण्ड में पत्रों का प्रकाशन प्रधानत: व्यवसाय के रूप में होता है और वे व्यवसाय की स्वामी श्रेणी के राजनैतिक साधन भी हैं। इंगलैण्ड के पत्र जीवन के लिये अवसर और अधिकार के लिये संघर्ष करने वाली श्रेणी के हाथ में नहीं बल्कि स्थिति को यथावत रखने का यत्न करने वाली श्रेणी के हाथ में हैं। जब स्थिति को यथावत ही रखना हो तो स्थिति की चिन्ता न करने और संतोष की भावना का वातावरण बनाकर दिल बहलाव की बातें करना ही उपयोगी होगा। इंगलैण्ड के पत्र यही करते भी है।

इंगलैण्ड को अपनी 'छापने की स्वतंत्रता' (लिबर्टी आफ प्रेस) का बडा गुमान है। छापने की यह स्वतंत्रता उन्हीं लोगों के लिये तो हो सकती है जो पत्रो या प्रेसों के मालिक हैं। इंगलैण्ड में 'डेली वर्कर' जैसे एकाध सीमित साधन पत्र को छोड़कर सभी पत्र तीन-चार लार्ड लोगों की सम्पत्ति हैं। इंगलैण्ड की पूँजीवादी व्यवस्था के मूल स्तम्भों को पूरी स्वतंत्रता क्यो न हो? व्यवस्था को तो उन्हीं लोगों की स्वतंत्रता से भय होता है जो व्यवस्था को पलटने का यत्न कर रहे हों। इंगलैण्ड में कई-कई पृष्ठों के पत्र तीन-चार पेंस में बिकते हैं। यदि आप उतना कागज बिना छपा खरीदना चाहें तो इस मूल्य में नहीं मिल सकेगा। जाहिर है कि पत्रों का खर्चा सर्वसाधारण पाठक नहीं देते बल्कि इन पत्रों में अपने विज्ञापन छपवाने वाली श्रेणी देती है। ऐसी अवस्था में 'पत्र' से आप आशा क्या कर सकते हैं? वह "जिसका खाय उसका गाय"! इंगलैण्ड में पत्रों पर पूँजीपति श्रेणी का एकाधिपत्य होने से इस श्रेणी को निश्चय ही जनमत बनाने की पूर्ण स्वतंत्रता है क्योंकि उनके विरोध में बोल सकने के साधन किसी के पास नहीं। पत्र स्वामियों की यह स्वतन्त्रता

वैसी ही है जैसे निशस्त्र भीड़ में दो चार लाठीबंद लोगों को लाठी के उपयोग की पूरी स्वतंत्रता दे दी जाय।

पत्रों पर पूँजीपति श्रेणी के एकाधिकार और इस श्रेणी की पूर्ण स्वतंत्रता का यह परिणाम है कि इंगलैण्ड की सर्वसाधारण जनता साक्षर होकर भी राजनैतिक दृष्टि से पूर्णतः अचेतन है। हमारे देश में तीसरे दर्जे की गाड़ी में सफर करने वाले अशिक्षित समझे जाने वाले लोगों में कुछ ही मिनट में बातचीत आरम्भ हो जायेगी और यह बात अनिवार्य रूप से राजनैतिक विषय की ओर झुक जायेगी। लंदन में अपरिचितों में बात चलने का रिवाज ही नहीं है। यदि बात हो ही जाय तो राजनैतिक समस्या पर बात प्रायः नहीं होगी। पहले मौसम की चर्चा, उसके बाद फुटबाल के मैच की और फिर किसी दूसरी दुर्घटना की। उदाहरणतः लंदन से लीड्स जाते समय 'पुलमैन कार' में पूरा समय इसी विषय पर चर्चा होती रही कि अब इंगलैण्ड टैनिस, दौड़, साइक्लिग, क्रिकेट आदि खेलों में संसार के सर्वोत्तम खिलाड़ियों के पदक क्यों नहीं जीत सकता? इसका कारण इंगलैण्ड में भोजन का स्तर गिर जाना है या खेलों की ओर उचित ध्यान न दिया जाना? यह अनुमान कर लेना कि इंगलैण्ड की सर्वसाधारण जनता की राजनीति के प्रति विरक्ति इंगलैण्ड के सभी सामाजिक स्तरों में मौजूद है, भारी भूल होगी। राजनीति में इंगलैण्ड की पूँजीपति श्रेणी अथवा शासक वर्ग से अधिक कौन सतर्क हो सकता है? न केवल इंगलैण्ड के ही बारे में बल्कि संसार के सभी देशों के बारे में अत्यन्त यथार्थ और विश्वास योग्य विश्लेषण भी आप इंगलैण्ड में पा सकते हैं। यदि ये लोग इतने ही भोले होते तो संसार के सबसे बड़े साम्राज्य और व्यापार की व्यवस्था कैसे चला पाते? आज जब उनकी स्थिति बदल रही है तब भी जिस चातुर्य से वे फिसलती शक्ति को सम्भाले हैं, वह प्रशंसा की ही बात है। राजनैतिक समस्याओं से विरक्ति का मूल कारण इंगलैण्ड के पत्रों द्वारा बनाया गया सामाजिक वातावरण ही है। यह पत्र रूढ़ि की रक्षा करने वाली (कंजर्वेटिव) श्रेणी की सम्पत्ति हैं। रूढ़ि की रक्षा से ही इस श्रेणी की यथावत स्थिति की रक्षा हो सकती है इसलिये वे रूढ़ि की रक्षा को ही नैतिकता और संस्कृति का नाम दे देते हैं।

एक स्कूल में घटी छोटी-सी घटना भी इंगलैण्ड में रूढ़िवाद को मान्यता देने के प्रयत्न का उदाहरण समझी जा सकती है:—लंदन की एक नाट्य-क्लब की ओर से एक अभिनय किया गया। इस अभिनय में लड़कियों के किसी हाई-स्कूल की एक छात्रा ने स्ट्रीट-गर्ल की भूमिका की। छात्रा ने अभिनय इतना अच्छा किया कि पत्रों में भी उनकी चर्चा हुई। कुछ पत्रों ने टिप्पणी की कि पन्द्रह वर्ष की लड़की के लिये स्ट्रीट-गर्ल के भावों का इतनी गहराई और पूर्णता से अभिनय कर देना असाधारण प्रतिभा का प्रमाण है। लड़की की असाधारण प्रतिभा की चर्चा और अभिनय की इस प्रशंसा की प्रतिक्रिया भी हुई। दूसरे पत्रों ने समाज की ऐसी गन्दगी को प्रकाश में लाने वाले नाटक पर प्रतिबंध लगा दिया जाने की माँग की और लिखा कि ऐसा अभिनय एक कुमारी से करवाना अत्यन्त अनैतिक है? इस सनसनी के कारण स्वर्गीय राजमाता मेरी भी अभिनय देखने गईं और छात्रा की सफलता पर बधाई देने के लिये उससे हाथ मिला आईं। यह सब हो

जाने के बाद भी हाई-स्कूल ने छात्रा को निकाल दिया। छात्रा को यह दण्ड देने का कारण बताया गया कि जिस पूर्णता से उसने अभिनय किया है, उससे प्रकट होता है कि वह इन कुकर्मों की भावनाओं से खूब परिचित है। उसका स्कूल में रहना स्कूल की लड़कियों के शील और भोलेपन पर कलंक है। लड़की के पिता ने भी आरम्भ में बेटी के ऐसा अभिनय करने पर आपत्ति की थी परन्तु लड़की को एक अच्छी बड़ी नाटक कम्पनी में नौकरी मिल जाने के कारण वे रूढ़िवाद के सम्मुख सिर न झुकाने का साहस पा गये।

अंग्रेजों की राजभक्ति भी विदेशी लोगों के लिये एक मनोवैज्ञानिक पहेली है। यह याद दिलाने की आवश्यकता नहीं कि ग्रेट ब्रिटेन की शासन व्यवस्था में राजा या रानी का अस्तित्व केवल शोभा मात्र है परन्तु इंगलैण्ड की भद्र श्रेणी का एक अंश जिस उत्साह से राजभक्ति का प्रदर्शन करता है, वह विस्मयजनक है। मार्च मास में ही राजतिलक की तैयारियाँ दिखाई दे रही थीं। 'बर्किंघम महल' और 'वेस्टमिंस्टर' गिरजे के रास्तों में राजतिलक का जुलूस देखने वालों के लिये मंच बनते जा रहे थे। उसी समय बहुत से लोगों ने हज़ारों रुपये दाम देकर स्थान सुरक्षित करवा लिये थे। यह भी सुना कि बहुत से लोगों ने स्थान अमरीकनों के हाथ बेचने के लिये ही सुरक्षित करवाये हैं। अस्तु जो भी हो, लंदन भर में राजतिलक के लिये नये किस्म के जेवर, नेकटाइयाँ, रूमाल और मग बिक्री के लिये बाजारों मे भर गये थे। अखबारों में गम्भीर चर्चा होती थी कि यह वस्तुएँ उचित रूप से सुन्दर नहीं बन रही। किसी भी प्रसंग से रानी की चर्चा पत्रों में आने पर उनके रूप-लावण्य की चर्चा भी हो जाती थी। रानी के बहुत से चित्र देखे हैं। सिनेमा के पर्दे पर तो सदा ही अन्त में वे, कभी घोड़े पर सवार और कभी पैदल, अपनी प्रजा की सलामी लेने के लिये प्रकट होती ही हैं, सौंदर्य का कोई आभास नहीं जान पड़ा परन्तु लंदन के पत्र यह लिखे बिना न रह सके कि हमारी महामहिम रानी अति सुन्दर नहीं, केवल समुचित रूप से सुन्दर अवश्य हैं........!

अंग्रेजी कानून के अनुसार रानी को असुन्दर समझना या उसके रूप और वेषभूषा की आलोचना करना अपराध है बल्कि दण्ड-विधान की एक धारा के अनुसार तो यदि कोई व्यक्ति रानी के साथ सहवास का स्वप्न देख ले तो उसे मृत्यु दंड का भागी होना चाहिये। दंड-विधान की यह धारायें तो प्राचीन परम्परा का अवशेष मानी जा सकती हैं परन्तु आज भी राजमहल पर पुरानी वेशभूषा में जो पहरा चौबीसों घंटे लगा रहता है वह अच्छे मजाक की चीज है। कई अंग्रेज ऐसे भी मिले जो राजभक्ति की इन बातों को हास्यास्पद समझते हैं परन्तु ऐसे लोग भी वहाँ मौजूद हैं जो युवराज के प्रत्याशित जन्म के समय एक-दो दिन पहले से 'बर्किंघम महल' के फाटक पर इसलिये लाइन लगाये खड़े थे कि युवराज के जन्म की घोषणा फाटक पर लगाई जाने पर उसे सबसे पहले पढ़ने का गर्व कर सकें। यह लोग लाइन में अपना स्थान न खो देने के लिये भोजन और चाय साथ ले जाते थे। इस प्रतियोगिता में बहुत वृद्धायें लाइन में बेहोश होकर गिरीं भी और इन घटनाओं को समाचार पत्रों के प्रथम पृष्ठों पर मोटे अक्षरों में छापकर अंग्रेज समाज ने गर्व भी अनुभव किया।

अंग्रेज अपनी पूरी शक्ति से विश्वास करना चाहता है कि विकास और उन्नति की आधुनिक स्पर्धा में उसकी समृद्धि और संस्कृति सबसे पुरानी है। इस चेष्टा ने अंग्रेजों में 'पुराने' के प्रति अनुराग को एक मानसिक रोग का रूप दे दिया है। वह प्रत्येक पुरानी चीज को सुरक्षित रखना चाहता है और यदि चीज पुरानी न हो तो उसे पुरानी प्रमाणित करने की चेष्टा करता है। पुरानापन ही उसके आदर और संतोष के लिये पर्याप्त कारण है। पुराने के प्रति श्रद्धा का यह वातावरण उसकी चेतना को मूढ़ कर देने में काफी सहायक भी होता है। समाजवादी आर्थिक व्यवस्था के प्रति उनकी विरक्ति का एक कारण यह भी है कि वह व्यवस्था नयी है और उसे उन लोगों ने अपनाया है जो कल तक बिलकुल जंगली थे।

अंग्रेज परिपाटी और शील को जिस धैर्य और खूबी से निभाता है, उसकी तुलना नहीं है। शेर की झपट से बचने के लिये भी यदि लाइन लगी हो तो वे लाइन नहीं बिगाड़ेंगे, चाहे भय से मूर्छित होकर गिर पड़ें। दो आदमी अगर बेमतलब भी आगे पीछे खड़े हो जाय तो यह जानने के लिये किस बात के लिये लाइन लग रही है; एक और लाइन लग जायेगी। लंदन के शील और कर्त्तव्य परायणता का सबसे उत्कृष्ट उदाहरण है, लंदन की पुलिस का सिपाही। हृष्ट-पुष्ट छः फुटा आदमी और उस पर एक फुट ऊँचा सफेद टोप पहने। उसके पास बन्दूक-पिस्तौल तो क्या कभी बेत का टुकड़ा भी नहीं देखियेगा। राह चलते यदि आपका थैला फटकर सामान बिखर जाय तो वह उसे अपने कोट के दामन में समेटकर आपको समीप किसी सुविधा की जगह पहुँचा देगा। आपको गिरफ्तार भी करेगा तो धीमे स्वर में यही कहेगा—"जनाब क्षमा कीजिये, जरा थाने तक चलने का कष्ट उठाइये।" पुलिस के शील और विनय से ऐसा जान पड़ता है मानो लंदन में सरकार और शासन नाम की कोई चीज है ही नही परन्तु इस शील और विनय के दुशाले में व्यवस्था की वह कड़ाई छिपी है जिससे बच जाने की आशा आप नहीं कर सकते। इसी पुलिस की कृपा से इंगलैण्ड के जेलखानों में जगह की तंगी अनुभव हो रही है।

इगलैंड या लंदन मे भी पुलिस राजनैतिक दृष्टि से खतरनाक समझे जाने वाले लोगों पर गुप्त चौकसी रखती है, उनका पीछा करती है परन्तु विनय और शील की रक्षा करके। अंग्रेजी शासन का अपनी शक्ति में यह विश्वास ही उन्हें इतना विनयी बनाये है। इंगलैंड की व्यवस्था में इस शील और विनय के लिये उनकी उचित प्रशंसा करते हुए यह भी नहीं भुला दिया जा सकता कि इस व्यवहार का विकास डेढ़ सौ वर्ष की समृद्धि में शनैः शनैः हो पाया है। नयी व्यवस्थायें, जिनके सिर पर विदेशी आक्रमण का भय और विदेशी षड़यंत्रों द्वारा उनके देश में विद्रोह और विश्वासघात के प्रयत्न सदा चालू रहते हैं, ऐसी निश्शक मानसिक अवस्था सरलता से और बहुत जल्दी नहीं पा सकतीं।

समृद्धि और दैन्य

यह सुनकर कि सोवियत में बहुत से किसान-मजदूर अपनी निजी मोटरें रख सकते हैं और उनके रहन-सहन का ढंग पूँजीवादी देशों की मध्यम श्रेणी से भी अधिक बेहतर होता

जा रहा है, पूँजीवादी समाज के लोगों को संदेहजनक विस्मय होता है। अभी तीस वर्ष पूर्व तक सोवियत राष्ट्रसंघ के अन्तर्गत देश पूँजीवादी व्यवस्था को अपनाये देशों की अपेक्षा औद्योगिक रूप से बहुत पिछड़े हुए थे। उस समय सोवियत राष्ट्रसंघ के सर्वसाधारण की आर्थिक अवस्था अन्य औद्योगिक देशों की जनता की अपेक्षा बहुत दीन थी। यदि समाजवादी क्रान्ति के बाद सोवियत राष्ट्रसंघ में बहुत तेजी से औद्योगिक प्रगति हुई है, उन्होंने अपनी पैदावार की शक्ति को बढ़ा लिया है तो दूसरे औद्योगिक देशों की पैदावार की शक्ति भी इस समय में लगातार बढ़ती ही रही है। आज भी सोवियत में बने सामानों की तुलना में इंगलैंड और अमरीका में बने सामान किसी प्रकार घटिया नहीं, अनेक चीजें बढ़िया ही दिखाई देंगी। इंगलैंड के सर्वसाधारण की निरंतर गिरती जाती अवस्था को ध्यान में रखकर यात्री सोवियत में जैसी समृद्धि आँखों से देख आते हैं, वह सम्भव कैसे हो सकती है?

दूसरी ओर जब सोवियत के लोग यह सुनते हैं कि इंगलैड या पूँजीवादी देशों में सर्वसाधारण जनता की बहुत बड़ी संख्या अपनी आमदनी पर कोई कर नहीं देती और इंगलैड में तो कुछ लोग अपनी आमदनी का ९०% तक कर में दे देते हैं। कोई कर न देने वाले लोग आय कर से मुक्त होकर भी अपनी नितांत आवश्यकताओं को भी पूरा करने में असमर्थ रहते हैं और ९०% कर दे देने वाले इतना कर देकर भी इतना पा लेते है कि सोवियत के सम्पन्न के सम्पन्न व्यक्तियों से भी अधिक खर्चा करके भी वे भविष्य मे अपने कारोबार को फैलाने के लिये भी पूँजी बचा सकते हैं तो उन्हें विस्मय होता है। सोवियत के लोग जब यह सुनते हैं कि पूँजीवादी देशों में उत्पादन के नवीनतम साधन होते हुए, श्रमिकों की काफी संख्या रहते हुए और समाज में वस्तुओं का अभाव रहते हुए भी पैदावार को इसलिये बन्द करना पड़ता है कि खपत नहीं हो सकती तो उन्हें विश्वास नही होता।

सोवियत में समाज के भिन्न-भिन्न अंग वस्तुओं का उत्पादन समाज की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये करते हैं। सामाजिक योजना के अनुसार उत्पादन उन्हीं वस्तुओं का किया जाता है जिनकी समाज में आवश्यकता होती है। ऐसी अवस्था में उत्पादन की खपत न हो सकने का प्रश्न आ ही कैसे सकता है? पदार्थो की खपत समाज की खरीद सकने की शक्ति पर निर्भर करती है। सोवियत के आर्थिक दृष्टिकोण के अनुसार समाज की पैदावार की शक्ति बढ़ने पर समाज के लोगों की क्रय शक्ति बढ़ाना आवश्यक है क्योंकि समाज की पैदावार समाज के व्यक्तियो में बँट जाती है। समाज में पैदावार और उसके बँटवारे के सम्बन्ध में जो क्रम सोवियत में व्यवहार मे लाया जा रहा है वैसा ही क्रम पूँजीवादी समाज में चालू नहीं है। इंगलैंड की आर्थिक व्यवस्था में समाज की पैदावार की शक्ति और पैदावार बढ़ने पर पैदावार उसे उत्पन्न करने वालों में नही बँट जाती बल्कि विदेश चली जाती है। विदेश से आये धन में से मजदूर वर्ग को कठिनाई से निर्वाह मात्र के लिये देकर शेष चला जाता है समाज के गिने-चुने लोगों की जेब में, जो इंगलैंड में पैदावार के साधनों के मालिक है। मजदूर और निम्न वर्ग जितना उत्पन्न करता है उतना खरीद नहीं पाता।

इंगलैंड की राष्ट्रीय पैदावार में से मजदूर को इतना कम भाग मिलता है कि उससे आय कर भी नहीं माँगा जा सकता और पूँजीपति के पास इतना अधिक चला जाता है कि वह अपनी आय का ९०% से भी अधिक कर ले लिया जाने की दुहाई दे, राष्ट्रीय शहीद बनकर भी अपने पैदावार के साधनों को बढ़ाता चला जाता है। इसी प्रक्रिया का परिणाम है कि इंगलैंड में सर्वसाधारण की क्रय शक्ति तो क्षीण होती चली जा रही है परन्तु साधनों के मालिक पूँजीपतियों की पैदावार की शक्ति बढ़ती चली जा रही है। वे पूँजी का रूप लिये अपनी पैदावार की शक्ति से अपने देश में मुनाफा कमाने का अवसर न देख इस पूँजी को दूसरे देशों में लगाते हैं। इसी सिद्धान्त पर चलने के कारण पूँजीवादी देशों की आर्थिक नीति साम्राज्यवाद का रूप ले लेती है। ये देश अपने निर्वाह के लिये उपनिवेशों और औद्योगिक रूप से अविकसित देशों के बाजारों की माँग करते हैं। उनकी आपसी होड़ अन्तर्राष्ट्रीय युद्धों को जन्म देती हैं। मुनाफे के रूप में दूसरे देशों की लूट इन अविकसित देशों की क्रय शक्ति को भी क्षीण कर देती हैं। परिणाम होता है, पूँजीवादी जगत में अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक संकट अर्थात् खपत की कमी, पैदावार की शक्ति का उपयोग में न आ सकना और बेकारी।

पूँजीवादी समाज में पैदावार की शक्ति बढ़ते जाने पर भी सर्वसाधारण की क्रय शक्ति के घटते जाने के कारण उनके भूखों मरने और नगे रहने की परिस्थिति आ जाती है। पूँजीवादी विकास अपने ही समाज की हत्या करने लगता है। ऐसी अवस्था में इंगलैंड जैसी व्यवस्था को भोजन और वस्त्रों के मूल्य घटाने के लिये इन व्यवसायों में क्षतिपूर्ति के लिये सरकारी सहायता (सबसीडी) देनी पड़ती है। इंगलैंड में दूध, मक्खन, मांस और रोटी पर सबसीडी है। शरीर ढकने के लिये आवश्यक कपड़ों पर भी सबसीडी है। बेरोजगारी का बीमा है और स्वास्थ्य रक्षा सम्बन्धी बीमा भी है। प्रत्येक नागरिक को अपना नाम किसी एक डाक्टर के यहाँ दर्ज करा देना पड़ता है। बीमार होने पर वह डाक्टर से नुसखा ले सकता है और नुसखे से किसी भी दुकान से दवाई ले सकता है। यह सब खर्च सरकार उठाती है। इसके लिये सोशलिस्ट सरकार ने यह स्वास्थ्य सेवा बिलकुल मुफ्त कर दी थी। नागरिकों को अपनी आमदनी में से कुछ कर देना पड़ता है। अब पूँजीवादी सरकार हो जाने पर दवाई की दुकान पर एक शिलिंग देना पड़ता है। दूसरी सब सबसीडीज भी घट रही हैं और दाम बढ़ रहे हैं।

इन सब सार्वजनिक सहायताओं का खर्च पूरा करने के लिये जीवन के लिये नितांत आवश्यक न समझी जाने वाली वस्तुओं सिगरेट, शराब, रेशम, मोटरकार, कैमरा, बाइसिकल पर भारी क्रय कर हैं। मजदूरी के लिये क्षुधार्त मजदूरों की आपसी होड़ मजदूरी को कम ही न करती चली जाय, इसके लिये न्यूनतम मजदूरी भी निश्चित कर दी गई है। मजदूर वर्ग की रक्षा के लिये पूँजीवादी सरकार की यह सब चिन्तायें ठीक वैसी ही हैं जैसे कभी-कभी या खास-खास मौसमों में सरकारी आज्ञा से जंगली जानवरों के शिकार की मनाही कर दी जाती है। ऐसी सरकारी आज्ञा का कारण यह नहीं होता है कि सरकार लोगों के शिकार के शौक या मांस की आवश्यकता की अपेक्षा जंगली जानवरों के

जीवन को अधिक महत्त्व देती है बल्कि यह कि सरकार शिकार का शौक भविष्य में भी पूरा हो सकने और ऐसे मांस के स्रोत की सम्भावनाओं को समाप्त नहीं हो जाने देना चाहती। मजदूरों और निम्न-मध्य वर्ग पर ऐसी कृपा पूँजीवादी सरकारें राष्ट्रीय सेवा की नीति का नाम देती हैं।

इंगलैंड का मध्य वर्ग या निम्न-मध्य वर्ग सफेदपोश सरकार की इस राष्ट्रीय-सेवा की नीति से बहुत आहत अनुभव करता है। वह समझता है कि सरकार उनकी जेबें खाली करके मजदूरों का मिजाज बढ़ाती और उनकी खुशामद करती है। कारण यह है कि मध्य वर्ग पूँजीपति शासक वर्ग की भाँति सचेत और दूरदर्शी नहीं और पूँजीपति वर्ग अपने ऊपर पड़ने वाले राष्ट्रीय बोझ का काफी भाग क्रय करों और दूसरे करों के रूप में मध्य वर्ग के कंधे पर खिसका देता है। इंगलैंड के मजदूर भी यह न समझकर कि पूँजीपति की जेब में गई हुई उन्हीं के पसीने की कमाई का कुछ अंश उनके लिये खर्च किया जा रहा है, बहुत अनुगृहीत अनुभव करते हैं। जब पूँजीवादी सरकार मजदूरों का तन ढांकने या पेट भरने की अपेक्षा जंगी-जहाजों और जंगी-विमानों के लिये खर्च करना अधिक आवश्यक समझ भोजन वस्त्र पर दी जाने वाली सरकारी सहायता (सबसीडी) बन्द कर युद्ध की तैयारी पर अधिक व्यय करने लगती है, तो मजदूर अपने आपको निस्सहाय अनुभव करने लगते हैं। उस समय उन्हें कम्युनिज्म की बर्बर संस्कृति का भय दिखाकर प्रेम का उपदेश दे दिया जाता है।

न केवल इंगलैंड का निम्न वर्ग ही बल्कि पूरा अंग्रेज समाज और ब्रिटिश राष्ट्र इस समय दैन्य और विवशता अनुभव कर रहा है। वह जानता है कि आज न केवल वह अन्तर्राष्ट्रीय नीति और स्थिति का नियंत्रण नहीं कर सकता बल्कि वह स्वयं अपने राष्ट्र की नीति निश्चित करने में भी स्वतन्त्र नहीं। राजनैतिक रूप से सचेत अंग्रेज अनुभव करते हैं कि उन्हें जबरदस्ती कोरिया के युद्ध में और कम्युनिस्ट-विरोधी गुट में खींचा जा रहा है। उनके क्षीण हो गये साधनों को अपनी समस्यायें सुलझाने में न लगाने देकर जबरदस्ती सैनिक तैयारियों में लगाया जा रहा है। अमरीका का यह दमन केवल अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में ही नहीं अंग्रेज के नागरिक जीवन में भी हैं। लंदन में अमरीकन आज इस तरह टेड़ी गर्दन करके घूमते हैं जैसे कोई ठेकेदार अपने कारोबार के मजदूरों का काम देख रहा हो! इंगलैंड में कोई सामाजिक अपराध कर देने पर भी अमरीकनों पर इंगलैंड के साधारण कानून द्वारा अंग्रेजी अदालत मामला नहीं चला सकती। आज इंगलैंड में अमरीकन की वही स्थिति है जो भारत में अंग्रेजी राज के समय अंग्रेज की थी और स्वयं अंग्रेज की वह दशा जो अंग्रेजी राज में भारतीयों की अपने देश में थी। लंदन में अमरीका के फैशनों की भी नकल होने लगी है। कुछ दुकानों पर 'अमेरिकन फैशन्स' और 'न्यूयार्क स्टाइल' के बोर्ड भी दिखाई दे जाते हैं।

. इंगलैंड की औद्योगिक शक्ति और निपुणता से इनकार नहीं किया जा सकता। यह नहीं कहा जा सकता कि सोवियत की औद्योगिक निपुणता और चातुर्य इंगलैंड से अधिक

है। इस तुलना की आवश्यकता भी क्या? परन्तु यह तथ्य सामने है कि अपने सम्पूर्ण औद्योगिक विकास और चतुरता की बावजूद इंगलैंड युद्ध के धक्के से फिर उठ सकने के लिये अमरीका की सहायता का मोहताज है और सोवियत अमरीका से सहायता की अपेक्षा धमकियाँ ही पा रहा है। युद्ध के बाद इंगलैंड अपने ध्वंस को भी पूरा नहीं कर पाया। सोवियत इंगलैंड से कई गुणा बड़ा नुकसान सहकर भी न केवल अपनी हानि पूरी कर चुका है बल्कि नवनिर्माण में भी बहुत आगे बढ़ गया है। इंगलैंड में सर्वसाधारण के सामने दामों के बढ़ने की विभीषिका खड़ी है और सोवियत में दाम गिरते जा रहे हैं। इंगलैंड में दामों के गिरने से बेकारी की आशंका होती है। सोवियत में दाम गिरना सामाजिक समृद्धि समझी जाती है। इस अंतर का मूल हैं उनकी भिन्न-भिन्न आर्थिक व्यवस्थाओं में। एक व्यवस्था सामाजिक उत्पादन को समाज के हाथ में दे समाज की क्रय शक्ति या उसकी आवश्यकता पूर्ति की शक्ति बढ़ाती है दूसरी व्यवस्था सामाजिक उत्पादन को कुछेक पूँजीपति साधन-स्वामियों के हाथ मे दे समाज की उत्पादन की शक्ति को तो बढ़ाती है परन्तु उत्पादन की खपत की शक्ति को कम कर देती है। इंगलैंड अपनी औद्योगिक पैदावार को विदेशों में खपाना चाहता है। सोवियत की औद्योगिक पैदावार स्वयं उसी देश की प्रजा खपा सकती है। स्वाभाविक ही सोवियत की प्रजा अधिक संतुष्ट दिखाई देती है।

आर्थिक कठिनाइयाँ और जीवन की सकीर्णता अनुभव करके भी इंगलैंड की प्रजा का विश्वास है कि वह वैधानिक और व्यक्तिगत स्वतत्रता का सुख पा रही है जो सोवियत की प्रजा के लिये दुर्लभ है। अभाव और आवश्यकताओं से पीड़ित व्यक्ति अधिक स्वतंत्रता अनुभव कर सकते हैं और अधिक महत्त्वाकांक्षी हो सकते हैं या ऐसे व्यक्ति जिन्हें अपनी आवश्यकतायें पूरी करने का अवसर है? यह बात सोचने लायक चेतना इंगलैड के वातावरण में उत्पन्न ही नहीं होने दी जाती। इगलैड के सर्वसाधारण नागरिक वास्तव में ही व्यवस्था का बन्धन अनुभव नहीं करते क्योंकि उनमें व्यवस्था को बदल देने की चेतना ही नहीं जाग सकी। जिस दिन उनमे यह चेतना जागेगी और वे ऐसा प्रयत्न करने का अवसर और अधिकार चाहेंगे, उनका व्यक्तिगत स्वतंत्रता का स्वप्न भंग हो जायेगा और वे सब ओर बधन ही बधन अनुभव करेंगे।

राहबीती

समर्पण

मेरी पूर्वी यूरोप की यात्रा का यह वर्णन
यात्रा का अवसर देने वाले अपने अतिथियों
और इस यात्रा के अनुभवों के प्रति
जिज्ञासु पाठकों को समर्पित है।

—यशपाल

राहबीती

तीसरी बार यूरोप जाने का निमंत्रण मिला तो उल्लास से किलक उठने का कारण नहीं था। यह निमंत्रण चेकोस्लोवाकिया की राजधानी प्राग में लेखकों की कांग्रेस में सम्मिलित होने के लिये था। कुछ समय से भारत के लेखकों को सामूहिक प्रयत्न के लिये संगठित करने, लेखकों को स्वतन्त्रता की रक्षा के लिये सचेत होने और राष्ट्र-निर्माण में लेखकों का सामूहिक सहयोग पाने के प्रश्नों पर बातें चल रही हैं। इन प्रयत्नों और प्रवृत्तियों से मैं भी उदास नहीं हुआ हूँ। ऐसी समस्याओं के प्रति दूसरे देशों के लेखकों के दृष्टिकोण क्या हैं, यह जानने का अवसर था। तार से मिले निमंत्रण की स्वीकृति तार से प्राग भेज दी और आकाश यात्रा के लिये तैयार हो गया।

विमान में पहली बार पृथ्वी से ऊपर उठने पर नीचे देखने का अदम्य कौतूहल होता है। मैं तो बहुत बार विमान से यात्रा कर चुका हूँ, फिर भी रात में आकाश से बम्बई की रोशनी आकर्षक मालूम होती ही है। सामन्तवादी साहित्य की उपमा देनी हो तो कहा जायेगा, पृथ्वी सूर्य से नये मिलन की उत्कंठा और आशा में रात के अंधेरे में शृंगार करने के लिये सूर्यकान्त मणियों के अगणित हार, मेखलाएं और लड़ियां फैलाये है। जनवादी साहित्य में शायद कहा जायेगा, सूर्य के दमन और उत्ताप से मुक्त होने पर पृथ्वी असंख्य नेत्रों से प्रकाशमान हो उठी है। जो भी हो, यह दृश्य कुछ ही पल के लिए दिखाई पड़ता है। विमान की गति तो प्रायः कल्पना के समान तीव्र होती है। विमान रात के ठीक बारह बजे बम्बई से उठा था। विमान की चुस्त परिचारिकाओं ने कुर्सियों के बटन दवाकर उन्हें फैला दिया। यात्री कुर्सियों पर यथा-सम्भव पसर कर आँखें मूंदने लगे। छत पर लगी रोशनी बुझा दी गई। सुबह आठ बजे, दो हजार मील लांघकर मिस्र की राजधानी कैरो में ही विमान को पृथ्वी पर उतरना था।

विमान में प्रत्येक कुर्सी के ऊपर भी छोटी-सी रोशनी लगी रहती है। इच्छा होने पर दूसरों को चौंधियाये बिना जब तक चाहे पढ़ा जा सकता है। नींद नहीं आ रही थी परन्तु दूसरों की देखादेखी आँखें मूंद लीं। सोच रहा था, एक झपकी में दो हजार मील से अधिक दूर उड़ जायेंगे। मामूली बात नहीं है। यह भी खयाल आया कि इतने बड़े साधनों और साज-सज्जा के सहारे हम आकाश यात्रा कर रहे हैं। हमारे ऋषि तो योग बल से अथवा तंत्र बल से, स्थानान्तरण सिद्धि द्वारा एक स्थान से दूसरे स्थान पर उड़ आया करते थे। ऐसी सिद्धि प्राप्त करने के लिये जीवन भर के तप की आवश्यकता होती थी। आज तप का स्थान विमान-यात्रा के टिकट ने ले लिया है। रेडियो की सहायता से दस-बीस हजार मील दूर का समाचार भी सब लोग सुन सकते हैं। मनुष्य की शक्ति यह सब

आविष्कार के तप का फल है। अध्यात्मवादी तप का फल तपस्वी व्यक्ति तक ही सीमित रहता था। वैज्ञानिक आविष्कारों के भौतिक तप का फल पूरा समाज भोग सकता है। आखिर नींद आ ही गई।

"चाय लेंगे या काफी ?" सुनकर आँखें खोलीं।

सामने युवती का मुस्कान भरा चेहरा था। पलक झपक कर समाधान किया, आकाश विचरण कर रहा हूँ अवश्य, परन्तु स्वप्न तो नहीं देख रहा हूं। बात सोमरस अथवा अमृत की नहीं, चाय-काफी की ही है। सामने स्वर्ग की अप्सरा नहीं, इंडिया इंटरनेशनल की विमान परिचारिका (एयर होस्टेस) ही है। सूर्योदय हो चुका था। नीचे बहुत दूर असीम मानचित्र की तरह फैली हुई पृथ्वी पर रेतीले मैदान, बंजर पहाड़ियां और समुद्री खाड़ियों के तट दिखाई दे रहे थे। चाय के साथ ही नाश्ता आरम्भ हो गया। बच्चों को लेकर यात्रा करते समय चतुर माँ खाने के लिये पर्याप्त सामग्री रख लेती है। बच्चे यात्रा में कुछ न कुछ खाते ही रहना चाहते हैं। विमान की परिचारिकाएँ सभी यात्रियों को वैसा ही समझती हैं। कुछ न कुछ खिलाते ही रहना चाहती हैं। खाने का समय न हो तो टाफी, लेमन-ड्राप्स की तश्तरी ही सामने करती रहती हैं।

इधर तीन बरस से विमानों में यात्रियों की दो श्रेणियाँ बना दी गई है। पूरा समाज ही श्रेणियों में बंटा है तो विमान ही कैसे बचा रहे। फर्स्ट क्लास के यात्रियों को तो फर्स्ट क्लास ही कहा जाता है परन्तु दूसरी श्रेणी के यात्रियों का मन रखने के लिये उन्हें टूरिस्ट क्लास कह दिया जाता है। फर्स्ट क्लास के यात्रियों के लिये खाने के समय से पहले और बाद में टिकट के मूल्य में ही अनेक प्रकार की मदिरा भी यथेष्ट मात्रा में प्रस्तुत की जाती है। भारत सरकार मद्य को अनैतिक समझती है। भारत के विमान अब राष्ट्रीय नियंत्रण में हैं। विदेश जाने वाले विमानों में मद्य निषेध की नीति का विकल्प है क्योंकि यात्रियों को दूसरे राष्ट्रों के विमानों के अनुसार सुविधा देने की व्यावसायिक होड़ का प्रश्न भी तो है!

कैरो में तेल भरने के लिये विमान को प्रायः घंटे भर तक रुकना पड़ता है। यात्रियों को यह समय न खले इसलिये शरबत, चाय, काफी और पेस्ट्री का प्रबन्ध कर दिया जाता है। प्रतीक्षालय में स्मृति के उपहारों की दुकानें हैं। हाथी दांत और पीतल का सामान लखनऊ, दिल्ली या हैदराबाद की बनावट से बहुत मिलता-जुलता जान पड़ता है। शायद वह भारत से ही जाता है वर्ना साम्य विस्मयजनक है। मूल्य में भारी अन्तर है। उस मूल्य से केवल अमरीकन या यूरोपियन यात्री ही आकर्षित हो सकते हैं इसलिये यह दुकानदार भारतीय यात्रियों को देखकर विशेष उत्साहित नहीं होते। कैरो के विमान अड्डे पर लोग अपने रूप, रंग के भेद से भिन्न भिन्न काम करते दिखाई देते हैं। अफसर गौर वर्ण और सुस्वरूप हैं। बैरागिरी और कुली का काम काले रंग और लम्बी गर्दन के दूसरी ही नस्ल के लोग करते हैं।

विमान में बैठते ही पान और भोजन आरम्भ हो गया। भोजन के बाद जरा ऊँघ आई थी कि एयर होस्टेस (इसके लिये यदि परिचारिका शब्द ठीक नहीं तो वैमानिका क्या

बुरा है?) ने टाफी, लेमन-ड्राप्स की तश्तरी सामने कर मुस्करा कर सूचना दी—"रोम के अड्डे पर उतर रहे हैं।"

विमान प्रायः पन्द्रह से अठारह हजार फुट की ऊँचाई पर उड़ता है। बाहर इतनी सर्दी रहती है जितनी सदा हिम से ढँके रहने वाले पर्वत शिखर पर होनी चाहिए। भीतर ऐसा कि गरम कपड़े खलते नहीं और उनकी आवश्यकता भी अनुभव नहीं होती। नीचे देखा तो पृथ्वी भूरे कम्बलों के पर्दों की ओट में थी। विमान बादलों के इस आवरण को बेधकर नीचे आया। पृथ्वी पर रिमझिम बूंदाबूंदी हो रही थी। विमान से निकलने पर गरम कोट, जो बम्बई में संकट जान पड़ रहा था, सुखद जान पड़ने लगा। यह भी पछतावा हुआ कि ओवरकोट साथ क्यों नहीं लिया।

रोम

विमान बदलने के लिये रोम में बीस घंटे ठहरना आवश्यक था। रोम पहले कभी देखा नहीं था। कीर्ति तो सुनी ही थी। यात्रा में यह व्याघात अप्रिय नहीं लगा। विमान के अड्डे से नगर जाने के लिये बस में बैठा तो ड्राइवर ने टिकट हाथ में थमाकर पांच सौ लीरा माँग लिए।

इटली का सिक्का लीरा कहलाता है। पांच सौ सुनकर विस्मय प्रकट करने के लिए ड्राइवर के मुख की ओर देखा। वह बिलकुल तटस्थ था। अंग्रेजी समझता न था। भारत में भ्रम है कि अंग्रेजी अन्तर्राष्ट्रीय भाषा है। यूरोप में प्रवेश करते ही यह भ्रम दूर हो जाता है। यात्रा की हुंडियां (ट्रेवलिंग चेक) दिखाकर उसे आश्वासन दिया कि नगर के दफ्तर में पहुंचकर हुंडी तुडाकर दाम दे दूंगा। एक सौ दस लीरा का मूल्य प्रायः एक रुपये के बराबर होता है। उतने से फासले के लिये यह अधिक ही था। जैसे किसी समय कश्मीर के लोगों की प्रवृत्ति थी, रोम के लोग भी यात्रियों की जेब से पैसों का बोझ हलका कर देने के लिये व्यग्र रहते हैं।

हमारे देश में तो अब भाव-तोल करने का चलन कम हो रहा है परन्तु इटली, फ्रांस, मिस्र और अदन में भाव-तोल खूब चलता है। इटली में सौ लीरा दाम बताकर साठ या उससे भी कम ले लेना असाधारण बात नहीं है। भाव-तोल क्या; बख्शीश और रिश्वत की आशा ही नहीं की जाती, बल्कि माँग भी ली जाती है। बख्शीश और रिश्वत का सम्बन्ध मनुष्य के आत्मसम्मान से रहता है। जब पेट निरंतर खाली रहता है, मनुष्य की रीढ़ सूखे से मर गई फसल की तरह गिर जाती है। युद्ध के बाद फ्रांस, इटली, आस्ट्रिया और जर्मनी आदि की अवस्था बहुत गिर गई थी और उसके साथ ही वहाँ के लोगों का आत्म-सम्मान भी। आत्म-सम्मानी व्यक्ति बिना कमाये माँग कर या बख्शीश के रूप में कुछ स्वीकार नहीं कर सकता। वियाना का अनुभव है कि डाक-घर से टिकट कार्ड खरीदने पर यदि फिरती के पैसे तुरन्त न उठा लिये जायें तो डाक कर्मचारी पैसे समेट कर बख्शीश के लिये मुस्कराकर धन्यवाद दे देगा।

फ्रांस और इंगलैंड में व्यवहार का अन्तर छोटी-सी बात से समझा जा सकता है। वियाना से रेल द्वारा लन्दन जाते समय 'इंगलिश चैनेल' को जहाज से पार करना होता है। कैले में फ्रांस के कुली ने गाड़ी से जहाज में सामान रखने के लिये धौंस से दो रुपये माँग लिये। मुझे विस्मित देख उसने अधिकार-पूर्ण ढंग से उत्तर दे दिया—"यही दर है।" इंगलैंड के किनारे फोकस्टोन में उसी सामान की मजदूरी अंग्रेज कुली से पूछने पर उत्तर मिला, दर तो पांच ही आना है पर दस आने (एक शिलिंग) दे देने पर उसने भरपूर धन्यवाद भी दे दिया।

एक सहयात्री से फ्रांस का जो अनुभव सुना वह तो कहानी ही जान पड़ती है। किसी भी देश में प्रवेश करते समय पासपोर्ट और वीसा (राहदारी का परवाना और प्रदेश की अनुमति का पत्र) देखा जाता है। पासपोर्ट में व्यक्ति के परिचय के लिये उसका फोटो भी रहता है। दो वर्ष पूर्व यह सज्जन लन्दन से पैरिस जा रहे थे। पासपोर्ट दिखाने के लिये पांत में खड़े थे। पांत में तीन ही व्यक्ति थे परन्तु सबसे आगे खड़ा पासफोर्ट दिखाने वाला व्यक्ति हट ही नहीं रहा था। उन्होंने जानना चाहा, ऐसी कठिनाई क्या आ पड़ी है?

मालूम हुआ कि पासपोर्ट देखने वाला अधिकारी सबसे आगे खड़े व्यक्ति के पासपोर्ट को जाली बता रहा था। आपत्ति की जा रही थी—'तुम्हारा चेहरा पासपोर्ट में लगे फोटो से नहीं मिलता।'

ऐसी आपत्ति कर देने पर क्या सफाई दी जा सकती है? पासपोर्ट दिखाने वाले अमरीकन यात्री ने क्रोध प्रकट किया—"मैं कहता हूँ, यह मेरा फोटो है। यहाँ जो लोग खड़े हैं, उन्हें दिखाकर पूछ लिया जाये।"

पासपोर्ट देखने वाले कर्मचारी का कहना था—"तुम्हारा चेहरा और यह फोटो मेरे सामने है। किसी से पूछने का क्या मतलब?"

समीप खड़े फ्रांसीसी खलासी ने अमेरिकन यात्री को समझाया—"झगड़े में समय बरबाद करने से क्या लाभ? दो सौ फ्रांक (लगभग ढाई रुपये) उसे थमा दो और आगे बढ़ो।"

अमरीकन ने कर्मचारी को धमकाया—"दो सौ फ्रांक की तो कोई बात नहीं परन्तु याद रखना मैं संवाददाता हूँ, अखबार में ऐसी खबर लूंगा कि याद रखोगे।"

अधिकारी ने नि:शंक उत्तर दिया—"जो चाहे बकवाद कर सकते हो लेकिन तुम्हारे पास सबूत क्या होगा? याद रखना, सरकारी अफसर पर मिथ्या आरोप लगाना अपराध है........।"

यह वह फ्रांस है जो कुछ समय पूर्व यूरोप का शासक और संसार का सांस्कृतिक गुरु था। फ्रांस की भाषा और रीति-रिवाज संसार के लिये आदर्श थे। इंगलैंड की पार्लियामेंट तक में फ्रेंच ही बोली जाती थी। उस समय फ्रांस शस्त्र-शक्ति से यूरोप का विजेता था और सबसे पहले फ्रांस ही उपनिवेशों का धन-खींचकर समृद्ध बन सका था।

रोम यात्रियों के लिये महंगा ही है। अच्छे होटलों में चाय भर के लिये एक सौ लीरा दाम हो जाता है। बियर और अंगूरी शराब इससे कुछ कम में ही मिल सकती है। टैक्सी कीजिये तो दो-तीन फर्लांग मे ही तीन-सौ लीरा देने पड़ेंगे। दुर्भाग्य से उस दिन रविवार था और बूंदाबांदी भी। पैदल कुलीजियम देखने गया।

कुलीजियम का दो हजार वर्ष पुराना अस्तित्व रोम नगर के मध्य भाग में खड़ा ऐतिहासिक परिवर्तनों की साक्षी दे रहा है। इमारत इस समय खंडहर के रूप में है, परन्तु इस विराट खंडहर की अपनी भव्यता है। प्रायः छः सौ फुट लम्बी और पांच सौ फुट चौड़ी यह इमारत अंडाकार है। ऊंचाई डेढ़ सौ फुट से भी अधिक ही है। दोनों बांहों की फैलावट

से भी बहुत अधिक चौड़ी दीवारों पर बनी खूब ऊंची अस्सी मेहराबों पर पूरी रंगशाला सधी हुई है। संध्या का समय था। बूंदाबांदी भी थी। समीप के बाग में बेंचों अथवा घास पर बैठने का अवसर न था। अल्हड़ नवयुवक और नवयुवतियों के जोड़े एक-दूसरे की कमरों में बांहें डाले इन मेहराबों के भीतर पड़ी बड़ी-बड़ी शिलाओं पर एकान्त में बैठने के लिये स्थान खोज रहे थे। कुलीजियम की चिर-प्राचीन शिलाओं ने ऐसे ही कितने प्रणय-व्यापार देखे होंगे। बीते समय की साक्षी ये शिलायें इन प्रणय व्यापारों की नश्वरता से भी परिचित हैं और नश्वर प्रणय की अमर परम्परा को भी देखती आ रही हैं। इसके लिये यह सब क्रियाकलाप शायद वैसे ही स्वाभाविक हैं जैसे वर्षा और वायु।

कुलीजियम की रंगशाला में पांच मंजिलें हैं और बीच में आंगन। पांचों मंजिलों में लगभग सत्तासी हजार दर्शक एक साथ बैठकर मनोरंजन करते थे। यहाँ सशस्त्र योद्धा दर्शकों के विनोद के लिये आमरण युद्ध करते थे। आंगन में जल-कुंड बनाकर नौका युद्ध किया जाता था। यह युद्ध सिनेमा में होने वाली तलवारों की लड़ाई की तरह कृत्रिम नहीं होता था। रक्त बहता था, अंग कटकर गिरते थे और हत्याएं होती थीं। मनोरंजन के लिये मस्त मत्त सांडों और सिंहों से मनुष्यों का युद्ध देखा जाता था। देवालयों में देवताओं की पूजा के लिये आजन्म कौमार्य व्रत में दीक्षित कर दी गई नवयुवतियां भी इन समारोहों में सम्मिलित होती थीं।

इस विनोद का सबसे रोमांचक अंग होता था, हार जाने वाले योद्धा का सिर कटते हुए देखना। दर्शक पराजित योद्धा को प्राणदान देना चाहते हैं अथवा उसका सिर काटा जाने का दृश्य भी देखना चाहते हैं, इस प्रश्न का निर्णय प्रायः निष्पाप, कोमल हृदया देवबालाओं की अनुमति से ही होता था। यदि देवबालाएं पराजित को प्राण-दान देना चाहतीं तो अपने हाथ का अंगूठा ऊपर उठा देतीं। यदि उसके प्राणांत का दृश्य देखना चाहतीं तो अंगूठा नीचे झुका देतीं। इतिहास का कहना है कि देवबालाएं अधिकांश में युद्ध के विनोद से अतृप्त रहकर लाज से मुस्कराती हुई अंगूठे को नीचे झुका देने का ही संकेत करती थीं और कुलीजियम की पाचों मंजिलों में भरा जनसमूह देवबालाओं के निर्णय से आनन्द-विभोर हो उठता था। तब शायद दया नाम की अनुभूति ने मनुष्य की संस्कृति में स्थान नहीं पाया था।

दया, उदारता, सहनशीलता आदि अनुभूतियों का परिचय तब तक मनुष्य-समाज ने कम ही पाया होगा इसीलिये उसने अपने देवताओं में भी इन गुणों की कल्पना अथवा स्थापना नहीं की थी। मनुष्य ने अपने स्वभाव के अनुसार देवता के लिये भी नारी को कमनीय समझा था। नरबलि में देवता को प्रायः कुमारी कन्या ही अर्पित की जाती थी। देवता की पूजा-अर्चना के आयोजन का नियंत्रण प्रायः पुरुष पुजारी अथवा प्रीस्ट के ही हाथ में रहता था परन्तु देवता के सम्पर्क में आकर उन्हें अर्घ्य अर्पण करने अथवा उन्हें रिझाने का काम नारी को ही सौंपा गया था। मनुष्य ने अपनी ही तरह नारी के सम्बन्ध में देवताओं को भी ईर्ष्यालु ही समझा। उसके विचारों में देवता किसी ऐसी नारी के हाथों

पूजा स्वीकार न करना चाहते थे जो केवल उनके लिये ही सुरक्षित न हो। इसीलिये ग्रीस और रोम में देवबालाओं की और भारत में देवदासियो की प्रथा चलाई गई थी। इतिहास यह स्वीकार नहीं करता कि देवबालाओं और देवदासियों पर अविवाहित रहने का बन्धन लगाकर भी इनका कौमार्य देवता के लिये ही सुरक्षित रहा हो। मनुष्य की यह आत्म-प्रवंचना कितनी उपहासास्पद थी कि वह देवता को सर्वज्ञ मानकर भी इस विषय में उसे धोखा दे सकने का विश्वास कर लेता था। मनुष्य जब अपनी कामुकता के विज्ञापन को लज्जा का कारण समझने लगा, उसने देवताओं को भी नारी लोलुपता के कलंक से मुक्ति दे दी और देवालयों में देवबालाओं और देवदासियों की प्रथा का अन्त हो गया।

संध्या समय हल्की फुहार में उस प्रकांड खंडहर के आंगन में खड़े होकर इतिहास की पुस्तकों में पढ़ी कई बातें याद आने लगीं। आज रोम ईसाइयत का गढ़ है परन्तु एक समय देवपूजक रोमन लोगों के विचार में ईसाइयत एक अपराध ही था। उस समय की व्यवस्था से दलित और शोषित दास और दीन लोग ही ईसा की शरण स्वीकार करते थे। उस समाज में दीनों और दासों के लिए कोई आशाएं न थीं, न इस जीवन में, न परलोक में। ईसा में विश्वास उन्हें परलोक में सुख और मुक्ति की आशा देता था।

इस जीवन में निराशा पारलौकिक आशा का सहारा ढूंढती है। उस समय ईसाई बनने का अर्थ समाज और शासन की व्यवस्था को अन्याय समझना और उसके प्रति विद्रोही विचार रखना था। जैसे आज पूँजीवादी व्यवस्था मे समाजवादी समानता का स्वप्न देखना पूंजीवाद के प्रति विद्रोह समझ लिया जाता है। ईसाइयों, विशेषकर ईसाई साधुओं को पकड़-पकड़ कर कुलीजियम में सिंहों के सामने डाल दिया जाता था। कभी उनके शरीर पर तेल से भीगी रुई लपेटकर उन्हें दर्शकों के सामने जलाया जाता था। इस व्यवहार से दो प्रयोजन पूरे होते थे—अपराधियों को दंड दिया जाता था और धर्मभीरु दर्शकों का विनोद भी हो जाता था। ऐसे संकटों का सामना करके जिस ईसाई धर्म ने संसार के अधिकांश मनुष्यों के मन पर विजय पायी उस धर्म और संस्कृति के प्रति श्रद्धा क्यों न हो? परन्तु शासन की शक्ति हाथ मे पाकर निरीहता का अभिमान करने वाली ईसाइयत में विश्वास करने वालों ने ही किया क्या? ईसा और ईसाइयत की प्रतिष्ठा के लिये किए गये युद्धों में पचासों लाख व्यक्तियों के प्राण और सैकड़ों नगर भस्म हो गये। भारत में अंग्रेजी शासन की कलम लगाने वाले क्लाइव और हेस्टिंग्स ने ही क्या किया था? मानवता के लिये बलिदान हो जाने वाले ईसा के भक्तो ने अपनी स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिये जान पर खेल जाने वाले लोगों को खूनी तथा विद्रोही और भारत को दास बनाये रखने के लिये इस देश में रक्त का कीचड़ करने में जूझ जाने वालों को शहीदों की पदवी दी। लन्दन के सेंट पाल गिर्जे में उस क्लाइव की समाधि साम्राज्य निर्माता शहीद के सम्मान में बनी हुई है। मलाया में आज भी वही बात हो रही है। कोई भी धर्म या संस्कृति जब दीनों की मुक्ति की विचारधारा बनकर चलती है तब उसका एक रूप और व्यवहार है, परन्तु वही विचारधारा शासक वर्ग के हाथ में आकर जब शासन और दमन का समर्थन करने का साधन बन जाती है, तो उसका रूप और व्यवहार बदल जाता है।

रोम प्राचीन कला के लिये प्रसिद्ध है। स्थान-स्थान पर विशाल मूर्तियां दिखायी देती हैं, प्रायः दिगम्बर। कलाकारों का प्रयोजन वस्त्रों की तड़क-भड़क दिखाना नहीं बल्कि शरीर का सौन्दर्य दिखाना रहा होगा। प्राचीन मूर्तियों के वस्त्र प्रायः कुर्ती जांघिये के सैनिक वेश में अथवा शरीर पर लिपटी धोती चादर के अभिजात वर्ग के वेश में हैं। आज वैसा वेश किसी आधुनिक रोमन नर-नारी के शरीर पर दिखाई नहीं देता। होटल-स्प्लेंडोर के गार्डन रेस्टोरां में बैठे-बैठे विचार आया कि रोमन लोगों ने अपनी प्राचीन राष्ट्रीय पोशाक क्यों छोड़ दी? सभी स्त्री-पुरुष आधुनिक औद्योगिक युग की पोशाकें, पुरुष कोट-पतलून और स्त्रियां फ्रांक या ब्लाउज-स्कर्ट पहने दिखाई देती हैं। प्राचीन राष्ट्रीय पोशाक—धोती अथवा चूड़ीदार पायजामे, अचकन की जिद्द केवल हमारे यहाँ ही है। यदि रोमन लोग आजकल भी ब्रूटस और सीज़र की मूर्ति की भांति शरीर को चादर में लपेट कर चलने लगें तो ट्राम, बस अथवा टैक्सी पर चढ़ते समय कितनी घटनाएं हुआ करें? जीवन के आधुनिक वातावरण में वह कैसा उपहासास्पद जान पड़ेगा। उचित पोशाक की कसौटी पोशाक का ढंग पुराना या परम्परागत होना ही नहीं मान लिया जा सकता। पोशाक का नित्य व्यवहार के अनुकूल और सुविधाजनक होना भी आवश्यक है।

प्राहा

स्विस एयरवेज़ के विमान ने, सुबह प्राय: दस बजे प्राहा के विमान अड्डे पर उतार दिया। केवल अंग्रेजी बोलने वाले लोग ही चेकोस्लोवाकिया की राजधानी को प्रेग पुकारते हैं; शेष यूरोप में 'प्राहा' नाम ही चलता है। खूब ठंडी हवा चल रही थी। यूरोप के शेष विमान अड्डों की भांति प्राहा हवाई अड्डे की इमारत में भी मैदान की ओर की दीवारें दोहरे शीशे की ही हैं।

मैं अपना पासपोर्ट दिखाने के लिये पांत में खड़ा था। एक नवयुवक ने अपना हाथ बढ़ाकर सम्बोधन किया—"मि० यशपाल !"

नवयुवक ने अपना परिचय अंग्रेजी में दिया—"मैं यहाँ सांस्कृतिक सचिवालय में काम करता हूं।" समीप खड़ी नवयुवती का परिचय भी दिया, "यह मिलाना हिब्रामानोवा है। आपको यहाँ भाषा सम्बन्धी कठिनाई न हो इसलिये यह आपको सहायता देंगी।"

मेरे अभिवादन का उत्तर मिलाना ने मुस्कराकर हिंदी में दिया—"आपसे मिलकर बड़ी प्रसन्नता हुई। हम आपका इन्तजार करते थे। माफी करेंगे मैं हिन्दी अच्छी तरह नहीं जानती। बहुत गलत बोलती हूँ।"

दो एक वाक्य हिन्दी में और दो एक अंग्रेजी में ऐसी ही बातचीत करते हम लोग विमान अड्डे के बाहर निकले। मैं मिलाना की हिन्दी में क्या दोष बताता। वह तो हिन्दी बोल रही थी जब कि मैं चेक भाषा का एक भी शुद्ध या अशुद्ध शब्द नहीं जानता था। यह सन्तोष भी न था कि मैं नहीं जानता तो क्या, मेरे देश में दूसरे लोग तो जानते हैं। अंग्रेजी के अतिरिक्त दूसरी भाषाओं का हमारा अज्ञान हमारी न्यूनता है या हमारी अहमन्यता ! लखनऊ में एक बार एक महोदय को व्याख्यान देते सुना था "......हिन्दी एक दिन विश्व की अन्तर्राष्ट्रीय भाषा बनेगी।" ऐसे मिथ्या अहंकार की क्या नींव है ? इस समय तो सत्य यही है कि भारत को सीखना ही सीखना है। जहाँ कहीं भी यूरोपियनों से सम्पर्क पड़ा, उन्हें सिखा सकने लायक कोई बात अपने में दिखाई दी नहीं। यूरोपियन लोग भारतीयों से एक ही बात सीखने की आशा करते हैं वह है, योगाभ्यास। उनकी धारणा है कि दिल्ली-बम्बई की सड़कों पर योगियों के झुण्ड फिरा करते हैं।

मिलाना ने बताया कि वह इससे पूर्व कई भारतीयों—अली सरदार जाफरी, अब्बास, गार्गी आदि भारतीय लेखकों से मिलकर बातचीत कर चुकी थी। उसने जाफरी की एक-दो कविताओं का अनुवाद भी चेक में किया था। हवाई अड्डे की इमारत के बाहर दो चेक लेखक गाड़ी में प्रतीक्षा कर रहे थे।

हम लोग नगर की ओर जा रहे थे। एक लेखक साथी ने कहा—"यदि थकान के कारण होटल पहुँचने की जल्दी न हो तो जरा चक्कर देते हुए पहाड़ी के ऊपर से चलें। नगर का विहंगावलोकन ही हो जाय।"

प्राहा छोटी-छोटी पहाड़ियों के बीच खूब फैली उपत्यका में बसा है। कुछ भाग उंचाइयों पर भी है। पूरा नगर ऊंचे-ऊंचे गिर्जों और प्रासादों के सूची आकार बुर्जों और गुम्बदों के जंगल-सा प्रतीत होता है। नगर नई दिल्ली, बम्बई या मास्को की तरह नया बना या कोरे बर्तन-सा नहीं दिखाई पड़ता है। पत्थरों की बड़ी-बड़ी इमारतें समय और सीलन के प्रभाव से श्यामल हो गयी हैं। बहुत से गुम्वद सूचियां और गिर्जों की छतें ताँवे की बनी हैं जो सीलन के संयोग से तूतिया—रंग हरे की हो गई हैं। नगर के मुख्य चौक और राजपथ आधुनिक ढंग के खूब चौड़े हैं। बीचोबीच ट्राम की लाइनें हैं। एक ओर आने और दूसरी ओर जाने के मार्ग हैं। उसके पश्चात् पैदल चलने की चौड़ी पटरियां। कुछ भागों में चढ़ाई उतराई है। गलियां चकले पत्थरों से मढ़ी हुई हैं। बाजार चहल-पहल से गुंजान है और दूकानें सजी हुई हैं।

नगर के बीचोंबीच बल्तावा नदी बहती है। नदी के घाट पक्के बंधे हुए हैं। नदी भरपूर बहती हैं। स्थान-स्थान पर अनेक पुल हैं। प्राहा को राजधानी बनाने वाले सम्राट चार्ल्स चौथे का बनाया पुल सबसे पुराना है। पुल पर अनेक मूर्तियां बनी हैं। पूरा नगर ही मूर्तियों से भरा है। सभी नर-नारी कोट-पतलून और फ्राक, स्कर्ट ही पहने दिखाई देते हैं परन्तु उसमें राशन में बांटे गये कपड़े की एकरूपता नहीं है। कपड़ों में काफी वैचित्र्य दिखाई देता है।

पूँजीवादी प्रणाली के नगरों और समाजवादी व्यवस्था के नगरों की दूकानों में एक अन्तर स्पष्ट दिखाई देता है। पूँजीवादी प्रणाली या व्यवसाय के व्यक्तिगत स्वामित्व की प्रणाली में दूकानों पर प्रायः कम्पनियों या व्यक्तियों के नाम—उदाहरणतः जेम्स एण्ड कम्पनी, हिल के जूते, नत्थू हलवाई, बोमनजी दरीवाला आदि नाम दिखाई देते हैं। यहाँ समाजवादी व्यवस्था की दूकानों पर वस्तुओं के ही नाम पर्याप्त समझे जाते हैं, उदाहरणतः दवादारू, मोजे बनियान, मीठा नमकीन, श्वेत हंस (श्वेत हंस प्राहा में शौकिया चीजों की बहुत बड़ी दूकान है।) मालिकों के नाम नहीं।

प्राहा में अधिकांश दूकानें समाजवादी व्यवस्था के अन्तर्गत सामाजिक सम्पत्ति ही हैं परन्तु कुछ छोटी-छोटी दूकानें व्यक्तिगत भी हैं। सब सामाजिक दूकानों में मूल्य निश्चित और एक जैसे रहते हैं। व्यक्तिगत दूकानों में मालिक व्यक्ति की इच्छानुसार यहाँ दूकान कर्मचारियों में अपने देश या इंगलैंड की तरह नम्रता और आग्रह का भाव नहीं दिखाई देता। एक वस्तु पसन्द न आने पर दस-बीस और दिखाने की चेष्टा नहीं होती। मांगी वस्तु दूकान में मौजूद न होने पर 'नहीं है' टका-सा उत्तर मिल जाता है। दूकानदार में विनय की अपेक्षा सरकारी आदमी की रुखाई अधिक जान पड़ती है क्योंकि दूकान कर्मचारी एक प्रकार से सरकारी नौकर ही हैं। यहाँ के लोग भी ऐसा रूखा व्यवहार पसन्द नहीं करते।

इन कर्मचारियों या बिक्री करने वाली लड़कियों के व्यवहार का विद्रूप करने के लिये पत्रों में कार्टून भी छपते रहते हैं। इन लोगों को विनय का व्यवहार करने की प्रेरणा देने के लिये कई उपाय भी सोचे जा रहे हैं।

चेकोस्लोवाकिया में समाजवादी व्यवस्था रक्त-क्रान्ति द्वारा नहीं स्थापित हुई है। दूसरे महायुद्ध में समाजवादी रूस की सेनाओं के सहयोग से नाजी शासन को हटाने के पश्चात् वहाँ वैधानिक ढंग से समाजवादी व्यवस्था स्थापित की गई है। नाजियों का साथ देने वाले बड़े-बड़े पूंजीपतियों के व्यवसाय राष्ट्रीय अधिकार में ले लिये गये हैं, उसी प्रकार बड़े-बड़े जमींदारों की भूमि भी राष्ट्रीय सम्पत्ति बना दी गई है। छोटे-मोटे किसान जो अपनी भूमि पर व्यक्तिगत या पारिवारिक रूप से कृषि करना चाहते थे, उनकी भूमि को व्यक्तिगत अधिकार में रहने दिया गया है। वैसे ही घरेलू उद्योग-धन्धों से निर्वाह करने वाले अथवा छोटे दूकानदारों के व्यवसायों का भी बलात् राष्ट्रीयकरण नहीं किया गया। वही वात मकानों के सम्बन्ध में भी है। बहुत से मकान अब भी व्यक्तिगत सम्पत्ति हैं परन्तु निवास स्थान परिवार की संख्या के अनुसार ही मिल सकता है। किराया भी मनमाना नहीं लिया जा सकता। किराये का निश्चय और मकानों की बांट तथा एतदविषयक दूसरी बातों का निर्णय किरायेदारों की समिति करती है। मकान को दुरुस्त रखने की जिम्मेदारियां काफी हैं और बिना श्रम के सम्पत्ति से होने वाली आमदनी पर कर का बोझ मकान मालिक होने की महत्वाकांक्षा की समाप्ति कर चुका है।

लेखकों की कांग्रेस

एसप्लेनेड होटल, प्राहा
२४ अप्रैल ५६

लेखकों की कांग्रेस का आयोजन पार्लियामेंट के हाल में किया गया था। पार्लियामेंट के सामने सड़क के साथ बनी फुलवाड़ी के पार एसप्लेनेड होटल है। विदेशों से आमंत्रित सब लेखकों को एसप्लेनेड में ही ठहराया गया था। इसलिये आपसी बातचीत और विचार विनिमय की काफी सुविधा थी।

पार्लियामेंट का हाल देखकर विस्मय हुआ। उसे किसी भी अच्छे बड़े कालिज का हाल समझा जा सकता है। बेंच ओर डेस्क भी उसी ढंग के हैं। दर्शकों के लिये छोटी गैलरी है। प्रत्येक व्यक्ति के लिये माइक्रोफोन लगा है। मेम्बर अपने स्थान से ही अपनी बात कह सकते हैं। उपयोगिता और आवश्यकता की दृष्टि से न्यूनता कहीं नहीं है परन्तु शाही रोब या तड़क-भड़क जैसी भी कोई चीज नहीं है। यह नहीं कि प्राहा में सुन्दर या बड़े हाल न हों। 'स्पेनिश हाल' बहुत बड़ा है और सजावट के विचार से बहुत भव्य भी। 'स्पेनिश हाल' नाम इसलिये पड़ा है कि हाल की सज-धज पुराने स्पेनिशशाही ढग पर की गई थी। बड़े-बड़े समारोह प्रायः वहां ही होते हैं। लेखकों की कांग्रेस के लिये शायद विचार और गम्भीरता का आडम्बरहीन वातावरण रखने के लिये पार्लियामेंट हाल ही चुना गया है। कांग्रेस में प्रायः तीन सौ चेक और स्लोवाक लेखक भाग ले रहे हैं। पचास के लगभग अतिथि लेखक हैं। सभी देशों से एक या दो लेखकों को ही आमंत्रित किया गया है।

चेकोस्लोवाकिया, स्लोवाकिया, बोहेमिया और मोराविया के प्रदेशों का संयुक्त गणतंत्र है। बोहेमिया और मोराविया की भाषा चेक है और स्लोवाकिया की भाषा स्लोवाक है। गणतंत्र की भाषा चेक है परन्तु स्लोवाक भाषा में भी साहित्य लिखा और प्रकाशित किया जाता है। चेकोस्लोवाक लेखक संघ के सदस्यों की संख्या छः सौ के लगभग है। देश की जनसंख्या केवल ढाई करोड़ है। उसे देखते यह संख्या बहुत कम नहीं है।

लेखक की परिभाषा के सम्बन्ध में भी उत्सुकता हो सकती है। हमारे यहाँ लेखकों और पत्रकारों के संघ अलग-अलग हैं। वही बात चेकोस्लोवाकिया में भी है। लेखकों से अभिप्राय साहित्यिक रचना और उसका विश्लेषण और मूल्यांकन करने वालों से है। चेकोस्लोवाकिया में एक या दो पुस्तकें प्रकाशित हो जाने या कुछ रचनायें पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हो जाने पर लेखक, संघ का सदस्य बनने का अधिकारी हो जाता है।

कांग्रेस में दिये जाने वाले भाषणों का लिखा होना आवश्यक है। टीका-टिप्पणी और वाद-विवाद की बात दूसरी है। भाषण चेक भाषा में ही हो रहे हैं। 'गत वर्षों में

चेकोस्लोवाक साहित्य का मूल्यांकन' कांग्रेस का विशेष कार्यक्रम है और इस पर वाद-विवाद भी खूब हो रहा है। प्रत्येक आमंत्रित विदेशी लेखक के साथ एक अनुवादक है। आमंत्रितों में चीनी, जापानी, कोरियन, मैक्सीकन, जर्मन, फ्रेंच, इटालियन, रूमानियन, यूगोस्लाव और रूसी सभी लेखक हैं। चेकोस्लोवाक अनुवादक इन लेखकों को उनकी भाषा में ही भाषणों का अनुवाद समझाते हैं और लेखकों से उनकी ही भाषा में बातचीत करते हैं। मैं तो अंग्रेजी भी बोल लेता हूँ परन्तु मिलाना का प्रयत्न प्रायः हिन्दी में ही बातचीत करने का रहता है। उसे जब हिन्दी में शब्द नहीं सूझता तो मस्तिष्क पर जोर देने के लिये पलक झपक और चुटकी बजाकर कहती है, "क्या, कैसे कहते है?" या तो मैं सुझा देता हूँ या उसे शब्द याद आ जाता है। उसे कठिनाई जरूर होती है परन्तु वह अपनी बात कह लेती है। चीनी लेखक यांग हुई अंग्रेजी पढ़ लेते हैं परन्तु बोल नहीं पाते। वही बात जापानी और कोरियन लेखकों की है। उनके अनुवादक उनसे निरन्तर उनकी भाषा में ही बात करते हैं। हमारे यहाँ एक एशियन लेखक कांग्रेस की बातचीत चल रही है। क्या हम लोग अतिथियों के लिये ऐसी व्यवस्था कर सकेंगे? अन्य भाषाओं के ज्ञान का लाभ केवल विदेश भ्रमण अथवा विदेशियों के आतिथ्य की सुविधा ही नहीं है। मिलाना अपनी चेक भाषा, अंग्रेजी, हिन्दी-उर्दू, कुछ बंगला के अतिरिक्त फ्रेंच, जर्मनी और रूसी भी बोल लेती है और उसने जिप्सी लोगों की भाषा का भी अध्ययन किया है।

आजकल सभी चेकोस्लोवाक स्कूलों में रूसी भी अनिवार्य है। इसे वे समाजवादी जगत की सांझी भाषा मानते हैं। इसके अतिरिक्त एक यूरोपियन भाषा तो और सीखते ही हैं। विशेष यत्न करने वाले किसी एशियाई भाषा का भी अध्ययन करते हैं। इन लोगों का कहना है कि हम लोगों का देश और राष्ट्र छोटा-सा है। हमें संसार से सम्पर्क रखना है, संसार की संस्कृति और साहित्य से लाभ उठाना है तो हमारे यहाँ सभी देशों की भाषा का ज्ञान होना चाहिये। यह बात किसी से छिपी नहीं कि संस्कृति और कला-कौशल में चेकोस्लोवाकिया खूब उन्नत देशों में से एक है, यहाँ के लोग यह न जानते हों सो बात नहीं परन्तु उनकी प्रवृत्ति ग्रहण की ओर है, बुद्धि मिथ्याभिमान से मुक्त है।

२६ अप्रैल दोपहर बाद की बैठक में चेकोस्लोवाक गणतन्त्र के राष्ट्रपति जापोतोस्की भी पधारे थे। कांग्रेस के हाल के बाहर मार्ग में तो उनके पद के सम्मान के लिये सवारी के साथ आगे मार्ग-दर्शक और साथ अंग-रक्षक भी थे; परन्तु सम्मान के यह सब उपकरण हाल के बाहर ही रह गये। भीतर के द्वार पर उनका स्वागत करने वाले कांग्रेस के प्रधान और मन्त्री के साथ ही आये। प्रत्येक अतिथि से हाथ मिलाकर उन्होंने पूछा—"आप आराम से तो हैं? कोई असुविधा तो नहीं? यहाँ का जलवायु आपके प्रतिकूल तो नहीं? आप कवि है, कहानी-लेखक अथवा उपन्यासकार? आपकी कुछ रचनाओं का अनुवाद अन्य भाषाओं में भी हुआ होगा। आशा है, शीघ्र ही आपकी रचनाएं चेक भाषा में भी उपलब्ध हो सकेंगी? आपके देश की संस्कृति और साहित्य में हम लोगों की विशेष रुचि है। आशा है कि कांग्रेस के बाद भी आप कुछ दिन चेकोस्लोवाकिया में रहेंगे और फिर मेल का अवसर भी आयेगा·······।"

चेकोस्लोवाकिया के राष्ट्रपति के इस शिष्टाचार और सौहार्द प्रदर्शन से संकोच ही अनुभव हुआ। दूसरे अतिथि लेखक चाहे जितने बड़े रहे हों परन्तु सुना है जब उत्तर प्रदेश के 'साहित्यिक' राज्यपाल से मेरे अभिनन्दन ग्रन्थ के लिये संदेश मांगा गया तो उन्होंने विस्मय प्रकट किया कि वे तो लखनऊ में यशपाल नाम के किसी व्यक्ति को नहीं जानते……।" भारत के दूसरे राज्यों के प्रधान मन्त्रियों और राज-प्रमुखों ने ऐसा विस्मय प्रकट नहीं किया। इससे मन नहीं टूटा।

यद्यपि अनुवादक चेक साहित्य की समस्याओं पर होने वाले विवेचन और वाद-विवाद होते समय अतिथियों को कुछ समझा देने के लिये तैयार रहते हैं; परन्तु उसमें सभी लोगों के लिये रस लेते रहना सम्भव नहीं होता। अतिथि लोग ऐसे समय नगर भ्रमण के लिये चल देते है अथवा नगर के समीप तीस-चालीस मील तक भी घूम आते हैं। संध्या के समय अतिथि अपनी रुचि के अनुकूल नाटक, संगीत नाट्य (ओपेरा), नृत्य नाट्य (बैले), अथवा बाल-डांस के लिये किसी रेस्तोरा में जा सकते हैं। यहाँ सिनेमा की विशेष कदर नहीं है। रूस की ही भांति यहाँ पुतलियों के नाटक की कला का, बल्कि रूस की अपेक्षा भी अधिक विकास हुआ है।

पुतलियो के नाटक के लिये पुतलियां बनाने और नचाने की कला को यहाँ विज्ञान के स्तर तक पहुँचा दिया गया है। इसके लिये विशेष स्कूल है। पुतलिया ऐसी बनायी जाती हैं जिनका अग-अग, उगलियां, आँख और होठ तक गति और भाव-भगी प्रदर्शित कर सकते हैं। उनके अग-अग से ऐसे महीन तार बंधे रहते है जो दर्शको के लिये अदृश्य रहते हैं। पुतलियों के नीचे पुर्जे और तार लगाकर भी उनकी गति और भाव-भगी दिखाई जाती है। पुतलियों के नाटक के समय सगीत भी चलता है। संगीत, नाटक और कला दोनों की दृष्टि से उपयुक्त उपस्थित किया जाता है। प्राग में एक खूब बड़ा स्टूडियो है जहाँ पुतलियों के नाटक के फिल्म तैयार किये जाते है। इन फिल्मों का स्तर 'मिकिमाइस' की अपेक्षा बहुत ऊचा और सोद्देश्य होता है। यह फिल्में बच्चो की शिक्षा के लिये ही नही, वयस्कों के ज्ञानवर्धन और विनोद के लिये भी सफल है। मध्य युग में बोहेमिया, मोराविया और स्लोवाकिया की भूमि पर बस्तिया बसाने की ऐतिहासिक कहानी पुतलियों के फिल्म में बहुत सफल, अत्यन्त रोचक भी बनी है।

प्राहा की रंगशालाए या थियेटर हाल आकार में बहुत बड़े न होने पर भी भव्य हैं। चार-चार मजिल तक गैलरिया बनी हुई है। ज्यों-ज्यो ऊपर जाइये टिकट सस्ता होता जाता है। खम्भे सुन्दर मूर्तियों से ढके हुए हैं और साज-सज्जाओं से श्वेत और सुनहरी के मिश्रण की पूर्वी शान-शौकत झलकती है। नाटकों को समझने में मेरे लिये भाषा का व्यवधान है परन्तु अभिनय में स्वाभाविकता स्पष्ट दिखाई देती है। पश्चिमी संगीत के ताल-सुर के अज्ञान के कारण संगीत नाट्य में मुझे अभिनय मात्र देखकर ही संतुष्ट हो जाता पड़ता है इसलिये आधा देखकर ही संतोष कर लेता हूं।

नाटकों के विषय आधुनिक भी हैं। पहले दिन ही जो नाटक देखा वह विज्ञान की शक्ति को विध्वंस के कार्य के लिये प्रयोग में लाने के विरोध में था। नृत्य-नाट्य में भाषा

की असुविधा नहीं जान पड़ती क्योंकि उसमें भाव प्रकट करने के लिये शब्दों का माध्यम नहीं बल्कि नृत्य और अभिनय की भाव भंगी ही का सहारा लिया जाता है। जाने क्यों, सोवियत में और चेकोस्लोवाकिया में भी संगीत नाट्य और नृत्य-नाट्य में प्रायः पौराणिक और परियों की कहानियों का उपयोग किया जाता है। सम्भव है उन्हें इस माध्यम के योग्य आधुनिक विषय नहीं मिलते। एक नृत्य-नाट्य 'यानोशी' की कहानी को भी देखा है। यानोशी का चेकोस्लोवाक लोक कथा में वही स्थान है जो इंगलैंड में राबिनहुड का और हमारे यहाँ सुल्ताना और तांत्या डाकू का है। उसे सामन्तों के अन्याय का विरोधी और दीन-बंधु माना जाता है। राष्ट्रीय वीरों में उसकी भी गणना है। चेकोस्लोवाकिया में साहित्य के प्रति उदार दृष्टिकोण है। किसी भी सुन्दर रचना के सामन्तवादी अथवा पूँजीवादी काल की होने के कारण उसकी उपेक्षा नहीं की जाती।

कांग्रेस में साहित्यिक नीति और सैद्धान्तिक चर्चा के सम्बन्ध में मुख्य प्रस्ताव का उल्लेख पर्याप्त होगा। प्रस्ताव का संक्षिप्त मसविदा तीन फुलस्केप पृष्ठों का है। कम्युनिस्टों के मूल प्रस्ताव और व्याख्या पृथक-पृथक नहीं होते, ताकि व्याख्या और अभिप्राय के सम्बन्ध में मतभेद का अवकाश न रहे। स्थानाभाव के कारण और भी संक्षेप में यों कहा जा सकता है :—

यह कांग्रेस सोवियत कम्युनिस्ट पार्टी की बीसवीं कांग्रेस द्वारा उत्पन्न वातावरण से प्रभावित है। हम सभी राष्ट्रों और मानव मात्र के लिये नई आशायें अनुभव कर रहे हैं। समाजवादी राष्ट्रों की आपसी मित्रता और सहयोग से हम संतुष्ट है। सोवियत और भारत तथा दूसरे एशियाई राष्ट्रों की मित्रता से हम उत्साहित हैं। आज मास्को से देहली और सांटियागो से पेरिस और पीकिंग तक सभी साहित्यिक और वैज्ञानिक शांति की भावना से अनुप्राणित हैं। हमे विश्वास है कि पूँजीवादी स्वार्थ की जो भावनायें अभी तक शांति के प्रयत्नों में सहयोग देने से आशंकित हैं वे भी शीघ्र ही इस सत्कार्य में सहयोग देंगी।

हमारी विचारधारा का आधार लेनिनवाद के रचनात्मक सिद्धांत हैं। हम अपने उत्तरदायित्व के प्रति सतर्क होकर इन सिद्धान्तों के आधार पर आत्मालोचना द्वारा अपने गत कार्य का मूल्यांकन करना चाहते हैं। हमारा विश्वास है कि हम लोगों के जीवन में और हमारे साहित्य में जो भूलें हुई हैं उनका कारण जन और जीवन के निकट सम्पर्क में न रहना ही था। समाजवादी सत्य को जनजीवन में सम्मिलित होकर ही प्राप्त किया जा सकता है। हमारी भूलों का कारण जनजीवन के द्वन्द्वों और वास्तविक तथ्यों से आँख मूंदकर सिद्धान्तों को स्वप्न जगत में प्राप्त करने की इच्छा रही है।

आज साहित्य और जनजीवन के प्रति अपने दृष्टिकोण को उदार बनाना आवश्यक है। समाज के गत जीवन में महान साहित्यिकों की सफलता का आधार उनकी समाज को बदलने की भावना थी। आज साहित्यिक महानता समाज के निर्माण में है परन्तु सचेत कलाकार से अंध अनुमोदन की आशा नहीं की जा सकती। हमारे वर्तमान जीवन की न्यूनताओं और दोषों पर प्रकाश डालना भी साहित्यिक का कर्त्तव्य है। निर्बलता से

असंतोष ही सतत प्रगति की भावना है। स्थायी मूल्य का साहित्य निर्माण न कर सकने का कारण यह है कि हमने समाजवादी सिद्धान्तों की भावना और आत्मा की चिंता न कर उनके शब्दों को ही अपना लिया है। निर्देशों द्वारा साहित्य रचना के प्रयत्न ने विचारों और रचनात्मक स्वतन्त्रता का गला घोंट दिया है। व्यक्तिवाद ने विचारों के विकास और आलोचना का मार्ग रोक दिया है। हमारा विश्वास है कि साहित्य की प्रेरणा का स्रोत जनजीवन और जन के विचारों से व्यक्तिगत सम्पर्क है।

रचनात्मक स्वतन्त्रता का लक्ष्य समाजवादी सिद्धान्तों की समीक्षा द्वारा उनका विकास करना और मानवी सम्बन्धों में समता और पूर्णता लाना है। यही हम लेखकों का उद्देश्य है। साहित्य का क्षेत्र मानव समान को बांटने वाली सीमाओं को स्वीकार नहीं करता। सम्पूर्ण मानव समाज के साहित्यिक एक ही बिरादरी के सदस्य हैं और उन सबका एक ही लक्ष्य मानवता के विकास द्वारा उसकी मुक्ति और पूर्णता है।

हमारे देश में इस बात पर प्रायः ही विवेचना होती रहती है कि समाजवादी देशों में लेखकों को पूर्ण स्वतन्त्रता है या नहीं। चेकोस्लोवाक लेखक कांग्रेस के प्रस्ताव में रचनात्मक स्वतन्त्रता की माँग को इस बात का प्रमाण बता दिया जा सकता है कि वहाँ लेखकों पर नियंत्रण और बंधन है। परन्तु इस प्रस्ताव में जिस प्रकार अपनी स्थिति के प्रति असंतोष प्रकट किया गया है, दमन की अवस्था में ऐसी बात सार्वजनिक रूप से कही नहीं जा सकतीं। इस प्रस्ताव में की गई रचनात्मक स्वतंत्रता की माँग को अपना क्षेत्र व्यापक करने की माँग ही कहा जा सकता है। इस देश के लेखकों की स्वतंत्रता का आधार उनका आर्थिक रूप से स्वतन्त्र होना है। प्रकाशन का कार्य वहां सरकार या मुनाफाखोर प्रकाशकों या पत्र-स्वामियों के हाथ में नहीं, स्वयं लेखक संघों के हाथ में है।

हम समाजवादी या दूसरे देशों के लेखकों की स्वतन्त्रता की चिंता करने की अपेक्षा अपने देश के लेखकों की स्थिति के विषय में क्यों न सोचें। हमारे देश के लेखकों में से आज कितने स्वतन्त्र है? लेखक की स्वतन्त्रता का अभिप्राय है कि वह अपने विचारों की अभिव्यक्ति स्वतन्त्रता से कर सके। लिखते समय उसे यह चिंता न हो कि उसके विचारों की अभिव्यक्ति के कारण उसे दंड भोगना पड़ेगा। यह भी याद रहे कि सबसे बड़ा दंड व्यक्ति के और उसके आश्रितों के पेट पर पड़ने वाली चोट होती है। कुछ बरस पहले तक हमारे लेखक आर्थिक रूप से असुविधा में होते हुए भी अपने विचार प्रकट करने में किसी सीमा तक स्वतन्त्र थे, कारण यह था कि हमारे लेखक जीविका के लिये दूसरा व्यवसाय करते थे। लिखना अपनी भावनाओं की तुष्टि के लिये होता था। आज अधिकांश बड़े लेखक साहित्यिक सरकारी नौकरियों पर हैं। बचे-खुचे पत्र जगत में नौकरियाँ कर रहे हैं। कलम की कमाई पर निर्भर लेखकों की संख्या आधा दर्जन भी नहीं है। सरकार चाहे जितनी भी प्रजा-वत्सल हो, अपने कर्मचारी वर्ग को अपनी नीति का विरोध या उसकी आलोचना करने की स्वतन्त्रता नहीं दे सकती। पत्रों का भी वही ढंग है। यह पत्र एक विशेष नीति की रक्षा और समर्थन के लिये चल रहे हैं। प्रकट तथ्य यह है कि हमारे सफल लेखक सरकारी नौकरियाँ पाकर अच्छा खाने-पहरने लगे हैं परन्तु उनकी साहित्यिक

गतिविधि समाप्त हो गयी है। वे सरकारी मशीन के पहिये पर चलने वाले पट्टों की तरह चल रहे हैं, उनकी अपनी अभिव्यक्ति का प्रश्न ही नहीं रहा।

जिस समय कांग्रेस में इस प्रस्ताव पर बहस चल रही थी एक दोपहर बाद दोबशिश जाने का अवसर मिला। दोबशिश प्राहा के समीप लेखकों का भवन या क्लब है। भवन क्या; किसी पुराने सामन्त का बड़ा महल है। चारों ओर खूब दूर तक फैले हुए बाग और उपवन हैं। एक झील भी बीच में हैं। भवन में बहुत बड़ा पुस्तकालय, बैठकखाना और भोजन का हाल है। एक-एक, दो-दो कमरे और गुसलखाने इस प्रकार बने हुए हैं कि कई लोग अकेले या सपत्नीक निर्विघ्न रह सकते हैं। सब फर्श कालीनों से और छतें झाड़-फानूसों से ढकी हुई हैं। हम कई लेखक यहाँ एक साथ आये थे। खान-पान भी जो हुआ, वह शाही तकल्लुफ से किसी प्रकार कम न था। कुछ लेखक यहाँ अपना काम निर्विघ्न कर सकने के लिये आते हैं, कुछ काम समाप्त कर विश्राम के लिये आते हैं। कुछ अपने स्त्री-सन्तान को यहाँ विश्राम के लिये भेज देते हैं। यह भवन और ऐसे कई भवन यहाँ के लेखक संघ की सम्पत्ति हैं। भवन सरकार ने संघ को दे दिया है, परन्तु खर्चा संघ को लेखकों की रचनाओं से होने वाली आय से चलाना पड़ता है। इससे यहाँ के लेखकों की आय का जो अनुमान करना पड़ा, वह भारतीय लेखकों के मन में संदेह उत्पन्न कर सकता है।

अतिथि लेखकों में से भी कुछ एक से कांग्रेस में बोलने का अनुरोध किया गया। मुझसे यह अनुरोध किया जाने पर पूछा—'मैं अंग्रेजी में बोलूं या हिन्दी में?' उत्तर मिला, 'निश्चित रूप से हिन्दी में।'

उपाय यही था कि मैने अपनी बात हिन्दी में लिख ली और मिलाना ने अनुवाद कर लिया। मैं हिन्दी में ही बोला। यह जानते हुए कि मेरी बात कोई नहीं समझ रहा है, मुझे ऐसा ज्ञान पड़ रहा था निर्जन स्थान में मैं निरर्थक बोल रहा हूँ। मेरे बोल लेने पर मिलाना ने पूरा अनुवाद पढ़कर सुना दिया। संक्षेप में मैने यों कहा था—"दूरी की चिन्ता न कर अपने सम्मेलन में एक भारतीय लेखक को आमंत्रित कर आपने भारतीय लेखकों से विचारों और स्नेह का जो सम्पर्क स्थापित किया है, उसके लिये मैं भारतीय लेखकों की ओर से आपका धन्यवाद और अभिनन्दन करता हूं। संसार के राष्ट्रों के परिवार के कल्याण के लिये आज राष्ट्रों के राजनैतिक नेताओं का ही परस्पर एक-दूसरे को समझ लेना पर्याप्त नहीं है। आज का संसार सिकन्दर, हनिबाल, नादिरशाह और हिटलर जैसे नेताओं का संसार नहीं रहा है। आज का संसार जनवाद और प्रजातंत्र का संसार है। आज संसार का कल्याण और विश्वव्यापी शान्ति संसार के भिन्न-भिन्न राष्ट्रों की जनता के अपने हाथ की बात बन चुकी है। ऐसी अवस्था में राष्ट्रों की जनता की भावनाओं और हृदयों के इंजीनियरों और डाक्टरों—सभी राष्ट्रों के लेखकों का आपस में एक-दूसरे को समझना और भी आवश्यक है। इस युग में मानवता के लिये कल्याणकारी भावनाओं को उत्पन्न करना और उन्हें सबल बनाना सभी राष्ट्रों के लेखकों का साझा कर्त्तव्य और उत्तरदायित्व है।"

"इस सम्मेलन में कुछ ही समय सम्मिलित होकर और भाषा की रुकावट के बावजूद मैं यह समझ सका हूँ कि सभी राष्ट्रों के लेखकों की समस्याएं एक ही हैं। सभी देशों के लेखक दमन से पूर्ण मुक्ति और कला के माध्यम को अधिक सबल बनाने और ऊंचा उठाने की चिन्ता कर रहे हैं। दस बरस पहले तक हमारे देश के लेखकों के सामने अपने देश की राजनैतिक स्वतन्त्रता के लिये संघर्ष का काम मुख्य था। आज हमारे लेखकों के सामने जहाँ राष्ट्रीय निर्माण और मानव हृदय के विकास का लक्ष है वहाँ यह समस्या भी है कि वह अपनी कला को पूँजी के बाजार में मुनाफा कमाने का सौदा ही न बना रहने दे।"

"मनुष्य के पूर्ण विकास और मुक्ति के लिये संघर्ष करना ही लेखक की सार्थकता है। जब लेखक अपनी कला के माध्यम से मनुष्य की मुक्ति के लिये पुरानी व्यवस्था और विचारों में अतर्विरोध दिखाता है और नये आदर्श सामने रखता है तो उस पर आदर्शहीन और भौतिकवादी होने का लांछन लगाया जाता है। आज के लेखक की जड़ें वास्तविकता में है इसलिए वह भौतिकवादी तो है ही परन्तु वह आदर्शहीन भी नहीं है। उसके आदर्श अधिक यथार्थ हैं। आज का लेखक जब अपनी कला द्वारा नये आदर्शों का समर्थन करता है तो उस पर प्रचारक होने का लांछन लगाया जाता है। लेखक सदा ही अपनी कला से किसी विचार या आदर्श के प्रति सहानुभूति या विरोध पैदा करता है। साहित्य विचारपूर्ण होगा। हमारा विश्वास है कि विचारहीन साहित्य की सृष्टि करने की अपेक्षा प्रचार का लांछन स्वीकार कर लेना ही बेहतर है।"

"लेखक सदा ही मानव की मुक्ति और विकास का समर्थक रहा है। जिस समय कलाकार ने 'कला के लिये कला' का नारा दिया था उसका अभिप्राय कला को राजाओं और देवताओं की सेवा से मुक्त कर जनसाधारण के संतोष के लिये उपयोग में लाना था। आज कला के लिये कला की भावना को कुचल देना है। साहित्यिक कलाकार अपनी कला के साधन के विकास की उपेक्षा कभी नहीं कर सकता। कला के साधन की उपेक्षा करना ऐसा ही है जैसे टूटा हुआ हथियार लेकर युद्ध में जाना। संसार के साहित्यिकों की इन समस्याओं पर विचार करने के लिये यह सम्मेलन कर आप संसार भर के साहित्यिकों की कृतज्ञता के पात्र हैं। इसके लिये मैं भारत के लेखकों की ओर से आपको बधाई और धन्यवाद देता हूं।"

कांग्रेस के प्रधान ने शायद भारत के प्रति सौजन्यता के नाते मेरे संक्षिप्त भाषण पर कुछ शब्द कहे और अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति के लिये भारत के पंचशील के सुझाव का विशेष अभिनन्दन किया।

प्राहा के लेखकों ने कल अतिथियों को नगर से पच्चीस-छब्बीस मील म्यलनिक में संध्या भोजन का निमंत्रण दिया था। मार्ग में हल्की-हल्की चढ़ाई चढ़ते कछुए की पीठ की तरह फैली पहाड़ी पर बसे नगर में पहुंचे। संध्या समय बाजार बन्द हो चुके थे। हमारी गाड़ियां एक प्रकांड और खूब पुरानी इमारत के फाटक के सामने रुकीं।

फाटक पर लिखा था, 'मधुशाला'। पूछने पर मालूम हुआ कि यह मध्य यूरोप को एक साम्राज्य में बांधने वाले सम्राट चार्ल्स चौथे का महल था। महल पहाड़ी की अन्तिम सीमा पर है। महल के पिछवाड़े के शीशा मढ़े बरामदे में खड़े होने पर नीचे उतरते जाते अंगूरों के बाग और दो नदियों का संगम दिखाई देता है और उस पार हरे-भरे खेत और बनराशि, फिर खेत और दूर नीली-नीली पहाड़ियां। सम्राट चार्ल्स ने इस स्थान के प्राकृतिक सौन्दर्य से मोहित होकर यहाँ अपना महल बनाया था। शायद यह लाभ भी था कि चारों ओर मीलों दूर तक का देश यहाँ से दिखाई देता है। चार्ल्स ने ही मध्य यूरोप में अंगूर की खेती आरम्भ करवाई थी।

म्यलनिक का खास व्यवसाय अंगूर की शराब बनाना है। उन्हें अपनी शराब 'लुडमिला' पर विशेष गर्व है। महल के नीचे बहुत बड़े-बडे तहखानों में अनके प्रकार की मदिराओं के गोदाम है। स्थानीय प्रबन्धकर्ता ने लेखकों को अनेक नमूने चखा-चखाकर उनकी मदिरा की परख की परीक्षा ली। चाय को भी नशा समझने वाले भारतीय लेखक ऐसी प्रतियोगिता में क्या भाग लेते? चार्ल्स के प्रति चेकोस्लोवाक लोगों में बहुत श्रद्धा है। वह जागृत मस्तिष्क, विकासशील प्रकृति का शासक था। मध्य यूरोप में सबसे पहला विश्वविद्यालय सन् १३४८ में उसने ही प्राहा में स्थापित किया था। यह महल अब मधुशाला के रूप में सार्वजनिक विश्रान्त गृह है। भोजन के लिये कई बड़े-बडे हाल हैं। शौकीन लोग कांच मढ़े बरामदे में बैठकर नीचे का दृश्य देखते आधी रात तक खाते-पीते, नाचते रहते हैं।

अवसरवश युगोस्लाव लेखक आंतोन एंगोलिच और मैं साथ-साथ बैठे थे। एंगोलिच से होटल में और कांग्रेस में आमना-सामना प्रायः ही होता रहता था। बात दोनों ही करना चाहते थे परन्तु उसके अंग्रेजी न जानने के कारण बात बन न पाती थी। भारतीय लेखक के प्रति उसे भी कौतूहल था। मिलाना फ्रेंच बोल लेती है और एंगोलिच भी। पहला प्रश्न उसी ने किया—"भारत में बुलगानिन और क्रुश्चेव की यात्रा का क्या प्रभाव पड़ा?" उसे बताया कि भारत में रूसी नेताओं का अपूर्व स्वागत हुआ था। परिणाम में दोनों में पारस्परिक सहानुभूति बहुत बढ़ी है। इस समय टीटो मास्को की ओर जा रहे थे। हम लोग इस यात्रा के परिणामों का अनुमान करने लगे।

मैंने पूछा—"युगोस्लाविया साम्राज्यवादी प्रणाली में विश्वास नहीं रखता। इतने दिन तक युगोस्लाविया और सोवियत के पारस्परिक सम्बन्ध अच्छे क्यों नहीं रहे?"

एंगोलिच ने बहुत ब्योरे से समझाना शुरू किया। उसके विचार से सब दोष सोवियत नेताओं का ही था। उसका विचार था कि युगोस्लाविया कृषि के क्षेत्र में अपने श्रम से उत्पादन करने वाले किसानों को स्वतंत्र व्यक्तिगत रूप से खेती करने का अवसर देकर अपने देश की परिस्थितियों के अनुसार आर्थिक व्यवस्था का राष्ट्रीयकरण कर रहा था। सोवियत अपनी सामूहिक प्रणाली उन पर लागू करना चाहता था। इसे युगोस्लाविया सहने के लिये तैयार न था। एंगोलिच का विचार है कि समाजीकरण की नीति में युगोस्लाविया सोवियत की अपेक्षा भी आगे है।

बात को संक्षेप में समझने के लिये मैंने पूछा—"यह बताइये, युगोस्लाव जनता आर्थिक व्यवस्था और जीवन दर्शन की समर्थक है या मार्क्सवाद की ?"

आंतोन ने मेज पर हाथ मारकर कहा—"मार्क्सवाद! ……इसमें सन्देह की गुंजाइश क्या है ?"

"तो फिर युगोस्लाविया के प्रति अमेरिका की सद्भावना और सहायता का क्या कारण रहा ? उनका तो एक ही निश्चित लक्ष्य है, मार्क्सवाद का विरोध!"

"उनकी भावना का जो भी कारण रहा हो!" एंगोलिच ने उत्तर दिया, "हमारी आंतरिक व्यवस्था में दखल दिये बिना यदि कोई सहयोग और सहायता देता है तो उसका स्वागत है। अपनी व्यवस्था और विचारधारा में दखल हम किसी मूल्य पर सहने को तैयार नहीं। अमेरिका ने कोई ऐसी सहायता भी हमें क्या दी ?"

अगले दिन दोपहर बाद क्लादनो घूमने चले गये।

क्लादनो की राह में कुछ समय के लिये लेगित्सा में भी ठहरे। लेगित्सा की बस्ती बिलकुल नयी जान पड़ती है, जैसे खेतों में एक नया पक्का कैम्प बना दिया गया हो। एक छोटा सा मकान बिलकुल अलग बना था। वहाँ जाकर जाना कि यह लेगित्सा का स्मारक संग्रहालय है। लेगित्सा ग्राम पीढ़ियों पुराना है, परन्तु नई बस्ती सात आठ बरस की ही है। नाजी शासनकाल में इस स्थान का जर्मन शासक बहुत क्रूर था और यहाँ नाजी शासन से मुक्ति के लिये गुप्त आन्दोलन और संगठन भी चल रहा था। अवसर देखकर दो नौजवानों ने जर्मन कमांडर को गोली मार दी। नाजियों के क्रोध और प्रतिकार का ज्वालामुखी भड़क उठा। पूरा गांव जला दिया गया और मकानों की दीवारें तक गिरा दी गयीं। एक सौ सत्तर नर-नारी गोली से उड़ा दिये गये। वही दो चार लोग बच सके जो भाग जाने में सफल हो गये। गांव में छियानबे बच्चे थे। उनमें से अस्सी को विषैली गैस सुंघाकर मार दिया गया। सोलह जो अधिक सुंदर या जर्मन नस्ल के मान लिये जाने योग्य थे, निसन्तान जर्मन परिवारों को सौंप दिये गये। ऐसे शासन और व्यवस्था के प्रति पास-पड़ोस के लोगों में क्या सहानुभूति होती ? संग्रहालय में पुरानी लेगित्सा की स्मारक वस्तुएं और नाजी शासन के गुप्त विद्रोह से सम्बन्ध रखने वाली वस्तुएं आदर से संगृहीत हैं। उसके साथ ही लेगित्सा को नाजी शासन से मुक्त कराने वाली कम्युनिस्ट लाल सेना की स्मारक वस्तुएं भी रखी गयी हैं।

क्लादनों में लोहे-फौलाद के कारखाने बनाये जाने का कारण यहाँ कोयले की खानों का होना है। बस्ती खानों और फौलाद की मिल में काम करने वाले मजदूरों की है। इस कारखाने में लोहे के पचासों मन बोझ के बड़े-बड़े टुकड़ों की यंत्रों द्वारा भट्टियों से निकाल कर दूसरी मशीनों में देकर कुछ ही मिनटों में उनके शहतीर और सलाखें बन जाते देखना बहुत रोमांचक जान पड़ता था। कई स्थानों पर पिघले हुए लोहे के झरने बह रहे थे। विज्ञान और यंत्रों की शक्ति को देखकर विस्मय हो रहा था। कारखाना मीलों दूर तक फैला हुआ है। अपने देश में भी टाटा का लोहा-फ़ौलाद बनाने का बहुत बड़ा कारखाना है।

उसे कभी देखा नहीं, इसलिये तुलना नहीं कर सकता। यह कारखाना चेकोस्लोवाकिया में आर्थिक व्यवस्था के समाजीकरण से पहले भी था। मायेरोबा के उपन्यास के अनुसार उस समय यह 'प्राहा स्टील कम्पनी' की सम्पत्ति था। सुना कि पिछले दस वर्ष में इस कारखाने का फैलाव और पैदावार दूनी से अधिक हो गयी है। उसी के अनुकूल क्लादनो की बस्ती और मकानों की संख्या भी बढ़ गई है। इन लोगों का कहना है कि समाजवादी व्यवस्था के दस वर्ष में यहाँ इतने मकान बने हैं जितने उससे पहले नब्बे वर्ष में भी नहीं बने थे।

बस्ती नये ढंग की साफ-सुथरी है। नयी बस्ती में बंगलेनुमा दो-तीन मंजिले मकान भी हैं और तेरह मंजिली आधुनिक हवेलियां भी। यहाँ क्रेस (सामूहिक पलने) भी हैं जहाँ कारखानों और दफ्तरों में काम करने वाली मातायें अपने बच्चों को दिन भर के लिये छोड़ जाती हैं। पलने की दाइयां बच्चों को खिलाने-पिलाने और नहलाने-धुलाने का भी काम करती ही हैं। नौ-दस महीने तक की आयु के बच्चे तो दूध पीने के समय के अतिरिक्त दिन भर सोया ही करते हैं। उठकर खड़े हो जाते हैं तो अपने पलने का जंगला पकड़े कूदने या पलने की परिक्रमा करते रहते हैं। शेष बच्चों के लिये उनकी आयु और कद के हिसाब से हाथ मुंह धोने, खाना खाने और खेलने की जगहें हैं। बच्चे अपनी ही चीजें तौलिया, बर्तन, साबुन वगैरा ही व्यवहार करें, इसका यह उपाय किया गया है कि सब बच्चों के लिये एक-एक चिन्ह निश्चित है। किसी के लिये खरगोश किसी के लिये कुत्ता, किसी के लिये गिलहरी, तितली, फूल अदि। बच्चे के पलने में, पहनने के कपड़ों, गिलास, तौलिये, दांत मांजने के ब्रुश सब चीजों पर वही चिन्ह बना रहता है। बच्चे अपनी चीजें स्वयं पहचान लेते हैं। खिलौने आयु के हिसाव से वनाई गई टोलियों के साझे होते हैं। खिलौने काफी और कीमती भी होते हैं। लड़कों और लड़कियों के शौक और स्वभाव का भी ध्यान रखा जाता है।

ऐसे पलने और शिशुशालायें प्राहा के मुहल्लों में और कुछ बाजारों में भी हैं। बाजार के लिये घर से निकली या पड़ोस के गांवों से आयी मातायें अपने बच्चों को यहाँ कई-कई घण्टे के लिय छोड़ जाती हैं। बच्चों को शिशुशाला में आठ घन्टे तक रखने का खर्चा नाममात्र दो-तीन आने ही होता है। कारखानों या संस्थाओं के पलनों में बच्चों के लिये दूध या भोजन का दाम नहीं देना पड़ता परन्तु बाजारों में बनी शिशुशालाओं में यह खर्च अलग से ले लिया जाता है। गदबदे, फूले-फूले शरीर और सुथरे चेहरों के बच्चों की यह दुनियां बड़ी भली लगती है। बच्चे अपने में मस्त रहते हैं। दर्शकों की परवाह भी नहीं करते। दाइयां दर्शकों को कांच की बड़ी-बड़ी खिड़कियों से ही यह तमाशा देखने देती हैं। भीतर नहीं जाने देतीं। किसी भी प्रकार के रोग की छुआछूत का बड़ा भय माना जाता है। बच्चों के अपने घर से आने पर उनके घर के कपड़े बदला कर एक थैले में अलग कमरे में लटका दिये जाते हैं।

इस बस्ती के मकानों को भीतर से और लोगों के रहन-सहन का स्तर देखने की इच्छा तो थी। दूसरे लोग घरों में जाकर देख भी रहे थे। मिलाना ने साथ चलने के लिये कहा तो मैंने टाल दिया—"भीड़ में कौन जाये।"

हम दस-बारह अतिथि लेखक एक साथ ही आये थे। मुझे दस-बारह लोगों का किसी के घर पर धावा बोल देना अच्छा नहीं लग रहा था। यह भी सोचा कि दिखाने वाले लोग शायद चुन-चुन कर साफ-सुथरे और सम्पन्न मजदूरों के घर दिखा देंगे। सड़क पर तार के पहिये दौड़ाते और छोटी-छोटी साइकिलों पर रेस करते बच्चों को देखने लगा। मिलाना जिप्सी लोगों की बातें सुना रही थी।

अच्छे भरे शरीर की एक स्त्री सड़क पर से गुजरी। उसने हम लोगों की ओर देखकर मुस्करा दिया—'दोब्रे देन' (शुभ दिन) ऐसा व्यवहार यूरोप में शुभ और सौजन्यता सूचक समझा जाता है।

मिलाना ने सौजन्य के उत्तर के साथ ही बात की—"यहाँ समीप ही रहती हो क्या? यह भारतीय लेखक है। देखना चाहता है कि यहाँ नये मकान किस ढंग के बने हैं? भीतर कैसी व्यवस्था है।

स्त्री हमें अपने साथ घर ले चली। उसके कमरे तीसरी मंजिल पर थे। इमारत में लिफ्ट की जगह तो थी परन्तु लिफ्ट अभी लगा नहीं था। उसके भाग में दो अच्छे बड़े और एक छोटा कमरा था। छोटी सी रसोई और गुसलखाना अलग। छोटे कमरे में बच्चे का बिस्तर और खिलौने सजे थे। बिस्तर पर सुलाई हुई गुड़िया से अनुमान कर पूछा—"आपकी बेटी कितने बरस की है।"

स्त्री ने उत्तर दिया—"तीन बरस की है। किंडर गार्टन में गई हुई है। अब की चाहती हूँ, उसका भाई हो।"

"भाई ही होगा" मैंने कह दिया। स्त्री की आखों में प्रसन्नता छलक आयी। गद्गद स्वर में धन्यवाद देकर उसने हमें बैठक मे सोफा पर बैठाया। एक बड़ी तश्तरी में सेव और टाफी सामने रख दिये। कमरों की साज-सज्जा अच्छी थी। फूल पत्ती की बिनाई के जालीदार पर्दे। फर्श पर अच्छा कालीन शीशे की आलमारी में कांच के कीमती फ्लास्क और गिलासों के दो से अधिक सेट। दो गमलों में गरम देशों के पेड़। शयनकक्ष में बिस्तर भी अच्छे जाजमों से ढंके हुए। केवल निर्वाह कर लेने की नहीं, शौक और चाव पूरा करने की हैसियत भी थी। मकान का किराया सवा सौ क्राउन है। पति कोयले की खान में दो हजार क्राउन मासिक पाता है और वह स्वयं छोटे बच्चों के स्कूल में एक हजार मासिक पाती है।

चेकोस्लोवाकिया में वेतन का ढंग अपने यहाँ से भिन्न है। कड़ी मेहनत या कठिन काम करने वाले मजदूरों को किरानी बाबू लोगो से अधिक तनखाह मिलती है। न्यूनतम वेतन प्रायः सात सौ क्राउन होता है। विनिमय दर से तो एक क्राउन दस आने के बराबर होता है परन्तु क्राउन का वास्तविक मूल्य तीन आने के लगभग है। विनिमय का दर कृत्रिम तौर पर ऊंचा रखा गया है। सात सौ क्राउन को अपने यहाँ के डेढ़ सौ रुपये समझिये। प्राहा में भारतीय राजदूत डाक्टर खोसला ने बताया था कि उन्हें अपने चेक से

माली को नौ सौ क्राउन देने पड़ते हैं। माली को टिकाये रखने के लिये उसकी स्त्री को भी घरेलू काम की नौकरी देनी पड़ी है। स्त्री को सात सौ क्राउन देते हैं।

समाजवादी व्यवस्था के देशों में तनखाह या मजदूरी की रकम से ही मजदूर या नौकर की वास्तविक स्थिति का अनुमान नहीं किया जा सकता। सभी उत्पादक सगठन और संस्थायें अपने उत्पादन का एक भाग चिकित्सा और दूसरी सामाजिक आवश्यकताओं के लिये अलग निकाल कर तनखाह या मजदूरी देते हैं। उनके यहाँ काम करने वालों की चिकित्सा, बच्चों की शिक्षा और वृद्धावस्था की पेंशन की जिम्मेदारी उन पर रहती है। बीमारी की अवस्था में निःशुल्क चिकित्सा और सवेतन छुट्टी निश्चित रहती है। किसी भी समय बेरोजगार या बेकार हो जाने की कोई सम्भावना नहीं समझी जाती। मतलब यह है कि मासिक आमदनी का अच्छा खासा भाग भविष्य की चिन्ता मे बचाते रहने की आवश्यकता नहीं है। कुछ और भी विशेष सुविधायें विद्यार्थियो, मजदूरों और नौकरी पेशा लोगों के लिये हैं। प्रायः सभी विद्यार्थी ढाई तीन सौ क्राउन मासिक छात्रवृत्ति पाते हैं। विद्यालयों, कारखानों और दफ्तरों में अपने भोजनालय हैं। जहाँ बाजार में छः क्राउन में मिलने वाला भोजन, पढाई या काम के समय में अढ़ाई क्राउन में दिया जाता है।

दोपहर का भोजन हम लोगों ने फौलाद मिल के मजदूरों के क्लब में किया था। भोजन में क्लादनो की वृद्धा लेखिका मायेरोवा भी सम्मिलित हुई थी। सध्या की चाय का आयोजन खान में काम करने वाले लोगों के हाईस्कूल में था। उसके लिये लगभग चार-पांच मील दूर जाना पड़ा। लड़के-लड़कियां बड़े उत्साह से गले में लाल रूमाल बांधे और चुस्त सुन्दर कपड़े पहने सध्या आठ बजे तक हमारी प्रतीक्षा कर रहे थे। उन्होंने खूब बैंड बजाकर स्वागत किया, नाच दिखाया और गाना भी सुनाया। अतिथियों के हस्ताक्षरों की बहुत माँग थी। सभी अतिथियों को संदेश और आशीर्वाद देने के लिये भी विवश किया गया। छोटे-छोटे बच्चे मन में अद्भुत जिज्ञासायें लिये हुए थे। एक ने पूछा—"हाथी कैसे पकड़ा जाता है?" दूसरे ने भारत के बाजारो के चित्र में गाय-बछिया को भीड़ में घूमते देखा था। उसने पूछा—"गाय बाजार में आकर लोगों को मारती नहीं?"

दो-ढाई बरस पूर्व लखनऊ में मुझे प्राहा से हिन्दी में लिखा हुआ डाक्टर ओडोलियन स्मेकल का एक पत्र मिला था जिसमें मेरी कुछ पुस्तके भेजने और हिन्दी उर्दू की अच्छी मासिक पत्रिकाओं के नाम सुझाने का अनुरोध था। मेरे प्राहा पहुँचने के दिन ही संध्या समय डाक्टर स्मेकल होटल में मिलने आये। उच्चारण में कुछ अंतर जरूर है परन्तु डाक्टर स्मेकल खूब हिन्दी बोलते है। उनकी हिन्दी संस्कृतनिष्ठ और साहित्यिक ढंग की होती है। उन्होंने कार्ल्स विश्वविद्यालय के पूर्वी विभाग में सस्कृत, हिन्दी-उर्दू और कुछ बंगाली का भी अध्ययन किया है। इस समय वहाँ हिन्दी के अध्यापक है। विश्वविद्यालय के पूर्वी विभाग में चीनी, जापानी, बर्मी आदि का भी अध्ययन होता है परन्तु संस्कृत, हिन्दी, बंगला के लिये भी कम रुचि नही है। डाक्टर स्मेकल बिलकुल नौजवान हैं। उनके

अतिरिक्त दो प्रौढ़ प्रोफेसर डाक्टर फ्रीश और डाक्टर पुरीश्का भी संस्कृत और भारतीय भाषाओं का विशेष अध्ययन और अनुशीलन कर रहे हैं।

भारतीय संस्कृति और साहित्य में चेकोस्लोवाकिया के लोगों की कितनी रुचि है; इसका संकेत डाक्टर फ्रीश से बातचीत में मिला। उन्होंने बताया इसी वर्ष मार्च मास में 'बैताल पच्चीसी' का अनुवाद चेक भाषा में प्रकाशित किया गया है। यह सोचकर कि प्राचीन भारतीय साहित्य की पुस्तक है, इसकी अधिक खपत क्या होगी, केवल पांच हजार प्रतियां ही छपाई गई थीं। यहाँ लोगों में पढ़ने की रुचि बहुत जान पड़ती है। जगह-जगह पुस्तकों की दुकानें दिखाई देती हैं। एक साप्ताहिक पत्र तो इतना लोकप्रिय है कि उसके प्रकाशित होने के दिन दोपहर बाद 'वेसेस्लावस्की' नाम्यास्ती, चौक में पत्र के दफ्तर के नीचे पटरी पर लम्बी-लम्बी लाइनें लग जाती हैं। पुस्तक प्रकाशित होते ही पहले उसे खरीद लेने की होड़ भी काफी चलती है इसलिये पुस्तकों के प्रकाशित होने की तारीख, दुकानों पर पहुँचने के समय की सूचना पत्रों में दे दी जाती है। यह साधारण नियम 'बैताल पच्चीसी' के प्रकाशन के समय भी पूरा किया गया। पांचों हजार प्रतियां तीन ही घण्टे में बिक गईं और बहुत से लोग हाथ मलते रह गये।

डाक्टर फ्रीश के वहुत गम्भीर व्यक्ति जान पडने पर भी मुझे यह बात कुछ अत्युक्तिपूर्ण लगी थी परन्तु भारतीय राज-दूतावास में राजदूत के प्रथम सचिव श्री वैंकटेश्वरम ने भी निजी बातचीत में इस प्रसंग का उल्लेख कर विस्मय प्रकट किया तो विश्वास करना ही पड़ा। यों अभी तक चेक भाषा में गुरु देव ठाकुर के अतिरिक्त प्रेमचन्द्र की कुछ कहानियां और उन्हीं लेखकों के कुछ अनुवाद हो पाये हैं जो भारत में प्रायः अंजाने होने पर भी विदेशों में अपना परिचय भारत के प्रमुख लेखकों के रूप में दे आये हैं।

१९५३-५४ में जब भारतीय पत्रों में उत्तर प्रदेश के लिये हिन्दी-उर्दू दो राजभाषाएं स्वीकार करने के पक्ष-विपक्ष में लेख निकल रहे थे, प्राहा में भी इस विषय पर विवाद चल रहा था कि हिन्दी-उर्दू दो भाषाएं हैं अथवा एक ही भाषा है और भारत में हिन्दी की संस्कृतनिष्ठ शैली जनप्रिय है या फारसी मिली शैली। एक विद्यार्थी ने तो डिग्री परीक्षा के लिये अपना निबंध ही इस प्रश्न पर लिखा था। यह प्रश्न चेकोस्लोवाकिया में ही नहीं रूस में भी विवाद का कारण था। उन लोगों के सामने परस्पर-विरोधी बातें थीं। एक ओर तो वे देख रहे थे कि भारत से अंग्रेजी सत्ता दूर होते ही यहाँ की लोकसभा ने हिन्दी को राष्ट्रभाषा घोषित कर दिया है। उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्यभारत, राजस्थान आदि में हिन्दी राजभाषा स्वीकार कर ली गई है। दूसरी ओर राजनैतिक विचारों की सहानुभूति के कारण जिन भारतीय लोगों को सोवियत और चेकोस्लोवाकिया आदि जाने का अवसर मिला, वे उर्दू ही जानते थे। भाषा की समस्या पर इन लोगों ने समझाया था कि हिन्दुस्तानी का अभिप्राय फारसी लिपि में लिखी जाने वाली फारसी मिली भाषा ही है। देवनागरी लिपि और संस्कृतनिष्ठ हिन्दी साम्प्रदायिक लोगों और कांग्रेसी पूंजीपति श्रेणी द्वारा जन-

साधारण पर लादी गई चीज है। डाक्टर रघुवीर द्वारा बनाये गये बहुत से शब्दों के उदाहरण दे देकर बताया गया कि बोर्जुआ लोगों द्वारा लादी गई हिन्दी कृत्रिम भाषा है, इसका परिणाम लोक-भाषा और लोक-संस्कृति का दमन है परन्तु वहाँ के जिज्ञासु लोग इस सम्बन्ध में भाषा विज्ञान के आधार पर विचार करते रहे। भारत में जो लेख इस विषय में प्रकाशित होते थे उनका भी वे तुलनात्मक अध्ययन करते थे।

डाक्टर पुरीश्का ने बातचीत में 'नयापथ' में (१९५३ नवम्बर में) प्रकाशित मेरे लेख की भी चर्चा की। अब सोवियत में या चेकोस्लोवाकिया में भाषा शास्त्री लोगों में उर्दू को पृथक भाषा नहीं, हिन्दी की एक शैली और हिन्दी के अन्तर्गत एक साहित्य मानने की ही धारणा है। सोवियत और चेकोस्लोवाकिया में लोग हिन्दी के अतिरिक्त बंगला, मराठी, तामिल और पंजाबी सीखने का भी प्रयत्न करते हैं। भारतीय भाषाओं के सम्यक् ज्ञान के लिये वहाँ के विश्वविद्यालयों में संस्कृत का आधार आवश्यक रखा गया है। प्राहा में ऐसे भी लोग मिले जो फारसी को भारतीय भाषा न मान सकने की प्रतिक्रिया में नितान्त संस्कृतनिष्ठ हिन्दी के पक्षपाती हैं। वे लोग 'सड़क पर औरत जाती है' वाक्य को शुद्ध हिन्दी न मानकर 'पथ पर नारी जाती है' बोलना ही पसन्द करेंगे। इस विषय पर मुझसे भी काफी बातचीत हुई। मेरा कहना था कि जो कुछ देवनागरी में लिखा जाता है, जिस भाषा में क्रियाएं सर्वनाम आदि हिन्दी के हैं, वह हिन्दी ही है। हम हिन्दी में संस्कृत और फारसी के शब्दों का समावेश इसी कसौटी पर करना चाहते हैं कि सर्वसाधारण के लिये क्या सुबोध है। हिन्दी-उर्दू के प्रश्न पर मेरा उत्तर था कि उर्दू बोलना सीखने से आता है और उत्तरी भारत की भाषा हिन्दी यहाँ जन्म लेने से अपने आप ही आ जाती है।

डा० स्मेकल को भारतीय सस्कृति और भाषा में विशेष रुचि है। वर्तमान हिन्दी लेखक और कवियों में वे राहुल सांकृत्यायन, मैथिलीशरण गुप्त, पंत, जैनेन्द्र, अमृतराय, जाफरी, प्यारेलाल और नवतेज, गार्गी तक से परिचित हैं। उन्होंने अनेक हिन्दी कहानियां और कविताओं को चेक में अनुवाद किया है। इस समय वे चेक भाषा में हिन्दी की पाठ्य-पुस्तक तैयार कर रहे हैं। भारत के सम्बन्ध में प्रायः भाषण भी देते हैं। मिल्तनेर अभी विद्यार्थी हैं परन्तु उनका भी हिन्दी ज्ञान बहुत अच्छा है। उनकी चेक भाषा से हिन्दी में अनुवादित एक कहानी देहली 'प्रकाशन विभाग' की पत्रिका 'लोक कथा' में प्रकाशित हुई है। मिलाना ने मेरे प्राहा से चलने से पूर्व मेरी दो कहानियों का चेक में अनुवाद कर प्राहा की एक साहित्यिक पत्रिका में दे दिया था।

२९ अप्रैल की संध्या कांग्रेस समाप्त हो गई। उस रात अतिथियों में से उपन्यास लेखकों की टोली को प्राहा की एक बहुत पुरानी मधुशाला में भोजन का निमंत्रण था। भीतर जाने पर इमारत साफ-सुथरी होने पर भी ढाई-तीन सौ साल पुरानी जान पड़ती थी। मेज कुर्सियां और पीपे सब जानबूझकर ही पुरातन शैली के रखे हुए हैं। खाने के कमरे में फर्श के बीचोंबीच एक कुएं के ढंग का मोटे कांच से ढका गवाक्ष है। नीचे मद्य के भण्डार की झलक मिलती रहती है। शायद किसी समय गाहकों के लिये मद्य के डोल भर-भर के ऊपर खींच लिये जाते होंगे। हम लोग रात दो बजे तक बातचीत करते रहे

और पड़ोस के कमरों से लगातार गाने-बजाने और नाचने की धूम-धड़ाक सुनाई देती रही। बातचीत का विषय यही था कि कला और साहित्य लेखक के समाज की विचारधारा को प्रतिबिम्बित किये बिना नहीं रह सकते। बार-बार मुझसे भी पूछा गया तो कहा—"मैं तो निश्चय ही समझता हूँ कि कला कलाकार के समाज और श्रेणी के विचार को प्रतिबिम्बित करती है। उदाहरणतः एंग्लोइंडियन कवि रुडयार्ड किप्लिंग ने लिखा है, "पूरब पूरब है पच्छिम पच्छिम, दोनों कभी न मिल सकेंगे, जैसे दिवा निशा।" उसके साहित्य में पच्छिम की उत्कृष्टता और उसके लिये लूट के अधिकार का प्रतिपादन करने की विचारधारा स्पष्ट है। इसके विपरीत आप लोगों को अपनी शक्ति पूर्व और पश्चिम के सहयोग में दिखाई पड़ती है इसलिये आपकी कांग्रेस में जापान और चीन उपस्थित हैं वहाँ अमरीका के पश्चिम तट के लेखक भी। यहाँ उत्तर-दक्षिण का भेद भी नहीं है क्योंकि आइसलैंड से लेकर आस्ट्रेलिया और मैक्सिको तक के लोग यहाँ हैं।"

रात के दो बज जाने पर उठना आवश्यक हो गया क्योंकि संध्या समय ही सूचना दे दी गयी थी कि बाहर से आये लेखकों को स्लोवाक लेखकों के संगठन ने ब्रातिस्लावा में आमंत्रित किया है। प्रायः आठ बजे ही विमान से ब्रातिस्लावा के लिये चलना निश्चित था।

ब्रातिस्लावा चेकोस्लोवाकिया के स्लोवाकिया प्रांत की राजधानी है। प्राहा से रेल से नौ-दस घण्टे की यात्रा है। विमान से चलने का प्रयोजन था कि दिन यात्रा में न खप जाये परन्तु आकाश तो विमुख था, प्राहा में भी घने बादल थे। विमान मेघों से ऊपर उड़कर ब्रातिस्लावा में उतरा तो वहाँ मेघ पहले ही पृथ्वी पर मूसलाधार बरस रहे थे और खूब सर्दी थी। ऐसी अवस्था में भी स्लोवाकिया के लेखक संघ के दो सदस्य [illegible] अड्डे पर मौजूद थे। नगर जाकर होटल 'देविन' में ठहरे।

ब्रातिस्लावा छोटा-सा नगर है। जनसंख्या सवा लाख से अधिक नहीं होगी परन्तु नया बना होटल साज-सज्जा और सुविधा के विचार से यूरोप के किसी भी होटल से बुरा न था। वर्षा के कारण कहीं जाने का अवसर न था। होटल का रेस्तोरां खूब बड़ा है और वर्षा के कारण दूसरा विनोद न कर सकने वाले लोगों से खूब भरा हुआ था। अतिथियों की सुविधा के लिये एक बड़ा कमरा सुरक्षित कर दिया गया था जिसमें आतिथ्य करने वाले स्लोवाक और अतिथि लेखक ढाई-तीन घण्टे बातचीत और खानपान करते रहे।

वर्षा नहीं थमी परन्तु सन्ध्या समय नगर से बारह मील दूर लेखकों के भवन में जाना ही पड़ा। यहाँ भी प्राहा के समीप दोबशिश की तरह ही पर उससे जरा छोटा प्रासाद लेखकों का भवन है। साज-सज्जा और सुविधा का सामान भी उसी ढंग का। लोहे और कांसे की बड़ी-बड़ी मूर्तियां विशेष रूप से ध्यान आकर्षित करती थीं। स्लोवाक लोग स्वभाव से मौजी और उदार होते हैं वैसा ही उनका आतिथ्य था।

पहली मई प्रायः नींद खुली तो उत्सुकता से खिड़की के समीप आकर देखा। आकाश पर अब भी खूब घना बादल था। प्रबल वायु ऊंचे-ऊंचे वृक्षों को दोहरा किये दे रही थी। कोई-कोई बूंद भी टपक जाती थी। दैव की यह विमुखता खल रही थी। क्योंकि पहली मई

यहाँ महोत्सव का दिन था। सुना था बाजार में जुलूस निकलेगा। अपने यहाँ भी पहली मई मजदूरों के उत्सव का दिन होता है। मजदूरों के राज में उस उत्सव को देख पाना और बात थी। सोचा, ऐसी ऋतु में क्या जुलूस निकलेगा।

नाश्ते के समय ही स्लोवाक साथियों ने चेतावनी दे दी—"आकाश को देख लीजिये। ऐसे समय में जुलूस देखने जाइयेगा?"

ब्रातिस्लावा के लोग यदि मेघ और वायु के ताण्डव की उपेक्षा कर जुलूस निकाल रहे थे तो हमें एक ओर खड़े होकर देख लेने का साहस तो करना ही चाहिये था। जुलूस का समय प्रातः दस बजे का था। हम लोग पौने दस बजे चौक में पहुंचे। हम लोगों को मंच पर खड़े हो सकने के लिये टिकट दे दिये गये थे।

बाल-बच्चों सहित बरसातियां ओढ़े लोगों की भीड़ ऐसी ठस थी कि हमारे लिये राह बना देने की इच्छा होते हुए भीड़ के लिये हिल पाने का स्थान न था। जैसे, तैसे, दबते-पिसते मंच पर पहुंच ही गये। मुख्य बाजार में सड़क के दोनों ओर कायदे से अपने आपको पीछे दबाये भीड़ नदी के कगारों की तरह दृष्टि की पहुंच तक खड़ी थी। शायद कोई ही मकान या दुकान होगी जहाँ चेकोस्लोवाकिया के लाल-नीले और श्वेत झंडे, कम्युनिस्ट पार्टी और सोवियत के लाल झंडों से दीवारें और छतें ढंकी न हों। वैसे ही बड़े-बड़े लाल कपड़ों पर खूब बडे अक्षरों में नारे और संदेश लगे हुए थे। नारे मई दिवस की जय! लेनिनवाद के पथ पर समाजवाद की विजय! विश्व-शान्ति की जय! के थे। स्थान-स्थान पर मार्क्स, लेनिन, जुलियस फूशिका और चेकोस्लोवाकिया के राष्ट्रपति जापोतोत्स्की के बड़े-बड़े चित्र भी थे। स्तालिन का चित्र कहीं न था और न स्तालिन की जय का नारा। खूब तीखी ठडी हवा अब भी चल रही थी। दस बजकर एक या डेढ़ मिनट पर मेरी घड़ी के अनुसार बैंड पर मजदूरों के अन्तर्राष्ट्रीय गीत की धुन बजी। उसके बाद चेकोस्लोवाकिया का राष्ट्रीय गान बजा। मंच पर चेकोस्लोवाकिया की कम्युनिस्ट पार्टी के मंत्री भाषण के लिये खड़े हुए। विराट जनसमूह ने जय ध्वनि की—'अझिये प्रविनी माई (पहली मई जिन्दाबाद)!'

अवसर के अनुकूल मन्त्री का भाषण संक्षिप्त ही था। उन्होंने संसार भर के मजदूरों के सामने त्योहार का और संसार भर की मजदूर बिरादरी का अभिनन्दन किया। संसार भर के उत्पादकों के कल्याण के लिये विश्व-शान्ति के प्रयत्नों की सफलता का विश्वास दिलाया। उन्होंने पिछले दस वर्ष में चेकोस्लोवाकिया के मजदूरों द्वारा प्राप्त सफलता की सराहना की और फिर स्वीकार किया कि हमने बहुत-सी भूलें भी की हैं जिनका मुख्य कारण व्यक्तियों की अन्धपूजा और सिद्धान्तों के बारे में कठमुल्लापन की नीति थी। इन भूलों से पार्टी के क्षेत्र में जनगण की स्वतन्त्रता का दमन हुआ है जिसने पार्टी की विकास और निर्माण की शक्ति को निर्बल किया है। उन्होंने भविष्य में आत्मालोचना द्वारा ऐसी भूलों से बचकर मार्क्सवाद और लेनिनवाद के मार्ग से समाजवादी व्यवस्था और विश्व-शान्ति की विजय प्राप्त करने के लिये प्रेरणा दी।

मिलाना समीप खड़ी दो-दो तीन-तीन वाक्यों का अर्थ बताती जा रही थी। मैं स्तालिन का नाम अथवा उस सम्बन्ध में कोई चर्चा सुन पाने के लिये कान लगाये था परन्तु यह सुनाई नहीं दिया। भाषण के पश्चात फिर मजदूर अन्तर्राष्ट्रीय की और चेकोस्लोवाकिया के राष्ट्रीय गान की धुन बजी और मार्ग पर मजदूरों की टोलियां सैकड़ों चेकोस्लोवाक और कम्युनिस्ट झंडे लेकर निकलने लगीं। उसके बाद स्कूलों के छोटे-छोटे बच्चों, लड़के-लड़कियों की सौ-सौ, डेढ़ सौ की टोलियां छोटे-छोटे झंडे और कागज के फूल लिये निकलीं। कुछ बड़ी आयु के बच्चों की टोलियां और फिर लड़के-लड़कियों की टोलियों ने आकर सैकड़ों शांति दूत कबूतर उड़ाये। इसके बाद झांकियां निकलनी आरम्भ हुईं। रंग-मंच के कलाकारों की झांकी एक बहुत बड़े दोमंजिले मकान जितना ऊंचा एक चक्र थी। चक्र सड़क पर लुढ़कता जा रहा था। चक्र की किरणों में कलाकारों द्वारा उपस्थित नाटकों के नाम थे। विविध पेशों के कारखानों के और मिलों की झांकियां उनके काम और कौशल का परिचय दे रही थीं। बीच-बीच में गाते-बजाते, नाच करते हुए पुरुषों, स्त्रियों और स्त्री-पुरुषों की टोलियां निकल रही थीं। इन टोलियों में प्रायः ही लोगों ने स्लोवाकिया की प्राचीन वेश-भूषा धारण की हुई थी जो अब प्रायः संग्रहालयों में ही रखी जाती है।

ऐसा जान पड़ा कि पहली मई का उत्सव मनाने वालों के हठ के सम्मुख आंधी बादल को भी झेंप आने लगी थी। दो-तीन बार मिनट डेढ़ मिनट के लिये सूर्य चमक गया। ज्यों ही धूप की झलक आती, सैकडों कैमरे क्लिक-क्लिक करने लगते। स्पार्तक युवक-युवतियों के व्यायाम और खेलों के संगठनों की टोलियां अपने-अपने संगठनों की वर्दियों में थीं। बैंक में काम करने वालों डाक्टरों और नर्सों के दल और स्कूल-कालिजों के अध्यापकों के दल भी मजदूरों के इस जुलूस में उत्साह और गर्व से भाग ले रहे थे। हमारे यहाँ मजदूर का आदर करना हो तो उसे बाबू कहकर सम्बोधित किया जाता है। समाजवादी समाज में किसी प्रोफेसर या लेखक का परिचय देना हो तो उसे बौद्धिक मजदूर कहे जाने से प्रसन्नता होती है।

जुलूस और झांकिया रोचक तो थीं परन्तु मै नियमित रूप से बहते खूब चौड़े उस जन प्रवाह को देखकर अनुमान करना चाहता था कि कितने लोग इसमें भाग ले रहे होंगे। हमारे यहाँ जिन जुलूसों में लाख-डेढ़-लाख व्यक्तियों के सम्मिलित होने का दावा कर लिया जाता है, उनसे यह जुलूस बहुत बड़ा था परन्तु पूरे ब्रातिस्लावा की जनसंख्या डेढ़ लाख से कम बतायी जाती है। निश्चय ही आसपास के गांवों से सांझी खेती के क्षेत्रों के लोग भी जुलूस में सम्मिलित होने आये थे परन्तु कुछ लोग दर्शक भी तो रहे होंगे।

आंधी और बादल मई दिवस के उत्सव को भंग करने में असफल रहे तो अपना फौज फाटा सम्भाल कर चल दिये और सूर्य मुस्कराने लगा। दुकानें त्योहार की छुट्टी के कारण बन्द थीं परन्तु कांच की बड़ी दीवारों के पीछे खूब सजी हुई दिखाई दे रही थीं और देखने में खुली हुई लग रही थीं।

मैं वस्तुओं पर लिखे मूल्य देख रहा था। प्राहा और ब्रातिस्लावा के मूल्यों में पाई-दमड़ी का भी अन्तर न था। साधारणतः उपयोग और शौक की वस्तुओं के मूल्य में बहुत अन्तर था। अच्छा काम चलाऊ जूता साठ क्राउन में मिल सकता है। न भीगने वाले तले और चमड़े का जूता एक सौ चालीस क्राउन में मिल जाता है; परन्तु हाथ से बने फैशनेबल जूते तीन सौ से लेकर पांच सौ क्राउन तक में भी मिलते हैं। यह कीमतें निश्चय ही बहुत अधिक हैं परन्तु युनिवर्सिटी के विद्यार्थियों, लेखकों और अध्यापकों के अतिरिक्त बाजार में भी बहुत से लोगों के पाव में ऐसे जूते प्राय: दिखाई देते हैं। बना बनाया गरम कोट-पतलून नौ सौ या हजार क्राउन में मिल सकता है परन्तु शौकीन लोग केवल सिलाई के लिये ही नौ सौ क्राउन दे डालते हैं।

ब्रातिस्लावा यूरोप की प्रसिद्ध नदी डैन्यूब के किनारे बसा है। डैन्यूब को यहाँ दनाओ कहते हैं। दनाओं जर्मनी से यहाँ आती है और आस्ट्रिया, हंगरी, युगोस्लाविया, रूमानिया से गुजरती हुई कृष्ण सागर में गिरती है। इस नदी द्वारा खूब व्यापार होता है। वियाना यहाँ से बहुत समीप है। यदि वातावरण साफ हो तो नगर के टीले पर पुराने किले के खण्डहरों पर चढ़कर देखने से वियाना दिखाई पड़ जाता है। यदि आस्ट्रिया और चेकोस्लोवाकिया में युद्ध हो तो इस टीले पर और वियाना के समीप कहलनबुर्ग के टीले पर तोपें चढ़ा देने से दोनों एक-दूसरे को ध्वंस करने का प्रयत्न कर सकते हैं। आस्ट्रिया और चेकोस्लोवाकिया का कल्याण परस्पर एक-दूसरे के अधिकार का सम्मान करने में ही है।

लोग यहाँ बजरों पर खूब नदी विहार करते हैं। सड़कों पर आधी रात तक संगीत और नृत्य चलते रहना मामूली बात है।

दूसरे दिन प्रातः ही मोटरों में ब्रातिस्लावा से तातरा पहाड़ की ओर चल दिये। स्लोवाकिया का प्रांत शताब्दियों से कृषि प्रधान रहा है। उद्योग-धंधे यहाँ कम ही थे। केवल खेती पर भरोसा होने के कारण यहाँ का पहाड़ी प्रदेश बहुत ही पिछड़ा हुआ और गरीब रहा है। अब स्थान-स्थान पर सीमेंट, लोहा और कपड़ा बनाने के कारखाने बनते जा रहे हैं। खेती यहाँ सामूहिक समाजवादी ढंग से भी होती है और बहुत सी भूमि व्यक्तिगत स्वामित्व में भी है। दोनों प्रणालियों का अनुपात एक तिहाई और दो तिहाई का है। सामाजिक स्वामित्व से होने वाली खेती में सब कुछ यंत्रों द्वारा होता है। व्यक्तिगत स्वामित्व में की जाने वाली खेती में घोड़ों से चलने वाले हल काम में लाये जाते हैं। खेतों में गेहूं बोने की तैयारी हो रही थी। कई जगह सरसों भी फूल रही थी। इस देश में मई का महीना मधुमास होता है। सड़क किनारे दिखाई देने वाले सेवों और अलूचों के वृक्ष फूलों से लदे थे। मार्ग में आने वाले गांव-कस्बों की दुकानें मई दिवस के उपलक्ष में झंडे-झंडियां और चित्रों से खूब सजी थीं।

कई मकानों के दरवाजों और खिड़कियों के सामने साल या सरो जैसे किसी वृक्ष की बिल्कुल सीधी और ऊंची लट्ठ झंडे के बांस की तरह गड़ी दिखाई दे जाती थी। लकड़ी के सिर पर हरे पत्तों का झुरमुट और उसमें कुछ कागज के फूल या झंडियां भी दिखाई देती

थीं। मिलाना ने बताया इसे अंग्रेजी में 'पोल' कह सकते हैं। हिन्दी में 'मधुपताका' भी कहा जा सकेगा।

गांव के प्रेमी जंगल से लम्बी-सीधी लकड़ी काटकर ले आते हैं और पहली मई के प्रभात में अपनी प्रेमिका के द्वार के या खिड़की के सामने यह झंडा गाड़ देते हैं। यह युवती के प्रति युवक का प्रणय निवेदन समझा जाता है। अपने द्वार की मधुपताका अधिक ऊंची होने पर लड़कियां गर्व करती है।

मधुपताका का रहस्य जान लेने पर मैं कौतुक से उन्हें देखने लगा। ऐसी कोई ही अभागी बस्ती होगी जहाँ एक या दो मधुपताकायें न दिखाई दी हों। मालूम था कि मिलाना का भी वाग्दान हो चुका है। पूछा—"सम्भव है आज प्राहा में तुम्हारी गली में भी मधुपताका फहरा रही हो। तुम घर लौटकर ही उसे देख पाओगी।"

मिलाना ने मुस्कराकर दीर्घ निश्वास लेने का अभिनय कर उत्तर दिया—"ऐसा भाग्य कहां? प्राहा में लकड़ी काटने के लिये जंगल कहाँ, पताका गाड़ने का स्थान कहाँ और मेरा सखा तो ड्यूटी पर प्राहा से बाहर गया हुआ है।"

पूछा—"घर के सामने मधुपताका गाड़ दी जाने पर लड़की के भाई या माता-पिता लड़के की कुछ मरम्मत या सेवा नहीं करते?"

"वाह, माता पिता को संतोष होता है कि लड़की को जीवन-साथी मिल गया।" मिलाना ने समाधान किया और बताया, "अब प्रायः रीति नहीं रही। पहले तो लड़की के प्रणय योग्य जवान हो जाने पर माता-पिता उसके कमरे की खिड़की की मेहराब को पीला रंग देते थे, जब लड़की का वाग्दान हो जाता तो मेहराब को लाल रंग दिया जाता था।"

सड़क शनैः-शनैः समुद्री धरातल से ऊपर उठती जा रही थी। सड़क के बायें-दायें नीची पर्वत श्रेणियां और शिविर दिखाई दे जाते थे। पर्वत शिखिरों पर छोटे-बड़े किलों के ध्वंसावशेष दिखाई दे रहे थे। यह ध्वंसावशेष मध्य युग की याद थे जब स्लोवाकिया की उपजाऊ धरती पर आस्ट्रियन और हंगेरियन सरदारों के दांत लगे ही रहते थे।

मध्याह्न का भोजन एक छोटे से पहाड़ी कस्बे में किया। होटल की पीठ पहाड़ी की चट्टान से सटी थी। होटल के लोगों ने पीछे की खिड़की से चट्टान पर खुदे बहुत बड़े-बड़े अक्षर दिखाये। यह लेख लगभग बारह सौ वर्ष पुराना था। रोम के किसी सेनापति ने इस स्थान को विजय कर अपना नाम और अपनी विजय की तिथि उस चट्टान पर खुदवा दी थी। मुझे ऐसा लगा जैसे कोई डाकू किसी का घर लूटकर निर्लज्जता से अपनी करतूत की घोषणा दीवारों पर कर गया हो परन्तु नैतिकता समय और परिस्थितियों के अनुकूल होती है। तब यह बात विशेष गर्व की थी। उस समय हल चलाकर भोजन और करघा चलाकर कपड़ा उत्पन्न करना निरादर की बात और तलवार के जोर से यह वस्तुएं छीन लेना गर्व की बात थी। आज बहुत-सा धन हथिया लेने के लिये तलवार का प्रयोग बर्बरता माना जायेगा, परन्तु सौदे, सट्टे और सूद के फंदे से दूसरों का सब कुछ समेट लैना नीति संगत ही है।

ज्यों-ज्यों पहाड़ी आंचल में भीतर जा रहे थे, त्यों-त्यों सड़क किनारे के मकानों से अपेक्षाकृत अविकसित अवस्था और गरीबी का आभास मिल रहा था। वैसी ही अवस्था पोशाक की भी थी। पिछले कुछ बरसों में आये परिवर्तन के प्रमाण भी साथ ही मौजूद थे। उदाहरणतः कांगड़ा, अल्मोड़ा, गढ़वाल के पहाड़ी प्रदेशों में पाये जाने वाले मकानों जैसे घर जिनमे धुआं निकलने के लिये चिमनी भी न थी दिखाई दे रहे थे। अब इन मकानों में केवल पशु बांधे जाते हैं। अपने रहने के लिये किसानों ने दूसरे मकान बना लिये हैं। गांवों में स्त्रियों को सड़क के साथ बहती पानी की चौड़ी नाली में कपड़े धोते भी देखा। तीन-चार वर्ष पहले तक पीने के लिये भी यह पानी था। परन्तु अब हाथ से चलाये जाने वाले पम्प सब जगह दिखाई पड़ रहे थे। सड़क तो सभी जगह पक्की और सुथरी थी।

हम तो समय बचाने और देहात का परिचय पा सकने के प्रयोजन से मोटर में ही चल रहे थे, परन्तु स्थान-स्थान पर ब्रातिस्लावा से आती रेल की पटरी मिल जाती थी। अब शायद ही कोई स्थान होगा जो रेल-स्टेशन से पांच-सात मील की परिधि मे न हो। सड़कों पर भी मुसाफिरों के लिये बसें नियमित रूप से चल रही थीं। यहाँ खेती की भूमि छोटे-छोटे टुकड़ों में है और प्रायः व्यक्तिगत सम्पत्ति है। कई लोगों को हल में गाय जोते भी देखा। गाड़ी में भी गाय जुती देखी। साधारणतः खेती घोड़ों से हल जोत कर होती है। खेती के लिये बैल कम ही पाले जाते है। मजबूरी में गाय को ही जोत लिया जाता है। दूध देती गाय को हल या गाड़ी में नहीं जोता जाता। उससे दूध की हानि होती है। हल या गाड़ी में जुती गऊएं काफी हृष्ट पुष्ट थीं। यह लोग पशु को जब तक जीवित रखते हैं, उसे तन्दुरस्त रखते है। कारण यह है कि गाय को यहाँ पूजा के पुण्य के लिये नहीं केवल उपयोग के लिये रखा जाता है। उसके तन्दुरस्त न होने पर उसका उपयोग क्या ?

चेकोस्लोवाकिया की समाजवादी व्यवस्था में अन्न, मांस और दुध की कमी खटकती तो नहीं परन्तु उन लोगों के विचार में यह वस्तुएं अभी पर्याप्त नही हैं। बहुत कुछ सामान दिसावर से भी मगवाना पड़ता है। इसका कारण यह लोग व्यक्तिगत स्वामित्व में होने वाली कृषि को समझते हैं। उनका विचार है कि व्यक्तिगत साधनों से उपज को उतना नही बढ़ाया जा सकता जितना कि सामाजिक और सामूहिक साधनों से। वे प्रतीक्षा में हैं कि किसान अपने अनुभव से स्वयं सहयोग और सामूहिक पद्धति को अपनायें। किसानों को नयी दिशा की ओर प्रेरित करने का उपाय उनके सामने संयुक्त कृषि क्षेत्रों की उपज के और ऐसे किसानों की समृद्धि के उदाहरण रखना ही है। यह लोग बलात् व्यवस्था में परिवर्तन कर डालने की अपेक्षा वैधानिक ढंग का ही भरोसा करते दिखाई पड़ते हैं।

इस प्रदेश में सड़क के किनारे कुछ-कुछ दूरी पर भगवान ईसा की माता मरियम की मूर्तियों के चौतरे काफी संख्या में दिखाई पड़ रहे थे। कोई ही मूर्ति भग्नावस्था में होगी। अधिकांश मूर्तियों पर ताजे या कुछ दिन पूर्व के फूल चढ़ाये हुए थे। कई मूर्तियों पर तो कम्युनिस्टों का चिह्न हसिया हथौड़ा भी बना था और मई दिवस जिन्दाबाद का नारा तो बहुत सी मूर्तियों के साथ दिखाई दिया। यहाँ शताब्दियों से प्राचीन रोमन कैथोलिक या

ईसाइत के सनातन धर्म की परम्परा चली आ रही है। कई जगह मकान अच्छे न दिखाई देने पर भी गिर्जे अच्छे और पत्थर के बने दिखाई देते थे। प्राचीन ढंग से कृषि पर निर्भर लोगों को भगवान अथवा अदृश्य दैवी शक्तियों का भरोसा करना ही पड़ता है। जो भी हो, साधारणतः कम्युनिज्म और धर्म में आग पानी का बैर समझा जाता है इसलिये स्लोवाकिया के इस भाग में इन दोनों का यह अस्तित्व देखकर विस्मय होता है। स्थानीय लोगों को दोनों ही आवश्यक जान पड़ते हैं।

संध्या समय जाज्रिवा पहुंचे। छोटा सा गांव ऊंचे पहाड़ की तलहटी में छोटी परन्तु तेज बहती हुई बर्फानी नदी के किनारे बसा है। आसपास के घाटों पर दरारो और गड्ढो में अब भी बरफ भरी हुई थी। हवा कनपटियों को छेदे दे रही थी। चारों ओर का दृश्य काश्मीर के पहलगांव जैसा ही था परन्तु वृक्षों की कमी थी।

गांव से एक फर्लांग के अन्तर पर काठ के बने दोमंजिले बंगलानुमा मकान में हम लोगों के लिये ठहरने की व्यवस्था थी। मकान के सभी कमरे बीचोंबीच जलती अंगीठी से पहुँचती गरमी से गरम थे। गरम चाय और कॉफी बहुत सुखद लगी। यह मकान भी स्लोवाकिया के लेखक संघ की सम्पत्ति है। एक मैनेजर, बावर्चिन और एक परिचारिका यहाँ सदा बनी रहती है। लेखकों को जब एकान्त की आवश्यकता होती है या ब्रातिस्लावा में गरमी सताती है, वे यहाँ आकर रह सकते है।

सूर्यास्त हो रहा था और बाहर सर्दी भी खूब थी फिर भी बरसाती कोटों मे लिपटकर गांव की ओर चल दिये। गांव का रहन-सहन ऐसा ही लगा मानो यूरोप में कोई भोटियों के गांव देख रहे हों। एक वृद्धा अपने आंगन मे कांटा लिये सूखा घास समेट रही थी। किसी भी अपरिचित से यों ही औचक बात करने में झिझक स्वाभाविक है परन्तु मिलाना को क्या झिझक। उसने बुढ़िया को सम्बोधन किया—"मौरी, यह दूर देश से आये लेखक तुम्हें सलाम कह रहे हैं।"

बुढ़िया ने अपने रूखे, मैले, खुरदरे हाथ कम्बल के लहगे पर बंधे आंचल (एप्रिन) पर पोंछे और हाथ मिलाने के लिये बढ़ आई। बूढ़ों से तो बात छेड़ देना भर काफी होता है। वे बात करने लगते हैं तो बात समाप्त होने की प्रतीक्षा करनी पड़ती है। बुढ़िया घर में अकेली ही थी। बेचारी के पति-पुत्र प्रौढ़ावस्था में मर गये थे। पति के भाई रोजी की तलाश में बीस वर्ष पहले अमेरिका चले गये थे और लौटे नहीं। मामूली सी जमीन है जिसे वह कुछ दे-दिलाकर जुतवा कर आलू बो लेती है। दो सुअर हैं।

यहाँ कोई उद्योग-धंधा तो पहले भी न था। तब यहाँ न डाकखाना था न तार घर। रेल का स्टेशन भी दूर था। मोटर बस भी नहीं आती थी। जीविका की खोज में लोग जर्मनी या अमरीका चले जाते थे, जैसे अपने यहाँ गोरखपुर बस्ती के लोग रोजगार के लिये कलकत्ता, बम्बई जाने के लिये बाध्य हो जाते हैं। अब वह बात नहीं है। छः-सात मील पर एक स्टेशन तातरा पहाड़ जाने वाली रेल लाइन पर बन गया है। नियमित रूप से सुबह शाम बस भी आती-जाती है। मकानों की नीचे की मंजिलें प्रायः पत्थर की और

ऊपर की लकड़ी की हैं। छप्परनुमा छतें लकड़ी के तख्तों की या टीन की हैं। माता मेरी की मूर्ति, हंसिये हथौड़े के लाल झंड़े सहित प्रायः ही छत की कोरनिस के नीचे दिखाई दे जाती है। बस्ती में सौ से कम ही घर होंगे।

× × ×

एक उत्साही प्रौढ़ विदेशी अतिथियों को देखकर साथ हो लिया। उसने सुझाया—"यहाँ का गिरजाघर देखो।"

ऐसी जगह में इतना बड़ा गिर्जा देखकर विस्मय ही हुआ। संध्या समय की प्रार्थना के लिये बहुत सी स्त्रियां गिर्जे में आ रही थीं। मोमबत्तियां जल रही थीं। प्रौढ़ ने पूछा—"पादरी साहब से मिलियेगा?"

पादरी साहब ने स्पष्ट ही पूछा—"इस गांव के विषय में कुछ पूछताछ करना चाहते हैं?—गिरजा तो आपने देख लिया।" पादरी साहब की आंखों की मुस्कान से स्पष्ट था कि उन्हें हमारी धार्मिक श्रद्धा के प्रति संदेह था। वे हमसे नितांत लौकिक दृष्टिकोण की आशा करते थे।

मैंने प्रश्न किया—"यहाँ के जनसाधारण की आर्थिक अवस्था और बस्ती देखते इतना बड़ा गिरजा आश्चर्य की बात है।"

"यह गिरजा प्राहा की रोमन कैथोलिक काउन्शिल ने प्रायः बीस वर्ष पूर्व बनवा दिया था।" पादरी ने उत्तर दिया।

"गिरजा यहाँ की बस्ती के लिये अधिक बड़ा जान पड़ता है। कितने भक्त आ जाते होंगे?"

"रविवार और त्योहारों के अवसर पर पास-पड़ोस के गांवों से भी लोग आ जाते हैं।"

"इस समाजवादी व्यवस्था का प्रभाव यहाँ कैसा पड़ा है?"

"जीवन की अवस्था सुधरी है। यहाँ डाकखाना और तारघर बन गए हैं। स्कूल की नई इमारत बन गई है। सुबह-शाम बस आती है। नित्य समाचार पत्र मिलता है। कुछ लोग रेडियो भी ले आये हैं।"

"परन्तु रेडियो और समाचार पत्रों से लोगों का दृष्टिकोण भी भौतिक हो गया होगा?"

"रेडियो और समाचार पत्रों से तो नहीं परन्तु छोकरों के व्याख्यानों से ऐसी बात होती है। तव भी लोग गिरजे में आते है।"

पादरी साहब हमें साथ ले चले। गांव की गलियां कच्ची थीं। उन्होंने बताया हमारा प्रदेश चेकोस्लोवाकिया भर में सबसे पिछड़ा और गरीब स्थान रहा है। स्कूल की लकड़ी की इमारत में पहुंच कर वे बोले—"परन्तु हमारा यह स्कूल तीस वर्ष पुराना है। मैं तीस वर्ष पूर्व यहाँ आया था, तबसे यहाँ ही हूं।" स्कूल से वे हमें अपने घर की ओर ले चले। स्कूल की इमारत लकड़ी की थी परन्तु उसे गरम रखने का प्रबन्ध था।

पादरी के घर की बाहर से पुरानी दीखती इमारत के भीतर अच्छे-खासे कमरे थे। फर्नीचर भी था। हम सब मिलकर पांच आदमी थे। आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत रख पादरी के यहाँ एक प्रौढ़ा और उसकी खूब सुन्दर युवती बेटी घर-बार सम्भाल रही थी। पादरी ने छः छोटे गिलास और घड़े के परिमाण की लाल मदिरा भरी बोतल मेज पर रखकर कहा—"यह घर की बनी करौंदे की सात्विक मदिरा है।"

मैंने पूछा—"समाजवादी सरकार धर्म भावना को तो क्या प्रोत्साहन देती होगी?"

"प्रोत्साहन नहीं देती परन्तु प्रकट में कोई विरोध भी नहीं है।" पादरी ने बताया, "इस सरकार से पहले पादरी धर्मोपदेश के कार्य के लिये वेतन पाते थे। अब शिक्षा अथवा दूसरे कामों के लिये पाते हैं। मैं यहाँ के प्राइमरी स्कूल में पढ़ाता हूं। धर्मोपदेश अपने संतोष के लिये करता हूं। सरकार गिरजे की मरम्मत और पूजा-अर्चना चालू रख सकने के लिये कुछ नियमित धन भी देती ही है। जो पादरी पहले सरकारी तनख्वाह पाते थे, वे अब भी पाते है।"

"विवाह आजकल गिरजों में होते हैं अथवा अदालत में रजिस्ट्री द्वारा?" मैंने पूछा।

"नगरों में विवाह अदालतों में और देहात में प्रायः गिरजों मे ही होते हैं। उसका कारण यह भी है कि गिरजे में पुरानी परिपाटी से किये जाने वाले विवाह मनोरंजक होते हैं।" पादरी ने मुस्कराकर कहा और प्रमाण स्वरूप गिरजे में कुछ दिन पूर्व हुये विवाह का एक फोटो भेंट करते हुए कनखियों से मुस्कराते हुए कहा, "यह मेरी ओर से प्रोपेगैण्डा है!"

पादरी हसमुख थे और चुटकी लेकर बात करते थे। उठने के लिये मन नहीं चाह रहा था परन्तु ख्याल था कि दूसरे लोग भोजन के लिये प्रतीक्षा कर रहे होंगे। पादरी साहब हमें कुछ दूर तक छोड़ने भी आये। मुख्य गली में एक मकान दिखाकर बोले—"सन् ४५ में जब देहात में नाजियों के विरुद्ध संघर्ष चल रहा था जाग्रिवा में मुक्ति के लिये लड़ने वालों का अड्डा इसी मकान में था। प्रकट में मकान को गांव की मधुशाला का रूप दिया हुआ था कि यहाँ बहुत से लोगों का आना-जाना न खटके। नाजियों को यह बात मालूम हो गई। एक दिन ऐसे ही संध्या समय नाजी फौज की टुकड़ी, मशीन गनें लेकर यहाँ आ पहुंची। स्वतन्त्रता के लिये लड़ने वाले उस समय भी घर के भीतर मौजूद थे। घर की मालकिन बुढ़िया ने तुरन्त मेज पर रखे फूलदान में से फूल उठा लिये और सड़क पर नाजी सिपाहियो के सामने फूल भेंट कर बहुत आग्रह से बोली—"अतिथियों, एक गिलास पिलाये बिना तो आगे बढ़ने नहीं दूंगी।"

बुढ़िया नाजियों को घर के ऊपर के कमरे में ले गई। नाजी सिपाही अभी बियर का पहला गिलास भी समाप्त नहीं कर पाये थे कि नीचे तहखाने में सोये और बैठे लोग मकान के पीछे के द्वार से चम्पत हो गये।

लेखकों के विश्राम भवन के मैनेजर ने जाग्रिवा के कुछ देहातियों को भी भोजन के लिये आमन्त्रित कर लिया था। यह लोग अपनी 'राष्ट्रीय' पोशाक में आये थे। पुरुषों के

सिर पर हमारे यहाँ के पहाड़ियों जैसे कनटोप थे। कान ढकने का भाग ऊपर को उल्टा हुआ। घर के बने खद्दर जैसे कोरे सफेद कपड़े के कढ़े हुए बिना कालर और कफ के कमीज। रोएं भीतर किये भेड़ की खाल की जाकटों पर खूब कढ़ाई की हुई थी। पतलून चूड़ीदार पायजामे जैसी तंग। सीवानों पर लाल, हरे धागे बेलें काढ़ी हुई और हाथों में कुल्हाड़ियां। स्त्रिया भी खूब फूलावदार लहंगे; फुलाव बढ़ाने के लिये लहंगे पर लहंगा पहने थीं। खूब फूली हुई आस्तीनों की कुर्तियां पहने और सिर पर कढ़े हुए रुमाल बांधे थीं। सामने कमर पर कढ़े हुए एप्रिन-आंचल बंधे थे।

विदेशी अतिथियों के साथ बैठकर खाने पीने में तो इन देहातियो को कोई संकोच नहीं था परन्तु जब उनसे स्थानीय गीत सुनाने का और नाच दिखाने का प्रस्ताव किया गया तो स्त्रियों के चेहरे लाज से लाल होने लगे। वह नाक पर हाथ रखकर लजाने लगीं। उन्हें विदेशी अतिथियों के सामने गाते-नाचते संकोच हो रहा था। बहुत अनुरोध करने और उत्साह बढ़ाने पर वे हमारे यहाँ के देहात की स्त्रियों की तरह एक दूसरी की ओर मुख कर और हम लोगों से अपने हाथों की ओट कर धीमे धीमे गाने लगी। एक जवान आर्गन भी ले आया था। कुछ देर मे संकोच जाता रहा और स्त्री, पुरुष कभी एक दूसरे के कधे पकड़े और कभी ताली बजा धमाधम नाचने लगे। नाच में पंजाबी 'गिद्दा' नाच और 'भगड़े' नाच से बहुत कुछ साम्य था। गीत का विषय हास्य का था—मिलाप की पहली रात प्रेमी चूहे से डर गया था। वह कापता हुआ कभी खाट के नीचे दुबकता कभी ओटले की आड़ मे जा बैठता। प्रेमिका उसे बहुत ढाढ़स बधाती रही परन्तु उसके जवान का हृदय धड़कता ही रहा। आखिर प्रेमी को खिड़की की राह बाहर धकेल कर प्रेमिका ने खेतों की राह ली।

नाचने गाने वालों का उत्साह बढ़ता जा रहा था। अब वे हमारे अनुरोध की अपेक्षा न कर अपनी मौज से ही गा रहे थे। उन्होंने लम्बी-लम्बी टेरों के सुरों में एक गीत गाया। मैंने मिलाना से पूछा—"यह क्या विरह गीत है ?"

"क्यों, कैसे अनुमान किया ?" मिलाना ने विस्मय से चमकती आखों से पूछा।

"इसका सुर विरह गीत का है हमारे यहाँ के विरह गीतों के सुर प्राय: इसी प्रकार के होते है।"

"हाँ, विरह गीत ही है। परन्तु यह आश्चर्य की बात है कि विरह के गीतों के स्वर भिन्न सभ्यताओं और संस्कृतियों में भी एक ही से हैं।" मिलाना ने फिर कहा।

"विस्मय क्या है ? विरह का दुख भी तो सभी जगह एक-सा ही होता है। विरह एक विशेष प्रकार की मानसिक अवस्था उत्पन्न कर देता है। उस मानसिक अवस्था में एक विशेष प्रकार का ही स्वर निकल सकता होगा।" मैंने कहा—और फिर उसे बताया कि "मैं पश्चिमीय शास्त्रीय संगीत से बिलकुल कोरा हूँ। मोजार्ट, बीट ओवन, बाखफो समझने की क्षमता मुझमें नहीं है। उनके स्वर्गीय संगीत का मुझ पर कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता परन्तु यहाँ के लोकगीतों की धुन स्वतः मन को छू जाती है।"

दूसरे दिन प्रातः नाश्ता करके आगे चल दिये। सड़क शनैः-शनैः समुद्री धरातल से ऊँची उठती जा रही थी। प्रदेश और अधिक पहाड़ी जान पड़ रहा था। सड़क किनारे के गड्ढों और चट्टानो में बरफ दिखाई दे जाती थी। कुछ दूर जाकर सड़क के दोनों ओर बरफ के बड़े-बड़े खित्ते दिखाई देने लगे। हम लोग ऊपर चढ़ते जा रहे थे। मोटरें दो-तीन नये ढंग के बने मकानों के सामने आकर रुक गईं। चारों ओर बरफ से छितराई हुई पहाड़ियाँ थी और सामने बरफ से बिलकुल ढका छोटा-सा मैदान था। मैदान के किनारे तीन-चार छोटी-छोटी डोंगियाँ बँधी हुई थीं। बरफ का मैदान जान पड़ने वाला स्थान 'शिवस्त्रके' छोटी-सी झील मई की तीन तारीख को भी बिलकुल जमी हुई थी। मई के अन्त में बरफ पिघल जाती है और अक्टूबर में फिर जमने लगती है। उस समय जल खूब स्वच्छ और नीला रहता है। समीप दीवार की तरह खड़ा पहाड़ तब भी बरफ से ढका रहता है।

समुद्रतल से इस स्थान की ऊँचाई साढ़े चार हजार फुट से अधिक नहीं है। हमारे देश में श्रीनगर को छोड़कर इतनी ऊँचाई पर बरफ नही गिरती परन्तु उत्तर में होने के कारण यहाँ वर्ष के अधिकांश भाग में बरफ जमी रहती है। दृश्य प्रायः गुलमर्ग से कुछ ऊपर अलपत्तर जैसा है। बिलकुल सामने तातरा पहाड़ का सदा हिमावृत रहने वाला शिखर दिखाई देता है। इस शिखर का पुराना नाम गर्लाख है परन्तु १९४६ में समाजवादी व्यवस्था कायम होने के समय से इसे स्तालिन शिखर नाम दे दिया गया है।

साथ आये स्लोवाक लेखक से यों ही पूछ बैठा "शिखर का नाम निकट भविष्य में बदले" जाने की सम्भावना है या नहीं? उसने उत्तर दिया—"आये दिन नाम नहीं बदले जाते। इतिहास में स्तालिन का नाम इस पर्वत शिखर से कम ऊंचा नहीं रहेगा।" बात बदल कर उसने कहा, "आपके हिमालय के सामने तो यह पहाड बच्चे ही है। इसकी ऊँचाई सात हजार फुट ही है।"

मैने उत्तर दिया—"गौरीशंकर, कंचनजंघा और नागा पर्वत की बात दूसरी है परन्तु हिम का जो वैभव सामने है वैसे हमारे यहाँ सात आठ हजार फुट क्या, पन्द्रह हजार पर भी कठिनता से हो सकता है। हमारे यहाँ सात हजार फुट की ऊँचाई पर शिमले मंसूरी में तो लोग बाइसिकलें दौड़ाते फिरते है।"

शिवस्त्र के झील से हम दूसरी ओर मुड गये। कुछ नीचे चेकोस्लोवाकिया का सबसे बड़ा, क्षयरोग की चिकित्सा का हस्पताल है। रेल स्टेशन तीन चार मील और नीचे है। स्टेशन से हस्पताल तक विजली की ट्राम निरंतर चलती रहती है। हम कुछ और नीचे उतरकर ग्रांड होटल में ठहरे। होटल नया बना है। सात मंजिल की इमारत है। साज-सज्जा और सुविधा में प्राहा के सबसे अच्छे होटलों से भी बेहतर है। प्राहा के बड़े होटल समाजवादी व्यवस्था से पहले के बने हुए हैं। यह होटल नया है और सम्पूर्ण नवीन साधनों का बनाया गया है। प्रत्येक कमरे में रेडियो और टेलीफोन हैं, ठंडा और गरम पानी चौबीसों घंटे चालू रहता है। छठी मंजिल में कमरे के सामने आगे बड़ी सीमेंट की सिल पर बने छज्जे पर बैठने से दूर-दूर तक फैली हिमाच्छादित पर्वत श्रेणियों का और

नीचे देवदार जैसे घने जंगलों का दृश्य बहुत मनोरम लग रहा था परन्तु नीचे देखने से आतंक भी अनुभव होता था। होटल भरा हुआ था। शहरों के बहुत लोग अपनी छुट्टियां मनाने यहाँ आते रहते हैं।

चार मई प्रातः नाश्ते के पश्चात् सामने दिखाई देते हिम-शिखर पर जाने की बात थी। होटल से कुछ ही कदम नीचे की ओर गये। यहाँ हिम-शिखर पर जाने वाले बिजली के खटोले का स्टेशन है। बहुत ऊँचे-ऊँचे फौलादी शहतीरों के बने खम्भे, प्रायः दो-दो सौ गज़ और कई स्थानों पर उससे भी अधिक अंतर पर हिम-शिखर की ओर ऊँचे से ऊँचे स्थानों पर चढ़ते चले गये है। शहतीरों के शिखरों पर दो मोटे फौलादी रस्से बंधे हैं। हम आठ-दस लोग इस रस्से से लटकते खटोले में खड़े हो गये और खटोला ऊपर की ओर सरकने लगा।

पहाड़ की ढलवान पर देवदार जैसे खूब ऊँचे और महाकाय वृक्षों का जंगल था। खटोला वृक्षों की चोटियों से भी बहुत ऊंचा चला जा रहा था। नीचे देखने पर लगता था हरे रंग के महाकाय स्तूपों से पटा हुआ मैदान है। ज्यों-ज्यों पहाड़ की ऊँचाई बढ़ती थी। फौलादी खम्भे ऊपर चढ़ते जा रहे थे। कुछ ही मिनट में एक पहाड़ी के शिखर पर पहुँच गये। यहाँ अधमार्ग का स्टेशन है। अधमार्ग के शिखिर पर एक बेधशाला (observatory) बनी हुई है। एक भीमकाय दूरबीन है जो मशीन पर सधी हुई है। बेधशाला की छत दूरबीन की गति के साथ घूमती है अर्थात् छत पर दूरबीन के सामने खुला भाग आ जाता है। यहाँ वायु की गतिविधि आदि से ऋतु का अनुमान किया जाता है और नक्षत्रों का अध्ययन भी। नक्षत्रों के अध्ययन के लिये आकाश का स्वच्छ होना आवश्यक है। यूरोप में स्वच्छ आकाश बहुत कम मिलता है। इसकी जितनी सुविधा हमारे देश में है उतनी वहाँ नही। अधमार्ग पर बड़ा खटोला छोड़कर छोटे खटोले में हो गये। अधमार्ग के आगे बीच में फौलादी खम्भे नहीं हैं। सामने हिम-शिखर बादलों में छिपा हुआ था। अधमार्ग से आगे फौलादी रस्से सीधे बिना खम्भों की सहायता के एक दम हिम-शिखर की ओर चले गये हैं। रस्से से ऊपर चढ़ता खटोला ऐसे जान पड़ रहा था मानों बादलों में छिपे दैत्य उसे तार से बाँधकर डोल की तरह ऊपर खींचे ले रहे हैं। नीचे ढलवान पर बरफ़ ही बरफ़ थी। कुछ लोग हाथ में बल्लम लिये बर्फानी ढलवानों पर पैदल चढ़ने का शौक पूरा कर रहे थे। सामने ऊपर की ओर दृष्टि की पहुँच तक अछूती बरफ की श्वेत दीवार, जान पड़ता था खटोला अभी बरफ़ की दीवार से टकरा जायेगा परन्तु खटोला बरफ़ की दीवार से टकराने के बजाय आकाश की ओर उठता जा रहा था।

खटोला बादलों के भी ऊपर चला गया। अब नीचे बादलों के अतिरिक्त कुछ दिखाई न देता था। जान पड़ा दूसरे लोक में पहुँच गये हों। विमान तो इससे कहीं अधिक ऊँचाई पर उड़ता है परन्तु उसमें इंजन का शब्द और पृथ्वी से समानान्तर गति होने के कारण स्मृति में पृथ्वी से सम्बन्ध का विश्वास बना रहता है। खटोले में कोई शब्द न था और उसकी गति पृथ्वी से समानान्तर नहीं आकाशोन्मुख थी। मेघों से ऊपर उठकर फिर

खटोले के तीन ओर हिम की दीवारें दिखाई देने लगीं और हम ऊपर स्वर्ग की ओर खिंचते जा रहे थे। खटोला बरफ़ से ढकी खूब बड़ी गुफ़ा के द्वार पर पहुँचकर ठहर गया। बरफ़ से ढकी गुफा के भीतर पत्थर की इमारत बिजली की अंगीठियों से खूब गरम थी परन्तु दोहरी कांचमढ़ी खिड़कियों से बाहर सब ओर दानेदार चीनी जैसी ताज़ी बरफ से ढकी असम भूमि थी। आस-पास दूसरे हिम-शिखर भी दिखाई दे रहे थे। बाहर वायु तेज़ थी और बरफ़ गिर रही थी। भीतर खान-पान का प्रबंध था और दिल बहलाने के लिये ताश, शतरंज भी रखे हुए थे।

ग्रांड होटल से दस बारह मील दूर एक मैदान में इस क्षेत्र के लिये विमान-अड्डा है। चेकोस्लोवाकिया के प्रायः सभी भागों के विमानों की यातायात नियमित रूप से जारी है। कुछ लेखक अभी तातरा में और चेकोस्लोवाकिया के दूसरे भागों में घूमना चाहते थे। कुछ प्राहा लौटकर घर जाने के लिये उतावले थे। मैं भी इनके साथ तातरा से विमान पर प्राहा लौट आया।

कांग्रेस के समय ही सांस्कृतिक विभाग के मंत्री डा० क्राला से भेंट हुई। उन्होंने अनुरोध किया था कि कांग्रेस का कार्यक्रम समाप्त हो जाने पर भी मैं कुछ सप्ताह इस देश में रहूं। दो-तीन सप्ताह और रहने का वचन दिया था। कांग्रेस समाप्त हो चुकी थी। तातरा से लौटने पर सांस्कृतिक विभाग के मि० यौरिस ने कहा,—अब आप हमारे अतिथि हैं। बताइये किन विषयों और दिशाओं में आपकी रुचि है, कम समय में सब कुछ देखना-दिखाना सभव नहीं। आपकी रुचि की चीज़ें ही दिखाने का प्रबंध किया जाय। आप दूसरे नगर देखना चाहते है अथवा देहात? संयुक्त कृषि क्षेत्रों का जीवन और व्यवस्था देखना चाहते हैं अथवा कारखानों में मजदूरों का जीवन या यहाँ के दर्शनीय स्थान?"

संयुक्त कृषि क्षेत्र और समाजवादी व्यवस्था में कारखानों का ढग सोवियत में भी देख चुका था। उत्तर दिया—"कुछ दर्शनीय स्थान देखूंगा और मार्ग में जो कुछ आ जाये।" कम समय में काफी यात्रा करके लौटा था इसलिये दो दिन प्राहा में ही विश्राम किया और नगर में इधर-उधर घूमता रहा।

अनेक बातें दूर-दूर के देशो और नगरों में विस्मयजनक रूप से एक जैसी होती हैं। उदाहरणतः प्राहा के सिरहाने खड़ी पहाड़ी पर बनी दीवार 'स्मीखोव' के विषय में प्रसिद्ध दंतकथा। लखनऊ का बड़ा इमामबाड़ा बनवाने वाले नवाब आसफुद्दौला कर्ण के समान ही दानी प्रसिद्ध है। कहावत है, "जिसे न दे मौला, उसे दे आसफुद्दौला।" बड़े इमामबाड़े के विषय में कहानी है कि आसफुद्दौला ने यह इमारत भयकर अकाल के समय बनवाई थी कि लोग अन्न खरीदने के लिये कुछ पैसा पा सकें। यह भी कहा जाता है कि दुस्काल से पीड़ित बड़े-बड़े सफ़ेदपोश लोग भेस बदलकर मज़दूरी करने के लिये आते थे। नवाब का हुक्म था कि दिन भर में जितनी इमारत बने, रात में ढहा दी जाये ताकि इमारत पूरी हो जाने पर दुखी लोग बेरोज़गार न हो जायें। स्मीखोव शब्द का अर्थ है भूख की दीवार।

दंतकथा है, सम्राट चार्ल्स चौथे ने यह दीवार दुष्काल में पीड़ितों की सहायता करने के लिये बनवाई थी। दीवार दिन भर बनाई जाती थी और रात में गिरा दी जाती थी।

प्राहा को घेरे हरियावल से खूब ढंकी एक पहाड़ी का नाम 'पेतशीन' है। इसी पहाड़ी पर प्राहा रेडियो का प्रसारक स्तंभ (Broadcasting Column) है और उसके समीप प्राचीन कवि माखा की मूर्ति है। चेकोस्लाव लोग स्वभाव से रसिक हैं। उनमें माखा के प्रेम गीतों का बहुत आदर है। अनेक युवक-युवतियां यहाँ रविवार के दिन फूल चढ़ाने आते हैं। विशेषतः मधु मास (मई के महीने) में। माखा की मूर्ति पर फूल चढ़ाने का माहात्म्य कवि की कला के प्रति आदर के अतिरिक्त कुछ और भी है। वैसा ही माहात्म्य जैसा हमारे यहाँ कार्तिक स्नान का माना जाता है। लोगों को विश्वास है कि माखा को फूल चढ़ाने से वांछित प्रेमी-प्रेमिका का प्रणय प्राप्त होता है अथवा नीरस जीवन में प्रणय का प्रवेश हो सकता है। बात कुछ असम्भव भी नहीं है। जब प्रणय व्यापार की उमंग मन में लिये अल्हड़ युवक-युवतियां पेतशीन की रम्य पहाड़ी पर मिलेंगे तो माखा की कृपा से उनकी कामना पूर्ण होने का अवसर क्यों न होगा?

चेकोस्लोवाकिया की प्रणय कथाओं में शारका का विशेष स्थान है। शारका की स्मृति सौंदर्य का प्रतीक भी मानी जाती है। मूर्तियों के मुख्य संग्रहालय में और कई स्थानों पर शारका की मूर्तियां हैं। प्राहा के विमान अड्डे से नगर की ओर आते समय एक अड्डे के किनारे शारका का टीला भी दिखाई देता है। एक कीमती सिगरेट का नाम भी शारका है। शारका की प्रणय कथा दुखान्त है। किसी समय एक रानी राज्य करती थी। एक बार दो भाइयों में सम्पत्ति का झगड़ा रानी के सम्मुख न्याय के लिये आया। रानी के न्याय से असंतुष्ट भाई ने क्रोध और घृणा से विरोध किया—एक स्त्री भला क्या न्याय करेगी?

इस झगड़े ने स्त्री-पुरुषों में युद्ध का रूप ले लिया। पुरुष दल के नेता को वश में कर लेना स्त्री दल के लिये संभव न था। उस वीर को न लौह-बाण घायल कर सकते थे न काम बाण। कुछ ऐसी ही परिस्थिति रही होगी जैसी देवताओं के विरोध में महर्षि विश्वामित्र के नयी सृष्टि बना लेने का आन्दोलन चला देने पर उपस्थित हो गई थी। तब देवताओ ने मेनका की शरण ली थी। वैसे ही बोहेमिया के अरत्र स्त्री-समाज ने अपने समाज की सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी शारका की शरण ली।

शारका का जैसा अनोखा सौन्दर्य था वैसा ही कठोर हृदय भी। उसे प्रणय और पुरुष के प्रति पूर्ण विरक्ति थी। शारका का हृदय अपनी जाति की असहाय अवस्था के प्रति पसीज गया। किसी के प्रति भी ममता अनुभव न कर अपने वर्ग के प्रति वह निर्मम न रह सकी। शारका के सुझाव से स्त्रियों ने उसे पुरुष दल के नेता के आने जाने के मार्ग में एक वृक्ष के तने से जकड़ कर बाध दिया।

एक अपूर्व सुन्दर कोमलांगी को वृक्ष के तने से बंधा देखकर पुरुष पुगव ठिठक गया। स्त्री जाति से युद्ध था परन्तु ऐसी भोली सुन्दरी के प्रति क्रूरता वह पुरुष सह न सका और फिर उस भोली की प्रार्थना भरी चितवन?

"तेरी यह अवस्था क्यों?" पुरुष ने पूछा। आँखें भय और लाज से झुक गईं और होंठों ने उत्तर दिया,—"यहाँ बैठकर तुम्हारा पत्र निहारने के दंड में मुझ पर दुष्टा स्त्रियों का अत्याचार है।"

पुरुष पुंगव का शक्ति का अभिमान जाग उठा। उसने अपना भाला और धनुष एक ओर रखकर शारका के बंधन खोल दिये और उसे अपनी भुजाओं के बंधन में लेना चाहा।

शारका ने सकोच से सिमिटते हुए इंकार किया—"तुम मुझे प्यार कहाँ करते हो?"

पुरुष ने प्यार का विश्वास दिलाया।

शारका बोली—"कहाँ, मैं तो तुम्हारे प्यार में पेड़ से बांधी गई। तुम्हें तो मालूम भी न था। प्यार करते हो तो आओ तुम्हें यहाँ बांध दूं। फिर भी कहोगे कि प्यार करते हो तो मानूँगी।"

पुरुष तो सदा ही स्त्री के हाथों स्वेच्छा से बंधता है। पुरुष को पेड़ से बाँधकर शारका ने उसकी तुरही उठाई और पूरी शक्ति से बजा दी। स्त्रियों का समीप छिपा हुआ दल तीर, भाले और तलवारें लिये उस पुरुष पर टूट पड़ा। इस प्रकार पुरुषों के नेता की हत्या कर स्त्री जाति ने पुरुष जाति पर विजय प्राप्त कर ली। पौराणिक कथा के सम्बन्ध में तर्क के लिये क्या अवसर? यह ठीक है कि स्त्रियां पुरुषों को निरस्त्र करके ही उन पर विजय प्राप्त करती हैं।

शारका के प्रपंच से स्त्री जाति की विजय तो हो गई परन्तु शारका बेचारी सचमुच ही अपना हृदय उस पुरुष पुंगव को सौंप चुकी थी। वह स्त्री जाति के छलछंद और क्रूरता से खिन्न हो गई। दिन भर उसकी याद में रोती वन-वन घूमती रहती। एक दिन प्रणयी के बिना जीवन असह्य समझकर वह खड्ड किनारे के टीले पर चढ़ गई और वहाँ से खड्ड में कूदकर उसने प्राण त्याग दिये।

प्राहा में अंग्रेजी से किसी कदर काम चल भी जाता है। चेकोस्लोवाकिया के दूसरे स्थानों में बिलकुल भी नहीं चल सकता। मुफ़स्सिल में घूमते समय दुभाषिये की सहायता नितान्त आवश्यक होती है। इन दिनों मिलाना को एक परीक्षा में बैठना था। वह मेरिया को साथ लायी और परिचय करा गई कि मुफ़स्सिल की यात्रा में मेरा साथ देगी। मेरिया पैंट पहनकर ऐसी चुस्त चाल से चलती थी कि हाथ में टेनिस का बल्ला न होने पर भी जान पड़ता था कि टेनिस का टूर्नामेंट खेलने जा रही है।

हम लोग प्राहा की पत्थर की ऊँची इमारतों से घिरी सड़कें लांघकर बाहर निकल हरी घास से छाई कछुए की पीठ जैसी पहाड़ियों, खेतों और वृक्षों में पहुंचे ही थे कि मेरिया की ऊँची नाक के नथुने फैलने और कांपने लगे और आंखों में चमक आ गई। बोली—"इस स्वच्छन्द वायु में श्वास लेकर बहुत अच्छा लगता है। मोटर से बल्कि पैदल यात्रा में बहुत आनन्द आता है। मैंने दो हजार मील से अधिक हिचहाइकिंग किया है।"

हिचहाइकिंग यूरोप के विद्यार्थियों को अवकाश के समय की यात्रा को कहते हैं। विद्यार्थी एक कम्बल, छोटा पतीला, एक तश्तरी-गिलास और अवसर पर पहनने के लिये एक अच्छा सूट थैले में डाल और थैला पीठ पर बाँधकर सड़क पर निकल पड़ते हैं। साधारणतः पैदल ही चलते हैं परन्तु सड़क पर किसी मोटर लारी या गाड़ी को अपनी गन्तव्य दिशा की ओर जाते देख इशारे से रोक कर अपनी वाक्पटुता से अपने आगामी मार्ग में जहाँ तक लारी मोटर के रास्ते का साथ हो, चढ़ी भी ले लेते हैं। इस प्रकार विनोद और अपने देश के मुफ़स्सिल भागों के परिचय के साथ उन्हें व्यावहारिक अनुभव और कठिन जीवन सह सकने का अभ्यास भी हो जाता है। लड़के-लड़कियां यात्रा कभी अकेले और कभी एक साथी या साथिन के साथ करते हैं।

मेरिया ने पूछा—"भारत में भी हिचहाइकिंग का रिवाज है?"

उत्तर दिया—"हमारे यहाँ कम ही ऐसा रिवाज है।" मन में सोचा, लड़के तो कभी यात्रा कर भी लेते हैं लड़की को तो स्कूल भेजते समय भी भले लोग नौकर साथ कर देना उचित समझते हैं।

मैंने कभी पूछा—"ऐसी यात्रा में कभी अप्रिय अनुभव नहीं हुआ; विशेषकर सुन्दर लड़की होने के नाते?"

मेरिया, ने मुस्कराकर स्वीकार किया—"प्रायः सुविधा होती है तो कभी आशंका भी हो जाती है। तब अवसर को सम्भालने की सुध रहनी चाहिये। यों तो चाय के लिये पानी उबालने में भी हाथ झुलसने की सम्भावना रहती है।"

कुछ दूर आगे बढ़कर एक खूब फैली हुई पहाड़ी की ढलवान के समीप गुजरते हुए मेरिया ने बताया—"यह ग्लाइडिंग स्टेशन है। मै यहाँ ग्लाइडिग के लिये कई बार आ चुकी हूँ।"

"ग्लाइडिग!" उसकी ओर देखा। ग्लाइडिंग का अर्थ है बिना इंजन के दूसरे विमान या रबर के रस्से के झटके द्वारा उड़ा दिये जाने वाले छोटे विमान में पाँच-छः हजार फुट की ऊँचाई पर आकाश में उड़ना। वायु के प्रवाह से वह कहीं भी जाकर गिर सकता है। पूछा—"तुम्हें डर नहीं लगता?"

"कुछ भी नहीं" मेरिया बताने लगी, "बड़ा अच्छा लगता है। कई बार तो धरती से छः-सात हजार फुट ऊपर बादलों में घिर कर दिशा ज्ञान भी नहीं रहता। कोई दृश्य नहीं, कोई शब्द नहीं एक निस्सीम शून्य का सन्नाटा.........!" मेरिया के इस आनन्द का भाग अनुभव कर सकना कठिन था परन्तु मन ही मन उसके साहस पर विस्मय अवश्य कर रहा था। यह भी सोच रहा था कि विमान बिना इंजन का ही सही पर उसका खेल खेल सकना साधारण हैसियत के आदमी के लिये तो सम्भव नहीं। मेरिया ने बताया समाजवादी व्यवस्था से पूर्व उसका पिता निर्धन किसान था। स्कूल कालिज में शिक्षा पाने के बाद उसने डेढ़ वर्ष से ही क्लर्क की नौकरी आरम्भ की है। उसकी स्थिति की लड़की के लिये ऐसे खेल उस समाजवादी समाज में ही सम्भव हो सकते हैं।......"यह कोयले की

खाने हैं" —मेरिया ने सड़क से दूर दिखाई देती लोहे की शहतीरों पर चलती चर्खियों की ओर संकेत कर कहा, "यहाँ धरती के नीचे काम करने वाले मजदूरों को खूब अच्छी मजदूरी मिलती है।"

यह तो मैं भी जानता था कि खान में नीचे काम करने वाले मजदूर दो हजार क्राउन से ऊपर माहवार पाते हैं। मेरिया क्लर्क थी तो लगभग हजार ग्यारह सौ ही पाती होगी। मेरिया कहती गई—"यों ही कहते हैं, सबको समान अवसर है। बिलकुल गलत है। मैं यहाँ धरती के नीचे काम करना चाहती थी लेकिन मुझे काम नहीं दिया कि तुम लड़की हो। लड़कियों को धरती के नीचे का कड़ा काम नहीं दिया जाता। काम तो मुझे करना है। मुझे कड़ा लगेगा, मैं खुद छोड़ दूंगी। ऐसा नियम बना देने का क्या मतलब ?" मेरिया के सुन्दर चेहरे पर क्रोध और उत्तेजना भी भली लग रही थी।

गाड़ी का ड्राइवर आयु से प्रौढ़ था। उसने भी मुझसे बात करने का यत्न किया था परन्तु उसके अंग्रेजी न जानने के कारण बात न हो पायी थी। मेरिया को उत्तेजना से बोलते देख उसने प्रश्न किया—"क्यों बात क्या है ? क्यों बिगड़ रही हो ?"

मेरिया ने कोयले की खान में काम न मिल सकने के अन्याय की बात चेक भाषा में उसे बताई तो दोनों में गरमा-गरमी से सवाल-जवाब होने लगे। इस बार मुझे मेरिया से पूछना पड़ा—"क्यों बात क्या है ?"

मेरिया ने ड्राइवर से गरमा-गरमी का निष्कर्ष अंग्रेजी में यों समझाया—"यह बूढ़ा अपनी बासी नैतिकता छांट रहा है।" बात यों हुई—ड्राइवर ने कहा—"धरती के नीचे खान में लड़कियों को काम न करने देने का नियम ठीक है क्योंकि नीचे गरमी के कारण लोग केवल जांघिया पहनकर काम करते है। लड़कियां वहाँ कैसे काम कर सकती हैं ?" मेरिया ने आग्रह किया—"क्यो; जैसे मर्द जांघिया पहनकर काम करते है, लड़कियां भी जांघिया-बनियान पहनकर काम कर सकती है।" ड्राइवर बिगड़ उठा—"क्यां मूर्खता की बात करती हो। लड़कियां बिना कपड़े पहने मर्दों के साथ काम करेंगी तो मर्दों को उत्तेजना अनुभव नहीं होगी ? झगड़े नहीं होंगे ? क्या स्त्रियों के लिये इतने वेतन के दूसरे काम नहीं हैं ? जिस काम के योग्य हो, करो ! मेरिया ने हठ किया—"इसकी जिम्मेदारी क्या लड़कियों पर है ? बेवकूफ मर्द उत्तेजना अनुभव करते है तो लड़कियां क्यों नुकसान उठायें ? यह समाजवाद में अवसर की समानता क्या हुई ? हर बात में मर्द का रोब रहना चाहिये ! यह बिलकुल रूढ़िवादी ढंग है।"

मेरिया को सान्त्वना दी—"निराश होने की कोई बात नहीं है। पुराने संस्कारों से मुक्त होने में समय लगता है। इंगलैंड में तो यह देखा है कि एक ही काम के लिये स्त्रियों और पुरुषों को मजदूरी न्यून और अधिक मिलती है। पुरुष क्लर्क को सौ मिलेगा तो स्त्री क्लर्क को प्रथा की रक्षा के लिये निन्यानवे ही देंगे।" बहस में अब ड्राइवर भी सहयोग दे रहा था। ड्राइवर ने बिगड़कर कहा—"स्त्रियां किसी भी नौकरी पर हों उन्हें सौर के लिये तीन मास का सवेतन अवकाश मिल जाता है। पुरुष कहें कि हमें यह अवकाश नहीं

मिलता यह अन्याय है?" आखिर हम इस परिणाम पर पहुंचे कि स्त्री पुरुष की स्थिति और अधिकार समान होने चाहिये। स्त्री पुरुष समान तो अवश्य हैं परन्तु एक ही जैसे नहीं हैं। वे एक-दूसरे से भिन्न हैं परन्तु समान हैं।

इस छोटे से विवाद से चेकोस्लोवाकिया में स्त्रियों की स्थिति का आभास मिल जाता है। यहाँ के युवक और युवतियां इंगलैंड और फ्रास की तरह विवाह करने से कतराते नहीं। इंगलैंड में नवयुवक प्रायः विवाह को अपने कंधों पर अनावश्यक आर्थिक बोझ समझते हैं। अकेले युवक की आमदनी प्रायः अकेले व्यक्ति के लिये ही पर्याप्त होती है। पत्नी के लिये सम्मानित जीवन का आदर्श नौकरी-चाकरी करने की आवश्यकता न होना ही समझा जाता है। युवतियां विवाह से इसलिये कतराती हैं कि विवाहित युवती की अपेक्षा कुमारी को नौकरी सुविधा से मिल सकती है। विवाहित युवती को नौकर रखते समय व्यवसाय के मालिकों के सामने सौर के अवकाश की तनखाह देने की मजबूरी का भय रहता है। चेकोस्लोवाकिया में नारी आर्थिक रूप से न असहाय है न निर्बल।

यहाँ युवको को विवाहित जीवन के लिये प्रोत्साहन देने वाली कई परिस्थितियां हैं। विवाह के समय प्रत्येक दम्पत्ति को राष्ट्र की ओर से उपहार रूप कुछ धन मिलता है और नया घर सजाने बसाने के लिये राष्ट्र से विना सूद अच्छी खासी रकम उधार मिल जाती है। सन्तान हो जाने पर राज कर से छूट भी मिलती है। संतान के उचित पोषण के लिये बहुत सी सुविधायें मिलती है परन्तु यहाँ लोगों में सोवियत की तरह बहुत छोटी, अठारह बीस बरस की आयु में ही विवाह करने की प्रवृत्ति नहीं है। पहले तलाक के विरुद्ध कड़े नियम थे। अब यह कड़ाई हटा दी गई है। तलाक भी होते हैं। तलाक को यहाँ अच्छा नहीं समझते परन्तु दम्पत्ति के कलहपूर्ण जीवन और गुप्त बुराइयों की अपेक्षा तलाक हो जाना ही बेहतर समझते हैं।

इंगलैंड में तलाक कानून निषिद्ध नहीं है परन्तु उसे अनैतिक समझा जाता है। सर्वसाधारण को तलाक से निरुत्साहित करने के लिये तलाक स्वीकार करने के नियम बहुत ही कड़े बनाये गये हैं और तलाक दे सकने की अदालती फीस लगभग दो सौ पौंड (ढाई हजार रुपये से भी अधिक) रख दी गई है। मन फट जाने पर और कोई सूत्र बीच में न रहने पर साथ रहना केवल विरक्ति का ही कारण होगा। इससे कैसा नैतिक प्रयोजन पूरा होता है इस विषय में लंदन में सुना था कि मजदूर वर्ग के लोग तो तलाक देना संभव न समझ आपस में न बनने पर यों ही पृथक रहने और उच्छृङ्खल जीवन बिताने लगते हैं। उनके लिये दूसरा विवाह करना सम्भव नहीं होता। एक समाचार पत्र में काम करने वाले सफ़ेदपोश मित्र ने अपनी बीती सुनाई कि पहले विवाह का जीवन असह्य हो जाने और दुबारा विवाह कर घर बसाने की इच्छा से उसने किसी प्रकार अदालती खर्च के लिये दो सौ पौंड तो जमा कर लिये परन्तु अदालत में जिस प्रकार की गवाही की आवश्यकता थी, वैसी गवाही पेश कर सकना सम्भव न था। वह अपनी तत्कालीन पत्नी की सामाजिक स्थिति बिगाड़ देना भी निर्दयता समझता था और उससे छुटकारा भी चाहता था। इस अवस्था में पत्नी पर दुश्चरित्रता का आरोप लगाने के बजाय उसने पत्नी

को स्वयं अपने ऊपर दुश्चरित्रता का तथा मार-पीट का आरोप लगाने की ही सलाह दी। किराये की गवाही भी पेश कर दी गई। यह भला आदमी सफाई देने के लिये अदालत में पेश नही हुआ। इस प्रकार उसे पहले विवाह की भूल से काफी आर्थिक दंड भुगत कर छुटकारा मिला। अस्तु चेकोस्लोवाकिया में इस समय तलाक के मार्ग में विशेष रुकावट नहीं है। विवाह के मार्ग में पर्याप्त मकानों की कमी जरूर रुकावट डाल रही है। यही कठिनाई विशेषकर प्राहा में भी है। बहुत से नवयुवक अच्छा मकान मिलना कठिन देखकर विवाह को टाले जा रहे हैं।

परिणाम में यहाँ इंगलैंड और फ्रांस की तरह नारी को क्रय और किराये की वस्तु बना सकने वाली परिस्थितियां नहीं है इसलिये वेश्यावृत्ति नहीं है। दोपहर के समय कार्लोविवारी पहुँच गये। मध्य यूरोप के प्रसिद्ध स्वास्थ्यप्रद स्थान कार्ल्सबाड को ही चेक में कार्लोविवारी कहते हैं। बस्ती शिमला या मसूरी के ढंग की है। अतर यह है कि शिमला, मंसूरी पहाडो की पीठ पर है और कार्लोविवारी पहाडों की गोद में। सडकें, दुकानें और इमारतें शिमला की अपेक्षा कही साफ़ और सुन्दर है। हम लोगों ने होटल मास्को में भोजन किया। इस होटल के खाना खाने के हाल और विश्राम के लिये बने हाल बम्बई के ताज, कलकत्ता के ग्राड और दिल्ली के इम्पीरियल से कहीं अधिक शानदार हैं। फर्शो पर सब जगह बहुत कीमती लाल कालीन बिछे है और पर्दे भी खूब भारी मोटे मखमल और पल्श के है। बीच में फूलों की सजावट और फर्नीचर भी वैसा ही है। यह स्थान युद्ध से पहले संसार के रईसो का क्रीडा स्थल था। भारत के महाराजा और अमरीका के करोड़पति लोग इस होटल मे ठहरते थे। समाजवादी व्यवस्था हो जाने के बाद से भी होटलों का स्तर कायम रखने का प्रयत्न किया गया है। अब यहाँ चेकोस्लोवाकिया में निमंत्रित अतिथि और भिन्न-भिन्न श्रमिक संगठनों (ट्रेडयूनियन्स) के लोग ठहरते है। ट्रेडयूनियनो के सदस्यों के व्यय का दो तिहाई भाग उनकी सस्थाये देती हैं, एक तिहाई वे स्वयं देते है। लोग बारी-बारी से यहाँ आते हैं। बाजारो और सड़को में खूब भीड रहती है।

कार्लोविवारी का कार्ल्सबाड की प्रसिद्धि यहाँ के सोतो के जल के गुण के लिये है। इस जल का पीना या इसमे नहाना कई प्रकार के रोगो का इलाज समझा जाता है। पूरा नगर इन सोतों को केन्द्र बनाकर इनके चारों ओर बसा हुआ है। कई सोतों में से अच्छा खासा गरम, भाफ छोडता पानी निकलता है। कुछ में से साधारण गुनगुना। सोतों के जल को यों ही बह जाने नही दिया जाता। सोतों को घेरकर खूब सुन्दर पक्की इमारतें बनी हुई है। बहुत सी इमारतों की छतें मोटे काच की चद्दरों की बनी है। धूप तो छनकर भीतर आ सकती है परन्तु वर्षा नही। इन हालों में स्थान-स्थान पर बेच रखे हुए है। सोतों को विशेष सावधानी से जगलो से घेर दिया गया है नर्सो की तरह सफेद कपड़े पहने स्त्रिया ड्यूटी पर रहती है। वे गिलास भर-भरकर जल चाहने वालों को देती रहती है। एक गरम सोते की धार इतने वेग से उठती है कि बीस फुट ऊपर तक चली जाती है। इस सोते या फव्वारे पर कांच का खूब ऊचा गुम्बद बना हुआ है।

उपचार की शक्ति रखने वाले गरम जल को मोटे-मोटे नलों द्वारा कुछ दूर बने स्नान-गृहों में ले जाया जाता है। सोते बहुत से हैं। उनके जल के गुण भी भिन्न-भिन्न हैं। लोग डाक्टरों की राय से इस जल का सेवन करते हैं। नगर के बीचोबीच एक छोटी पहाड़ी नदी है जिसके दोनों किनारे पक्के बंधे हुए हैं और दोनों ओर जालीदार जंगला लगा है। जंगले के कारण बच्चों के नदी में गिरने की आशंका नहीं रहती। नदी में कोई कूड़ा नहीं फेंकता। जल इतना स्वच्छ है कि नीचे बंधे फर्श के पत्थर साफ दिखाई देते हैं।

कार्लोविवारी के स्रोतों में औषध का गुण प्रकृति की देन है और इस देन का यथासम्भव लाभ भी उठाया गया है। सोवियत में काले समुद्र के किनारे सोची में माताशेयस्ता नाम के गंधक के सोते हैं। १९५५ में वहाँ जाने का अवसर मिला था। वहाँ भी सोते के जल को उपचार के लिये प्रयोग में लाने के लिये बहुत बड़ा हस्पताल बना हुआ है। ऐसे जल के बहुत गुण बखाने जाते हैं। अनेक दुस्साध्य रोगों का उपचार इस जल से हो सकने का विश्वास किया जाता है। यह सब काम समाजवादी रूस और चेकोस्लोवाकिया में राष्ट्रीय नियंत्रण में किये गये है। भारत में ऐसे और शायद इससे भी अधिक उपचार शक्ति रखने वाले अनेक स्रोत हैं। नैनीताल में झील के समीप ही एक गंधक मिले जल का सोता है। कांगड़ा जिला में मणीकर्ण नामक स्थान में तो सोते से इतना गरम जल निकलता है कि उसमें आलू डाल देने से कुछ समय में उबल जाते है। यात्री पोटली में चावल बाँधकर डाल देते है और कुछ समय में भात बनकर पोटली ऊपर आ जाती है। हमारी धर्मभीरु जनता इन स्रोतों को दैवी शक्ति का चमत्कार मानकर केवल इनकी पूजा ही करती है। इनसे लाभ उठाने की बात नहीं सोची गयी। मनाली में व्यास कुंड भी गरम जल के सोते का कुंड है। अनेक कोढ़ी इलाज की आशा में इस कुंड में जाकर डुबकियां लगाते हैं। पुण्य प्राप्ति के लिये तीर्थयात्रा करने वाले लोग भी स्नान के प्रयोजन से उसी कुंड में डुबकियां लगाते रहते हैं। इन कुंडों की सफाई कभी नहीं की जाती। सम्भव है यहाँ उपचार की अपेक्षा छूत से रोग ही फैलते हों। प्रकृति की देन का उचित उपयोग कर पाने के लिये भी प्रयत्न और सावधानी की आवश्यकता होती ही है।

सोची

चेकोस्लोवाकिया में और दूसरे समाजवादी देशों की व्यवस्था में स्वास्थ्य-गृहों (सैनीटोरियम) के प्रबन्ध पर बहुत ध्यान दिया जाता है। पूँजीवादी व्यवस्था में भी अवकाश का समय बिताने के स्थानों में विश्राम और विनोद का प्रबंध साधारण से बेहतर ही होता है। दार्जिलिंग, ऊंटी, शिमला और मंसूरी में जो वैभव और विलास दिखाई देता है, साधारण नगरों में नहीं मिलता। पूँजीवादी देशों में अवकाश से विनोद कर सकने का अवसर प्रति हजार में से कुछ ही लोगों को रहता है। समाजवादी देशों में दस मास के श्रम के पश्चात् दो मास का अवकाश सभी को मिलता है। इस समय का पूरा लाभ उठाने के लिये ट्रेड यूनियनों की ओर से भी सहायता मिलती है तो फिर सर्वसाधारण कुछ दिन के लिये शाही ठाठ क्यों न करें? गत वर्ष मास्को में गले का एक छोटा सा आपरेशन कराया था। मेरी पत्नी शरीर में निरंतर बने रहने वाली पीड़ा का भी इलाज़ कराना चाहती थीं। मास्को के डाक्टारों ने प्रकाशवती को एक मास सोची के स्वास्थ्यगृह में इलाज तजवीज़ किया था और मुझे भी गले के आपरेशन के पश्चात् एक मास विश्राम के लिये सोची जाने का परामर्श दिया था। सोची कृष्ण सागर के किनारे छोटा सा नगर है। पूरा नगर ही स्वास्थ्य-गृहों से भरा है। समुद्र के किनारे मीलों सीमेंट के घाट बांध दिये गये हैं। साथ-साथ हरी घास और फूलों की क्यारियां हैं। सोची अपेक्षाकृत गरम है इसलिये पूर्वी देशों से लाकर ताड़ के वृक्ष सड़कों के किनारे लगाये गये हैं। कहीं केले के पेड़ भी दिखाई देते हैं। हम लोग केले के पेड़ नित्य देखते हैं इसलिये उसमें विशेष सौन्दर्य नहीं जंचता। रूस के लोग केले के पेड़ों को गमलों में तैयार कर विशेष सजावट के लिये उपयोग करते हैं। सोची में समुद्र तट छोटे जलोथर चिकने पत्थरों से पटा है इसलिये यहाँ का जल गंदला नहीं हो पाता। कुछ स्वास्थ्य-गृह तो रूस के पुराने सामंतों और पूँजीपतियों के मकानों को अदल-बदलकर बनाये गये हैं परन्तु अधिकांश में नये भव्य प्रासाद स्वास्थ्य-ग्रहों के रूप में खड़े कर दिये गये हैं। खान का काम करने वाले मजदूरों और रेलवे के कर्मचारियों के स्वास्थ्य गृहों के प्रासाद तो देखते ही बनते हैं। प्रवदा समाचार और प्रेस का अपना अलग स्वास्थ्य गृह है। केन्द्रीय सचिवालय के कर्मचारियों के अपने तीन बड़े-बड़े स्वास्थ्य-गृह हैं। प्रकाशवती और मैं इसी सचिवालय के एक स्वास्थ्य गृह में रहे थे। सचिवालय से सम्बन्धित विभागों के अध्यक्ष, कर्नल, मेजर, पोलैंड के राजदूत, एक उजबेकिस्तान के मंत्री और एक ताजिकस्तान के मंत्री और सचिवालय में काम करने वाले क्लर्क और टाइपिस्ट लड़कियां स्वास्थ्य-गृह के भोजनालय में एक साथ एक ही जैसा खाना खाते थे। रहने के स्थान की व्यवस्था भी प्रायः एक जैसी थी। यह इसलिये कह रहा हूँ कि कर्नलों, मंत्री महोदयों और क्लर्कों को दिये गये कमरे तो एक ही जैसे थे परन्तु बीचोबीच

अतिथिशाला शेष दुमंजिली कुटियाओं की अपेक्षा बहुत अच्छी थी। इस इमारत की ऊपर की मंजिल के आधे भाग में हम लोग और आधे भाग में पोलैंड के राजदूत के परिवार को टिकाया गया था। नीचे के बड़े-बड़े कमरों में तीन-तीन टाइपिस्ट या क्लर्क लड़कियों को एक-एक कमरे में जगह दे दी गयी थी। इस इमारत के भव्य और सुन्दर होने की एक कहानी है। सुना है कि यह मकान सोवियत के पहले मंत्रिमंडल के सास्कृतिक विभाग के मंत्री कालिनिन के विश्राम के लिये बनाया गया था। कालिनिन को जब यहाँ लाया गया तो उसने इस मकान की भव्यता से उद्विग्न होकर इसमें रहने से इनकार कर दिया और दूसरी किसी कुटिया में डेरा डाला। मकान वस्तुतः ही पहाड़ी ऊँचाई पर स्वप्न लोक के छोटे महल-सा बना है। मकान से नीचे समुद्र तट तक सरो के ऊँचे वृक्षों के बीच से सीढ़ियाँ उतरती चली गयी हैं। मुझे भी ऐसा जान पड़ता था कि यह मकान हम लोगों की अपेक्षा नूरजहां या मुमताज महल के अभिसार का स्थान होता तो सुन्दर काव्य का आधार बन सकता था।

स्वास्थ्य-गृह या सैनाटोरियम शब्द विशेष आकर्षण नहीं है। मुझे भुवाली के सैनीटोरियम का कुछ अनुभव था। हमारे यहाँ स्वास्थ्य-गृह या सैनीटोरियम रोगियों के रहने की जगह या हस्पताल ही समझा जाता है। सोवियत और समाजवादी देशों में स्वास्थ्य-गृह ऐसे हस्पतालों को नहीं कहा जाता। स्वास्थ्य-गृहों में डाक्टर और नर्सें तो पर्याप्त होती है परन्तु शैय्यारूढ़ रोगियों का इलाज वहाँ नहीं किया जाता। यह स्थान श्रम से आ गई थकावट दूर करने और ऐसे रोगों के इलाज के लिये होते हैं जिनके कारण रोगी शैय्यारूढ़ तो न हों पर निर्बल हो गये हों। इलाज अधिकांश में दवाइयों से नहीं, भोजन में परिवर्तन से अथवा प्राकृतिक चिकित्सा द्वारा किया जाता है। सोची में स्वास्थ्य सुधार का विशेष उपाय समुद्र में तैरना और धूप सेंकना है। कुछ रोगों के लिये गंधक के पानी के चश्मे के जल में भी स्नान कराया जाता है। समुद्र के किनारे सभी स्वास्थ्य-गृहों की ओर से और साधारण नागरिकों के लिये भी स्नान का प्रबन्ध है। सैकड़ों बेंचें और तख्त पड़े हैं। धूप से बचने के लिये छतरिया लगी रहती है। व्यायाम के लिये जिम्नास्टिक का प्रबंध है। कपड़े बदलने के लिये और समुद्र स्नान के पश्चात् नल के पानी से नहा लेने के लिये भी बहुत से कमरे हैं। अधिकांश में पुरुष जांघिये पहने और स्त्रियां चोली और जांघिये पहने एक साथ तैरते, नहाते अथवा नावें खेते रहते हैं। कुछ स्थानों पर पर्दे की आड़ भी कर दी गई है जहाँ स्त्रियां निश्शंक पूर्णतः सूर्य स्नान करने के लिये लेट कर या बैठकर ताश खेलती रहती हैं। पुरुष तैरने से थक जाते है तो प्रायः सिर पर छत्री की छाया कर कोई पुस्तक पढ़ने लगते हैं। बच्चों की संख्या भी काफ़ी रहती है। बच्चों के शरीर पर हवा भरी पेटियां बाँधकर पानी में छोड़ दिया जाता है। पहली बात तो बच्चे भय से खूब चिल्लाते हैं। दूसरे दिन उन्हें समुद्र से बाहर निकलना कठिन हो जाता है।

स्वास्थ्य-गृहों का अपना अनुशासन भी होता है। यहाँ आते ही प्रत्येक व्यक्ति के शरीर का निरीक्षण किया जाता है। शरीर का तौल-माप करने के साथ ही खून की परीक्षा और एक्स-रे भी किया जाता है। इस निरीक्षण के आधार पर व्यक्ति के भोजन की तालिका

निश्चित की जाती है। भोजन में दूध, दही और फलों का प्राचुर्य रहता है। भोजन परोसने वाली लड़कियां इस बात का भी ध्यान रखती हैं कि किसी व्यक्ति की भूख बहुत कम तो नहीं है। वे इस विषय में डाक्टर को 'सूचना' भी देती रहती हैं। इन छोकरियों की इस सतर्कता के कारण मुझे कम परेशानी नहीं उठानी पड़ी।

सोवियत में वस्तुओं के मूल्यों के स्तर से मुझे स्वास्थ्य गृह के भोजन का मूल्य बहुत अधिक जान पड़ा था। आस-पास के लोगों से जिज्ञासा करने पर मालूम हुआ कि स्वास्थ्य गृहों में प्रति व्यक्ति पर होने वाले मूल्य का एक तिहाई ही लोगों को देना पड़ता है। दो तिहाई ट्रेड यूनियनें देती हैं। प्रति वर्ष स्वास्थ्य गृह में स्थान मिल जाना कठिन होता है। सब लोगों को बारी-बारी से यह अवसर दिया जाता है। डाक्टर की सिफ़ारिश पर विशेष सुविधा भी दी जाती है।

स्वास्थ्य गृह के अनुशासन के अनुसार प्रातः सात से साढ़े आठ बजे के बीच नाश्ता कर लेना आवश्यक होता है। लोग नाश्ते से पहले और पश्चात् समुद्र में तैरते या धूप सेंकते रहते हैं। मध्याह्न भोजन एक से ढाई बजे तक कर लेना आवश्यक होता है। दोपहर में साढ़े चार बजे तक लेट कर विश्राम करना जरूरी समझा जाता है। इस समय को स्वास्थ्य-गृह की भाषा में 'मौन-काल' कहा जाता है। इस समय ग्रामोफोन या रेडियो बजाना निषिद्ध रहता है। नौजवानों को यह विश्राम का अनुशासन जरूर खलता है। वे यदि इस समय का उपयोग आस-पास के बन-उपवन के कुंजों में करना चाहें तो सर्तकता से आँख बचाकर निकलना पड़ता है। साढ़े चार-पाँच के बीच एक प्याली काफ़ी या चाय बिस्कुट या केक के साथ मिल सकती है। इतने से लोभ के लिये बहुत कम लोग भोजनालय तक आते हैं। कुछ लोग संध्या समय भी समुद्र किनारे जा पहुँचते है कुछ घूमने चले जाते हैं। कुछ लोग क्लब में ताश विलियर्ड खेलते है। संध्या का भोजन सात से साढ़े आठ तक हो जाना चाहिये। रात ग्यारह बजे तक क्लब में नाच-गाना होता है या कोई फिल्म दिखाई जाती है। रात में साढ़े ग्यारह के बाद इधर-उधर घूमने-फिरने पर डाक्टर या नर्स आपत्ति करती है। यह कार्यक्रम सभी स्वास्थ्य गृहो में एक साथ ही चलता है। टैनिस, वालीबाल, बैडमिंटन की भी सुविधा रहती है और खेलों में स्वास्थ्य गृहों की आपस में प्रतियोगिता भी होती रहती है। साधारणतः स्वास्थ्य गृह में अट्ठाईस दिन रहने का अवसर मिलता है। सोवियत में कृष्ण सागर के किनारे गागरा, सुखूमी आदि कई नगर ऐसे स्वास्थ्य-गृहों से भरे हैं। कुछ स्वास्थ्य-गृह दूसरे पहाड़ी प्रदेशों और स्रोतों के समीप भी हैं। चेकोस्लोवाकिया में भी कार्लोविवारी के अतिरिक्त तातरा और लुहाचेवित्सा में भी कई स्वास्थ्य-गृह है।

कार्लोविवारी पहुँचने से पहले ही किसी होटल में जगह नहीं रखवा ली थी। पहुँचकर पूछने पर जगह नही मिली इसलिये संध्या समय ही तेप्लित्सा के लिये चल देना पड़ा। चले तो सही परन्तु मुख्य राजपथ के चौराहे के समीप पहुँचकर देखा कि सड़क पार नहीं कर सकते। सड़क के दोनों ओर बेहद भीड़ थी और पुलिस ने रस्से बाँधकर दायें-बायें से

सड़कों से मुख्य सड़क पर यातायात रोक दी थी। भीड़ उत्साह से पागल होकर नारे लगा रही थी, रुमाल हिला रही थी और सब तरफ़ से नीली झंडियां फहराई जा रही थीं। मालूम हुआ कि शांति संदेश की साइकल दौड़ प्रतियोगिता में भाग लेने वाले लोग सड़क से गुजरने वाले हैं। यह दौड़ बर्लिन से आरम्भ होकर जर्मनी और चेकोस्लोवाकिया के कई नगरों से गुजर कर पोलैंड की राजधानी वारसा में समाप्त होने को थी। हजारों मीलों का रास्ता था। बहरा कर देने वाला कोलाहल सुनकर हम लोग भी समीप की एक दुकान के चबूतरे पर चढ़ कर देखने लगे। दौड़ लगाने वाले केवल जांघिये, बनियानें और छोटी गोल टोपी पहने थे। उनके शरीर पसीने से तर थे। बादल और हल्की बूंदावांदी के कारण मौसम का यह हाल था कि सड़क पर शायद ही कोई स्त्री पुरुष बिना ओवरकोट के होगा। सड़क पार करने के लिये लगभग दो घंटे प्रतीक्षा करनी पड़ी।

इस साइकल दौड़ प्रतियोगिता में भाग लेने के लिये संसार के सभी देशों के नवयुवकों को आमंत्रित किया गया था। यूरोप, एशिया, अफ्रीका सभी देशों के युवक थे। उनके स्वागत में सभी देशों के झंडों से बाज़ार सजा हुआ था परन्तु भारतीय कोई न था। दौड़ लगाने वाले नौजवान कुछ तीन-तीन, चार-चार की टोली में निकल रहे थे। एक बार दस-बारह का झुंड भी आया। कोई बेचारे अकेले भी चल रहे थे। सबसे आगे दो आदमी मोटर साइकलों पर शांति के बड़े-बड़े नीले झंडे लेकर चल रहे थे। इनके पहुंचने पर साइकल सवारों के लिये सड़कें खाली कर दी जाती थीं। साइकल सवारों के प्रत्येक झुंड के पीछे स्टेशन बैगन के ढंग की मोटरें, सवारों का सामान और छः-छः नई साइकलें लिये चल रही थी। ऐसी गाड़ियां पच्चीस-तीस के लगभग थीं। किसी भी सवार की साइकिल टूट या बिगड़ जाने पर नयी साइकल दे दी जाने का और चोट लगने पर दवादारू का भी प्रबन्ध था। सवारों को दस या बारह घंटे साइकल चलाने की इजाजत थी। कोई निश्चित स्थानों पर पड़ाव डाले जाते थे। वहाँ उनके लिये सब सुविधाओं का प्रबन्ध था। प्रत्येक सवार के पड़ाव से चलने और दूसरे पड़ाव पर पहुँचने का समय लिख लिया जाता था। सवार दौड़ पूरी करने में पूर्ण समय कितना लगाते हैं, यही उनकी सफलता की कसौटी है। इस प्रकार की दौड़ें या शारीरिक शक्ति की प्रतियोगिताएं दूसरे देशों में भी होती रहती हैं परन्तु जहाँ तक सम्भव हो ऐसे अवसरों को शांति की भावना के प्रचार का साधन बना देना यह समाजवादी देशों की इस समय की विशेष प्रवृत्ति है। यह शायद इसलिये कि निर्माण का अवसर पाने के लिये इन्हें शांति की आवश्यकता प्रतिक्षण अनुभव होती रहती हैं।

कार्लोविवारी

कार्लोविवारी से हम प्रायः पश्चिम की ओर जा रहे थे। यह प्रदेश पहाड़ी है परन्तु भारत के पहाड़ों जैसे पाँच-सात या नौ-दस हजार फुट ऊँचे पहाड़ तातरा को छोड़कर यहाँ नहीं हैं। अपने पहाड़ों की तुलना में उन्हें बड़े-बड़े टीले ही कहा जायेगा। हरियाली खूब थी। बादल छाये हुए थे इसलिये सूर्यास्त का भी पता नहीं चल रहा था। निरंतर झुटपुटा सा बना हुआ था और हम तेज चाल से मीलों पर मील लांघते जा रहे थे। इस प्रदेश में मकानों की बनावट प्राहा और उसके पड़ोस से भिन्न है। ऊपर की मंजिल छत की ओर कुछ सिमटी हुई सी होती है। मालूम हुआ यह जर्मन ढंग के मकान हैं। युद्ध से पहले यहाँ बहुत से जर्मन रहते थे। कई स्थानों में तो जर्मन लोग सौ में चालीस अथवा सौ में साठ तक थे। यह जर्मन परिवार प्रायः डेढ़ सौ वर्ष पूर्व आकर यहाँ बसे थे और यह भाग जर्मन साम्राज्य का ही अंग बन गया था। प्रथम युद्ध में जर्मनी की पराजय के पश्चात् यह भाग जर्मन साम्राज्य से स्वतंत्र कर चेकोस्लोवाकिया को सौंप दिये गये थे। द्वितीय युद्ध से पहले जब नाज़ीवाद के प्रभाव में जर्मनी संसार के आधिपत्य का स्वप्न देखने लगा था इस प्रदेश के जर्मन कट्टर नाज़ी बन बैठे और उन्होंने चेकोस्लोवाकिया के प्रदेशों को जर्मनी द्वारा समेट लेने में सहयोग दिया था। चेकोस्लोवाकिया के नाज़ी दमन से मुक्त होने पर यहाँ की सब जर्मन आबादी को निकाल दिया गया है। केवल उंगलियों का गिने जाने योग्य ऐसे जर्मन लोग ही रह गये हैं जिन्होंने निश्चित रूप से नाज़ीवाद से सहयोग नहीं किया था और जिन लोगों ने चेक लोगों से विवाह आदि करके चेक राष्ट्रीयता स्वीकार कर ली है। जर्मनों को निकाल बाहर करने का प्रभाव इस प्रदेश की आर्थिक स्थिति पर अच्छा नहीं पड़ा है।

मार्ग में कई छोटे-छोटे कस्बों में से गुजरे, मोस्त तो अच्छा खासा नगर ही है। पत्थर के भव्य मकान, प्रशस्त चौक, सड़कें, बस और ट्राम दोनों मौजूद परन्तु नागरिकों की संख्या बहुत कम। प्राहा में तो निवास स्थान की समस्या अभी तक विकट है और यहाँ जान पड़ता है रहने वाले नहीं हैं। तेप्लित्सा में भी कुछ ऐसी ही अवस्था है। समाजवादी शासन से पूर्व यहाँ के जर्मन ड्यूक का महल अब संग्रहालय और जनसाधारण के क्लब का काम दे रहा है। कई बहुत बड़े-बड़े मकानों और बागों में भी सर्वसाधारण के लिये संगीत और जलपान का प्रबंध कर दिया गया है। रात हम लोग तेप्लित्सा के एक होटल में ठहरे। तेप्लित्सा को चेकोस्लोवाकिया के अच्छे नगरों में नहीं गिना जा सकता परन्तु होटल सुविधाजनक और अच्छा था। नगर में सिनेमा के अतिरिक्त एक छोटी रंगशाला भी मौजूद थी।

दूसरे दिन सुबह मोस्त के समीप बने स्तालिन कारखाने के समीप से गुजरे। स्तालिन कारखाना कई वर्ग मील में फैला हुआ है। यह कारखाना हमारे लिये अच्छा उदाहरण हो सकता है। चेकोस्लोवाकिया में अपना पैट्रोल नहीं है परन्तु घटिया किस्म का कोयला पर्याप्त है। यहाँ कोयले से पैट्रोल और पैट्रोल की सफ़ाई करते समय प्राप्त पदार्थों से बन सकने वाली अनेक वस्तुयें बनती हैं। इन रासायनिक क्रियाओं में बहुत बड़े परिमाण में गैस उत्पन्न होती है। इस गैस को वातावरण को विषाक्त करने के लिये छोड़ नहीं दिया जाता बल्कि बहुत बड़े-बड़े नलों द्वारा प्राहा आदि नगरों में पहुंचा दिया जाता है। वहाँ यह गैस यह ईंधन का काम देती है। हमारे देश में ईंधन एक बड़ी समस्या है। नगरों को ईंधन देने के लिये जंगल समाप्त हुए चले जा रहे हैं। गांवों में मुख्य ईंधन है, उपले। गांवों का अधिकांश गोबर जला दिये जाने से खेती के लिये खाद कहाँ से मिले? मुझे याद है नालन्दा के समीप एक गांव में बच्चो को ईंधन के लिये वृक्षों के नीचे तनों से छाल के छोटे-छोटे टुकड़े नोचते देखा था। घोंसले बनाने लायक तिनके भी वे ललचाकर उठा लेते थे। जिन्हें ईंधन इतना दुर्लभ है, सुलभ क्या होगा?

यहाँ आने का प्रयोजन कालदूम अर्थात् संयुक्त घर को देखना था। चेकोस्लोवाकिया में निवास स्थान की समस्या हल करने और मजदूरों को सुविधा और स्वास्थ्य के साधन देने के लिये औद्योगिक स्थानों मे बड़े-बडे सयुक्त घर बनाये गये है। मोस्त के समीप लित्विनोव में कालदूम की इमारत ग्यारह मंजिल की है। इस एक इमारत में चार सौ छोटे-बड़े परिवार रहते हैं। छोटा-मोटा गाव ही समझिये! नीचे पहले फर्श पर भोजन का साझा प्रवन्ध है। बहुत बडी भो   है। भोजनशाला की एक ओर की पूरी दीवार कांच की है और वहाँ से पहाड़ों में फैली घाटी का बहुत मनोरम दृश्य दिखाई देता रहता है। खाना कई प्रकार का तैयार रहता है। व्यक्ति अपनी मनपसंद वस्तु चुन लेते हैं। भोजनशाला में गाने-बजाने और नाच का भी प्रबंध है।

कालदूम में परिवारों के आदमियों के विचार से तीन तरह के फ्लैट हैं। कुछ फ्लैट दो बड़े कमरों और एक छोटे कमरे के है, कुछ दो कमरों के और कुछ केवल एक कमरे के। रसोई गुसलखाने सब तरह के फ्लैट के साथ अलग-अलग हैं। लोग चाहें तो अपना खाना स्वयं बना सकते हैं चाहे नीचे भोजनशाला से ले सकते हैं। एक कमरे में फ्लैट के साथ रसोई और गुसलखाना एक आलमारी के आकार के ही थे। प्रत्येक रसोई में गैस और बिजली के चूल्हे मौजूद थे। फर्नीचर काफ़ी अच्छे ढंग का था। फर्नीचर किरायेदार को अपना ही लाना होता है। लोग स्वयं प्राय: चाय काफ़ी या आमलेट ही बनाते हैं, भोजन नीचे से लाकर या वहाँ जाकर ले लेते है। निचली मंजिल में एक सभा भवन, संगीत का कमरा, एक छोटा सिनेमा, डाक्टर का कमरा, बच्चों के स्कूल, छोटे बच्चों के लिये पलना मौजूद है। उसके साथ ही कपड़ा सीने, धोने, सुखाने की मशीनें और इस्त्री करने का प्रबंध है। सुविधायें सब हैं। प्रत्येक फ्लैट के साथ छोटा बरामदा या छज्जा भी है। कालदूम के चारों ओर खूब बड़ा बाग और उपवन भी है।

इतनी सुविधायें सभी लोगों को पहुंचाने के लिये शायद संयुक्त व्यवस्था ही सम्भव है। वर्ना एक मजदूर के लिये मकान के चारों ओर बाग-बगीचा मकान में ही नृत्य और संगीत, बच्चों के लिये स्कूल, डाक्टर, डाकघर, कपड़े धोने का भी प्रबन्ध मामूली बात नहीं है। यह सब होते हुए भी मुझे लगा कि व्यक्ति के लिये एकान्त की भी आवश्यकता होती है जब वह अपने परिवार के अतिरिक्त दूसरे की उपस्थिति नहीं चाहता। सब आराम होते हुए भी कभी एकान्त की कमी क्या इन लोगों को खटकती न होगी। कालदूम के निवासी एक प्रौढ़ से यह प्रश्न पूछ ही लिया। उसने उत्तर दिया—"अपने कमरे या छज्जे में बैठ जाओ तो एकान्त ही है। आवश्यक सुविधायें न हों तो एकान्त से क्या बनेगा?" दूसरी बात—पृथ्वी से ऊपर ग्यारहवीं मंजिल में रहने का विचार भी मुझे ऐसा लगा मानों पृथ्वी से सम्बन्ध टूट जाय। परन्तु प्रत्येक वस्तु का मूल्य किसी न किसी रूप में चुकाना ही पड़ता है।

खाना कालदूम की भोजनशाला में ही खाया। भोजन स्वास्थ्य के विचार से अच्छा और मात्रा में पर्याप्त था। सफाई और रंग-ढंग प्राहा के बड़े होटलों जैसा न होने पर भी निम्न वर्ग के होटलों से बहुत अच्छा था। लंदन के ए० बी० सी० रेस्टोरां के मुकाबिले तो उसे शानदार ही कहा जायेगा।

जिप्सी

तेप्लित्सा और मोस्त की ओर आते समय कार्यक्रम में बोरिस्लाव भी सम्मिलित कर लिया था। यह मिलाना का सुझाव था। जब बोहेमिया के भीतरी प्रदेश में जाने की बात थी तभी मिलाना ने आग्रह किया था कि उस ओर जाने पर बोरिस्लाव में जिप्सी बालकों के स्कूल में अवश्य जायेंगे। मिलाना को जिप्सी लोगों के प्रति बहुत ही सहानुभूति है। उन लोगों की बातें, उनके गुण, स्वभाव की विवेचना वह घंटों कर सकती है जिप्सी लोगों का जिक्र करते समय उसकी आँखें ऐसे चमकने लगती है मानो किसी सगे सम्बन्धी की चर्चा कर रही हो। उनकी यह सहानुभूति चेकोस्लोवाकिया के जिप्सियों तक ही सीमित नहीं है। किसी भी देश के जिप्सियों के बारे में बात कीजिये वह मनोयोग से सुनेगी। एस्प्लेनेड होटल में मैक्सिको का पत्रकार रोद्रिगे आन्तोनियो भी ठहरा हुआ था। वह उससे मैक्सिको के जिप्सियों के सम्बन्ध में ही कितने समय तक बात करती रहती थी और अपनी कापी में नोट लेती रहती थी। अवसरवश वह साथ नहीं आ सकी थी परन्तु उसने अपने स्नेह का सन्देश किसी स्कूल के कार्यकर्ताओं और बच्चों तक पहुचा देने का विशेष आग्रह किया था।

जिप्सी बालकों का स्कूल मुख्य राजपथ पर नहीं भीतर देहात में है। कोई बहुत प्रसिद्ध स्थान भी नहीं है, मेरिया को जिप्सियों से कोई विशेष लगाव न था, न उसे स्कूल के विषय में कुछ मालूम था इसलिये जगह पूछकर ढूंढने में काफ़ी समय लगा। इस खोज में यह तो पता चल गया कि यहाँ के बीहड़ देहात में भी सीमेंट या तारकोल की सड़कें न सही परन्तु पक्के रास्ते सब जगह बना दिये गये हैं और बिजली भी प्राप्य है। आखिर स्कूल मिल गया। किसी बड़े जमींदार की पुरानी हवेली में जिप्सी बालकों के लिये स्कूल बना दिया गया है।

मेरे मन में कौतूहल था कि जब यहाँ कोई जाति-भेद और श्रेणी-भेद नहीं है तो जिप्सी बालकों—लड़के-लडकियों के लिये पृथक स्कूल क्यों बनाया गया है? स्कूल में प्रवेश कर मिलाना का स्नेह संदेश देने पर पता लगा कि मिलाना प्रायः वर्ष भर तक इस स्कूल में पढ़ाने का काम कर गई है। यहाँ वह जिप्सी भाषा सीखती थी, जिप्सियों के इतिहास की खोज करती थी और बच्चों को पढ़ाती भी थी। उसका नाम सुनकर स्कूल के अध्यापकों और बड़े बच्चों की आंखों में स्नेह स्मृति चमक उठी। जिप्सी बालकों के लिये साधारण से पृथक स्कूल बनाने के सम्बन्ध में मेरी जिज्ञासा का उत्तर मिला कि इन बच्चों में शिक्षा के प्रति रुचि उत्पन्न करने और उनमें सामाजिक संयम की मनोवृत्ति उत्पन्न करने के लिये असाधारण परिश्रम की आवश्यकता होती है। जिप्सी लोग अनेक पीढ़ियों से

जरायम पेशा रहे हैं। उनकी नैतिक धारणायें ही पृथक हैं। किसी जगह बस कर नियमित जीवन बिताना वे अपनी परम्परा के विरुद्ध समझते हैं। बहुत से जिप्सी घराने तो अब रस-बस गये हैं। उनके बालकों के लिये पृथक स्कूलों की आवश्यकता नहीं परन्तु जो जिप्सी अपनी परम्परागत जरायम पेशा प्रवृत्तियों के प्रति आग्रह रखते हैं, अपनी संतान को स्कूलों में भेजने का विरोध करते हैं या ऐसे बच्चे जो साधारण स्कूलों से भाग जाते हैं उन्हीं को यहाँ लाया जाता है।

इस स्कूल को एक प्रकार से जिप्सी बच्चों की जेल ही समझना चाहिये परन्तु कार्यकर्त्ताओं की सावधानी के अतिरिक्त जेल का और कोई लक्षण दीवारें या जंगले यहाँ दिखाई नहीं देते। लड़के और लड़किया प्रायः बराबर संख्या में हैं। पढ़ाई लिखाई एक साथ होती है परन्तु उनके सोने का प्रबन्ध अलग-अलग है। इन बच्चों को यहाँ पाँच साल या उसके ऊपर आयु में लाया जाता है और सोलह सत्रह की आयु तक उनके यहाँ रहने की व्यवस्था है। उनके स्वभाव में पर्याप्त परिवर्तन आ जाने पर वे किसी भी समय साधारण स्कूलों में भेज दिये जाते हैं। बच्चों को साधारण स्कूली शिक्षा तो दी ही जाती है परन्तु अधिक ध्यान उनमें सामाजिक संयम की प्रवृत्ति जगाने के लिये दिया जाता है, विशेषकर सफाई स्नान आदि की ओर। जिप्सी लोग स्वभाव से नृत्य-संगीत प्रिय होते है। नाच-गाकर मांगना भी उनकी परम्परा में सम्मिलित है। इस स्कूल में उन्हें नृत्य-गान की समुचित शिक्षा भी दी जाती है।

मैने दो-तीन गाने सुने और लड़के लड़कियों ने नाच कर भी दिखाया। मेरे कहने से लड़कों ने मेरे सामने आपस में जिप्सी भाषा में बातचीत भी की। मैं उनकी भाषा की शैली को समझना चाहता था। मिलाना ने जिप्सी लोगों की बस्तियों में रहकर उनकी भाषा का अध्ययन किया है। उसका कहना है और स्कूल के डायरेक्टर ब्लातिस्लाव खरीश का भी मत है कि जिप्सी लोग भारत से यूरोप में पहुंचे हैं और उनकी भाषा का आधार मुख्यतः हिन्दी और उत्तरी भारत की भाषायें है।

जिप्सियों के शुद्ध यूरोपियन या आर्य न होने अथवा एशियाई होने के कारण नाज़ी लोगों को इनके प्रति बहुत घृणा थी। नाज़ी जिप्सियों की जाति का बीज नाश कर देना चाहते थे। चेकोस्लोवाकिया में नाज़ी शासन के समय जिप्सियों को गिरफ्तार कर जेल कैम्पों में बंद कर दिया जाता था। इन कैम्पों में उन्हें समाप्त कर देने के कई तरीके थे। मुख्य तरीका था, उन्हें विषैली गैस द्वारा मारकर भट्ठियों में जला डालना। नाज़ी शासन काल में चेकोस्लोवाकिया में छः लाख जिप्सियों के समाप्त कर दिये जाने की बात कही जाती है इसलिये बहुत से जिप्सी भागकर रूस और दक्षिण की ओर चले गये थे।

भारत से यूरोप तक चलते-चलते जिप्सियों ने अनेक भाषाओं के शब्द अपना लिये हैं और उनकी अपनी पृथक भाषा बन गई है। यूरोप के सभी देशों में जिप्सी बसे हुए हैं। इन देशों के जिप्सियों की भाषाओं में भी कुछ भेद आ गया है परन्तु मूलतः उनकी भाषा एक है और यत्न करने पर वे एक-दूसरे की बात समझ ही लेते हैं।

जिप्सियों को मूलतः भारत से आया और उनकी भाषा का मूल आधार हिन्दी बताये जाने पर मुझे विस्मित होते देखकर मिलाना ने कुछ जिप्सी गीत लिखकर दिये और उनके शब्दों के हिन्दी से साम्य की ओर मेरा ध्यान दिलाया।

मीरो कालो यीलो	... ...	मेरा काला[१] दिल
आंद्रे मांदे रोवेल	... ...	अंदर में रोवे
सोस्क ओ गोरी मानुष	... ...	क्यों रे गोरे मानु
मांजे पातिव न देल	... ...	मुझे पत-आदर न दे
की न जानाव	... ...	कि नहीं जानूं
*	*	*
सोस्के पानिव न देल	... ...	क्यों आदर नहीं दे
सोस्के सोम रोम कालो	... ...	क्यों हैं (अस्मि) रोम काले
सोस्के सेम छिंगेदी	... ...	क्यों हूँ छिन्न-छिन्न-चीथड़े
सोस्के सोम वोखालो	... ...	क्यों हूँ भूखा
की न जानाव	... ...	कि न जानूं
*	*	*
मीरो खेड़[२] नाने मान	... ...	मेरा घर नहीं अपना
मीरो थाम नाने मान	... ...	मेरा स्थान (देश) नहीं अपना
को साम आमेव रोमा	... ...	कौन हैं हम जिप्सी ?
उ खोतार[३] अविलाम	... ...	और कहाँ से आये हैं
की न जानाव	... ...	कि न जानू

एक जिप्सी लोरी देखिये :—

सोवेन छावे[४] सोवेन	... ...	सो जा छेले सोजा
याय[५] चाते खांल मा मांगेन	... ...	ओह बस खाना न मांग
याय, वो तुमरी फूरी दाय	... ...	ओह वो तेरी बूढ़ीधाय (मां)
आंद्रेदि कालि फूव	... ...	अंदर है काली भूमि के।
एहास मान दादोरो	... ...	था मेरा एक बाप

---

१. जिप्सी भाषा में काला शब्द सुन्दर, कोमल और रहस्यता का द्योतक है।

२. खेड़—खेडड़ा, घर, गांव (पंजाबी)।

३. खोतार—कोथाय, कहां से (बंगला)

४. छावे—छेले, बच्चा (बंगला)

५. याय—ओह, हो हो!

बारो ना लाछोरो	... ...	बड़ा ही भला छैला
आकोर हस लाछोरो	... ...	बस, तभी था भला
कान हस मातोरो	... ...	जब था मत्त-मदमस्त

नाज़ी शासन में जिप्सियों की कैसी अवस्था थी, एक गीत से इसका भी आभास मिल सकता है—

आंद्रेदा ताबोरिस याय	... ...	अंदर जेल[१] के हो
फारी बूती केरेन	... ...	(जिप्सी) भारी मशक्कत करते
फारी बूती याय	... ...	भारी मशक्कत, हाँ हाँ
मेग मारिबेन खुदेन	... ...	फिर भी मार ही मिलती
मा मारेन मा[२] मारेन या	... ...	न मार न मार रे!
बो माम[३] मुदरिना	... ...	और मुझे मुर्दा न कर दे
हिन मान खेड़े छावे याय	... ...	हैं मेरे (भी) घर बच्चे रे।
कोलेन लिकेरे का	... ...	कौन उन्हें पालेगा

बदले हुए समय का प्रतीक एक जिप्सी गीत इस प्रकार है :—

याय छवाले रोमाले	... ...	रे जिप्सी नाच
खेलास थे[४] गिलवास	... ...	खेल और गा
ईमान हिन आमेन खेड़ा	... ...	अब तो हैं अपने घर
वोखाले ना फिरास	... ...	भूखे नहीं फिरना
हिन आयेंग बूति	... ...	है अपना काम
छाको रोम शाय केश्ले	... ...	सब जिप्सी चाहें (काम) करें
बाश ए बूति लेवे	... ...	क्योंकि काम का पैसा है।
थे और पातवं खुदेल	... ...	और आदर मिलता है।

* * *

अधिकांश जिप्सियों ने स्थायी जीवन अपना लिया है। ऐसे युवक-युवतियां कारखानों वगैरा में काम करते हैं। इन लोगों पर अब कोई सामाजिक प्रतिबंध नहीं है। शेष चेकोस्लाव लोगों से इनके शादी-ब्याह प्रायः नहीं होते परन्तु हो जाना बहुत विस्मय की बात भी न होगी। मिलाना को जिप्सियों के प्रति असीम अनुराग प्रकट करते देख एक

१. जेल—कनसेंट्रेशन कैम्प।
२. मा—नहीं (संस्कृत)।
३. माम्—मुझे (संस्कृत)।
४. थे—ते, और (पंजाबी)।

दिन परिहास में कह ही डाला—"जिप्सियों के प्रति इतना अनुराग है? क्या किसी जिप्सी से विवाह कर लेना असम्भव होगा?" मिलाना ने आंशका में सिहरने का नाट्य कर कहा—"असम्भव तो क्या है, पर न बाबा! जिप्सी का स्वभाव शंकालु और ईर्षालु होता है। गले पर छुरी फेर देने में भी संकोच नहीं करता। वह पत्नी को अपनी सम्पत्ति ही समझता है।" जिप्सियों की यह धारणा जानकर मुझसे उनकी परम्परा का भारत से सम्बन्ध होने का एक और प्रमाण मिल गया। इस स्कूल के कार्यकर्ताओं को जिप्सियों के इतिहास और सामाजिक जीवन के सम्बन्ध में खोज की इतनी रुचि है कि वे इस सम्बन्ध में भारत से साहित्य पाने की उत्कट प्रतीक्षा में हैं।

सांझ पड़ते याब्लोनेत्स पहुंचे। पहाडियो की गोद में याब्लोनेत्स बहुत सुन्दर स्थान है। पत्थर की हवेलियां नगर के खूब पुराने होने की गवाही देती हैं। योब्लोनेत्सा बड़ा नगर नहीं है इसलिये होटल भी बहुत शानदार नहीं है। कम से कम यात्रियों का प्रबध करने वाली एजेंसी ने हमारे लिये सबसे अच्छे होटल में प्रबंध न कर जहाँ जगह मिली कमरे ले लिये थे। इस होटल का जीर्णोद्धार हो रहा था। इस होटल की विशेष चर्चा के लिये कारण हैं। अभी कुछ दिन पूर्व दिल्ली में एक मित्र के यहाँ एक सम्पन्न ठेकेदार साहब से भेंट हुई थी। यह सज्जन इसी वर्ष सपत्नीक यूरोप गये थे और चेकोस्लोवाकिया भी गये थे। अपने कटु अनुभव सुनाते हुये ठेकेदार साहब ने कहा कि चेकोस्लोवाकिया में जो लोग अतिथि बनकर जाते हैं वे वास्तविकता नही जान पाते। ऐसे लोगों को सबसे शानदार चुने हुए होटलों में स्थान दिया जाता है, जहाँ खाना-पीना बहुत ऊँचे दर्जे का रहता है। शेष होटलों और खान-पान की जगहों की अवस्था बहुत दयनीय हैं। इस होटल में साज-सज्जा तो बहुत ऊँचे दर्जे की नहीं थी परन्तु भोजन में किसी प्रकार की दरिद्रता दिखाई नहीं दी। दूसरे लोग भी सामने बैठे खा-पी रहे थे। गरम और ठंडे पानी का प्रबन्ध भी अच्छा था। यह होटल तो कम से कम विदेशी अतिथियों के लिये नहीं ही था। मेरिया हमारा प्रबंध यहाँ किये जाने से बहुत असंतुष्ट थी। एक बार दूसरी जगह खोजने का भी प्रस्ताव किया परन्तु मैं इस तरह के होटल का भी अनुभव चाहता था।

रात के भोजन के पश्चात् हम लोग दस साढ़े दस बजे होटल में अपने कमरों में जा चुके थे। कमरों के बीच की दीर्घिका से मेरिया के परेशानी में बोलने का स्वर दो-तीन बार सुनाई दिया। खोल कर देखा तो मेरिया बाहर ही खड़ी थी और बहुत नाराज़ थी। पूछने पर मेरिया ने संकोच से बताया कि उसके बिस्तर में एकट खटमल दिखाई दिया है। ऐसे बिस्तर और कमरे में वह कैसे सो सकती है? बात इतनी बढ़ी कि मैनेजर को स्वयं आना पड़ा। मेरिया ने बिस्तर में पाये गये कीट को एक गिलास के नीचे गिरफ्तार करके रखा था। कीट की परीक्षा हुई। मेरिया कह रही थी यह खटमल है। मैनेजर से कहा—यह खटमल नहीं है। खटमल इस होटल में हो ही नहीं सकता। तुम पिछवाड़े की खिड़की खुली छोड़ गई थी। वर्षा के समय उड़ने वाला एक कीड़ा खिड़की से भीतर आ गया है। मेरिया ने शायद खटमल कभी देखा ही नहीं था। सुना था कि खटमल रोग उत्पन्न कर देने वाला भयंकर कीड़ा होता है जो गन्दगी के कारण खाट में हो सकता है। मेरिया झेंपी तो परन्तु

उसने ज़िद्द करके बिस्तर बदलवा ही लिया। अपने देश के साधारण होटलों में तो शायद ही कोई होटलवाला खटमल की उपस्थिति से इनकार कर सके।

यहाँ का मुख्य व्यवसाय भी सुन्दर है अर्थात् गहने बनाना। गहने अधिकांश में नकली अर्थात् गिलट और काँच के ही बनते हैं परन्तु कारीगरी बहुत ऊँचे दर्जे की है। गहने बनाने के व्यवसाय का राष्ट्रीयकरण कर दिया गया है। गहने प्रायः ही विदेशों में भेजे जाते हैं और सम्पूर्ण विदेशी व्यापार राष्ट्रीय नियंत्रण में है। गहने विदेश भेजने वाली संस्था का संग्रहालय देखने गये। यहाँ प्रत्येक देश की रुचि और रिवाज़ के अनुसार पृथक आलमारियों में गहनों के नमूने रखे हुए हैं। पश्चिम यूरोप अर्थात् फ्रांस, इंगलैंड, अमेरिका के फैशन की बालियाँ, चूड़ियाँ और ब्रोच अँगूठी आदि एक ओर है। पूर्वी यूरोप की रुचि और रिवाज़ के दूसरी तरफ। दक्षिण अमेरिका, अफ्रीका, मलाया, जावा-हिंदचीन का विभाग अलग और भारत का विभाग अलग। भारतीय विभाग में तमिलनाडु प्रदेश में पहने जाने वाले मोती और हीरे के हल्के गहने, राजस्थान और पंजाब में पहने जाने वाले भारी जड़ाऊ गहने यहाँ तक कि भोटियों के शौक के मनके और नाक के पहनने के बुलाक सभी कुछ मौजूद थे। प्रत्येक विभाग में कई-कई सौ नमूने मौजूद थे।

दूसरे दिन ज़ेवर बनने के कारखाने में भी गये। कारखाने में आकृतियां और नमूने बनाने वाले विभाग अलग थे। काम सब मशीनों से होता है। मज़दूरी या वेतन नौसिखियों का आठ-सौ क्राउन से लेकर चतुर लोगों का दो-ढाई हज़ार क्राउन तक चला जाता है। एक विभाग में असली सोने और रत्नों का काम भी हो रहा था। यहाँ माल खूब बड़ी-बड़ी तिजोरियों में सुरक्षित रहता है। दूसरे दिन सुबह म्यलनीक की ओर जाते हुए कुछ गांवों के बीच से गुज़र कर पहाड़ी घाटी में नदी की भांति लम्बी फैली हुई झील के किनारे-किनारे सामन्त काल का एक प्राचीन प्रासाद देखने गये। प्रासाद पहाड़ी ऊँची पीठ पर बना है। पुरानी इमारत तो भव्य है ही। पहाड़ी का बहुत सा भाग चौरस कर फूल-फुलवारी भी लगाई गई थी। हम लोग प्रासाद के हाल जैसे बड़े-बड़े कमरों में बनी बड़ी आदमकद अंगीठियों और फुलवारी को देखकर बात कर रहे थे कि जब बिजली नहीं थी, वर्ष में लगभग आठ मास इन कमरों को गरम रखने के लिये कितने ईंधन की आवश्यकता होती होगी? इस समय तो नल से यथेष्ट पानी चढ़ जाता है परन्तु जब नल का प्रयोग आरंभ नहीं हुआ था महाराज और फुलवाड़ी के लिये आवश्यक जल कितने लोगों की पीठों और कंधों पर आता होगा? महाराज का यह वैभव कितने भूख से पेट दबाये किसानों के श्रम का भाग ले लेकर इकट्ठा किया गया होगा? मनुष्य भूख से व्याकुल हुए बिना दूसरे के लिये ऐसी कठिन सेवा करना क्यों स्वीकार करेगा? महाराज पक्षियों के परों के नीचे से पर नोच कर भरे हुये रेशमी गद्दों पर विश्राम करते थे, परन्तु यह तभी सम्भव था जब उनकी प्रजा के हजारों लोगों को फूस की चटाई भी प्राप्त न हो। मेरिया पुस्तकों के ज्ञान के आधार पर बता रही थी कि सामन्त लोगों की जागीरें मीलों लम्बी-चौड़ी होती थीं। उनके लिये भव्य प्रासाद बनाने वाली प्रजा कच्ची झोपड़ियों में रहकर उनके लिये भव्य प्रासाद प्रस्तुत करती थी। मैं स्मृति में देख रहा था कि जयपुर के पुराने किले आमेर की

ऊँची मंजिल पर खड़ा चारों ओर देख रहा हूं। नया बना जयपुर पहाड़ियों की ओट में है। परन्तु जब यह किला और प्रासाद बने थे तब तो मीलों दूर तक एक भी पक्का मकान यहाँ दिखाई न दे सकता होगा। लाखों प्रजा के श्रम का फल संचित होकर किले के भीतर संगमरमर के दालान, बारहदरियां और बारह रानियों के रहने के लिये अलग-अलग स्थान बनाने में लगाया जाता रहा। तभी यह चमत्कार प्रासाद बन सका। मुझे ऐसा लगा कि इतिहास सभी जगह एक ही मार्ग पर चला है। मानव की संस्कृति भी एक ही तरह आगे बढ़ी है। उस समय की नैतिक धारणायें भी ऐसी थीं कि इन अन्याय को भगवान द्वारा स्वीकृत व्यवस्था में प्रजा का स्वामी-भक्ति का गुण कहा जाता था। आज मनुष्य मात्र को समान समझना ही भगवान का न्याय माना जाता है।

प्रासाद से जल्दी ही लौटना था क्योंकि दोपहर का भोजन म्यलनीक में सम्राट चार्ल्स के महल में बनी मधुशाला में खाकर प्राहा लौटना चाहते थे। संध्या तक लौट जाना आवश्यक था क्योंकि सोलह की प्रातः ही मेरे लिये बर्लिन जाने वाले विमान में जगह सुरक्षित करवा दी गई थी।

गोथवाल्डोव

चेकोस्लोवाकिया के अतिथियों से अनुमति लेकर बीच में सोलह दिन के लिये पूर्वी जर्मनी और रूमानिया का भी चक्कर लगा लिया। यहाँ चेकोस्लोवाकिया का प्रसंग पूरा कर लूं। जर्मनी और रूमानिया की बात तदनन्तर कहूंगा। बुखारेस्ट से प्राहा लौटने पर तीन दिन बिलकुल ठाली सामने आ गये। चेकोस्लोवाकिया के मन्त्रालय के मि० यौरिस ने कहा, समय है एक चक्कर मोराविया का भी हो जाय। दूसरे दिन दोपहर बाद विमान से गोथवाल्डोव चला गया। इस बार दूसरी ही लड़की दुभाषिये के तौर पर साथ थी।

गोथवाल्डोव अपने ढंग का एक ही नगर या कस्बा देखा है। नगर या कस्बा छोटी पहाड़ियों की चढ़ाइयों और ढलवानों के बीच अंजली में बसा है। जनसंख्या केवल सत्तर-अस्सी हजार है परन्तु होटल की इमारत ग्यारह मंजिल है और उसके सामने ही 'स्वित' के दफ्तर की इमारत अठारह मंजिल ऊँची है। छः से आठ मंजिल तक की तो कई इमारतें आस-पास ही दिखाई देती हैं। रास्ते और गलियां खूब चौड़े-चौड़े हैं। रास्तों के दोनों ओर और इमारतों के सामने खूब फूल-पत्ती लगी है। दुकानें कम ही हैं परन्तु सबके सामने बारह-चौदह वर्ग फुट के कांच जड़े हैं। भीतर की सजावट दिखाई देती रहती है। जान पड़ता है, नगर नमूने या प्रदर्शनी के तौर पर बनाकर खड़ा कर दिया गया है। रात के समय प्रकाश इतना होता है मानों नगर किसी रंगशाला का रंगमंच हो। वास्तव में ही यहाँ सब कुछ योजना द्वारा बनाया गया और नया है।

होटल के कमरों में बिछे कालीनों और होटल के कुछ बर्तनों और कांटे छुरी से ही रहस्य का संकेत मिलता है। इन सब चीजों पर बिना हुआ या खुदा हुआ दिखाई देता है 'बाटा'। अंग्रेजी के चार अक्षर बी, ए, टी, ए और उसी शैली में जैसे हमारे सब नगरों में बाटा की दुकानों पर, उसके माल पर यह चार अक्षर लिखे रहते हैं। संसार प्रसिद्ध जूता-सम्राट बाटा का उद्गम और वास्तविक स्थान गोथवाल्डोव ही है, बल्कि था। होटल का नाम बाटा होटल था और सामने अठारह मंजिल की इमारत जिस पर आज 'स्वित' लिखा है, इस पर भी बाटा का ही नाम था। यहाँ बाटा का दफ्तर था और उसके पीछे मीलों के वर्ग क्षेत्र में बाटा के कारखाने। यहाँ के लोग 'बाटा' का उच्चारण 'बाचा' कहते हैं।

१८७६ में यहाँ बहुत छोटी, कुछ घरों की ही बस्ती थी। इस बस्ती का नाम था 'ज्लिन'। बाटा परिवार में एक सोलह वर्ष का थामस नाम का लड़का था। उसे गरीबी और दैन्य से छटपटाहट अनुभव होती थी। लड़का गहरी सूझ का और साहसी भी था। उसने समझ लिया, कितनी भी कड़ी मेहनत करो बहुत अधिक अंतर नहीं पड़ सकता।

अंतर तो तब होता है जब अपने हाथों जूता न बनाकर हाथों के चार-छः जोड़े काम पर लगाकर माल बनवाया जाये। थामस ने सुना, प्रोस्तेजोव शहर में जूते मशीनों से बनते हैं। इस बात से थामस को और भी उत्साह हुआ। कभी न थकने वाली मशीन से काम लिया जा सके तो माल की निकासी का क्या अंत! थामस बाटा वहाँ गया और कारखाने के एक कारीगर को कुछ दे दिलाकर उस समय की मशीन का एक नक्शा ले लिया। उसने नमदे के सस्ते सलीपर खूब अधिक संख्या में बनाने आरम्भ किये।

उस समय बाटा के पास काम बढ़ाने के लिये धन न था। उसका उपाय उसे सूझा, अपने मजदूरों से ही उधार लेना। बाटा ने अपने मजदूरों को समझाया, इस कारखाने का काम बढ़ाने में तुम्हारा भी फायदा है। अभी रुपये में बारह आने लेते जाओ। बकाया तुम्हारा जमा रहा। जमा रकम तुम्हारे हाथ लगेगी तो काम आयेगी। इसके बाद उसने मजदूरों को समझाया—दूसरे जूता बनाने वालों के मुकाविले सस्ता माल निकालना जरूरी है। इस काम में तुम लोगों की भी रकम लगी है। अगर धंधा घाटे में जायेगा तो तुम्हारा ही नुकसान है। इस मंत्र से वह मजदूरी बढ़ाये बिना मजदूरों से अधिक काम लेने लगा।

बाटा बीस ही वर्ष का था तभी उसका काम अच्छा खासा चल निकला था। इस समय उसने समाजवाद के विषय में सुना। उसे समाजवादी सिद्धांत पसंद आये। उसने निश्चय किया और साथ काम करने वाले मजदूरों को भी समझाया—खूब यत्न से काम कर रुपया कमाया जाये। एक अच्छा बड़ा कारखाना हो। उसके साथ ही जमीन खरीद कर खेती और डेरी की भी व्यवस्था हो।

कुछ दिन इस आयोजना के अनुसार काम चला लेकिन काफी कमाई हो जाने पर बाटा का विचार बदल गया। बाटा ने अपने संस्मरणों में लिखा है—"......मैं तीन मजदूरों के साथ अमरीका गया। अमरीका का क्या कहना! पर असल चीज है अमरीका के आदमी। अमरीकन लोगों को काम बनाने से मतलब है। वे ईमान-हराम के व्यर्थ पचड़ों में नहीं पड़ते। उन लोगों का कहना है, व्यापार-व्यापार में क्या अंतर? व्यापार में क्या भला, और क्या बुरा? व्यापारी की जैसी कमाई, वैसी उसकी इज्जत। मि० माइल्स ने अपने प्रतिद्वन्द्वी का कारखाना भी मुझे दिखाया और बोला—"देखो, दस लाख डालर तो यह आदमी इनकम टैक्स दे डालता है। यह बड़ा आदमी नहीं तो क्या है?" यह हुई बाटा के समाजवादी सिद्धान्तों की इतिश्री।

बाटा के व्यवसाय का मूलमंत्र था, सस्ते से सस्ता माल बनाकर आसपास के छोटे-मोटे प्रतिद्वन्द्वी कारखानों को समाप्त कर बाजार पर एक-छत्र राज जमाते जाना। १९०७ तक उसने आस-पास के जूते के सभी कारखाने समाप्त कर दिये थे। वह गरीब से गरीब प्रदेशों से मजदूर लाकर अपने यहाँ काम पर लगाता और जमानत के तौर पर उनकी मजदूरी का एक भाग काटता रहता। जमानत को छोड़कर भाग जाना मजदूरों के लिये सम्भव न था। प्रायः मजदूर उल्टे उसके कारखाने के कर्जदार ही बने रहते। आसपास दूसरे कारखाने भी शेष नहीं थे जहाँ यह मजदूर काम पा सकते। इसके अतिरिक्त बाटा के

नित्य के काम की मात्रा इतनी निश्चित कर दी थी कि उतना काम दस घंटे में भी पूरा कर देना मजदूरों के बस का नहीं था। मजदूर बारह-चौदह घंटे तक काम करते रहते तब जाकर दिन भर के पगार के हकदार हो पाते।

बाटा के उत्थान का चमत्कार हुआ पहले महायुद्ध में। उसने आस्ट्रोहंगेरियन सेना के लिये बूट बनाने का ठेका ले लिया था। उस युद्ध से पहले १९१३ में उसके कारखाने में तीन सौ मजदूर काम करते थे। सालभर में उनकी संख्या चार हजार हो गई। दस हजार जोड़ा जूता उसके यहाँ रोजाना बनता था। युद्ध में आस्ट्रिया और जर्मनी का साथ था इसलिये बढ़िया जर्मन मशीनें उसे मिल गईं। १९२७ में उसके यहाँ मजदूरों की संख्या आठ हजार हो गई और १९३१ में उन्नीस हजार सात सौ।

बाटा अपने नगर का राजा था और अपने नगर का बनियां भी था। सब धरती उसकी ही थी। मकान केवल वही बनवा सकता था और उसका मनमाना किराया लेता था। आवश्यक वस्तुओं—आटा, दाल, कपड़ा, नमक भी उसकी ही दुकानों पर बिकता था। कहने को यह मजदूरों की सहायता थी परन्तु दुकानों से अच्छा-खासा मुनाफा भी वह कमाता था। जैसे हमारे यहाँ चाय बागान के मालिकों का तरीका है। वे जो तनखाह मजदूरों को देते हैं, अपनी आटा-दाल, कपड़े और शराब की दुकानों से वापिस भी समेट लेते हैं। बाटा के कारखाना में मजदूरों को किसी प्रकार की सभा-सोसायटी या संगठन बनाने का न अधिकार था न अवसर। ऐसा सन्देह होते ही मजदूरों को तुरंत मकान खाली करवाकर निकाल देने की आज्ञा थी।

× × ×

१९३१ में यूरोप में भयंकर आर्थिक संकट और मंदी का समय था। अनेक व्यवसाय समाप्त हो रहे थे। बाटा को भी घाटा पड़ रहा था। उसका विचार था कि वह विज्ञापनों द्वारा अपना माल खपा सकेगा। उसके विज्ञापन बनाने वाले कलाकार नित्य बीसियों सचित्र विज्ञापन तैयार करते और वह क्रोध और निराशा में—'कुछ नहीं बना! व्यर्थ है!.....गधे है, सब गधे हैं!' चिलाता हुआ उन्हें पांव तले कुचल डालता। उसे यह समझ नहीं आ सकता था कि जब लोगों के पास रोटी खरीदने के लिये दाम नहीं तो जूते कैसे खरीदते जायं?

बाटा को तो अपने कारखानों का माल कहीं खपाना ही था। उसका उद्देश्य चेकोस्लोवाकिया के लोगों को जूते पहनाना ही नहीं था। उसने मध्य एशिया, भारत, ईरान, इज़राइल आदि में अपना कारोबार फैलाना शुरू किया। सफलता के नशे में बाटा के लिये अपने हुक्म के सामने कोई आपत्ति या तर्क सुनना-सहना सम्भव न रहा था। यही झक उसके अन्त का कारण हुई। एक दिन प्रातःकाल ही वह व्यवसाय के प्रयोजन से विमान पर जाना चाहता था। विमान चालक घने कोहरे के कारण यात्रा आरम्भ नहीं करना चाहता था परन्तु बाटा यह आपत्ति कैसे सह सकता था? उसने चालक को विमान उड़ाने का हुक्म दिया। विमान अड्डे पर उठते-उठते ही टकरा गया। बाटा अपने साथ विमान चालक को भी ले मरा।

थामस बाटा के लड़के की आयु अभी बहुत कम थी। बाटा की वसीयत के अनुसार कारोबार की बागडोर उसके सौतेले भाई जान बाटा ने संभाली। जान बाटा में व्यवसाय और संगठन की बुद्धि तो कम परन्तु अकड़ अपने भाई से भी अधिक थी। वेश-भूषा और बोलचाल बिलकुल जरनैलों जैसी। बड़ा बाटा व्यवसाय की जो नींव बांध गया था और चुन-चुन कर जो आदमी अपने काम पर लगा गया था वे व्यवसाय को चलाये जा रहे थे और जान बाटा अपना रोब बढ़ाये जा रहा था। दूसरे महायुद्ध में उसने खूब गुल खिलाये। चेकोस्लोवाक प्रजातंत्र सरकार और प्रजा तो देश पर जर्मनों के आक्रमण का विरोध कर रहे थे पर जान बाटा अपनी स्वार्थपूर्ण महत्वाकांक्षाओं के स्वप्नों को लिये जर्मनों से साठ-गांठ कर रहा था। वह बर्लिन जाकर गोरिंग और दूसरे नाज़ी नेताओं को उनके उद्देश्य में सहायता देने का आश्वासन ही नहीं देता रहा बल्कि उन्हें अपना देश चेकोस्लोवाकिया खाली कराने की नई योजनायें भी सुझा रहा था।

चेकोस्लोवाकिया की भूमि जर्मनी की दक्षिण-पूर्व सीमा के साथ-साथ दूर तक चली गई है। नाज़ी लोग जर्मनी की बढ़ी हुई जनसंख्या के लिये जर्मनी की भूमि को पर्याप्त नहीं समझते थे। बोहेमिया के पश्चिमी भागों में तो जर्मन लोग बड़ी संख्या में सैकड़ों वर्षो से बसकर अपना प्रभुत्व जमाये हुये थे। चेकोस्लोवाकिया उनके विचार में उनके घर का ही आंगन था। नाज़ियों के विचार में चेकोस्लोवाक लोगों को इस आगन में रहने का कोई अधिकार न था। हिटलर-गोरिंग योजना यह थी कि चेकोस्लोवाकिया की सम्पूर्ण प्रजा को उनके देश से निकालकर रूस के अनबसे प्रदेशों में धकेल दिया जाये और चेकोस्लोवाकिया की भूमि में बड़ी हुई जर्मन प्रजा जाकर बसे।

बाटा ने गोरिंग से मिलकर एक नयी योजना प्रस्तुत की। उसने यह तो स्वीकार कर लिया कि चेकोस्लोवाक प्रजा को अपनी भूमि से उखाड कर वहाँ जर्मनों को बसा दिया जाये परन्तु चेकोस्लोवाक लोगों को रूस भेजना उसने अदूरदर्शिता बताया। उसने सुझाया—चेकोस्लोवाक लोगों को यदि रूस भेजा गया तो चेकोस्लोवाकिया के समीप ही रहने से उनके मन में सदा ही अपनी मातृभूमि की ओर लौटने की लालसा बनी रहेगी। इसके अतिरिक्त औद्योगिक रूप से उन्नत चेकोस्लोवाक लोग रूस में जायेगे तो रूस की औद्योगिक उन्नति बहुत शीघ्र हो जायेगी। चेक और रूसी मिलकर जर्मनी को कभी चैन की सांस न लेने देंगे।

जान बाटा ने सुझाव दिया कि चेकोस्लोवाक प्रजा को रूस न भेजकर दक्षिण अमरीका के सबसे दक्षिण अन्तरीप पैटागोनिया में भेजा जाय ताकि उनके यूरोप लौटने के स्वप्न का ही अन्त हो जाय। उसने सुझाया कि जलवायु और प्राकृतिक साधनों के विचार से इस भूखण्ड (पैटागोनिया) में औद्योगिक दृष्टि से योग्य चेकोस्लोवाक लोगों को उन्नति का अधिक अच्छा अवसर मिलेगा।

बाटा ने योजना खूब ब्योरेवार और गहराई तक बनाई थी। उसका कहना था कि एक करोड़ चेकोस्लोवाक प्रजा को इतनी दूर भेजने के लिये पाँच सौ जहाजों की

आवश्यकता होगी इसलिये नये जहाज भी बनाने होंगे। इस काम में ब्रिटेन और अमरीका को भी कुछ धन्धा मिल सकेगा। इससे उन लोगों के देश में भी बेकारी का कुछ समाधान हो सकेगा। बाटा का सुझाव था कि चेकोस्लोवाक लोगों को अपनी भूमि, मालमत्ता समेट और बेंचकर पैटागोनिया चले जाने के लिये दस वर्ष का समय दिया जाना चाहिये। इसके पश्चात् जो लोग रह जायँ उनके लिये कोई उत्तरदायित्व न लिया जाय। यूरोप के दूसरे देशों से भी बढ़ी हुई प्रजा पैटागोनिया जा सके। शनैः शनैः इस काम में लगभग दो हजार जहाज लग जायेंगे और दस वर्ष तक यह काम जारी रहेगा। बाटा के हिसाब से इस काम में दस लाख व्यक्तियों को रोजी मिल सकने का अवसर था।

नाज़ियों का चेकोस्लोवाकिया को खाली करा लेने के लिये योजना बनाना तो समझ में आता है परन्तु स्वयं एक चेक (जान बाटा) का अपना देश दूसरों के हाथों में सौंप देने की योजना बनाना विस्मयजनक ही है। परन्तु स्वार्थ से अन्धे मनुष्य के लिये सभी कुछ सम्भव है। लाभ के लिये पागल पूँजीपति को देश से नहीं अपनी पूँजी से ममता होती है। बाटा ने पैटागोनिया में लगभग दो सौ वर्ग मील भूमि मिट्टी के दामों पहले से खरीद ली थी। उसकी योजना का स्वप्न यदि पूरा हो पाता तो बाटा पैटागोनिया का राजा ही होता। संसार भर में जूतों का व्यवसाय फैलाकर और इतना धन कमाकर भी बाटा की पूँजी बढ़ाने की भूख मिट न सकी।

युद्ध के अन्त में समाजवादी शासन को जान बाटा की यह सब करतूतें मालूम हो गयी थीं। समाजवादी सरकार उस पर देशद्रोह का मुकदमा चलाना चाहती थी परन्तु वह भाग गया। अब वह ब्राजील में है। वहाँ भी वह अद्भुत योजनायें जिनमें क्रियात्मकता कम और लाभ के लोभ का पागलपन अधिक है, बना रहा है। शनैः-शनैः उसका व्यवसाय और पूँजी क्षीण हो रही है। बाटा की अनुपस्थिति में ही चेकोस्लोवाकिया में उस पर मुकदमा चलाया गया। उसे दोषी पाया गया। ज़्लिन का बाटा कारखाना राष्ट्रीय अधिकार में ले लिया गया। अब उसका नाम 'स्वित' अर्थात् 'ऊषा' है।

गोथवाल्डोव में सब कुछ ऐसा साफ-साफ दिखाई देता है जैसे भले घर की सुघड़ जवान बहू बन संवर कर बैठी हो। युद्ध के ध्वंस का कोई संकेत नहीं था। सभी जगह गत युद्ध से हुई हानि के विषय में पूछता आया था इसलिये यहाँ भी पूछा—"बाटा नाज़ियों का समर्थक था इसलिये युद्ध में यहाँ तो ध्वंस नहीं हुआ होगा?"

उत्तर मिला—"नगर पर अधिकार करते समय नाज़ियों ने गोथवाल्डोव पर बम्ब नहीं फेंके थे परन्तु यहाँ से जाते समय वे बहुत कुछ नष्ट कर गये। उनसे अधिक ध्वंस किया अमरीकन जनरल जानसन ने। १९४४ सितम्बर में सोवियत की लाल सेना ने प्राहा ले लिया था और वहाँ समाजवादी सरकार की स्थापना हो गई थी। नाज़ी लड़ते हुए पीछे हटते जा रहे थे। प्रिजेन, ओस्त्रावा, कोम्सी और ज़्लिन के औद्योगिक क्षेत्र भी नाज़ियों के साथ से निकल गये थे तो जनरल जानसन ने भागते हुए नाज़ियों को मारने के लिये इन क्षेत्रों पर बम्ब वर्षा करके उन्हें नुकसान पहुंचाने के बहाने इन क्षेत्रों को बर्बाद कर दिया।

अमरीकनों को आशंका यही थी कि यह औद्योगिक क्षेत्र समाजवादी प्रणाली के शासन में चले जाना अन्ततः पूँजीवादी व्यवस्था के विरुद्ध ही जायेगा। इस बम्ब वर्षा से गोथवाल्डोव के बाटा कारखाने का रुपये में दस आना भाग नष्ट हो गया था परन्तु दो वर्ष में ही उसे फिर बना लिया गया और कारखाने की पैदावार युद्ध से पूर्व के स्तर पर आ गई।

इस समय स्वित में सब तरह के नमूने मिलाकर प्रति सप्ताह दस-लाख जूते बन रहे हैं। लगभग चालीस हजार स्त्री-पुरुष कारखाने में काम कर रहे हैं। जूतों को मालगाड़ियों में भरने तक का काम मशीनों से ही होता है। दफ्तर की इमारत अठारह मंजिल है। तीन मंजिल धरती के नीचे और पन्द्रह मंजिल ऊपर। इतनी मंजिलें होने पर लिफ्ट तो आवश्यक ही है परन्तु दफ्तर का एक कमरा जिसमें स्वयं बाटा का दफ्तर था, खूब बड़ा कमरा ही लिफ्ट है। इस कमरे को बटन दबाकर चाहे जब जिस मंजिल पर ले जाया जा सकता है। कमरा किसी भी मंजिल पर हो, टेलीफोन से उसका सम्बंध सब कमरों से बना रहता है। कमरे के साथ के गुसलखाने में गरम और ठंडा पानी भी प्रतिक्षण आता रहता है। ऐसा कमरा बनवाने का प्रयोजन दफ्तर के कार्यकर्ताओं पर मालिक की उपस्थिति का आतंक सदा बनाये रहना था। अठारहवीं मंजिल की छत पर अच्छा खासा बगीचा है और यहाँ से मीलों दूर तक का दृश्य भी दिखाई देता है। आजकल दफ्तर में काम करने वाले स्त्री-पुरुष जब जरा सुस्ताना चाहते हैं, कुछ समय के लिये यहाँ आकर धूप सेक लेते हैं।

गोथवाल्डोव का होटल मास्को यहाँ के सार्वजनिक जीवन का केन्द्र है। पहले कह चुका हूँ, होटल की इमारत ग्यारह मंजिल की है। कमरे जरा छोटे-छोटे हैं परन्तु प्रत्येक कमरे के साथ स्नान और सुविधा का प्रबन्ध है। नीचे खूब बड़े-बड़े दो हाल हैं। मजदूर अपना काम समाप्त कर यहाँ आते हैं और खा-पीकर ऊपर के हाल में नाच-गाने में लग जाते हैं। आधी रात तक नृत्य-संगीत का शोर चलता रहता है।

यहाँ की नगर सभा की मन्त्री जोश्मानोवा है। दोपहर बाद काफी पीते समय उसने पूछा—"थक न गये हो तो कहीं और चलें। छोटा-सा तो नगर है, क्या देखना चाहते हो? स्थानीय लोक-नृत्य और संगीत में रुचि है?"

जोश्मानोवा जैसी युवती से नृत्य-संगीत देखने-सुनने जाने के प्रस्ताव की आशा नहीं थी। आयु का अनुमान कठिन है। आंखों में नाराज बिल्ली जैसी तीव्रता है, चेहरे पर यातना की रेखाएं हैं जिन्हें पाउडर से छिपाने का कोई यत्न भी वह नहीं करती। 'चारमीनार' के दर्जे का सिगरेट प्रायः होंठो में दबा ही रहता है। अपने साथ आई दुभाषिया मिलाना से मैने अंग्रेजी में कहा—"मेरा अनुमान है कि रुपये में बारह आने, यह महिला कम्युनिस्ट है और इसने जेल भी काटी है।"

"पूछूं इससे?" मिलाता ने कहा और पूछ ही लिया। ऐसा प्रश्न पूछ लेने से मुझे ही संकोच अनुभव हुआ। बात संभालने के लिये तुरन्त कहा—"मेरा अभिप्राय राजनैतिक कारण से जेल का है। मैं स्वयं भी जेल काट चुका हूं। हमारे प्रधानमंत्री नेहरू तो तीन-चार बार जेल गये हैं।"

जोश्मानोवा विना संकोच और मुस्कान के बोली, मानो निजी जीवन की घटना नहीं बल्कि गत संध्या हुई वर्षा की बात कह रही हो—"हाँ-हाँ, मैं युद्ध से पहले ही बाटा के कारखाने में काम करती थी। तभी पार्टी की सदस्य भी थी। फौजी नाजी यहाँ से हम सब कम्युनिस्टों को गिरफ्तार करके कंसन्ट्रेशन कैम्प ले गये थे……।" कंसन्ट्रेशन कैम्प से उसे तत्कालीन नाजी-चेक सरकार ने एक अन्य मुकदमे में भी शामिल करने के लिये दूसरे जेल में बुलवा लिया था। जोश्मानोवा पर यह नया मुकद्दमा चल ही रहा था कि उसे समाचार मिला कि ज्लिन में उसके साथ गिरफ्तार किये गये सब लोगों को गोली मार दी गई। इस मुकद्दमे में जोश्मानोवा को आठ या दस बरस की जेल की सजा दे दी गई। जोश्मानोवा ने कहा—"मालूम नहीं मुझे गोली मार देने का काम जेले की सजा पूरी हो जाने तक स्थगित कर दिया गया था या कोई हिसाब ही नहीं था कि किसे और कितनों को गोली मारनी है। तब तक लाल सेना आ गई और समाजवादी व्यवस्था की सरकार कायम हो गई। मुझे जेल से मुक्त कर दिया गया……।"

जोश्मानोवा से बाल-बच्चों के विषय में पूछा तो उत्तर मिला कि दो लड़के हैं, एक आठ बरस का दूसरा पाँच का है।

मैंने पूछा—"तुम्हारे लड़के क्या बनेंगे ? वैज्ञानिक या दार्शनिक ?"

"क्या बताऊं ?" जोश्मानोवा ने उत्तर दिया, "बड़ा तो कहता है, राजमिस्त्री बनूंगा।" इस बार जोश्मानोवा को हंसी आ गई। समाजवादी शासन में श्रम का अपमान न करने की सावधानी के लिये सहम कर कहा, "यह तो कोई बहुत बड़ी महत्वाकांक्षा नहीं है ?"

जोश्मानोवा ने मुस्कराकर समझाया कि उसके निवास स्थान के समीप तैयार उपकरणों (प्रिफैब्रिकेटिड मैटिरियल) से नये मकान बन रहे हैं। वहाँ एक बहुत ऊँची क्रेन है। एक आदमी क्रेन की चोटी पर छोटे से कमरे में बैठकर क्रेन को आगे-पीछे चलाता है। क्रेन छोटी-बड़ी दीवारें और भारी-भारी सामान लेकर आगे-पीछे चलती है। इतनी बड़ी शक्ति और यन्त्र पर नियन्त्रण करने का अवसर लड़के के लिये चामत्कारिक स्वप्न है……।

मैं मकान बनाने का यह नया ढंग देखना चाहता था। प्रस्ताव किया—"चलो तुम्हारे लड़के से मिल आयें और मकान बनाने का नया ढंग भी देख आयें।"

तैयार उपकरणों से मकान बनाने का ढंग बहुत सहज है। दीवारों के छोटे-बड़े भागों में बिजली की तारों और पानी के नलों के लिये पहले से नालियां बनी रहती हैं। दरवाजे, खिड़कियां, रोशनदान भी पहले से बने रहते हैं। मकान बनाने के लिये चुने गये स्थान के दोनों ओर एक-एक फौलादी पटरी बैठा दी जाती है। फौलादी खम्भों पर एक बहुत ऊंचा फौलादी पुल इन पटरियों पर आगे-पीछे चलता रहता है। इस पुल के ऊपर दो क्रेन लगे रहते हैं। इन क्रेनों की गति ऊपर-नीचे, दायें-बायें सब दिशाओं में हो सकती है। धरने-उठाने का सब काम यह क्रेनें करती हैं। मुख्य काम नींव बैठाना और धरती का पक्का फर्श तैयार करना ही होता है। दीवारें शुरू हुई तो फिर तो ऐसा लगता है कि पेचों से तख्तों पर तख्ते जड़ते चले जा रहे हैं। छः मंजिल का लगभग सवा सौ कमरों का पूरा

मकान बिजली, पानी के नल चालू करने और खिड़कियों, दरवाजों में कांच जड़ने तक का काम केवल पैंतालीस दिन में पूरा कर देने की आशा की जाती है। कभी इससे कुछ जल्दी भी काम पूरा कर लिया जाता है। इस तरह के मकानों के प्रसंग में वहाँ एक चुटकला मास्को के सम्बन्ध में सुना था :—

एक भला आदमी मकान के लिये बहुत परेशान था। कई बार आवेदन पत्र देने पर उसे उत्तर मिला—"अमुक नम्बर की नयी बस्ती में,......नम्बर की सड़क,......नम्बर गली की......नम्बर चाल में......मंजिल में......इतने नम्बर का फ्लैट......तारीख से तुम्हारे नाम कर दिया गया है।" यह सज्जन मकान के लिये इतना उतावला था कि तारीख आने पर सुबह आठ-नौ बजे ही वह नयी बस्ती में सड़क, गली ढूंढ़ कर मकान के स्थान पर पहुँच गया। देखा कि इमारती सामान पड़ा है और चार-पाँच आदमी फीते लिये नाप-जोख कर रहे हैं। उसे बहुत निराशा हुई। यह भी खयाल आया कि गलत जगह न पहुँच गया हो। आस-पास पूछ-ताछ की तो जगह ठीक ही थी। आखिर नाप-जोख करते मज़दूरों को कागज दिखाकर पूछा, "यहाँ मेरे नाम पर मकान दिया गया है लेकिन मकान तो दिखाई नहीं देता।"

मजदूरों के मेट ने आज्ञा-पत्र देखने के लिये मांगा और कागज के नीचे अंतिम पंक्ति पर उंगली रखकर कहा—"इसमें स्पष्ट लिखा है कि मकान में संध्या छः बजे प्रवेश किया जा सकता है। आप सुवह आठ बजे मकान ढूंढ़ रहे हैं। संध्या छः बजे मकान न मिलने पर शिकायत कीजियेगा !"

चेकोस्लोवाकिया में सांस्कृतिक कार्यक्रमों की लहर-बहर रहती है। मेरी इच्छा थी जैसे स्लोवाकिया के जाब्रिवा स्थान में ठेठ दिहाती नृत्य-संगीत देखा था वैसा ही यहाँ मोराविया में भी देखने का अवसर हो तो जरूर देख लिया जाये। गोथवाल्डोव से प्रायः आठ-दस मील दूर एक गांव में नवयुवक एक कार्यक्रम की तैयारी में सध्या समय रिहर्सल किया करते थे। सोचा, वहीं देख आयें। गांव में भी एक छोटी-सी रंगशाला थी। पास-पड़ोस के नौजवान और युवतियां रिहर्सल के लिये इकट्ठे हुए थे। दो-चार की प्रतीक्षा थी। हमारे पहुँच जाने से कोलाहल शांत हो गया। मैं उनका नृत्य संगीत देखने गया था परन्तु उन्हें मेरे प्रति और भी अधिक कौतूहल था। उन लोगों ने शायद भूरे रंग का आदमी पहली बार ही देखा था, तिस पर जादू की दुनिया का भारतीय और वह भी लेखक। यह प्रान्त देहात होने पर भी स्लोवाकिया की तुलना में बहुत आधुनिक था परन्तु उनके वाद्य यंत्र किसी प्राचीन संग्रहालय से निकालकर लाये गये जान पड़ते थे। पूरे आदमी के कद का तानपूरा और बैगपाइप जैसी शहनाई। ऐसी शहनाई के थैले में साधारणतः हवा मुख से भरी जाती है और थैले में दो या तीन शहनाइयां जुड़ी रहती है। यहाँ की शहनाई में हवा भरने के लिये छोटी सी लुहार की धौकनी जुड़ी हुई थी। बजाने वाला एक बांह के नीचे धौंकनी दबाये बांह से हवा भरता जाता था। उंगलियां दूसरी बगल में दबे थैले से लगी शहनाई पर चल रही थीं और मुख से गा भी सकता था।

कई स्थानीय लोक गीत सुने। वे स्थानीय नृत्य दिखाने के लिये स्वयं ही उत्सुक थे परन्तु पूर्व सूचना न होने के कारण पोशाकों का प्रबंध नहीं किया गया था। कुछ लड़कियां, काम-काज के समय जैसी ढीली पतलून पहने रहती हैं, वैसी ही पहने चली आई थीं। कुछ फ्रांक पहने थीं। नौजवान भी साधारण कमीज-पतलून में थे। उन्होंने क्षमा मांगी कि स्थानीय पुरानी पोशाक के बिना नृत्य का क्या आनन्द आयेगा और नाचने भी लगे।

लड़कियों का यह तकाजा था, बल्कि स्थानीय आचार के अनुसार उनका अधिकार था कि अतिथि उनके साथ नाचे। परन्तु अतिथि करता क्या? उनकी यह इच्छा पूर्ण न कर सकना उनके सत्कार और आतिथ्य का अनादर जान पड़ रहा था। उस वातावरण में यह कह देना कि नाचना मेरा काम नहीं है, बहुत बड़ी अशिष्टता होती। व्यर्थ में दुहाई देने से भी काम नहीं चल सकता था। कहना पड़ा, पीठ में बहुत तकलीफ है। डाक्टर ने बिलकुल मना कर दिया है। अपने देश में लोगों को इस बात के लिये गर्व करते देखा है कि उन्होंने सिनेमा कभी नहीं देखा। समझ नहीं सका कि किसी अज्ञान के लिये क्या गर्व किया जाय! नाचना आने के कारण जाने कितनी बार मेरे व्यवहार कितने लोगों को अशिष्ट जान पड़ा है। मिलाना, मेरिया और मिलादा सभी को मेरे विलकुल न नाच सकने के कारण कुछ कुंठित होना पड़ा। इस विषय में सोवियत में भी अनुभव अच्छा नहीं हुआ। सोची सैनाटोरियम में पहली ही रात भोजनालय की मैनेजर ने साथ नाचने का अनुरोध किया था। नाचना न आने के लिये क्षमा मांगी तो मुस्कराहट से उत्तर मिला—"नहीं आता, आओ मैं खुद सिखा लूंगी।" अभिप्राय था—संकोच कर रहे हो शुरू करोगे तो नाचने ही लगोगे।

भोजनशाला की मैनेजर से किसी प्रकार छुट्टी पाई थी कि सैनाटोरियम की बड़ी डाक्टर आ गई। वह कुछ कहे विना ही बांह में हाथ डालकर नाच के स्थान की ओर ले चली। बहुत अनुनय से कहा—"नाचना जानता नहीं।"

डाक्टर ने विस्मय से पूछा—"सच!' और बोली, "नाचना नहीं जानते तो यहाँ खड़े क्यों हो? आओ, बिलियर्ड के कमरे में चलकर खेले।"

जब विवशता में बिलियर्ड से भी अज्ञान की सात्विकता की घोषणा की तो उत्तर दिया—"अजब आदमी हो; कुछ जानते भी हो? तभी तो सेहत ऐसी है। नहीं जानते तो आओ मेरी शागिर्दी करो।" कान पकड़कर खींचे जाते बकरे की तरह बिलियर्ड के कमरे में जाना ही पड़ा। कई दिन खेलते रहने पर समझ आया कि बिलियर्ड निरा नखरा ही नहीं, अच्छी खासी कसरत भी है। हमारे यहाँ लखनऊ में विलियर्ड केवल बड़े रईसों के लिये दो-तीन जगह ही हैं इंगलैंड में भी विलियर्ड महंगा खेल है परन्तु समाजवादी देशों में सभी मजदूर क्लबों में विलियर्ड और नृत्य का प्रवन्ध रहता है।

कुछ नवयुवक और नवयुवतियां नाच दिखाते रहे। एक युवक और युवती चुपके से खिसक गये थे। वे कहीं पड़ोस से पुराने ढंग की पोशाकें मांगकर पहन आये। उन्हें बीच में लेकर नाच खूब वेग से होने लगा। मालूम होता है ये पोशाकें बहुत ही पुराने नमूनों को

देखकर बनाई गई होंगी। पोशाकों की सफाई की ओर ध्यान न दिया जाये तो कुल्लू घाटी और तिब्बत की पोशाकों का मेल ही मोराविया की पुरानी राष्ट्रीय पोशाक समझी जानी चाहिये। सम्भव है, किसी समय दोनों स्थानों की पोशाकों का स्रोत एक ही समाज रहा हो।

दूसरे दिन प्रातः नाश्ते के बाद गोथवाल्डोव से लगभग चालीस मील दूर एक कस्बे में ग्रामोद्योग केन्द्र देखने गये। यों तो चेकोस्लोवाकिया का शीशे और चीनी मिट्टी का आधुनिक काम संसार भर में प्रसिद्ध है परन्तु यहाँ उसके प्राचीन रूप को बनाये रखने का भी यत्न है। इस केन्द्र में चीनी मिट्टी नहीं, साधारण चिकनी मिट्टी से ही बर्तन और खिलौने बनाये जाते है। अपने यहाँ के कुम्हार के चक्के जैसा चक्का यहाँ भी विद्यमान है। यहाँ का कुम्हार स्टूल पर बैठकर चक्के को जूते की ठोकर से चलाता है और गीली मिट्टी के छींटों से बचने के लिये मोटे कपड़े का एक आंचल कंधों से लेकर पिंडलियों तक लटकाये रहता है। मिट्टी से बनाये पदार्थों को पकाने के लिये भट्टियां बिजली की हैं। मिट्टी के काम के अतिरिक्त यहाँ सूखी घास या वृक्षों की छाल से टोकरियां, थैले आदि बनाने का भी काम होता है। एक बड़ा विभाग कसीदे-कढ़ाई का है। इस विभाग का संग्रहालय बड़े-बड़े एलबमों से भरा है। पुराने समय के कसीदे-कढ़ाई किये कपड़ों के टुकड़े या चीथड़े बहुत यत्न से सहेज कर एलबमों में रखे हुए हैं। पुराने ढंग पर नये नमूने भी बनाये जाते हैं। यहाँ जितनी चीजें बनती हैं, सब शौक की हैं और उनके दाम भी काफी अधिक हैं परन्तु घर की सजावट के लिये लोग उन्हें खूब खरीदते हैं।

गोथवाल्डोव की ओर लौटते समय मार्ग में ओत्रोकोवित्से गांव में संयुक्त कृषि क्षेत्र की पशुशाला देखने के लिये ठहर गये। पशुशाला बिलकुल आधुनिक वैज्ञानिक ढंग की है। दूध मशीनों द्वारा दुहा जा रहा था। यूरोप में दूध को उबालने का रिवाज कही भी नहीं है। दूध को खास मात्रा तक ताप देकर खूब ठंडा कर मोहरबन्द कर दिया जाता है। पशुओं के पालने का ढंग भी वैज्ञानिक है और योजना के अनुसार किया जाता है। बछड़े-बछड़ियों के माता-पिता के गुण ध्यान में रखकर और पहले चार-छः मास में उनकी उठान देखकर उनका उपयोग निश्चय कर लिया जाता है। बछिया तो दूध के लिये ही रखी जाती है। बछड़ों को आरम्भ से ही चुन लिया जाता है। सबसे अच्छे बछड़े वंशवृद्धि के लिये चुनकर यत्न से पाले जाते है। ऐसा एक छः मास का बछड़ा लगभग मेरे कंधे तक पहुँच रहा था। दूसरों को माँस के लिये पाला जाता है। गाय के पाँच-छः बार ब्या जाने पर उसे बूढ़ी समझकर माँस के लिये भेज दिया जाता है। इस पशुशाला में गाय प्रतिदिन औसतन अठारह-बीस सेर दूध देती है। गौओं की वंशवृद्धि के क्रम और उनकी खुराक पर ध्यान देने से दूध की मात्रा पिछले वर्षों में बढ़ गयी है और भविष्य में और भी आशा है।

इस पशुशाला के लोगों को शिकायत है कि वे अपनी पशुशाला में पशुओं की संख्या दो सौ-पचास से अधिक नहीं बढ़ा सकते। घोड़े भी केवल अठाइस हैं। कारण, क्षेत्र की भूमि केवल चार सौ पचास हेक्टर (हजार एकड़) है। पशुओं की संख्या बढ़ने से, उसके पर्याप्त भोजन न पाने पर उनके दुर्बल हो जाने की आशंका है। इन लोगों के विचार में

पशुओं को दुर्बल रखना उनके प्रति निर्दयता है और अपने हित की हानि भी है। हमारे यहाँ इतनी भूमि पर इससे आठ-दस गुणा अधिक पशु तो सभी जगह हैं। हिन्दुस्तान और पाकिस्तान का बंटवारा हो जाने के पश्चात् से तो बूढ़े पशुओं की समस्या और भी विकट हो गई है। भारतवर्ष में अठारह-बीस सेर दूध देने वाली नसल की गाय-भैंस अप्राप्य नहीं हैं परन्तु उनके भूखे रहने के कारण उनका दूध घटता जा रहा है। हमारे यहाँ देहात में गाय प्रायः पाव-आधा सेर दूध देती है। बहराइच जिले में तो पशुओं की संख्या इतनी बढ़ गई है कि उनके चरने के लिये स्थान ही नहीं है। इन पशुओं के शरीर केवल त्वचा से मढ़े हुए कंकाल-मात्र जान पड़ते हैं। उत्तर प्रदेश में गोबध कानूनन बन्द हो जाने से कई जिलों में गाय का मूल्य बकरी से भी कम हो गया है। लोग गौमाता को पालने से भयभीत हैं कि एक बार गले पड़ी तो छुटकारा कैसे होगा? गाय के प्रति श्रद्धा की यह क्या विडम्बना है। चेकोस्लोवाकिया के लोगों के विचार में पशु को ऐसी अवस्था में रखना उसे आमरण भूखे रखने की निर्दयता है और अच्छा दूध दे सकने वाले पशुओं के प्रति भी अन्याय है।

गोथवाल्डोव से प्राहा के लिये संध्या छः बजे विमान चलता है। दोपहर के भोजन के पश्चात् ऊँघते रहने की अपेक्षा एक चक्कर लुहाचोवित्सा के स्वास्थ्य-प्रद स्रोतों का ही लगा आये। मार्ग में कुछ बस्तियां अभी तक बिलकुल पुराने ढंग की स्लोवाक प्रदेश जैसी हैं, वैसी ही जैसी हमारे यहाँ के पहाड़ी प्रदेशों—अल्मोड़ा या कांगड़ा आदि में हैं। घर एक पांत में एक-दूसरे से बिलकुल मिले हुए। इसे हमारे पहाड़ों में बखरी कहते हैं। अब इस ढंग को बदल कर बीच में सब्जी-तरकारी और फुलवाड़ी की जगह छोड़कर मकान बनाने का ढंग अपनाया जा रहा है। स्त्री-पुरुषों की पोशाकें भी दोनों ढंग की दिखाई दे जाती हैं। पुराना ढग यानि चुटिया या जूड़े में सिमटे लम्बे केशों पर कसकर रूमाल बंधा हुआ, कसीदा की हुई कुर्ती और घाघरा। नये ढंग की लड़कियों के बाल प्रायः गर्दन तक छंटे रहते हैं। सिर पर से रूमाल गायब। कम घेरे का फ्राक या बनियान और पतलून। खेतों में काम करती लड़कियां बनियान, निकर और रबर के घुटने तक ऊंचे बूट पहने भी दिखाई देती हैं।

लुहाचोवित्सा गोथवाल्डोव से लगभग बीस मील पर्वतीय घाटियों की खूब हरी-भरी अंजली में छोटी-सी परन्तु बहुत रमणीक बस्ती है। स्रोत यहाँ भी कार्लोविवारी की तरह हालों से ढके हुए हैं। घूमने-फिरने आने वालों के लिये खूब प्रशस्त बरामदे दूर तक बने हैं। बेंचें, कुर्सियां लगी हुई हैं। दूर स्थानों से नल द्वारा पानी और गैस पहुंचाने का प्रबन्ध तो बहुत स्थानों में देखा है परन्तु लुहाचोवित्सा में घने वनों से ओषजन (आक्सीजन) भरी ताजी वायु भी नलों द्वारा स्वास्थ्य भवनों (सैनीटोरियम) में पहुंचाई जाती है। यहाँ बहुत से ऐसे रोगी भी चिकित्सा के लिये आते हैं जो वनों में घूम सकने में असमर्थ होते हैं। नलों द्वारा प्राकृतिक ओषजन स्वास्थ्य भवनों में पहुंचा देने से वे भी ऐसी वायु से लाभ उठा सकते हैं।

विमान के अड्डे पर कुछ मिनट जल्दी ही पहुँच गये थे। एक-एक प्याली काफी ले रहे थे। मेरे ही जैसे भूरे रंग के और लहीम-शहीम एक व्यक्ति ने समीप आकर अंग्रेजी में कहा—"एक मिनट के लिये आपके साथ बैठ सकता हूं?"

यही समझा कि कोई भारतीय है या ईरानी। पूछा—"आप भी भारत से ही हैं न?"

उत्तर मिला, "नहीं न्यूयार्क से हूं। मैं गायक हूँ।"

सज्जन के नखशिख और रंग नीग्रो लोगों जैसे नही थे। समझा, यूरोपियन और नीग्रो रक्त मिश्रण है।

"आप तो भारतीय हैं न?" वह सज्जन बोला, "आपको एस्प्लेनेड होटल में भी देखा था। शायद आप मेरी समस्या सुलझाने में सहायता दे सकें। न्यूयार्क में मेरा एक भारतीय मित्र था। सात वर्ष पूर्व उसका देहान्त हो गया था। उसकी अस्थियां अभी तक मेरे पास है। मैंने सुना है, भारतीय लोग चाहते है कि मृत्यु के पश्चात् उनकी अस्थियों का प्रवाह गंगा नदी में किया जाये। क्या यह सम्भव हो सकता है कि मै अस्थियो को भारत भेजने का प्रबन्ध कर दू और आप उन्हें गंगा तक पहुंचा देने की व्यवस्था कर दें?"

सज्जन को समझाया—"मै गंगा तट पर नही रहता हूँ और यह सब बात विश्वास की ही है। हिन्दू लोग पुनर्जन्म में भी विश्वास करते है। आपके मित्र के विश्वास में यदि तथ्य है तो अब तक उसकी आत्मा ने कोई शरीर धारण कर ही लिया होगा। भगवान ने उनकी विदेश में देह त्याग की विवशता का ध्यान रख उन्हे कोई न कोई ढाचा दे ही दिया होगा। गंगा के माध्यम से यदि उनकी पुरानी अस्थियां उन्हे मिल भी जायेंगी तो वे अब उनका क्या उपयोग कर सकेगे? उन अस्थियों को न्यूयार्क की धरती या किसी नदी समुद्र को ही अर्पण कर दीजिये।

आठ जून दोपहर दो बजे इंडिया-इंटरनेशनल के विमान में स्थान रखवा लिया था। डा० स्मेकल से खूब आत्मीयता हो गई थी। वे पिछले संध्या ही आश्वासन दे गये थे कि मैं सामान समेटने-बांधने के विषय में चिंता न करूं। वे आकर सब करा देंगे। वे सुबह आठ बजे ही आ पहुचे। एक बार लेखक संघ के कार्यालय में लेखकों से विदाई लेने गये।

डा० स्मेकल ने बता दिया था कि मुझे असुविधा न हो तो बारह बजे होटल में ही रहूं। सांस्कृतिक मंत्री डा० क्रासा की इच्छा थी कि मेरे प्राहा से चलने से पहले हम लोग एक साथ भोजन करें। डेढ मास मे दो बार पहले भी डा० क्रास्ता से भेंट हो चुकी थी। जानता था, उन्हें कितना काम रहता है। चेकोस्लोवाकिया मे जितनी सांस्कृतिक चहल-पहल हो, उतना ही उनका काम बढ़ना स्वाभाविक था। इस समय प्राहा में वसंतोत्सव हो रहा था। बहुत से देशों से सांस्कृतिक शिष्ट मंडल आये हुए थे। डा० क्रास्सा सौजन्य के नाते प्रायः सभी शिष्ट मंडलों के स्वागत और विदाई के लिये विमान के अड्डे पर पहुंचने का यत्न करते थे। अपनी या अपने कार्यालय की गाड़ियां आवश्यक कामों के लिये चली जाने पर उन्हें किराये की टैक्सी में ही विमान अड्डे की ओर भागते देखा है। मंत्री का

टैक्सी में घूमना दूसरे देशों में सम्भवतः सरकारी आचार और सम्मान के अनुकूल न समझा जायेगा।

डा० क्रास्सा कुछ समय भारत में रह गये हैं। हिन्दी भी बोल लेते हैं। बोलते कम ही हैं परन्तु बोलने के ढंग से समझा जा सकता है कि हिन्दी भाषा का ज्ञान उन्हें है। जब भी मैं विदेशों में हिन्दी के प्रति लोगों की रुचि और प्रयत्न की बात करता हूँ आशंका रहती है कि हमारे कुछ साथी समझ बैठेंगे कि हिन्दी के प्रति उनकी इस रुचि और प्रयत्न का कारण हिन्दी का अपना सौन्दर्य और उसमें प्राप्य अगाध ज्ञान ही है। यह मिथ्या अहंकार हिन्दी प्रेमियों के लिये घातक होगा। हमारी भाषा का साहित्य और उसमें प्राप्त ज्ञान उन लोगों की भाषाओं की तुलना में बहुत पिछड़ा हुआ है। हिन्दी के प्रति इन लोगों की रुचि का कारण उनकी अपने सास्कृतिक सम्बन्धों को बढ़ाने और फैलाने की इच्छा है और यह उनके अपने लाभ के लिये है। हिन्दी भाषियों का लाभ उन लोगों के हिन्दी सीख लेने में नहीं बल्कि हम लोगों के उनकी भाषायें सीख सकने में है। अन्यथा हमारे सांस्कृतिक सम्वन्धों की कुंजी उन्हीं के हाथ में रहेगी और हमारी सांस्कृतिक न्यूनतायें अधिक होते हुए भी हमारे लिये लाभ का अवसर भी कम ही रहेगा।

डा० क्रास्सा, डा० स्मेकल, लेखक संघ की तान्या और मि० यौरिस विमान अड्डे पर साथ आये और विमान चलने तक वहाँ बने भी रहे। यह समझता हूँ कि उनकी इस सहृदयता का अधिकारी मैं व्यक्तिगत रूप से तो क्या हो सकता हूँ, उनकी सहृदयता भारत के प्रति ही थी। ज्यों-ज्यों भारत और पूर्वी प्रजातंत्रों में परिचय और व्यक्तियों का आना-जाना बढ़ेगा हमारे देश परस्पर समीप आते जायेंगे और यह सम्पर्क अन्तर्राष्ट्रीय रूप से सांस्कृतिक वृद्धि के लिये सहायक हो सकेगा।

काबुल

प्राहा में लेखक कांग्रेस के समय जर्मन कवि जिमरिंग से परिचय हुआ था। प्रसंग में बात चली कि मैं कुछ समय के लिये जर्मनी जा सकूंगा या नहीं। बर्लिन देखने की उत्सुकता मुझे स्वयं थी। तीसरे-चौथे दिन ही प्राहा में पूर्वी जर्मनी के राजदूतावास के एक सज्जन ने आकर बात की—"प्राहा से बर्लिन नित्य एक एक्सप्रेस जाती है। रेल से आठ-नौ घण्टे का सफर है, विमान से लगभग एक घण्टे का। मैं कैसे जाना पसन्द करूंगा ?"

निमन्त्रण देने वालों के सौजन्य पर विमान यात्रा का भारी खर्चा डालते मन में संकोच तो हुआ परन्तु रेल और सड़क से एक देश की सीमा की चौकी लांघकर दूसरे देश में प्रवेश करने के दो-तीन अनुभव पहले कर चुका हूं। उसमें कुछ न कुछ उलझन अवश्य होती है। विशेषकर ऐसी उलझन हुई थी पाकिस्तान की सीमा पार कर अफगानिस्तान में प्रवेश करते समय। विमान छोड़कर सड़क से अफगानिस्तान की यात्रा अनुभव के लोभ से ही की थी। इस यात्रा में पत्नी भी साथ थी। विशेषकर पत्नी को साथ लेकर सड़क से अफगानिस्तान जाना सभी लोगों को दुस्साहस जान पड़ा इसलिये प्रसंग तोड़कर वह बात भी लिख रहा हूं।

दिल्ली से हेलसिंकी जाते समय आरम्भ में विचार काबुल और मास्को के रास्ते विमान से ही जाने का था। अवसरवश दिल्ली में पाकिस्तान के राजदूतावास के एक सज्जन से भेंट हुई। उन्होंने उलाहना दिया—"भारतीय लेखक हेलसिंकी-मास्को की ही बात सोचते हैं। ......खासकर पंजाबी लेखकों को तो लाहौर-पेशावर नहीं भुला देना चाहिये।"

मैंने उत्तर दिया—"पाकिस्तान का परवाना राहदारी मिल सके तब न !"

आधे घण्टे में ही मुझे सपत्नीक पाकिस्तान में से यात्रा करने का अनुमति-पत्र मिल गया। विमान में रखवाई हुई जगह कटवाई और रेल से पेशावर तक और पेशावर से आगे सड़क से यात्रा के लिये कमर बांध ली।

दिल्ली में पाकिस्तानी राजदूतावास के जिन सज्जन ने मुझे पेशावर के मार्ग से अफगानिस्तान जाने के लिये उत्साहित किया था, वे यशपाल को लेखक के ही रूप में जानते थे। पेशावर में जिन पुलिस अफसरों से पाकिस्तान की सीमा लांघकर अफगानिस्तान में प्रवेश की अनुमति का पत्र लेना था, वे हिन्दी के लेखक यशपाल को तो कम परन्तु लाहौर षड़यन्त्र के मामले में, भगतसिंह के साथी और बहुत दिन फरार रहने वाले खतरनाक यशपाल को ही अधिक पहचानते थे। पुरानी फाइलें उलट-पलट कर देखी जाने लगीं।

पेशावर में पुलिस के अफसरों को सुझाव दिया, यदि मुझे पाकिस्तान से अफगानिस्तान में प्रवेश का अनुमति-पत्र न दिया जाय तो मैं पाकिस्तान में फिर साढ़े तीन सौ मील यात्रा कर भारत लौटूंगा। अफगानिस्तान जाने के लिये तो केवल पैंतीस मील का ही सफर मुझे पाकिस्तान में करना होगा। अस्तु, पाकिस्तान की सीमा लांघकर अफगानिस्तान की सीमा में प्रवेश की आज्ञा तो मिली परन्तु पेशावर से विदाई के समय काफी खुफिया पुलिस मौजूद थी। इन पैतीस मील के आधे में जमरुद के किले पर मोटर लारी के पहुँचते ही सशस्त्र पुलिस सिपाहियों ने स्वागत किया—"हिन्दुस्तानी जर्नलिस्ट यशपाल कौन है?" और अफसरों के बहुत से सशंक प्रश्नों का समाधान करना पड़ा।

अंतिम चौकी लण्डीखाना पर और भी सतर्कता दिखाई दी। मैं, मेरी पत्नी और अफगान प्रजा का एक सिक्ख परिवार एक साथ यात्रा कर रहे थे। चौकी के लोगों ने बहुत कड़ी निगाह से हमारी जांच-परख की। उस समय इसके लिये कारण भी था। उन दिनों पाकिस्तान और अफगानिस्तान में कुछ अधिक तनातनी चल रही थी। अमरीकन जान पड़ने वाले अफसरों और सशस्त्र पाकिस्तानी सिपाहियों से भरी जीपें तेजी से सीमान्त और पेशावर के बीच आ-जा रही थी।

चौकी चुगी की जाच-पड़ताल समाप्त हो जाने पर हम लोग सीमान्त के सूखे नाले और फर्लांग भर की लावारिस धरती अर्थात् 'नोमैन्स लैड' को पार करने का उपाय सोच रहे थे। पाकिस्तान और अफगानिस्तान में तनातनी के कारण इस ओर की सवारियां उस ओर, और उस ओर की सवारियां इस ओर नहीं आ-जा सकती थी। हम लोग एक गधे वाले से असबाब दूसरी ओर पहुंचा देने का सौदा कर रहे थे कि पाकिस्तानी सैनिकों ने चेतावनी दी—"पहले सियासी चौकी से इजाज़त ले लो तब उधर जाने की बात करना।"

धक्का सा लगा, क्या यहाँ तक आकर भी लौटना पड़ सकता है! सिपाहियों के साथ फूस की छत से ढके सफ़ेदी किये छोटे बगले में पहुचे। सिपाही जांच करने वाले अफ़सर कुछ मिनट बाद आये। गहरा चश्मा लगाये, दुबले-पतले नौजवान थे, चेहरे पर अफ़सरी की खुश्की। मुझे हैट-पतलून पहने देखकर पहले मुझे ही सम्बोधन किया—"पासपोर्ट!"

मेज के समीप खड़े-खड़े पासपोर्ट उनके सामने बढ़ा दिया। उन्होंने पासपोर्ट को गौर से देखा—"आप जर्नलिस्ट और आथर हैं। नाम ......यशपाल?"

"जी।"

"तशरीफ़ रखिये।" उन्होंने कुर्सी की ओर सकेत किया और चेहरे का भाव बदल गया।

"आप फिसाना नवीस (कथाकार) भी तो हैं?"

स्वीकार किया—"जी हां।"

अफसर बोले—"मुझे याद है, आपकी कुछ कहानियों का अनुवाद मैंने उर्दू में पढ़ा है। बहुत अच्छी कहानियां थीं। इस इलाके में आप कुछ समय ठहर कर इसे देखते तो यहाँ काफी लिखने योग्य सामग्री पा सकते थे।"

सड़क पार सामने एक ऊंचे टीले की ओर उन्होंने संकेत किया—"मेरे विचार में खुदाई हो तो इस टीले के नीचे बहुत सी ऐतिहासिक सामग्री मिल सकेगी। जब भी वर्षा होती है, जानवर चराने के लिये वहाँ जाने वाले लड़कों को कई चीजें, उदाहरणतः पकाई हुई मिट्टी के छोटे-छोटे खिलौने, नक्काशीदार बर्तनों के टुकड़े वहाँ धरती से निकले मिलते हैं। यह चीजें बौद्धकाल की मालूम होती हैं। आपको जल्दी न हो तो एक प्याला चाय पीजिये!"

चाय के लिये उनसे क्षमा मागी। विचार प्रकट किया—"सीमा के उस पार क्या होगा; कुछ मालूम नहीं। सवारी कैसे कब मिलेगी; इसका भी भरोसा नहीं। जितना जल्दी पहुँच जायें, अच्छा ही होगा।"

"आपका विचार ठीक है।" उन्होंने स्वीकार किया, "एक मिनट तो ठहरिये, अभी हाजिर होता हूं।" वे भीतर चले गये। एक ही मिनट वाद लौट आये। अजली चमेली के फूलों से भरी थी। वोले, "यह मेरी शुभकामना के रूप में स्वीकार कीजिये। याद रहे तो कभी इस इलाके के बारे में भी लिखियेगा।" सीमान्त लाघने की अनुमति की मोहर पासपोर्ट पर लगा दी गई।

सीमान्त की लावारिस या अनाथ भूमि को कडी धूप में एक कुत्ते की ऊँचाई के गधे पर असबाव लादकर पार किया। अफ़गान सीमा में फिर पासपोर्ट और प्रवेश का अनुमति पत्र दिखाने की रीति हुई। यहाँ पाकिस्तान और भारत की सीमाओं की तरह चुस्त चौकी-चुगी और चुस्त वर्दी पहने सिपाही न थे, न उतनी सतर्कता। बेपरवाही से फटी-सी वर्दियां पहने सिपाही मजनू के पेडो के नीचे खाटों पर बैठे और लेटे थे। मिट्टी का हुक्का बोल रहा था। चुंगी-चौकी का दफ्तर एक छप्पर की छत की उदास-सी कोठरी मे था। एक हिलती हुई मेज और वैसी ही वेंच। हमारे साथी सरदारजी दो-तीन बार पहले भी यहाँ पासपोर्ट दिखा चुके थे। उन्ही ने सब रस्में पूरा करा दी।

यहाँ नियमित रूप से कोई सवारी उन दिनों नहीं आती जाती थी। पेशावर से लंडीखाना तक दर्रा खैबर को पार करती रेल की लाइन तो है ही उसके अतिरिक्त समानान्तर दो बहुत बढिया सडके भी हैं। आवश्यकता के समय सेनाओं और सामान का आना-जाना अविराम हो सकता है। यह सब प्रबंध भारत की रक्षा के लिये ब्रिटिश सरकार ने किया था। अफगानिस्तान की सीमा में प्रवेश करने पर सडक के नाम पर मोटर-लारियों के आने-जाने से बन गई लकीरे ही थीं, जहाँ-तहाँ छोटे-बड़े पत्थरों से भरी हुई। अब अफगानिस्तान की सरकार भी आवश्यकता समझकर सडकें बनवाने का यत्न कर रही थी। यहाँ से पाच-सात मील दूर सडक बनाने वालो का एक कैम्प था। कैम्प के लिये पानी लेने के लिये एक ट्रक आता-जाता था। सौभाग्य से तुरत ही ट्रक मे रखे पानी के दस-बारह पीपों के साथ ही हम लोग भी असवाब रखकर उस पर बैठ गये। झकोलों के कारण बैठते न बना तो ट्रक पर वर्षा के समय तिरपाल डालने के लिये लगी लोहे की छड़ों को पकड़कर खड़े हो गये। यह सवारी अफगान सीमा के भीतर बीस मील ढक्का गांव तक ही गई।

ढक्का में बस्ती के सब घर मिट्टी की दीवारों के ही हैं। केवल सरकारी तहसील की इमारत पक्की है। गांव ढक्का नदी के किनारे पहाड़ियों के आंचल में हैं। निर्मल नीले आकाश के नीचे प्राकृतिक दृश्य सुन्दर हैं। नदी के किनारे मजनू के वृक्षों का उपवन है। सरदारजी इस गांव में पहले रह चुके थे। वे अपनी दुकान और लेन-देन के अतिरिक्त गांव में सबसे रईस होने के नाते सरकारी लगान जमा रखने का भी काम करते थे। उनका रोब और रसूख भी था। यहाँ भी पासपोर्ट और अफगानिस्तान में प्रवेश का अनुमति-पत्र दिखाना जरूरी था। मैं तहसील के बरामदे में ही खड़ा रहा। सरदारजी मेरा, प्रकाशवती का और अपने परिवार के पासपोर्ट लेकर आगे बढ़े। अफसर की खिड़की से तीन हाथ दूर से ही कमर झुकाकर लम्बा सलाम किया और फिर फौजी सलूट भी लिया और सब पासपोर्टों पर मोहर लगवा लाये।

सरदारजी को स्वयं ही जलालाबाद पहुंचने की जल्दी थी। वे इस प्रदेश से परिचित भी थे। बोले—"चलिये टेलीफोन करके पता लें कि कहीं से कोई लारी या ट्रक इस ओर आ सकता है या नहीं।"

मिट्टी की दीवारें और धन्नियों पर थमी वैसी ही छत। भीतर एक ओर ढलकी हुई मेज और उस पर एक बक्से में बैटरियां और पुराने ढंग का टेलीफोन। मेज के समीप दरारें पड़े तख्ते जड़कर बनाई बेंच पर मुंडे सिर और सफेद दाढ़ी वाला पठान उकडू बैठा फोन के चोंगे में पश्तों में चिल्ला रहा था। यह ढक्का का 'टेलीफोन एक्सचेंज' था। सरदारजी ने परिचय के अधिकार से कहीं से लारी या ट्रक के इधर आ सकने के विषय में पता करने के लिये अनुरोध किया।

खान ने झल्ला कर कहा—"क्या पता लें। फोन मिल ही नहीं रहा है। सीमान्त पर फौजी टुकड़ियां फैली हुई हैं। वे लोग टेलीफोन को पल भर के लिये छोड़े तव तो।" अव समझ में आया हम कैसी अवस्था में पृथ्वी के झगड़ों से ऊपर ही ऊपर उड़ जाने वाली विमान की सुरक्षित यात्रा छोड़कर सड़क के अनुभव प्राप्त करने आये हैं पर अब तो आ चुके थे।

सरदारजी के पूर्व परिचितों ने नदी किनारे मजनू के उपवन में कुछ पलंग और खाटें पहुंचा दी थीं। कुछ खरबूजे और रोटी भी ले आये थे। जून का महीना था। देहली और लाहौर में लू हु-हू कर धूल उड़ा रही थी परन्तु इस बर्फानी नदी के किनारे मजनू के उपवन में वसन्त की प्यारी हवा चल रही थी। गांव के दूसरे बहुत से लोग भी अपनी खाटें लेकर मजनू के छांव में सो रहे थे परन्तु मर्द ही, स्त्री एक भी नहीं। स्त्रियां उस दोपहर में भी घरों में बन्द थीं।

सरदारजी प्रायः पिछली पीढ़ी से यहाँ हैं परन्तु छुआछूत के नियम में कट्टर हैं। अफगानिस्तान में सभी हिन्दू-सिखों मे यह कट्टरता है। सम्भवतः इसी कट्टरता से वे अपना हिन्दूपन बचाये है। अस्तु हमने कुछ रोटी भी खाई और खरबूजे भी।'सरदारजी फिर मुझे साथ ले लारी या ट्रक का पता लेने गांव में घूमने चल दिये। गांव में घूमते समय बच्चों में छः-सात बरस की दो-तीन लड़कियां ही दिखाई दीं। पर्दे का अनुशासन इस गांव में

बहुत कड़ा था। सरदारजी की पत्नी और दो बच्चे भी साथ थे। पेशावर में चलते समय ही सरदारजी ने अपना सिर मुंह और शरीर एक खूब बड़ी चादर में लपेट लिया था। उसने प्रकाशवती को बताया कि अफगानिस्तान में रहते समय उन्हें भी बुरका पहनना पड़ता है। कोई भी स्त्री बिना पर्दे के दिखाई नहीं देती। प्रकाशवती के मुंह न ढकने से सभी लोगों की आँखें बहुत विस्मय से उसकी ओर टिक जातीं। विवश हो उसे भी घूघट निकाल लेना पड़ा। उस परिस्थिति में कुसंस्कारों की उपेक्षा कर अपनी धारणा पर दृढ़ रहने का साहस करते न बना।

अवसरवश एक और ट्रक आ पहुँचा। यह ट्रक जलालावाद वापस लौट रहा था। सरदारजी ने ट्रक के मालिक को लम्बा सलाम कर बातचीत की। मेरी ओर इशारा कर भी कुछ कहा। कुछ छोटा कद, कुछ मैले सलवार-कमीज, रोयेंदार खाल की टोपी और धूप का चश्मा पहने यह कोई बड़ा खान या प्रभावशाली व्यक्ति था। सभी लोग उससे तीन-चार हाथ की दूरी पर खड़े होकर और झुक-झुककर बात करते थे। सरदारजी ने काम बना लिया।

खुले ट्रक पर पहले हमारा असबाब रखवाया और फिर सरदारजी का। प्रकाशवती और मेरे लिये सरदारजी के बंधे बिस्तरों पर बैठने की जगह बनाई गई। फिर सरदारजी के परिवार के लिये, तब खान का अमला ट्रक की जमीन पर लद गया। खान स्वयं ड्राइवर के साथ बैठा।

दो पर्वतमालाओं के बीच की पथरीली घाटी में से पश्चिम की ओर चले जा रहे थे। सड़क की लकीर कभी ढक्का नदी के किनारे चलती कभी फेर बचाने के लिये कुछ दूर सीधे। बस्तियां कम और दूर-दूर थीं। फसल उजड़ी-उजड़ी सी। दक्षिण ओर की पर्वतमाला पर स्थान-स्थान पर गढ़िया दिखाई दे जाती थीं। गढ़ियों की दीवारों में आत्मरक्षा के लिये मोर्चे बने हुए थे। मार्ग में पांच-सात बंदूकचियों के साथ एक और खान दिखाई दिये। ट्रक रुक गया। सरदारजी से मालूम हुआ कि यह इलाके के थानेदार हैं। वर्दी की कोई पाबन्दी नहीं थी। थानेदार साहब ट्रक के आगे ड्राइवर और मालिक खान के साथ बैठ गये। झकोलों के कारण मेरे लिए बिस्तर पर बैठे रहना भी कठिन था। ट्रक के ऊपर तिरपाल तानने की छड़ पकड़कर खड़ा रहा। सरदारजी ने बताया कि इस प्रदेश में लूटमार नहीं होती। कत्ल-खून कभी-कभी ही होते हैं। लूटमार का भय दक्षिणी पर्वतमाला के परे अफरीदी, वजीरी और मोहमंद इलाकों में ही रहता है।

ट्रक सड़क की सीधी लकीर छोड़कर उत्तर की ओर चलने लगा। मिट्टी की खूब ऊंची मोर्चा बनी दीवारों की एक गढ़ी के सामने जाकर रुके। यह इलाके का थाना था। यहाँ थानेदार साहब को पहुंचाने के लिये ही आये थे। तुरंत खाटें निकाली गईं। चमड़े का हुक्का आया। थानेदार साहब और खान साहब खाट पर बैठे। हम पश्चिम की ओर ढलते सूर्य की ओर देख विकल हो रहे थे। अभी जलालाबाद साठ मील दूर था लेकिन खान

थानेदार का आतिथ्य स्वीकार किये बिना आगे न बढ़ सकते थे। समय का विचार यहाँ नमाज के वक्तों से ही होता है।

दस-पन्द्रह मील चलकर ट्रक फिर एक धुएं से काली दुकान के आगे खड़ा हो गया। यहाँ सड़क के किनारे हमारे पहाड़ी प्रदेशों की तरह हर पांच-सात मील पर दो-तीन दुकानें नहीं दिखाई दे जातीं। दूर दिखाई देते गांवों में तो दुकानें होंगी ही। गांवों में दुकान प्रायः अफ़गान हिन्दू या सिख ही करते हैं। सड़क किनारे ढक्का से चलने के बाद यहीं दुकान मिली। खान के लिये तुरंत एक बड़ा पलंग बिछ गया। मैं और प्रकाशवती ट्रक पर ही बैठे रहे। शेष सब लोग खान के प्रति आदर में ट्रक से उतरकर पलंग के चारों ओर कुछ अंतर से खड़े हो गये। कुछ खरबूजे लाये गये। खान ने जेब से चाकू निकाला और खरबूजे तराशे। पहले दो फांके प्रकाशवती और मुझे भेंट की गईं। इसके बाद खान ने चार-पांच फांकों के ऊपर का बहुत नरम भाग स्वयं खाया। कुछ फांके दो-तीन और लोगों को दीं और उठ गये। शेष बचे खरबूजे लोगों ने बांट लिये और ट्रक चला।

खूब अंधेरा हो गया। सड़क की लकीर पर ट्रक का प्रकाश कुछ दूर तक आगे-आगे चल रहा था। कभी ही कोई गधा सवार मार्ग पर दिखाई दे जाता। ट्रक पत्थर की सड़क पर नहीं उखड़े-बिखरे पत्थरों पर चल रहा था तो हिचकोलों की क्या शिकायत होती। पश्चिम से अच्छी ठंडी तेज हवा चलने लगी थी। ट्रक की छड़ पकड़े हाथों में छाले पड़े और फूट गये। जेब से रुमाल निकाल छड़ पर रखकर सहारे के लिये पकड़ लिया। हाथ बदलते समय रुमाल हवा के झोंके में कटी पतंग की तरह उड़ गया। सरदारजी ने पुकारा—"रोको! कपड़ा उड़ गया!" मैंने तुरंत कहा, "नहीं, रुकिये नहीं चीथड़ा था!" सोच रहा था किसी तरह यह रास्ता समाप्त तो हो।

रात दस बजे के लगभग जलालाबाद पहुंचे। घने अंधेरे में कहीं-कहीं हरीकेन लालटेन जलते दिखाई दिये। चारदीवारी से घिरे कुछ बंगले भी मालूम पड़े परन्तु प्रकाश नहीं था। अंधेरे मे भी वायु में नमी, नालियों मे बहते जल के शब्द और वृक्षों से स्थान के खूब हरे-भरे होने का अनुमान हो रहा था। बस्ती एक मंजिले छोटे-छोटे घरो की थी। बाजार में एक जगह गैस भी दिखाई दिया। ट्रक रुका। तीन-चार सिख सरदारजी की आगवानी के लिये मौजूद थे। सरदारजी का सामान और परिवार उतरा तो हम भी उतर जाना चाहते थे कि उन्हीं के सहारे कही रात काट लें। मैं एक बार पहले यूरोप और रूस हो आया था। जानता था वहाँ बिस्तरा साथ लेकर यात्रा का रिवाज नहीं है। रेल, होटल में सब जगह बिस्तर मिलता है इसलिये बिस्तर साथ नहीं थे।

सरदारजी ने कहा—"आप लोग ट्रक में बैठिये खान आपके लिये इंतजाम कर देंगे।" खान कैसा इंतजाम कर देंगे इसका अनुमान नहीं था परन्तु इतना तो स्पष्ट था कि सरदारजी अब हमारा स्वागत नहीं कर रहे थे। प्रकाशवती की इच्छा रात हिन्दू-सिख परिवार के साथ ही बिता सकने की थी परन्तु मजबूरी में चुप रहे, जो होगा देखा जायेगा।

ट्रक बन्द हो चुके बाजार से कुछ दूर दोनों ओर ऊंचे सफेदों से घिरी सूनी सड़क पर चला और एक प्रकाशमान ऊंची इमारत के हाते में प्रवेश किया। प्रकाश बहुत मध्यम था परन्तु था बिजली के बल्बों का। खान ने हाथ मिलाकर कहा—"यह शाही मेहमानखाना है। यहाँ आराम कीजिये।" खान पश्तो में ही बोले। अनुवाद एक समीप खड़े आदमी ने किया।

मेहमानखाने में भारत की ओर जाने वाले दो अमीर अफगान व्यापारी भी ठहरे हुए थे। सब कमरों में और बीच की दीर्घिका में भी कालीन बिछे हुए थे। बैरे ने आकर पूछा—"खाना किस किस्म का खाइयेगा ?"

उत्तर दिया—"जिस किस्म का तैयार हो।" भूख तो लगी थी और मसहरीदार पलंग देखकर एकदम लेट जाने की इच्छा उससे भी बलवती थी।

गुसलखाने में गरम पानी था। फ्लश का प्रबन्ध था। खाने के लिये नान और मुर्ग मिला परन्तु प्लेटों में कांटे-छुरी के साथ।

अफगान सौदागरों से मालूम हो गया कि जलालाबाद और काबुल के बीच बहुत अच्छी सड़क है और लगातार बस भी चलती है पर सुबह तड़के ही बस का प्रबन्ध कर लेना उचित होगा।

सुबह जल्दी ही नाश्ते के पश्चात् बैरे ने दस्तखत के लिये बिल पेश किया। बिल था लगभग पचहत्तर रुपये का। बैरे को आशा थी, हमें मेहमानखाने में लाने वाले खान स्वयं बिल चुकायेंगे परन्तु मैंने बिल स्वय चुका कर उस पर 'चुकता' लिख देने का आग्रह किया ताकि बिल खान के सामने न पेश किया जा सके।

पेशावर में काबुल के भारतीय राजदूतावास के हवलदार लक्ष्मणसिंह से अफगान और भारतीय रुपयों के विनिमय दर के विषय में सूचना मिल चुकी थी। पेशावर के विनिमय के व्यापारी एक भारतीय या पाकिस्तानी रुपये के चार अफगानी देना चाहते थे। लक्ष्मणसिंह ने और सरदारजी ने भी हमें बता दिया कि सरकारी भाव तो एक और चार का ही है परन्तु वास्तव में एक भारतीय रुपये के सात, आठ, नौ अफगानी बाजार में मिल सकेंगे। पेशावर में लक्ष्मणसिंह से भारतीय बीस रुपये देकर एक सौ चालीस ले लिये थे। इस भाव से पचहत्तर भी कुछ अधिक नहीं जंचे। बैरे को दस रुपये बख्शीश देने पर लम्बी सलाम भी मिली।

जलालाबाद से काबुल सौ मील है। सुबह ही जाकर बस में ड्राइवर के साथ की दोनों सीटें खरीद ली। ड्राइवर ने शायद मेरी पतलून और हैट की वजह से या साथ शाही मेहमानखाने का बैरा देखकर कहा—"सवासौ रुपये होंगे।" स्वीकार कर लिया।

हमारे पीछे लारी में कितने आदमी थे, यह गिन पाना सम्भव न था। कुछ छत पर भी बैठे थे। भीड़ के कारण किसी को आपत्ति न थी। हमारे देश में मोटर के बोझ खेंच सकने की शक्ति की एक सीमा समझी जाती है। अफगानिस्तान में ऐसा कोई मिथ्या संस्कार नहीं है।

काबुल नदी तक जलालाबाद की घाटी बहुत हरी-भरी है। यहाँ एक चीनी मिल भी है और गन्ने की खेती भी होती है। सड़क किनारे क्यारियों में टमाटर और दूसरी चीजें भी दिखाई दीं।

काबुल के आगे सडक बहुत दूर तक बिलकुल नदी तट के साथ-साथ जाती है। आस-पास रेगिस्तान नहीं। नदी के दोनों ओर पहाड़ ही हैं परन्तु खेती के चिह्न कहीं-कहीं ही दिखाई दिये। कुछ दूर जाकर नदी का साथ छूट जाता है परन्तु शनैः-शनैः पहाड़ों की ऊँचाई बढ़ती जाती है। रूखी, नंगी चट्टानें, जिन पर घास या वनस्पति का एक पत्ता भी नहीं। चट्टानें एक से दूसरी बढ़कर नीले आकाश की ओर उठती जाती हैं। हर अगली चट्टान या पहाड़ पहले से ऊंचा। आश्चर्यजनक मात्रा में बोझ लिये बस ऊपर चढती चली जा रही थी। यह इसलिये सम्भव था कि सड़क तारकोल की बहुत अच्छी बनी हुई है। जलालाबाद से पेशावर तक अच्छी सड़क अफ़गान सरकार ने शायद इस दूरदर्शिता के कारण नहीं बनाई थी कि शत्रु को देश में प्रवेश की सुविधा हो जायेगी। उस समय यह नहीं सोचा गया कि सीमा पर शत्रु को रोकने के लिये वहाँ भी अच्छी सड़क होना आवश्यक है। अस्तु, अब तो सडकें बनाने का काम जोर से चल रहा था।

इन रूखे, नंगे, धूसर, काले पहाड़ों की ऊँचाई समुद्रतल से कितनी है कह नहीं सकता परन्तु वे गहरे नीले आकाश में चुभ गये से जान पड़ते है। भारत या यूरोप अथवा काकेशस के पहाड़ों की तरह इन पहाडों में कही जल रिसता नही दिखाई देता। हम तो आधुनिक यत्रवाहन की सहायता से इस राह पर अठारह-बीस मील प्रति घंटे की चाल से चले जा रहे थे। मोटर की अनुपस्थिति में गधों, घोड़ों, ऊंटो पर इतना सफर एक दिन के कड़े परिश्रम का फल होता होगा परन्तु दर्रा खैबर से काबुल, कधार, गजनी का यह मार्ग तो प्राग ऐतिहासिक काल से चलता ही आया है। तब भी व्यापारियों के काफिले इन मार्गो से भारत आते-जाते थे। तब इन खुश्क बीहड़ रास्तो पर यात्रा में कितने पशु और मनुष्य बलिदान होते होंगे ? तब तो यहाँ तारकोल बिछी बढ़िया सड़कों की भी कल्पना नहीं की जा सकती थी। सडक बनाने की आवश्यकता किसे थी ? केवल मार्ग का चिन्ह मात्र रहा होगा। मनुष्य को ऐसे किस धन का लोभ था जिसके लिये वह अपने प्राण जोखिम में डालता था। यदि पेट की ज्वाला के कारण व्याकुल मनुष्यों के इन मार्गों को पार करने की कल्पना की जाये तो एक बात है परन्तु सिकन्दर यदि इस मार्ग से आया होगा तो उसने लूट और साम्राज्य विस्तार के प्रलोभन का क्या मूल्य दिया होगा! मौर्य सम्राटों की सेनायें तो कपिशा (काबुल) को विजय कर सोवियत की सीमा पर वक्षु नदी, जिसे अब दरिया आमू कहते है, किसलिये पहुची थीं। वह कौन ऐसा धन था जिसके बिना मौर्य सम्राटों का पाटलीपुत्र में निर्वाह नहीं हो सकता था ? इन्ही मार्गो से मुहम्मद गजनवी और बाबर भी आये। निश्चय ही साढ़े तीन हाथ के प्राणी--मनुष्य की सहन शक्ति और साहस की कोई सीमा नही। उसका साहस किसी भी दिशा में जा सकता है।

काबुल नदी तो काबुल नगर में से होकर प्रकृति द्वारा दिये मार्ग से ही पाकिस्तान में सिंधु नदी में मिलने जाती है परन्तु मनुष्य इतने लम्बे मार्ग में समय नष्ट नहीं करना चाहता। बहुधा सड़क नदी का साथ छोड़कर पहाड़ों को काटती, लांघती आगे बढ़ जाती है। जलालाबाद से साठ मील लगभग इन पहाड़ों में विचित्र दृश्य दिखाई देता है। रेल की छोटी-छोटी पटरियां बिछी हैं और बिजली से चलने वाले यंत्रों के शब्द से आकाश गूंजता रहता है। यहाँ काबुल नदी की धार को बांधकर बिजली पैदा की जा रही है। यह काम प्रायः जर्मन इंजीनियरों के हाथ में है। कुछ मील आगे नये ढंग के बंगलेनुमा मकानों की बस्ती कछुए की पीठ जैसी पहाड़ी पर बसा दी गई है। यहाँ से कावुल तक खूब ऊंचे बिजली के खम्भे चले गये हैं। १९५५ के जून में लोगों को आशा थी कि तीन-चार मास में सम्पूर्ण काबुल बिजली से जगमगा उठेगा और जल का संकट भी न रहेगा।

इस स्थान से सड़क और नदी का साथ छूट जाता है। सड़क चट्टानों के पहाड़ पर से नहीं बल्कि ककरीली मिट्टी के पहाड़ पर की पीठ पर से गुजरती है। यह पहाड़ भी कम ऊँचा नहीं। ऊँचाई के कारण वायु में कुछ विरलता अनुभव होती है। दूर से समतल पर हिमराशियां दिखाई देती हैं। पहाड़ की ऊँचाई के कारण हो या इस मिट्टी की प्रकृति के कारण, वृक्ष कहीं नहीं हैं। केवल हाथ-हाथ भर ऊंची घास है। शिमला और कुल्लू के बीच के पहाड़ों का मेरा अनुभव है कि समुद्रतल से दस-ग्यारह हजार फुट ऊंचे चले जाने पर प्रायः वृक्ष नहीं मिलते। सम्भव है यहाँ भी इतनी ऊँचाई हो।

दोपहर का सवा बज रहा था। बस मजनू के पेड़ों की छाया में बहती जल की नाली के समीप बनी दुकान के सामने ठहरी। ठहरने का कारण भूख के समय का विचार था या नमाज के वक्त का; कह नहीं सकता। ड्राइवर और अधिकांश लोगों ने नाली के पानी में हाथ-मुंह-पांव धोये और नमाज अदा करने लगे। इसी नाली का जल लोग पी भी रहे थे। दो अफगान सिख जवान भी इस बस से काबुल जा रहे थे। हमें यह जल लेते हिचकते देख उन्होंने विश्वास दिलाया कि जल बहुत ठंडा और मीठा है, यह जल गुणकारी भी है। हमारी हिचक का कारण समझ एक नौजवान कुछ दूर ऊपर जाकर हमारे लिये जल ले आया। नाली जाने कितने खेतों को लांघकर आ रही थी। बस से उतरे लोग निपटने के लिये उसी ओर जा रहे थे।

यात्रियों में अधिकांश अपनी रोटी साथ बांधे थे। कुछ ने एक-एक बड़ी रोटी दुकान से खरीद ली। रोटी प्रायः रूखी ही खायी जा रही थी। कुछ लोगों ने रोटी भिगोने के लिये बिना दूध और चीनी का एक-एक प्याला कहवा ले लिया। कुल मिलाकर यात्री पचास से कम न रहे होंगे। दुकान पर एक छोटे बर्तन में मुर्ग का सालन मौजूद था। हमारे अतिरिक्त किसी दूसरे यात्री ने वह नहीं खरीदा। अफगानिस्तान में सर्वसाधारण के भोजन का यही स्तर है।

काबुल नगर पहाड़ की पीठ पर है। चुंगी घर पहाड़ी के नीचे छोटा-मोटा किला ही समझिये। बस को किले के भीतर लेकर फाटक बन्द कर लिया गया तो जान पड़ा कि

एक-एक कपड़े की परत उधेड़ी जायेगी। हुआ यह कि ड्राइवर और पांच-सात मुसाफिरों ने जाकर चुंगी के अधिकारियों से बातचीत की और परवाने लेकर लौट आये और बस को मार्ग देने के लिये किले का दूसरा फाटक खुल गया।

काबुल नगर में तीन बजे के लगभग पहुँच गये। भाड़ा चुकाने के लिये मेरी जेब में अफगानी रुपये कुछ कम पड़ रहे थे। ड्राइवर ने जिद्द की कि पाकिस्तानी रुपया तो वह हरगिज नहीं लेगा। हिन्दुस्तानी रुपया ले सकता है परन्तु सरकारी निरख अर्थात् एक और चार के भाव से ही लेगा। मैं आस-पास रुपया बदलने वाले का पता पूछ रहा था कि एक बहुत मैले-फटे से कपड़े पहने सरदारजी ने नये आये भारतीय को पहचान कर पूछा—"क्या परेशानी है?"

सरदारजी से रुपया बदलवा देने की सहायता पंजाबी में मांगी—"आप भी क्या बातें करते हैं।" सरदारजी ने पंजाबी में उत्तर दिया। एक सौ अफगानी रुपये के नोट जेब से निकालकर मेरे हाथ में थमा दिये, "इस समय अपना काम चलाइये।"

सरदारजी को अपना नाम बताकर कहा—"हम होटल काबुल में ठहरेंगे। आप कल अपना रुपया जरूर ले जाइयेगा। मेरे लिये आपको ढूंढना कठिन होगा।"

सरदारजी ने बेपरवाही से कहा—"बादशाओं क्या बात है? आ जायेगा रुपया क्या जल्दी है?" और एक टांगा हमारे लिये बुला दिया।

काबुल में विदेशी लोगों, विशेषकर यूरोपियनों के लिये एक ही होटल है, होटल काबुल। होटल सरकारी है। प्रतिदिन का खर्चा सब मिलाकर प्रति व्यक्ति साठ-पैंसठ अफगानी हो जाता है। होटल में कोई अफगानी नहीं ठहरता। भारतीय हिन्दू व्यापारी प्रायः गुरुद्वारे में या किसी हिन्दू के यहाँ ही ठहरते है। होटल अच्छा ही है। बिजली और फ्लश का प्रबन्ध जरूर है। खाना भारतीय और यूरोपियन ढंग का मिला-जुला है। परोसने का ढग यूरोपियन है। मैने अफगानी ढंग के खाने की मॉग की तो बैरे ने लजाकर उत्तर दिया—"हुजूर, यहाँ सिर्फ विलायती खाना बनता है।"

होटल के सब बैरे हिन्दुस्तानी बोल लेते हैं। लाहौर, दिल्ली या बम्बई ट्रेंड होने का गर्व करते हैं। होटल का मैनेजर हिन्दुस्तानी या अंग्रेजी नहीं समझता था। वह पश्तो, फारसी और फ्रेंच ही जानता था। काबुल में अंग्रेजी की अपेक्षा फ्रेंच का चलन अधिक है। अंग्रेजी और जर्मन प्रायः बराबर ही चलती हैं। कुछ लोग रूसी भी जानते हैं। सरकार की ओर से फ्रेंच को ही प्रश्रय दिया जाता रहा है। काबुल में इन भाषाओं के समान रूप से चलने का कारण यह है कि यहॉ शिक्षा का काम फ्रेंच, जर्मन, अंग्रेज पादरियों द्वारा ही किया गया है। अफगान सरकार किसी भी विदेशी शक्ति को अधिक अवसर देने की नीति के विरुद्ध थी। अफगान सामन्ती और रईस परिवार सांस्कृतिक दृष्टि से फ्रांस को और वैज्ञानिक दृष्टि से जर्मनी को इंगलैंड की अपेक्षा श्रेष्ठ समझते थे। भारतीय सीमा से ब्रिटेन के आक्रमण की आशंका बनी रहने से इन्हें उनसे कुछ चिढ़ भी थी।

काबुल दो हैं या कहिये काबुल दो भागों में बंटा हुआ है। एक पुराना काबुल और दूसरा नया काबुल। अमीर या बादशाह के महल शहर से दूर हैं। काबुल नदी शहर के बीचोंबीच बहती चली गई है। काबुल नदी से काटी गई छोटी-छोटी नहरें या नालियां शहर की सड़कों के साथ बहती हैं। यह जल ही काबुल नगर के जीवन का मुख्य आधार है। लोग इन्हीं नालियों में कपड़े और बर्तन धो लेते थे और यही जल पीने के लिये भी ले लेते थे। पगमान से जल लाकर भी कुछ नल लगाये गये हैं। होटल काबुल में यह बताया गया था कि होटल में जल उबालकर और रेत में छानकर दिया जाता है परन्तु हमारे पड़ोस के कमरे में ठहरी हुई जर्मन इंजीनियर की पत्नी ने हमे सावधान कर दिया था— "मैं सात वर्ष से अफगानिस्तान में हूँ। जल के उबालने के विषय में अपनी आँख के अतिरिक्त किसी के कहने का विश्वास न करना।" हमने जल न पीकर कहवा पीने का ही नियम बना लिया था। अफगानिस्तान में अफगान प्रजा के लिये कानूनन शराब का निषेध है क्योंकि शराब इस्लाम में हराम है। विदेशी विशेष आज्ञा से शराब रख सकते हैं परन्तु इस कानून के बारे में विशेष सिरदर्दी नही की जाती। अफीम, भांग और गाजे के प्रयोग का विरोध नही है।

१९५५ जून मे नये बने काबुल का कुछ भाग तो रस-बस गया था। शेष तेजी से बन रहा था। इस वर्ष प्रकाशवती फिर काबुल के रास्ते मास्को गई थीं। उनका कहना है कि अब यह भाग पूरा बस गया है और सड़के भी अच्छी बन गई हैं। पुराने काबुल नगर में बाजार और गलियां बहुत तंग है जैसी कि हमारे यहाँ किसी पुराने मैले नगर में हो सकती हैं। आमने-सामने से आते-जाते तांगों का फंसे बिना निकल जाना सम्भव नही।

काबुल में पुराने रहने वाले हिन्दू प्रायः सब हिन्दू गुजर (हिन्दुओ के लिये शरण स्थान) मुहल्ले में रहते है। सब हिन्दू परिवारो के घर एक साथ खूब तंग गलियों में हैं क्योंकि सब हिन्दुओं का एक साथ सिमिटकर रहना आवश्यक था। नाक पर रूमाल रखे बिना इन गलियो से गुजर जाना कठिन है। यह मुहल्ला दूसरे मुहल्लों से साफ समझा जाता है। यहाँ बीच में आंगन छोडकर चारों ओर मकान बनाये जाते हैं। मुख्य दरवाजा बहुत छोटा रहता है। आगन के भीतर की दीवारे और खिड़कियां सब लकड़ी की होती हैं। मकान चाहे तिमजला हो बाहर से दीवारें मिट्टी की ही दिखाई देंगी। भीतर चाहे दीवारें और फर्श कीमती कालीनों से ढके हों पर मकानो का बाहरी रंग ढग दीनता सूचक बनाये रखने का प्रयोजन लूट-मार के भय से समृद्धि का प्रदर्शन न करना है।

बहुत से हिन्दू परिवार काबुल में मुहम्मदगोरी के समय से बसे हुए है। मुहम्मदगोरी इन लोगों को अफगानिस्तान के व्यापार के विकास के लिये साथ ले गया था। यह लोग जब-तब पंजाब में आकर भी शादी ब्याह कर जाते है। अधिकाश में काबुल में ही सम्बंध हो जाते हैं। पिछले अढ़ाई तीन सौ वर्ष ने इन हिन्दुओं के साथ कोई फिसाद या लूटमार नहीं हुई परन्तु आतंक अब भी बना है। यह लोग पश्तो भी अपनी मातृभाषा की तरह ही बोलती हैं परन्तु इनके घरों में अब तक पंजाबी बोली जाती है। अधिकांश हिन्दू केश और

दाढ़ी न रखने पर भी सिख धर्म के अनुयायी है और उनके धार्मिक विश्वास बहुत कट्टर हैं। हिन्दू गुजर मुहल्ले में दो गुरुद्वारे और मन्दिर भी हैं। सब हिन्दू पंजाबी परिवारों के बच्चे इन गुरुद्वारे में लय से गुरुमुखी रटते रहते हैं और किसी अतिथि के आने पर बहुत लम्बी पुकार लगाते हैं—"जो बोले सो निहाल, सत्त सिरी अकाल। वाह गुरूजी का खालसा, वाह गुरुजी की फते!" व्यापार अधिकांश में हिन्दुओं और सिखों के हाथ में है। यह लोग केवल काबुल में ही नहीं, गजनी, कंधार और हैरात आदि शहरों में और देहात में भी बसे हुए हैं।

किसी समय हिन्दू केवल हिन्दू गुजर मुहल्ले में ही रह सकते थे और पुराने समय में उनके लिये सदा लाल पगड़ी बांधने की सरकारी आज्ञा थी। अब यह प्रतिबंध नहीं है। केवल हिन्दू नये काबुल के खुले आधुनिक मकानों में भी आ बसे हैं।

काबुल में म्युनिसिपल कमेटी की तरफ से मकानों की गन्दगी नगर के बाहर ले जाने की कोई व्यवस्था अब भी नहीं है। काबुल में भंगी या मेहतर का पेशा करने वाले लोग साधारणतः है ही नहीं। मकानों में संडास प्रायः नहीं होते। काबुल नदी की पतली धार के दोनों ओर नदी के सूखे में ही लोग निवृत्ति ले लेते हैं। जो लोग सुविधा या पर्दे के विचार से घर में संडास बना लेते हैं उन्हें दुर्गंध भी सहनी पड़ती है। संडास के सूख जाने के अतिरिक्त कोई मार्ग नहीं इसलिये प्रायः दुर्गंध बहुत रहती है। इस्लामी सल्तनत में इस गंदगी को समेट लेने वाले जीव सुअर भी नहीं हैं। मार्च में पहाड़ों पर बरफ पिघलने पर नदी में बाढ़ आती है तो सफाई हो जाती है। सड़कें खासकर नये काबुल की सड़कों पर झाड़ू और सफाई की ही जाती है। इस सरकारी काम के लिये बेगार ली जाती है। कानूनन इस सरकारी बेगार से किसी भी साधारण नागरिक को छूट नहीं है। इस नियम में अमीरी-गरीबी और वंश का भी भेद नहीं है। क्रम से जिन लोगों का नाम आ जाय, उन्हें यह काम निवाहना ही पड़ता है। यह नियुक्ति छः मास के लिये होती है। इस काम के लिये एवजी दी जा सकती है। पैसा दे सकने वाले लोग अपनी एवज में कोई आदमी नौकर रखकर सरकार को दे देते हैं।

भारत में पठान और अफगान एक ही बात समझी जाती है परन्तु यह दो भिन्न-भिन्न जातियां हैं। पठान लोग पाकिस्तान और अफगानिस्तान के बीच के प्रदेश में बसते हैं। अफगानों के रूप रंग पर मंगोल प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। यह लोग स्वभाव से शांति-प्रिय होते हैं। देश में कोई उद्योग-धंधा न होने के कारण आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं है। व्यवस्था अभी तक सामन्ती ढंग पर ही है। अफगानिस्तान का समुद्री मार्गों से कहीं सम्बन्ध नहीं है इसलिये वह अंतर्राष्ट्रीय प्रभावों से और संसार में हो चुके औद्योगिक और सांस्कृतिक विकास से कुछ हद तक अछूता रह गया है। साधारण अफगान कहवा रोटी या प्याज रोटी से संतुष्ट हो जाता है परन्तु सामन्ती घरानों का स्तर बहुत ऊँचा है। उनके यहाँ पूर्वी और पश्चिमी दोनों ढंग के बैठकखानों का प्रबंध रहता है। एक रईस के यहाँ निमन्त्रण पाने में सफलता हुई थी। चाय के साथ केक-पेस्ट्री और आइसक्रीम भी मौजूद

थी। अफगान सेना के सिपाही को पचास अफगानी रुपये—भारतीय पांच-छः माहवार और लगभग तीन पाव आटा रोजाना के हिसाब से तनखाह मिलती है। अच्छी वर्दी कम ही दिखाई देती है।

पेशावरी पठानों और काबुली अफगानों के पहरावे-पोशाक और व्यवहार में बहुत अंतर है। कंधार, गजनी के लोग तो पठानों की तरह कुल्हा-पगड़ी, सलवार वगैरा पहने दिखाई देते हैं परन्तु काबुल में ऐसी पोशाक बहुत कम नजर आती है। साधारण स्थिति के लोग प्रायः कोट-पतलून पहने ही दिखाई देते हैं। सिर पर मेमने की खाल की नीची दबी हुई-सी टोपी रहती है।

लाहौर के अनेक बाजारों में घूमने पर हमें तीन-चार स्त्रियां ही दिखाई दी थीं। पेशावर में तो एक भी नहीं। काबुल के बाजारों में खासकर नये बसे काबुल में स्त्रियां प्रायः ही आती-जाती और बाजार करती दिखाई देती हैं। स्कूलों से आती-जाती लड़कियों के झुण्ड भी दिखाई देते हैं। यह सभी स्त्रियां और लड़कियां यूरोपियन स्त्रियों की पोशाक में अर्थात् घुटनों से कुछ नीचे तक के फ्रांक, पारदर्शी मोजे और ऊंची एड़ी के जूते पहने थीं। अलबत्ता चेहरे पर नकाब या पोशाक पर बुरका जरूर था। खुले चेहरे स्त्रियां केवल यूरोपियन राजदूतावासों या कभी भारतीय राजदूतावास की ही दिखाई दे सकती हैं। काबुल में बसे हुए हिन्दू परिवारों की स्त्रियां बिना बुरके के बाहर नहीं जा सकतीं। यदि कोई स्त्री मुंह उघाड़े खिड़की में कुछ देर खड़ी रहे तो नीचे सड़क पर मेला लग जायेगा। यहाँ के सर्वसाधारण स्त्री को खुले मुंह देखकर विस्मित और उत्तेजित हुए बिना नहीं रह सकते।

प्रकाशवती और मैं एक दुकान पर भारतीय रुपया बदलवा रहे थे। एक काबुली स्त्री फ्रांक पर बुरका पहने आई। सौदे के दाम के विषय में निस्संकोच बहस की। दुकानदार अफगान हिन्दू था। प्रकाशवती ने उससे कहा—यहाँ तीन दिन में मैंने एक भी अफगान स्त्री का चेहरा नहीं देखा। यह तो मालूम हो कि यहाँ की स्त्रियों का चेहरा-मोहरा कैसा होता है। इन्हें मुझसे तो कोई पर्दा नहीं होना चाहिये।

दुकानदार ने प्रकाशवती की बात पश्तो में बुरकापोश अफगान स्त्री को समझा दी। स्त्री ने प्रस्ताव किया—बेशक औरत से क्या पर्दा। यह स्त्री आलमारी के पीछे आ जाये मैं इसे अपना चेहरा दिखा दूंगी। इसके पश्चात् एक आधुनिक विचार अफगान के घर जाने पर उसकी स्त्री और बहिन को बिना बुरके के केवल फ्रांक पहने ही देखा। इस परिवार की लड़कियां पेरिस में शिक्षा पायी हुई थीं।

फ्रांक और बुरके के मेल के रूप में आधुनिकता और रूढ़िवाद के समन्वय का इतिहास सम्भवतः अमीर अमानुल्ला के अफगानिस्तान को अपने हुक्म से आधुनिक बना सकने के प्रयत्नों में है। अमानुल्ला के लिये ऐसा स्वप्न देखना अस्वाभाविक नहीं था। उसने इतिहास में पीटर महान के रूस को आधुनिक बनाने के प्रयत्नों की कहानी पढ़ी होगी और अपने समकालीन कमालपाशा के टर्की को रूढ़िवाद से मुक्त कर देने के प्रयत्नों

की सफलता भी देखी थी परन्तु अफगानिस्तान की सीमा पर बैठे अंग्रेजों को अफगानिस्तान की जागृति में अपने साम्राज्य-की सत्ता के लिये भय दिखाई दिया। उनकी सहायता से पेशावर का भिश्ती बच्चा सक्का आधुनिक शस्त्रास्त्र लेकर अफगानिस्तान में रूढ़िवाद की रक्षा के लिये पहुँच गया। अंग्रेजों की कृपा से मुल्लाओं का समर्थन और आशीर्वाद भी बच्चा सक्का को प्राप्त हो गया। बेचारे अमानुल्ला को काबुल छोड़कर भागना पड़ा। सुधार के असफल प्रयत्नों के फलस्वरूप काबुल में स्त्री शिक्षा तो भाग गई, पोशाक बदल गई परन्तु इतने सुधार को सह्य बनाने के लिये बुर्के की आड़ भी लेनी पड़ी।

यह बात नहीं कि पर्दे और दूसरी रूढ़ियों के जबरदस्ती लादने के कारण शिक्षित वर्ग में असन्तोष न हो। असन्तोष तो है परन्तु मुल्लाओं का जोर अभी बहुत है। क्रांति की भावना की सफलता के लिये परिस्थितियों की भी आवश्यकता होती है। यहाँ के लोग इस सांस्कृतिक दमन को अनुभव कर रहे हैं। उन्हें आशा भी है कि रूढ़िवाद का यह दौर-दौरा दो-चार बरस का ही मेहमान है। लोग सामन्तवादी व्यवस्था से भी सन्तुष्ट नहीं, औद्योगिक विकास की आवश्यकता को भी अनुभव कर रहे हैं। यह सब चेतना अन्तर्राष्ट्रीय प्रभावों के मेल से निकट भविष्य में क्या रूप लेती है, यह समय ही बतायेगा।

काबुल से हम लोग सोवियत विमान द्वारा प्रातः नौ बजे सोवियत देश की ओर चले थे। विमान को हिन्दुकुश के शिखरों के ऊपर से उड़ना पड़ता है इसलिये विमान बहुत ऊंचे पर से जाता है। सोवियत का यह छोटा विमान प्रशराइज्ड नहीं था इसलिये बहुत ऊँचाई पर चले जाने पर सब लोगो को ओषजन वायु की नालियाँ नाक पर लगा लेने के लिये दे दी गई। ऊपर समुद्र के जल जैसा गहरा नीचा आकाश और नीचे हिमाच्छादित पर्वतमालाओं का विस्तार। अवाक् देखते ही बनता था। हिन्दुकुश लांघकर विमान नीचे आने लगा। विमान परिचारिका ने आकर नीचे एक मटमैली-सी नदी की ओर संकेत कर कहा—"आमू दरिया! यह नदी अफगानिस्तान और सोवियत जनतन्त्र संघ की सीमा है।" काबुल से प्रायः सवा घण्टे में हम सोवियत के नगर तिर्मिज के विमान अड्डे पर उतर गये।

वहाँ दूसरी ही दुनियाँ थी। यहाँ मोटरें, बसें और रेल भी थीं। तिर्मिज सोवियत के उजबेकिस्तान जनतंत्र का नगर है। लोगों का रंग-रूप अफगानों से मिलता-जुलता ही है। जलवायु काबुल से काफी गरम है। लोगों की पोशाकें काबुल की अपेक्षा बहुत अच्छी थीं। मर्द प्रायः बुशशर्ट और पतलून में थे। स्त्रियाँ फ्रांक पहने थीं। कढ़ी हुई टोपियाँ उज़बेक ढंग की थीं। केवल एक प्रौढ़ा लम्बा-कुर्त्ता, सलवारनुमा पायजामा पहने और चादर ओढ़े दिखाई दी। उसकी गठरी-मुठरी से ही जान पड़ता था कि किसान परिवार की है। इस प्रौढ़ा के कान बालियों के लिये किये गये छेदों से भरे थे पर बालियां नहीं थीं। नाक में भी छेद था। प्रकाशवती ने नाक में मुंदा छेद देखकर प्रौढ़ा को बहुत आत्मीयता अनुभव हुई। भाषा की कठिनाई के कारण बोल तो कुछ सकती नहीं थी परन्तु उसने अपनी नाक का छेद दिखाया और प्रकाशवती के नाक के छेद की ओर संकेत किया और इस सादृश्य और

आत्मीयता के भाव से विह्वल हो गई। आत्मीयता के प्रतीक स्वरूप एक बहुत बड़ा गुच्छा काले अंगूरों का उसने प्रकाशवती को भेंट कर दिया। प्रौढ़ा के जाल से बने थैले में लाइमजूस और बियर की बोतलें भी थीं। यह स्त्री भी ताशकंद जाने के लिये हमारे साथ विमान की प्रतीक्षा कर रही थी। यह प्रौढ़ा इस प्रदेश के अतीत की स्मृति थी।

मैंने कठिनता से अंग्रेजी बोल सकने वाले दुभाषिये से पूछा—"वहाँ स्त्रियां परंजा (बुर्का) नहीं पहनतीं?"

उत्तर मिला—"अब रिवाज नहीं रहा। जिन्हें मर्दों के समान ही खेतों, कारखानों, दुकानों और दफ्तरों में काम करना है, वे परंजा की असुविधा कैसे निभा सकती हैं और उन्हें परंजा पहनने के लिये कौन विवश कर सकता है? बहुत ढूंढ़ने पर शायद किसी गांव में एक-दो बुढ़िया परंजा पहनने वाली मिल भी सकेंगी।"

पूर्वी जर्मनी

पूर्वी जर्मनी के लेखक संघ के निमंत्रण पर बर्लिन गया था। आशा थी, विमान-स्थल पर ही कोई व्यक्ति मिलेगा। पूर्वी बर्लिन का विमान-स्थल बहुत साफ-सुथरा, छोटा और संक्षिप्त-सा है। विमान से उतरते समय सामने चार-पांच स्त्री-पुरुष हाथों में फूलों के गुलदस्ते लिये दिखाई दिये। यह अनुमान अस्वाभाविक न था कि इनमें से कोई मेरी प्रतीक्षा में भी होगा परन्तु मेरे प्रति मेरे भूरे रंग के बावजूद उनमें से किसी ने कोई उत्सुकता नहीं दिखलायी। पांच-सात मिनट में मेरे साथ के यात्री और फूल लेकर अगवानी करने वाले सब लोग विलीन हो गये। विमान की पुलिस और चुंगी-पासपोर्ट के लोगों के बीच मैं ही अकेला यात्री रह गया। निराशा के साथ चिंता भी हुई। कारण, मैं नये स्थान में बिलकुल अकेला था। जर्मन भाषा का एक शब्द भी नहीं जानता था। इस भरोसे कि निमंत्रण पर जा रहा हूँ, प्राहा से यात्रा की हुण्डी तुड़ाकर कुछ जर्मन सिक्का भी ले लेना अनावश्यक समझा था। चुंगी-पासपोर्ट देखने वाले और पुलिस के लोग मेरी ओर देख रहे थे कि बेकार क्यों खड़ा हूं।

एक ही उपाय था कि नगर में लेखक संघ के कार्यालय में टेलीफोन करके सूचना दूं कि मैं आ गया हूँ परन्तु इतनी बात भी अधिकारियों को किस भाषा में कहता। एक नौजवान अधिकारी से अंग्रेजी में बात करने का यत्न किया। उसने अपनी नीली-नीली आँखें मेरे चेहरे पर गड़ाकर मौन रह और हाथ हिलाकर अपनी विवशता प्रकट कर दी। आखिर फ्रेंच में यत्न किया—"पूछताछ का दफ्तर?"

उसने हामी भरी और अपने पीछे आने का संकेत कर ऊपर की मंजिल मे ले गया। यहाँ अंग्रेजी में अपनी कठिनाई समझाई। अंग्रेजी समझने वाले एक व्यक्ति ने पूछा—"टेलीफोन किया जाय तो किस नम्बर पर? निमंत्रण किस संस्था या व्यक्ति का है?"

प्राहा से चलते समय जेब हलका करने के लिये अपने विचार में जर्मन लेखक संघ के निमंत्रण पत्र को भी अनावश्यक समझ वहीं डाल दिया होता, केवल यात्रा की तारीख याद करने के लिये ही रखा हुआ था। उत्तर दिया—"निमत्रण पत्र तो इस समय नहीं है।" परन्तु निराशा में ही जेब के कागजों को फिर टटोलने लगा। वह पत्र भूल से फेंका नहीं गया था। पत्र पर टेलीफोन नम्बर भी था। टेलीफोन नम्बर देखकर साथ में लिया एक उपन्यास पढ़ने लगा, किसी तरह समय तो कटे।

लगभग आधे घण्टे पश्चात् सुना—"मिस्टर पाल।"

पुस्तक से सिर उठाकर सामने खड़ी नवयुवती को उत्तर दिया—"नमस्कार। हाँ मेरा नाम यशपाल है।"

नवयुवती अंग्रेजी बोल रही थी—"प्राहा से विमान ढाई बजे आना चाहिये था। मैं यहाँ सवा चार बजे तक आपकी प्रतीक्षा करती रही। फिर सोचा, सम्भव है आकाश में आंधी और मेघों के कारण विमान आज न आये, मैं साढ़े चार बजे लौट गयी थी। आपको असुविधा हुई उसके लिये मुझे अत्यन्त खेद है।"

हम लोग हवाई अड्डे से बाहर निकले तो सुबह से छाये मेघ छिन्न-भिन्न हो चुके थे। सूर्य चमक रहा था। यूरोप में गर्मी के दिनों में संध्या पाँच बजे सूर्य काफी ऊँचा रहता है। १९५५ के जून मास में हेलसिंकी (फिनलैंड) में थे। रात साढ़े ग्यारह के लगभग सूर्यास्त होता जान पड़ा और डेढ़ बजे फिर ऊषा का प्रकाश। बीच के समय में भी सूर्यास्त का झुट-पुटा सा ही रहा। अंधेरा हुए बिना सो जाने के लिये मन न मानता था। जब रात का डेढ भी बज गया तो रात करने के लिये खिड़कियों पर पर्दे खींच लिये और भीतर विजली जलाकर रात मान ली और विजली बुझाकर सो गये। वहाँ जून मास में रात के समय सड़कों पर विजली जलाना आवश्यक नहीं होता। दिसम्बर-जनवरी में दिन रात विजली जला करती हैं। पांच बजे भी चारों ओर पूर्वी जर्मनी के मैदान फैले हुए थे।

कुमारी जैलिंगर ने बताया—"आपके ठहरने के लिये पोट्सडाम में लेखकों के भवन में प्रबन्ध किया है। यहाँ से जरा दूर है लगभग तीस मील। आप थके हुए हैं कुछ असुविधा तो होगी परन्तु पहुंचने पर आशा है स्थान पसन्द आयेगा।" पोट्सडाम के आस-पास का प्रदेश रेतीला है और बहुत-सी झीलें हैं। झीलें एक दूसरे से मिली हुई हैं। प्रदेश रेतीला होने पर भी झीलों और टीलों के कारण रमणीय जान पड़ता है। झीलों का यह तांता नदियों से मिलता समुद्र तक चला गया है। जल मार्गों से व्यापार में सुविधा मिलती है।

युद्ध से पहले जर्मनी का पूर्वी भाग कृषि प्रधान था और पश्चिमी भाग उद्योग प्रधान। पोट्सडाम में तब भी कुछ मिलें और कारखाने थे। इसके अतिरिक्त यहाँ जर्मन सम्राटों के पुराने प्रासाद भी थे। नाज़ियों को पराजित करती हुई सोवियत सेना पोट्सडाम के मार्ग से ही बर्लिन की ओर बढ़ी थी। इस नगर पर घनघोर बम वर्षा हुई थी। नगर के चौक में पुराने विशाल, प्रशस्त गगनचुम्बी गिर्जे आज भग्न और झुलसे हुए कंकालों की भांति दिखाई देते है। किसी गुम्बद का एक पार्श्व गोलों की मार से उड़ जाने के कारण कंकाल के खुले टूटे हुए जबड़े के समान जान पड़ता है। राजप्रासाद की छतें उड़ गई हैं। स्थान-स्थान पर टूटी हुई दीवारें मात्र खड़ी हैं। उन प्रकाण्ड कंकालों से मूक रोदन आकाश की ओर उठता जान पड़ता है। उस प्रकाण्डता में दैन्य कितना हृदयद्रावक था। पोट्सडाम के केवल नये बने मकान ही बिना युद्ध की चोटों के थे। अधिकांश मकान पिछले सात-आठ वर्ष में ही बने दिखाई देते थे। जैलिंगर का घर बर्लिन में ही है। इन स्थानों से वह खूब परिचित थी। खंडहरों की ओर संकेत कर उनके पुराने वैभव की कहानी सुनाती जा रही थी।

चेकोस्लोवाकिया के पश्चिमी भागों के देहात में भी, जिन्हें सुदेतनलैण्ड पुकारा जाता था, उपनिवेश बनाकर बस जाने वाले जर्मनों के मकान देखे थे। अब तो स्वयं जर्मनी में

ही था परन्तु यहाँ साधारणतः मकानों में वह ठाठबाट नहीं दिखाई दे रहा था। यह अन्तर भारत में आकर रहने वाले अंग्रेजों के रहन-सहन के ढंग में और इंगलैंड में रहने वाले लोगों में भी स्पष्ट दिखाई देता है। अंग्रेज का काम तीन-चार नौकरों के बिना चल ही नहीं सकता था। बंगले और बगीचे के बिना उसका निर्वाह नहीं था परन्तु इंगलैंड में घर की सण्डास भी अंग्रेज स्त्रियां खुद ही धो लेती हैं। महरी के ढंग से काम करने वाली कोई औरत सफाई में सहायता देने के लिये आयेगी भी तो केवल निश्चित समय के लिये। ऐसे काम के लिये मजदूरी प्रति घण्टे की एक शिलिंग या दस आने से कम नहीं होगी। अपने आपको ऊँचा और शासक समझने वाले लोगों का व्यवहार स्थानीय लोगों से भिन्न हो ही जाता है।

लेखकों का भवन पोट्सडाम नगर से भी कुछ और आगे एक खूब बड़ी झील के किनारे उपवन और फूलों से घिरा हुआ है। यहाँ कई लेखक ठहरे हुए थे। आस्ट्रेलिया से आये एक दम्पत्ति भी थे। फिल्म लेखक कूबा ने बताया—यहाँ तुम्हें कठिनाई न होगी। अवसरवश इस समय यहाँ सभी लोग अंग्रेजी बोल सकने वाले है। भवन भव्य और खूब बड़ा भी है। नीचे की मंजिल में एक खूब बड़ी बैठक है और भोजन का बड़ा कमरा है जिसमें सात-आठ गोल मेज चार-चार कुर्सियों सहित लगे हैं। भोजन बहुत अच्छे मेहमानों की खातिर के लिये बनाया जान पड़ता था। परन्तु सभी एक ही-सा खाना खा रहे थे और दोनों समय उसी स्तर का खाना था। साधारणतः बर्लिन के होटलों से इस खाने को बहुत बढ़िया कहना होगा। सभी के लिये अलग-अलग कमरे हैं और पूर्णत. आधुनिक सुविधाओं से सज्जित हैं।

भोजन के बाद रात बहुत देर तक बैठक में बातचीत चलती रही। आस्ट्रेलियन दम्पत्ति भी साथ थे। बातचीत भिन्न-भिन्न देशों की साहित्यिक प्रवृत्तियों और गतिविधि विशेषकर भारत में सम्बंध में थी। लेखकों की स्थिति के सम्बंध में बातचीत हुई। आस्ट्रेलियन लेखक जानना चाहता था कि भारत में लेखक कितने घण्टे प्रतिदिन काम करके निर्वाह कर सकते हैं, ऐसे कितने लेखक हैं जो कहीं नौकरी न कर केवल रायल्टी पर सुविधा से निर्वाह कर सकते हैं। मुझे स्वीकार करना पड़ा, हिन्दी जगत में ऐसे लेखकों की संख्या तीन-चार से अधिक नहीं है जो स्वतत्र लेखक के रूप में निर्वाह योग्य कमा सकें। जर्मन लेखक विस्मित थे। बीस करोड़ लोगों की भाषा के लेखकों की ऐसी अवस्था कैसे हो सकती है। मैंने अपने देश की आर्थिक अवस्था और यहाँ सदियों से छाई निरक्षरता का कारण बताकर यह भी कहा कि लन्दन में मैंने भी यह प्रश्न पूछा था और उत्तर मिला था कि ब्रिटेन में भी ऐसे स्वतंत्र लेखकों की संख्या पांच-छः से अधिक नहीं हैं। आस्ट्रेलियन लेखक को भी स्वीकार करना पड़ा कि उसके देश में भी ऐसे लेखकों की संख्या तीन-चार से अधिक नहीं है।

आस्ट्रेलियन साथी को बहुत कौतूहल था कि भारतीय लेखक कितनी देर काम करते हैं। उत्तर दिया—भारतीय लेखक के श्रम का मूल्य बाजार में बहुत कम है। साधारणतः एक कहानी लिखकर वह सप्ताह भर का खर्चा भी नहीं जुटा पाता। यह आवश्यक है कि

वह बहुत समय तक काम करे। अपना ही उदाहरण दिया कि कभी दो-तीन सप्ताह कुछ भी नहीं लिख पाता हूँ परन्तु काम आरम्भ करने पर संध्या-प्रातः सब मिलाकर आठ या दस घंटे कोई बड़ी बात नहीं है। जिन दिनों 'विप्लव' का सम्पादन करते हुए कहानी उपन्यास भी लिखता था, दस घण्टे साधारण बात थी। कभी-कभी दिन में दूसरे काम आ पड़ने पर पूरी रात भी लिखना पड़ा है। आस्ट्रेलियन साथी मेरी बात पर विश्वास नहीं कर पा रहा था। उसने अपनी पत्नी की ओर देखकर दो बार कह डाला—"मुझे सन्तोष है जीवन में ऐसे लेखक से भी परिचय हो गया जिसने दस और बारह घन्टे प्रतिदिन लिखा है।"

सुबह नाश्ते के बाद फिल्म लेखक कूबा मुझे देहाती प्रदेश में घुमाने ले गया। प्रदेश प्रायः रेतीला था, परन्तु बंजर नहीं। कूबा ने बताया, यहाँ की रेत महीन है। समीप जल है। सिंचाई की सुविधा के कारण खेती खूब हो सकती है। रोमन-साम्राज्य के समय यह प्रदेश भी रोमन-साम्राज्य में सम्मिलित था और तब इसे रोमन-साम्राज्य की रेतदानी (Sandbox) पुकारा जाता था। कूबा समझाने लगा—अतीत में स्याही सोख तो था नहीं। लिखावट की स्याही सुखाने के लिये कागज पर चलनीदार ढक्कन लगी डिबिया से महीन रेत डाल दी जाती थी और फिर कागज से रेत डिबिया में लौटा दी जाती थी मैंने उत्तर दिया—"समझता हूँ, हमारे देश के कई पुरातन-पंथी व्यापारी अभी तक पुराने ढंग की रोशनाई और रेतीदान का व्यवहार करते हैं।

"अच्छा ?" कूबा ने विस्मय प्रकट किया और बोला, "क्या विचित्र समता है! स्पष्ट ही उस समय पूर्वी देशों और यूरोप में सांस्कृतिक सम्बन्ध रहे होंगे। सम्भव है यहाँ के लोगों ने यह बातें पूर्व से ही सीखी हों।"

कूबा का छोटा-सा पाइण्टर कुत्ता भी हमारे साथ हो लिया था। उसकी वजह से जिस मकान के सामने से गुजरते बाड़े के पीछे से भौं-भौं का प्रलय-सा मच जाता परन्तु मार्ग पर कोई आवारा कुत्ता कहीं दिखाई नहीं दिया। कुत्ते थे भी खूब साफ-सुथरे। मुझे कुत्तों की ओर ध्यान से देखते पाकर कूबा ने बताया—"अब जर्मनी में अच्छे कुत्ते कहाँ है? युद्ध के अन्न-सकट के समय नाज़ियों ने केवल पुलिस और सेना के लिये आवश्यक कुत्तों को छोड़कर सबको मरवा दिया था। तब भी कुछ लोगों ने कुत्ते छिपाकर रख लिये थे। उन्हें अपने राशन का भाग देकर पालते थे। कुत्ते भी समय की हवा पहचानते थे। वे पुलिस की वर्दी देख कहीं दुबक जाते और भौंकना भी भूल गये थे। यह भाग कृषि-प्रधान है। किसान लोग अपनी खेती की रक्षा के लिये कुत्तों को शौक से पालते थे। यहाँ के बड़े जमींदारों के कुत्ते तो बहुत ही प्रसिद्ध थे। उन कुत्तों के लिये आदमी को फाड़ डालना साधारण बात थी। जमींदार अपना आतंक बैठाने के लिये अपने जंगलों और खेतों की सीमा में घुस आने वाले लोगों पर कुत्तों को ललकार देते थे। यदि लोग कुत्तों से बचने के लिये कुत्तों को मारते तो उन्हें ही गोली मार दी जाती। इन जमींदारों के खिलाफ अदालत में कुछ कार्यवाही कर सकना भी असम्भव था। वे सदा ही निर्दोष प्रमाणित हो सकते थे

क्योंकि सम्पत्ति के अधिकार का सम्मान ही सबसे बड़ी वस्तु थी। किसानों को जमींदारों की जमीन का लगान तो देना ही पड़ता था, इसके अतिरिक्त दूध, मुर्गी, अण्डा, घास और बेगार भी भुगतनी पड़ती थी।" कूबा की बात सुनकर मैंने कहा—"हमारे यहाँ भी कुछ वर्ष पहले तक यही अवस्था थी। जैसे मानवता के सदगुण सब स्थानों में एक से हैं। वैसे ही शोषण की नृशंसतायें भी प्रायः सभी स्थानों में एक सी रही हैं।"

लेखकों का भवन नया बना मकान नहीं है। नाजी शासन से पहले और उनके शासन के समय यह मकान एक फिल्म अभिनेत्री की सम्पत्ति था। अभिनेत्री ने मकान और स्थान किसी पुराने जमींदार से खरीदकर इसे आधुनिक रूप दिया था। मकान के पिछवाड़े झील की ओर खूब बड़ा हरा-भरा दालान या छोटा-सा मैदान है। पहली छत पर इस मैदान की ओर खुलता दालान है। अभिनेत्री अपने अतिथियों को इस स्थान पर बैठाकर आपानक (काकटेल पार्टी) किया करती थी और अपने अतिथियों के मनोरंजन के लिये नाचा भी करती थी। अनेक फिल्मों में झील के किनारे प्रासाद के दालान में प्रणय-लीला अथवा भोग-लीला के दृश्य दिखाने के लिये इस स्थान का उपयोग किया जाता था। अभिनेत्री फिल्म बनाने वाली कम्पनियों से खूब बड़ी-बड़ी रकमें वसूल करती थीं। नाजियों की पराजय हो जाने और समाजवादी प्रजातन्त्र व्यवस्था कायम होती देख अभिनेत्री यहाँ से पश्चिम जर्मनी में भाग गई। यह भवन सरकार ने लेखक संघ को दे दिया है। भवन सरकार की भेंट है, खर्च संघ का अपना होता है।

बाहर से घूमकर लौटने पर हम लोग झील के सामने दालान में बैठे काफी पी रहे थे। किसी लेखक से मिलने कोई दम्पत्ति आये थे। उनका पांच-छः मास का बच्चा भी था। बच्चे को कूबा ने बीच की मेज पर बैठा दिया था। स्वस्थ, सुथरा बच्चा मेजपोश पर छपे पेंजी के लाल, बैंगनी फूलों को उखाड़ लेने के लिये किलकारियां भरकर उन पर झपट रहा था। फूल उखाड़ न पाने पर क्रोध में चीखने लगता। हम लोग बच्चे को रिझाने के लिये खिलौने के रूप में जो कुछ भी जेब से निकाल सकते थे, उसे दे रहे थे। रसोई का मैनेजर काफी का दूसरा बर्तन देने के लिये आया था। उसने बच्चे की समस्या को देखा। पल भर को भीतर गया और उसने एक बहुत छोटा-सा कछुआ ढाई-तीन इंच के व्यास का, लाकर बच्चे के सामने रख दिया। कछुआ खूब हिला हुआ था। वह चाबी लगे खिलौने की तरह मेज पर गोल चक्कर लगाता जा रहा था परन्तु बालक का हाथ पीठ पर पड़ते ही या बालक के उसे उठा लेने पर तुरन्त अपनी गर्दन और हाथ-पांव भीतर समेट लेता था।

रसोई के मैनेजर ने बताया—"कछुआ ढाई बरस से लेखक भवन का सदस्य है। उसकी आयु कितनी है, इस विषय में कोई कुछ नहीं जानता था। मुझसे प्रश्न किया गया—"भारत में तो कछुए होते हैं? इसके आकार से उसकी आयु का क्या अनुमान किया जाना चाहिये?"

"इतने आकार का कछुआ तो कभी देखा नहीं।"

"क्यों यह बहुत बड़ा है?"

"इतना छोटा कभी नहीं देखा।"

"यह बहुत छोटा है, कछुआ कितना बड़ा होता है?"

"नौ-दस इंच से छोटा तो मैंने देखा ही नहीं। इतने छोटे कछुए तो शायद भय के कारण नदी-तालाब से बाहर निकलते ही नहीं।"

बच्चे की माँ ने कौतूहल से पूछा—"कछुए कितने बड़े हो जाते हैं?"

"ढाई-तीन फुट पीठ के कछुए यमुना नदी में बहुत से मिल जाते हैं। यह कछुए पाल लिये जाते हैं। बहुत से लोग इनकी पीठ पर बैठकर नदी पार कर लेते हैं।"

"इस संसार में कितनी विचित्र वस्तुएँ और प्रथाएँ हैं!" उसने विस्मय प्रकट किया।

प्राहा में मैने रूमानिया जाने का भी निमंत्रण स्वीकार कर लिया था और जर्मनी आने का भी। जर्मनी में छः दिन ही ठहर सकता था। बर्लिन देखने की बहुत ही उत्सुकता थी। दोपहर के भोजन के बाद लेखक-संघ के एक सदस्य शैलनवर्गर के साथ मै बर्लिन रवाना हो गया।

जर्मनी इस समय पूर्वी और पश्चिमी भागों में बँटा हुआ है। बर्लिन के भी पूर्वी और पश्चिमी भाग हैं। पूर्वी भाग से पश्चिमी भाग में और पश्चिमी भाग से पूर्वी भाग में प्रवेश करते समय पासपोर्ट और परवाने की जांच-पड़ताल होती है। नगर के भीतर दोनों भागों में आने-जाने में मोटर से आते-जाते समय ही गाड़ी ले जाने का आज्ञा-पत्र देखा जाता है। पैदल लोग बिना किसी बाधा के आ-जा सकते हैं। बर्लिन में यातायात के दूसरे साधनों के अतिरिक्त सुरंग-रेल और मकानों की छतों पर से चलने वाली रेल (सिटी-रेलवे) भी है। यह रेलें पूर्व से पश्चिम और पश्चिम से पूर्व लगातार चलती रहती है। ठहरा तो पूर्वी बर्लिन में था परन्तु दो-तीन बार पश्चिमी भाग में भी घूम-फिरकर देख आया।

लन्दन की ही तरह यूरोप के दूसरे नगरों में और बर्लिन में भी समृद्ध अमीर लोगों की बस्तियां और उनके उद्योग-धन्धे नगर के पच्छिम भाग में थे और गरीब बस्तियां पूर्वी भाग में। इस विभाजन का कारण प्राकृतिक है। यूरोप में वायु की गति पश्चिम से पूर्व की ओर रहती है। उत्तर-भारत में भी वही बात है। कारखानों और मीलों की चिमनियों के धुए से बचने के लिये उन्हे नगर के पूर्वी भाग में बनाया गया है इसलिये समृद्ध लोग पश्चिमी भाग में रहना पसन्द करते हैं। यही बात बर्लिन में भी थी परन्तु जर्मनी पार्लियामेंट (रीख) और बड़े-बड़े सरकारी दफ्तर और हिटलर का स्थान और नाजियों के अड्डे अधिकांश में पूर्वी भाग में ही थे।

बर्लिन पर आक्रमण के समय सोवियत सेना ने पूर्व की ओर से ही नगर में प्रवेश किया था। बर्लिन के भाग्य का निबटारा भी इसी भाग में हुआ था। सोवियत सेना के बर्लिन में पहुँच जाने पर भी नाजी लड़ते रहे थे। सोवियत बममारों ने इस भाग की अक्षरशः ईट से ईंट बजा दी थी। पूर्वी बर्लिन पर हुई बम-वर्षा का उदाहरण केवल

स्तालिनग्राद में ही मिल सकता था। शायद यहाँ उससे भी अधिक हुई हो। पूर्वी बर्लिन का अधिकांश भाग इस समय भी ध्वस्त कब्रिस्तान जैसा है। छतों के बिना खड़ी दीवारें कब्रों के सिरहाने खड़ी प्रकाण्ड शिलाओं की तरह जान पड़ती हैं। जिस स्थान पर पुरानी पार्लियामेंट थी, वह अब मलबे से भरा स्थान है। पश्चिम की ओर जब अमरीकन, ब्रिटिश और फ्रांसीसी सेनाओं ने बर्लिन में प्रवेश किया था, नाजी उससे पहले उखड़कर हथियार डाल चुके थे, इसलिये उस भाग में उतना ध्वंस होने का कारण नहीं था। पूर्वी भाग में युद्ध से पहले के मकान कहीं-कहीं दिखाई देते हैं। जो हैं उनमें भी मरम्मत के बड़े-बड़े चिन्ह दिखाई देते हैं।

बर्लिन में घूमते-फिरते प्रतिक्षण युद्ध की भीषण विभीषिका की चेतना बनी रहती थी। एक बम के विस्फोट का कितना धमाका उससे कितना विनाश और उसका कितना आतंक होता है! यहाँ कई दिन तक प्रतिक्षण रात-दिन मशीनगनों और राइफलों की गोलियां ओलों की तरह बरसती रही हैं और तोपों के सैकड़ों गोले और बम प्रति मिनट बरसते रहे हैं। छः-सात मंजिल की इमारतों के अरर्रा कर गिर पड़ने का दृश्य कैसा होता है। यहाँ प्रत्येक गली, बाजार में प्रतिक्षण अनेक इमारतें गिरती-रहती थीं। यह किसी भूचाल के प्राकृतिक कोप से नहीं, स्वयं मनुष्य की अपनी समझ के परिणामस्वरूप हो रहा था। बर्लिन ने कितने नगरों को यों बरबाद किया और फिर उस बरबादी को समुच्चय रूप में झेला। मन में कौतूहल होता था, युद्ध के समय यहाँ के निवासियों की क्या अनुभूति रही होगी और युद्ध के कारण नाजीवाद के आदर्शों के प्रति और युद्ध के प्रति आज सबकी भावना क्या है?

दिन में किसी समय शैलनबर्गर का साथ रहता था और किसी समय मिस जैलिंगर का। युद्ध की दुख-भरी स्मृतियां जगाने में संकोच होता था। शैलनबर्गर युद्ध से पहले भी कम्युनिस्ट पार्टी का सदस्य था। नाजी प्रभुत्व के समय उसका जर्मनी में रहना संकटापन्न था। वह युद्ध से पहले कम्युनिस्टों की धर-पकड़ के समय जर्मनी से भाग गया था और हालैंड की राह इंगलैंड चला गया था।

जैलिंगर युद्ध के समय निरंतर बर्लिन में भी रुकी थी। उस समय उसकी आयु तेरह-चौदह की थी। युद्ध के अनुभव उसे खूब याद थे और प्राणांतक भय की स्मृतियों के सम्बन्ध में बात करते भी उसका हृदय दहलता न था। सिगरेट के कश से धुएं का लम्बा तार छोड़ते हुए उसने कहा—समीप ही बम का विस्फोट होने पर जो प्रलयंकारी धमाका होता था उससे हृदय की गति पल भर के लिये रुक-सी जाती थी। बहुत से लोग मूर्छित हो जाते थे परन्तु जब बमों के विस्फोट और इमारतों के ढहने के धमाके का वातावरण सदा बना रहने लगा तो उससे कब तक आतंकित होते रहते? यह चेतना रहती थी कि किसी भी क्षण मारे जा सकते हैं। इच्छा होती थी कि हम पर बम गिरे तो ऐसे कि शरीर का पता भी न चले। ऐसा न हो कि घायल होकर चीखते रह जायं। कहीं भी रक्षा का आश्वासन न था। ऊपर मंजिलों में बम की मार का भय था और नीचे की मंजिलों और

तहखानों में ऊपर से मलवा गिरकर दम घुटकर मर जाने की आशंका। निरंतर बम वर्षा से बिजली के तार टूट गये थे, यातायात के साधन ट्राम, बस, सुरंग रेल और नगर रेल सभी बन्द हो गये थे। पानी के नल फट गये थे। नगर में कुएं कहाँ थे। अंधेरे में निर्वाह करने का अभ्यास हो गया। मुंह और हाथ धोने का प्रश्न ही क्या था, परन्तु प्यास लगने पर तो व्याकुलता होती ही थी। ऐसे समय कोई बर्तन, बोतल या टीन का डिब्बा लेकर स्प्री (बर्लिन के बीचोंबीच बहने वाली नदी) से गंदला जल ले आते थे और दो-चार घूंट पी लेते थे।

नाज़ी सिपाही छोटी मशीनगनें और लुइसगनें लिये घरों पर छापे मार-मारकर मर्दों को ढूढते फिरते थे कि वे बाहर निकलकर सोवियत आक्रमण का सामना करें। उस समय भी नागरिकों को विश्वास दिलाया जा रहा था कि बर्लिन पर सोवियत सेना का आक्रमण कुछ समय का ही संकट है, नाजी सेना निश्चय ही उन्हें नष्ट कर नगर की रक्षा करेगी। नाज़ियों की श्रेष्ठता और शक्ति का अन्ध अहंकार था। नागरिकों को विश्वास था कि अन्तिम विजय नाज़ियों की होगी। जिस समय नाज़ी अपने गुप्त हथियार निकालेंगे, क्षण भर में सोवियत सेना का ध्वंस हो जाएगा। हजारों लोग बमों के आतंक से पृथ्वी के नीचे रेलों की सुरंगों में जा छिपे थे। उन लोगों की लड़ाई के मैदान में लाने के लिये सुरंगों में नदी का पानी छोड़ दिया गया। हजारों लोग घुट-घुटकर मर गये।

सिगरेट का लम्बा कश छोड़ते हुये जैलिंगर बोली—"ऐसे आतंक में भी जीवन चलता था। उस समय भी जो कुछ खाद्य सामग्री या दूसरी वस्तुएं मिल सकती थीं, उन्हें लोग समेटकर रखने का यत्न करते थे और इन चीजों पर अधिक से अधिक मुनाफा कमाने की कोशिश करते थे। युद्ध तभी समाप्त हुआ जब लाल-सेना बर्लिन का दो तिहाई समेट चुकी थी। दूसरी ओर अमरीकन और अंग्रेजी सेनाओं ने शेष भाग पर कब्जा कर लिया था।

शैलनबर्गर से पूछा कि नाज़ीवाद के परिणाम में यह सब भुगत कर अब सर्व-साधारण जर्मन लोगों की नाज़ीवाद के प्रति कैसी धारणा है। उत्तर मिला कि सर्वसाधारण की तो नाज़ी सिद्धांतों से उस समय भी कोई सहानुभूति न थी। युद्ध के आरभिक भाग में नाज़ियों की सफलताओं ने साधारण जनता को सम्मोहित कर लिया था। नाज़ियों के कारण अपनी दुरवस्था देखकर वे उनसे विरक्त भी हो गये परन्तु नाज़ियों का कब्जा ऐसा गहरा था कि मुंह खोलने का अवसर किसी को न था। बहुत से लोग अब भी समझते हैं कि नाज़ियों का कार्यक्रम ठीक ही था। हिटलर ने केवल अपने जनरलों की राय की उपेक्षा करने की ही भूल की। स्थिति यह थी कि हिटलर की असम्भव आज्ञाओं को पूरा करने में यदि जनरल असफल रह जाते तो उन्हें प्राण-दंड दिया जाता। यदि जनरल हिटलर की आज्ञा की अव्यावहारिकता के प्रति शंका करते तो उन्हें आज्ञा भंग के अपराध में प्राण-दण्ड दिया जाता था। जनरल स्वयं हतबुद्धि हो रहे थे कि क्या करें। वे आज्ञा के प्रति कोई आपत्ति नहीं कर सकते थे। वे असफलता के उत्तरदायित्व से बचने के लिये प्रत्येक

बात के लिये रण-क्षेत्र से हिटलर को फोन कर निर्णय माँगते थे। ऐसी अवस्था में उन्हें अयोग्य समझकर दण्ड दिया जाता था। उनके स्थान पर नियुक्ति की आज्ञा पाने वाले जनरल नियुक्ति को ही प्राण-दण्ड समझ लेते थे। कुछ लोगों का अब भी विश्वास है कि समय आने पर नाज़ीवाद का कार्यक्रम अवश्य सफल होगा।

मैंने पूछा कि अब नाज़ीवाद के कार्यक्रम को व्यवहार में लाने के लिये साधन ही कहाँ है? उत्तर मिला कि ऐसे लोगों को आशा है कि कम्युनिज्म के बढ़ते प्रभाव से लोहा लेने के लिये अमरीकन और ब्रिटिश पूंजीपतियों को फिर जर्मनी को अपने रक्षक के तौर पर खड़ा करना पड़ेगा। वही नाज़ीवाद और जर्मनी के पुनरुत्थान का समय होगा।

मैंने फिर भी प्रश्न किया—"अमरीकन और ब्रिटेन एक बार कम्युनिज्म को रोकने के लिये नाज़ीवाद को बढ़ावा देने की चाल का परिणाम देख चुके है क्या नाज़ी लोग आशा करते हैं कि अमरीका और ब्रिटेन अपनी भूल फिर दोहरायेंगे?"

उत्तर मिला—"पश्चिम जर्मनी में अमरीकी लोग पूंजीवाद की रक्षा के लिये अरबों डालर खर्च कर रहे हैं। नाज़ी लोगों का विचार है कि अमरीकन और ब्रिटिश अपनी भूल समझें या न समझें; वे यदि कम्युनिज्म को कहीं रोकना चाहते हैं तो उनके सामने दूसरा कोई उपाय है ही नहीं।"

एक बार और पूछा—"तो क्या नाज़ी लोग सदा ही अमरीकन और पूंजीपतियों के प्यादे बनना स्वीकार करते रहेंगे?" इसका भी उत्तर था—"नाज़ियों के पास इसके अतिरिक्त कोई दूसरा अवसर या उपाय भी तो नहीं।"

बर्लिन

बर्लिन दो भागों में बंटा हुआ है। पूर्वी बर्लिन के लोग अपने आपको डी० डी० आर०—डैमोक्रेटिक ड्यूट्स रिपब्लिक कहते हैं और पश्चिम भाग को अमरीकन भाग पुकारते हैं। पश्चिम भाग के लोग अपने आपको डैमोक्रेटिक भाग और पूर्वी भाग को रूसी भाग कहते हैं। दोनों भागों की सीमाएं सभी जगह मिली-जुली हैं। जिस स्थान पर पहले जर्मन पार्लियामेंट और चांसलरी थी उसके सम्मुख तो दोनों भागों के बीच में एक पूरा पार्क पड़ा है परन्तु कई स्थानों पर सड़क या गली के इस ओर की दूकानें पूर्वी भाग में हैं और दूसरी ओर की पश्चिम भाग में।

पूर्वी और पश्चिमी जर्मनी के बंटवारे की तुलना हिन्दुस्तान और पाकिस्तान के बंटवारे से नहीं की जा सकती। वहाँ लोगों को प्राणों के भय से एक भाग से दूसरे भाग में नहीं भागना पड़ा है। जिन लोगों को अपनी सम्पत्ति छिन जाने का भय था या जो समाजवादी शासन में दुरावस्था की आशंका करते थे अपनी चल-सम्पत्ति समेटकर पश्चिम जर्मनी की ओर चले गये हैं। जिन लोगों की समाजवादी सिद्धांतों में आस्था थी या उस व्यवस्था में अपना भविष्य उज्ज्वल बना सकने की आशा रखते थे, पश्चिम भाग छोड़कर पूर्व में आ गये। मुख्यतः बड़े-बड़े जमींदार कारखानेदार और पूंजीपति पश्चिम भाग में चले गये हैं। सचेत मजदूर, कलाकार और लेखक पूर्वी भाग में आ बसे हैं। युद्ध से पहले अगफा, ज़ाइस्स वगैरा के कारखाने पूर्वी भाग में थे। इन लोगों ने पश्चिमी भाग में जाकर अपना नया व्यवसाय बांध लिया है, परन्तु उनके मजदूर पूर्वी भाग में ही रह गये हैं और वे भी अपने कारखाने चला रहे हैं। पूर्वी भाग में इस समय भी कैमरे, टाइपराइटर आदि खूब बनते हैं और उनकी माँग पूर्वी यूरोप के समाजवादी देशों में काफी है।

यह बात नहीं कि पूर्वी भाग से सभी कारखानेदार या छोटे-मोटे औद्योगिक व्यवसायी भी पश्चिम की ओर भाग गये हों। ऐसे बहुत से व्यवसायी अभी तक पूर्वी जर्मनी में अपने अपने निजी व्यवसाय चला रहे हैं और उन्हें बढ़ा भी रहे हैं। इस पहेली को समझने के लिये पूर्वी जर्मन प्रजातन्त्र की समाजवादी आर्थिक व्यवस्था के सम्बन्ध में दो शब्द आवश्यक हैं। खेती यहाँ अब प्रायः सामूहिक स्वामित्व में वैज्ञानिक ढंग और यंत्रों से हो रही है। दुकानें तीन प्रकार की हैं। अधिकांश और बड़ी-बड़ी दुकानें तो राष्ट्रीय सम्पत्ति हैं और राष्ट्रीय नियंत्रण में चल रही हैं। कुछ दुकानें सहकारी ढंग पर चल रही हैं और कुछ छोटी दुकानें पूर्णतः दूकानदारों की निजी सम्पत्ति हैं। बहुत बड़े-बड़े उद्योग अथवा ऐसे उद्योग जिनके स्वामी नाजीवाद के समर्थक थे राष्ट्रीय स्वामित्व में ले लिये गये हैं परन्तु अनेक अच्छे खासे बड़े कारखाने अब भी व्यक्तिगत सम्पत्ति हैं। इन कारखानों के मजदूरों

अथवा कार्यकर्ताओं को वह सब सुविधाएं मालिकों को देनी पड़ती हैं जो राष्ट्रीय समाजवादी उद्योगों में कार्यकर्ताओं को दी गयी हैं। इन व्यवसाइयों को सम्पत्ति और आमदनी पर काफी कर देने पड़ते हैं। पैदावार बढ़ाने पर जो लाभ इन कारखानों को होता है उस पर समाजवादी राष्ट्रीय सरकार ने कोई बन्धन नहीं लगाया है। सरकार के सामने इस समय सबसे अधिक महत्व पैदावार बढ़ाने का है। निजी सम्पति के कारखानों को भी सरकार मशीनें और माल उधार देकर उनकी सम्पत्ति बढ़ाने में सहायता देती है। इस ढंग से इन व्यवसायियों के लाभ में जो बढ़ती होती है उसका वे लोग स्वतन्त्रता से उपयोग कर सकते हैं। पूर्वी भाग में शेष रह गये पूंजीपतियों में कोई आतंक का भाव नहीं है। उनके लिये फोर्ड, लिप्टन, गुडइयर और बी० ओ० सी० की भांति व्यावसायिक साम्राज्य कायम कर लेने की सम्भावना तो नहीं है परन्तु स्वतन्त्रता से व्यवसाय चलाकर मनमाने ऐश की जिन्दगी के लिये दो-चार मोटरें और अच्छा-खासा बंगला बनाकर रह सकने का अवसर जरूर है।

स्तालिन एल्ले

इसमें तो सन्देह नहीं कि पूर्वी बर्लिन का अधिकांश भाग कब्रिस्तान के खंडहर-सा जान पड़ता है परन्तु स्तालिन एल्ले में चले जाइये तो मानो स्वप्न लोक में पहुँच गये। अंग्रेजी में एल्ले शब्द का अर्थ गली होता है परन्तु स्तालिन एल्ले यदि गली है तो बाजार और सड़क क्या होगी। स्तालिन एल्ले दो मील के लगभग लम्बी होगी! चौड़ाई नयी दिल्ली की चौड़ी से चौड़ी सड़क से कम से कम तिगुनी समझिये। एल्ले के बीचोंबीच खूब चौड़ी सड़क के बराबर चौड़ी फुलवाड़ी-सी चली गयी है और इसके एक ओर आने की तथा दूसरी ओर जाने की सड़कें हैं। दोनों ओर सड़कों जितनी चौड़ी सीमेंट से बनी चिकनी पटरियां हैं। दोनों ओर की इमारतें लगातार सात या आठ मंजिल की हैं। ऐसी भी इमारतें हैं जो तेरह मंजिल की हैं—उदाहरणतः बच्चों के सामान की दूकानें। इन इमारतों में नीचे दूकानें हैं और ऊपर रहने के लिये फ्लैट। अधिकांश में यहाँ मजदूरों की बस्ती है। ये सब फ्लैट सभी आधुनिक सुविधाओं से चुस्त हैं। इमारतों और सड़क की सीध की एकरसता से ऊब न उठें, इसलिये स्थान-स्थान पर दिल्ली के कनाट सर्कस से कुछ छोटे चौक कुछ-कुछ अन्तर पर हैं। दोनों ओर की इमारतों की पंक्तियों के पीछे भी नये मकानों की पंक्तियां बनाई जा रही हैं। बच्चों को दूकान की छत पर चढ़कर देखा तो इन इमारतों के पीछे खंडहर ही खंडहर बिछे हुए थे।

बर्लिन में नई इमारतें बनाने की बड़ी भारी समस्या तो है ही परन्तु इमारतें बनाने के लिये खंडहरों का मलवा उठाकर स्थान साफ करने की समस्या भी कम विकट नहीं है। स्तालिन एल्ले के अतिरिक्त फ्रेडरिख स्त्रास्सा आदि सड़कों पर भी नई बनी इमारतों की पंक्तियां नजर आती हैं। जहाँ के लोगों को भरोसा है कि भावी वर्षों में निर्माण की उनकी गति अधिक होगी अब तक उनकी शक्ति साधनों को बनाने में लगी है; अब वे इमारतें और पदार्थ बना सकेंगे। उनका दावा है कि छः वर्षों में बर्लिन में कहीं भी टूटा या गिरा मकान शेष नहीं रह जायेगा। यह दावा मामूली नहीं। बर्लिन के आकार का अनुमान लगाने के लिये यह याद रखना सहायक होगा कि युद्ध से पहले बर्लिन की जनसंख्या पैंतालीस लाख अर्थात् आधुनिक दिल्ली से दूनी से अधिक थी।

●

युद्ध के खंडहर और नई दुनिया

पश्चिम बर्लिन में उतना ध्वंस नहीं हुआ था क्योंकि युद्ध का फैसला पूर्वी भाग में हो चुका था और नाजी शासन के केन्द्र भी पूर्वी भाग में थे। पश्चिम बर्लिन के लोगों ने लाल सेना के हाथों में पड़ने से बचने के लिये अमरीकन और ब्रिटिश सैनाओं का स्वागत ही किया था। फिर भी इस भाग में लन्दन आदि की अपेक्षा बहुत अधिक ध्वंस हुआ था। इस भाग में भी इमारतें खूब तेजी से बन रही हैं। कहा जाता है कि इस भाग का अधिकांश बड़ा व्यवसाय अमरीकनों और अंग्रेजों के कब्जें में है। पूँजीवादी व्यवस्था के दूसरे नगरों की तरह दुकानों की संख्या बहुत काफी है। दुकानें छोटी-छोटी हैं। कुछ 'लंदन' के 'सेल्फरिज' की तरह बड़ी भी हैं। उदाहरणतः के० डी० डल्ब्यू और लन्दन के 'वूलवर्थ' की शाखा भी है। दुकानों में ग्राहकों की संख्या अधिक नहीं दिखाई दी। पूर्वी बर्लिन में दुकानों की संख्या तो कम है परन्तु उनका आकार बहुत बड़ा है और ग्राहकों की भीड़ भी खूब रहती है। सम्भवतः दुकानों की संख्या आवश्यकता से कम है। पश्चिम भाग में वह आवश्यकता से अधिक जान पड़ती हैं। वही बात खान-पान की दुकानों की है। पश्चिम बर्लिन में ये दुकानें खूब चमकीली दिखाई देती हैं। कोकाकोला पीती अधनंगी मुस्कराती लड़कियों के चित्र भी वहाँ खूब हैं परन्तु ग्राहकों की भीड़ नहीं दिखाई देती। पूर्वी भाग में ही व्यक्तिगत छोटे-मोटे होटल या खान-पान की दुकानें हैं जरूर परन्तु उनकी संख्या कम है। बड़ी दुकानों में तो खूब भीड़ रहती है।

दोनों भागों में मूल्यों के सम्बन्ध में काफी उलझन रहती है। दोनों भागों में मार्क का सिक्का चलता है परन्तु दोनो का अपना-अपना मार्क है और दूसरे भाग में नहीं चल सकता पौंड देकर मार्क लेने पर पूर्व में एक पौंड के केवल छः मार्क मिलते हैं और पश्चिम में बारह। अधिकांश में अपने-अपने क्षेत्रों में मार्क की क्रय-शक्ति प्रायः समान ही है। मोज़े, रुमाल या छोटी-मोटी चीजें जितने मार्क में पूर्वी भाग में मिलती हैं उतने ही मार्क में पश्चिम में। पौंड देकर सौदा खरीदने वालों को निश्चय ही पश्चिम में सुविधा रहती है।

सिक्के के सरकारी विनिमय दरों के साथ-साथ दूसरा भाव भी चलता है। इस भाव का कारण है पश्चिम के पूंजीपतियों की पूर्वी मार्क की साख को गिराने की चेष्टा। पश्चिमी भाग में पूर्व का सिक्का मिलने में कोई कठिनाई नहीं है। यात्री अपना पौंड वा डालर बैंक से तुड़ाते हैं। एक पौंड के बारह पश्चिम मार्क लेकर दूसरी दुकान से उसके पूर्वी मार्क ले लेते हैं। एक पश्चिमी मार्क के बदले चार पूर्वी मार्क सुविधा से मिल जाते हैं। इस प्रकार पौंड के छः पूर्वी मार्क के सरकारी दर के बजाय पौंड के अड़तालीस पूर्वी मार्क मिल

सकते हैं और तब पूर्वी भाग में जाकर खूब खरीदारी की जा सकती है। इससे पूर्वी भाग में आवश्यक पदार्थों की कमी हो जाती है।

पश्चिम बर्लिन में पूर्वी भाग का सिक्का इतनी संख्या में वहाँ से आ जाता है? इसका रहस्य यह है कि जर्मनी भूमि का दो-तिहाई भाग पूर्वी समाजवादी प्रजातन्त्र सरकार में है। बर्लिन प्रायः पूर्वी भाग से घिरा हुआ है। ऐसे जर्मन बड़े-बड़े किसान या सम्पत्ति के स्वामी दूसरे लोग जिन्हें अपनी सम्पत्ति समाजवादी व्यवस्था द्वारा जब्त कर ली जाने की आशंका थी, अपनी सम्पत्ति बेच-बेचकर पश्चिम बर्लिन के पूँजीवादी बैंकों में पूर्वी मार्क जमा कराते रहते थे। यह सब धन पूर्वी जर्मनी के सिक्के के रूप में ही आता था। इसके अतिरिक्त पश्चिम जर्मनी के पूँजीपति व्यवसायी समाजवादी सरकार के सिक्के का मूल्य घटाकर उनकी साख बिगाड़ना चाहते थे। इसके लिये करोड़ों का घाटा उठा लेना भी बड़ी बात नहीं। जर्मनी में भी पश्चिमी सिक्के का मूल्य बहुत कम है, अर्थात् दो पश्चिमी मार्क एक पूर्वी मार्क के बराबर गिने जाते हैं। विनिमय का यह अस्वाभाविक दर धीरे-धीरे गिर रहा है, या पूर्वी मार्क का विनिमय दर पश्चिम जर्मनी में भी बढ़ रहा है। दो वर्ष पूर्व पश्चिमी मार्क के आठ पूर्वी मार्क मिलते थे। दर आठ से छः आया, अब चार ही है। कभी पौने चार ही मिलते हैं।

आवश्यक पदार्थों की सहूलियत किस ओर है, यह विनिमय के कृत्रिम दरों से नहीं जाना जा सकता है। सीधी कसौटी यह है कि स्मगलिंग या चोरी से माल किस ओर से किस ओर जाता है? यह प्रकट है कि मक्खन, पनीर, माँस, अण्डे आदि पूर्वी जर्मनी से पश्चिम की ओर बिक्री के लिये जाते है। कुछ लोग तो चोरी से अण्डों का अच्छा-खासा व्यवसाय कर लेते हैं। यदि पूर्वी जर्मनी से दो मार्क के एक दर्जन अण्डे चोरी से पश्चिम में पहुंचा दिये जायँ तो वहाँ के चार साढ़े चार पश्चिम मार्क में बिक जायेंगे। चार पश्चिम मार्क के बदले पश्चिम में ही सोलह पूर्वी मार्क मिल सकेंगे। एक ही चक्कर में आठ गुना लाभ हो सकेगा। पश्चिम बर्लिन से पूर्वी बर्लिन में काफी, चाय, सिगरेट और जूते चोरी से आते है।

रोटी पर टिकट

मकानों या निवास-स्थान की कठिनाई दोनों ही ओर है। दोनों ओर इमारती काम जोरों से चल रहा है। पश्चिम में इसके लिये अमरीका माल और रुपया दोनों ही खूब उधार दे रहा है। पूर्वी भाग में निवास-स्थान के लिये दरखास्त देकर काफी समय प्रतीक्षा करनी पड़ती है। सरकार की ओर से प्रयत्न रहता है कि दो व्यक्तियों के लिये बने स्थान में तीन निर्वाह कर ले। पश्चिम भाग में स्थान की समस्या खर्च कर सकने की शक्ति पर निर्भर करती है। किराये बहुत अधिक हैं और उस पर भारी पगड़ी भी देनी पड़ती है।

पूर्वी जर्मनी में सेब के अतिरिक्त दूसरे फल, नारंगी, केला आदि बहुत ही कम दिखाई देते हैं। पश्चिम भाग में यह फल जगह-जगह नजर आते हैं परन्तु दाम बहुत अधिक है। चोरी से आयात-निर्यात पर दोनों ओर से रोक-थाम की जाती है परन्तु लोगों के आने-जाने पर रोक-थाम बहुत कठिन है। पश्चिम बर्लिन के लोग प्रायः ही पूर्वी सिक्का जेब में डालकर इस ओर की खान-पान की दुकानो में आकर खा-पी जाते थे। परिणाम में पूर्वी बर्लिन के लोगों को बहुत कठिनाई भुगतनी पड़ती थी इसलिये कुछ समय से पूर्वी बर्लिन की दुकानों में खरीददारी के समय अपना टिकट दिखाने का नियम कर दिया गया है। बिना टिकट दिखाये कोई व्यक्ति खाने-पीने की वस्तुए नही खरीद सकता। यही बात कैमरों और टाइपराइटर वगैरह के बारे में भी है।

चोरी से निर्यात की रोक-थाम अच्छी खासी समस्या है। कई बार काफी बड़ी मशीनों और माल की भी चोरी हो जाती है। ऐसा साहस करने वाले लोग छुरे ही नहीं, पिस्तौल, छोटी मशीनगन या लुइसगन का भी उपयोग करने से नहीं चूकते। मेरे बर्लिन जाने से कुछ ही दिन पूर्व, बर्लिन के एक सर्कस के घोडों को पश्चिम में भगा ले जाने का प्रयत्न किया गया था। पूर्वी बर्लिन में एक बहुत प्रसिद्ध और पुराना सर्कस है। समाजवादी व्यवस्था कायम होने पर सर्कस के मालिक ने सर्कस के कार्यकर्त्ताओं के साथ सहकारी समिति के रूप में सर्कस चलाना स्वीकार कर लिया था। सब लोगों के उत्साह से काम करने पर सर्कस ने और भी उन्नति की। मालिक हिसाब में कुछ गड़बड़ करने लगा। गड़बड़ लाखों मार्कस के करीब की थी। हिसाव के मामले में सहयोगियों में कुछ झगड़ा हो गया मालिक नाराज होकर सर्कस से अलग हो गया। उसका विश्वास था कि सर्कस उसकी सूझ और व्यवस्था के कौशल पर ही निर्भर करता है परन्तु सर्कस चलता ही रहा। मालिक नाराज होकर पश्चिम बर्लिन चला गया। सर्कस का डेरा पश्चिम बर्लिन की सीमा से कुछ ही गज इस ओर है। इस सर्कस की विशेषता है इसके सधे हुए घोड़े। सर्कस जगत में ये घोड़े बहुमूल्य गिने जाते हैं।

सर्कस का मालिक पश्चिम बर्लिन में सीमा के उस पार सर्कस के समीप ही रहता था। उसने पश्चिम बर्लिन से पन्द्रह-बीस छोकरे, अठारह-बीस साल की उम्र के चोरी के लिये तैयार कर लिये। उन्हें घोड़ों के बांधने के स्थान के विषय में सब कुछ समझा दिया। लड़कों को खूब शराब पिलाई। संकट के समय बहादुरी दिखाने के लिये एक-एक पिस्तौल दे दिया। इनाम के दस-दस मार्क का वायदा था।

योजना यह थी कि रात में जिस समय सर्कस आरम्भ होने पर सब लोग व्यस्त हो जायँ, लड़के घोड़ों को खोलकर पश्चिम बर्लिन की सीमा में ले आयें। पश्चिम की सीमा में कदम रख लेने के बाद पूर्वी पुलिस कुछ नहीं कर सकती थी। अमरीकन फ़िल्म देखकर चोरी में ज़ोर आजमाने का शौक पूरा करने गये छोकरे ने नशे में या शेखी में घोड़ों की रखवाली करने वाले चौकीदार को डराने के लिये उस पर एक गोली चला दी। गोली निशाना चूक गई। चौकीदार ने लड़के को गर्दन से पकड़कर जमीन पर पटक दिया। लड़का अपने साथियों के नाम ले लेकर पुकारने लगा। उनमें से काफ़ी लोग पकड़े गये। उनकी खूब पिटाई हुई और उन्होंने सब कुछ बक दिया। इस प्रकार की चोरियों के बहुत प्रयत्न होते रहते हैं। खास तौर पर इमारती सामान के लिये चोरियां प्राय: छोकरों को शराब पिलाकर इनाम और हथियार देकर कराई जाती हैं। पश्चिम बर्लिन में ऐसे बेकार अवारागर्द लड़कों की काफ़ी संख्या बताई जाती है।

पश्चिम बर्लिन में अमरीकन फ़िल्मों का बहुत जोर है। फ़िल्मों के अतिरिक्त विनोद के दूसरे साधन भी कम नहीं हैं। लंदन, पैरिस जैसी नाइट क्लबें और कैबरे, जहाँ पैसा खर्च सकने पर मदिरा और नारी जिस रूप और मुद्रा में चाहें मिल सकती हैं। गाहक ढूँढ़ने के लिये आतुर किराये की लड़कियां भी मौजूद हैं। इस दृष्टि से पूर्वी भाग कुछ सूना-सा लगता है। यहाँ भी कई सिनेमा हैं, आपेरा हैं और नाटक का रंगमंच भी है, परन्तु मीना बाजार नहीं है। यहाँ रंगमंच पर 'प्राख्त' के यथार्थवाद का बहुत जोर है। प्राख्त, भाव-व्यंजना को ही अभिनय और नाटक में सब कुछ समझता है। रंगमंच पर दृश्यों द्वारा भूमिका प्रस्तुत करना भी वह नाट्यकला की न्यूनता ही समझता है। एक अंग्रेजी नाटक 'भरती का अफ़सर' जर्मन में हो रहा था। रंगमंच पर साज सामान द्वारा वातावरण उपस्थित करने का कोई प्रयत्न नहीं था परन्तु अभिनय कला और कथा-वस्तु का गठन बहुत ही जमा हुआ और सरस था।

कैबरे

फ्रेडरिक स्त्रास्सा चौक में एक खूब बड़ी इमारत की ओर संकेत कर शैलनबर्गर ने बताया कि यह बहुत प्रसिद्ध कैबरे हैं, चलोगे ? तुरंत स्वीकार कर लिया। मन में गुदगुदी थी, यहाँ का कैबरे भी देखा जाय। कैबरे के यहाँ भी हैं। इसे सम्भवत: विदेशी यात्रियों से छिपाया जाता है। लंदन, पैरिस, वियाना और जेनेवा में कैबरे छोटी-छोटी जगहों में सीमित गाहकों के लिये होते हैं। दाम काफी लगता है। कैबरे की विशेषता नंगे नाच और दूसरे प्रकार की स्वच्छन्दता होती है। इस कैबरे के हाल के भीतर जाकर विस्मित रह गया। हाल क्या, सर्कस का पंडाल ही समझिये। हम लगभग कार्यक्रम आरम्भ होने के समय ही पहुंचे थे। भीतर हजार आदमी से क्या कम रहा होगा।

विस्मय प्रकट किया—"यह कैबरे है! लंदन, वियाना, जेनेवा में तो कैबरे कुछ और ढंग का होता है। इतना बड़ा नहीं होता!"

शैलनबर्गर ने मेरा अभिप्राय समझा—"हाँ, वैसा कैबरे पहले यहाँ भी होता था। पश्चिम भाग में अब भी है। यह दूसरे ढंग का सार्वजनिक कैबरे है। युद्ध के पश्चात् व्यवस्था समाजवादी सरकार के हाथ में आने पर सबसे पहले यह इमारत बनाई गयी थी। उस समय सब ओर ध्वंस ही ध्वंस था। ज़रूरत थी, कोई एक ऐसी जगह तो हो जहाँ लोग संध्या समय घंटे दो घंटे के लिये बैठ सकें। इस हाल में बारह सौ आदमी बैठ सकते हैं और यह सदा ही ठसाठस भरा रहता है। दोपहर बाद से रात तक तीन जमाव लगते हैं।"

पश्चिमी यूरोप के कैबरे में तो शराब बहती है। इस कैबरे के भीतर तो नहीं, परन्तु बाहर बरामदे में बियर मिल सकती थी। ह्विस्की, ब्रांडी, वगैरा कुछ नहीं। बियर भी एक बार में आधा गिलास; प्यास में गला सूख रहा हो तो कुछ सहायता मिल जाये। कार्यक्रम में कई प्रकार के मनोरंजन थे। कुछ सर्कसी खेल भी थे। गान, वाद्य और नाच तो था ही। सबसे अधिक थे प्रहसन! उनके वार्तालाप ऐसे थे कि लोग हंसते-हंसते दोनों हाथों से पेट को पकड़ लेते थे। शैलनबर्गर हंसी के मारे कुछ बता ही न पा रहा था। वह हंसी रोककर जब तक एक वाक्य का अनुवाद करे तब तक मंच पर कोई दूसरी बात और भी अधिक हास्यजनक हो जाती और उसके कंधे हिलने लगते। वह बार-बार खेद प्रकट कर कहता—हास्य का अनुवाद तो कठिन ही होता है न, और फिर यह लोग अनुवाद करने का अवसर ही नहीं देते। वातावरण और भाव-भंगी से स्वयं मेरे होंठों पर भी मुस्कान आ जाती थी। मैं वार्तालाप समझने का प्रयत्न छोड़ मन ही मन लन्दन, जेनेवा और पूर्वी बर्लिन, प्राहा के कैबरे में मिलने वाले आनन्द और मनोरंजन की तुलना कर रहा था। प्राहा के एक कैबरे में भी ऐसे ही खूब हंसाने वाले प्रहसन देखे थे।

विनोद, मनोरंजन और खेल के प्रसंग में एक और बात कह दूं। घर से चलते समय नन्दू ने एक ही अनुरोध किया था—'मेरे लिये विलायत से गुलेल जरूर लेते आइयेगा।' प्राहा में जब भी बाजार जाता दुकानों में गुलेल ढूंढता फिरता। लड़कों के खेलों की चीजों की दुकानों में फुटबाल, गेंद-बल्ला, भाला, तीर-कमान, बरफ पर फिसलने और दौड़ने की चीज़ें, सभी कुछ था परन्तु गुलेल कहीं न मिली। खयाल था, जर्मन लोग तो अपने लड़कों को शिकार करना जरूर सिखाते होंगे, बर्लिन में गुलेल जरूर मिल जायेगी। पूर्वी बर्लिन में भी कई दुकानों पर देखा, स्तालिन एल्ले की तेरह मंजिल की दुकान में भी तलाश किया। गुलेल न दिखी तो बिक्री करने वाली लड़की से बात की—"एक गुलेल की जरूरत है।"

लड़की ने वितृष्णा से होंठ सिकोड कर उत्तर दिया—"किसी दुकान पर नहीं मिलेगी। यह वस्तु खेल की चीजों की सूची में नहीं है। चिड़िया मारना भी कोई खेल है?"

उसका अहिंसावाद कुछ जंचा नही। "यहाँ यह तीर कमान और छर्रे की हवाई बन्दूक तो बिकती है। इन चीजो से चिड़िया नहीं मारी जा सकती!"

लड़की ने उत्तर दिया—"यह सब चिड़िया मारने के लिये नही है। यह तो शिक्षाप्रद खेल है। गुलेल तो केवल मात्र चिड़िया, गिलहरी मारने के लिये ही है। जरूर ही चाहिए तो पश्चिम भाग में जाकर खरीद लो। वहीं लोग अपने बच्चों को ऐसे वाहियात खेल खेलने देते है।"

उपदेश तो सुन लिया परन्तु नन्दू का छोटा-सा आग्रह पूरा करना ही चाहता था। दूसरे दिन पश्चिम बर्लिन के बाजार में जैलिंगर के साथ जिस दुकान में गया तुरन्त गुलेल मिल गई। एक ही नहीं बहुत-सी किस्में मौजूद थीं और उसके साथ सुविधा से चिड़िया मार सकने के लिये कांटेदार छर्रे-वाली बन्दूकें और पिस्तौल भी थीं। बात तो छोटी-सी है परन्तु जीवन में आर्थिक व्यवस्था का परिवर्तन लोगों के विचारों और मनोवृत्ति को कैसे बदल देता है।

पूर्वी बर्लिन में लाल सेना का स्मारक बहुत भव्य और विशाल बना है। खूब प्रशस्त एक बाग है, लाहौर या श्रीनगर के शालीमार बाग या निशात बाग के ढंग पर। बाग के एक के बाद एक तीन भाग है, तीन सीढ़ियां, मंजिलों की तरह। एक-एक सीढ़ी एक-एक मैदान है। पहले मैदान से दूसरा और दूसरे से तीसरा प्रायः पन्द्रह फुट नीचा है। तीनो भाग अपने में पूर्ण हैं। किसी भाग में रहने पर एक ही भाग दिखाई देता है। बीच में नहर और उसमें फव्वारे सभी भागों में एक-से है। मैदानों में दोनों ओर बजरी और सीमेंट की खूब बड़ी-बड़ी शिलाओं पर लाल सेना के अभियान की कहानी चित्रों में उत्कीर्ण है। पहले मैदान के बीचोंबीच ऊंचे स्तम्भ पर रूसी माता की सिर झुकायें आंसू बहाती बहुत ही शोकाकुल विशाल मूर्ति है। अंतिम भाग के अन्त में मन्दिर के आकार का एक बहुत ऊँचा स्तम्भ है। इस स्तम्भ पर रूसी माता की मूर्ति के सामने एक रूसी सिपाही अपनी बन्दूक

झुकाये और बाईं बांह की गोद में जर्मन शिशुओं को रक्षा में लिये हैं। अपनी संतानों के लिये शोकाकुल रूसी माता को वह, जर्मन शिशुओं की रक्षा कर, अपने बलिदान की सार्थकता का आश्वासन दे रहा है। नीचे मंदिर में बैज़ंटाइन कला के नमूने में कांच के टुकड़ों से स्तालिन, लेनिन और कम्युनिस्ट जर्मन नेताओं के चित्र बने हैं। खूब बड़ी-बड़ी फूल-मालाएं इन चित्रों पर चढ़ाई रहती हैं।

●

रहस्यमयी सुरंग

उन दिनों बर्लिन में हाल में पकड़ी गई एक गुप्त अमरीकन सुरंग की बहुत चर्चा थी। पत्रों में उसके सम्बन्ध में विदेश से आये पत्रकारों और यात्रियों के वक्तव्य भी प्रकाशित हो रहे थे। यह सुरंग बर्लिन के अमरीकन रडार स्टेशन के क्षेत्र से पूर्वी बर्लिन की सीमा में टेलीफोन की मुख्य केब्लस (मोटी तारों) पर पहुँची हुई थी। पूर्वी बर्लिन के टेलीफोन केब्लस से सूत्र लेकर बर्लिन में पूर्वी जर्मन सरकार और देश के दूसरे भागों में होने वाली बातचीत को सुना जा रहा था। पूर्वी जर्मनी और पश्चिमी जर्मनी में आर्थिक व्यवस्था और सिद्धान्तों के जो भी भेद हों, या परस्पर होड़ हो, जर्मनी का यह बंटवारा अन्तर्राष्ट्रीय समझौते से हुआ है। नाज़ीवाद के विरुद्ध यह दोनों सरकारें परस्पर सहयोग और सहायता की संधि में बँधी हुई हैं।

पूर्वी जर्मन सरकार का कहना था कि इस प्रकार सुरंग बनाकर हमारी व्यवस्था के सम्बन्ध में जासूसी करना धोखा, नीचता और मित्र-द्रोह है। इस सम्बन्ध में उचित जांच होनी चाहिये और पश्चिम बर्लिन के अमरीकन अधिकारी इस विषय में जवाब दें क्योंकि सुरंग अमरीकन रडार स्टेशन से ही बनाई गई है। सुना है कि अमरीकन पत्रों का कहना था कि इस भेदिया सुरंग की जवाबदेही बर्लिन की अमरीकन सरकार पर डालना अन्याय है। यह सुरंग नाज़ियों के समय की बनी हुई होगी, इसका भेद पहले न मालूम हो सका होगा। जब पूर्वी जर्मन सरकार ने सरकारी तौर पर पश्चिमी बर्लिन में मौजूद मुख्य अमरीकन सैनिक अधिकारी से इस विषय में स्थिति साफ करने के लिये कहा तो उत्तर था—इस गम्भीर विषय में वाशिंगटन की सरकार ही उत्तर दे सकती है।

यह सुरंग देखने की बहुत उत्सुकता थी। स्वाभाविक है, ऐसी सुरंग देखने की उत्सुकता हजारों ही आदमियों को थी; और इस सुरंग पर बहुत बड़ा जमघट लगने लगा था। ऐसी भीड़ से सुरंग को हानि पहुँच जाने की आशंका थी और पूर्वी बर्लिन सरकार अपराध के प्रमाण स्वरूप सुरंग को जैसा का तैसा रखना चाहती थी इसलिये आज्ञा थी कि केवल गिने-चुने आदमी एक समय जाकर सुरंग देख सकें। सुरंग देखने के लिये आज्ञा-पत्र भी लेना पड़ता था।

शैलनबर्गर आज्ञा-पत्र ले आया था। हम लोग सुरंग देखने तीसरे पहर गये। धीमी-धीमी बूंदाबांदी हो रही थी। हम लोग पूर्वी बर्लिन से पूर्वी बर्लिन के विमान अड्डे पर जाने वाली सड़क पर पश्चिम बर्लिन की सीमा में बने अमरीकन रडार स्टेशन के सामने पहुंचे। तारों से घिरे हाते में रडार स्टेशन की इमारत सामने दिखाई दे रही थी। सड़क से

चार सौ गज अंतर होगा। सड़क के किनारे खड़ी बहुत बड़ी फौजी लारी में छोटा-सा दफ्तर बना लिया गया था। तीन नौजवान अफ़सर उसमें बैठे थे। आज्ञा-पत्र देखकर उनमें से एक हमें वह रहस्यमय स्थान दिखाने साथ चला।

सड़क के किनारे लकड़ियां गाड़कर मोमजामें के तिरपाल डाल दिये गये थे कि नीचे खुदी हुई कच्ची जमीन वर्षा के जल से बहकर गिर न जाये। लगभग सवा गज की गहराई पर टेलीफोन की तारें ले जाने वाले मोटे-मोटे नल दिखाई दे रहे थे। इन नलों में भरे तारों में बहुत चतुराई से पैबंद लगाये गये थे। बर्लिन के मुख्य केन्द्र की दिशा में से आने वाली तारों में पैबंद लगाकर उन्हें अमरीकन रड्डर स्टेशन की दिशा में नीचे गहराई में सड़क के उस पार ले जाया गया था। नीचे झुककर देखने से सड़क के धरातल से प्रायः आठ-दस फुट नीचे उज्जवल प्रकाश दिखाई दे रहा था। उस ओर से टेलीफ़ोन के तारों का एक गुच्छा आकर बर्लिन से बाहर जाती टेलीफोन की तारों में सावधानी से जोड़ दिया गया था।

नौजवान अफसर सड़क के इस पार इतना दिखाकर हमें सड़क के दूसरी ओर अमरीकन रड्डर स्टेशन की दिशा में ले गया। सड़क से दस-पन्द्रह गज पर तिरपालों की एक और आड़ खड़ी थी और उसके नीचे गहराई में उतरने का मार्ग था। नीचे एक सुरंग थी, प्रकाश से जगमग। सुरंग पूर्वी बर्लिन के टेलीफोन नलों की ओर से अमरीकन रड्डर स्टेशन की ओर जा रही थी। सुरंग खूब मजबूत और पक्की बनाई गयी थी। छत के नीचे लोहे और टीन की पट्टियों की मेहराब बनी हुई थी। दीवारों को गिरने से बचाने के लिये रेत के बोरे जमाकर लोहे के गजों से संभाल दिया गया था। नीचे फर्श पर लकड़ी बिछी हुई थी। सुरंग की ऊँचाई, इतनी थी कि अच्छा कद्दावर आदमी बिना सिर झुकाये सीधा चल सकता था।

नौजवान अफसर हमें पहले पूर्वी बर्लिन से आते तारों की दिशा में ले गया। इस ओर कुछ ही कदम पर एक छः इंच मोटा फौलादी दरवाजा था और दरवाजे के पीछे एक कमरा। कमरे में एक दीवार के सहारे आराम से बैठकर काम करने योग्य बेंच और स्टूल थे और उसके सामने की दीवार के सहारे एक पूरा टेलीफोन एक्सचेंज। पूरा कमरा एम्बेस्टो में मढ़ा हुआ था ताकि सीलन न आ सके। सर्दी से बचाव के लिये गरम पानी के नल भी अमरीकी रड्डर स्टेशन की ओर से आ रहे थे। इसी तरह ताजी हवा आती रहने का भी पूरा प्रबन्ध था। टेलीफोन एक्सचेंज के सामान में, कुछ एक चीजों पर ब्रिटेन में बनाने की मोहर थी, शेष सब पर अमरीका में बनाये जाने की मोहर स्पष्ट पढ़ी जा सकती थी। प्रकट था कि सामान कहाँ से आया है। टेलीफोन की तारों में बिजली की शक्ति बढ़ाने के लिये बैट्रियाँ भी रखी हुई थीं ताकि बीच में विघ्न से कम हो गयी बिजली की क्षति को पूरा कर दिया जाय और सन्देह न हो। सड़क की ओर से शत्रु अचानक न आ जाय, इसलिये उस ओर भी फौलाद का मोटा दरवाजा था। अमरीकन सेना के टेलीफ़ोन विभाग के लोग यहाँ बैठकर कई मास तक पूर्वी बर्लिन की टेलीफोन तारों के

सब संदेश सुनते रहे थे। सुरंग का दूसरा दरवाजा पश्चिमी बर्लिन के भाग में अमरीकन रड्डर स्टेशन की सीमा में खुलता था।

यह जानने का कौतूहल था कि इस सुरंग का भेद खुला कैसे? कुछ मास से टेलीफोन की इन लाइनों पर बातचीत में अस्पष्टता और बाधा अनुभव होने की शिकायतें आ रही थीं। टेलीफोन विभाग का अनुमान था कि केबल्स लगाते समय इंजीनियरों से कुछ भूलें हुई हैं। शायद जस्ते के नलों में सूराख या दरार रह जाने से भीतर तारों में सीलन पहुँच जाने से विद्युत की गति में रुकावट आती है। रड्डर द्वारा देखा गया कि गड़बड़ किस स्थान पर आरम्भ होती है। नलों को ठीक करने के लिये खुदाई करने पर नलों में से अमरीकन रड्डर की ओर जाती शाखाएँ देखकर विस्मय हुआ टेलीफोन के नक्शों में इन शाखाओं का कोई संकेत न था सन्देह हुआ। धरती के नीचे टेलीफोन की शाखा के मार्ग का अनुमान कर सड़क के पश्चिम ओर पन्द्रह गज के अंदर पर खुदाई की गयी। दस फुट की गहराई पर नीचे लोहे की चादर की रुकावट आ गयी। संदेह और भी बढ़ा। चादर से तुरन्त एक वर्गाकार टुकड़ा काट डाला गया। नीचे देखा, प्रकाश और सुरंग। लोगों के दौड़ने, भागने की आहट भी आयी और बहुत जोर से फाटक बंद कर देने का धमाका सुनाई दिया। जर्मन सिपाही मशीनगनें लेकर भीतर कूद गये। धरती के नीचे उज्जवल प्रकाश में पूरा टेलीफोन एक्सचेंज जल रहा था। तुरन्त ही फौलादी फाटक को खोला गया। कहा जाता है, उस समय भी सुरंग में अमरीकन रड्डर स्टेशन की ओर भागते कुछ व्यक्ति देखे गये थे। इसके बाद अमरीकन दिशा से बिजली का सम्बन्ध कट गया।

पूर्वी जर्मन सरकार ने इस स्थान को सुरक्षित रखा हुआ था। कोई भी विदेशी पत्रकार सुरंग को देख सकता था। अनेक ब्रिटिश और अमरीकन पत्रकार भी सुरंग को देख गये थे, परन्तु उन देशों के पत्रों में इस समाचार को दबा दिया गया था।

भारत लौटकर मैंने भी यहाँ मित्रों से जिज्ञासा की कि यहाँ पत्रों में बर्लिन जासूसी सुरंग पकड़े जाने के विषय में कोई समाचार छपा था या नहीं? उत्तर मिला—संक्षिप्त समाचार छपा था कि बर्लिन में पूर्वी और अमरीकन भागों के बीच की सुरंग पकड़ी गई है। सन्देह किया जाता है कि यह जासूसी के लिये अमरीकनों द्वारा बनाई गई थी।

हमारे यहाँ और प्राय: दूसरी जगह भी बर्लिन के पूर्वी और पश्चिमी भागों को रूसी और अमरीकन भाग पुकारने का चलन है। अमरीकन भाग में चौकसी के लिये बहुत से अमरीकन सैनिक दिखाई देते हैं। अमरीकन रड्डर स्टेशन और ऐसे कई दूसरे विभाग भी हैं। अमरीकन रड्डर स्टेशन से पूर्वी बर्लिन की सीमा के भीतर तक सुरंग बना सकना पश्चिम बर्लिन में अमरीकन शक्ति का प्रमाण है। विशेषज्ञों का अनुमान है, यह सुरंग चुपचाप बनाने में दो-तीन मास से कम समय न लगा होगा। इनमें मौजूद सामान और इस पर व्यय किये गये श्रम की लागत सत्तर अस्सी लाख या एक करोड़ रुपये से कम न होगी। पश्चिम बर्लिन की पुलिस पर भी अमरीकनों का पूरा कब्जा बताया जाता है। पूर्वी भाग में रूसी सैनिक कहीं दिखाई नहीं देते। पूर्वी जर्मनी में रूसी सैनिक न हों, यह नहीं

कहा जा सकता। याद है, बर्लिन के बाहर देहात में एक हाते पर लाल सेना का बोर्ड लगा देखा था और पोट्सडाम के समीप लाल सेना की टुकड़ी टेलीफोन की नई लाइनें भी लगा रही थी। बर्लिन नगर में रूसी सेना का आतंक नहीं जान पड़ता। लोगों में सोवियत से पाई सहायता के लिये कृतज्ञता तो अवश्य है परन्तु सांस्कृतिक रूप से अपने आपको किसी प्रकार हीन मानने की भावना नहीं है।

जर्मनी के एकीकरण का प्रश्न

अन्तर्राष्ट्रीय जगत में पूर्वी और पश्चिमी जर्मनी के एकीकरण के प्रश्न का बहुत महत्व है। इसके लिये प्रयत्न भी होते रहते हैं। बर्लिन और जर्मनी के लोग भी इस विभाजन को अस्वाभाविक समझते हैं, परन्तु एकीकरण का सरल उपाय नजर नहीं आता। जर्मनी के दो भाग इस समय दो भिन्न विचारधाराओं और अर्थनीतियों के प्रतीक बन रहे हैं। कौन भाग दूसरे की अर्थनीति को अपना ले? और दोनों भागों के लिये संयुक्त नीति क्या हो? पूर्वी जर्मन सरकार के पास तो इसका उत्तर है कि वे अपने भाग में निजी व्यवसाय को अवसर दे रहे हैं वैसे ही अपनी व्यवस्था में पूरे भाग को सह-अस्तित्व का अवसर दे सकेंगे। पूंजीवादी व्यवस्था के पास इसका क्या हल है मालूम नहीं। दोनों भागों को अलग-अलग रखने वाली सीमाओं को दूर कर देने का मतलब होगा कि बर्लिन दो आर्थिक व्यवस्थाओं की सफलता की होड़ का अखाड़ा बन जायेगा। आज भी वह ऐसा अखाड़ा बना हुआ है। लोगों का कहना है कि आज भी यह होड पूरी गति से चल रही है। दोनों व्यवस्थाएं अपने-अपने भाग में समृद्धि दिखाने का यत्न करती हैं। इंगलैंड और अमरीका का माल बर्लिन में न्यूयार्क और लन्दन की अपेक्षा सस्ता मिलता है। इतना ही नहीं पश्चिम जर्मनी के दूसरे नगरों हैम्बर्ग, फ्रांकफर्ट, क्लोन आदि की अपेक्षा वस्तुएं पश्चिम बर्लिन में अधिक और सस्ती भी मिलती हैं।

बर्लिन से प्राहा लौटने के लिये सोमवार प्रातः के विमान में स्थान ले लिया था। शनिवार दोपहर से बाजार और दफ्तर बन्द होने लगे। मालूम हुआ कि रविवार को ह्विटसन का त्यौहार है। सब कुछ बन्द रहेगा। शैलनबर्गर ने चिंता प्रकट की, कल क्या प्रोगाम हो सकेगा, सब कुछ तो बन्द रहेगा? मैंने पूछा—बर्लिन के नागरिक क्या करेंगे?

कोई भी धार्मिक त्यौहार हो, आजकल यूरोप के लोग दिन नगर से बाहर किसी जंगल या उपवन या रम्य देहाती स्थान पर बिताने का शौक पूरा करते हैं। सुबह खूब तड़के उठकर जिसका जैसा सामर्थ्य होता है, रेल, बस, मोटरसाइकिल या मोटर से नगर से जितनी दूर जाकर लौट आना सम्भव होता है, चले जाते हैं। मैंने और शैलनबर्गर ने ड्रेस्डन से होते हुए कोनिस्टाइन और बाडशैंडर तक हो आने का कार्यक्रम बना लिया।

एक बड़ी रूसी 'पोवियेदा' गाड़ी मिल गई थी। सड़क ऐसी थी कि गाड़ी को तेज चला सकने का अवसर था। शैलनबर्गर ने कहा—यह सडकें जर्मनी के लिये हिटलर की बहुत बड़ी देन है। यह सड़कें पूरे जर्मनी की एक सीमा से दूसरी सीमा तक पूर्व-पश्चिम, उत्तर-दक्षिण सब ओर चली गई हैं। यह सड़कें मोटर-पथ या 'ओटोवान' कहलाती हैं। पूरी की पूरी सड़कें कंकरीट और सीमेंट की बनी हुई हैं। चौड़ाई खूब अधिक है। बीचोबीच घास

की पट्टी है। एक ओर जाने का दूसरी ओर आने का मार्ग है। दोनों ओर तीन-तीन लारियां सुविधा से चल सकती हैं। युद्ध के समय जर्मनी में सेनाएं इन्हीं सड़कों से सीमा तक बहुत जल्दी पहुँच जाती थीं। इन सड़कों पर साठ-सत्तर मील प्रति घण्टा की गति साधारण बात है। मोटर निरंतर एक चाल से चल सके इसके लिये यह सड़कें किसी भी नगर, कस्बे या गाँव के बीच से नहीं गुजरतीं, नगरों को एक ओर छोड़कर निकल जाती हैं। कोई दूसरी सड़क, रेल की लाइन या नहर भी इन सड़कों को यहीं काटती हैं। ऐसे स्थानों पर सड़क इन बाधाओं के ऊपर या नीचे से निकल जाती है।

शैलनबर्गर ने तड़के खूब जल्दी चलने के लिये कहा था और ड्राइवर भी खूब तेज चाल से आया था। कारण यह कि इतने लोग सभी दिशाओं में बर्लिन से बाहर जाते हैं कि सड़क किनारे के होटलों में विशेष प्रबन्ध करने पर भी विलम्ब से आने वाले खाने-पीने के लिये कुछ पा नहीं सकते। दो रेस्तरां में नाश्ते के लिये स्थान न मिलने के कारण और आगे बढ़े। एक स्थान पर कुछ मक्खन रोटी और काफी मिल पायी। माइसीन के समीप हम लोग 'ओटोवान' सड़क से छोटी सड़क पर हो गये। माइसीन चीनी मिट्टी के काम के लिये संसार भर में प्रसिद्ध है। बर्लिन में एक संग्रहालय में माइसीन का सुन्दर काम देखा था। यह लोग चीनी के झाड़-फानूस तक बनाते हैं। सबसे विस्मयजनक वस्तु देखी चीनी मिट्टी की बनी बड़ी-बड़ी घंटियां। इन घंटियों में भीतर धातु की जीभ नहीं रहती। खूब कसा हुआ नमदा लपेट कर तैयार किये लकड़ी के हथौड़े से इन्हें बजाया जाता है और स्वर बिलकुल कांसे के घण्टे की तरह गुरु गम्भीर मधुर उत्पन्न होता है। माइसीन में एक छोटा संग्रहालय रेड-इंडियन लोगों के जीवन से सम्पर्क रखने वाले पदार्थों और तथ्यों का है। स्थान जरूर छोटा है, परन्तु उसमें जानकारी बढ़ाने वाला ऐतिहासिक रोचक सामान इतना अधिक है कि विस्मय ही होता है।

बारह बजे ड्रेस्डन पहुँच गये। ड्रेस्डन पूर्वी जर्मनी का बहुत प्रसिद्ध औद्योगिक नगर था। नगर पर इतनी अधिक गोलाबारी हुई थी कि पूरा नगर मलबे से भरा मैदान ही बन गया है। सौभाग्यवश कुछ ऐतिहासिक स्थान न्यूनाधिक हानि उठाकर भी अभी खड़े हैं। ड्रेस्डन का कला-संग्रहालय भी संसार प्रसिद्ध था। इस नगर पर अधिकार कर लेने पर लाल सेना यहाँ के सब चित्रों को उठाकर मास्को ले गई थी। १९५५ के जुलाई मास में मैं मास्को में था, तब यह पूरी प्रदर्शनी वहीं थी और नगर में घोषणा कर दी गई थी कि ड्रेस्डन से आये चित्र ड्रेस्डन को लौटा दिये जाने का निश्चय कर लिया गया है। जो लोग इस संग्रह को देखना चाहें एक मास के भीतर देख लें। प्रदर्शनी में टिकट से प्रवेश था। तिस पर भी भीड़ इतनी अधिक रहती थी कि दर्शकों के लिये मियाद लगा दी गई थी कि कोई व्यक्ति दो घण्टे से अधिक समय के लिये प्रदर्शनी में नहीं रह सकता था। दो घण्टे पश्चात् प्रदर्शनी में आये दर्शकों को बाहर कर नये लोगों को भीतर आने का अवसर दिया जाता था। इस चित्र-संग्रह को मास्को मे ही देख आया था। ड्रेस्डन में पहुंचा तो संग्रहालय में मास्को से लौटे चित्रों को व्यवस्था से लगा सकने के लिये चित्रों के भाग में प्रवेश बन्द था। मुझे चीनी मिट्टी का कलात्मक संग्रह देखने का ही अधिक आग्रह था।

प्रायः एक घण्टे तक देखते रहे। मैंने अपने जीवन में चीनी मिट्टी में ऐसा महीन काम कभी न देखा था।

प्रायः दो बजे बाडशैंडर पहुँच पाये। कुछ विलम्ब से पहुँचने का परिणाम सामने आया। सभी रेस्तरां खचाखच भरे हुए थे। किसी भी रेस्तरां में स्थान न मिला। बाडशैंडर लगभग चेकोस्लोवाकिया की सीमा पर एक घाटी की गोद में है। पहाड़ी के ऊपर की सड़क से आते समय ड्राइवर ने कोहरे में से दूर दिखते पहाड़ की ओर संकेत कर कहा—"तुम्हें कल वहाँ ही जाना है? ......सामने पूर्वी जर्मनी और चेकोस्लोवाकिया की सीमा है।"

मैंने पूछा—"कभी गये हो वहां? दोनों ओर से हरवा-हथियार से लैस काफी सेना तैनात रहती होगी!"

"तीन-चार मास पहले एक बार गया था। सीमा के दोनों ओर चुंगी के दफ्तर हैं। दोनों ओर पाँच-सात आदमी रहते हैं। खूब हिल-मिलकर बैठते हैं। दोनों देशों में कोई झगड़ा नहीं तो सेना की जरूरत क्या? सेना तो पश्चिमी जर्मनी की सीमा पर रहती है।"

शैलनबर्गर ने कहा—"पूर्वी-पश्चिमी जर्मनी का झगड़ा समाप्त हो जाय तो लाखों आदमियों को चौकीदारी के पेशे से हटाकर उत्पादन के काम में लगा दिया जा सकेगा।"

ड्राइवर ने राय दी—"दस-बारह मील आगे एक और स्थान है, वहाँ एक दर्शनीय झरना भी है।" और आगे जाने और पाँच मिनट प्रतीक्षा करने पर एक मेज खाली मिल गई। भोजन के पश्चात् झरना देखने के लिये कुछ और आगे गये।

सड़क पर कुछ दुकानें हैं। बाडशैंडर से यहाँ तक ट्राम की लाइन भी है। निश्चय ही दर्शक बड़ी संख्या में आते होंगे परन्तु कहीं दिखाई न दे रहे थे। झरने के सम्बन्ध में प्रश्न करने पर ड्राइवर ने उत्तर दिया—"दो मिनट प्रतीक्षा करो!" और वह दुकानों की ओर जाकर एक टिकट खरीद लाया। दो मिनट बाद सामने की पहाड़ी ढलवान पर अच्छा बड़ा झरना फिर नदारद?

पूछने पर पता लगा कि ऊपर इतना जल नहीं है कि लगातार अधिक मात्रा में गिरता रह सके। जल को बांधकर रखा जाता है। लोग झरने के सामने खड़े होकर फोटो खिंचवा लेते हैं।

ऐसे झरने को झरना कहना मुझे उपहास ही लगा। ऐसे झरने कांगड़े-कुल्लू की सड़कों के किनारे अनेक दिखाई देते रहते हैं। अल्मोड़े में भी अनेक हैं। उनकी ओर विशेष ध्यान भी नहीं दिया जाता। बिहार के रामगढ़ जिले में हुड़ और मिर्जापुर में टांडा आदि जलप्रपात तो इस झरने से कम से कम सौ गुना बड़े होंगे।

दूसरे दिन सुबह आठ बजे ही मैं बुखारेस्ट जाने के लिये विमान से प्राहा के लिये चल पड़ा।

रूमानिया

प्राहा से विमान बुडापेस्ट (हंगरी की राजधानी) होकर बुखारेस्ट जाता है। प्राहा से विमान में बारह या चौदह यात्री थे। बुडापेस्ट में लगभग एक घंटे तक ठहरकर आगे चले तो चार यात्री ही रह गये। प्राहा और बुडापेस्ट में भी बादल और सर्दी थी। सोच रहा था, मई की इक्कीस तारीख हो गई, कब तक सर्दी रहेगी? विमान बुखारेस्ट पर उतर रहा था तो नीचे धूप दिखाई दी। दूर-दूर तक फैली बस्ती और हरियावल चमक रही थी। विमान-स्थल भव्य और कलापूर्ण ढंग से बनाया गया है।

विमान से उतर कर हम चारों यात्री अपने सूटकेस लिये इमारत की ओर बढ़े। मैदान की सीमा पर चार-पाँच स्त्री-पुरुष फूल लिये खड़े थे। निमंत्रण पाकर बुखारेस्ट गया था तो क्यों न लोग अगवानी के लिये आते। बर्लिन में ऐसी परिस्थिति में अपनी आशा और अनुमान से धोखा खा चुका था परन्तु परिस्थितियों के अनुकूल आशा और अनुमान कर लेना क्या धृष्टता कहा जायेगा? समीप पहुँच कर उनमें से कोई भी चेहरा परिचित न जान पड़ा। प्राहा में रूमानिया के दो लेखकों से परिचय हुआ था। उनमें से कोई भी न था। फूल लेकर खड़े लोगों ने भी मेरी ओर न देखा। वे दूसरे यात्रियों की बांहों में हाथ डालकर पासपोर्ट दिखाने और चुंगी के हाल की ओर चल दिये। अच्छा नहीं लगा। समझा, बर्लिन के अनुभव से कुछ नहीं सीखा।

पासपोर्ट दिखाकर चुंगी के आदमी को बता रहा था कि मेरे सामान में क्या-क्या है, उसी समय कुछ और लोगों ने हाल में प्रवेश किया। प्राहा से परिचित एक लेखक और उसके साथ तीन युवतियां और दो और सज्जन थे। आलिंगन से स्वागत हुआ और नये अपरिचित स्थान में भटकने की आशंका दूर हो गई।

गाड़ी में नगर की ओर चले। बुखारेस्ट का विमान-स्थान दिल्ली, लंदन, मास्को या प्राहा की तरह नगर से बहुत दूर नहीं है। नगर की सीमा पर शुरू में ही एक बहुत ही बड़ी तेरह-चौदह मंजिल की इमारत दिखाई दी। इमारत के कुछ पंखे अभी बन ही रहे थे। मालूम हुआ, यह राष्ट्र का नया प्रकाशन गृह और प्रेस बन रहा है। इसके सामने एक विजय द्वार है और फिर घने वृक्षों और क्यारियों से सजी खूब चौड़ी सड़क। शहर के पुराने भाग के भीतर प्रवेश करते ही छिड़काव करती मोटर दिखाई दी। सुखद गरमी में छिड़काव की सुगंध प्यारी लगी।

आतिथ्य करने वालों ने पूछा—"इस नगर का जलवायु कैसा जान पड़ रहा है?"

"बहुत ही सुहावना!" उत्साह से उत्तर दिया, "अपना देश, याद आ गया। मैं समझता था, यह छिड़काव हमारे देश की ही चीज है। कम से कम पूर्व की तो कहना ही चाहिये। १९५५ में ताशकंद में सभी जगह ऐसे ही छिड़काव होते देखा था।"

मग्दालिना ने कहा—"इस वर्ष तो हमारे यहाँ बसंत बहुत विलम्ब से आया है। साधारणतः इस समय इससे अधिक ही गरम होना चाहिये था।"

मुझे उससे अधिक गर्मी की इच्छा न थी। होटल पैले के ऊँचे हाल में पर्दों के पीछे से आती हवा सुहावनी लग रही थी। चाय पीते हुये रूमानिया के समय का उपयोग करने के लिये कार्यक्रम के विषय में बात करने लगे। मादाम दान और मग्दालिना दोनों अन्तर्राष्ट्रीय सांस्कृतिक संबंध के विभाग में काम करती हैं। मग्दालिना भारतीय विभाग की मंत्री है। हिन्दी सीखने का बहुत शौक है। पढ़ानी शुरू कर दिया है। मग्दालिना अंग्रेजी बोल लेती है। मादाम दान, मग्दालिना और कुमारी शरागा की सहायता से ही बात कर रही थी। मादाम दान ने कहा—हम लोग और दूसरे लेखक भी जब तब मुझसे मिलते रहेंगे परन्तु शरागा भाषा सम्बन्धी कठिनाई में सहायता देने के लिये मेरे साथ रहेगी। होटल में पैले भोजन के लिये नीली छत या सुनहरी काम का बहुत बड़ा हाल है और बेलों से छाये खुले स्थान में आकाश के नीचे भी मेजें लगी हैं। लोग अपने शौक से हाल में या बगीचे में बैठ सकते हैं। बहुत दिन बाद भोजन के लिये हवा में बैठने में बहुत अच्छा लगा।

बुखारेस्ट के भोजन में पूर्वी स्वाद का प्रभाव आरम्भ हो जाता है। भोजन में कुछ मसाला भी रहता है। सलाद के साथ कच्चा प्याज और हरी मिर्च भी चलती है। पुलाव में यहाँ चावल और माँस का कोरमा अलग-अलग दिया जाता है परन्तु पुकारा उसे पुलाव ही जाता है। कबाब भी बनता है। हमारे यहाँ की कढ़ी के ढंग की भी कई चीजें बनती हैं। मक्का को उबालकर उसका गोल पिंड बनाकर कई प्रकार के शोरबों के साथ खाया जाता है। यूरोप के दूसरे देशों की अपेक्षा यहाँ सब्जी और फूलों की बहुतायत थी। रूमानिया के दक्षिण भागों में खूब बढ़िया तम्बाकू भी होता है इसलिये रूमानिया मे सिगरेटों की कोई कठिनाई नहीं है। सेव, अंगूर, अलूचे तो खूब होते ही हैं। नारंगी के ढंग के फल तैयार करने का यत्न किया जा रहा है।

शरागा ने एक निर्माण कलाकार (architect) को बुला लिया था। नाश्ते के पश्चात् हम लोग बुखारेस्ट की निर्माणकला का परिचय पाने निकले। वर्तमान युग में अन्तर्राष्ट्रीय संपर्क बहुत गहरे हो चुके हैं और सभी देशों की संस्कृतियां एक अन्तर्राष्ट्रीय संस्कृति बनाने में योग दे रही है। इस अंतर्राष्ट्रीय संस्कृति के प्रभाव से आधुनिक भवन निर्माण सभी देश में प्रायः एक सा रूप ले रहा है। नई बनती इमारतें नई दिल्ली, लंदन, बर्लिन, मास्को में प्रायः एक ही ढंग की मिलेंगी। किसी विशेष इमारत में अपनी राष्ट्रीय परम्परा के प्रदर्शन का ध्यान रखा जाये तो दूसरी बात है। किसी देश की निर्माणकला की राष्ट्रीय परम्पराओं को खोजना हो तो डेढ़ दो सौ वर्ष पुरानी इमारतों से ही कुछ परिचय मिल सकता है। बुखारेस्ट के विषय में तो यह बात और भी लागू होती है। रूमानिया में, १९४५ में समाजवादी सरकार की स्थापना से पहले डेढ़ सौ वर्ष से जर्मन वंश के राजाओं राज्य रहा है। यह जर्मन राजवंश रूमानिया की संस्कृति की अपेक्षा अपनी संस्कृति को

श्रेष्ठ समझते थे इसलिये सरकारी इमारतों पर जर्मन और मध्य यूरोप का प्रभाव पड़ा है परन्तु स्वयं जर्मन वंश से होकर भी एक स्वतंत्र राज्य कायम कर लेने के पश्चात् यह राजवंश जर्मन संस्कृति का अनुकरण करना भी अपनी हेठी समझने लगे थे। इनके अनुकरण का आदर्श और प्रेरणा का स्रोत फ्रांस के सामंत बन गये थे। यहाँ भाषा, वेश, संस्कृति और निर्माण कला सभी बातों में फ्रांस के अनुकरण का यत्न किया जाता था।

निर्माण कला विशेषज्ञ ने पुराने गिरजे देखने का परामर्श दिया। बुखारेस्ट का सबसे पुराना गिर्जा देखने गये। इस गिरजे को 'पुराने दालान' का गिर्जा कहा जाता है। हमारे देश में कई खंडहर या स्तम्भ ऐतिहासिक प्रमाणों के आधार पर दो हजार वर्ष से पुराने मौजूद हैं। कुछ खंडहरों को किम्वदन्ती के आधार पर चार-पाँच हजार वर्ष पुराना बताया जाता है इसलिये यूरोप की पुरानी इमारतें हमें क्या पुरानी जंचेगी। पुराने दालान का गिर्जा सन् १५४० में लगभग अकबर के समय का बना बताया जाता है। इस गिर्जे की रूपरेखा और यूरोप के गिर्जों की रूपरेखा में बहुत अंतर है। पूर्व के चिन्ह-गुम्बद उसके शिखरों पर मौजूद है। दीवारें लाल ईटों की हैं परन्तु मजबूती और सौदर्य के लिये उनमें चूने-गच्ची के चौकोर पुश्ते भी दिये हुए हैं। इमारत बहुत बड़ी नहीं है परन्तु एक विशेष परम्परा की प्रतीक है। पुराने यूनानी ईसाई सम्प्रदाय की वह परम्परा इमारत की रूपरेखा की अपेक्षा गिर्जे के भीतर पूजा स्थान में और भी अधिक स्पष्ट और सुरक्षित है।

इंगलैंड जर्मनी में सुधारवादी (प्रोटस्टेंट) ईसाई सम्प्रदाय का प्राधान्य है और शेष यूरोप में प्राचीन (रोमन कैथोलिक) ईसाई सम्प्रदाय का। दोनों सम्प्रदायों के विश्वासों और व्यवहारों में उतना ही अंतर है जितना हमारे यहाँ हिन्दूधर्म के आर्यसमाजी और सनातन धर्म सम्प्रदायों में है। रूमानिया और उससे पूर्व की ओर प्राचीन यूनानी ईसाई सम्प्रदाय का प्राधान्य रहा है और अब भी है। इस सम्प्रदाय के विश्वास, रीति और रूढ़ि बहुत अधिक विश्वास पर हैं और यह लोग गिर्जो की सजधज में प्राचीन रोमन ईसाई सम्प्रदाय से भी बहुत अधिक तड़क-भड़क पसन्द करते है। जैसे हमारे यहाँ के मंदिर रामनवमी और जन्माष्टमी के अवसर पर सजाये जाते है वैसे ही प्राचीन यूनानी ईसाई सम्प्रदाय के पूजा स्थान सदा सजे रहते हैं। मसीह देव पुरुषों और सन्तों के चित्रों और मूर्तियों को खूब भारी जड़ाऊ जोड़े पहनाये जाते हैं। पूजा-पात्र भी सोने चाँदी के अथवा मुलम्मा किये हुये होते हैं। छत से झाड़-फानूस खूब लटकाये जाते हैं और मोमबत्तियां या दीपक दिन-रात जला करते हैं।

पुराने दालान का गिर्जा देखकर बुखारेस्ट में रूमानिया का केन्द्रीय गिर्जा देखने गये। यहाँ दीवारों पर खूब बड़े-बड़े चित्र धर्म-कथाओं के बने हुए हैं। उनके लिये दो सौ वर्ष से अधिक की पुरातनता का दावा नहीं किया जा सकता। कई स्थानों पर चित्रों का रंग छूट गया है। वहाँ फिर से रंगाई कर दी गई है। इस गिर्जे में चाँदी की एक बड़ी पेटी में किसी सन्त का कई सौ वर्ष पुराना शरीर रखा हुआ है। छोटे-बड़े सन्तों के शरीर कई गिर्जाघरों

में रखे हुए हैं। इस गिर्जे का प्रधान पादरी रूमानिया का धार्मिक नेता या प्रधान माना जाता है। गिर्जे के साथ ही प्रधान पादरी का मठ और कार्यालय है।

इस मठ का रूप-रंग और व्यवस्था आधुनिक शाही ढंग की है। प्रधान पादरी के ध्यान करने के लिये पृथक छोटा-सा गिर्जा है। रूमानिया के बादशाह उपासना और धर्मोपदेश के लिये इसी स्थान पर आते थे। उनके लिये बनाये गये आसन पृथक हैं। मसीह के चरणों में भी प्रजा और राजा के आसनों के भेद से जान पड़ता है कि भगवान और मसीह भी राजा-प्रजा के भेद का आदर करते थे।

लम्बे-लम्बे काले चोंगे पहने कई पादरी इधर-उधर आते-जाते दिखाई दे रहे थे। जैसे सेना में कप्तान, मेजर, कर्नल, जनरल के पद और अधिकार होते हैं वैसे ही इन धर्म-संस्थाओं में भी हैं। पादरी पहले शिष्य बनता है, फिर 'भाई' का पद पाता है उसके बाद 'पिता' का और पूज्य पिता का। पादरियों की टोपियां और चोगों पर बंधी पेटियां उनके पदों की सूचक होती है। मठ में चारों ओर व्यस्तता का वातावरण था। उत्सुकता से पूछा—"इस समय समाजवादी शासन में इस मठ के प्रभाव और अधिकारों की क्या स्थिति है?"

उत्तर मिला कि मठ का धार्मिक संगठन यथावत है। मठ की ओर से गिर्जाघरों का निरीक्षण और मठों में उचित पादरी भेजने, रखने और धार्मिक उत्सव मनाने और धर्मोपदेशों के संगठन का काम अब भी हो रहा है।

बहुत से गिर्जे देख लेने के पश्चात् ईसाई साधुओं के आश्रम देखने भी गये। यहाँ साधु लोग ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते हुए अध्ययन-मनन में रत रहते हैं। मठ में एक छोटा कारखाना बिजली की मोटर खराद और दूसरी मशीनों सहित मौजूद है। इस कारखाने में प्राय: गिर्जे में पूजा के उपकरण, सलीबें, सुमरनियां आदि वस्तुयें ही बनती हैं। ऐसे ही साधनियों में मठ भी मौजूद हैं।

निर्माण कला का विशेषज्ञ बहुत विश्वासग्रस्त व्यक्ति नहीं मालूम दे रहा था। अपना कौतूहल उसके सम्मुख प्रकट किया—"बुखारेस्ट में इतने अधिक गिर्जे है। कुछ गिर्जों की इमारतें स्कूल पुस्तकालय, हस्पताल आदि दूसरे कामों के लिये भी उपयोग में आती होंगी?"

"ऐसी बात नहीं है।" उत्तर मिला, "दूसरे कामों के लिये आवश्यकतानुसार प्रयोजन के अनुकूल दूसरी इमारतें बनाई जाती हैं। गिर्जों का प्रयोग उनके लिये क्यों किया जाये? उनका अपना उपयोग है।"

"परन्तु गिर्जे आवश्यकता से कुछ अधिक नहीं है?"

"कुछ न कुछ लोग सभी गिर्जों में पहुँचते है। यह भी सम्भव है कि और गिर्जे बनाने की आवश्यकता जान पड़े। जब तक जनता को गिरर्जो की जरूरत है, गिर्जे भी बनाने ही चाहिये। हमारे यहाँ के लोग बहुत धर्म-प्राण हैं। हम लोगों की विचारधारा और परम्परा

धर्म प्रधान रही है। हमारे यहाँ अब भी शासन में एक सचिवालय धर्म की व्यवस्था के लिये है।"

मैं स्वयं भी देख रहा था कि जैसे हमारे यहाँ लोग मंदिर के सामने से जाते हुए देवता को नमस्कार करने के लिये पल भर रुक जाते हैं वैसे ही वहाँ गिर्जे के सामने से गुजरते समय लोग पल भर रुक सिर झुकाकर अपने हृदय पर सलीब का संकेत बनाकर भगवान् से कृपा-याचना कर जाते थे। स्त्रियां तो अच्छा भला फैशनेबुल फ्राक पहने भी गिर्जे के सामने घुटने टिकाकर भक्ति प्रकट कर जाती थीं। भारतवासियों की धारणा है कि हमारे समान दूसरी धर्म-भीरु जाति संसार में नहीं है परन्तु रूमानिया के लोग भी इस बात में कम नहीं।

मुझे आश्चर्य हो रहा था कि रूमानिया में दस वर्ष से समाजवादी शासन है। समाजवादी लोग अंधविश्वास को प्रश्रय नहीं देते। यह प्रसिद्ध ही है कि रूस में १९१७ की समाजवादी क्रान्ति के पश्चात् समाजवादी लोगों ने धर्म को सरकारी रूप में अस्वीकृत कर दिया था और धर्म को सर्वसाधारण को जड़ता की ओर ले जाने वाली अफ़ीम करार दे दिया था। रूमानिया में तो धर्म के प्रति सहिष्णुता का नहीं एक प्रकार से प्रश्रय का ही व्यवहार जान पड़ रहा था।

उस संध्या सांस्कृतिक विभाग के मंत्री से मुलाकात हुई तो इस विषय में कौतूहल प्रकट किये बिना न रह सका। यहाँ मालूम हुआ कि रूमानिया के वर्तमान शासन में पादरियों और धर्मोपदेशकों की साम्प्रदायिक शिक्षा के लिये एक यूनिवर्सिटी है और उसके अन्तर्गत छः कालिज हैं। इस यूनिवर्सिटी का संचालय मुख्य मठ के हाथ में जरूर है परन्तु सरकार उसके लिये धन की सहायता देती है और उस पर देख-रेख भी रखती है।

विस्मय प्रकट किये बिना न रह सका—"आप लोग वैज्ञानिक भौतिकवाद की विचारधारा में विश्वास करते हैं। केवल विश्वास पर आधारित और अंधविश्वास से भरी साम्प्रदायिकता को प्रश्रय देना क्या आपके लिये उचित है।

हमारे देश की जनता भी रूढ़िवादी है और साम्प्रदायिक भावना से ग्रस्त है। हमने साम्प्रदायिकता के दुष्परिणाम भी कम नहीं झेले हैं। हमारी सरकार ने तो नये विधान के अनुसार धर्म निरपेक्ष (secular) नीति अपना ली है और रूढ़िवाद और साम्प्रदायिक शिक्षा के लिये राष्ट्रीय धन व्यय करना हम लोग उचित नहीं समझते। हालांकि हमारी सरकार न तो वैज्ञानिक भौतिकवाद में विश्वास करती है और न समाजवादी व्यवस्था का दम भरती है।"

सांस्कृतिक मन्त्री ने उत्तर दिया—"हम लोग वैज्ञानिक भौतिकवादी मार्ग पर चलना चाहते हैं। हम यह भी जानते हैं कि साम्प्रदायिक विश्वास हमारी जनता के मस्तिष्कों में गहरे बैठे हुए हैं। फिलहाल इन विश्वासों को पूरा करना उनके जीवन की आवश्यकता है। इस आवश्यकता को उचित ढंग से पूरा करना भी हमारा काम है। यह साम्प्रदायिक विश्वास एक विशेष प्रकार की आर्थिक जीवन प्रणाली से पोषित हुए हैं। पहला काम है

उस प्रणाली को बदलना। जनता को वैज्ञानिक ढंग से सोचने की शिक्षा दी जानी चाहिये परन्तु उनके मन पर चोट पहुंचाने से कोई लाभ नहीं। साम्प्रदायिक विश्वासों के जो हानिकारक अंग हैं पहले उन्हें दूर करना आवश्यक है। ऐसे अंधविश्वासों को दूर करना हमारे सांस्कृतिक विभाग का महत्वपूर्ण अंग है। उदाहरणत: हमारे देश के दक्षिण में बहुत सी मुसलिम जनता है। उनके यहाँ स्त्रियों को परदे में रखने की प्रथा स्वास्थ्य के लिये और उनके समाज की उत्पादन शक्ति के लिये भी हानिकारक थी। हमने इस प्रथा के विरुद्ध प्रचार न कर उन्हें स्वास्थ्य के दृष्टिकोण से और स्त्रियों के उत्पादन में हाथ बटा सकने के महत्व के दृष्टिकोण को समझाया। उन्हें पर्दे की मूर्खताओं को प्रहसनों द्वारा दिखाया।"

सांस्कृतिक मंत्री और बोले—"दस वर्ष पूर्व समाजवादी व्यवस्था के कायम होने के समय हमारे यहाँ अस्सी प्रतिशत लोग निरक्षर थे। देहात में मलेरिया, क्षय रोग और दूसरी बीमारियां बहुत बड़ी सख्या में थीं। उस समय डाक्टरों और औषधियों की कमी तो थी ही परन्तु लोग अंधविश्वास के कारण डाक्टरों और औषधियों पर भरोसा न कर अधिकतर मन्त्र बल और गड़े-तावीज पर ही भरोसा करते थे। लोगों के साम्प्रदायिक विश्वासों के सम्बन्ध में कुछ न कहकर इन मिथ्या विश्वासों को दूर करना जरूरी था। इस काम में हमने पढे-लिखे पादरियों का बल्कि उनके संगठन का भी उपयोग किया। उन लोगों से हमें काफी सहायता भी मिली।"

सांस्कृतिक मत्री बताते गये—"अंधविश्वासों की कथा लम्बी है। हमारे पुरातन यूनानी ईसाई सम्प्रदाय में उपवासों और पूजा के दिनों की अच्छी लम्बी सूची है। प्राचीन विश्वास के अनुसार उपवास और पूजा के दिन कोई व्यावसायिक काम करना पाप समझा जाता था। उत्पादन के काम में करोड़ों आदमियों के इतने समय की हानि कितनी बड़ी हानि थी?"

पूछा-—"क्या ऐसे प्रश्नों पर जहाँ साम्प्रदायिक विश्वासों का सम्बंध हो पादरियों का सहयोग आपको मिल जाता है?"

"पादरियों में सुधारवादी और प्रगतिशील लोग भी है जो साम्प्रदायिक विश्वासों की रक्षा के लिये, उसे क्रियात्मक स्तर पर रखने के लिये ही ऐसे अंधविश्वास दूर कर देना चाहते हैं। जो हमारे दर्शन से सहमत नहीं परन्तु हमारी जनहित की आर्थिक नीति का समर्थन करते हैं। हम उनसे विश्वास के पहलू पर झगड़ा क्यों करें?"

"परन्तु दर्शन का महत्व कम नहीं है। एक सीमा पर आकर न्याय और औचित्य का निर्णय दर्शन सम्बंधी दृष्टिकोण ही करता है। विश्वास पर और तर्क पर दृष्टिकोणों में एक दिन संघर्ष होगा ही कि कौन मान्यता पाये।"

"जब आर्थिक व्यवस्था और जीवन की प्रणाली तर्कसंगत दृष्टिकोण के अनुसार हो तो केवल विश्वास के दृष्टिकोण का आधार स्वयं ही शिथिल हो जायेगा। अन्तिम निर्णय तो जनता के अनुभव के आधार पर होगा। हमारी नीति का परिणाम उनके सामने है।

जनता को हम वैज्ञानिक भौतिकवाद की शिक्षा देते हैं। हमारे यहाँ स्कूलों के पाठ्यक्रम में साम्प्रदायिक शिक्षा सम्मिलित नहीं हैं।"

मैंने जानना चाहा—"पिछले वर्षों में जनता पर पादरियों के प्रभाव की स्थिति में क्या अन्तर आया है?"

"निश्चय ही ऐसा प्रभाव घट रहा है। बहुत से नौजवान अपनी पारिवारिक परिस्थिति से प्रभावित होकर साम्प्रदायिक संस्थाओं में शिक्षा के लिये जाते हैं परन्तु शिक्षा पूरी कर लेने पर वे पादरी का काम न कर शिक्षक का अथवा दूसरा कोई काम कर लेते हैं। ऐसी शिक्षा चाहने वाले विद्यार्थियों की संख्या कम होती जाने से इन संस्थाओं की भी संख्या घट रही है परन्तु इसके लिये सरकारी शक्ति का प्रयोग नहीं किया गया।"

मैंने पूछा—"साम्प्रदायिक संस्थाओं में वैज्ञानिक भौतिकवाद की भी शिक्षा दी जाती है या नहीं?"

"इन संस्थाओं में मुख्यतः ईसाई धर्म ग्रन्थों से सिद्धांतों की शिक्षा दी जाती है परन्तु सभी दर्शनों का तुलनात्मक परिचय भी दिया जाता है। उस प्रसंग में वैज्ञानिक भौतिकवादी दर्शन का भी परिचय उन्हें मिल जाता है। यह विषय उन पर विशेष रूप से लादा नहीं जाता। इन संस्थाओं के पुस्तकालयों में दूसरे साहित्य के साथ मार्क्सवादी दर्शन का साहित्य भी मौजूद रहता है। विद्यार्थी अपनी रुचि के अनुसार उसका भी अध्ययन कर सकते हैं।"

यूरोप के देशों के लोग भिन्न-भिन्न जातियों के हैं। इटली, फ्रांस, स्पेन के लोग लैटिन हैं। जर्मनी, ब्रिटेन के लोग अपने आपको आर्य जाति का बताते हैं। हंगरी, फिनलैंड आदि में मंगोल जाति के लोग हैं। चेकोस्लोवाकिया, पोलैंड, रूस वगैरह के लोग स्लाव हैं। रूमानिया के लोग अपने आपको इंडोआर्यन कहते हैं। अर्थात् वे आर्यों की मध्य एशिया से यूरोप जाने वाली शाखा से नहीं बल्कि भारत जाने वाली शाखा से हैं। रूमानिया में जर्मन वंश का राज्य कायम होने से पहले यह देश सौ-सवा-सौ वर्ष तक तुर्की के अधीन था इसलिये यहाँ के रंग-ढंग और भाषा पर भी तुर्की का अच्छा-खासा प्रभाव है। तुर्की अथवा मुगल संस्कृति और भाषा का प्रभाव हमारे यहाँ भी होने से बहुत सी बातों में और भाषा के शब्दों में साम्य दिखाई देता है। खान-पान के विषय में तो कह ही चुका हूं। रूमानिया भाषा में अनेक शब्द हमारी खड़ी बोली जैसे ही हैं उदाहरणतः मैदान, दुश्मन, आज, मखमूर, चाय आदि-आदि। लिपि तो रोमन ही है। अब रूसी सभी स्कूलों में अनिवार्य हैं। कारण, पूर्वी यूरोप के लोगों ने रूसी भाषा को समाजवादी जगत की साझी भाषा मान लिया है।

सन् १९४५ तक रूमानिया केवल कृषि पर निर्भर करता था। अपना कच्चा माल देकर तैयार माल यूरोप और अमरीका से खरीदता था। देश भर में केवल कपड़े की एक ही मिल थी। दूसरे उद्योग-धंधों के कारखाने भी नहीं थे। रूमानिया की पहाड़ी घाटियों में पेट्रोल काफी मात्रा में मौजूद है। इस पेट्रोल का व्यवसाय करने का ठेका अमरीकन-ब्रिटिश

व्यवसायियों ने रूमानिया के राजा से ले लिया था। यह व्यवसायी यहाँ ठेके की अदायगी रूमानिया की सरकार को करती रहती थी परन्तु तेल नाममात्र को ही निकाला जाता था। यह लोग रूमानिया में भी पेट्रोल की निकासी करके दूसरे स्थानों से निकाले जाने वाले अपने पेट्रोल का भाव नहीं गिरा देना चाहते थे। उद्योग-धन्धों के अभाव में सर्वसाधारण का जीवन स्तर बहुत ही नीचा था। शहरों में भी बहुत गरीबी थी। पिछले दस वर्षों में देश का औद्योगीकरण तेजी से हुआ है। जगह-जगह बिजली पैदा की जा रही है। कपड़े, लोहे और फौलाद की कई मिलें खुल गई हैं। मोटरें अभी विदेश से ही आती हैं परन्तु लारी और ट्रक यहाँ ही बनने लगे हैं। खेती को औद्योगिक ढंग पर लाकर उत्पादन बढ़ाने के लिये खेती की मशीनें बनाने की आवश्यकता थी। सबसे पहले ऐसी ही मशीनें बनाने के कारखाने चालू किये गये। ट्रेक्टर अच्छे और बड़ी मात्रा में बन रहे हैं। वहाँ सुना था कि कुछ रूमानियन ट्रेक्टर भारत ने भी खरीदे हैं।

बुखारेस्ट में एक महाराष्ट्र डाक्टर मुलगुंत लगभग चालीस वर्ष से रह रहे हैं। बहुत कम लोग जानते है कि डा० मुलगुंत भारतीय हैं। मुझे भी शरागा से मालूम हुआ। डा० शरागा के मौसा हैं। डा० मुलगुंत की आयु इस समय अस्सी से ऊपर है। आंशिक पक्षाघात के प्रभाव से अब चलना-फिरना कठिन है। एक दिन मिलने गया। वे चालीस वर्ष पूर्व भारत से गये थे तब भी हिन्दी नहीं जानते थे। हिन्दी बिना सीखे जितनी बात समझी-कही जा सकती है, उतनी हिन्दी में कर लेने के बाद अंग्रेजी में ही बात करने लगा। पिछले चालीस वर्ष में उन्हें अंग्रेजी से भी कम ही वास्ता पड़ा है। डाक्टर साहब की कहानी यह है कि १९१४ के युद्ध में वे सेना के डाक्टरी विभाग में भरती होकर मेसोपोटामिया गये थे। कुछ दूसरे डाक्टरों के साथ वे तुर्की सेना के हाथ पड़ गये। युद्ध काल में बन्दी रहे या तुर्किस्तान में डाक्टरी का काम करते रहे। युद्ध के पश्चात् उन्हें मुक्ति मिली तो वे अपने साथियों सहित बुखारेस्ट के रास्ते इंगलैंड जा रहे थे। बुखारेस्ट में एक रूपवती युवती में मन रम गया। वहीं बस गये। यूरोप में भारतीय डाक्टरों की अच्छी मान्यता है। रूमानिया के राजमहल तक में उनकी कद्र थी। डाक्टर खूब पैसा कमाते थे। अच्छा-खासा अपना मकान है।

एक भारतीय मिलने आ रहा है, यह सुनकर डाक्टर के पोते-नाती भी आ गये थे। डाक्टर की वृद्धा पत्नी भी समीप बैठी थीं। डाक्टर का एक बारह वर्ष का नाती मेरे बहुत समीप खड़ा उत्सुकता से आँखें मेरे मुँह पर गड़ाये ध्यान से मेरी बातें सुन रहा था। कुछ क्षण पश्चात् उसने शरागा के समीप जाकर उलाहने के स्वर में कुछ शिकायत की। शरागा और दूसरे लोग हंस पड़े।

मैंने पूछा—"लड़के ने क्या कहा, इसे क्या शिकायत है?"

शरागा ने बताया—"कहता है, मेहमान तो अंग्रेजी बोल रहा है। यह 'इंडियन' क्यों नहीं बोलता।" मैंने तुरन्त बहुत से वाक्य लड़के को हिन्दी में बोलकर सुना दिये ताकि उसे यह भ्रांति न हो जाये कि भारत की भाषा अंग्रेजी ही है।

डाक्टर से रहस्य के स्वर में पूछा—"डाक्टर साहब, आप तो शाही शासनकाल से यहाँ हैं। तब और अब में क्या अन्तर है ?"

डा० मुलगुंत ने वितृष्णा से उत्तर दिया—"अब क्या है, कुछ भी नहीं। तब बहुत पैसा था, बहुत शान-शौकत थी।"

दो और भारतीय विद्यार्थी बुखारेस्ट में हैं। हृदयपालसिंह चित्रकला सीख रहा है और अली पाश्चात्य दर्शन का अध्ययन कर रहा है। अली पिछले पाँच वर्षों से वहाँ है। उस संध्या भोजन के समय अली साथ ही था। उससे भी पूछा—"पिछले पाँच वर्षों में यहाँ कुछ परिवर्तन आया ?"

"हाँ बहुत काफी परिवर्तन !" अली ने उत्तर दिया, "जिस गली में रहता हूँ वहाँ प्रायः मजदूरों की बस्ती है। पाँच वर्ष पूर्व लोग चिथड़े पहने हुए दिखाई देते थे। स्वयं उनके चेहरे-मोहरे और बच्चे भी गन्दे दिखाई देते थे। व्यवहार में सुस्ती-सी जान पड़ती थी। इस बीच लोगों को पहले की अपेक्षा अधिक काम और अधिक मजदूरी मिलने लगी है। छोटे लड़के अब सुथरे कमीज, नेकर और लड़कियां अच्छे फ्राक पहने दिखाई देती है। पहले गरीब बच्चों के पाव प्रायः नगे रहते थे। अब शायद ही गरमी में कोई बच्चा नंगे पांव दिखाई दे जाय। बच्चों के कपड़े और शिक्षा की सामग्री खास तौर पर सस्ती हो गई है। मेरे सामने जो बुढ़िया रहती है उसकी उम्र अब पहले से कुछ कम दिखाई देने लगी है। पहले उसे मैंने और सुथरे की चिंता करते कम देखा था। अब उसकी जवान लड़की रेलवे में काम करने लगी है। बुढ़िया हर हफ्ते खूब कपड़े धोती है। बिजली की इस्त्री ले आई है। अब उसके कपड़े सदा साफ और इस्त्री किये दिखाई देते हैं। बिजली की इस्त्री वह डेढ़ बरस पहले लाई थी। इस मार्च में बिजली की केटली भी ले आई है। बुढ़िया पढ़ नहीं पाती परन्तु अखबार रोज खरीदती है। सांझ को लड़की के घर लौटने के समय खिड़की के सामने छोटी मेज पर कपड़ा बिछाकर रोटी और चाय के प्याले रख देती है। लड़की के आते ही चाय, नाश्ता देती है। खा-पीकर लड़की माँ को अखबार पढ़कर सुनाती है। अब उस गली में बहुत से लोगों की खिड़कियों में फूलों के गमले भी आ गये हैं। किसी-किसी घर से रेडियो का स्वर भी सुनाई देता है। पाँच बरस पहले तो बम्बई की गन्दी मजदूर बस्ती से कुछ भी अन्तर न था।"

अली का डाक्टर मुलगुंत से परिचय न था। उसने मुलगुंत का नाम भी न सुना था। अली को डाक्टर की राय बतायी कि अब तो सब उजाड़ है शाही शासन में खूब समृद्धि और शानशौकत थी।

अली ने स्वीकार किया—डा० मुलगुंत की शाही महल तक पहुँच थी तो उसके लिये समृद्धि और शानशौकत जरूर रही होगी। उस समय बड़े-बड़े जमीन्दारों, व्यापारियों और कुछ अमीर पेशेवर लोगों की खूब शानशौकत थी। बस इन्हीं लोगों की शान थी शेष लोगों का तो बुरा ही हाल था। यहाँ के बड़े लोग वर्ष में छः-सात महीने फ्रांस में बिताया करते थे। वे फ्रांस के सामन्ती लोगों के मेहमान बनते थे और फिर फ्रांस के लोग यहाँ आते थे।

हर बात में लोगों का आदर्श फ्रांस था। यह लोग आपस में फ्रेंच ही बोलते थे। फ्रेंच बोलना फैशन था और नौकरों-चाकरों से आपस की बातें छिपाये रखने के लिये भी फ्रेंच उपयोगी थी। शनैः-शनैः बड़े घरों के नौकर और इतर लोग भी फ्रेंच समझने लगे। आज भी बुखारेस्ट के होटलों और रेस्तोरां में अंग्रेजी या रूसी से उतनी सुविधा नहीं होती जितनी फ्रेंच के कुछ शब्दों से।

एक दिन दोपहर से पहले ही बुखारेस्ट की झील और आस-पास की पुरानी बस्तियों की झांकी ले रहा था कि एक के बाद एक कई बसें शोर मचाते बहुत छोटे-छोटे बच्चों से भरी हुईं एक ओर जाती देखीं। बीच-बीच में गले में लाल रुमाल बांधे दस से बारह-तेरह वर्ष तक के बच्चे भी अपने अध्यापक अध्यापिकाओं की देख-रेख मे टोलियां बांधे उसी ओर चले जा रहे थे। मालूम हुआ बच्चों के उत्सव का दिन है। उससे पहले भी कई दिन लुढकते-पुढकते बच्चों की टोलियों को अध्यापिकाओं की देख-रेख में इधर-उधर जाते देख चुका था। वहाँ स्कूल के समय बच्चो को घुमा-फिराकर प्रत्यक्ष परिचय से उनका ज्ञान बढ़ाने की प्रणाली है। लेनिनग्राद मास्को में भी यह ढग देखा था। वहाँ तो घनी भीड़ में से इतने छोटे बच्चों को सम्भालकर ले जाने का बहुत रोचक ढग देखा था। पन्द्रह-बीस बच्चों को बाहर ले जाने के लिये दो अध्यापिकायें साथ रहती है। एक अध्यापिका सबसे आगे चलते बच्चे का हाथ थाम कर साथ चलती है और सब बच्चे सूत की एक रस्सी को क्रम से पकड़े रहते हैं। सबसे पीछे चलते बच्चे के साथ भी एक अध्यापिका रहती है। डेढ़ हाथ ऊँचे इन बच्चों का जुलूस जब सड़क पार करता है तो यातायात का नियंत्रण करने वाला लहीम-शहीत ऊँचा सिपाही सड़क के बीचोंबीच खड़ा हो दोनों बांहे फैलाकर पूरे यातायात को रोक देता है। इन समाजवादी देशों में सबसे अधिक महत्व बच्चो को ही दिया जाता है। इसका कारण शायद यह है कि इन लोगों की दृष्टि भविष्य की ओर है।

हम लोग भी बच्चों के मेले की ओर चल दिये। झील के किनारे के बाग के मैदानों में छोटे-बड़े बच्चों ठठ्ठ के ठठ्ठ लगे हुए थे। कई स्थानों पर खूब साफ रेत के छोटे-छोटे बच्चे उस रेत में घर बना-बनाकर या लोट-लोटकर भी खेल रहे थे। कुछ घास में से फूल पत्तियां चुन रहे थे। कुछ गेंद या फुटबाल खेल रहे थे। लड़के-लड़किया अपने-अपने खेलों के लिये अलग-अलग हो गये थे। प्यास लगने पर बच्चों के लिये जल का भी प्रबन्ध था। यूरोप में पानी पीने के नल उल्टे ऊपर की ओर धार छोड़ते लगाये जाते हैं। उन्हें अंजली के बिना धार मुँह में लेते देख हमें हँसी आ सकती है परन्तु सफाई के विचार से पानी को हाथ से छुए बिना पीना अधिक अच्छा होगा। नल में मुँह भी नहीं लगाया जाता। नल को चारों ओर से घेरे हुये चिलमची कपड़ों पर छींटे पड़ने से बचाये रहती है। जिधर नजर जाती बच्चे ही बच्चे थे। जैसे हजारों भेड़ों के रेवड पहाड़ों से उतर आये हो और बीच-बीच में दिखाई देने वाले अध्यापक-अध्यापिकायें रेवड़ों को सम्भालने वाले गड़रिये हों।

बुखारेस्ट के आंचल में घूमते हुए कई जगह कच्ची सड़कें और खड़े पानी के ताल-तलैया भी देखे। यहाँ आकर यूरोप में पहली बार भैंसें भी दिखाई दीं। हृदयपालसिंह साथ

था। उसने बताया यहाँ के लोग भी हमारे देश की तरह भैंस के दूध की गाय के दूध की अपेक्षा अच्छा समझते हैं। यह सुनकर मानना ही पड़ा कि रूमानिया और भारत की संस्कृति में अवश्य ही सामीप्य है। यहाँ देहात के पुराने लोगों में यूरोपियन हैट की अपेक्षा अस्तरखानी टोपी, जिसे गाँधी टोपी की स्पर्धा में मुस्लिम लीग ने जिन्ना कैप का नाम दे दिया था, का ही रिवाज अधिक है। पतलून इन लोगों की पश्चिमी यूरोप की अपेक्षा मध्य एशिया के लोगों की पतलून या हमारे पहाड़ी इलाके के पायजामे से ही अधिक मेल खाती है।

उसी दिन दोपहर बाद स्वास्थ्य विभाग के मंत्री से बातचीत हुई। उनसे बातचीत में ऐसा लगा कि रूमानिया की सरकार के सामने सबसे बडी समस्या देश की जनता का स्वास्थ्य ही है। उन्होंने स्वीकार किया। शाही शासन की नौकरशाही में जनता के स्वास्थ्य की दशा शोचनीय थी। प्रतिवर्ष आठ-दस लाख आदमी केवल मलेरिया से ही मर जाते थे। क्षय रोग का और दूसरे रोगों का भंयकर प्रकोप था। अब गत तीन वर्षो में दो आदमियों को मलेरिया ज्वर हुआ है। क्षय और रोग भी ढूंढ़ने से कहीं ही मिलेंगे।

पूछा—"आप अपने राष्ट्रीय बजट का कितना भाग सार्वजनिक स्वास्थ्य रक्षा के लिये व्यय करते हैं?"

मन्त्री ने उत्तर दिया—"स्वास्थ्य के सम्बन्ध में व्यय की सीमा का प्रश्न नहीं होना चाहिये। राष्ट्र का स्वास्थ्य ठीक न होने पर राष्ट्र का कौन काम ठीक हो सकता है? जितने व्यक्ति जितने दिन बीमार रहेंगे राष्ट्र के उत्पादन की उतनी ही हानि होगी। सार्वजनिक स्वास्थ्य सुधार के लिये हमें आरम्भ में सोवियत से बहुत सहायता मिली। १९४५ में जिस समय देश को हमने नाजी बरबादी के पश्चात् संभाला, युद्ध की बरवादी के कारण सब ओर रोग ही रोग था। विदेशी सिपाहियों ने सब ओर यौन रोग फैला दिये थे। हमारे पास न पर्याप्त डाक्टर थे और न आवश्यक औषधियां ही। सोवियत ने हमें दो हजार डाक्टरों के दल सहायता के लिये और बहुत बड़ा भण्डार औषधियों का भी दिया। हमने जनता को रोगों से मुक्त होने में पूरी सहायता दी।"

मैंने पूछा—"कुछ रोग विशेषकर यौन रोगों के सम्वन्ध में अधिकार से यह कहना कि उन्हें निर्मूल कर दिया गया है, कठिन है क्योंकि दुर्भाग्यवश लोग इन रोगों को प्रकट करने में लजाते हैं।"

मन्त्री ने उत्तर दिया—"इस लज्जा का कारण परिस्थितियां हैं। रोग से मुक्त कौन नहीं होना चाहता? रोग को तभी छिपाया जाता है, जब यह भय हो कि रोग का पता लगाने से या तो व्यक्ति की जीविका जायेगी या उसकी ओर उंगलियां उठेंगी। अब हमारे यहाँ यौन-व्यवसाय से पेट भरने की मजवूरी और अवसर किसी को नहीं है। हमारी व्यवस्था ऐसी है कि यौन रोग का इलाज कराने के लिये नाम-धाम का परिचय देने की आवश्यकता ही नहीं। इसके अतिरिक्त हमने गाँव-गाँव, मुहल्ले-मुहल्ले में ऐसा प्रबंध किया है कि एक भी व्यक्ति रक्त परीक्षा के बिना न रह सके। इसके लिये सबसे आवश्यक बात थी जनता को विश्वास दिलाना कि रक्त परीक्षा न करा सकना स्वयं अपनी हानि है।"

स्वास्थ्य मन्त्री से बातचीत करते समय याद आ रहा था कि भारत सरकार ने भी स्वास्थ्य सुधार और रोगों की रोकथाम के लिये बहुत कुछ किया है। कई जगह गांवों में ढेर की ढेर औषधियाँ जाती हैं पड़ी-पड़ी बरबाद हुआ करती हैं। कई हस्पतालों में जहाँ प्रतिदिन औसतन तीन साढ़े तीन सौ बीमार दवा लेने आते हैं, सरकार की ओर से प्रतिदिन सात रुपये का खर्चा नियत है। ऐसा देखा है कि महामारी फैलने की आशंका में सरकार बीमारी के प्रतिरोध के लिये इंजेक्शन का प्रबन्ध करती है परन्तु जन सेवा की सरकारी नौकरी करने वाले लोग अफसर के रोब से आँख दिखाकर बात करते हैं। भाव सेवा का नहीं शासन का रहता है। ऐसे अवसर पर इंजेक्शन से बच जाना ही लोग अपनी सफलता समझते हैं। बड़े अफसर या बड़े लोग ऐसी आज्ञा से मुक्त समझे जाते हैं, इसलिये बड़ा समझा जाना चाहने वाले भी इस आज्ञा से बचने का यत्न करते हैं। हमारे यहाँ सरकारी अनुशासन से ऊपर होना बहुत सम्मानजनक समझा जाता है, सरकारी अनुशासन के अधीन होना अपमानजनक। विदेशी शासन की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप उत्पन्न सरकार और प्रजा में विरोध की भावना समाप्त होने में नहीं आती। जनता अपनी सरकार को अपना नहीं समझती। यह जनता की मूर्खता तो है परन्तु इस मूर्खता को दूर करने के लिये सरकार ही क्या कर रही है? क्यों नहीं वह जनता की विश्वासपात्र बनती। क्यों नहीं जनता से आत्मीयता स्थापित कर पाती।

प्राहा में रूमानियन लेखक देमित्र को मैंने अपनी कहानी 'कोकला डकैत' का अंग्रेजी अनुवाद दिया था। अवसर की बात थी या देमित्र ने ऐसे जगाव किया था कि बुखारेस्ट में मेरे पहुँचने के दिन ही वह कहानी एक साप्ताहिक में प्रकाशित हुई थी इसलिये परिचय के समय प्रायः ही लोग कह देते थे 'हाँ आपकी एक कहानी पढ़ी है।' एक वर्ष पहले गार्गी और नवतेज भी रूमानिया हो आये थे। उनकी भी कुछ कहानियाँ रूमानियन पत्रों में प्रकाशित हुई थीं। यह नाम भी लोगों को याद थे। 'रूमानिया टु-डे' (नव-रूमानिया) के सम्पादक ने दफ्तर में मिलने के लिये बुलाया था। लगभग पूरा सम्पादकीय विभाग उपस्थित था। बातचीत बहुत अनौपचारिक ढंग से हो रही थी। सम्पादक ने कहा—"हम लोगों के काम के ढंग, हमारी राजनैतिक, सामाजिक समस्याओं के विषय में कोई भी जिज्ञासा हो तो निस्संकोच पूछिये। उत्तर देने का यत्न करेंगे।"

महीने भर से जहाँ जाता था ऐसे ही प्रश्न पूछता था। पूछ-पूछकर मन भर गया था। उत्तर दिया—"यदि आप अन्यथा न समझें तो अपने खयाल में बहुत प्रकार के प्रश्न कहीं न कहीं पूछ ही चुका हूँ। यहाँ के लोगों ने मेरी बहुत सी जिज्ञासाएं पूरी कर मुझ पर काफी एहसान किया है। आप लोगों के जीवन की व्यवस्था और रंग-ढंग प्रत्यक्ष देखने का भी अवसर मिला है। आप लोगों को ऐसा अवसर नहीं है। चाहता हूँ आपके एहसान का कुछ बोझ हलका कर सकूँ। आप ही बताइये, आप लोगों को मेरे देश के विषय में क्या जिज्ञासाएं हैं। आपके प्रश्नों से मेरे मन में भी और प्रश्न उठ सकते हैं।"

सम्पादन विभाग की सदस्या मिसेज पेत्रेस्कू ने मेरी 'उदारता' की सराहना कर कहा—"इससे अच्छी और क्या बात हो सकती है? आप अपने यहाँ के पत्रकारों के

जीवन और काम के विषय में ही बताइये ? उनके श्रम का कितना पारिश्रमिक मिलता है ? सप्ताह में कितने घण्टे काम करना पड़ता है ? रचनात्मक कार्य के लिये क्या सुविधा मिलती है ? उनकी सामाजिक स्थिति क्या है ?"

मिथ्या दम्भ क्या करता। स्वीकार किया—"हमारे यहाँ पत्रकारों की स्थिति न आर्थिक दृष्टि से और न सामाजिक सम्मान की दृष्टि से ही विशेष स्पृहणीय है। (कौन नहीं जानता जिस पत्रकार को भी सरकारी समाचार या प्रचार विभाग में स्थान मिल सका, वह स्वतन्त्र पत्रकारिता या पत्रकार की नौकरी छोड़कर सरकारी नौकरी में चला गया है।) काम के घण्टे प्रतिदिन आठ और सप्ताह में छः दिन काम साधारण बात है। विशेषांक निकालना हो तो इससे भी अधिक काम पड़ सकता है।"

श्रोताओं के चेहरों पर समवेदना की छाया देखकर उनकी स्थिति के विषय में जिज्ञासा की। मालूम हुआ प्रतिदिन छः घंटे काम का साधारण नियम है। सप्ताह में एक दिन का विश्राम और एक दिन रचनात्मक कार्य के लिये दफ्तर न आने की सुविधा है। उस दिन पत्रकार साहित्यिक कार्य के लिये स्वतन्त्र रहता है। इस प्रकार की रचनाओं के लिये रचना के स्तर के अनुसार पत्रकार को वेतन के अतिरिक्त पारिश्रमिक मिलता है। दफ्तर में हाजिरी के पाँच दिनों में कभी एक दिन और कभी दो दिन जन-सम्पर्क द्वारा सामग्री प्रस्तुत करने के लिये मिलते है।

बात चल पड़ने पर मैंने प्रश्न किया—"क्या आपके कार्यालय में प्रति मास और प्रति सप्ताह जितनी कवितायें, कहानियां और लेख आ जाते हैं, आपका सम्पादक मंडल सभी लिपियों को ध्यान से पढ़ सकता है ?"

"हाँ, अवश्य, क्यों नही ?" भरोसे से उत्तर मिला।

"औसतन आपके यहाँ प्रति मास कितनी कवितायें, कहानियां या लेख आ जाते हैं।" मैंने पूछा।

"हमारा पत्र चित्र प्रधान है। यहाँ साधारणतः समाचार से सम्बंध रखने वाले चित्र और छोटे लेख ही रहते हैं। परन्तु दूसरे साप्ताहिकों और मासिकों के कार्यालय में एक मास में बीस-पच्चीस कवितायें, दस-पद्रह या बीस कहानियां और लेख आ जाना कोई बड़ी बात नहीं।"

"एक ऐसे कार्यालय में कितने व्यक्तियों का सहयोग रहता है ?"

"साप्ताहिक में दस-बारह और मासिक में पाँच-छः व्यक्ति तो होने ही चाहिये।"

कुर्सी पर सीधे होकर मैंने उत्तर दिया—"आपको विस्मय तो होगा परन्तु तथ्य ही कह रहा हूं। मेरा एक साधारण मासिक पत्र नया पथ से कुछ सम्बन्ध है। यह मासिक पत्र लेखकों को पारिश्रमिक नहीं देता। इस पत्र के कार्यकर्ता भी एक प्रकार से अवैतनिक ही हैं। इस पत्र के प्रति लेखकों के आकर्षण का एक ही कारण है कि पत्र का दृष्टिकोण प्रगतिशील समझा जाता है। जमे हुये लेखक इस पत्र को अपनी रचनाएं केवल आग्रह करने पर ही देते हैं। इस पत्र पर अधिक कृपा नये लेखकों की या लेखक बनने की इच्छा

रखने वालों की ही होती है। इस पत्र में औसतन प्रति मास सत्तर-अस्सी कवितायें और चालीस-पचास कहानियां आ जाती हैं। देखिये, हमारे देश में कितनी प्रतिभा भरी पड़ी है।" मुस्कराकर मैंने कहा, "इतनी रचनाओं में से नया पथ के सम्पादकों की चार-छः कवितायें और तीन कहानियां प्रतिमास चुननी पड़ती है। 'नया पथ' में नियमित रूप से काम करने वाले सम्पादकों की संख्या दो है? जब मैं 'विप्लव' मासिक का सम्पादन करता था तो पूरे कार्यालय में सम्पादक विभाग में मैं अकेला प्रबंध विभाग में अकेली मेरी पत्नी थी।"

श्रोता लोग विस्मय से आँखें गोल किये मेरी ओर देख रहे थे। अवसर की गम्भीरता कम करने के लिये मैंने कहा—"हम लोगों के काम में लगे रहने की क्षमता तो आप अवश्य सराहनीय समझेंगे? हमारे यहाँ प्रकाशकों द्वारा पूँजी और साधनों के जोर पर चलाये जाने वाले पत्र तो किसी भी देश के पत्रों की तरह ही है परन्तु लेखकों द्वारा चलाये गये पत्रों की स्थिति भिन्न है। कारण यह कि लेखक साधनों के अभाव को अपना पसीना बहाकर पूरा कर देना चाहता है। इसके अतिरिक्त और उपाय ही क्या है? परन्तु ऐसे सब यत्न निष्फल रह जाते हैं।"

फिर कहा—"पत्र-पत्रिकाएँ तो सभी देशों में सावधान लोगों या संस्थाओं के हाथ की चीज हो गई है। पूँजीपति जगत में पत्र-पत्रिकाएं साहित्य और ज्ञान प्रसार के उद्देश्य से नहीं चलतीं, व्यापारियों के सौदे का प्रचार करने के लिये चलती है। पत्र लिपटन की चाय, बिन्नी के कपड़े, कैडबरी के चाकलेट, बिनाका के दंतफेन का विज्ञापन देने के लिये प्रकाशित किये जाते हैं। ऐसे पत्रों को व्यापारी मुफ्त भेंट करने के लिये तैयार हैं परन्तु ग्राहक इन्हें मुफ्त भी लेने के लिये तैयार नहीं इसलिये इन विज्ञापनों में दो-तीन कवितायें, एक-दो कहानियां और एकाध लेख मिलाकर उसे साहित्य के नाम से सस्ते दामों में बेच लिया जाता है। केवल साहित्यिक पत्र का लागत मूल्य विज्ञापन प्रधान पत्रो के दाम से कहीं अधिक हो जाता है। हमारे यहाँ अनेक बार पत्रों के विशेषांकों में इतना कागज रहता है कि उसे रद्दी के भाव बेचा जाय तो पूरा मूल्य वसूल हो सकता है। ऐसी अवस्था में आप ही समझ लीजिये, हमारे यहाँ पूँजीवाद की जी हजूरी न करने वाला पत्र चला लेना कितना कठिन होगा।"

रूमानिया के लेखक समझ नहीं पायेंगे परन्तु हमारे देश के लोगों के लिये हमारे पत्रों की नीति समझने के लिये किसी भी दिन सीलोन रेडियो सुन लेना पर्याप्त है। सीलोन रेडियो हमारे पत्रों का श्रव्य रूप है। सीलोन रेडियो इतना उदार है कि वह अपनी सेवा के लिये किसी मूल्य की आशा नहीं करता। वह अपनी सेवा का यही मूल्य चाहता है कि आप उसे सुन लें। सीलोन रेडियो की इस उदारता ही का आधार व्यापारियों से मिलने वाली बड़ी-बड़ी फीसें हैं परन्तु व्यापारी भी क्या यह रुपया सीलोन रेडियो को निस्वार्थ भाव से ही देते हैं? जिन लोगों को पत्र प्रकाशन व्यवसाय का कुछ अनुभव है, वे जानते हैं कि पत्र का प्रकाशन आरम्भ करते समय प्रतिष्ठित लेखकों का सहयोग पाने की चिंता नहीं की जाती बल्कि चिंता यह की जाती है कि विज्ञापन कितना मिल सकेगा?

मैंने सामने पड़ी 'नव रूमानिया' की सचित्र प्रति की ओर संकेत किया—"विश्वास है आप मेरा अभिप्राय अन्यथा नहीं समझेंगे। आपके इस पत्र में विज्ञापन नहीं है न ?"

"नहीं।"

"तो फिर क्या हम इस पत्रिका की बिक्री के मूल्य से पत्रिका का पूरा व्यय निकल आता है, और यह पत्रिका इस कार्यालय का भी व्यय पूरा कर सकती है? मेरा यह अनुमान है यहाँ की सरकार या कोई संस्था पत्रिका की सहायता करती है। तभी आप पत्रिका और उसके कार्यकर्ताओं को उचित स्तर पर रख सकते हैं।"

श्रोताओं में से एक व्यक्ति ने उत्तर दिया—"इस पत्रिका में बहुत अधिक और रंगीन चित्र रहने के कारण इसका लागत मूल्य दामों से कुछ अधिक हो जाता है। पाठकों की सहूलियत के लिये दाम एक सीमा से अधिक नहीं बढ़ाये जा सकते परन्तु हमें सहायता सरकारी विधि से नहीं मिलती, पत्रों के सहकारी संघ से मिलती है। पत्र कई प्रकार के हैं। बहुत से पत्रों का दाम उनके लागत मूल्य से अधिक है और उनकी बिक्री लाखों में होती है। भिन्न-भिन्न पत्रों के हानि-लाभ को बराबर कर लिया जाता है।"

एक श्रोता पूछ बैठे—"आपके यहाँ साधारणतः पत्र-पत्रिकाओं की प्रकाशन संख्या क्या रहती है ?"

"पाँच सौ से लेकर पचास-साठ हजार" मैंने उत्तर दिया, "हमारे यहाँ प्रत्येक व्यक्ति को पत्र-प्रकाशन आरम्भ करने की स्वतन्त्रता है। कुछ व्यक्ति बहुत उत्साह से यथा-शक्ति पैसा बटोरकर पत्र आरम्भ कर लेते हैं और कुछ दिनों में पूँजी का कुंआ सूख जाने के बाद पत्र बन्द हो जाता है।"

"आपके यहाँ पत्र-पाठकों की संख्या अधिक है हमारे यहाँ पत्रों की। आपके यहाँ पत्र-पत्रिकाओं की संख्या क्या होगी ?" बताई गई संख्या ठीक याद नहीं परन्तु दो सौ भी नहीं थी। मैंने बताया—"हमारे यहाँ केवल हिन्दी में निश्चय ही हजार से बहुत अधिक पत्र होंगे और हमारे यहाँ चौदह भाषाएं हैं। प्रति वर्ष अनेक पत्र आरम्भ होते हैं और बन्द होते हैं।"

मिसेज़ पेत्रेस्कू बोली—"परन्तु पचास हजार पाठक संख्या भी तो कोई बड़ी नहीं है।" उन्होंने अपने एक-एक लाख से अधिक छपने वाले पत्र का नाम बताया और कहा, "आपके देश की जनसंख्या तो तीस करोड़ से भी अधिक है। एक-एक भाषा के बोलने वाले हमारे पूरे देश की दो करोड़ जनसंख्या से अधिक होंगे ?"

"जरूर हैं।" स्वीकार किया "हमारे यहाँ हिन्दी भाषा बोलने वाले लगभग दस-पन्द्रह करोड़ हैं परन्तु अभी देश में निरक्षरता काफी है। सस्ते से सस्ता पत्र भी हमारी निन्यानबे प्रतिशत जनता के लिये बहुत महंगा है। हमारे यहाँ पत्रों के पाठकों की संख्या की कमी पत्रों की संख्या से पूरी हो जाती है।"

एक श्रोता ने संकोच से कहा—"हमें यह राष्ट्रीय धन और शक्ति का बहुत बड़ा अपव्यय जान पड़ता है।"

बुखारेस्ट के दर्शनीय स्थानों में एक छोटा संग्रहालय वहाँ के प्राचीन बर्तनों, गृह-उद्योगों और प्राचीन वेश-भूषा का है। बुखारेस्ट नगर की आधुनिक वेश-भूषा और यूरोप की साधारण वेश-भूषा में कोई अन्तर नहीं है परन्तु प्राचीन भूषा का संग्रहालय प्राचीन रूमानियन जीवन की अद्भुत स्मृति है। यह संग्रहालय इस कथन की पुष्टि करता है कि रूमानियन जाति इंडोआर्यन शाखा अथवा आर्यों की उस शाखा का अंग है जो भारत पहुंची थी। अभिप्राय है, प्राचीन रूमानियन वेश-भूषा और भारत के कुछ भागों की वेश-भूषा का साम्य।

भारत की राष्ट्रीय वेश-भूषा क्या है; इस विषय में अनेक मत हैं। जैसे पूरे राष्ट्र की एक साझी भाषा स्वीकार करने में लोगों को कठिनाई हो रही है वैसे ही एक राष्ट्रीय पोशाक स्वीकार कर लेने में भी। शायद पोशाक का प्रश्न और भी कठिन है। अंग्रेजी राज ने अंगरेजी बोलना तो सभी को सिखा दिया। धोती चादरधारी बंगाली, दक्षिणी लोग और पायजामा पगड़ी पहने पंजाबी, इस व्यवधान के बीच की अनेक पोशाकें पहने लोग फर्राटे से आपस में अंगरेजी बोल लेते हैं। सबको अंगरेजी सिखा देने में तो अंगरेज को सफलता मिली परन्तु आधुनिक पश्चिमी पोशाक सबको वह न पहना सका। दिल्ली में भारतीय पार्लियामेंट की बैठक में एक भाषा चलती है परन्तु पोशाकें सबकी अपनी-अपनी हैं इसलिये भारतीय द्रविड़ों अथवा आर्यों की वेश-भूषा क्या रही होगी; कहना कठिन है। अजन्ता-एलोरा की प्राचीन मूर्तियों और अजन्ता तथा कोणार्क के पुरातन चित्रों में दिखाई देती पोशाकें अपनाने का उत्साह और आग्रह कहीं दिखाई नहीं देता। प्राचीन आर्यों की पोशाक का अनुमान करना ही हो तो मेरी कल्पना में कांगड़ा के उत्तरीय भागों की पोशाक या अल्मोड़ा, गढ़वाल के उत्तरीय भागों के ऐसे लोगों की पोशाकें जो आधुनिक रंग-ढंग से प्रभावित नहीं हुए हैं प्राचीन आर्यों की पोशाक में बहुत कुछ सादृश्य रहा होगा। रूमानिया की प्राचीन पोशाकों के संग्रह में प्रायः ऐसे ही नमूने दिखाई देते हैं।

पोशाकों को क्रमशः विकास के क्रम से रखा गया है। विस्मय यह है कि भारत के हिमालय स्थित पहाड़ी भागों में आज भी यह सब नमूने न्यूनाधिक मिल सकते है। कम से कम दस वर्ष पहले जब मुझे अंतिम बार वहाँ जाने का अवसर मिला, जरूर मिल सकते थे। गद्दियों के कम्बल से बने, ढीले घुटनों तक लटकते अंगरखे या कोट और उस पर लम्बी रस्सी की पेटी। उसके बाद कपड़े की बनावट में सुधार हो जाने पर कोट के घेरे को समेट कर कोट और ढीले पायजामे के जोड़े की पोशाकें। जूते भी अनगढ़ चप्पल से लेकर धौड़ी खाल के पंजाबी ढंग के जूते और फिर चम्बा में पहने जाने वाले चमड़े के मोजे और चप्पल के मेल के प्राचीन यूनानी ढंग के जूते इस संग्रहालय में मौजूद हैं। पुरानी पोशाकों में छोटी पगड़ियां भी हैं क्रमशः उनका स्थान टोपियों ने ले लिया है। बहुत पुरानी टोपियां सिर पर सिमटी हुई और फिर धीरे-धीरे चौरस होती-होती हैट की आकृति में आ गई हैं। स्त्रियों की पोशाकों में सादृश्य और भी अधिक है। कुछ पोशाकों के भारी घेरेदार लंहगे राजस्थानी लंहगों की नकल जान पड़ते हैं। चादर-दुपट्टा भी मौजूद है। साड़ी, धोती अलबत्ता नहीं है। हमारे हिमालय के पहाड़ी प्रदेशों में भी यदि पोशाकों में

विकास जारी रहता या उनका सम्बन्ध अन्य देशों में जाकर बस गये उनके प्राचीन बंधुओं से बना रहता तो इनकी पोशाकें भी आधुनिक पश्चिमी ढंग की ही होतीं।

बुखारेस्ट में भी कला और सांस्कृतिक कामों की चहल-पहल खूब रहती है। नाटक का रंग-मंच, संगीत नाट्य (ओपेरा) और नृत्य नाट्य (बैले) में लोगों की खूब रुचि है। इन शास्त्रीय कला और सांस्कृतिक संस्थाओं के अतिरिक्त लोक कला की ओर भी खूब प्रवृत्ति है। सांस्कृतिक सचिवालय का एक पृथक शोक संगीत विभाग है। यहाँ प्राचीन शोक-गीत स्वरों सहित संग्रह किये जाते हैं। स्वरों के रिकार्ड भर लिये जाते हैं। बांसुरी यहाँ बहुत जनप्रिय है। शोक-गीतों के विभाग में शोक-वाद्यों का भी संग्रह है। यहाँ कई प्रकार की छोटी-बड़ी बांसुरिया, अलगोजे एकत्रित हैं। लम्बे-लम्बे बांसों को पोला करके नरसिंहों के ढंग के बनाये हुए वाद्य भी हैं। चौड़ी पटिया पर तारों को कसकर एक विचित्र सा वाद्ययंत्र भी वहाँ बनाया जाता है। इसकी ध्वनियों में सितार या वीणा से बहुत सादृश्य है। चेकोस्लोवाकिया में मुझे पश्चिमीय शास्त्रीय संगीत की अपेक्षा शोक-गीतों के स्वर भले लगे थे। रूमानिया में यह बात और भी अधिक अनुभव हुई। यहाँ के शोक-गीतों के स्वर और लय पंजाब और हिमालय के पहाडी प्रदेशों के गीतों के लय और स्वरों के बहुत समीप जान पड़ते हैं। शोक-गीतों के विषय और कल्पनायें तो शोक भावनाओं के अनुकूल एक ही जैसी होती हैं।

बुखारेस्ट के कलाकारों, चित्र और मूर्तिकारों को निर्माण कार्य में सहायता देने के लिये एक नया कला-भवन बनाया गया है। इमारत के बीचोंबीच एक संग्रहालय है। उचित प्रकाश के लिये संग्रहालय की छत और एक ओर की दीवार मोटे कांच की है। बहुत से कमरे हैं जिनमें कलाकारों के रहने की और अपना काम निर्विघ्न करते रहने की व्यवस्था है। भोजन या किसी भी दूसरी आवश्यकता के लिये बाहर जाने की विवशता नहीं रहती।

लेखकों के लिये 'रचनात्मक कार्य का भवन' या 'सृजन-प्रासाद' नगर से आठ-दस मील दूर एक पुराने राजप्रासाद की आधुनिक ढंग से बनायी गई अतिथिशाला है। साहित्य सृजन में व्याघात न पड़ने देने के लिये प्रत्येक लेखक के लिये सोने, काम करने, स्नान आदि की जगह पृथक है। इस भवन के कमरों के कालीन और फर्नीचर शाही जमाने से यथावत हैं। खाने के कमरे में जो बर्तन देखे, विशेषकर शराब पीने के गिलास तो इतने सुन्दर और कीमती हैं कि कला संग्रहालय में ही रखने योग्य हैं। व्यक्ति अपने अभ्यास और संस्कार के अनुसार ही सोचता है। मुझे वैसे सुख और समृद्धि नें रहने का अभ्यास नहीं है। इस सृजन प्रासाद को देखकर मुझे मनोयोग से परिश्रम करने योग्य वातावरण नहीं बल्कि विश्राम में सब कुछ भून जाने योग्य परिस्थिति ही जान पड़ी।

कोंस्तांजा

रूमानिया के दक्षिण भाग में काले समुद्र के किनारे बहुत सी मुस्लिम आवादी है। मै देखना चाहता था कि समाजवादी व्यवस्था का प्रभाव इन लोगों पर क्या पड़ा है।

कोंस्तांजा काले समुद्र पर रूमानिया का बन्दरगाह है। तेज एक्सप्रेस गाड़ी से केवल चार घण्टे का रास्ता है। मैं और शरागा तीसरे पहर, चार बजे की गाडी से रवाना हुए। रूमानिया में रेल यात्रा का भी अनुभव हो गया। यूरोप में रेलगाड़ियों में सभी जगह बरामदे या कोरीडोर होते हैं। चाहें तो आदमी एक सिरे से दूसरे सिरे तक घूम फिर सकते हैं। रूमानिया में रेलगाडी मे दो श्रेणियां, पहली और दूसरी ही होती हैं। एक ही बार के सफर में अपने यहाँ गाड़ियो में भीड होने की शिकायत जाती रही। पहली और दूसरी दोनों ही श्रेणियां ठसाठस भरी हुई थीं। बेचों पर कुर्सियों की तरह हत्थे भी लगे रहते हैं इसलिये एक आदमी के बैठने की जगह में दो के बैठने का अवसर नहीं रहता परन्तु बरामदों में स्त्री-पुरुष एक-दूसरे से चिपके खड़े हुए थे। भीड में समानता होने पर यात्रियों के व्यवहार में बहुत भेद था। भीड चाहे जितनी हो दूसरो को भीतर आने से कोई नहीं रोकता। गाडी में कैसे घुसा जाय और भीतर जाकर क्या करना होगा या भीतर जाने वाले की समझ पर निर्भर करता है। गाड़ी चलने से दस मिनट पहले ही पहुँच गये थे। एक बार गाडी के आरम्भ से अन्त तक चक्कर लगा लिया परन्तु स्थान कहीं न था। शरागा ने कण्डक्टर से विदेशी अतिथि के प्रति सौजन्य की माँग की।

कुछ रूसी सैनिक बुखारेस्ट से कोंस्तांजा जा रहे थे। इन लोगो के लिये एक डिब्बा सुरक्षित था। इसी डिब्बे में हम लोगो को भी जगह दे दी गई। रूसी सैनिकों के जगह पा जाने के बाद शेष भीड़ को भी नहीं रोका गया। यह डिब्बा भी ठसाठस भर गया।

बुखारेस्ट मे पहुँचकर जैसे गर्मी सुहावनी लगी थी, कोंस्तांजा मे नही लगी। बुखारेस्ट की अपेक्षा काफी गरम भी लगा। स्टेशन पर हमारी अगवानी मे आये मोटर ड्राइवर ने बता दिया कि समुद्र तट के किसी होटल मे जगह खाली नही है, शहर के पुराने होटल मे ही जहाँ जगह मिल जाये, ठहरना पड़ेगा। जगह बहुत बुरी नही थी, लन्दन के साधारण होटलो जैसी ही। कोंस्तांजा काले सागर का बन्दरगाह होने के कारण अन्तर्राष्ट्रीय स्थान तो रहा ही होगा। भोजन के लिये गये तो दो-तीन रेस्तोरां घूमकर और कुछ देर प्रतीक्षा कर एक मेज मिली। मैं चारो ओर बैठे भिन्न-भिन्न लोगों के चेहरे देखकर शरागा के कान के पास मुँह ले जाकर धीमे से पूछ लेता—"यह आदमी किस जाति का है?" शरागा और साथी ड्राइवर की राय से कोई तुर्क थे, कोई यूनानी, कोई पुराने बसे हुए रूसी। शोर-शराबे और कहकहा के कारण तकल्लुफ का कोई वातावरण नही था। बहुत सजावट और सफाई का दम्भ भी नही था। गले मे नकटाई तो किसी के ही थी। पूछने पर जाना कि अधिकांश लोग नये आरम्भ किये गये कारखानों के आदमी हैं। ठसाठस भीड़ मे काम चलाने का ढग कम परन्तु गर्मियों मे बरफ का उपयोग करने वाले लोगों की दृष्टि से एक चीज नही बच सकती थी। वह थी प्रत्येक मेज के साथ लोहे के ढाचे पर रखी बरफ भरी बाल्टी। बरफ में सोडे का साइफन, बियर और शराब की बोतलें दबी हुई थीं।

कोंस्तांजा में एक और परिचित वस्तु देखी। यह थी बग्घी। यूरोप मे रोम के सिवा बग्घी और कहीं नहीं दिखाई दी। घोडे साधारण ही थे। बग्घियों की सजावट भी ऐसी नही

थी कि वे शौक की सवारी जान पड़ती। बग्घियों का राष्ट्रीयकरण करना तो टेढ़ी समस्या होगी इसलिये वे निजी कारोबार के रूप में चलती हैं।

रात में ऐसी गरमी तो नहीं थी कि कमरे में परेशानी होती परन्तु खिड़की से आकाश में चंद्रमा देखकर चांदनी में सोने की याद अवश्य आयी। चांदनी में तो सो सकने का सुख तो सम्भवतः हमारे देश के अतिरिक्त दूसरी जगह सम्भव नहीं। संस्कारवश यूरोप से लोग खुले आकाश के नीचे सोने की स्थिति को सबसे बड़ी विवशता ही समझते होंगे। नगर समुद्र के किनारे छोटी-छोटी पहाड़ियों पर बसाया है। पत्थर मढ़ी सड़कों पर चढ़ाई-उतराई है। युद्ध में इस नगर का ध्वंस अधिक नहीं हुआ इसलिये नये बने स्थान का कोरापन नहीं लगता। मकान अनेक रूप-रंग के हैं। गर्मी में खुली हवा की आवश्यकता होने के कारण कलकत्ता, बम्बई के नये ढंग के बराम्देदार मकान भी बन रहे हैं। बीच-बीच में यूनानी शैली की ढलवा छतों के ऊँचे-ऊँचे गिर्जे खड़े हैं। कई मसजिदें भी हैं। इन मसजिदों पर जामा-मसजिद के ढग के बहुत बड़े-बड़े गुम्बद नहीं हैं। गिर्जे और मसजिद के बीच का सा ढंग है। अलबत्ता एक मीनार और उस पर छोटा गुम्बद जरूर रहता है। भिन्न-भिन्न जाति के मुसलमानों, तुर्कों, तातारों और कज्जाखों की मसजिदें पृथक-पृथक हैं। उस दिन शुक्रवार नहीं था इसलिये सभी मसजिदों के द्वारों पर ताले पड़े थे। मसजिदें शुक्रवार को ही खुलती हैं। प्राचीन यूनानी ईसाई सम्प्रदाय के गिर्जे भी इंगलैड या भारत के गिर्जों की तरह सदा नहीं खुले रहते, केवल पूजा के अवसर पर ही खोले जाते हैं।

सुबह का नास्ता कर हम लोग मोटर से दाब्रोजे की मुस्लिम प्रधान बस्तियों की ओर चल दिये। नगर से कुछ ही दूर जाकर ड्राइवर ने दक्षिण की ओर दूर सड़क के साथ-साथ चली जाती ऊँचे टीलों की रीढ़ की ओर सक्केत कर बताया—यह रोमन खाई है। कोंस्तांजा रोमन साम्राज्य में था। रोमन लोगों ने बर्बरों और मंगोलों के आक्रमण का प्रतिरोध करने के लिये दो अढ़ाई हजार वर्ष पूर्व यह खाई बनायी थी। हम लोग बात करने लगे— एक समय खाइयों और दीवारों से (चीन की दीवार) शत्रु के आक्रमण को रोका जा सकता था! उस समय युद्ध वर्षो तक चलते रहते थे। आज तो शत्रु आकाश मार्ग से पलक मारते सैकड़ों मील की रफ्तार से आक्रमण कर सकता है। ऐसी अवस्था में दूसरों को शत्रु बनाकर कैसे त्राण सम्भव है। अब तो रक्षा शत्रुता की भावना मिटा देने में ही है।

बेसरावे गाँव कोंस्तांजा से लगभग पच्चीस मील होगा। गाड़ी गाँव के संयुक्त कृषि क्षेत्र के दफ्तर के सामने रुकी थी। सामने ही छोटा-सा मकान गाँव का क्लब या सांस्कृतिक केन्द्र बना दिया गया है। मकान नया बना नहीं है। एक बड़ा सा कमरा है। कुछ जवान लड़के-लड़कियां एक कोने में बेंचों पर बैठे थे। कुछ दीवार की टेक लगाये खड़े किसी बात पर बहुत जोर से खिलखिला रहे थे। भीतर कुछ और छोटे-छोटे कमरे हैं। एक-दूसरे में बड़ी-सी मेज के चारों ओर बेंचे थी और मेज पर बहुत से पत्र-पत्रिकाएं। पाँच-छः नौजवान और दो जवान लड़कियां बैठे कुछ पढ़ रहे थे। एक ओर तीन लड़कियां बेंचो पर बैठी एक किताब से नमूने देखकर कसीदा काढ़ रही थीं। दूसरे कमरे में तीन प्रौढ़ और दो

जवान दो शतरंज बिछाये खेल रहे थे। वैसा ही दूसरा खेल डोमिनो भी चल रहा था। ठीक दोपहर के समय क्लब में इतने आदमी होने के कारण रविवार का अवकाश था।

कृषि क्षेत्र के प्रधान से मालूम हो गया था कि गाँव के सभी लोग दो-तीन नये आये हुओं को छोड़कर मुसलमान हैं। अधिकांश तातार हैं और कुछ तुर्क हैं। हम लोग वाचनालय की मेज पर जा बैठे! हमें देख दो प्रौढ़ कौतूहल से समीप आ गये। एक की कतरी हुई मूंछो और गाल की उभरी हड्डियों और छोटी आँखों से तातारी रक्त स्पष्ट झलक रहा था। मेरे पास रूमानियन सिगरेट थीं। सिगरेट पेश करने के बाद पूछा—"आपके इलाके में तम्बाकू होता है या नहीं।" उन लोगों ने अपने इलाके के तम्बाकू की प्रशंसा की। नाम पूछने पर उन लोगों ने इस्माइल और बेग कुछ ऐसे ही नाम बताये।

पूछा—"आप लोगों के गाँव में मसजिद है?"

उन लोगों ने विनय और गर्व से सीने पर हाथ रखकर स्वीकार किया। फिर पूछा—"जुम्मे की नमाज तो आप लोग मसजिद में ही पढ़ते होंगे।"

"हाँ, मसजिद में चले जाते हैं या वैसे भी नमाज पढ़ लेते हैं।"

इतने में एक बुढ़ौ चले आये। उनकी मजहबी ढंग से कतरी हुई मूँछें देखकर पूछ लिया—"क्या दोपहर की नमाज के लिये रुक गये थे?"

उन्होंने गरमी के कारण टोपी उतार सिर खुजाकर कहा—"दोपहर में दूध शहर में ले जाने वाला ट्रक आता है। यह भी तो जरूरी काम है।" यह बुढ़ौ क्षेत्र की डेरी के अधिकारी थे।

"आप लोग रोज़ा भी रखते होंगे?"

"जरूर-जरूर!" उन्होंने विश्वास दिलाया, "बारह साल से ऊपर उम्र के सब लोग रोज़ा रखते है।"

प्रश्न किया—"यहाँ लड़के-लड़कियों के लिये स्कूल भी हैं या पढ़ने दूर जाना पड़ता है।" गाँव में सातवीं श्रेणी तक स्कूल था। इसके बाद पढ़ने के लिये उन्हें पाँच मील दूर जाना पड़ता है। क्षेत्र का ट्रक विद्यार्थियों को स्कूल पहुंचाकर शाम को ले भी आता है।

लड़कियों की ओर देखकर मैंने कहा—"हमारे यहाँ भी अब लड़कियां पढ़ना-लिखना सीखती है लेकिन बीस बरस पहले बड़ी-बुढ़ियां पर्दा करती थीं। अफगानिस्तान की मुसलमान औरतें तो अब भी पर्दा करती हैं।"

एक प्रौढ़ बोला—"यहाँ भी वैसा ही था। बहुत समय पहले औरतें पर्दा करती थीं। केवल उससे क्या फायदा? यह लोग तो पढ़ती-लिखती हैं, खेती का और दूसरा काम भी करती हैं।"

एक कोने में काठ की पुरानी कुर्सी पर बैठा एक बुड्ढा काठ की पटिया पर बहुत से तार कसकर बनाये गये वाद्य-यंत्र को टुनटुनाकर सुर ठीक कर रहा था उन्हें देख ध्यान आया और पूछा—"आप लोगों का पहनावा तो अब यूरोपियन ढंग का है। क्या आप लोगों का गाना-बजाना भी बिलकुल यूरोपियन ढंग का है?"

कृषि क्षेत्र का प्रधान बोला—"हमारे यहाँ दोनों ढंग चलते हैं। आधुनिक ढंग भी और लोगों का अपना परम्परागत ढंग भी। हमारा नाचने-गाने वाला दल काफी जनप्रिय है। पड़ोस के गाँव में गाने-बजाने का दंगल है। सब लोग वहाँ गये हैं। यदि शौक हो तो हम तातार नाच तो दिखा ही सकते हैं।"

मेरे उत्कट इच्छा प्रकट करने पर तीन-चार लड़कियों से अनुरोध किया गया। वे नाच के लिये उचित कपड़ा बदलने चली गईं। बुढ़ौ का बाजा भी ठीक हो गया। दो नौजवान छोटे-छोटे वायलिन ले आये।

लड़कियों ने गुलाबी, लाल और नीले रंग के लंहगे और कुर्तियां पहन लीं। सिरों पर टोपियां और टोपियों पर छोटी ओढ़निया। केशों में लम्बी-लम्बी चोटियां भी बांध लीं। नाच का ढंग यूरोपियन कतई नहीं था। न हमारे कत्थक का ही ढंग था परन्तु हाव-भाव बताने का ढंग और गति, ठुमकियां और फिरकने वैसी ही थीं जैसे हमारे यहाँ स्त्रियां विनोद और उत्सव के समय करती है।

नाच के पश्चात् हम लोग गाँव की मसजिद देखने गये। मसजिद टीन की ढलवां छत का छोटा सा हाल था। एक कोने पर शेष छत से प्रायः तीन-चार फुट ऊंची एक मीनार भी थी। मकान साफ-सुथरा, लिपा-पुता था। ताला खोलने पर भीतर फर्श पर टाट और दरियां बिछी दिखाई दीं। प्रकट था कि लोग घुटने मोड़कर ही बैठते होंगे। हाते में ऊँचा घास-पात सब ओर खड़ा हुआ था। उससे वहाँ लोगों के अधिक आने-जाने का अनुमान नहीं होता था।

लौटते समय साथ चलने वाला एक प्रौढ हमें अपने मकान में ले गया। कोठरियां नयी बनी हुई थीं। सफाई अच्छी थीं। ढंग यूरोपियन और भारतीय के बीच का था। दीवारों के साथ बने दीवानों के गद्दों पर कढ़े हुए कपड़े बिछे थे। एक मेज और बेंचे भी थीं।

घर में दो लड़कियां थीं। एक तेरह बरस की और दूसरी सत्रह बरस की। शरीरों पर साधारण कपड़े के फ्राक थे पांव में कुछ नहीं। सत्रह बरस की लड़की हाई स्कूल में पढ़ रही थी। उससे पूछा—"अगले वर्ष स्कूल की शिक्षा समाप्त करके क्या करोगी?"

लड़की ने अपने पिता की शिकायत की—"मेरा विचार तो विमान चालक बनने का है परन्तु पिता किसी तरह नहीं मानते।"

पिता ने लड़की को मेरे सामने ही समझाया—"यह लड़कियों के लायक काम नहीं है। बच्चों जैसी बातें मत किया करो। इस बात की इजाजत हम नहीं देंगे।"

"तो फिर दूसरा क्या काम पसन्द है?" मैंने पूछा। लड़की ने कहा, "तो फिर मैं कुछ दिन साहित्यिक विद्यालय में पढ़ूंगी और रूमानियन भाषा की अध्यापिका बनूंगी।"

इस बार शरागा ने समझाया—"रूमानियन भाषा तुम्हारे लिये कठिन होगी। यों भी रूमानियन भाषा पढ़ाने वाली लड़कियों की कमी नहीं है। तुम अपनी भाषा की अध्यापिका क्यों नहीं बनना चाहती?"

जब हम लोग यह बातचीत कर रहे थे एक स्त्री बाहर से आकर आंगन से हम लोगों से जरा दूर हमारी ओट कर खड़ी हो गयी थी। यदि चारों ओर की परिस्थितियों का ध्यान न होता तो उस स्त्री की मोटे कपड़े की छोटी ओढ़नी, घुटनों से नीचे तक लम्बे चोले और कम घेरे के पायजामे से, विशेषकर उसके सकुचाकर दूर खड़े रहने के ढंग से देहाती पठान स्त्री ही समझता परन्तु गृहपति ने उसकी ओर संकेत कर परिचय करा दिया—"यह मेरी बिटिया की माँ है।" यानि वह प्रौढ़ा विमान-चालिका बनने की इच्छा करने वाली लड़की की माँ थी। यह दो पीढ़ियों का अन्तर था। प्रौढ़ा बुर्का छोड़ चुकी थी परन्तु अपरिचित की ओर ओट कर देना और उसकी बेटी का अतिथि से हाथ मिलाना सभ्यता का व्यवहार समझती थीं।

बेसराबा से हम लोग मजीदिया की ओर चले। जब रूमानिया तुर्की सुल्तानों के अधीन था यह कस्बा किसी सुल्तान की स्मृति में बसाया गया था। पास-पड़ोस में यहाँ की मसजिद सबसे बड़ी है। यहाँ के बड़े मुल्ला कोट पतलून और हैट पहने आये। यह सुनकर कि कोई भारतीय मुसलमान विद्वान आया है, तीन मुसलमान नवयुवतियां भी चली आई थीं। मेरे इस्लामी ज्ञान की प्रकाण्डता यही थी कि मैंने मसजिद के द्वार पर खुदा कलमा अनुमान से पढ़ लिया था। ईद, बकरीद और शबेरात के त्योहारों के नाम जानता था। यह भी जानता था कि रोजे चांद के हिसाब से रखे जाते हैं। नमाज दिन में पाँच बार पढ़ी जाती है और रात की नमाज को तहज्जुद की नमाज कहते हैं।

यह मसजिद बेसराबा की मसजिद से छः गुनी बड़ी होगी। ऊपर बैठने के लिये गैलरी भी बनी हुई थी। मुल्ला ने बताया कि ईद के दिन तिल रखने के लिये भी जगह नहीं रहती—मैंने पूछा—"जैसे ईसाई गिर्जाघरों में स्त्रियां भी उपासना में भाग लेती हैं, क्या इस मसजिद में भी स्त्रियां आती हैं?"

मुल्ला ने बताया—"पहले पर्दा था तो स्त्रियों को मसजिद में आने की आज्ञा नहीं थी। अब तो आ सकती हैं परन्तु यह आवश्यक है कि सिर ढंके रहें और उन्हें मर्दों के पीछे बैठने की जगह दी जाती हैं।"

मैंने मुस्कराकर याद दिलाया कि साधारण सामाजिक व्यवहार में तो स्त्रियों को पुरुषों से पहले ही बैठाया जाता है। मैंने अफगानिस्तान और पाकिस्तान में अभी तक पर्दा होने की बात पर विस्मय प्रकट किया। मुल्ला ने राय दी—पर्दे से धर्म का क्या सम्बन्ध? पर्दा स्त्रियों और समाज की उन्नति के मार्ग में बाधक है।

यह मुझे मालूम था कि रूमानिया, अल्बानिया वगैरा में जहाँ भी मुस्लिम और ईसाई आबादियां साथ-साथ थीं सामन्तवादी और पूंजीवादी शासन में साम्प्रदायिक दंगे बहुत अधिक होते रहे थे। ईसाई लोग मुसलमानों की धर्मभावना को ठेस पहुंचाने के लिये मसजिदों में सुअर का गोस्त फेंक देते थे और मुसलमान प्रतिकार में ईसाइयों के धर्मस्थान विशेषकर कब्रिस्तान उखाड़ डालते थे। रास्ते में बातचीत करते हुए ड्राइवर से भी पता चला था कि कोंस्तांजा के आस-पास तो जातिगत द्वेष और भी अधिक था। कभी किसी

साम्प्रदायिक मामले पर और कभी स्त्रियों के सम्बन्ध में साम्प्रदायिक झगड़े हो जाते थे। किसी ईसाई या यहूदी के मुसलमान लड़की से ब्याह कर लेने पर यदि वे कहीं दूर न भाग जायें तो उनका कत्ल हो जाता था। अब ऐसी बात नहीं रही है। पिछले वर्षों में अन्तर-साम्प्रदायिक विवाहों के अवसर पर कोई झगड़ा नहीं हुआ। मजीदिया और बुखारेस्ट में वेश-भूषा का अन्तर यही है कि यहाँ कुछ लोग अस्तरखानी टोपी पहने भी दिखाई देते हैं, सूती कोट पतलून भी दिखाई दिये और पोशाकें कुछ कम चुस्त थीं।

संध्या समय कोंस्तांजा लौट आये। काले समुद्र की लहरों का आघात सहती दीवार के सहारे बने, कास्सा के भव्य भवन के समुद्र की ओर फैले आंगन में बैठकर काफी पीते बात करते रहे। बम्बई में मैरीन ड्राइव की सड़क पर यदि कोई रेस्तोरां समुद्र का कुछ भाग काटकर या बढ़ाव डालकर लहरों के ऊपर बना दिया जाये तो कास्सा का दृश्य बन सकेगा। इतना अन्तर अवश्य रहेगा कि बम्बई का समुद्र उतना नीला नहीं है। काला समुद्र तो सचमुच नील का सागर ही जान पड़ता है। आंगन समुद्र के तल से दस फुट के लगभग ऊँचा बंधा है इसलिये लहरों का वेग बढ़ जाने पर भी जल ऊपर नहीं आ सकता।

कास्सा के हाल बहुत बड़े-बड़े हैं। गत महायुद्ध से पहले कास्सा फ्रांस के समीप माण्टिकार्लो का प्रतिद्वंदी था। यह दोनों हाल संसार में जुए के सबसे बड़े अड्डे समझे जाते थे। जो लोग केवल जुआ खेलने की उत्तेजना के लिये इतनी दूर आ सकते थे उनकी शेष तडक-भड़क का क्या हिसाब होगा ? कोस्तांजा भी नाज़ियों के अधिकार में आ गया था। उस समय कास्सा को सैनिक यातायात का केन्द्र बना दिया गया था क्योंकि उसके हाल में बड़े से बडे ट्रक सुविधा से रख लिये जा सकते थे। दिन भर की थकावट और स्थान इतना अच्छा था कि उठने को मन न हुआ। समुद्र की ओर से आती हवा बहुत तेज हो गई तो हाल के भीतर आ बैठे। अब यहाँ जुआ तो नहीं हो रहा था परन्तु पीने और खाने का प्रबन्ध बहुत अच्छा था। खूब फल-फूल प्रशस्त और मेजों के साथ बरफ की बाल्टियों में दबे हुए पेय पदार्थ। आर्केस्टरा नाच की धुनें बजा रहा था। जोड़ियां उठकर नाचने लगतीं और फिर लौटकर पीने और खाने लगती।

यूरोप में आइसक्रीम तो सभी जगह चलती है परन्तु बहुत ठंडे पेय का शौक रूमानिया में देखा। यूरोप में लोग तेज मद्य में भी सोडा नहीं मिलाते। आसव (वाईन) में कुछ मिलाने का प्रश्न क्या। रूमानिया में मद्य का तो कहना क्या, आसव में भी बरफ और सोडा मिला लेना पसंद किया जाता है।

दो जून दोपहर के समय देमित्र, मिहाइनी, मिसेज पेत्रेस्कू, मिसेज दान, मग्दालिना और मैंने भोजन एक साथ ही किया। देमित्र ने कहा—"अब तो हम लोगों में कोई तकल्लुफ नहीं रह जाना चाहिये। यह बताइये कुछ दिन की इस रूमानिया यात्रा में आपको क्या पसन्द आया ?"

"आपकी व्यवस्था में जो परिवर्तन आ गया है वही सबसे अच्छा और उत्साहप्रद जान पड़ा है।" मैने उत्तर दिया, "इस व्यवस्था के कारण सब ओर उत्साह और आशा दिखाई देती है।"

"नहीं नाम लेकर कोई बात कहिये।" देमित्र ने आग्रह किया।

"वह कठिन है" मैंने कहा, "दो एक बातों का नाम ले दूंगा तो निश्चय ही अभिप्राय होगा कि शेष चीजें उतनी पसन्द नहीं आई परन्तु मुझे वास्तव में सभी कुछ अच्छा लगा है इसीलिये कह रहा हूँ कि प्रगति के लिये सार्वजनिक उत्साह ही सबसे अधिक संतोषजनक लगा है।"

"अच्छा सकोच तो नहीं करेंगे न ?" देमित्र ने पूछा, "दूसरे प्रश्न पूछूं ?"

"अवश्य पूछिये संकोच क्या है ?"

"यह बताइगे, पसन्द क्या नहीं आया ?"

यह प्रश्न और भी कठिन था। कैसे कह देता कि सब ओर पूर्णता देख रहा हूं। मन में कई बार अनुभव हुई कचोट जबान पर आ गई। कह बैठा—"आप भी बुरा न मानिये तो कहूं।"

सभी ने आश्वासन दिलाया—"बुरा नही मानेंगे।"

मैने कहा—"आपके लेखको का 'सृजन प्रासाद' पसन्द नही आया था वह मेरी पसन्द से बहुत ऊँचा है। उस प्रकार के विलास के वातावरण में रहकर मै केवल भोग का स्वप्न देख सकता हूं। समाज की भूख और आवश्यकता की पीड़ा से सृजन के लिये तत्परता अनुभव नहीं कर सकता। शायद मेरा यह सस्कार गरीबी में जीवन बिताने के कारण है। पाँच सौ लेई (सौ रुपये) कीमत के गिलास से पानी पीते समय मुझे सदा यही भय रहेगा कि यह अब टूटा और तब टूटा। उन कालीनों पर चलते समय मै अपने आपको साधारण अवस्था में अनुभव नहीं कर सकूंगा। मुझे चिंता रहेगी कि तेज चलने से कालीनों का रोयां न घिस जाये। लेखक का ध्यान तो उसके कागज पर रहना चाहिये फिर सामने टटके गुलाबों से भरा फूलदान और पाव के नीचे कालीन हुआ या न हुआ।"

मिसेज दान लेखिका नहीं है। वे विदेशों से सांस्कृतिक सम्पर्क के विभाग में काम करती हैं। मुस्कराकर बोलीं—"शायद ऐसी बातों में व्यक्तिगत रुचि का प्रश्न होता है। हम अपने लेखकों का आदर करते हैं इसलिये उन्हें सृजन कर सकने की अधिक से अधिक सुविधा देना चाहते हैं। लेखकों पर यह सब सजा के रूप में लादा तो नहीं जाता। वह उनके लिये प्राप्य हैं तो अपना काम पूरा कर लेने के बाद वहाँ जाकर विश्राम कर लिया करें।"

देमित्र बोला—"मैं यशपाल से सहमत हूं। लिखना तो कमरे में ही होता है। मैं कभी लिखने के लिये सृजन प्रासाद में नहीं गया। हाँ, जगह अच्छी जरूर है।"

मैंने और कहा—"बात कह दी है तो उसका दूसरा पहलू भी कह डालूं। लेखकों का सृजन प्रासाद मुझे 'कर' देने वाली प्रजा पर बोझ डालकर लेखकों के प्रति अनुचित पक्षपात जान पड़ता है। हमारे देश के लेखक तो अपनी कला की आय से जीवन की नितांत आवश्यकतायें भी पूरी नहीं कर सकते। आपके यहाँ लेखकों की आय आखिर क्या इतनी हो सकती है कि आपसी चंदे से इतने बड़े महल का खर्चा चला सकें? निश्चय ही सरकार आपके लिये खर्च कर रही है। आपके देश में सर्वसाधारण जनता के जीवन का स्तर कम से कम फिलहाल प्रासाद के विलास का स्तर नहीं है।"

मिहाइली, देमित्र और पेत्रेस्कू ने विरोध किया—"नहीं-नहीं इसमें गलतफहमी है। प्रासाद, सामान और सज्जा सहित जरूर सरकार की भेंट है। यह पुरानी शाही सम्पत्ति थी अब लेखक संघ को सौंप दी गई है। मज़दूर संघ इत्यादि को भी ऐसे भव्य मकान दिये गये हैं। खर्चा लेखक संघ की संयुक्त आमदनी से एक भाग निकालकर पूरा करा लिया जाता है?"

मिहाइली बुखारेस्ट की राष्ट्रीय प्रकाशन संस्था में काम करता है, स्वयं लेखक है। उसने पूछा—"आपके यहाँ साधारण स्थिति के लेखक के उपन्यास की कितनी प्रतियां एक संस्करण में छपती हैं?"

उत्तर दिया—"दो हज़ार तो छपती ही हैं।"

"दो हज़ार, केवल? एक संस्करण विक कितने समय में जाता है?"

"तीन-चार बरस में विक जाये तो बुरा नहीं।"

"आपके देश की इतनी बड़ी जनसंख्या है और पुस्तकों की इतनी कम खपत होती है? अच्छा, रायल्टी किस हिसाब से मिलती है?"

"रायल्टी लेखक की स्थिति के अनुसार १०% से लेकर २०%, तक हो सकती है।"

"हमारे यहाँ भी पहले लगभग यही स्थिति थी परन्तु अब हम आठ-दस हज़ार से कम कोई उपन्यास नहीं छापते। रायल्टी हमारे यहाँ ४०% दी जाती है।"

"नये-पुराने लेखकों के लिये एक ही हिसाब चलता है?"

"नहीं, रायल्टी का अनुपात एक ही चलता है परन्तु पुराने या लोकप्रिय लेखक की पुस्तक की प्रतियां अधिक छपती हैं और नये संस्करण भी जल्दी होते हैं।"

मैंने प्रश्न किया—"आपके यहाँ वर्ष भर में कितनी नयी पुस्तकें प्रकाशित हो जाती हैं?"

"डेढ़ सौ दो सौ तक संख्या पहुँच सकती है।"

"बस?" मैं हंस दिया, "हमारे यहाँ प्रति वर्ष नयी पुस्तकों की संख्या डेढ़-दो हजार से कम नहीं होती होगी। पुस्तक चाहे जैसी हो, वह छप सकती है और चतुर एजेण्ट उसे बेच भी लेता है। ऐसी पुस्तकें कम हैं जो दो या तीन बार छपती हैं। आपके यहाँ कम लेखकों की पुस्तकें अधिक संख्या में छपती हैं? हमारे यहाँ अधिक लेखकों की पुस्तकें कम

संख्या में छपती हैं। शायद कागज हमारे देश में अधिक खप जाता होगा। क्या छपने योग्य है यह निर्णय हमारे यहाँ प्रकाशक अपनी बेचने की शक्ति के अनुसार करता है।"

मिहाइली ने कहा—"आपके यहाँ पुस्तकों से होने वाली आय बहुत अधिक लोगों में बंट जाती हैं। उससे निर्वाह किसी का नहीं हो सकेगा। मुख्य भाग प्रकाशन ही ले जाता होगा। हमारे यहाँ भी पहले यही स्थिति थी। इस ढंग में राष्ट्रीय अपव्यय बहुत है ?"

मैंने आपत्ति की—"क्या छपने योग्य है, इसका निर्णय जब किसी एक संस्था के हाथ में रहेगा तो विचारों की स्वतन्त्रता पर प्रतिबंध लगने की आशंका भी रहेगी।"

"क्यों ? इसका निर्णय स्वयं लेखकों के संघ पर रहना चाहिये।"

मैने पूछा—"आपके यहाँ प्रकाशन योग्य होने की कसौटी क्या है ?"

"साहित्य के सम्बन्ध में मुख्य कसौटी है कलात्मकता।"

"ऐसा साहित्य जिसका आपकी आधुनिक व्यवस्था से कोई भी सम्पर्क न हो उदाहरणत: अनातोल फ्रांस के उपन्यास 'ताई' का अनुवाद क्या आप आज छापेंगे ?"

"क्यों नहीं, छापा है और छापेंगे। हम शेक्सपियर के नाटक और बेलज़ाक की कहानियां भी छाप रहे हैं। हैमलेट का हमारी आज की व्यवस्था से क्या सम्पर्क हो सकता है ? आप अपने यहाँ का कुछ चुना हुआ साहित्य पुराना और नया हमें दीजिये, हम उसे भी छापेंगे।"

उस दिन संध्या खूब बाजार की सैर की। बुखारेस्ट में रूस, जर्मनी, चेकोस्लोवाकिया, ब्रिटेन सभी जगह की मोटरें दिखाई देती हैं। मोटर अभी विदेश से ही खरीदी जाती है। अमरीकन मोटरें भी दिखाई देती है। अमरीका रूमानिया या समाजवादी देशों से आर्थिक असहयोग की नीति पर डटा हुआ है। यह लोग अमरीकन मोटरें या दूसरा अमरीकन सामान स्विटजरलैड द्वारा खरीदते है। स्विटजरलैड से इन लोगों का काफ़ी व्यापार है। बाजार में रूसी, चेक और जर्मन सामान के अतिरिक्त फ्रास का सामान विशेष तौर पर प्रसाधन का सामान काफी दिखाई देता है। फ्रांस के माल का दाम यहाँ बहुत ज्यादा है। रूमानिया के बने साबुन की अपेक्षा फ्रास से आये साबुन का दाम पन्द्रह-बीस गुना अधिक है। फ्रांस की चीजों के लिये इन लोगों में अभी तक विशेष आदर है।

सुबह जगह-जगह पर स्वतत्र बाजार लगते है जिनमे नगर के समीप के गांवों से किसान साग-सब्जी, मक्खन-पनीर, अण्डा-मुर्गी और फल काफी मात्रा में बेचते हैं। इस बाजार में मूल्य भाव-तोल से तय होता है। शेष दुकानों पर बंधे हुये निरख चलते हैं। बाजार में लोग घर की दस्तकारी का माल कालीन और कढ़े हुये कपड़े आदि भी बेचते दिखाई देते है। नगर के चौक मे देहात से घर के बनाये कालीन बेचने आये लोगों की पांत की पात लगी रहती है। कालीनों का यह शौक मध्य एशिया से बहुत मिलता-जुलता है। लोगों की छोटी-छोटी निजी दुकानें भी काफी सख्या में दिखाई देती है। हाथ के काम के दाम बहुत ज्यादा है।

यहाँ मेरी एक कहानी प्रकाशित हुई थी और एक छोटा-सा लेख भी 'नव-रूमानिया' के लिये लिखा था। जेब में हजार से अधिक लेई के नोट भरे थे। कुछ सामान खरीदना ही चाहिये था। सुअर के चमड़े का एक छोटा सूटकेस साढ़े चार सौ में खरीद लिया। दाम बहुत ज्यादा लगे। उस सूटकेस का दाम बम्बई में क्या होना चाहिये, यह कौतूहल था। लौटने पर 'फ्लोरा फाउंटेन' के समीप एक दुकान पर उससे मिलता-जुलता सूटकेस दिखाई दिया। दाम एक सौ चालीस रुपये बताये गये। ग्रामोद्योग की सरकारी दुकानें भी हैं। जहाँ घरों में तैयार किया सामान बिकता है। सामान प्रायः कुल्लू के रंग-ढंग का होता है। मण्टा के लिये एक लहंगे का कपड़ा तीन सौ लेई में खरीद लिया। साधारणतः पदार्थों के मूल्य के विचार से लेई का मूल्य चार आने के लगभग होना चाहिये लेकिन विनिमय का दर इससे भिन्न है। यहाँ न्यूनतम वेतन लगभग छः सौ लेई है। बुखारेस्ट में कई वर्ष से रहने वाले अली का विचार है कि साधारण विद्यार्थियों का निर्वाह ढाई-तीन सौ लेई प्रतिमास में हो सकता है। यहाँ भी सभी विद्यार्थियों को दो सौ लेई छात्रवृत्ति मिलती है। बेकारी की आशंका नहीं है। शिक्षा तथा चिकित्सा का दायित्व समाज अथवा शासन व्यवस्था पर है।

स्वर्गोद्यान : बिना सांप

माननीय डा० शिवसागर रामगुलाम
प्रधानमंत्री, मारीशस की
'स्वर्गोद्यान · बिना सांप'
के लिये शुभकामना

"लेखक ने कलाकार की दृष्टि से हमारे द्वीप की प्राकृतिक छटा का मुह बोला मनोरम चित्र पेश किया है। उसने हमारे अनेक नसलों सम्प्रदायों के मिश्रण, देश में सहअस्तित्व और सहयोग की आवश्यकता को सहानुभूतिपूर्ण मार्मिक दृष्टि से देखा, समझा और हमारे प्रयत्नों को सराहा है। अन्तर्राष्ट्रीय समता-सहयोग की ऐसी मानवी दृष्टि ही विश्व कुटुम्ब की भावना और सफलता का आधार बन सकती है। मारीशस सद्भावना और मैत्री की इस अभिव्यक्ति का सराहना से स्वागत करता है।"

शुभकामना और बधाई के साथ

शि. रामगुलाम

समर्पण

मर्कत द्वीप मारीशस !

आपके स्वर्गोद्यान में बिताये मास में आपकी उदार आत्मीय संगति में जानी, साम्राज्यवादी बर्बर शोषण से मुक्ति के लिए संघर्ष से आत्मनिर्णय के मानवीय अधिकारों को पाने की सफलता की गाथा और आपके विकासोन्मुख राष्ट्र के संघर्ष और समस्याओं का पौरुष से सामना करने की यह गौरव कहानी मारीशस की गौरवमयी जनता को समर्पित।

—यशपाल

स्वर्गोद्यान: बिना सांप

१३ जनवरी। सुबह पाँच बजे। दिल्ली के पालम हवाई अड्डे की ओर जाते समय दाँत **बजा देने वाली सर्दी। कुहरा भरे** आकाश में तारे भी जाड़े से ठिठुर कर क्षीणप्रभ। यान में **बैठ जाने पर भीतर** की गुनगुनाहट, गरम नाश्ता-काफी से सुस्थ अनुभव किया। लगभग **दो घंटे में बम्बई के हवाई** अड्डे पर थे।

मध्याह्न में बम्बई से उड़ान। दो हजार नौ सौ बीस मील, हिन्द महासागर के ऊपर। दोपहर के भोजन के कुछ बाद सुनाई दिया—हम भूमध्य रेखा पार कर रहे हैं। भूमध्य रेखा के दक्षिण गोलार्ध में पहली बार प्रवेश। विचार आया, उत्तरी गोलार्ध में भरोसा रहता है कि हम पाँव पृथ्वी पर जमा कर सिर आकाश में उठाये उठते-बैठते या चलते-फिरते हैं। सभी सम्प्रदायों के विश्वासों के अनुसार ईश्वर ने पृथ्वी को चपटा-चौसर बनाया है। मनुष्य पाताल की कल्पना नरक से भिन्न न कर सकता था। उस विश्वास से दक्षिणी गोलार्ध में पर्वतों-वृक्षों की जड़ें पृथ्वी के भीतर और प्राणियों के पांव पृथ्वी पर जमे रहने की स्थिति में, पर्वत-वृक्षों की चोटियां और प्राणियों के सिर—उत्तरी गोलार्ध से उलटे अधर में लटके रहने चाहियें।

अढ़ाई बरस पूर्व अमरीका जाते समय भी पाताल की कुछ ऐसी ही हास्यास्पद कल्पना याद आयी थी। वहाँ पहुँचने पर पाताल में होने की कुछ अनुभूति न हुई। एक समय सामान्य मनुष्य के लिये यह विश्वास कितना कठिन था कि पृथ्वी गोल है और अपनी गति से चकई की तरह घूमती अधर में स्थित है। यह तथ्य अब निर्विवाद सर्वमान्य है परन्तु यह सत्य कहने के लिये कोपर्निकस और गैलीलियो को अपने प्राण देने पड़े।

संसार के नक्शों में कई बार हिन्द महासागर में मौरिशस नाम देखा था। इस नाम के साथ द्वीप की स्थिति का चिह्न, अच्छे बड़े नक्शे में भी राई के दाने से बड़ा न लगा था। पाँच घंटे तीर की तरह अधर में बढ़ते जाने के बाद यान की गति अधोमुख होने का अनुमान हुआ। उत्सुकता से यान की खिड़की से झांक कर देखा, नीचे बादलों का असीम विस्तार। कहीं बादलों के फटाव में से बहुत दूर नीचे धुंधला-धूसर नीला असीम सागर।

कुछ मिनट अधोमुख उड़ने के बाद यान ने घूमने के लिये अपना दाहिना डैना झुकाया तो नीचे झलक मिली, जैसे महावृक्ष का गहरा हरा छत्र असीम नीले जल के विस्तार में खड़ा हो। तीन-चार मिनट बाद यान बायीं ओर झुकने पर दूसरी ओर की खिड़की से गहरी हरी पहाड़ियों का विस्तार। हमारी घड़ी में संध्या के छः बज रहे थे। तभी

सूचना मिली—हम कुछ मिनट में प्लेज़ान्स हवाई अड्डे पर उतरेंगे। इस समय मौरिशस द्वीप में दोपहर बाद साढ़े चार बज रहे हैं। द्वीप में पृथ्वी पर तापमान २६ अंश है।

यान के द्वार से निकले तो चौथे पहर की ढलती धूप स्थानीय गरम मौसम की। सुबह दिल्ली से कड़े जाड़े में चले थे। अब दोपहर बाद इस द्वीप का सबसे गरम मौसम। प्लेज़ान्स हवाई अड्डा पालम और सान्ताक्रूज़ के हवाई अड्डों की अपेक्षा बहुत छोटा है परन्तु लखनऊ, पटना, वाराणसी के हवाई अड्डों से अच्छा बड़ा।

यान की सीढ़ी उतर रहे थे तो कुछ सज्जन और महिलाएं अगुवानी के लिये आते दिखे। डाक्टर नन्दलाल को पहचाना, फिर श्री बखोरी को। नन्दलाल भारतीय संगीत की शिक्षा के लिये बहुत बरस लखनऊ के 'भातखण्डे संगीत विश्वविद्यालय' में थे। बैरिस्टर बखोरी भारत-दर्शन यात्रा के समय लखनऊ आये तो भेंट हुई थी। बखोरी द्वीप की राजधानी 'पोर लुई' के नगर-अधिकारी हैं; अंग्रेज़ी, फ्रेंच और हिन्दी के कवि और लेखक भी।

नन्दलाल और बखोरी ने अगुवानी के लिये आये सज्जनों का परिचय दिया—माननीय खेर जगतसिंह, मंत्री योजना और विकास; हिन्दी प्रचारिणी सभा के प्रधान, आर्य समाज के प्रधान, लेखक संघ के प्रधान आदि आदि। फूलमालाओं का गर्दन तोड़ बोझ, गुलदस्ते, कुशल-क्षेम। मौरिशस सरकार के निमंत्रण पर गये थे परन्तु एक लेखक के स्वागत के लिये इतना उत्साह। मौरिशसी जनता का यह उत्साह परोक्ष, परिचित लेखक व्यक्ति के लिये नहीं, हिन्दी भाषा, साहित्य और भारत के प्रति भावना समझा।

हवाई अड्डे के प्रतीक्षालय में उस समय वातानुकूलन काम न कर रहा था। हमारे शरीर पर दोहरे ऊनी कपड़ों के कारण हमारे लिये गरमी कुछ अधिक थी। स्वागत के लिये आये लोग सूती शूट पहने थे परन्तु वे हमारी अपेक्षा अधिक गरमी अनुभव कर रहे थे।

"हमें अनुमान है आप कैसे बर्फ़ानी मौसम से आ रहे हैं," बखोरी ने वातानुकूल की खराबी के लिये खेद प्रकट किया, "यह हमारे यहाँ सबसे गरम मौसम है और इस बार, कई बरस बाद असाधारण गरमी।"

विश्वास दिलाया, गरमी से विशेष कष्ट नहीं महसूस हो रहा। जानना चाहा, यहाँ कितनी गरमी हो जाती है?

उत्तर मिला, २७-२८ अंश। कुछ निचले भागों में कभी ३१-३२ अंश तक भी। बखोरी मुस्कराये, "मालूम है, भारत में मई-जून में इससे कहीं अधिक गरमी हो जाती है और दिसम्बर-जनवरी में उतनी ही विकट सर्दी। हमारे यहाँ की कड़ी सर्दी में भी तापमान १६-१७ अंश से नीचे नहीं गिरता। हम लोग समशीतोष्ण के अभ्यस्त, मध्यमार्गी हैं।"

उत्तर भारत की तुलना में मौरिशस की ऋतु सदा बहार कही जा सकती है। भारत में ३२-३३ अंश तापमान में आम लोग पंखा भी जरूरी नहीं समझते। परन्तु इस द्वीप में इतनी गरमी से लोग व्याकुल होने लगते हैं।

हवाई अड्डे से नगर की ओर जाते समय गरम ऋतु में वर्षा से धुले किसी पहाड़ी नगर की ओर बढ़ते-जाने की रोमांचक अनुभूति। मकानों के सामने ऊंची हरी झाड़ियों की दीवारें, सुथरे जंगल, हरे-भरे टीले।

१३ जनवरी शनिवार था। माननीय योजना मंत्री का सुझाव था, हम १४ तारीख रविवार थकावट दूर करने के लिये विश्राम करें। भेंट-मुलाकात के कार्यक्रम पन्द्रह से आरम्भ हों।

डाक्टर नन्दलाल के अनुरोध से होटल के बजाय उन्हीं के यहाँ ठहरे।

१४ जनवरी रविवार। यात्रा की थकावट के विचार से पूर्ण विश्राम का अवसर दिया गया था परन्तु द्वीप की ओसजन भरी वायु ने रात भर में सब थकावट मिटा दी थी। दो-चार उत्साही युवक 'दर्शन' के लिये आ ही पहुँचे। वही भारतीय मुहावरा, हिन्दी का सरल-स्वाभाविक उच्चारण। उनसे चर्चा द्वीप की स्थिति के परिचय के लिये सहायक हुई।

डाक्टर नन्दलाल का छोटा बंगला द्वीप के शीतल भाग वाकोआ में है। मौरिशस की प्राकृतिक शोभा का प्रभाव नन्दलाल पर और नन्दलाल की रुचि और सूझ की झलक उनके मकान पर दिखते हैं। मकान और उसे घेरे बगिया तानपूरा के आकार में है। मकान के सामने फव्वारे पर पीतल में ढला यूनानी वाद्ययंत्र लाइरा और उस पर पश्चिमी संगीत के स्वर संकेत बने हैं। सब ओर स्वरों और संगीत के प्रतीक। नन्दलाल पूर्वी-पश्चिमी संगीत के आचार्य (पी-एच० डी०) तो हैं ही; साहित्यिक रुचि से पत्र-पत्रिकाओं में उनके रचनाएं-लेख भी प्रकाशित होते रहते हैं। वाकोआ हिन्दी परिषद के प्रधान हैं।

यहाँ जनवरी में हमारे लिये होली की सुहावनी बयार चल रही थी। चौथे पहर मेज़बान के सुझाव से घूमने निकल गये। नन्दलाल स्वयं सारथी।

रविवार के कारण दुकान-बाज़ार बन्द थे। वाकोआ में गलियों-सड़कों के दोनों ओर खूब वृक्ष हैं। वाकोआ ही एक वृक्ष का नाम है। कभी यहाँ इस वृक्ष के जंगल थे। अब भी पूरा स्थान वाकोआ की घनी हरियावल से छाया हुआ। बस्ती छोटी, सुथरी। बस्ती से निकलते ही हरे-भरे सुथरे जंगल। जंगलों में खूब बड़े-चौड़े पत्तों के, नारियल की अनेक जातियां और ताड़। उसके पड़ोस में डोरियों या सींखों जैसे पत्तों के पाइन, चीड़-देवदार से मिलते अनेक आकार-प्रकार के वृक्ष। बस्ती से कुछ दूर दक्षिण जाकर बायी ओर नीले जल से लबालब विस्तृत झील। झील का नाम 'मारे वाकोआ'। फ्रेंच भाषा के शब्दों का अर्थ है वाकोआ का दल-दल।

इस झील के चारों ओर वाकोआ के बन विस्तार। किनारों पर दलदल बनी रहती है। झील वाकोआ की बस्ती से सात-आठ मील दूर है। इस ऊँचाई पर अधिक वर्षा के कारण झील भरपूर रहती है। यह झील द्वीप की दक्षिण बस्तियों के लिये जलाशय है। सड़क ऊँचाई पर जा रही थी! सात-आठ मील आगे टीलों से घिरी एक और झील। यह झील मारे वाकोआ का लगभग दशमांश है परन्तु नाम 'ग्रां बासे' (बड़ी झील)।

ग्रां बासे नाम शायद इस झील से अधिक ऊँचाई पर होने से है या झील के विशेष माहात्म्य के कारण। द्वीप में, इस झील पर जलक्रीड़ा और विनोद के लिये परियों के आने की लोक-कथायें प्रचलित हैं। यह झील 'परी ताला' भी कहलाती है। द्वीप के हिन्दुओं के लिये यह सरोवर मौरिशस की गंगा है। नदी स्नान के सभी पर्वों पर द्वीप के हिन्दू दूर-दूर भागों से तीस-पैंतीस मील पैदल चलकर यहाँ आते हैं। विशेषतः शिवरात्रि के दिन भक्त इस सरोवर गंगा का जल ले जाकर शिव मंदिरों में चढ़ाते हैं। उस समय यहाँ मेले में भक्तों और तमाशाइयों की इतनी भीड़ होती है कि यातायात के लिये पृथक मार्गों की व्यवस्था जरूरी हो जाती है।

परी तालाब के किनारे शिवजी और बजरंगबली के मन्दिर हैं। मन्दिर का पुजारी धोती और छोटी-सी पगड़ी पहने था। उसने बताया—सरोवर अतल है। इसका जल रिद्धि-सिद्धि दाता है। भक्तों ने भारत से गंगा जल के कई कनस्तर ले जाकर इस सरोवर में डाल दिये हैं। गंगाजल के समान इस जल में भी कभी कीट-कृमि उत्पन्न नहीं हो सकते।

नन्दलाल पुजारी की बात सुनकर कनखियों से मुस्करा रहे थे। उन्होंने बताया, जल की गहराई नापी जा चुकी है, लगभग सत्तर-अस्सी फीट। परन्तु विश्वास का जादू भी कोई चीज़। हिन्दुओं के अतिरिक्त द्वीप के अनेक मुसलमान और कैथोलिक भी रोम-संकट से त्राण की आशा में यहाँ का जल ले जाते हैं। कुछ लोग दैवी सहायता की आशा में यहाँ मनौतियां भी मान जाते हैं। उन्हें लाभ होने का भी विश्वास है।

परी तालाब के किनारे मन्दिर बनाते समय सुरुचि और उपयोगिता का ध्यान रखा गया है। मन्दिरों के समीप आधुनिक ढंग के विस्तृत कथामण्डप या हाल बनाये गये हैं। कथामण्डप की दीवारें कांच की पारदर्शी हैं। बीचोंबीच आचार्य या व्यास की वेदी। चारों ओर श्रोताओं के लिये बेंचों के कई वृत्त। हाल का फर्श केन्द्र की ओर ढालू होने से पीछे बैठे श्रोताओं के लिये व्यास की वेदी ओझल नहीं हो जाती। कुछ भक्त या यात्री वहाँ रात बिताना चाहें तो जगह की सुविधा है।

१५ जनवरी, १९७३। प्रातः पश्चिम ओर खिड़की से 'त्रुआ मामेल' पहाड़ी की तीन चोटियां भीगी सुनहली किरणों में ललछौं भूरी दिखाई दे रही हैं। 'त्रुआ मामेल' का अर्थ 'त्रिस्तन' या तीन चोली। मकान के ऊपर छोटी तीसरी मंज़िल नन्दलाल का संगीत साधना कक्ष है। इस कमरे की खिड़की से पश्चिम ओर नीले सागर का असीम विस्तार दृष्टि की सीमा तक। सब ओर भीगे वृक्ष और घनी हरियावल क्षितिज से झांकती किरणों से चकाचक। रात कुछ बरस गया था। यहाँ छोटे-छोटे बादल दिन-रात में किसी भी समय फुहार छोड़ते इधर-उधर निकल जाते हैं। सुहावनी खुनकी लिये बसन्त की गुदगुदाती बयार।

मेज़बान जान गये थे कि मुझे नाश्ते में कुछ फल रुचता है। मेज़ पर केले-पपीते, अनन्नास और संतरे का रस। इस बंगले में और सड़क से आते-जाते आम, लीची, केले,

पपीते, कटहल, नारियल के पेड़ देखकर अनुमान हो गया था, भारत के अधिकांश फल यहाँ हैं और प्रचुर। सेव, संतरा, अलूचा आदि कठिनाई से हो पाते हैं। केले और पपीते की कुछ जातियों के आकार से तो विस्मय। नारियल के पेड़ इतने ऊंचे कि स्त्रियां बांह उठाकर फल तोड़ सकें। फल खूब सरस मीठे, प्यारी सुवास। संतरा-माल्टा प्रायः दक्षिण अफ्रीका से आयात होता है। यहाँ के अनन्नास का स्वाद और सुगन्ध अनुपम। आम का मौसम यहाँ नवम्बर-दिसम्बर है। जनवरी में स्वाद कुछ उतर गया था। छोटी जात के लाल-पीले अमरूदों के जंगल 'ग्रां बासे' की राह में देखे थे।

मौरिशस में निमंत्रण प्रधानमंत्री की ओर से था। उन्हें औपचारिक रूप से, पहुँच की सूचना और धन्यवाद देना उचित था। मौरिशस की राजधानी पोर्ट लुई (उच्चारण पोर लुई) नगर में है। वहीं सेक्रेटेरियेट, विधान सभा भवन और प्रधानमंत्री का निवास भी। पोर लुई द्वीप का मुख्य बन्दरगाह भी है।

नन्दलालजी के मकान से हरियावल घिरे जंगलों के बीच गली लांघ कर दो-फर्लाङ्ग आये थे। उन्होंने छोटे मैदान के बीच एक छोटे मकान की ओर संकेत किया, "यहां पहले रेल का स्टेशन था। अब यह डाकघर है। हम लोगों के बचपन में छोटी-सी रेलगाड़ी—जैसी भारत में कालका से शिमला तक जाती है—यहाँ चलती थी। अब रेल की पटरी उखाड़ दी गयी है। उसके स्थान पर बसों की सुचारु व्यवस्था है। द्वीप के सभी भागों में पक्की सड़कें और समय से बसों के आने-जाने की व्यवस्था से बहुत सुविधा है। यह द्वीप ही शायद ऐसा देश है जहाँ रेल नहीं।"

सड़क वाकोआ से उत्तर-पश्चिम की ओर उतर रही थी। बस्ती से कुछ ही दूर जाकर सड़क के दोनों ओर खेत। एक ओर आदमकद ऊंची ईख के खेत तो दूसरी ओर कमर से नीची चाय की झाड़ियों के बागान। भिन्न जलवायु की खेती एक ही स्थान पर, कुछ विचित्र लगा। उतराई पर सड़क कुछ और पश्चिम घूमी तो सामने अन्तरिक्ष तक नीले सागर का विस्तार। उत्तर ओर तट से कुछ अन्तर पर उजले सफेद बड़े-बड़े जहाज, सफेद पाल लगाये आती-जाती नौकायें। यह सड़क सागर तट के समीप टीलों पर से जाती है।

वाकोआ से छः सात मील पर, यातायात की सुव्यवस्था के लिये गोल मैदान का यातायात द्वीप (राउंड पॉइंट) सेंट जॉन है। यहाँ कई सड़कें मिलती हैं। पोर लुई के लिये 'हाइवे' के ढंग की दोहरी सड़क है। बीच में फूलों की झाड़ियों की पट्टी देकर दोनों ओर तीन-तीन गाड़ियों के लायक सड़कें। हाइवे केवल बारह मील के लिये, परन्तु है जरूर। प्रकृति ने द्वीप को अपने सौन्दर्य का संग्रहालय बनाया है तो मनुष्य वहाँ अपने निर्माण में कोई न्यूनता क्यों रहने दे। बारह मील की इस सड़क पर लोग छः-सात मिनट, प्रति घण्टे सौ-सवा सौ किलोमीटर की गति से गाड़ी दौड़ाने का शौक भी पूरा कर लेते हैं।

पोर लुई तक दो नदियां, छोटी झीलें, झरने और दाहिने हाथ वृक्षों से भरी घाटियों के पर्वत नगर के आंचल तक। राजधानी की ओर बढ़ता मौसम बदलता जा रहा था। हवा में खुनकी न रही थी। धूप तेज लगने लगी। नगर की घनी बस्ती में गरमी थी।

सड़कों पर अटूट पांतों में रेंगती गाड़ियां और दोनों ओर पटरियों पर कन्धे से कन्धा रगड़ती भीड़।

पार्लमेन्ट भवन और सचिवालय बन्दर के सामने समीप ही है। सचिवालय के चारों ओर ऊँचे ताड़-नारियल और दूसरे विशाल सुन्दर वृक्ष। बन्दर के ठीक सामने स्तम्भ पर सागर में आते जहाजों की ओर चौकस नज़र, नगर को बसाने वाले फ्रेंच गवर्नर ला बूर्दोने की आदमकद मूर्ति है।

पोर लुई में सचिवालय से कुछ पहले नन्दलाल गाड़ी रोकते हुये बोले—"क्षण रुक कर एक अपने परोक्ष परिचित से साक्षात्कार कर लीजिये।"

गाड़ी एक दफ़तरनुमा दरवाजे के सामने रुकी थी। दरवाज़े के बोर्ड पर 'भाटिया प्रेस'। पुकार सुनकर सफेद कमीज़ पतलून में एक पूर्ण युवा, सुदर्शन व्यक्ति मुस्कराते हुये बाहर आया।

युवक को शायद पूर्व आभास था। मेरे मौरिशस पहुँचने का समाचार पत्रों में सचित्र प्रकाशित हो चुका था। व्यक्ति के हाथ नमस्कार में उठ गये। गद्‌गद कंठ, 'वयं त्वाम् स्मरामो, वयं त्वाम् भजामो, वयं त्वाम् नमामो' संस्कृत का शुद्ध उच्चारण। श्लोक के अंश का अपने प्रयोजन से समयानुकूल प्रयोग। स्पष्ट था, मौरिशस के भारतीगों में हिन्दी के लिये ही नहीं संस्कृत के लिये भी अनुराग है।

भाटिया के दोनों हाथ अपने हाथों में लेकर सद्‌भाव के लिये आभार प्रकट किया।

भाटिया बोले, "यहा कठिनाई के बावजूद हिन्दी की आधुनिक विशेषत: आपकी सभी रचनाएं पढ़ चुका हूँ, नयी की प्रतीक्षा है।"

प्रधानमत्री के यहाँ ठीक समय पर पहुँचने की चिन्ता से जल्दी में थे। सुविधा से जम कर बातचीत के वायदे से आगे बढ गये। संध्या तक साहित्य के नाते परिचित पाँच-सात व्यक्तियों से भेंट में, परोक्ष परिचय साक्षात्कार में बदल जाने का पुलक अनुभव हुआ। रचनाकार या कलाकार और कला प्रेमी का नाता निर्वैयक्तिक होने पर भी समीप का होता है।

प्रधानमंत्री के कार्यालय में निश्चित समय पहुँचे। प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ी। प्रधानमंत्री डाक्टर सर शिवसागर रामगुलाम का कद मंझला, चेहरा गहरा सांवला, केश श्वेत, मोटा चश्मा। आयु तिहत्तर वर्ष। धारीदार चुस्त सूट में थे, कालर-टाई दुरुस्त। चेहरे पर आयु के शैथिल्य-थकावट, पोशाक में उपेक्षा का कोई लक्षण नहीं।

कुशल-मंगल के पश्चात् प्रधानमंत्री बोले, "हम लोगों को विशेषत: द्वीप के हिन्दी पाठकों और लेखकों को आपसे भेंट की बहुत उत्सुकता थी। इस अवसर से उन्हें बहुत संतोष होगा। लोग आपसे साहित्य के अनेक प्रसंगों पर विचार-विमर्श करेंगे। हमारे नवयुवक लेखक आपके परामर्श से अपने सामाजिक और राष्ट्रीय दायित्व को समझ कर प्रेरणा भी पायेंगे। भारत की तरह हमारे सामने भी, स्वतंत्रता पाने के बाद जनता का जीवन स्तर सुधारने, हमारी अति सीमित भूमि और साधनों से यथासम्भव आत्मनिर्भर

बन सकने की समस्याएं हैं। हम अपने लक्ष्यों की लोकायत दृष्टि और समाजवादी प्रजातंत्रात्मक कार्यक्रम से ही पा सकते हैं। समाजवादी लक्ष्यों को समाज या जनता के सहयोग से ही पाया जा सकता है। उसके लिये संकीर्ण साम्प्रदायिक और जाति वर्गभेद की सीमाओं से मुक्त होकर सामूहिक मानवीय हित की दृष्टि और व्यवहार अपनाना आवश्यक हैं। आपने अपनी रचनाओं से इसी विचारधारा को प्रोत्साहन दिया है। विश्वास है, हमारे लेखक आपसे ऐसा मार्गदर्शन और प्रेरणा पायेंगे।"

प्रधानमंत्री ने बताया, वे हिन्दी बोल-समझ लेते हैं परन्तु पढ़ने-लिखने का अभ्यास कम है। उनके परिवार में विशेषतः पत्नी और बेटियों को हिन्दी पुस्तकों में बहुत रुचि है।

अपनी तीन पुस्तकें भेंट के लिये ले गया था। इस भेंट के लिये रामगुलामजी ने अपने परिवार की ओर से धन्यवाद दिया।

प्रधानमंत्री के विषय में पिछले दिन चर्चा सुनी थी। नवयुवकों के स्वर में गर्व था— हमारा प्रधानमन्त्री प्रवासी भारतीय कुलियों की सन्तान है। वह लड़कपन में बैलगाड़ी हांकने की पगार किये है।...... अपनी करनी और बूते पर जनता का विश्वास पाकर प्रधानमन्त्री के पद पर पहुँचा है। उससे अधिक सर्वसाधारण का सुख-दुःख समझने वाला और जनगण का हमदर्द दूसरा कौन होगा।

विद्यार्थी रामगुलाम अपने श्रम और योग्यता से छात्रवृत्ति पाकर चिकित्सा शिक्षा के लिए इंग्लैण्ड गया था। वहाँ उसने अपनी योग्यता से अध्यापकों को प्रभावित किया। विद्यार्थी अवस्था में भी, ब्रिटिश पत्रों में मौरिशस की समस्याओं पर लेख लिखता रहा। रामगुलाम को कलम पर अधिकार है। विद्यार्थी अवस्था में लेखन उनके निर्वाह का भी सहारा रहा। द्वीप के प्रभावशाली दैनिक 'एडवांस' के संस्थापक भी वही हैं। लौटकर डाक्टर का पेशा आरम्भ किया परन्तु उससे अधिक सार्वजनिक सेवा और प्रजा के अधिकारों के लिए वैधानिक संघर्ष की लगन।

द्वीप में शिवसागर रामगुलाम की पीढ़ी और मौरिशस की प्रजा के स्वायत्त शासन के लिए संघर्ष का इतिहास समकालीन और एक-दूसरे की कहानी है। भारत ने स्वातंत्र्य संघर्ष का भी द्वीप की स्थिति पर गहरा प्रभाव पड़ता रहा है। पहले विश्व महायुद्ध के अन्त तक मौरिशस, सौ बरस ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन की निर्मम शोषक व्यवस्था से जकड़ा रहा।

द्वीप का अतीत

द्वीप की वर्तमान समस्याओं के परिचय के लिए उसके इतिहास की संक्षिप्त झांकी उपयोगी होगी। यूरोप को मौरिशस का प्रथम परिचय सोलहवीं सदी में पुर्तगाली नाविक वास्कोडिगामा की पूर्वी यात्राओं से मिला था। परन्तु पुराने इतिहासकार प्लिनी ने लिखा है कि मिस्रवासी ईसा से तीन सदी पूर्व भी इस द्वीप का अस्तित्व जानते थे। पुर्तगाली नाविकों को एक मूर जहाज की लूट में ऐसा मानचित्र मिला था जिसमें इस द्वीप का चिह्न 'दीन अरबी' नाम से था। दीन अरबी शब्दों का अर्थ 'अरब की ज्योति'। कुछ ऐसे प्राचीन

उल्लेख भी मिले हैं जो सोलहवीं सदी से पहले भी भारत, मलाया और अरब के नाविकों के इस द्वीप तक आने-जाने के प्रमाण हैं।

पुर्तगालियों ने इस द्वीप का नाम 'इल्हा दो किर्नो' (बड़े पक्षी का देश) रखा था। उस समय यहाँ एक बहुत बड़ा पक्षी 'डोडो' पाया जाता था। डोडो का शरीर भारी और पंख छोटे होने के कारण ऊँचा या दूर तक न उड़ सकता था। माँस उसका स्वादिष्ट और शिकार आसान था। पुर्तगाली यहाँ प्रायः पचहत्तर बरस तक आते-जाते रहे। उन्होंने इस द्वीप में खेती और पशुपालन के कुछ प्रयत्न किये परन्तु सफल न हो सके। अलबत्ता वे डोडो पक्षी का बीज नाश कर गये। अब इस पक्षी के शरीर के दो ही भुस भरे नमूने रह गये हैं, एक पोर लुई के संग्रहालय में, दूसरा लन्दन के ब्रिटिश संग्रहालय में।

पुर्तगाल से यह द्वीप स्पेन ने छीना और स्पेन से १५९८ में डच लोगों ने छीन लिया। डच लोगों ने अपने तत्कालीन राजकुमार मौरिस के नाम पर इसका नाम मौरिशस रख दिया। इस द्वीप की स्थिति, यूरोप से एशिया और भारत के तत्कालीन सागर मार्ग, भारतीय महासागर में, नाके की है। इसलिए सुदूर पूर्व में साम्राज्य जमाने के महत्वाकांक्षी यूरोपियनों के लिए इस द्वीप का बहुत महत्व था।

डच लोगों ने भी द्वीप में खेती और पशुपालन आरम्भ किया। वे यहाँ गन्ने की राब और नारियल से शराब बनाने के उद्योग चलाना चाहते थे। द्वीप में इन कामों के लिये अम्बोयाना और भारस में छापे मार कर या वहाँ से दास खरीद कर यहाँ लाये गये। नील और तम्बाकू की खेती भी शुरू की गई थी। वनों में प्रचुर लकड़ी चीरने के लिये, हमारे यहाँ की पनचक्कियों जैसे पानी-आरे भी लगाये। सब कुछ करके भी डच यहाँ जम न सके। वे १७१० में द्वीप छोड़ गये। १७१५ में फ्रांसीसियों ने अपना झंडा गाड़कर इस द्वीप का नॉम 'इल द फ्रांस'—फ्रांस का द्वीप रख दिया। उस समय भारत में पांव जमाने के लिये फ्रांस और ब्रिटेन में विकट होड़ चल रही थी। फ्रांस के लिये यह द्वीप 'स्तेला क्लाविस्के मारिस इंडिची' था। मौरिशस के राष्ट्रीय चिह्न पर अब तक ये ही शब्द हैं। अर्थ है—भारत महासागर की कुंजी का उज्ज्वल तारा।

फ्रांस (फ्रेंच ईस्ट इंडिया कम्पनी) ने इस द्वीप को बसाकर अपना मजबूत गढ़ बना सकने के सभी यत्न किये। यहाँ बसने के लिये कुछ फ्रेंच सैनिक भेजे गये। फ्रांस में द्वीपान्तरवास (काला पानी) या आजन्म जेल की सज़ा पाये लोगों को यहाँ लाकर, स्वतन्त्र रूप में बस जाने के लिये मुक्त कर दिया गया परन्तु यह प्रयत्न सफल न हुये। अठारहवीं सदी के पूर्वार्ध में यहाँ बर्टरेंड ला बूर्दोने गवर्नर के पद पर आया। उसने द्वीप के दक्षिण-पूर्व में डच लोगों द्वारा बनाये 'ग्रां पोर्ट' बड़े बन्दर की कठिनाइयों के उपाय के लिये पश्चिमोत्तर में पोर लुई बन्दर (वर्तमान राजधानी) बनवाना आरम्भ किया। इस काम के लिये फ्रांस के इंजीनियर बुलवाये गये। अफ्रीका में दासों के दल और कुछ कारीगर मज़दूर भी लाये गये। यह दास और मज़दूर बौद्धिक रूप से ऐसे कामों के योग्य न बन सके। ला बूर्दोने ने भारत में फ्रांस के अधीन स्थानों बंगाल, मद्रास, मालाबार और

सूरत से १३७ कारीगर बुलवाये। यह लोग फ्रेंच इंजीनियरों के निर्देश में काम करने लगे। फ्रेंच इंजीनियरों के चले जाने के बाद भारतीय कारीगर ही इंजीनियर बन गये। द्वीप बसने लगा। इस द्वीप को बसाने में भारतीयों का श्रम-सहयोग आरम्भ से मुख्य रहा। ईख, अच्छी लकड़ी आदि से आय के अतिरिक्त आमदनी का बड़ा स्रोत था मेडागास्कर और दक्षिण अफ्रीका से दास खरीद कर या पकड़ कर उनका व्यापार ।

उस समय वहाँ धनोपार्जन की आशा में फ्रांस से पुरुष ही आते थे। यहाँ आकर उच्छृङ्खल जीवन। शनैः शनैः फ्रांसीसी पुरुषों और पुर्तगाली तथा डचों द्वारा भारत-अफ्रीका से लायी गई दास नारियों से दोगली संतानों की संख्या चढ़ने लगी। इस मिश्रित नस्ल को क्रिओल कहा जाता है। यह स्थिति ला बूर्दोने की नज़र में गौर वर्ण जाति की प्रतिष्ठा के लिये घातक थी। वह द्वीप को फ्रांस का उपनिवेश बनाने के लिए यहाँ शुद्ध फ्रांसीसी रक्त के लोगों, स्वामी वर्ग की स्थायी बस्ती बसा देना चाहता था। उसने भिन्न नस्लों के सहवास पर प्रतिबंध लगा दिये थे। उसने फ्रेंच सरकार से अनुरोध किया कि द्वीप के फ्रेंच पुरुषों की जरूरत और संगति के लिये यहाँ फ्रांस से लड़कियां और स्त्रियां भेजी जायें। उस समय द्वीप में लगभग साढ़े तीन हजार फ्रांसीसी या यूरोपियन थे। फ्रांस सरकार ने फ्रांस के कई नगरों से साढ़े तीन सौ आवारा स्त्रियां और लड़कियों को पकड़वा कर यहाँ भेज दिया। इस प्रकार लायी गयी नारियों में कुछ का दावा फ्रांस के अभिजात वर्गों—राव, राजा, सरदार परिवारों की सन्तान होने का था। ऐसी नारियों के साथ गृहस्थ बसा लेने वाले गोरे और उनकी सन्तानें आभिजात्य का दावा करने लगे।

तीन-साढ़े तीन सौ गोरी नारियों के आ जाने से साढ़े तीन हजार गोरे पुरुषों की जरूरत पूरी न हो सकती थी। दोगली नस्ल की संख्या बढ़ती गयी। मिश्रित नस्लों में अनेक लोग रूप-रंग से आकर्षक भी होते हैं। अमरीका की तरह यहाँ भी इन दोगलों और गोरों के पुनः मेल से मिश्रित वर्ग तेजी से बढ़ने लगा। इस वर्ग में रक्त मिश्रण के विभिन्न अनुपात होते रहे। काले और गोरे के मेल से पहली पीढ़ी मुलाटो कहलाती है। मुलाटो और गोरे के मेल से पहली उत्पन्न सन्तान अधिक गोरी हो जाती है। ऐसी लोग क्वाडरून कहलाते हैं। क्वाडरून और गोरे की सन्तान ओक्टोरून। ओक्टोरून लोगों का वर्ण-आकार बहुत आकर्षक होता है परन्तु वे माने जाते हैं कलर्ड या काले। ओक्टोरून और गोरे की संतान को (अमरीका में) गोरा मान लिया जाता है।

द्वीप के अनेक गोरे भूपति अपनी दोगली सन्तानों के प्रति वात्सल्य में उन्हें अपनी सम्पत्ति का अंश या पूरा उत्तराधिकार भी दे देते थे। ऐसे लोगों के लिये सरकारी काम या व्यवसायों में अच्छे वेतन की नौकरी पा लेना भी सुलभ था। यूरोपियन इस वर्ग को नीचा मानते हैं परन्तु इन्हें भारतीय और काले लोगों की अपेक्षा अपना समीपी और विश्वासपात्र मानते हैं। द्वीप की जनसंख्या में इस वर्ग का अनुपात शनैः शनैः बढ़ता गया है।

फ्रांसीसी अपने उपनिवेशों में बोली जाने वाली अपभ्रंश फ्रांसीसी भाषा को क्रिओल कहते हैं। फ्रांस की भूमि से दूर अन्य देशों, उपनिवेशों में उत्पन्न या दोगली नस्लों को भी

क्रिओल कहा जाता है। क्रिओल शब्द में कुछ हीनता की ध्वनि है इसलिये मौरिशस में मिश्रित नस्ल का वर्ग क्रिओल कहलाना पसन्द नहीं करता। वे लोग स्वयं को 'कैथोलिक' या कलर्ड कहते हैं।

फ्रांसीसी जिन भारतीय या अफ्रीकी दासों को द्वीप में लाते थे उन्हें प्रायः सामूहिक रूप से समुद्र तट पर बपतिस्मे की रस्म की डुबकी दिलवा कर कैथोलिक (ईसाई) बना लेते थे। यह क्रम इस शताब्दी के आरम्भ तक भी चलता रहा। अब तक जनश्रुति है— 'सुन्दरन को डुबकी दी, जल से निकला सेमसन।' अस्तु द्वीप के आधुनिक प्रजातंत्र में इस कैथोलिक वर्ग का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

द्वीप अंग्रेज़ों के हाथ आने का प्रसंग भी आवश्यक है। अठारहवीं सदी के अन्त और उन्नीसवीं सदी के आरम्भ में भारत में पांव जमाने के लिये ब्रिटेन और फ्रांस की होड़ के कारण इस द्वीप पर अंग्रेज़ों की नज़र थी। सन् १८१० में अंग्रेज़ों ने चौदह हजार जल-थल सेना लेकर, जिसमें एक तिहाई भारतीय सिपाही थे, द्वीप को घेर कर आक्रमण कर दिया।

उस समय द्वीप में फ्रांसीसी सरकार की स्थिति डगमग थी। अठारहवीं सदी के अंत में फ्रांस में राज्य क्रान्ति हो गई थी। फ्रांस में स्वतंत्रता समता, सब मनुष्य भाई-भाई के नारों का बोलबाला था। उसके पूर्व अमरीका ने दास प्रथा समाप्त कर दी थी। सम्पूर्ण सभ्य संसार दास प्रथा का विरोध कर रहा था। फ्रांस से द्वीप में भी दासों को स्वतन्त्र करके उनके श्रम की मजदूरी देने के आदेश भेजे गये थे। द्वीप के फ्रांसीसी भूस्वामी और दास व्यापारियों ने इन आदेशों को ठुकरा कर द्वीप को फ्रांस से स्वतंत्र घोषित कर लिया था।

अंग्रेज़ी सेना के कमाण्डर ने कूटनीति से द्वीप के फ्रांसीसी भूस्वामियों और शासकों को आश्वासन दिया, यदि वे अंग्रेज़ों के कब्जे का विरोध न करके उन्हें सहयोग दें तो द्वीप में उनके भूमि और दासों के स्वामित्व के अधिकारों, उनके धर्म, भाषा और संस्कृति की यथावत रक्षा की जायेगी। द्वीप की फ्रांसीसी सेना के नमक हलाल काले और मिश्रित नस्ल के सिपाही द्वीप की रक्षा के लिये जी जान से अंग्रेज आक्रमण से लोहा लें रहे थे परन्तु फ्रांसीसी शासकों और भूस्वामियों ने अपने राष्ट्रीय सम्मान, देश भक्ति या स्वतंत्रता की कुछ भी चिन्ता न कर अंग्रेज़ों से समझौते के लिये हथियार डाल दिये। द्वीप पर ब्रिटिश शासन कायम हो गया। यह क्रम पन्द्रह बीस बरस चला, अंग्रेज़ों के कदम जम जाने पर ब्रिटिश पार्लमेंट के आदेश से द्वीप में दास प्रथा समाप्त कर दी गयी। शनैः शनैः शासन में अंग्रेज़ी का उपयोग होने लगा परन्तु द्वीप की सामाजिक भाषा फ्रांसीसी रही।

द्वीप में दास प्रथा तो समाप्त हो गयी परन्तु खेती और द्वीप के विकास के लिये श्रमिकों की आवश्यकता थी। द्वीप में उतने आदमी न थे। उस प्रकार के आभिजात्य का गर्व करने वाले और शोषण के अभ्यस्त गोरों के बस का न था। उपाय था, अन्य देशों से श्रमिकों को लाना।

यूरोप में यह समय मशीनों के आविष्कार ने औद्योगिक विकास का था। यूरोप की बढ़ती आबादी अन्यत्र निर्वाह क्षेत्रों के लिये अमरीका, दक्षिण अमरीका, आस्ट्रेलिया आदि जा रही थीं। दूसरी ओर भारत में अपने कदम जमा लेने के बाद अंग्रेज़ ईस्ट इंडिया कम्पनी भारत के बाजारों में अपने माल की खपत बढ़ाने के लिये वहाँ के समस्त उद्योगों को भी समाप्त कर रही थी। उसके परिणाम में, बढ़ती जनसंख्या में बेकारी और अर्थ संकट। उनके लिये जीविका का एक मात्र साधन सीमित धरती पर खेती। तिस पर अंग्रेज़ों द्वारा धरती पर बढ़ाये गये लगान। अंग्रेज़ों ने मौरिशस में श्रमिक लाने के प्रयोजन के लिये भारत को चुना।

आधुनिक मौरिशस की मनोरमता और रंगीनियों में रम जाने से पूर्व उस सांझ नन्दलाल के बंगले पर आये सज्जनों से बातचीत का संक्षेप बता दूँ। वह चर्चा द्वीप की आन्तरिक समस्याओं और भारतीय रक्त की प्रजा की भावना समझने में सहायक होगी। मुख्य प्रसंग भारतीय शर्तबंद मजदूरों के द्वीप में लाये जाने और उनके यहाँ बस जाने की प्रक्रिया और परिस्थितियों का था।

द्वीप में खेती के लिए जैसे कठिन श्रम की आवश्यकता थी, मजदूरों के लिये निवास और निर्वाह की जैसी परिस्थितियां थीं, सन्देह था कि कोई श्रमिक यहाँ स्वेच्छा से अनेक बरस रहना चाहेगा। मजदूरों को भारत से लाने के व्यय का भी प्रश्न था। इसलिये भारत से मजदूरों को खास शर्तों पर (इंडेचर्ड लेबर), पाँच वर्ष मजदूरी की अवधि की शर्त पर भरती करके लाया गया। गांवों में ऐसी शर्तबंद मजदूरी को गिरमिट (एग्रीमेंट) की मजदूरी कहा जाता था।

भारत में अंग्रेज़ों के मजदूर-भरती के दलाल गाँव, देहात में जीविका या ज़मीन के लिये परेशान लोगों को मौरिशस के स्वर्गोद्यान में सोना बरसने के स्वप्न दिखा कर भरती करवा देते थे। इस कारगुजारी के लिये दलाल को प्रति मजदूर, मजदूर को मिलने वाले वेतन से अधिक कमीशन दिया जाता था। दो-तीन मास का वेतन पाँच रुपया प्रति मास के दर से लेकर गिरमिट पर अँगूठा लगा देने के बाद गिरमिट (शर्तबंद) मजदूर लगभग विवश कैदी बन जाते थे।

भारतीय ग्रामीणों को तमाशे-नौटंकी के बहाने बटोर करके मौरिशस वैभव के सुनहरे स्वप्न दिखाये जाते। प्रलोभन दिये जाते। पाँच रुपया तनखाह तो दो-चार घंटे के काम की। आदमी काम करे तो इससे चार छः गुना कमा ले। शर्तबंदी के लिये सपरिवार मजदूर बेहतर समझे जाते थे ताकि उनकी स्त्रियां और बच्चों को भी आधी-पौनी मजदूरी देकर काम लिया जा सके। ऐसे लोगों का द्वीप से जल्दी लौटना अधिक असाध्य होता और उनके द्वीप में अधिक समय बने रहने का भरोसा रहता। पाँच-पाँच, सात-सात सौ मजदूर पुरुष-स्त्रियों-बच्चों से लदे जहाज मौरिशस पहुँचने लगे।

मजदूर द्वीप में पहुँच कर भरती-दलालों द्वारा दिखाये स्वप्नों के बजाय कुछ और पाते। बीहड़ जंगलों में केवल ईख के खेत और चीनी मिलें। शर्तबंद मजदूरों को अपनी

मजदूरी के क्षेत्र में ही कतारों में बनी झोपड़ियों में रहना अनिवार्य था। निश्चित सीमा के बाहर बिना अनुमति जाना दण्डनीय अपराध। प्रति मर्द मजदूर को पाँच रुपया प्रतिमास पगार के साथ चौबीस सेर मोटा चावल, एक सेर दाल, एक सेर सूखी मछली, सात-सात छटांक नमक और तेल दिया जाता था। स्त्रियों की पगार तीन रुपया मासिक और राशन पन्द्रह सेर चावल के अनुपात में। लड़के-लड़कियों की मजदूरी आधी। लड़कों के लिये भी मजदूरी करना अनिवार्य। यदि कोई भारतीय मजदूर अपने बेटे से मजदूरी न करा कर उसे पढ़ाना चाहे तो इस गुस्ताखी के लिये मार-मार कर उसका भुड़ता बना दिया जाये और लड़के को मजदूरी पर लगाना पड़े। सूर्योदय के पूर्व से सूर्यास्त के बाद तक काम— मालिक को जिस-जैसे काम की जरूरत हो। बैलों, घोड़ों की कमी के समय हल या गाड़ी खींचने तक के काम। दिन में दो बार आधे-आधे घंटे की फुर्सत, चबेना-पानी या नाश्ता-आहार के लिये। नाश्ते-आहार से मतलब आराम से बैठकर खा सकना और बीड़ी फूंकने या तम्बाकू फांकने के लिये दस मिनट विश्राम नहीं। नाश्ता-खाना खड़े-खड़े करने का हुक्म ताकि मजदूर का शरीर जुड़ा कर अलसा न जाये। काम के घंटों में बीड़ी फूकने या सुर्ती फांकने के लिये रुकने पर हंटरों और बेतों की मार। काम में शैथिल्य जान पड़ने पर लाठी, बेत, हंटर, कोड़े। संटियों, बेतों या लकड़ियों की मार ऐसी कि प्रायः संटियां और बेत, टूट जाते। इस प्रयोजन के लिये खेतों और मिलों में नित्य सुबह गाड़ी भर संटियां पहुँचा दी जाती थीं। किसी भी कारण एक दिन के नागे के लिये दो दिन की पगार और राशन ज़ब्ती का जुर्माना। मजदूरों की पगार का एक अंश जमानत के तौर पर मालिक के यहाँ अवधि के अंत तक जमा होता रहता था। परिस्थितियां असह्य होने पर भी अवधि से पूर्व मजदूरों के लिये स्वदेश लौट सकना सम्भव न होता था। असाध्य श्रम, उस पर मार और अपमान असह्य हो जाने पर मज़दूरों के फांसी लगाकर या डूबकर आत्महत्या की घटनायें असाधारण बात न मानी जाती थीं। एक नाले का नाम ही 'कालों की आत्म-हत्या का नाला' पड़ गया है।

कहने को शर्तबंद मज़दूरी थी। व्यवहार में पूर्णतः दास प्रथा। दास प्रथा के बजाय शर्तबंद मजदूरों से लाभ मालिकों का ही था। उन्हें आदमी खरीदने के लिये बड़ी रकमें न देनी पड़तीं। आदमी के अच्छी मेहनत लायक रहते तक बहुत कम मज़दूरी देकर छुटकारा। क्रीत दासों की ही तरह शर्तबंद मजदूरों की भी इच्छा या उन्हें अपने विषय में निर्णय का कोई अवसर न था, शायद आत्महत्या के अतिरिक्त शर्तबंद मजदूरों को न केवल अपनी सन्तान को शिक्षा दिला सकने का अवसर न था, उन्हें स्वयं साफ कपड़े पहनने तक का भी हक न था। मजदूर का साफ़ कपड़ा पहनना, उसका मनुष्य समझे जाने या सफेद-पोश बनने को अहंकार या धृष्टता समझी जाती। साफ़ कपड़े पहनने का अपराध करने पर मजदूर के कपड़ों पर मौलेसिस—चीनी मिलों का चिपचिपा कूड़ा छिड़ककर उन्हें धूल-कूड़े में गिराकर, लोट-पोट करके घसीट दिया जाता। इस अनुष्ठान के साथ बेंतों की दक्षिणा।

शर्तबंद मजदूरों को अपनी सन्तानों के विवाह निश्चय करने तक की स्वतंत्रता न थी। मालिक चाहते थे, लड़के-लड़कियों के ब्याह जल्दी से जल्दी हों और नये मजदूर पैदा हों।

जब मालिकों या उनके गुमाश्तों को सनक आ जाती, अपने क्षेत्र के अनब्याहे लड़के-लड़कियों को दो पाँतों में खड़ा कराकर हुक्म दे दिये जाते—फलां नम्बर मर्द फलां नम्बर औरत की शादी हो गयी। इस निर्णय में किसी आपत्ति या दुहाई का अवसर नहीं। उसके साथ पुरातन पुरोहित तंत्र या सामन्त तंत्र के मालिकों के विशेषाधिकार; नव वधू को पति के प्रथम सामीप्य से पूर्व एक रात मालिक या उसके गुमाश्तों की सेवा में रहने की मजबूरी। यह सब झेला था, आज स्वतंत्र मौरिशस के, भारतीय रक्त के अब गर्व से सीना फुलाये युवाजन के पूर्वजों ने। उन्हीं लोगों के रक्त-पसीने से मौरिशस के बीहड़ जंगलों ने स्वर्गोद्यान का रूप पाया।

पाँच वर्ष की अवधि के बाद यह मजदूर अपने मालिक के इलाके की सीमा से अन्यत्र रहकर स्वतंत्र मजदूरी कर सकते थे। अपनी आय की बचत से साग-सब्जी या छोटी-मोटी खेती के लिये धरती का टुकड़ा खरीद सकते थे। यह थी स्थिति मौरिशस में भारतीय रक्त की वर्तमान पीढ़ी के पूर्वजों के द्वीप में बसने की। आज शायद कोई ही भारतीय मौरिशसी, भारत लौट आने के लिये उत्सुक मिलेगा। उस समय की परिस्थितियों में, १८८६ से १८९६ तक ४८१९६ भारतीय मजदूर वहाँ गये थे। लौटने में कठिनाइयों के बावजूद इस अवधि में लौट आने वालों की संख्या ५०५०० थी।

उस रात देर तक नींद न आयी। सन्देह हुआ, शायद यह लोग अपने पूर्वजों की बीती को कल्पना से बढ़ाकर कह रहे हैं। परन्तु सन्देह देर तक न रहा। याद आ गया, यूरोप या अन्य देशों में भी दास प्रथा के समय प्रभु और आभिजात्य वर्गों के विनोद के लिये ज़िन्दा दासों को शेर-चीतों के सामने फेंककर तमाशा देखने के अधिकार और प्रथा थी। मौरिशस भेजे जाने वाले मजदूरों का रक्षक या उनकी सुनने वाला था कौन ?

जैसे बदलती परिस्थितियों और सभ्य मानव की न्यायबुद्धि ने दास प्रथा को समाप्त किया था उसी प्रकार शर्तबंद मजदूर की अर्ध दास प्रथा के विरुद्ध भी संसार भर और भारत में विरोध की पुकार उठ रही थी। इस अन्याय के विरुद्ध संघर्ष में गांधीजी और अन्य भारतीयों में डा० मनीलाल आदि का योगदान महत्वपूर्ण था। भारत में शर्तबंद मजदूर प्रणाली के विरुद्ध आन्दोलन के कारण ब्रिटिश भारत सरकार ने १९२४ में कुंवर महाराजसिंह को उस द्वीप में शर्तबंद मजदूरों की स्थिति के निरीक्षण के लिये भेजा था। महाराजसिंह ने मजदूरों की असह्य स्थितियों का जैसा वर्णन किया, उसके परिणाम में सन् १९२८ में शर्तबंद मजदूर प्रणाली को कानूनन समाप्त कर दिया गया।

शर्तबंद मजदूरी समाप्त हो जाने से द्वीप की स्थिति बदली। भारतीय खेत-मजदूर खेती के लिये धरती खरीदने लगे। परिश्रमी और मितव्ययी होने के कारण वे भूमिहार या भूधर बनने लगे। कई-कई एकड़ धरती उन लोगों ने अपना ली। अपनी सन्तान की शिक्षा की ओर भी उनका ध्यान गया। उस समय तक द्वीप में अगोरे या भारतीयों के वंशजों को कोई राजनैतिक अधिकार न थे। कहने को वहाँ प्रतिनिधि शासन था। जनता के यह प्रतिनिधि केवल गोरे समृद्ध वर्ग द्वारा चुने जाते थे। जनता के अधिकांश प्रतिनिधियों की नियुक्ति ब्रिटिश गवर्नर जनरल स्वयं कर लेता था।

मौरिशस बहुजाति (मल्टी रेशल) और अनेक भाषा-भाषी देश या राष्ट्र हैं। जनसंख्या में विभिन्न जातियों का अनुपात इस प्रकार है;—प्रमुख भाग भारतीयों के वंशज, लगभग ६३ प्रतिशत हैं। परन्तु भारत विभाजन के बाद से भारत से गये मुस्लिमों के वंशज स्वयं को भारतीय के बजाय पाकिस्तानी कहना चाहते हैं। जब उनकी गणना पृथक की जाती है। भारतीयों के वंशज हिन्दू कहे जाते हैं। उनका अनुपात ४९ प्रतिशत है। मुस्लिम १४ प्रतिशत, अगोरे कलर्ड ३१ प्रतिशत, चीनी ३ प्रतिशत, यूरोपियन गोरे दो प्रतिशत।

द्वीप में ब्रिटिश शासनकाल में स्वायत्त शासन के लिये निरंतर आन्दोलन होते रहे। १९३७ और १९४३ में यह आन्दोलन बहुत उग्र हो गये थे। भारत की राजनैतिक मुक्ति का प्रभाव इस द्वीप पर भी पड़ा। १९४८ में वहाँ सम्पत्ति के बजाय साक्षरता के आधार पर मताधिकार का नियम हो गया तो भारतीय मौरिशसी अच्छी संख्या में विधान सभा में निर्वाचित हो गये। इसी चुनाव में शिवसागर रामगुलाम भी निर्वाचित हुए थे। विधान सभा में आते ही वे द्वीप में स्वायत्त शासन के लिये संघर्ष के मोर्चे पर आगे आ गये। उनकी माँग द्वीप के सम्पूर्ण वर्गों के लिये संयुक्त रूप से आत्मनिर्णय के अधिकार के लिये थी। इसके लिये उन्होंने द्वीप के मजदूर दल, इंडिपेंडेंट-पार्टी और मुस्लिम कमेटी आफ ऐक्शन का संयुक्त मोर्चा अपनाया। इस संयुक्त संघर्ष से १९५९ में द्वीप को बालिग मताधिकार पाने में सफलता मिल गयी। इस सुधार से प्रजातंत्र भावना और जनशक्ति को और बल मिला। पूर्ण स्वायत्त शासन और स्वतंत्रता के लिये आन्दोलन आरम्भ हो गया। डाक्टर रामगुलाम उस समय भी द्वीप के मुख्यमंत्री थे।

मौरिशस का गौर वर्ग और उनके प्रभाव में कुछ अगोरे या कैथोलिक लोगों को भी आशंका रही है कि बालिग मताधिकार के आधार पर पूर्ण स्वायत्त शासन या स्वतंत्रता का अर्थ होगा, द्वीप में भारतीय हिन्दू बहुमत का राज कायम हो जाना। ऐसे लोग द्वीप की स्वायत्ता और स्वतंत्रता का विरोध करते रहे थे परन्तु रामगुलाम के नेतृत्व में संयुक्त दल का बहुमत इस संघर्ष के लिये जुट गया। अन्ततः १२ मार्च १९६८ के दिन मौरिशस में यूनियन जेक का स्थान स्वतन्त्र मौरिशस के राष्ट्रीय झण्डे ने ले लिया और मौरिशस स्वतन्त्र राष्ट्र के रूप में ब्रिटिश राष्ट्र मंडल का सदस्य बन गया। द्वीप में स्वायत्त शासन या स्वतंत्रता के आन्दोलन की सफलता में भारतीय समुदाय के सहयोग और रामगुलाम के नेतृत्व का बहुत प्रभाव रहा है। गत बीस वर्ष से रामगुलाम द्वीप की राजनीति और शासन का नेतृत्व प्रधानमंत्री के पद से करते आ रहे हैं। मौरिशस के राष्ट्र ध्वज में काले, पीले, लाल, हरे चार रंगों की पट्टियां हैं।

प्रधानमंत्री से भेंट के पश्चात् योजना और विकासमंत्री के यहाँ गये। मौरिशस के योजना और विकासमंत्री खेर जगतसिंह सक्रिय राजनीति में आने से पूर्व पत्रकार रहे हैं। वे सफल लेखक हैं। उन्हें फ्रेंच और अंग्रेज़ी में समान गति है।

प्रधानमंत्री और योजना तथा विकासमंत्री से भेंट के बाद सचिवालय से निकले तो बारह बज रहे थे। स्वच्छ नीले आकाश के कारण आंखें चौंधियाती धूप। सूर्य के अदृश्य

बाण शरीर को बेध रहे थे। पोर लुई की दो-तीन-चार मंज़िल की इमारतें और सीमेण्ट पटी सड़कें तप रही थीं। बाजारों में सवारियों और पदातियों की ठसाठस भीड़। बम्बई जैसी उमस भरी गरमी, परन्तु साथ लगे बन्दर की ओर से समुद्री हवा के झोंकों के कारण गरमी असह्य न थी।

पोर लुई में गरमी है परन्तु सौन्दर्य और रौनक भी। उत्तर-पश्चिम की ओर बन्दरगाह में भरे जहाजों के पीछे क्षितिज तक नीले सागर का नाम तोम्बू की खाड़ी है। दूसरी ओर हरियावल ढकी अर्धचन्द्राकार पहाड़ियों की शृङ्खला का परकोटा। पहाड़ी पर पुराने समय का किला है। इस लम्बी पहाड़ी में दो चोटियां हैं। खाड़ी के तट की ओर झुकी चोटी का नाम 'ल पितर बोथ' है, आकार मानुस चेहरे जैसा। जैसे समुद्र की बेचैन लहरों को शांति का आदेश दे रहा हो। भारतीय इसे अपनी बोलचाल में मुड़िया पहाड़ कहते हैं। दूसरी चोटी 'ल पूस' इसका आकार जैसे मुट्ठी उठाकर अंगूठा या ठेंगा दिखाया जा रहा हो।

उमस और गरमी के बावजूद नगर की झांकी के लिये उत्सुकता थी। बाज़ार बम्बई में फोर्ट के इलाके जैसे। दुकानें प्रायः भारतीयों के वंशज हिन्दू-मुसलमानों और चीनियों की। द्वीप में अधिकांश चीनियों की जीविका दुकान या रेस्त्रां से है। चीनी दुकानों पर प्रायः युवतियां बैठती हैं। कुछ भारतीय युवतियां भी दुकानों पर काम करती हैं। आयात-निर्यात के बड़े व्यापार, बैंक और चीनी मिलें यूरोपियनों के हाथ में। भारतीय बैंक भी हैं 'सेन्ट्रल बैंक आफ इंडिया' और 'बड़ौदा बैंक' की शाखायें हैं। बड़ौदा बैंक की शाखायें बहुत से उपनगरों में भी हैं। पोर लुई में एक पाकिस्तानी बैंक, हबीब बैंक भी है।

फल और सब्ज़ी मंडी देखकर अपना देश याद आ गया। केला, पपीता, नारंगी, आम और अनन्नास। यहाँ का अनन्नास कुछ छोटा और सिन्दूरी-सुनहरी रंग का, अति मोहक सुवास। कई तरह की मिर्चें, प्याज, लहसुन के ढेर। आलू, बैंगन, कटहल, गोभी, लौकी, भिंडी, पालक सब कुछ। तराजू प्रायः मशीनी। बहुत से दुकानदारों के हाथ में भारतीय ढंग के भी तराजू परन्तु पोशाक कमीज-पतलून। कई जगह तराशे हुए अनन्नास और चटनी के खोमचे। खोमचे धूल और मक्खी से बचाव के लिये कांच मढ़े बक्सों में।

चटपटा खोमचा देखकर स्त्रियों-लड़कियों की जिह्वा कैसे न पसीजे। प्रकाशवतीजी और नन्दलाल की भतीजी ने कागज की तश्तरियों में अनन्नास की फांकें और चटनी ले ली, गाड़ी में बैठकर चटकारने के लिये। चाट के प्रति नारी का आकर्षण केवल भारत में ही नहीं, यूरोप, अमेरिका और सोवियत में भी है।

पोर लुई में रेस्त्रां की भरमार है। विशिष्ट रेस्त्रां चीनी और भारतीय हैं। सजावट चीनी और भारतीय प्रभाव लिये। बैठने की व्यवस्था यूरोपियन। भोजन अनेक तरह के। प्रायः सभी रेस्त्रां में बार। दो भारतीय रेस्त्रां खास प्रसिद्ध हैं, 'कारी पूले' (करी पत्ता) और 'रॉकिंग बोट' (डोलती नैया)।

नारी को चाट की चाह तो मर्द को बियर के नाम से प्यास क्यों न लगे। खासतौर पर धूप और गरमी में। नयी जगह में नयी वस्तु के परिचय की भी इच्छा। डोलती नैया के वातानुकूलित छोटे तंग बार में सब रंग-ढंग जहाज के बार का। बैठने के लिये बियर के पीपे, अनौपचारिक स्वच्छन्दता। बियर की परख का दावा नहीं है परन्तु मौरिशस की 'फीनिक्स' बियर बहुत अच्छी लगी, चेक और जर्मन बियर के स्वाद-स्तर की। बार में यूरोपियन और अमरीकी सैलानी भरे हुए थे। गाहक बैठने की जगह की कमी के कारण बियर के मग लिये खड़े-खड़े गटक रहे थे। इस रेस्त्रां के भोजन की भी ख्याति है। इसलिये यहाँ निमन्त्रण पर दूसरी बार भी गये। विस्मय—भारतीय करी, कबाब के साथ करेला भी परोसा गया।

पोर लुई से निकलकर पच्चीस मिनट में वाकोआ पहुँच गये। वाकोआ में गरमी उमस की असुविधा कतई नहीं, फरफराती सुहावनी हवा। मौरिशस द्वीप का धरातल कछुए की पीठ के आकार का है। मध्य में और कुछ पश्चिम की ओर ऊँचाई से सब और समुद्र तट तक ढलानें। द्वीप के बीच के ऊंचे स्थानों में गरम मौसम में भी शीतलता और कभी कोहरा भी रहता है। समुद्र तटों पर अपेक्षाकृत गरमी और उमस परन्तु फरफराती समुद्री हवा के कारण गरमी और उमस से उतना कष्ट नहीं होता। बहुत से सम्पन्न लोग गरम ऋतु में समुद्र तट पर बनी कुटिया में रह जाते हैं।

सुबह द्वीप के उत्तर-पश्चिम राजधानी पोर लुई गये थे। संध्या चाय के उपरान्त घूमने के लिये वाकोआ के समीप दक्षिण-पश्चिम 'केरपिप' की बस्ती की ओर चले गये। संध्या आकाश में बादल घिरने लगे थे। वाकोआ बाज़ार से सेंट पाल सड़क से ब्रिटिश नौसैनिक छावनी के सामने समकोण सड़क पर मुड़े। पहाड़ी रास्ते से चक्कर काटते सात-आठ मिनट में चार मील तय कर केरपिप के बाज़ार में थे। कौए की उड़ान से तीन मील का अंतर परन्तु मौसम वाकोआ से भिन्न। झीनी-झीनी फुहार पड़ रही थी। हवा में कुछ ठिरन। यह स्थान वाकोआ की अपेक्षा समुद्र तल से ऊँचा है।

केरपिप फ्रांसीसी शब्द है। अर्थ, पाइप या चिलम झाड़ने-ताज़ा करने की जगह। सत्तर-अस्सी बरस पूर्व मोटर सवारी का ऐसा विकास न हो पाया था, न अच्छी सड़कें बनती थीं। उस समय यहाँ ऐसी बस्ती भी न थी। फ्रांसीसी भूस्वामी घोड़ों पर पूर्व-पश्चिम या उत्तर-दक्षिण जाते समय इस ऊँचाई पर पहुँच कर घोड़ों को कुछ विश्राम देने के लिये यहाँ रुक जाते। रुकने पर अपना पाइप (चिलम) झाड़-साफ़ करके नया तम्बाकू भर कर दम भी लगा लेते थे इसलिये जगह का नाम केरपिप पड़ गया।

नन्दलाल को स्थानों के फ्रांसीसी और अंग्रेज़ी नामों के अनुवाद या पर्याय सोचने का शौक है। उन्हें केरपिप का पर्याय सुझाया—चिलम का पड़ाव या चिलम-चट्टी। बाद में हम द्वीप के दूसरे स्थानों के हिन्दी पर्याय भी बनाते रहे।

केरपिप द्वीप के स्वतन्त्र होने से पूर्व केवल यूरोपियनों की बस्ती थी। अब अनेक ऊंचे पद के सरकारी अफसर और सम्पन्न लोग भी यहाँ बस गये हैं। दुकानों और बाज़ार का

रूप-रंग यूरोपियन। दुकानों में कांच की दीवारों के पीछे बिक्री के लिये यूरोप की आधुनिकतम पोशाकों और दूसरी आकर्षक वस्तुओं का प्रदर्शन। बाद में भी चार-पाँच बार कुछ खरीददारी या घूमने के लिए केरपिप जाते रहे। यहाँ प्रायः ही फुहार-कोहरा और ठंडक पायी। मसूरी-शिमला की बरसात जैसा मौसम।

१६ जनवरी दोपहर से पहले उत्तर की ओर पड़ोसी नगर 'कॉत्रबोन' 'रोज़ हिल' और 'बोबासें' देखने गये। ये छोटे नगर तीन-चार मील के अन्तर से हैं। भारत के बड़े नगरों की दृष्टि से एक ही नगर के मुहल्ले परन्तु इन सब नगरों की अपनी-अपनी नगर पालिकाएं और टाउन हाल हैं।

कॉत्रबोन की छोटी बस्ती बहुत सुथरी-सुन्दर है। वाकोआ से कुछ ऊपर है। रोज़हिल वाकोआ से कुछ नीचे। रोज़हिल का बाज़ार और बस्ती केरपिप, वाकोआ और बोबासें से बड़ी है। वाकोआ कॉत्रबोन में भारतीय अधिक और कुछ गोरे कैथोलिक हैं। रोज़हिल में अगोरे कैथोलिक लोग अधिक हैं। बाज़ार में दो-तीन क्लब भी हैं। कुछ रंगीला, मस्त-मौजी वातावरण। बोबासें की बस्ती मिली-जुली है।

व्यक्तियों या स्थानों के नामों का अनुवाद नहीं किया जाता परन्तु विनोद के लिये हम लोगों ने इन तीनों नगरों के समानार्थक या हिन्दी पर्याय सोच लिये। कॉत्रबोन—चौहद्दी, रोज़हिल—गुलाब टीला और बोबासें—सोहनताल।

उस संध्या हम लोगों के स्वागत और स्थानीय समाज से हमारा परिचय कराने के लिये योजना और विकासमन्त्री श्री खेर जगतसिंह ने बोबासे के सांस्कृतिक क्लब में काक्टेल पार्टी का आयोजन किया था। बोबासें के इस सांस्कृतिक क्लब में सभी स्थानीय समाजों-हिन्दू, मुस्लिम, तामिल, चीनी और कैथोलिक सभी का सहयोग है। क्लब का नाम है 'त्रिवेणी'। भारतीयों के संस्कारों और संस्कृति में अपनी परम्परा गहरी जमी हुई है।

संध्या त्रिवेणी में खूब बड़ा जमाव हुआ। सभी वर्गों के नर-नारी थे। प्रधानमन्त्री सर रामगुलाम और भारत के उच्चायुक्त महिम कृष्णदयाल शर्मा दोनों सपत्नीक आये। अनेक मन्त्री, अध्यापक, व्यापारी, सरकारी अफसर और मौरिशस में तकनीकी सहायता देने के लिये गये भारतीय, रामकृष्ण सेवा मिशन के स्वामीजी भी। एक ही स्थान पर अनेक व्यक्तियों से परिचय का सुयोग।

१७ जनवरी दोपहर से पूर्व भारतीय उच्चायुक्त कृष्णदयालजी से भेंट के लिये पोर लुई गये। परिचय पिछली संध्या त्रिवेणी में हो चुका था। सेंटापाल सड़क पर ब्रिटिश नौसैनिक छावनी के सामने से कई बार गुजरे थे। इस स्थान पर अब भी ब्रिटेन का यूनियन जैक लहराता है। इतने भाग में रोशनी भी लन्दन की सड़कों की तरह कोहरा-भेदी पीले रंग की है। सड़कों पर जगह-जगह 'नो एन्ट्री' (प्रवेश निषेध) भी लिखा है। नन्दलाल इस चेतावनी की परवाह नहीं करते।

अब मौरिशस भी भारत की तरह ब्रिटिश संयुक्त राष्ट्र मण्डल का पूर्ण स्वतन्त्र सदस्य है। अभी मौरिशस ने भारत की तरह स्वतन्त्र गणतन्त्र बनकर स्वयं को ब्रिटिश साम्राज्य से पृथक नहीं किया है। अब तक द्वीप का गवर्नर जनरल ब्रिटिश सम्राट द्वारा मनोनीत, ब्रिटेन से भेजा जाता था। एक वर्ष पूर्व मौरिशस के ब्रिटिश गवर्नर जनरल की रोग से द्वीप में मृत्यु हो जाने पर प्रथम बार मौरिशसी प्रजा सर उस्मान द्वीप के गवर्नर जनरल नियुक्त हुए हैं।

मुझे कौतूहल था, ब्रिटेन को अब अपने किन साम्राज्य-मार्गों की रक्षा की चिन्ता है। मौरिशस से नौसेना छावनी रखने और 'मोका' पहाड़ी शृङ्खला पर अपनी निरीक्षण और संचार चौकी रखने की क्या ज़रूरत है ? और मौरिशस को यह क्यों-कैसे स्वीकार है ?

यहाँ मालूम हुआ, मौरिशस स्वतन्त्र राष्ट्र हो गया है। अब अन्य राष्ट्रों से सम्पर्क में पूर्णतः स्वाधीन है। परन्तु मौरिशस स्वतन्त्र गणतन्त्र नहीं बन गया। मौरिशस ने ब्रिटिश साम्राज्य से अपना सम्बन्ध समाप्त नहीं कर लिया है। ब्रिटेन इस द्वीप में अपनी चौकी को अन्तरिक्ष और वातावरण में अनुसंधान की चौकी बताता है। इस चौकी से ब्रिटेन किसी हद तक महासागरों के मार्गों पर अपनी पुरानी सत्ता के चिह्न की रक्षा का भी सन्तोष पाता होगा। भारत की तरह मौरिशस भी सामरिक गुटों से पृथक रहना चाहता है परन्तु अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति की वास्तविकता से भी आंख नहीं मूंद सकता। मौरिशस को अपनी रक्षा के लिये सचेत रहना ज़रूरी है। वह आधुनिक साधनों की संहारक शक्ति, अपने अति सीमित क्षेत्र, अल्प साधनों और सामरिक सामर्थ्य में भी बेखबर नहीं है। सब राष्ट्रों की स्वतन्त्रता-समता की अन्तर्राष्ट्रीय सद्‌भावपूर्ण घोषणाओं के बावजूद असलियत क्या है, यह इस द्वीप के राजनेता जानते हैं। कभी महासागरों में एक महाशक्ति का सातवां आक्रामक बेड़ा घूमने लगता है कभी दूसरी महाशक्ति का उससे अधिक संहारक बेड़ा। स्वयं किसी से संघर्ष न चाहने पर भी यह कल्पनातीत नहीं कि बड़े-बड़े सांड़ों की लड़ाई में छोटे-मोटे कुचल जायें। मौरिशस को ब्रिटेन की इस चौकी से सागरों में सामरिक गति-विधियों की जानकारी का भरोसा हो सकता है।

उस संध्या नन्दलाल हमें 'पितों द मिलिए' (केन्द्रीय शिखर) दिखाने ले गये। समुद्र तल से डेढ़ हजार फुट की ऊँचाई पर विस्तृत मैदान मे चाय बागान का गहरा हरा विस्तार। बागान के बीच में सुथरी तारकोल पटी सड़कों के दोनों ओर फूलों की झाड़ियां। इस गहरे हरे प्राकृतिक आंगन के बीच एक बड़ी झील, नीले रेशम बिछी सेज की तरह। सेज के सिरहाने केन्द्रीय पहाड़ी का तकिया। इस पहाड़ी की चोटी लगभग द्वीप के बीचोबीच है इसलिये (केन्द्र का) शिखर। इस मनोरम झील का उपयोग बिजली पैदा करने और इस आंचल की सिंचाई के लिये हो रहा है।

ब्रिटिश शासन के समय द्वीप में चाय का उपयोग नाम मात्र को था। अब सरकारी प्रोत्साहन से यह उद्योग पनप रहा है। यहाँ की चाय की सुवास और स्वाद अच्छे माने जाते हैं। चाय के कई कारखाने चालू हो गये हैं। सुना कि प्रधानमंत्री के सुझाव से योजना

और विकास मंत्रालय चाय के दस-दस एकड़ के बाग तैयार करवा कर इस व्यवसाय के इच्छुक लोगों को सौंप देता है। प्रयोजन है, बेकारी दूर करने के साथ ही भूमि के सम वितरण का यत्न और द्वीप की आय वृद्धि।

चाय बागान में सहकारिता के लिये सभी सुविधायें दी जा रही हैं। पहले से चली आ रही ईख और चाय की हजारों एकड़ की सम्पत्ति के वितरण के बजाय इस प्रयोग की सफलता का उदाहरण पेश करना उपयोगी हो सकता है। विस्तृत बागान की सिंचाई और बिजली उत्पादन के अतिरिक्त यह नीलम-सी झील और उसके सिरहाने बादली रंग के स्तम्भ जैसी चट्टानी चोटी सैलानियों या टूरिस्टों के लिये यह भी आकर्षण है।

१८ जनवरी ग्यारह बजे शिक्षामंत्री श्री जुमादार से भेंट का समय था। पूर्व संध्या कुछ लोगों से द्वीप में भाषा के प्रसंग पर चर्चा हो चुकी थी।

बहुजाति द्वीप मौरिशस में अनेक संस्कृतियों और भाषाओं का भी मिश्रण है। पुर्तगाली, डच और फ्रांसीसी आधिपत्य के समय द्वीप में एशिया-अफ्रीका के विभिन्न भागों से दास लाये जाते थे। उन लोगों में परस्पर बोलचाल के लिये अपनी भाषा हो सकती थी। वे मालिकों की भाषा का ही प्रयोग करने के लिये बाध्य थे। फ्रांसीसियों के समय से द्वीप बसने लगा था। अंग्रेज़ों का आधिपत्य हो जाने पर शनैः शनैः सरकारी भाषा अंग्रेज़ी होती गयी परन्तु समाज और व्यवसाय में फ्रांसीसी भाषा का ही प्रयोग जारी रहा। यह भाषा शुद्ध फ्रांसीसी न थी, बल्कि अनेक बोलियों के शब्द लिये अपभ्रंश फ्रांसीसी।

अंग्रेज़ी शासन में भारत से शर्तबंद मजदूर बड़ी संख्या में आने लगे। इन मजदूरों के दल एक समय एक प्रदेश से आते थे और उन्हें प्रायः दलों में काम दिया और बसाया जाता था। यह लोग आपस में अपनी बोली या भाषा का प्रयोग करते परन्तु अन्य द्वीप वासियों से सम्पर्क के लिये अपभ्रंश फ्रांसीसी बोलते थे। अपभ्रंश फ्रांसीसी 'क्रिओल' कहलाती है। भारत के एक प्रान्त से गये मजदूरों का सम्पर्क भारत के दूसरे प्रान्त के मजदूरों से होने पर भी क्रिओल का सहारा जरूरी होता। इस प्रक्रिया से उत्तरोत्तर द्वीप के हाट-बाजारों, खेतों, कारखानों में सर्वसाधारण के प्रयोग की भाषा क्रिओल बनती गयी।

अब मौरिशस के शासन कार्य में पूर्णतः अंग्रेजी का प्रयोग होता है। अधिकांश समाचार पत्र अब भी पुरानी परम्परा से फ्रेंच में प्रकाशित होते हैं। हिन्दी में भी एक ढीला-ढाला साप्ताहिक और कुछ मासिक, द्वैमासिक, त्रैमासिक हैं, विभिन्न नगरों की हिन्दी परिषदों से प्रकाशित हो रहे हैं। शिक्षित वर्ग में फ्रांसीसी अब भी संस्कृति का चिह्न मानी जाती है। सरकारी दफ्तरों में यदि अंग्रेज़ी से आये आदेश के सम्बन्ध मे विमर्श-परामर्श करना हो तो बातचीत फ्रांसीसी में होने लगती है या क्रिओल में।

द्वीप के भिन्न वर्गों में भिन्न भाषाओं के लिये पक्षपात है। अगोरे कैथोलिक लोग क्रिओल भाषा होने पर भी अपनी मातृभाषा फ्रांसीसी बताना चाहते हैं, शायद अपने वंश में फ्रांसीसी रक्त की कुछ बूंदों के अवशेष के गर्व में। भारतीयों के वंशज अपनी

पारस्परिक भाषाओं के प्रति अनुराग के अतिरिक्त सरकारी काम में अंग्रेज़ी के पक्षधर हैं। भाषाओं में इस रुचि भेद के बावजूद ऐसा मौरिशसी मिलना बहुत कठिन जो क्रिओल न बोल पाये। इस स्थिति का कारण है कि प्राइमरी स्कूलों में पहले केवल फ्रांसीसी और अंग्रेज़ी की ही शिक्षा दी जाती थी। उसके बाद हिन्दी को स्थान मिला। बाद में उर्दू, तमिल, तेलगू, मराठी के लिये माँग उठने पर जहाँ-तहाँ इन भाषाओं के लिये भी संख्या के अनुपात में व्यवस्था कर दी गयी है। स्कूलों में क्रिओल की शिक्षा नहीं दी जाती, द्वीपवासी उसे वातावरण से सीख लेते हैं। ऐसे भारतीय वंशज मिल जायेंगे जो कोई भारतीय भाषा शुद्ध नहीं बोल सकते परन्तु क्रिओल फर्राटे से बोलते हैं।

वास्तव में बोलचाल के लिये क्रिओल के अतिरिक्त, भारतीय शिक्षित वर्ग में भारतीय भाषाओं में से प्रयोग केवल हिन्दी का होता है। उत्तर भारतीयों के परिवारों में क्रिओल मिली भोजपुरी भी चलती है। भारतीय कभी अंग्रेज़ी या फ्रेंच में बात-बहस करते उत्तेजना में भोजपुरी कहावतें या मुहाविरे भी बोल जाते हैं। बखोरी और नन्दलाल में बहस चल रही थी अंग्रेज़ी में। बखोरी बोल उठे—'हड़बड़ी को ब्याह कनपटिया में सिन्दूर।' दादा-दादी का प्रभाव शेष है। अब फिर हिन्दी के अनुराग में शुद्ध हिन्दी का प्रयोग बढ़ रहा है। अब मौरिशस में अनेक हिन्दी लेखक हैं जिनकी रचनायें चोटी के भारतीय पत्रों में स्थान पा रही हैं।

द्वीप में उत्तर प्रदेश और बिहार से गये भारतीयों ने अपनी भाषा को पूर्णतः कभी न छोड़ा। इसका एक बड़ा कारण रामायण, भागवत आदि के प्रति श्रद्धा थी। इस शताब्दी के आरम्भ से भारतीयों के वंशजों ने अपने जातीय अस्तित्व और अपनी सांस्कृतिक परम्परा की रक्षा की चेतना की प्रबल लहर उठने लगी थी। इस जागृति का श्रेय अधिकांश में आर्य समाजी प्रचार को रहा है। तब द्वीप में स्कूल कम थे। जो थे, उनमें केवल अंग्रेज़ी और फ्रेंच ही पढ़ाई जाती थी। हिन्दी भाषी भारतीयों ने अपनी भाषा की रक्षा के लिये नगरों और गांवों में भी निःशुल्क रात्रि पाठशालायें आरम्भ कर दी थीं। स्कूलों के बालक-बालिकाएं और कुछ प्रौढ़ भी दिन भर के श्रम के बाद हिन्दी पढ़ने के लिये चार-चार पाँच-पाँच मील चले आते। उसी प्रकार हिन्दी शिक्षक भी दूर-दूर से निःशुल्क पढ़ाने के लिये आते। पाठशालाओं में रोशनी और पुस्तकों के लिये आवश्यक व्यय चन्दे से एकत्र किया जाता।

उस समय, जैसे भारत में स्वतंत्रता के लिये संघर्ष काल में भारत के सभी प्रदेश हिन्दी को भारत की भाषा या अपनी राष्ट्र भाषा समझते थे, भारतीय मौरिशसी भी हिन्दी को ही भारत की भाषा मान रहे थे। मौरिशस में पहला भारतीय समाचार पत्र गांधीजी की प्रेरणा से द्वीप में आये डाक्टर मनीलाल मंगलदास ने १९११ में गुजराती में आरम्भ किया था परन्तु शीघ्र ही उसकी भाषा बदल कर हिन्दी कर दी गयी और उसका नाम था—'हिन्दुस्तानी'। इसके बाद एक महाराष्ट्र सज्जन ने यहाँ भारतीय पत्र आरम्भ किया। वह पत्र भी हिन्दी में ही प्रकाशित किया गया। हिन्दी के प्रति लगन और उत्साह बढ़ने पर

हिन्दी साहित्य सम्मेलन की परीक्षाओं के लिये मौरिशस में प्रबन्ध किया गया। इस समय द्वीप में साहित्य सम्मेलन की सर्वोच्च परीक्षा उत्तीर्ण अनेक व्यक्ति हैं। भारतीय मौरिशसी जन के उसी हिन्दी प्रेम की परिणति में द्वीप में हिन्दी प्रचारिणी सभा बनी। इस समय वाराणसी या लखनऊ नगरों से कम जनसंख्या के इस द्वीप में अठारह हिन्दी परिषदें सक्रिय हैं।

शिक्षामंत्री जुमादार ने शिक्षा के अन्य पहलुओं के साथ हिन्दी की स्थिति और उसे प्रोत्साहन देने के सम्बन्ध में भी चर्चा की। अब इस द्वीप के अधिकांश प्राइमरी स्कूलों में हिन्दी शिक्षा की व्यवस्था है। प्राइमरी के बाद उच्च कक्षाओं में हिन्दी की व्यवस्था न थी तो हिन्दी के प्रति विद्यार्थियों का उत्साह क्षीण हो जाता था या उनका हिन्दी ज्ञान अपक्व रह जाता था। अब जनवरी १९७३ से शिक्षा मंत्रालय ने उच्च कक्षाओं में भी हिन्दी शिक्षा के लिये आदेश दे दिया है।

शिक्षामंत्री के स्वर में खिन्नता की खनक आ गई। हिन्दी शिक्षा की योग्यता के लिये शिक्षा मंत्रालय ने हिन्दी साहित्य सम्मेलन, इलाहावाद की परीक्षाओं को मान्यता दी है परन्तु हिन्दी साहित्य सम्मेलन की उच्चतम परीक्षा में उत्तीर्ण होने का प्रमाण पत्र पाये अनेक लोग हमारे स्थानीय परीक्षा में अयोग्य साबित हो जाते हैं। हम विद्यार्थियों को हिन्दी पढ़ाने के लिये उन पर कैसे निर्भर करें और उनके हिन्दी पाण्डित्य के दावे की उपेक्षा भी कैसे करें?

शिक्षामंत्री ने बताया—मौरिशस से भारत भ्रमण के लिये गये दो-तीन व्यक्तियों ने हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अधिकारियों से अपनी इस कठिनाई की चर्चा की। सम्मेलन के अधिकारियों ने स्वीकार किया—भारत से हजारों मील दूर लगन से हिन्दी भाषा और साहित्य का अध्ययन करने वालों का उत्साह भंग करना अन्याय होगा। हमारे विचार में कठिनाइयों के विचार से सम्मेलन के परीक्षकों का उनके प्रति सहृदय होना उचित ही है।

शिक्षामंत्री बोले—द्वीप पर सम्मेलन की इस कृपा का अर्थ, हम लोगों पर हिन्दी भाषा और साहित्य का निम्न स्तर जकड़ देना है। यह अच्छी हिन्दी सीखने की हमारी इच्छा को कुचल देना नहीं तो क्या है? सब जानते हैं, इस समय मौरिशस के अनेक लेखकों की रचनायें भारत के प्रमुख हिन्दी पत्रों में स्थान पा रही हैं। सम्मेलन के अधिकारी अब भी उन्हें पुचकार कर हिन्दी सिखाने की उदारता का संतोष चाहते हैं।

१९ जनवरी को काबडी पर्व के उपलक्ष में सब स्कूलों, सरकारी दफ़तरों, बैंकों और हाट-बाज़ार में छुट्टी। किसी भी सम्प्रदाय का पर्व त्योहार हो, मौरिशस में पूरा द्वीप छुट्टी-उत्सव मना लेता है। काबडी तमिल समाज का देवी की पूजा का पर्व है। परी तालाब के प्रसंग मे शिवरात्रि की बात कह चुका हूँ। काबडी पूजा में विश्वास और भक्ति के उदाहरण से दर्शकों के शरीर कंटकित हो जाते हैं। भक्त देवी की प्रतिमा की चौकियां अपने सिरों पर उठाये अनेक जुलूसों में, द्वीप के विभिन्न भागों से पोर लुई की ओर जाते हैं। इन

प्रतिमाओं की शोभा के लिये मोरपंख की तरह सजे फूलों जड़ी हरियावल के विराट पंखों के आकार के छत्रों का बोझ भी रहता है। देवी की कुछ बड़ी प्रतिमाएं ट्रकों पर सजायी गयी वेदियों पर जुलूसों के आगे चलती हैं। देवी की चौकियों के साथ भक्तों की मंडलियों का ढोलक-मजीरे से कीर्तन।

प्रतिमाओं के जुलूसों का ढंग बहुत कुछ भारत के नगरों में रामलीला की झांकियों जैसे होता है परन्तु इस पूजा की प्रक्रिया के लिये बहुत दृढ़ता, सहिष्णुता दरकार। पूजा के लिये मनौती या प्रतिज्ञा करने वाले स्त्री-पुरुष भक्त पूजा के समय शुद्धि के प्रयोजन से एक दिन पूर्व से उपवास रखते हैं। पूजा के दिन प्रातः नदी या सरोवर में स्नान किया जाता है। भक्तों के चेहरे और शरीर पर मंत्र पाठ से चन्दन और सिन्दूर का लेप करके चांदी की एक-एक फुट लम्बी महीन तीखी सलाखें भक्तों के गालों के आर-पार भोंक दी जाती हैं। उनके सीने, पीठ और कन्धों पर भी चांदी की कीलें चुभा कर खड़ी रहने दी जाती हैं। जनश्रुति है कि इस प्रकार चांदी की सलाखें और कीलें भक्तों के शरीरों में बेधने पर खून नहीं बहता। इतना ही नहीं कुछ भक्त पूजा यात्रा में सिर पर देवी की चौकी लिये चलते समय काठ के ऐसे खड़ाऊ पर चलते हैं, जिन पर कीलें गड़ी रहती हैं। देखकर विचार आ रहा था, भक्तों की ऐसी हालत देखकर कृपालु देवी कितनी व्याकुल होती होंगी ? भक्त समझते हैं, यह देवी को प्रसन्न करने के उपाय हैं।

द्वीप के सब भागों से उठने वाली पूजा यात्राएं पोर लुई स्थित देवी मन्दिर में एक साथ प्रवेश के लिये पोर लुई के टाउनहाल के सामने के चौक से एक जुलूस में सम्मिलित हो जाती हैं। हम लोग पूजा यात्रा का समारोह देखने के लिये वाकोआ से पोर लुई जा रहे थे। कॉत्रबोन से कुछ आगे सड़क के दाहिने हाथ एक नदी की पतली धारा है। उस धारा के किनारे भी भक्तों को स्नान कराकर उनके शरीर पर चन्दन-सिन्दूर पोत कर शरीरों में सलाखें और सुइयां छेदने की पावन क्रिया की जा रही थी। भक्तों के चारों ओर कौतूहल से एकत्र तमाशबीन भीड़ जमा थी। धारा सड़क से कुछ दूर थी और धूप की तीखी चकाचौंध। उस भीड़ में शामिल होने का उत्साह न था। दूर से निश्चय न हो सका कि शरीर बेंधते समय रक्त निकल रहा था या नहीं। परन्तु भक्त पीड़ा से छटपटा जरूर रहे होंगे क्योंकि इस क्रिया के समय दूसरे लोग भक्तों को निश्चल रखने के लिये उनके हाथ-गोड़ पकड़े हुए थे।

हम लोग पूजा यात्रा समीप से सुविधा-पूर्वक देख सकें इसके लिए पोर लुई के नगर अधिकारी बखोरी ने टाउनहाल में दूसरी मंज़िल पर चौक की ओर बरामदे में प्रबन्ध करवा दिया था। बिंधे शरीर फूलों और हरियावल से सजी भारी चौकियां सिर पर उठाये भक्त थकान और पीड़ा से डगमगाते चल रहे थे। भक्तों के हितू-सम्बन्धी उन्हें सहारा देने के लिये साथ थे। कुछ लोग जल और पंखे साथ लिये चल रहे थे। भक्तों के डगमगा जाने पर उन्हें थाम कर उन पर छिड़क कर पंखों से हवा कर रहे थे। पूजा यात्रा देखने के लिए जुटी भारी भीड़ में, विशेषकर समीप बाज़ारों में दूसरी मंज़िल पर रेस्त्रां की खिड़कियों से देखने वालों में बहुत से अमरीकी और यूरोपियन थे।

बखोरी ने उन लोगों की ओर संकेत से कहा—इस दृश्य से हमें विरक्ति अनुभव होती है, इन यूरोपियनों को कौतूहल। शायद इन लोगों के लिये ऐसे दृश्य कल्पनातीत हो सकते हैं। हम भारतीयों के लिये नहीं। भारत यात्रा में अनेक साधुओं को भिक्षा के लिये कीलों की सेज पर तप करते देखा जा सकता है। मुहर्रम के पर्व पर इससे क्या कम होता है ? उन्होंने बताया, अब तो लखनऊ की तरह द्वीप में मुहर्रम के अवसर पर श्रद्धालु शिया लोग मातम के लिये दहकते अंगारों पर चलने की रस्म करते हैं। ऐसे प्रदर्शनों का प्रयोजन दूसरे लोगों को अपने सम्प्रदाय के विश्वास का बल दिखाना। कौन कहे, किस सम्प्रदाय के अन्ध-विश्वासों में अधिक बल है ?

पूजा यात्रा की सबसे बड़ी झांकी जिस ट्रक पर थी उसके माथे पर बड़े-बड़े रोमन अक्षरों में लिखा था—हिन्दू जन महासंघम्।

उस ट्रक की ओर नन्दलाल और बखोरी का ध्यान दिलाया। बातचीत के प्रसंग में कई लोगों से सुना था, भारत के विभाजन के प्रभाव से द्वीप के मुसलमान स्वयं को भारतीय स्वीकार नहीं करना चाहते। भारत के दक्षिण में, द्रविड़ मुनेत्र कज़गम, आन्दोलन का प्रभाव भी मौरिशस में पहुँच गया है। अनेक तमिल लोग अपना समाज हिन्दुओं या भारतीयों से भिन्न माने जाने का तकाज़ा करने लगे हैं। और इस नाते अल्पमत के विशेषाधिकारों की मांग। भारत में जो भी प्रवृत्ति चले, उसका प्रभाव उस द्वीप पर ज़रूर पड़ता है।

बखोरी ने कहा—साम्प्रदायिक या धर्म विश्वास अपनी जगह, पृथक वर्ग के अधिकारों की माँग अपनी जगह है। धर्म और सम्प्रदाय मनुष्य के लिये हैं। उनका प्रयोग अनेक प्रयोजनों से किया जाता है।

मौरिशस में सभी मुस्लिम या तमिल अपनी पृथकता के समर्थक नहीं हैं। लोकायत। (सेक्यूलर) विचारों के दूरदर्शी लोग द्वीप की सम्पूर्ण प्रजा को, भारतीय वंशजों और कलर्ड लोगों को एक राष्ट्र या नेशन मानते हैं। इस समय मौरिशस के गवर्नर जनरल सर उस्मान मौरिशस की सम्पूर्ण प्रजा की एक राष्ट्रीयता के समर्थक हैं। इसी प्रकार बोबासें की त्रिवेणी क्लब के प्रधान भी एक सफल व्यवसायी तमिल सज्जन श्री पदायाची हैं।

मौरिशस में केवल भारतीय वंशजों ने ही अपनी भाषा और सांस्कृतिक परम्परा की रक्षा के लिये निष्ठा, साहस और प्रतिभा का परिचय दिया हो सो बात नहीं। मौरिशस में जन्मे कुछ फ्रांसीसी कवियों, लेखकों राबर्ट एडवर्ड हार्ट, मालकम द शाज़ाल और कामी द ग्राब्रियल की फ्रांसीसी साहित्य को देन महत्त्वपूर्ण है। यद्यपि और वर्ग बहुत समय तक अवसरहीनता से दबा रहा परन्तु इस वर्ग ने भी अनेक प्रतिभाओं को जन्म दिया है। मौरिशस को अपने अगोरे कवि और लेखकों मोर्सलद, काबों, आन्द्रे लुगालां और रेजिस फौशेत के लिए गर्व है। 'भारतीय विद्या भवन,' बम्बई के प्रकाशनों से मौरिशस के विद्वान लेखक वासुदेव विष्णुदयाल के नाम भारतीयों के लिये अपरिचित नहीं हैं। वहाँ जाने पर

द्वीप में शिक्षा प्रसार, राजनैतिक जागृति, हिन्दी और भारतीय संस्कृति की शिक्षा के लिये उनके विषद कार्यों के सम्बन्ध में सुनकर भेंट के लिये गये।

वासुदेव विष्णुदयालजी की अनेक पुस्तकें भारतीय इतिहास और वैदिक श्रुति-स्मृतियों के सम्बन्ध में अंग्रेजी और फ्रेंच में प्रकाशित हैं। वासुदेव प्रौढ़ अवस्था प्राप्त हैं। व्यक्तित्व गम्भीर, मितभाषी परन्तु व्यवहार उन्मुक्त आत्मीयता का।

अनुमान था वासुदेवजी की रुचि इतिहास और दर्शन में है, उपन्यास, कथा कहानी के लिये उन्हें क्या समय होगा। बातचीत में एक व्यक्ति का प्रसंग आने पर विष्णुदयाल मुस्कराये "……वह आदमी आपके देशद्रोही (उपन्यास) का बद्री बाबू है।"

विस्मय हुआ, यह व्यक्ति उपन्यास भी पढ़ता है और इतने मनोयोग से कि पात्र भी याद हैं। चर्चा में पता लगा वासुदेव, मौरिशस के सम्बन्ध में सबसे पहली पुस्तक बनार्ड द सेंट पियरे के फ्रांसीसी उपन्यास पाल और वर्जिनी का भी अनुवाद हिन्दी में कर चुके हैं। इस उपन्यास का विशेष महत्त्व इसलिये भी है कि साहित्य जगत या सामान्य पाठकों को मौरिशस का प्रथम परिचय इसी उपन्यास ने दिया था। इस उपन्यास से प्राप्त प्रेरणा से पाल और वर्जिनी, काल्पनिक प्रेमियों की मूर्तियां पोर लुई और केरपिप के टाउनहाल में स्थापित हैं। जयनारायण राय ने भी द्वीप में हिन्दी और शिक्षा प्रसार के लिए बहुत काम किया है। उनकी पुस्तक 'मौरिशस इन ट्रांज़िशन' बहुत उपयोगी और रोचक भी है।

वाकोआ परिषद

२३ जनवरी संध्या द्वीप की हिन्दी परिषदों की ओर से वाकोआ टाउनहाल में संयुक्त कार्यक्रम था। इस कार्यक्रम की सूचना मौरिशस रेडियो द्वारा प्रसारित हो चुकी थी। वाकोआ की छोटी बस्ती के विचार से टाउनहाल विशाल और भव्य है। चारों ओर बाग-बगीचा भी सुन्दर-सुथरा। इस सभा का सभापतित्व प्रधानमंत्री ने निबाहना स्वीकार किया था। प्रधानमन्त्री, आयु तिहत्तर वर्ष हो जाने पर भी शासन कार्य के अतिरिक्त सार्वजनिक कार्यकलाप में पर्याप्त भाग लेते हैं। दोपहर से पूर्व ही सूचना मिल गयी, प्रधानमन्त्री गत संध्या से कुछ अस्वस्थ हैं, सभा में न आ सकेंगे।

सभा का आयोजन बड़े हाल में था। वेदी के सामने श्रोताओं के लिये कुर्सियों की व्यवस्था है। इस देश में हिन्दी या साहित्य विषयक आयोजनों में श्रोताओं की कल्पना प्रायः धोती-कुर्ता के वेश में होती है। यहाँ ढाई तीन-सौ श्रोताओं में धोती पहने पुरुष केवल दो थे, एक द्वीप की आर्य सभा के प्रधान और दूसरे रामकृष्ण सेवा मिशन के स्वामीजी, महिलाएं साड़ी में, भारतीय रिवाज़ से हाल के आधे में एक ओर।

पुरुषों के वेश में पश्चिमी प्रभाव के अतिरिक्त वातावरण भारतीय, धूप-अगर-लोबान की सुगन्ध, बंदनवार-फूलमालायें। सभापति के आसन पर शिक्षामन्त्री जुमादार थे। उनके साथ ही द्वीप की हिन्दी परिषदों की संयुक्त समिति के अध्यक्ष सोमदत्त बखोरी थे। कार्यक्रम के आरम्भ में बखोरी ने द्वीप में हिन्दी परिषदों के कार्य और उपलब्धि का संक्षिप्त परिचय दिया :—

द्वीप की जनसंख्या लगभग आठ लाख, लखनऊ नगर से कम है। द्वीप के विभिन्न भागों में अठारह हिन्दी परिषदें सक्रिय हैं। सभी परिषदों के सहयोग से संयुक्त निबंध प्रतियोगिताएं की जाती हैं। सर्वोच्च तीन निबंधों के लिये पुरस्कार दिये जाते हैं। इन निबंधों के प्रकाशन का भी प्रबंध किया जाता है। सभी परिषदें अपने-अपने क्षेत्रों में साहित्यिक आयोजन करती रहती हैं।

बखोरी ने संतोष प्रकट किया—"हम अपना श्रम सार्थक मान सकते हैं। गत चार-पाँच वर्ष में हमारी सक्रियता ने द्वीप में साठ के लगभग नवयुवकों को हिन्दी भाषा में प्रकाशन योग्य रचनाएं कर सकने के लिये उत्साहित किया है। बखोरी ने अपने तथ्यात्मक भाषण के अन्त में कहा—हम प्रवासी भारतीय अपनी भाषा और संस्कृति की रक्षा और विकास के लिये सामर्थ्य भर यत्न कर रहे हैं। हमें गर्व है कि इस द्वीप को बसाने और इसके विकास में श्रम और संख्या के अनुपात से सबसे अधिक योगदान भारतीयों के वंशजों का है। हमारी तीन पीढ़ियों की अस्थियां इस द्वीप की भूमि में समाहित हैं। हमारी तीन पीढ़ियों ने इस द्वीप को अपने खून-पसीने से सींच कर बसाया और इसका विकास किया है। हम मौरिशसी हैं। मौरिशस हमारी मातृभूमि है परन्तु यह भी तथ्य है कि संस्कृति और भाषा की दृष्टि से भारत हमारी मातामही भूमि या ग्रांडफादर लैण्ड है। अपनी संस्कृति और साहित्यिक सामर्थ्य के विकास में प्रेरणा और सहायता के लिये हम प्रवासी अपने आदि स्रोत पुरखा भारत की ओर देखते हैं। भारतीय विचारकों, लेखकों, कलाकारों से सृजन प्रेरणा में उत्साह और पथ-प्रदर्शन की आशा करते हैं। जय मौरिशस! जय भारत!"

बखोरी के बाद डाक्टर नन्दलाल ने श्रोताओं को मेरे वैयक्तिक और मेरे कृतित्व का संक्षिप्त परिचय दिया। परिचय नन्दलाल ने स्वयं भी कहा, केवल औपचारिक था, आवश्यक नहीं। सप्ताह भर में कितने ही लोगों से भेंट में स्पष्ट हो चुका था कि भारतीय-हिन्दी लेखक और उनकी रचनायें इस द्वीप के लिये अपरिचित नहीं है। सोच रहा था, भारत से तीन-हजार मील दूर इस द्वीप में इन वक्ताओं का हिन्दी उच्चारण और मुहाविरे का प्रयोग हमारे देश से कुछ भी भिन्न नहीं। आज जैसे अंग्रेज़ी के प्रयोग के लिये संसार-व्यापी क्षेत्र है, हिन्दी का क्षेत्र भी उत्तरोत्तर बढ़ सकता है, यदि हमारा साहित्य इस योग्य हो सके।

इस आयोजन में पहला कार्यक्रम परिषदों की गत निबंध प्रतियोगिता के सर्वोत्तम निबंधों के लिये पुरस्कार दिया जाना था। यह काम प्रकाशवती को निबाहना था। मैं उस समय बखोरी द्वारा मौरिशस के भारतीय वंशजों के लिये प्रवासी शब्दों के प्रयोग के विषय में सोच रहा था। पिछले दिन मौरिशस-टेलीविजन पर भेंट-वार्ता के समय भी यह बात आ गयी थी—द्वीप के प्रवासी भारतीयों के लिये आप क्या प्रेरणा या सन्देश देंगे?

अपने देश-राष्ट्र और स्वयं अपने प्रति सद्भावना और आदर के लिये धन्यवाद देते समय गत दिन टेलीविज़न पर कही बात दोहराये बिना न रह सका:—"इस द्वीप के

भारतीय वंशजों का इस द्वीप के विकास के लिये गर्व पूर्णतः सत्य और उचित है। यह देश निश्चय आपकी मातृभूमि है। आप राष्ट्रीय गर्व से जय मौरिशस कहते हैं। आप स्वप्न में भी इस देश को छोड़ जाने की बात नहीं सोचते। ऐसी अवस्था में आप स्वयं को प्रवासी कैसे कह सकते हैं? मेरे विचार से प्रवासी शब्द में परम्परा से दीन भावना और दया-याचना की ध्वनि है। जिस समय आप यहाँ विदेशी शासन और शोषण के शिकार थे, यह शब्द आपके लिये प्रयोग किया जाता था। आज आप इस देश की जनता के नाते इस देश के निर्विवाद स्वामी हैं। आप मौरिशस के प्रवासी नहीं, मालिक और भाग्य विधाता हैं। द्वीप में बहुसंख्यक होने से इस देश की रक्षा और विकास का उत्तरदायित्व भी आपके कंधों पर है। प्रवासी शब्द से प्रकट दीन भावना आपके लिये असंगत है।

सांस्कृतिक या किसी भी प्रकार के सहायता-सहयोग के लिये भारत से आशा आपका उचित दावा और अधिकार है। परन्तु इस राष्ट्र से भारत का सम्बन्ध, इस राष्ट्र पर अपना कोई दावा या आधिपत्य मानने के रूप में नहीं है। भारत आपको सभी प्रकार की सहायता देकर कर्त्तव्यपूर्ति का संतोष अनुभव करेगा परन्तु मानवता और भाईचारे के नाते। भारत का प्रयोजन कोई प्रतिद्वन्दिता, कोई गुट्टबाजी या भूमि पर प्रभाव द्वारा अपना आधिपत्य जमाना नहीं है। भारत और मौरिशस की बहुसंख्यक जनता एक संस्कृति और इतिहास की विरासत के नाते और परस्पर आदर-स्नेह की भावना से भाई-भाई है परन्तु राष्ट्रों की पूर्ण सार्वभौम स्वतन्त्र सत्ता है। इतने कम समय में आपकी साहित्यिक उपलब्धियों को देखकर हमें आशा होती है कि हिन्दी साहित्य की समृद्धि और मानवी संस्कृति के विकास में स्वतन्त्र मौरिशस राष्ट्र का योगदान उत्तरोत्तर महत्त्वपूर्ण होगा जय

सभा की समाप्ति पर चार-पाँच सज्जनों ने हाथ मिलाते समय कहा, "आज से अपने लिये प्रवासी शब्द का प्रयोग समाप्त!"

टाउनहाल में सभा के बाद घर लौटे तो नन्दलाल की कार के पीछे एक और कार बंगले के फाटक के भीतर आ गयी। सभा से दो युवक और दो युवतियां पृथक बातचीत के अवसर के लिये पीछे-पीछे चले आये थे। वे लोग नन्दलाल परिवार के परिचित थे। गणेश टेकलाल ने कुछ ब्यौरे से बातचीत के लिये अगले दिन समय ले लिया। दस-पन्द्रह मिनट इधर-उधर की चर्चा के बाद युवती अध्यापिका झिझक से बोलीं—"कुछ पूछना चाहती हूँ?"

"जरूर"

"सुना है आप लिखते समय सब कुछ भूल जाते हैं। एक दिन आप लिख रहे थे, आपका चार-पाँच बरस का बेटा कमरे में आ गया। आपको मालूम न हो सका। आप कलम में स्याही चुक जाने के कारण मेज़ पर खुला ही कलम रखकर दूसरे कलम से लिखने लगे।"

"लड़के के खांसने से आपका ध्यान उसकी ओर गया। वह बहुत कष्ट में था। अनजाने लड़के ने कलम का निब खींच कर मुंह में डाल लिया था और निब उसके गले में फंस गया था। आपने तुरंत फोन पर डाक्टर को स्थिति बताकर बुलाया।"

डाक्टर ने पूछा—"मैं आ रहा हूँ लेकिन आप तब तक क्या कर रहे हैं? यानि बच्चे की सहायता के लिये क्या उपाय कर रहे हैं?"

"सुनते हैं आपने डाक्टर को उत्तर दिया—मैं दूसरे कलम से लिख रहा हूँ।" युवती ने पूछा, "क्या यह सत्य घटना है।"

हंसी आ गयी। उत्तर दिया—"सम्भवतः यह कहानी लेखन में मेरी लगन या लिखते समय मेरी एकाग्रता की सराहना के लिये गढ़ी गयी है। आप कभी विश्वास न कीजिये कि मैं भाव या संवेदना शून्य लिखने की मशीन-मात्र हूँ। जो व्यक्ति अपने बेटे के भयंकर कष्ट से बेपरवाह रहे उसे मैं भला आदमी ही नहीं मानूंगा, अच्छा लेखन तो क्या?"

सोचता रहा, विरोध या आदर में कल्पना कितनी बेलगाम हो सकती है! और श्रेष्ठता, प्रशंसा का विश्वास हो तो किसी के गलत या भोंड़ेपन में बड़प्पन की सरलता दिखायी दे सकती है।

अगले दिन दोपहर बाद द्वीप के त्रिओले ज़िला के 'उत्तर युवक संघ' की ओर से निमंत्रण था। त्रिओले नगर या कस्बा वाकोआ से गहरे हरे टीलों पर से चढ़ती-उतरती, ईख के खेतों और छोटी बस्तियों को लांघती चक्करदार सड़क से पच्चीस-छब्बीस मील पर है। दोपहर ढलने पर चल दिये। उस ओर उत्तर-पूर्व का सागर तट देख सकने का भी विचार था। यों तो मौरिशस में सभी ओर सागर तट हैं परन्तु सभी सागर तट एक से नहीं होते।

सर शिवसागर रामगुलाम हस्पताल त्रिओले में है। यह हस्पताल द्वीप में स्वायत्त शासन के बाद प्रधानमंत्री के विशेष प्रयत्न से, उनकी योजना और निर्देशन में बना है। हस्पताल का नाम उन्हीं के नाम पर है। अब यह द्वीप में सबसे बड़ा हस्पताल है और विकसित देशों के स्तर के अनुकूल बनाया गया है। यहाँ अनेक भारतीय डाक्टर काम कर रहे हैं। द्वीप में पहले भी अच्छे हस्पताल थे परन्तु वे हस्पताल सम्पन्न और विशिष्ट वर्ग की बस्तियों में थे, सामान्य साधन प्रजा की बस्तियों से दूर। इस लम्बी राह में कई गांवों में फुटबाल के मैदान देखे। यहाँ ग्रामों में भी फुटबाल का शौक है। लोग अवकाश के दिन या समय मिलते फुटबाल खेल लेते हैं। ग्रामों में फुटबाल प्रतियोगिताएं भी होती रहती हैं। फुटबाल के अतिरिक्त दूसरे खेलों की स्थानीय और अन्तर्राष्ट्रीय प्रतियोगिताएं भी होती रहती है। कॉत्रबोन, रोज़हिल, बोवासें, पोर लुई सभी छोटे नगरों या कस्बों में क्रीड़ांगन (स्टेडियम) हैं। केरपिप का क्रीड़ांगन सबसे बड़ा और भव्य है। अन्तर्राष्ट्रीय प्रतियोगिताएं प्रायः यहाँ ही होती हैं। भारतीय खिलाडी दल भी इन प्रतियोगिताओं में भाग लेने जाते हैं। यहाँ की घुड़दौड़ की भी अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति है। पोर लुई में घुडदौड़ का मैदान 'शां मार्स' कहलाता है।

हमारे उत्तर प्रदेश की जनसंख्या आठ करोड़ से ऊपर है। मौरिशस की जनसंख्या करीब आठ लाख परन्तु हमारे पूरे राज में क्रीड़ांगन मौरिशस से कम ही होंगे। मौरिशस के क्लर्ड या कैथोलिक लोग बहुत मनोरंजन और उत्सव प्रिय हैं। कहीं घास के मैदान, नदी या सागर तट पर पन्द्रह-बीस क्लर्ड लोग जुड़ जायें तो उनके 'सेगा' नाच-गाने की उछल-कूद शुरू हो जायेगी। समीप बियर-शराब की दूकान हो तो यह क्रम पहरों चल सकता है। इन लोगों की मनोरंजन-प्रियता का थोड़ा-बहुत प्रभाव पूरे द्वीप पर है। अवकाश के दिनों में सिनेमा घरों में एक टिकट में चार-पाँच शो का रिवाज़ है। तमाशाई संध्या नौ बजे सिनेमा देखने जाकर प्रातः पाँच-छः बजे लौट सकते हैं।

ग्रामीण बस्तियों से गुजरते समय देखता जा रहा था, लोग बाग सड़क किनारे खेलते बच्चे, कुछ के पांव में जूते न होने पर भी मैले चिथड़ों में न थे।

त्रिओले के बाज़ार में ही सिनेमा घर है। बाज़ार-बस्ती छोटी परन्तु सिनेमा घर अच्छा बड़ा नाम है 'आनन्द' । कई युवक बन्दनवारों और अनेक प्रकार के ताड़ों के बड़े-बड़े पत्तों से हाल के द्वार पर सजावट में व्यस्त थे। कार्यक्रम के समय में अभी आधे घण्टे से कुछ अधिक समय था। हाल के सामने से चुपचाप निकल गये, सागर तट की ओर जाने के लिये।

इस सागर तट का नाम है 'त्रू ओ बीश', हिरनी की गुफा। मौसम में इस ओर हिरन का शिकार मिल सकता है। तट दूर तक और रेतीला है, मोटी-उजली रेत। ऐसी रेत कपड़े मैले नहीं करती। तट पर सुथरा होटल। बड़े-बड़े नगरों की गगनचुम्बी, सपाट सीधी इमारतों से ऊबे लोगों के लिये आकर्षक। पूरा होटल अनेक आकार की बंगलियों या झोपड़ों में फैला हुआ है। झोपड़ों में रहने वालों को महल-माड़ी देखने का कौतूहल, हवेलियों से ऊबे लोगों को दो-चार दिन रह सकने का चाव।

झोपड़ों की छतें अनेक आकारों के मन्दिरों या गिरजों की चोटियों, मस्जिद-मन्दिर के गोलार्ध गुम्बदों की तरह या रीढ़ से दोनों ओर ढलती हुईं। छतें फूस या ताड़-पत्तों की। खूब गठी हुई, सुथरी, आंधी-पानी में मजबूत। कमरे या कुटिया गोल, गोलार्ध, त्रिकोण, वर्ग और आयताकार होटल के रेस्त्रां या जलपान घर में समुद्र तट की ओर मोटे कांच की प्लेट की दीवार। धूप या आंधी-पानी में भीतर बैठने पर सागर की तरंगों का दृश्य। उत्तर-पश्चिम से तीखी धूप रोकने के लिये मोटे पर्दे खींचे जा सकते हैं। फर्नीचर बहुत आधुनिक।

तट पर सैलानियों के लिये छोटी-बड़ी नौकाएं मोटर-बोट किराये पर मिल सकते हैं। यह तट तैरने के लिये अच्छा है। बच्चों या अनाड़ियों के लिये तट पर सागर जल का बड़ा कुण्ड बना दिया गया है। जलपान कक्ष में सब सुविधा।

यहाँ बैठ सकने के लिये पहले कोक फिर काफी मंगा ली। स्थान की रमणीकता के कारण तुरन्त लौट चलने को मन न था परन्तु त्रिओले में कार्यक्रम के समय की मजबूरी।

त्रिओले की ओर लौटते समय कुछ दूर से ही लाउडस्पीकर पर गीतों-ग़जलों के स्वर। भारत के स्वातंत्र्य संघर्ष की याद दिलाने वाले तराने। साथ ही आधुनिक हिन्दी फिल्मों का संगीत।

आनन्द सिनेमा के सामने बाज़ार में भीड़ का जमघट। हाल श्रोताओं से भरा हुआ, स्कूली बालक-बालिकाएं, युवक, प्रौढ़ सभी आयु के लोग। सुदूर भारत से आये लोगों से मिलने, उनकी बात सुनने का अवसर यहाँ बहुत बड़ा आकर्षण। इन लोगों के लिये भारत की झलक का सुलभ माध्यम हिन्दी फिल्में। द्वीप में फिल्में ७० प्रतिशत भारतीय ही चलती हैं। शायद उनकी कल्पना में सभी भारतवासी हिन्दी फिल्मों के नायकों के अनुरूप होंगे।

द्वीपवासी सभास्थल की सजावट, अतिथियों को फूलमालायें और गुलदस्ते भेंट करने में अति उदार हैं। इतनी फूलमालायें कि यदि सभी मालायें एक साथ पहनाने का आग्रह हो तो अतिथि की गर्दन झुककर, मालायें नाक के सामने आ जाने से श्वास अवरोध की आशंका। हमें झेंप लग रही थी, त्रू ओ बीश के मोह में समय से पच्चीस मिनट पिछड़ गये थे।

सभा अध्यक्ष डाक्टर रामप्रकाश थे। इतनी बड़ी भीड़ के लिये विस्मय था। हमारे विलम्ब से भीड़ को असुविधा के लिये संकोच से खेद प्रकट किया। सभी के चेहरों पर पसीना झलक रहा था। सिनेमा हाल बड़ा है परन्तु पंखे नहीं हैं। द्वीप में पंखों का रिवाज़ कम है, जरूरत भी कम ही महसूस होती है।

रामप्रकाश वाग्मी ओजस्वी वक्ता हैं। उन्होंने श्रोताओं की प्रतीक्षा के पुरस्कार में, उन्हें उत्साहित करने के लिये मेरा और प्रकाशजी का परिचय सशस्त्र क्रांति के प्रयत्न के प्रमुख नेता और अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त लेखक के रूप में अत्युक्ति और विस्तार से दिया। उनका भाषण व्यंजना पूर्ण था, कुछ श्लेष भी :

"मौरिशस में जब गरमी अधिक होती है तो तूफान आ जाता है। उस तूफान से वर्षा, जो भूमि को फूलों-फलों के वरदान से सन्तोष शांति देती है। उसी प्रकार हमारे द्वीपवासी भारत या अन्य देशों से महापुरुषों, लेखकों और कलाकारों के आने का समाचार पाकर उत्सुकता की गरमी से तपने लगते है। तब कलाकार तूफान की भांति सन्तोष की वर्षा लेकर आता है। आज हम बहुत बड़े साहित्यिक तूफान यशपाल की प्रतीक्षा की तपिश से व्याकुल हैं। हमें विश्वास है, हमारी उत्कट प्रतीक्षा की गरमी से आज का विराट तूफान अपने महत्ता के अनुकूल वर्षा देगा। उस वर्षा से मौरिशस के युवकों, साहित्यिकों और जनता की भावनाओं की खेती लहलहा उठेगी।"

हाल में भीड़ के कारण गरमी थी। पसीना हमें भी आ रहा था। रामप्रकाश बहुत समय इतने उत्साह और ओज से बोले कि उनके कोट की पीठ, बगलों और पतलून के घुटनों पर पसीना फूट आया। कुछ युवकों ने स्वरचित कविताएं सुनायीं। अन्य सज्जनों ने भी अपनी भावनायें प्रकट कीं। युवक संघ की ओर से एक अभिनन्दन पत्र दिया गया।

अपने प्रति कार्यक्रम के आयोजकों की सद्भावना और आदर के लिये आभार प्रकट किया :

"हमारे पहुँचने में विलम्ब से आपको जो असुविधा हुई उसके लिये हमें खेद है परन्तु हमें आपकी उदारता पर पूरा भरोसा है कि आप हमारी इस आकस्मिक त्रुटि को भूल जायेंगे। रामप्रकाशजी ने श्लेष से गरमी और तूफान की ओर संकेत किया है। यदि आप लोग मुझे तूफान समझना चाहते हैं तो मैं सहर्ष तूफान का बादल बनकर मौरिशस की भूमि और जनता के लिये, अपने अस्तित्व की अन्तिम बूंद तक बरस जाने से सन्तोष पाऊंगा। अपने देश के स्वातंत्र्य में से एक भारतीय की कर्त्तव्य भावना से और साहित्यिक क्षेत्र में अपने जीवन की सार्थकता के लिये मैं जो कुछ कर सका हूँ, आपने उसकी उदार सराहना की है परन्तु मैं इस द्वीप की प्राकृतिक शोभा और सम्पदा के साथ ही द्वीपवासियों द्वारा मानवी अधिकारों के लिये पराक्रमी, सहिष्णु, संघर्ष और विजय की सराहना में निछावर हो सकना अपनी सार्थकता समझूंगा।"

रामप्रकाशजी ने अपने भाषण में द्वीप के प्राकृतिक वैभव के लिये मेरी सराहना का उल्लेख कर कहा था, "हमारा सौभाग्य है कि एक महान लेखक को हमारा द्वीप सुन्दर-रमणीय लगा है। हमें आशा है कि इस द्वीप की सुषमा से पाये सन्तोष और प्रेरणा से यशपाल इस द्वीप को कोई स्थायी मूल्य की रचना दे जायेंगे।"

द्वीप की प्राकृतिक सुषमा से प्राप्त सन्तोष और प्रेरणा की चर्चा इससे पूर्व कई बार बातचीत में और टेलीविज़न पर भेंट-वार्ता में भी हो चुकी थी। इस प्रसंग पर जो पहले कहा था वही बात यहाँ भी दोहरायी :

"स्वीकार करता हूँ, इस द्वीप का प्राकृतिक सौन्दर्य अनूठा है। विश्राम, शान्ति और स्वास्थ्यदायक परन्तु प्राकृतिक शोभा से रचना के लिये प्रेरणा-स्फूर्ति पाना मेरी पहुँच से बाहर है। मै रचना के माध्यम से अपनी बात सागर की तरंगों, नदियों, झरनों, झूमते वृक्षों, चटक चांदनी और सुनहली किरणों को नहीं सुनाता। न मेरी प्रेरणा का स्रोत मुख्यत: प्राकृतिक शोभा है।"

"मै मनुष्य हूँ मेरा सम्बन्ध मानवी सुख-दुख और मानवी अनुभूतियों से है। मैं मानवी सम्बन्धों और सम्पर्कों से सुख-दुख, व्याकुलता, स्फूर्ति या प्रेरणा अनुभव करता हूँ और मानव समाज को सम्बोधन के लिये लिखता बोलता हूँ।"

"मैं इस द्वीप की प्राकृतिक शोभा से सन्तोष पाता हूँ परन्तु मेरा रागात्मक सम्बन्ध और सराहना इस द्वीप के वासियों के प्रति है। इस द्वीप की वर्तमान पीढ़ी के अधिकांश व्यक्तियों के पुरखा यहाँ दासों और शर्तबंद मजदूरों की कठिन स्थिति में आये थे। मेरा देश और सम्पूर्ण संसार इस द्वीप के वासियों द्वारा सहे शोषण और दमन के इतिहास से परिचित है और यह भी जानता है कि आपके पूर्वजों ने किस जीवट, सहिष्णुता और पराक्रम से इस द्वीप को बसाया और अपने शोषण और दमन की बेड़ियों को तोड़ कर स्वतन्त्र राष्ट्र के मानवी अधिकारों को पाया है। मानवता की इस विजय पर कौन सहृदय

निछावर होने को प्रस्तुत न होगा। मेरे लिये प्रेरणा का स्रोत इस देश की प्राकृतिक सुषमा नहीं, इस द्वीप के वासियों का दुर्दम निश्चय और जीवट है। आपकी संगति की स्मृति स्वदेश लौटकर भी मेरे लिये स्फूर्ति और प्रेरणा बनी रहेगी।"

२४ जनवरी संध्या चीनी उद्योग श्रमिक कल्याण समिति के मंत्री श्री बनवारी के यहाँ निमंत्रण था। चीनी इस द्वीप का मुख्य व्यवसाय है। विदेशी शासन के समय मौरिशस को चीनी का कारखाना बनाये रखने की ही नीति थी। स्वायत्त शासन हो जाने पर कई अन्य उद्योग स्थापित हो गये हैं। फिर भी मुख्य खेती गन्ना और मुख्य उद्योग चीनी बनाना है। इसलिये चीनी उद्योग श्रमिकों की संख्या का अनुपात सबसे अधिक है।

चीनी उद्योग श्रमिक कल्याण समिति को सरकारी मान्यता और सहायता प्राप्त है। इस समिति ने चीनी श्रमिकों की परिस्थितियों के सुधार के लिये बहुत काम किया है और कर रही है। श्रमिकों की पगार के उचित दरों की देखभाल, उनके लिये मुनासिब किराये पर स्वास्थ्य और सुविधाजनक मकानों की व्यवस्था, उनके परिवारों के लिये चिकित्सा और मनोरंजन की व्यवस्था, बच्चों और वयस्कों के लिये भी शिक्षा की व्यवस्था। चीनी उद्योग श्रमिकों का संगठन द्वीप में सबसे बड़ा और सुव्यवस्थित है। यह संगठन ही देश के मज़दूर दल का मुख्य सहारा है इसलिये देश की राजनीति में भी उसका विशेष प्रभाव है।

मौरिशस की जनता और सरकार के सामने लगभग वे सभी समस्याएं है जो हमारे देश के सामने हैं या किसी भी विकासशील देश के सामने आ रही हैं। मुख्य समस्या—बेरोज़गारी या शिक्षितों की बेरोज़गारी। यह द्वन्द्व की स्थिति है कि अपनी अवस्था सुधारने, अपने निर्वाह का स्तर उठाने और विकास के प्रयत्नों से हम ऐसी अनेक समस्याओं की भूमिका बना देते हैं।

किसी देश या समाज में अपनी अवस्था सुधारने के लिये पहला आवश्यक कदम है, देश-समाज में महामारियों, बीमारियों और शिशु-मृत्यु की रोकथाम। इसके साथ ही उत्पादन बढ़ाने के लिये यन्त्रों का उपयोग और शिक्षा प्रसार से बेहतर जीवन-स्तर का परिचय और उसके लिये योग्यता।

चिकित्सा विज्ञान के विकास और साधनों से रोगों की रोक-थाम बहुत हद तक हो जाती है। इससे समाज मे मृत्यु संख्या का अनुपात घट जाता है परन्तु समाज में जन्म-संख्या का अनुपात घटाने के लिये विशेष चेतना और सावधानी जरूरी होती है। परिणाम में राष्ट्रों की जनसंख्या शीघ्रता से बढने लगती है। उत्पादन में यन्त्रों के प्रयोग से उपयोगी वस्तुएं सुलभ होती हैं परन्तु जिस काम के लिये पहले दस व्यक्तियों की आवश्यकता थी, मशीनों की सहायता से उसे एक-दो व्यक्ति कर सकते हैं। उत्पादन का क्षेत्र भी बढ़ता है परन्तु उत्पादन श्रम के लिये अपेक्षाकृत कम व्यक्तियों की आवश्यकता है। इसके साथ जनसंख्या की वृद्धि बेकारों की संख्या को अधिक अनुपात में बढ़ा देती है। शिक्षा प्रसार से बेहतर जीवन-स्तर का परिचय पाकर उसके लिये माँग और असन्तोष बढ़ाता है। विकास

का मार्ग ही है: जरूरतों और समस्याओं को बढ़ाना और उनकी पूर्ति और समाधान के प्रयत्न करना। हमारे देश ने गत पच्चीस वर्ष में शिक्षा, औद्योगिक विकास और उत्पादन में जो विकास और बढ़ती की है, विकसित राष्ट्र भी उसकी सराहना करते हैं परन्तु जनसंख्या में अनुपात से अधिक वृद्धि के कारण हमारा समाज और राष्ट्र बेरोज़गारी और बेकारी की समस्या से उत्तरोत्तर परेशान हो रहा है। वही स्थिति मौरिशस में भी है। स्वास्थ्य सम्बन्धी स्थिति में सुधार और शिक्षा प्रसार के परिणाम में जनसंख्या में शीघ्र वृद्धि हो रही है और बेरोज़गारी, विशेषकर शिक्षितों में, समस्या उग्र रूप ले रही है।

चीनी उद्योग कल्याण समिति के प्रधान श्री बद्री इस स्थिति पर चिन्ता प्रकट कर रहे थे। मैंने कहा—मनुष्य सदा मृत्यु से भयभीत रहा है और मृत्यु को जीतने, वश कर सकने की चिन्ता करता रहा है। चिकित्सा विज्ञान के विकास ने मृत्यु को पूर्णतः नहीं जीत लिया परन्तु मनुष्यों की औसत आयु बढ़ाकर मृत्यु को बहुत पीछे जरूर ढकेंल दिया है। अब मनुष्य समाज अपनी इस सफलता से ही परेशान है इसलिये जरूरत है, मनुष्य समाज सन्तान के जन्म पर वश पाये। परिवार नियोजन ही उसे स्वयं उत्पन्न किये भावी संकट से बचा सकेगा। वर्ना मनुष्य की जनसंख्या ही उसे खा जायेगी। आपके यहाँ बर्थकण्ट्रोल या परिवार नियोजन की चेतना के लिये यत्न दिखायी दे रहे हैं परन्तु उस ओर अधिक प्रयत्न की जरूरत है।

सरकार की ओर से द्वीप के समाज में ऐसी प्रेरणा के प्रयत्न हैं। बद्री भाई ने स्वीकारा—समझदार लोग स्वयं भी परिवार नियोजन की जरूरत समझते हैं परन्तु जनता में ऐसा वर्ग भी है जो अपने साम्प्रदायिक विश्वासों के कारण जन्म-नियोजन को पाप कहते हैं। कुछ लोग डेमोक्रेसी प्रजातंत्र में अपने वर्ग का राजनैतिक सामर्थ्य बढ़ा सकने के लिये अपने लोगों को अपने वर्ग की संख्या बढ़ाते जाने की सलाह देते हैं। ऐसे लोगों के कारण परिवार नियोजन करने वाला वर्ग दोहरा नुकसान सहता है। देश की जनसंख्या बढ़ने से तो उन्हें परेशानी होगी ही। अनुपात में दूसरे वर्गों की संख्या बढ़ती जाने से, व्यवस्था में उनका प्रतिनिधित्व या शक्ति भी घटेगी। इसका क्या उपाय?

स्वीकार किया—हमारे देश में भी कुछ समाजों में ऐसी मूर्खतापूर्ण या आत्मघाती राजनैतिक सलाह की बातें सुनी जाती हैं। ऐसे लोगों की बातों से दूसरे समाजों को घबराहट प्रकट करते भी सुना है। परन्तु व्यवहार में सभी लोग अपने सम्प्रदाय, वर्ग और समाज के हित से पहले अपने परिवार की चिंता करते हैं। सभी जानते हैं कि परिवार में सन्तानों की संख्या आय या साधनों से अधिक बढ़ा लेने पर सन्तान का भविष्य बेहतर बना सकने के अवसर घट जाते हैं और माता-पिता का जीवन भी संकटमय हो जाता है। ऐसे कितने लोग हैं जो अपने वर्ग या समाज की संख्या बढ़ाने के लिये अपनी सन्तानों का भविष्य और अपना जीवन बरबाद कर डालना चाहेंगे? मेरे खयाल में वर्ग हित की ऐसी बातें दूसरों को सुनाने के लिये होती हैं। परिवार नियोजन का लाभ समझ लेने और उपाय जान लेने पर कौन स्वयं और अपने परिवार को बरबाद करना चाहेगा? वास्तव में

जरूरत है समाज में परिवार नियोजन की चेतना के प्रसार की और अधिक से अधिक लोगों को इसके उपायों की जानकारी देने की और उन्हें सुलभ बनाने की। विकसित और शिक्षित देशों और समाजों में लोग अपने जीवन स्तर को गिरने न देने के लिये, वैयक्तिक हित के विचार से सतर्क रहते हैं। परिणाम में उनकी जनसंख्या सीमित रहती है। विकसित देशों की तुलना में अविकसित और अशिक्षित देशों में जनसंख्या की भयानक बाढ़ चार-पांच गुनी अधिक है। परिवार नियोजन राष्ट्र हित के लिये ही नहीं, सामाजिक, पारिबारिक हित के लिये भी अनिवार्य है।

भारतीय मनोवृत्ति में और परम्परा में अध्यात्म और पारलौकिक चिन्तन की जड़ गहरी है। भारतीय अपनी इस प्रवृत्ति को मौरिशस भी ले गये हैं। मौरिशस में रामायण और कुरान के पीछे-पीछे आर्य समाज भी पहुँचा। आर्य समाज ने इस देश की तरह मौरिशस में भी हिन्दुओं के धर्म विश्वासों की रक्षा के अतिरिक्त हिन्दी भाषा, संस्कृत और अपने राष्ट्रीय महत्त्व की रक्षा के अतिरिक्त द्वीप में मानवी न्याय की भावना और राजनैतिक जागृति की चेतना जगाने में भी बहुत योग दिया है। मौरिशस में मन्दिरों-मस्जिदों के साथ कबीर मठ भी है और लगभग दो दशकों से रामकृष्ण सेवा मिशन का आश्रम भी कायम है।

रामकृष्ण सेवा मिशन के साधु प्रायः उच्च शिक्षित और उदार विचार के होते हैं। पारलौकिक चिन्तन से उदासीन लोग भी मिशन के जन सेवा कार्य के कारण इस संस्था के लिये आदर भावना रखते हैं। मिशन के स्थानीय प्रमुख स्वामीजी से प्रथम भेंट त्रिवेणी क्लब की कॉकटेल पार्टी में हुई थी। वाइन, ह्विस्की या साफ्ट ड्रिंक के गिलास थामे स्त्री-पुरुषों के जमघट में भगवा वस्त्र पहने स्वामीजी खाली हाथ मुस्कराते घूम रहे थे। स्वामीजी का अनुरोध था, २५ जनवरी संध्या उनके यहाँ विशेष कार्यक्रम—स्वामी विवेकानन्द की पुण्य तिथि के आयोजन में अवश्य सम्मिलित होऊं।

भारतीय जन जागरण के इतिहास में स्वामी विवेकानन्द की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। विवेकानन्द अध्यात्म उन्मुख थे परन्तु समाज और संसार से निरपेक्ष नहीं। विद्यार्थी जीवन में उनकी पुस्तकों से बहुत उत्साह-प्रेरणा पाई थी। उनके दो वाक्य सदा याद रहते हैं—'नायमात्मा बल हीनेन लभ्यः', 'राष्ट्र और युवकों के उत्थान के लिये फुटबाल का मैदान भी मन्दिर की तरह आवश्यक है।' रामकृष्ण सेवा मिशन आध्यात्मिक प्रवचन और धर्म कीर्तन के आयोजन करता है परन्तु जन सेवा विशेषतः दीन जन की चिकित्सा-सेवा भी बहुत बड़े परिमाण में कर रहा है।

आयोजन के अवसर पर आश्रम के बंगले का विस्तृत हाता भक्तों की कारों से खचाखच भरा हुआ था। भारत की तरह मौरिशस में भी मिशन के भक्तों की संख्या उच्च शिक्षित, सम्पन्न वर्ग में अधिक है। इसका एक कारण मिशन में प्रवचनों की भाषा भी है।

हम लोग पहुँचे तो अनुष्ठान बंगले की बगल के लम्बे कमरे में आरम्भ हो चुका था। एक लम्बी चौकी पर परमहंस रामकृष्ण के चित्र पर फूल-मालाएं। परमहंस के चित्र के सन्मुख आरती की थाली में प्रज्वलित घृत दीप, नैवेद्य और पूजा की घंटी। भक्त लोग सन्मुख फर्शी दरी और चांदनी पर पाल्थी से भक्ति मुद्रा में बैठे थे। कमरे में स्थान शेष न था। हमें बगल के कमरे में खिड़की के साथ कुर्सियों पर स्थान मिला। कुछ अन्य व्यक्ति भी वहाँ बैठे थे।

अनुष्ठान का आरम्भ स्वामीजी ने परमहंस के चित्र की पूजा-आरती से किया। एक संस्कृत श्लोक से उद्यापन हुआ। फिर भक्ति भाव के दो भजन समबेत स्वर में। सोच रहा था—पूजा अनुष्ठान के लिये विष्णु, शिव, राम, कृष्ण, हनुमान की मूर्तियां और चित्र न थे। राम और कृष्ण की मूर्तियां, चित्र छोड़ कर उनके भक्त परमहंस राम कृष्ण की आत्मरत मुद्रा के चित्र की पूजा में क्या प्रगति या किस विशेष सिद्धि की आशा!

हिन्दी में दो भजनों के उपरान्त स्वामीजी का प्रवचन अंग्रेज़ी में। स्वामीजी दिखाई न दे रहे थे, सम्भवत: हमारी ओर दीवार के साथ खिड़की के नीचे पद्मासन से होंगे। प्रवचन अनुमानत: पुस्तक से स्वामी विवेकानन्द का भाषण या लेख पढ़ा गया। हिन्दी भजनों के पश्चात् प्रवचन अंग्रेज़ी में आरम्भ होने पर नन्दलाल और मैंने एक दूसरे की ओर देखा। दोनों को विस्मय। यदि भक्ति-भाव की अभिव्यक्ति हिन्दी में भजनों से हो सकती है तो प्रवचन अंग्रज़ी में क्यों आवश्यक? शायद अंग्रेज़ी के प्रयोग से स्वयं को ऊँचे बौद्धिक वर्ग में समझने का संतोष? प्रवचन के बीच में उठ जाना अशिष्टता समझी जाने के विचार से बीस मिनट तक बैठना पड़ा। प्रवचन की समाप्ति पर सभा को नमस्कार कर बाहर हो गये। सूर्यास्त के समय आध्यात्मिक प्रसंग की अपेक्षा सागर तट की ओशजन और आयोडीन भरी हवा फेफड़ों के लिये अधिक लाभदायक और सुखद थी।

२६ जनवरी, भारत के गणतंत्र दिवस के उपलक्ष्य में भारत भवन, भारतीय उच्चायोग मे संध्या छः बजे सम्मिलित आयोजन था। भारत भवन फाकोआ में है। सुबह से कई बार हल्की फुहारें पड़ चुकी थीं। संध्या भी आकाश में बादलों की टुकड़ियां दौड़ रही थीं इसलिये आयोजन भवन के एक हाल में किया गया था। हाल के आयाम के अनुपात से निमंत्रितों की संख्या बहुत अधिक थी।

मौरिशस के प्रधानमंत्री और मंत्री-मण्डल के सदस्य, राज-दूतावासों के राजदूत और द्वीप के सभी वर्गों के प्रतिनिधि आये थे। मौरिशस के गवर्नर जनरल सर उस्मान के प्रवेश के समय मौरिशस के राष्ट्रीय गीत की धुन और जन गण मन अधिनायक की धुन से स्वागत।

समारोह के उद्यापन के लिये महामहिम सर उस्मान और भारत के उच्चायुक्त महामहिम कृष्णदयाल कुछ ऊँची वेदी पर माइक के सामने आये। दोनों के हाथों में, उपस्थित समूह के हाथों में भी औपचारिक शील के अनुसार शुभकामना की अभिव्यक्ति के लिये शैम्पेन के प्याले-गिलास।

भारत के उच्चायुक्त ने प्रस्ताव किया—टु द क्वीन (ब्रिटेन की महारानी) के लिये मंगल कामना। अनुमोदन में सभी लोगों ने आचमन लिया।

महामहिम सर उस्मान ने प्याला उठाकर प्रस्ताव किया—टु द प्रेसीडेंट आफ इण्डिया (भारत के राष्ट्रपति के लिये मंगल कामना)। समूह ने फिर आचमन से अनुमोदन किया। ऐसे अवसर पर लम्बे भाषण नहीं जंचते।

अपने समीप खड़े मौरिशसियों (भारतीयों के वंशज) की ओर ध्यान गया—टु द क्वीन के प्रस्ताव पर उन्होंने रीति अनुकूल आचमन से अनुमोदन किया परन्तु चेहरों पर तनाव की छाया। भारत के राष्ट्रपति के लिये मंगल कामना हो जाने पर समूह में बातचीत आरम्भ। एक सज्जन ने पूछा—"ऐसे अवसर पर आपके यहाँ भी 'टु द क्वीन' चलता है ?"

"हमारे यहाँ इसकी संगति ? भारत ब्रिटिश कामनवेल्थ में जरूर है परन्तु पूर्ण स्वतंत्र सार्वभौम सत्ता गणतंत्र। गणतंत्र में राजा-रानी से मतलब ? यहाँ रानी के लिये मंगल कामना आपके गवर्नर जनरल के आदर और आपकी सरकार के संतोष के लिये।"

"सन् १९९८ से हमारा द्वीप भी स्वतंत्र है परन्तु अभी हम गणतंत्र नहीं हैं, ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत स्वतंत्र हैं। हमारी भूमि और साधनों और अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति के विचार से हमारी अनेक मजबूरियां हैं।"

इस द्वीप में अनेक वैचित्र्यों के समन्वय की ओर आरम्भ में ही संकेत किया है। हमारे यहाँ कुछ फूल गरमी-बरसात में खिलते हैं, कुछ शीतकाल और बसन्त में। इस द्वीप में दोनों ऋतुओं के फूल—जिन्निया, बालसम और डेलिया-फ्लाक्स एक साथ खिलते देखे। यहाँ के राजकीय प्रोटोकोल या व्यवहार में भी कुछ वैचित्र्य जान पड़ते हैं। द्वीप स्वतंत्र है और वैधानिक रूप से ब्रिटिश साम्राज्य का अंग भी है परन्तु इनका राष्ट्रीय ध्वज ब्रिटिश साम्राज्य का यूनियन जैक नहीं, मौरिशस का चतुरंग—काला, पीला, हरा, लाल झण्डा है। यहाँ का राष्ट्रीय गीत भी ब्रिटिश साम्राज्य का राष्ट्रीय गीत 'लांग लिव द क्वीन' नहीं 'ग्लोरी टु दी मदर लैण्ड' (जय हो मातृभूमि तुम्हारी !) है। राष्ट्रगीत अंग्रेज़ी में है।

उड़ती-उड़ती बात सुनी कि कुछ वर्ष पूर्व देश के राष्ट्रीय गीत के निर्णय के लिये एक समिति बनायी गयी थी। समिति के सामने चुनाव के लिये तीन-चार गीत थे अंग्रेज़ी, फ्रेंच और हिन्दी में। हिन्दी में गीत का आरम्भ था—'जय जय मातृभूमि मौरिशस द्वीप'। भारतीय वंशजों की इच्छा थी कि द्वीप का राष्ट्रीय गीत हिन्दी में हो। समिति में भी सभी वर्गों के प्रतिनिधि थे। मुस्लिम प्रतिनिधि के हिन्दी गीत का समर्थन न करने के कारण अंग्रेज़ी में गीत स्वीकार किया गया। अंग्रेज़ी गीत के सम्बन्ध में सुना है कि उसमें मातृभूमि का जयकार तो है परन्तु मौरिशस द्वीप का नाम गीत में नहीं है।

मौरिशस ब्रिटिश साम्राज्य में है परन्तु यहाँ सरकारी दफ्तरों या मंत्रियों के मकानों में ब्रिटिश महारानी का चित्र नहीं दिखायी देता। महारानी के चित्र के बजाय दिखायी देता है प्रधानमंत्री रामगुलाम का चित्र और महात्मा गाँधी का चित्र। महत्त्वपूर्ण स्थानों पर कुछ

अंग्रेज गवर्नरों की मूर्तियाँ हैं परन्तु महात्मा गाँधी और डाक्टर मनीलाल की मूर्ति भी है। कुछ स्थानों के नाम गाँधीजी के नाम पर हैं। अधिक विस्मय हुआ पोर लुई के सरकारी या सार्वजनिक उद्यान में लेनिन का बस्ट (धड़ की मूर्ति) देखकर। वहाँ सभी समन्वय सम्भव। ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत किसी अन्य देश में शायद ही ऐसा हो।

२७ जनवरी संध्या मौरिशस-भारत मैत्री संघ की ओर से भारत गणतंत्र दिवस के उपलक्ष्य में सम्मिलन और कॉकटेल पार्टी में उत्साहपूर्ण जमाव। प्रधानमंत्री तथा अन्य सभी मंत्री उपस्थित थे। भारतीय उच्चायुक्त महामहिम कृष्णदयाल ने भारत के प्रति मैत्री और सद्भावना के लिये मौरिशस की जनता का आभार स्वीकार कर संक्षेप में भारत के पंचशील के सिद्धान्त और अन्तर्राष्ट्रीय गुटों से निरपेक्षता की चर्चा की—सामरिक शक्ति के सन्तुलन की नीति केवल प्रवंचना है, बड़ी शक्तियों द्वारा परस्पर होड़ में अधिकाधिक संहारक शक्ति संचय के लिये बहाना। ऐसी होड़ का अन्त कहां? परिणाम है अन्तर्राष्ट्रीय आतंक और अशान्ति। भारत ऐसी अन्तर्राष्ट्रीय गुटबाजी से दूर है और दूर रहना चाहता है। भारत सभी छोटे-बड़े राष्ट्रों की भौगोलिक सीमाओं में उनकी सार्वभौम सत्ता, स्वतंत्रता, आत्मनिर्णय के अधिकार और अवसर का समर्थक है। भारत वर्ण, जाति साम्प्रदायिक विश्वासों के साम्य अथवा भेद से पाले-बाज़ी में या सामरिक गुटबन्दी को अनैतिकता और अन्तर्राष्ट्रीय अपराध समझता है। परन्तु भारत की निरपेक्षता का अर्थ अन्तर्राष्ट्रीय अन्याय और निर्बल पर अतिक्रमण से आँख मूँद लेना नहीं है न विकासशील सहयोगी राष्ट्रों की उपेक्षा और उनसे उदासीनता का है। भारत सभी राष्ट्रों के पारस्परिक सह-अस्तित्व और सहयोग में विश्वास करता है। भारत और मौरिशस की प्रजा में अतीत परम्परा, भाषा और संस्कृति साम्य के सम्बन्ध तो हैं ही भविष्य में सहयोगी और परस्पर सहायक हो सकने की इच्छा और विश्वास के सम्बन्ध भी हैं। इस द्वीप को हमारे सहयोग-सहायता किन्हीं शर्तों या मोल पर नहीं, मानवी सद्भावना और संस्कृति के सम्बन्ध से है। यह मौरिशस! जय हिन्द!

प्रधानमंत्री रामगुलाम ने भारत की सामरिक गुट निरपेक्षता और अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग की नीति में मौरिशस सरकार का विश्वास और भरोसा प्रकट कर अन्तर्राष्ट्रीय कल्याण के लिये भारतीय नीति की सफलता की कामना की। कृषिमंत्री श्री बुलेल ने स्वार्थान्ध पाले-बाज़ी से उलझी वर्तमान अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति में भारत द्वारा निस्वार्थ भाव और साहस से अन्तर्राष्ट्रीय न्याय की रक्षा के लिये निर्बल राष्ट्रों पर अतिक्रमण के विरोध और निर्बल राष्ट्रों के साहसपूर्ण समर्थ तथा सहायता की सराहना की—हमारे लिये भारत जिस तरह संस्कृति के क्षेत्र में प्रेरणा का स्रोत है, उसी प्रकार साम्प्रदायिकता और वर्गभेद रहित लोकायत समाजवादी अर्थनीति, शासन पद्धति और अन्तर्राष्ट्रीय नीति में भी हमारे लिये भारत का अनुसरण श्रेय है। सुपर पावर्स के वर्तमान अन्तर्राष्ट्रीय द्वन्द्व में हमारी रक्षा भारत की सामरिक गुट निरपेक्ष नीति से ही सम्भव है। भारत निश्चय हमारा स्थायी विश्वस्त मित्र और सहायक हो सकता है।

पार्टी में आपनाक (पीना-पिलाना) दुराव और संकोच को शिथिल कर देता है।

लोग कुर्सियां खींच कर अपनी रुचि के प्रसंगों पर बातचीत के लिये जगह-जगह गोल बांध कर बैठ गये थे। दो सप्ताह में कुछ लोगों से अनेक बार भेंट हो चुकी थी। टेलीविज़न पर मुझे देखने—मेरी बात सुनने के बाद विचार-विनिमय की इच्छा।

एक बैरिस्टर बोले—हम विदेशी शासन की जकड़न से छूट गये परन्तु स्वतंत्रता, वास्तविक स्वतंत्रता कहाँ है? यहाँ पत्रों पर सेन्सर, सार्वजनिक भाषणों, मुद्रण संगठन—सब क्षेत्रों में सरकारी चौकसी और नियंत्रण चालू है। यह स्वतंत्रता है?

शासन की ओर से ऐसी चौकसी या प्रतिबंधों के विषय में कुछ लेखकों से भी सुना था—कुछ संगठनों ने वैधानिक या जनतांत्रिक उपायों से बहुमत के वर्तमान शासन को बदल सकने की सम्भावना न देखकर मिलिटेंट मूवमेंट (सशस्त्र विरोध का कार्यक्रम) आरम्भ करने का यत्न किया था। जांच-पड़ताल से कुछ शस्त्रास्त्र बरामद भी हुये थे। सार्वजनिक शांति की रक्षा के लिये प्रचार के माध्यमों और संगठन के प्रयत्नों पर निगाह रखी जा रही है।

स्थिति के बारे में मेरी राय के लिये अनुरोध पर कहा—किसी भी विचारधारा, नीति या कार्यक्रम का सैद्धातिक पक्ष जनता के सामने रखने की स्वतंत्रता, प्रगति का मार्ग खुला रखने के लिये आवश्यक है। परन्तु जनता को बरगला कर उत्तेजित करने या सशस्त्र विरोध का अवसर देने की उदारता किसी भी शासन के लिये उचित या सम्भव नहीं हो सकती। पूर्ण स्वतंत्रता एक आदर्श है। जनतंत्र अधिकारों के नाम पर बहुत कुछ कहा जा सकता है परन्तु अन्य व्यवहारों की तरह स्वतंत्रता भी सापेक्ष होती है। सभी सिद्धान्तों पर देश-काल के अनुसार सापेक्ष रूप में ही व्यवहार किया जा सकता है। इस बात से भी इंकार नहीं किया जा सकता कि प्रत्येक सरकार स्वीकृत स्थिति की समर्थक और तुरन्त परिवर्तन की विरोधी होती है।

मौरिशस में केवल दो सप्ताह रहकर वहाँ की राजनैतिक स्थिति को गहराई से समझ लेने के भरोसे उस सम्बन्ध में राय देना समझदारी न लगी। अपने देश के अनुभव से इतना जरूर कह सकता हूँ, प्रजा शासन की आलोचना कर सके: यह दमन का लक्षण नहीं है।

सुबह दस के लगभग बाहर निकल गये। नगर के कई स्कूल-कालेज देख चुके थे। मौरिशस में हायर सेकेण्ड्री स्कूलों या सीनियर क्रैम्ब्रिज की शिक्षा देने वाले स्कूलों को कॉलिज कहा जाता है। किसी भी देश की संस्कृति और शिक्षा का स्तर उस देश के देहाती प्राइमरी स्कूलों की स्थिति से मालूम हो सकता है। ऐसे स्कूल देखने की इच्छा थी। किसी स्कूल कालेज के निमंत्रण पर जाने से प्रदर्शन के लिये सजी संस्था की वास्तविक स्थिति सामने नहीं आती।

'प्लैन विलहेल्म' का समतल क्षेत्र केरपिप से भी ऊँचा है। मौसम शीतल सुहावना था। 'नूवेल फ्रांस' गाँव में सड़क पर स्कूल का चिह्न, सवारियों को सड़क पर बच्चों की सम्भावना से सावधान करने के लिये देखा।

यह स्कूल देखा जाय—नन्दलाल से अनुरोध किया।

स्कूल कमरों की दो समानान्तर पांतों में है, बीच में खुली जगह। विद्यार्थियों की संख्या स्थान से अधिक हो जाने के कारण स्कूल दो पालियों (शिफ्ट) में, दोपहर-पूर्व और दोपहर बाद लगता है। हम पहुँचे तो बीस मिनट का विश्राम था। दो और बालकों के क्यू खड़े थे। बालकों के हाथों में छोटे मग थे। दो अध्यापक ड्रम से बालकों के मग में दूध डाल रहे थे और समीप रखी बोरियों से एक एक बन (मीठी पावरोटी) देते जा रहे थे।

याद आया—कुछ समय पूर्व पत्रों में पढ़ा था कि अविकसित देशों के बच्चों के स्वास्थ्य के विचार से यू० एन० ओ० से दूध का चूर्ण उन देशों के आरम्भिक स्कूलों में दिया जाता था। इस सम्बन्ध में टिप्पणियां देखी थीं कि चूर्ण को ढंग से दूध बनाकर बच्चों को दे सकने की व्यवस्था कुछ ही देशों में बेहतर स्तर के, अधिक शुल्क लेने वाले स्कूलों में ही हो सकी थी, जहाँ प्राय: आसूदा हाल परिवारों के बच्चे पढ़ते हैं। नि:शुल्क या ग्रामीण प्राइमरी स्कूलों में दूध के चूर्ण की चुटकियाँ बच्चों की हथेलियों पर दे दी जाती थीं। वह चूर्ण फांक लेने से बच्चों के पेट खराब हो जाते इसलिये दूध का चूर्ण स्कूलों के प्रबंधकों, अध्यापकों और चाकरों के घरों में काम आता था। इसके लिये सब दोष उन स्कूलों के अध्यापकों को नहीं दिया जा सकता था। स्थिति थी कि स्कूलों को दूध का चूर्ण दिया जाता था परन्तु दूध तैयारी के लिये, पानी उबालने के लिये बर्तन-ईंधन की व्यवस्था न की जाती थी। मौरिशस में यह काम सुचारु रूप से होते देखकर संतोष हुआ।

अध्यापक अधिकांश भारतीय वंशज दिखायी दिये। कोई भी अध्यापक फूहड़, मली-मसली, अधूरी पोशाक में न था। कॉलेज के अध्यापक सूट-टाई में, अध्यापिकाएं ठीक बंधी साड़ी या यूरोपियन वेश में। गाँव के प्राइमरी स्कूलों में भी अध्यापक ताजा इस्त्री की हुई, सफेद कमीज-टाई और पतलून पहने थे। टाई न होने पर भी कमीज-पैंट मैले-मसले न थे। स्कूलों में पानी के नल, हाथ-मुंह धोने के लिये उचित व्यवस्था। सफाई और अनुशासन का वातावरण।

नूवेल फ्रांस के प्राइमरी स्कूल में उस शिफ्ट में दो सौ बालक थे। बातचीत के समय उर्दू अध्यापिका भी मौजूद थी। उसकी पोशाक तंग पाजामा-कुर्ता-दुपट्टा। उर्दू अध्यापिका से पूछा—"सब जमातों को उर्दू आप ही पढ़ाती हैं। जमातों में औसतन कितने तुलबा रहते हैं?"

उर्दू अध्यापिका अपलक देखती रह गयी।

प्रश्न दोहराया—"आप उर्दू के पांचों क्लास पढ़ाती हैं। क्लास में कितने स्टूडेंट रहते हैं।

अध्यापिका ने बताया—"इस स्कूल में उर्दू पढ़ने वाले कम हैं। सत्रह बच्चे उर्दू पढ़ते हैं। किसी क्लास में चार किसी में पांच। पहली दूसरी कक्षा के बच्चे एक साथ बैठ जाते हैं।"

अध्यापकों से पूछा—"इस ओर समीप ऐसे गाँव हैं जहाँ कच्ची सड़के, कच्चे मकान या फूस की छत की झोपड़ियां हैं। हम सम-स्तर के ग्रामीणों का रहन-सहन देखना चाहते थे।"

उत्तर मिला—यहाँ से आठ-दस मील आगे ऐसा गाँव है। बसों के लिये सड़के सब जगह पक्की बन गयी हैं। बिजली और पानी के नल भी सब जगह पहुँच गये हैं। उन पर टीन की छतें हैं। फूस की झोपड़ी बहुत कम ही दिखेगी।

तीन-चार मील आगे दूसरा प्राइमरी स्कूल मिला। इस स्कूल की इमारत बड़ी और दो मंज़िल थी। यह गाँव भी नुवेल फ्रांस से बड़ा था। दस-बारह मील आगे जाकर दूसरे रास्ते वाकोआ लौटे। फूस की छतें दिखाई न दीं।

उस संध्या कुछ लोगों से नुवेल फ्रांस की उर्दू अध्यापिका के उर्दू ज्ञान की चर्चा के समय सुना—कुछ बरस पहले भारतीय नृत्य-संगीत और हिन्दी शिक्षा में सहायता के लिये कुछ अध्यापक भारत से बुलाये गये हैं। उर्दू प्रेमी जनता ने माँग की, उर्दू के शिक्षक भी बुलाये जाने चाहिये।

मौरिशस के शिक्षा मंत्रालय के अनुरोध पर भारत सरकार ने अलीगढ़ से दो उर्दू शिक्षक द्वीप में भेज दिये। उर्दू प्रेमी समाज ने आपत्ति की—उर्दू के शिक्षक भारत से क्यों बुलाये गये ? उर्दू शिक्षक पाकिस्तान से आने चाहिये।

उनसे राय ली गयी—उर्दू शिक्षक पाकिस्तान के किस भाग या नगर से बुलाना बेहतर होगा ? पूर्व पाकिस्तान में ढाका से या पजाब में लाहौर से या क्वेटा बलोचिस्तान से या कराची पेशावर से ?

हमारी सुविधा के विचार से या हमें द्वीप में अधिक समय रखने के लिये दोपहर से पूर्व या बाद प्रतिदिन एक ही कार्यक्रम रखा जाता था। रविवार 'प्लेन पपाया' (पपीता बाग) के युवक संघ का आयोजन सुवह दस बजे था। आयोजन का प्रबंध प्लेन पपाया के इरोज़ सिनेमा घर में था। त्रिओले की भांति स्वागत-अभिनन्दन के साथ कुछ साहित्यिक प्रसंग भी रहे।

इरोज़ में कार्यक्रम बारह तक समाप्त हो गया। नारायण दम्पत्ति 'ग्रां बे' (बड़ी खाड़ी) में हमारी प्रतीक्षा में थे। पपीता बाग से सागर तट के लिये चल दिये। 'ग्रां बे' विस्तृत और सुन्दर खाड़ी है, तैरने के लिये सुविधाजनक। द्वीप की नाव प्रतियोगिताएँ इसी खाड़ी में होती हैं। सागर तट की सड़क पर कई मील उत्तर की ओर 'पियरे बेर' के रमणीक तट पर कुछ देर बैठकर 'आन्स ले रे' की ओर बढ़ गये। सड़क लगातार सागर के नीले आंचल पर गोट की तरह! आन्स ले रे बहुत चटकीली रेती, खूब खुला तट और रेतीले

तट से लगता, यत्न से संवार-पोस कर रखे हुए बड़े लॉन जैसा हरा मैदान। हरे मैदान में चंवर से झूमते पत्तों के घने वृक्षों के नीचे दो सुथरे रेस्त्रां। उनके पीछे विस्तीर्ण लॉन की सेज के अनुरूप उतने ही विशाल गाँव तकिया जैसे हरियावल ढके टीलों की उठान।

दोपहर आहार का समय रमणीक स्थान और सुथरे रेस्त्रां से रोचक आहार की सुवास। 'फीनिक्स बियर' और तृप्तिदायक आहार के बाद सुहावनी फरफराती हवा में लॉन की हरी सेज पर, धूप रोके झूमते वृक्षों के नीचे, कमर सीधी कर लेने के लिये लेट गये। घास पर लेटे-लेटे नीले विस्तार को चीर कर फेन की रेखायें छोड़ती छोटी मोटर नावों के पीछे जंजीरों से बंधे खिचते तख्तों पर पांव जमाकर शरीर तौले खड़े, मोटर नौका की गति से नील सागर पर फिसलते जाते युवकों को देख रहा था।

शंका हुई कुछ कदम पर दो लडके अठारह-उन्नीस की आयु के कनखियों से मेरी ओर देख-देखकर मंडरा रहे हैं। लड़के सागर तट की शैवाल कंधों, कमर और घुटनों पर लपेट कर वन्य-शृंगार किये थे, जैसे वल्कलधारी समाज के युवक किसी नृत्य समारोह के लिये सजे हैं। उनके कनखियों से देखने और झिझक से शंका—शायद मुझे नींद में समझ कर मेरी जेब साफ कर डालने के अवसर की प्रतीक्षा में हैं। किसी भी देश के सागर तट पर ऐसी एडवेंचर या शरारत बहुत सम्भव।

लड़कों से नज़र मिल जाने पर, उनकी ओर संकेत से पूछा—"क्यों, क्या बात है?"

लड़कों ने झिझक से एक दूसरे की ओर देखा और बढ़ आये। उनसे बातचीत के लिये उठकर बैठ गया।

"सर, यू आर राइटर फ्रॉम इण्डिया?"

अनुमान किया—इन लोगों ने शायद किसी पत्र में, किसी कार्यक्रम के समाचार के साथ फोटो देखा होगा। दो दिन पूर्व हजामत के लिये एक नाई की दूकान पर ऐसे ही पहचान लिया गया था। नवयुवकों को बैठने का सकेत किया। दोनों समीप घास पर बैठ गये।

"सर, आपको टेलीविज़न पर देखा था। मिस्टर यशपाल?" दूसरे ने अंग्रेज़ी में कहा।

मेरे स्वीकार करने पर वह बोला, "टेलीविज़न पर आपसे इंटरव्यू हिन्दी में हुआ था। हम ठीक-ठीक समझ नहीं पाये?"

"क्या पूछना चाहते हो?"

नन्दलाल कौतूहल से समीप आ गये थे। नवयुवक ने पूछा, "हमारा द्वीप आपको कैसा लगा?

"बहुत सुहावना सुन्दर परन्तु इस द्वीप के समुद्र तट पर गल्स बहुत कम हैं।"

"सर गल्स क्या होता है?"

"समुद्री सफेद कौआ।"

"गल्स हैं लेकिन भोजन की तलाश में बन्दरगाह में जहाजों के आसपास रहते हैं" नवयुकों ने बताया।

"हमारे यहाँ सफ़ेद कौआ कम है। काला कौआ तो है ही नहीं।" नन्दलाल बोले, "गौरेया, तोता-मैना, बुलबुल, फाख्ता, नीलकंठ सब हैं परन्तु मोर नहीं और कौआ भी नहीं है। इस द्वीप में सांप भी नहीं हैं इसीलिये हम 'मौरिशस को गार्डन आफ ईडन विदआउट सर्पेंट' (स्वर्गोद्यान:बिना सांप) कहते हैं।"

नन्दलाल बताते गये—"सुना है, कुछ लोग द्वीप में सांप लाये थे परन्तु सांप यहाँ की प्रकृति में जीवित नहीं रह सका।"

"सांप लाने-रखने की कोशिश क्यों ?" विस्मय से पूछा।

"खेतों में मूसों की व्याधि की रोकथाम के लिये।"

"मूसों की रोकथाम के लिये सांप पालना कौन समझदारी ? मूसों के उपाय के लिये अनेक औषध हैं। यहाँ बिल्लियां तो है।"

"इस द्वीप की प्रकृति रेंगने वाले सांपों को नहीं सहती परन्तु दोपाये सांप मौजूद हैं।" नन्दलाल के स्वर में खिन्नता की खनक आ गयी। अपने ज़हर से द्वीप की जनता में सहयोग, शान्ति नहीं पनपने देते। जिस समय द्वीप की प्रजा बालिग मताधिकार और पूर्ण स्वतंत्रता के लिये आन्दोलन कर रही थी वे लोग बालिग मताधिकार और स्वतंत्रता का विरोध कर रहे थे। सम्प्रदायों और वर्गों में सम्प्रदाय और रक्त-जाति भेदों के नाम पर अविश्वास वैमनस्य फैला रहे थे। अमुक सम्प्रदाय और वर्ग के लोग अपनी बहुसंख्या से अल्पसंख्यक सम्प्रदायों को कुचल डालेंगे। ऐसे लोग इस द्वीप से एशिया की संस्कृति और भाषाओं को समूल नाश कर देना चाहते है परन्तु वे अगोरे लोगों को भी यूरोपियनों के समान कभी नहीं मानेंगे।

जिस समय द्वीप में सम्पूर्ण प्रजा को रंग, जाति, वर्ण, वर्ग सम्प्रदायों के भेदों के बिना मताधिकार के द्वारा चुनाव से प्रजा के प्रति उत्तरदायी शासन की माँग उठ रही थी उस समय यहाँ के भूपति और शेष साधनों के मालिक गोरे प्रजा में रंग, जाति, वर्ण, वर्ग सम्प्रदाय के भेद भड़का कर उन्हें बहका रहे थे कि यह आत्मनिर्णय नहीं आत्महत्या की माँग है ? उनका नारा था—'फ्रीडम मीन्स स्टार्वेशन'—स्वतंत्रता का अर्थ भूख से मौत परन्तु रामगुलाम के नेतृत्व में संयुक्त मोर्चे ने विजय पायी। अब उन सांपों के दांत टूट चुके हैं।

चौथे पहर तक आन्स ले रे में विश्राम कर लौट रहे थे। रोज़हिल में दक्षिण चौराहे पर लाल बत्ती के कारण गाड़ियाँ रुकी हुई थीं। हमारे सामने की गाड़ी अपने आगे की गाड़ी से बहुत अधिक अन्तर छोड़ कर रुक गई थी। नन्दलाल बायें से बढ़कर उस गाड़ी से आगे निकल रहे थे तब तक हरी बत्ती हो गई।

आवाज़ में धमकी—स्टॉप-स्टॉप।

नन्दलाल धमकी अनसुनी कर दाहिने मुड़ रहे थे। पीछे से फिर रुकने के लिये धमकी। पीछे रही गाड़ी एक यूरोपियन चला रहा था।

"बहुत नाराज़ हो गया है।" मैने कहा। चेहरा उसका लाल माल्टे जैसा हो गया था।

"बकने दीजिये जाहिल को।"

"ओवरटेक करना तो गलती ही थी, तिस पर बायें से।" मैंने कुरेदा।

"भलमनसाहत से एतराज़ करता तो खेद प्रकट किया जा सकता था कि उसने गाड़ी इतनी दूर क्यों रोकी। भौंकने का क्या जवाब?" गलती होने पर रोक-टोक पुलिस का काम। इसका दिमाग "अभी पुराने नशे में है।"

"१९६८ में यहाँ स्वराज्य होने से पूर्व यूरोपियनों का ऐसा ही ढंग था?"

"ऐसा?......इससे बहुत बदतर। ये लोग अगोरों और भारतीयों को अपने उपयोग और सेवा के लिये द्वीप में लाये गये दोपाये पशु समझते थे। अब भी समझना चाहते हैं। अगोरों और भारतीयों को यूरोपियन से समता का दावा वे अपना राष्ट्रीय अपमान समझते थे। बहुत से स्थानों में अगोरे और भारतीयों का कदम रखना तक कानूनन अपराध था।"

अगोरों का मंत्रिमंडल और अगोरा प्रधानमंत्री बन जाना, ऊँचे पदों पर अगोरों की नियुक्ति मौरिशसी गोरों के लिये असह्य था। बहुत से गोरे द्वीप छोड़ कर इंगलैंड, दक्षिण अफ्रीका और आस्ट्रेलिया चले गये। कुछ वहाँ पाँव न जम पाने के कारण लौट भी आये हैं। इनमें से बहुतों की मनोवृत्ति अब भी नहीं बदली है। अब उन्हें स्वयं को शासक बिरादरी मानने का अवसर नहीं परन्तु द्वीप की प्रजा में परस्पर अविश्वास-वैमनस्य फैलाकर, इस-उस वर्ग को पैसे के ज़ोर पर अपना पिट्ठू बना सकने की धूर्तता जारी है। ये ही हैं इस द्वीप की हरियावल में छिपे दोपाये सांप।

त्रिओले, प्लेन पपाया, प्लेन मायां, गुडलैण्ड आदि में आयोजन हो चुके थे परन्तु हिन्दी लेखकों को अपनी एक पृथक बैठक करने का आग्रह था। यह बैठक हुई पोर लुई के 'लुई ला शेल' हॉल में। द्वीप के हिन्दी लेखकों के अध्ययन और ग्राह्यता के व्यापक होने का अवसर है। प्रायः सभी लेखक अंग्रेज़ी और फ्रांसीसी साहित्य से परिचित हैं। विभिन्न संस्कृतियों और जीवन पद्धतियों के निकट परिचय के कारण उन्हें सभी प्रकार की समस्याओं पर तुलनात्मक दृष्टि से विचार का अवसर है।

लेखकों की विशेष गोष्ठी का प्रयोजन था, निःसंकोच और अन्तरंग विचार विनिमय का अवसर। चर्चा में रचना प्रक्रिया से सम्बद्ध वही प्रश्न जो सचेत लेखकों की किसी भी गोष्ठी में उठ सकते हैं; रचना आत्मरति के उच्छ्वास या आत्मतोष की अभिव्यक्ति के लिये या सामाजिक चेतना और दायित्व से सप्रयोजन रचना! लेखक आत्मविवेक अन्तःप्रेरणा का अनुसरण करे या स्वीकृत प्रतिबद्धता का निर्देश माने? जनमत, सामाजिक नियमन और शासन के प्रति लेखक का रुख?

इन प्रश्नों पर मेरे विचार गत वर्षों में बदले नहीं हैं। चर्चा आरम्भ करने के लिये संक्षेप में कहा—मेरे विचार और कल्पना में लेखक और कलाकार का अस्तित्व समाज

से पृथक सम्भव नहीं है। इसलिये मेरे विचार में समाज और उसकी समस्याओं से लेखक की निरपेक्षता की कल्पना ही संगत या उचित नहीं लेखक का स्वान्तः सुखाय सन्तोष भी सामाजिक भावना और सामाजिक सन्तोष से पृथक या उसके विपरीत सम्भव नहीं हो सकता। समाज की उपेक्षा या समाज हित के विरुद्ध सन्तोष की कल्पना, अपने पांव तले की डाल काट कर सन्तोष पाने की कल्पना या इच्छा होगी। मेरे विचार में समाज के किसी भी व्यक्ति की ऐसी प्रवृत्ति आत्मघात होगा। एक लेखक या कलाकार के लिये ऐसी प्रवृत्ति घोर अपराध भी होगा।

कुछ लेखक रचना में उद्देश्यपरकता या किसी भी प्रकार की प्रतिबद्धता को लेखक की स्वतंत्रता का हनन समझते हैं। ऐसे लेखक अपनी रचना का प्रयोजन केवल मनोरंजन बताते हैं। साहित्य का प्रयोजन जन मनोरंजन मान लेने पर भी स्पष्ट है कि लेखक रचना अपने लिये नहीं, जन या समाज के लिये करता है और वह समाज के प्रति उत्तरदायित्व, आप उसे मनोरंजन का ही उत्तरदायित्व कह दें, लेखक नकार नहीं सकता।

किसी भी प्रसंग से मनोरंजन, उस प्रसंग मे रसानुभूति से या उस प्रसंग से रागात्मक सम्बन्ध से ही होगा। मनोरंजन देश-काल और समाज के संस्कारों के अनुसार होता है। मनोरंजन देश-काल और समाज के संस्कारों के अनुसार सुरुचि-कुरुचि का परिचायक या श्रेय, अश्रेय भी हो सकता है। अतीत में मनोरंजन के कुछ ऐसे माध्यम या ढंग रहे हैं जिनकी याद से आज समाज के प्रति उत्तरदायित्व से इनकार करने वाला लेखक भी ग्लानि का अनुभव करेगा। मनोरंजन के लिये तीतर, मुर्गे, मेढ़े या सांड़ लड़ाने की ही बात नहीं; सुना है, बर्बर रुचि के कुछ लोग ज़ख्मी जानवरों के घावों पर नमक-मिर्च छिड़क कर उनकी व्याकुलता से तृप्ति अनुभव करते थे। किसी युग में दास योद्धाओं को मरणान्तक युद्ध में लड़ाकर मनोरंजन किया जाता था। अपराधियों और खरीदे हुए गुलामों को हिंसक पशुओं से निहत्थे लड़ाकर मनोरंजन किया जाता था। नाज़ियों द्वारा मनोरंजन के लिये यहूदी स्त्रियों के उपयोग और बांगला देश में पाकिस्तानी सेना द्वारा मनोरंजन के लिये युद्ध के मोर्चे पर खाइयों में बांध कर रखी गयी युवतियों की कहानियों के बारे में सभ्य समाज क्या कहेगा? मनोरंजन स्वतः कोई वस्तु या कल्पना नहीं हो सकती। वह सदा देश-काल वशेष के समाज के संस्कारों और भावना और आदर्शों के अनुसार होता है। कलाकार का आत्मतोष भी अपने परिवेश से उसके सम्बन्धों और मान्यताओं पर निर्भर करेगा।

लेखक के आत्मतोष के लिये रचना के अधिकार के प्रसंग में रवि ठाकुर का उद्धरण दिया जाता है। रवि ठाकुर ने कहा है—रचना का सन्तोष स्वयं अच्छी कविता या कहानी के सृजन में है। यह बात रवि ठाकुर जैसे व्यक्ति या कलाकार के लिये—जिसने स्वयं को मानव कल्याण की भावना में समाहित कर दिया हो—ठीक हो सकती है, किसी उच्छृङ्खल किशोर या अनुत्तरदायी व्यक्ति के लिये नहीं। किसी बस्ती में आग लगाकर तमाशा देखना चाहने वाले व्यक्ति के मनोरंजन या आत्मतोष के बारे में क्या कहा जायेगा?

एक युवक का प्रश्न था—राजनैतिक प्रश्नों या लक्ष्यों से प्रतिबद्धता को क्या समझा जाये।

उत्तर दिया—राजनीति का अर्थ केवल चुनाव का अखाड़ा और पद के लिये होड़ नहीं। जनतांत्रिक व्यवस्था में और शासन पर जनकल्याण का उत्तरदायित्व मानने पर वैयक्तिक या सामूहिक जीवन का कौन पहलू राजनीति की परिधि से बाहर रह जाता है। जब जीविका के अवसर, जीविका के साधन, समाज का उत्पादन सभी कुछ सामूहिक निर्णय से शासन की सहायता और नियंत्रण में हो तो हमारा जीवन ही राजनीति हो जायेगा। आधुनिक समाज में कौन प्रश्न राजनीति से बाहर है? विवाह किस आयु में होना चाहिये, स्त्री-पुरुष कितने पति-पत्नी कर सकते हैं, कितनी सन्तान उचित है और उनकी शिक्षा और स्वास्थ्य के लिये समाज या सरकार का उत्तरदायित्व मानना है तो हम राजनीति से कैसे भाग सकते हैं! समाज में उचित व्यवस्था के प्रति सतर्कता ही राजनैतिक प्रतिबद्धता है।

फिर प्रश्न—कलाकार या लेखक को राजशक्ति या शासन के निर्णय-निर्देश मान कर व्यवस्था के प्रति बद्धता स्वीकार कर लेना उचित है या अपने विवेक के प्रति निष्ठा?

यह बात मैं स्वयं ही कहना चाहता था इसलिये कहा—मेरे विचार से लेखक को अपने विवेक से प्रतिबद्ध होना चाहिये। कोई शासन या व्यवस्था अपने विचार में या अतीत की अपेक्षा, कितने भी प्रगतिशील हों वे अपने समय में स्वीकृत मान्यता और व्यवस्था (स्टेटसको) के समर्थक और रक्षक होंगे। यह इतिहास प्रमाणित है कि विकास की प्रक्रिया में समय आने पर समाज की स्थिति और नयी आवश्यकताओं में अन्तर्विरोध और द्वन्द्व उत्पन्न हो जायेंगे। समाज की व्यवस्था या मान्यतायें बोसीदा हो जायेंगी और प्रगति के मार्ग में रुकावट बनने लगेंगी। ऐसे अन्तर्विरोधों को सभी लोग तुरन्त नहीं देख लेते। अपने स्वार्थ को ही आदर्श और न्याय मानने वाले उन अन्तर्विरोधों को देखना ही नहीं चाहते परन्तु समाज के भावी विकास और कल्याण के लिये परिवर्तन का मार्ग सदा खुला रहना चाहिये। मेरे विचार में प्रगतिशील लेखक की यही प्रतिबद्धता है।

विकास की इस प्रवृत्ति के कारण प्रबुद्ध विचारकों, विकास की स्फूर्ति से अनुप्राणित कलाकारों और लेखकों को सदा ही सामयिक शासनों और राजशक्तियों का कोपभाजन बनना पड़ा है। सुक्रान्त, चारवाक और कई वैज्ञानिक और सन्त इसके ऐतिहासिक उदाहरण हैं। कुछ प्रसंगों में आज भी ऐसा हो रहा है शायद सदा होता रहेगा क्योंकि प्रगति का मार्ग ही द्वन्द्व और संघर्ष का है।

रचना प्रक्रिया में भाषा और शैली के सम्बन्ध में प्रश्न था—रचना में परिमार्जित और आभिजात्य भाषा और शैली को श्रेय दिया जाये या गली-बाज़ार, खेतों-कारखानों के जीवन और बोल-चाल को और देशज शब्दों और मुहावरों को?

मेरा अनुभव है कि रचनाकार अपनी विषयवस्तु, विधा, भाषा और शैली का चुनाव अपने परिवेशों, मान्यताओं, प्रयोजन और प्रेरणा से अपने श्रोताओं या पाठकों की

महत्त्वाकांक्षाओं और रुचि के विचार से करता है। निर्णायक बात होगी कि लेखक या कवि किस वर्ग या समाज को सम्बोधन करना चाहता है। सभी देशों और समाजों के प्राचीन राजसत्ता और सामन्त युगों के साहित्य में राज्य विस्तार के लिये वीरता-पराक्रम की गाथायें, रमणियों की प्राप्ति के लिये संघर्षों, विरह-वेदना और उत्कट शृंगार-भोग के चित्रण या तत्कालीन कल्पना और विश्वास के अनुकूल अध्यात्म चिन्तन और साधना के प्रसंग मिलते हैं क्योंकि उस समय साहित्य रचना केवल सम्पन्न, सुविधा प्राप्त, जीवन की आवश्यकताओं से सन्तुष्ट वर्ग के लिये की जाती थी। उन रचनाओं में विशिष्ट वर्ग की भाषा का ही प्रयोग होता था। अभिव्यक्ति को सरस बनाने के लिये भाषा में क्लिष्ट अलंकार और व्यंजना के चमत्कार उत्पन्न किये जाते थे। इन रचनाओं की विषय-वस्तु, कल्पना, भाषा सब कुछ दरबारी या विशिष्ट वर्ग के लिये होता था। उस समय साहित्य में सामान्य जन या निम्न वर्ग के जीवन के प्रसंग और उनकी बोल-चाल का प्रयोग ग्राम्य-दोष माने जाते थे। ऐसी साहित्यिक मान्यताओं के कारण सीधे थे, सामान्य और निम्न वर्ग को शिक्षा साहित्य-कला के रस के लिये अवसर ही न था। आभिजात्य समाज सामान्य और निम्न वर्ग की याद और चर्चा से ही अरुचि और खिन्नता अनुभव करते थे।

पूंजीवादी युग और समाज में शासन और अर्थ व्यवस्था का निर्देश-नियंत्रण धनी और मध्यम वर्ग के हाथ आने पर साहित्य से रस ले सकने वाले वर्ग का विस्तार हुआ। रचनाकार का परिवेश और श्रोता बदल गये। रचनाकार भी वर्ग का अंश और प्रतिनिधि होने लगा। स्वाभाविक था कि रचनाकार साहित्य का सृजन इस वर्ग की महत्त्वाकांक्षाओं, अनुभूतियों और रुचि के अनुकूल करने लगे। इस वर्ग की भी रुचि, सुख-सौन्दर्य की कल्पना उत्पादन के कठिन श्रम और अभाव से घृणा की ओर सामान्य और निम्न साधनहीन वर्गों से दूर रहने की थी, वैसी ही उनकी भाषा। इस युग में साहित्य की विषय-वस्तु, भाषा और शैली का पूवपिक्षा विस्तृत परन्तु अपेक्षाकृत सम्पन्न और मध्य वर्ग की अनुभूति, स्वप्न और रुचि के अनुकूल होना स्वाभाविक था।

उस समय उत्पादन के कठिन श्रम से कुचले अभावग्रस्त मज़दूरों या ग्रामीणों की अनुभूतियों या स्वप्नों के उद्‌गार ग्राम्य भाषा के गीतों और ग्राम्य कथाओं या कभी ग्राम्य नृत्य विनोद में प्रकट होते थे जिन्हें शिक्षित शिष्ट नागरिक वर्ग अनकल्चर्ड, ग्राम्य तथा घृणा-उपेक्षा के योग्य समझता था।

आज हमारी मान्यताएं बदल गयी हैं। हम वर्ग भेद रहित, सम-अधिकार और सम-अवसर जनतंत्र समाज को आदर्श मान रहे हैं। आज कठिन श्रम करने वाले अभावग्रस्त वर्ग को समान अधिकारों का आश्वासन दिया जाता है। आज कवि और साहित्यकार इस वर्ग से भी आते हैं। मध्य वर्ग से आये साहित्यकार भी न केवल सामान्य वर्ग की उपेक्षा नहीं कर सकते बल्कि इस वर्ग को सर्वाधिक महत्त्व देने का डंका बजाते हैं इसलिये आज साहित्य में इस वर्ग की समस्याओं, जीवन, स्वप्नों और भाषा की झलक आयेगी ही। इस तथ्य से इनकार नहीं किया जा सकता कि साहित्य की प्राचीन परिपाटी से जो प्रसंग और प्रयोग ग्राम्य दोष माने जाते थे, आज यथार्थ चित्रण का गुण माने जाने लगे हैं क्योंकि वे

आज बहुजन के लिये रोचक हैं। रचनाओं की भाषा में आज क्लिष्टता के चमत्कार के बजाय सरल और सहज की ओर प्रवृत्ति है परन्तु सरल और सहज का अर्थ गलत, फूहड़ प्रयोग या अभिव्यक्ति नहीं है। जैसे जन गण का जीवन स्तर सुधारने की जरूरत है, वैसे ही जन गण की भाषा को सबल और परिष्कृत बनाने की भी।

एक लेखिका ने पूछ लिया—हम राजनैतिक प्रतिबद्धता, वर्ग संघर्ष और साहित्य को जनतांत्रिक बनाने की ही चिन्ता करते रहेंगे? कुछ गिने-चुने लेखकों के अतिरिक्त अन्य लेखक नारी की परवश, दीन स्थिति, उसे पाप का मूल माने जाने के अन्याय का विरोध नहीं करेंगे?—लेखिका के स्वर में क्षोभ था।

लेखिका की बात तीखी थी। उत्तर भी कुछ तीखा हो गया—यह ख्याल ठीक नहीं है कि आधुनिक हिन्दी साहित्य में नारी के प्रति अन्याय के विरोध में आवाज़ उठायी ही नहीं गयी। स्वयं भी इस प्रसंग पर निरन्तर लिखता रहा हूँ। अन्य कई लेखकों ने भी ऐसी समस्याओं और प्रश्नों पर न्याय का पक्ष लेकर रूढ़ि समर्थकों का क्रोध पाया है लेकिन ऐसा साहस अधिकांश में पुरुष लेखकों ने ही किया है। स्त्री लेखिकाओं ने बहुत ही कम। अलबत्ता डेढ़-दो बरस से भारत में नयी पीढ़ी की लेखिकाओं ने इस ओर कदम बढ़ाये हैं। समस्याएं केवल लिखने या आवाज़ उठाने से नहीं सुलझतीं। उनके विरोध या उपाय के लिये साहसी और संगत व्यवहार की जरूरत भी होती है। अशिक्षित अभावग्रस्त वर्ग की नारी इस अन्याय से व्याकुल होने पर इसे नारी का भाग्य समझ कर चुप है। शिक्षित और सुविधा प्राप्त वर्ग की नारी के व्यवहार में भी नारी की परवशता दूर करने के लिये विशेष प्रयत्न नहीं है। वह नारी की परवशता का विरोध अधिकतर फैशन के तौर पर करती है, आचरण और व्यवहार से नहीं। शिक्षित और सुविधा प्राप्त वर्ग की नारी अवसर और अधिकार की सुविधायें जरूर चाहती है परन्तु पुरुषों की कृपा से। वह आत्मनिर्भरता और उत्तरदायित्व से डरती और कतराती है। तेज़ी से बदलती आर्थिक परिस्थितियां नारी को आत्मनिर्भरता का अवसर दे रही हैं परन्तु शिक्षा द्वारा आत्मनिर्भरता की योग्यता पाकर भी सुविधा प्राप्त वर्ग की अधिकांश स्त्रियां आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर होना नहीं चाहतीं। वह पराश्रय को आभिजात्य और हक़ मानती हैं। यह केवल विडम्बना है कि नारी आत्मनिर्भरता और उत्तरदायित्व के बिना आत्मनिर्णय का अवसर चाहे। आधुनिक नारी की बहुत बड़ी संख्या केवल जन अपवाद के आतंक से परवश और दबी रहना स्वीकार किये है। स्वतन्त्रता के लिये पहली शर्त है, आत्मनिर्भरता का उत्तरदायित्व और साहस।

उस दिन प्रातः नाश्ते के बाद 'चीनी उद्योग श्रमिक कल्याण समिति' द्वारा बनायी 'चीनी उद्योग श्रमिक बस्तियां' देखने गये। इन बस्तियों में कई स्तर के; दो कमरों, तीन कमरों और चार कमरों के रसोई-गुसलखाने सहित मकान हैं। मकानों के साथ फूल-फुलवाड़ी और सब्जी-तरकारी की क्यारियों के लिये भी कुछ जगह है। श्रमिक अपनी आय और ज़रूरत के अनुसार यह मकान किराये पर ले लेते हैं। निश्चित अवधि में किराये से ज़मीन-मकान का मूल्य चुकता होकर, मकान उनकी सम्पत्ति बन जाते हैं। छोटी-छोटी

बस्तियों की छतें विभिन्न रंगों की। मकानों की बनावट भी सब जगह एक-सी उबाने वाली नहीं हैं। सड़क से गुज़रते बस्तियां सुन्दर लग रही थीं। सुरुचि, सुविधा-सन्तोष का आभास। बस्तियों के समीप प्राइमरी स्कूल, डाकखाने और डिस्पेंसरियां भी हैं।

बस्तियों से कुछ आगे सिंचाई के लिये बनायी झील 'लफेम' और उसके समीप एक पुराना भव्य गिरजा हैं। झील और उसका पड़ोस बहुत रमणीक है।

नन्दलाल को याद आ गया—ढाई-तीन मील आगे 'फ्लिक आं फ्लाक' में कुछ मास पूर्व नया प्राइमरी स्कूल आरम्भ किया गया था। नन्दलाल द्वीप के शिक्षा विभाग में निदेशक और निरीक्षक भी हैं। वे निरीक्षण प्रायः बिना सूचना दिये, अकस्मात् करते हैं।

नन्दलाल ने कहा—"उधर 'वोलमा' में मछुओं की बस्ती है। आपको शायद झोपड़ियां भी देखने का मौका हो जाये।"

दो दिन पूर्व 'बो शां' (सुन्दरबाग) से सागर तट की सड़क पर 'आन्स कुना, पेति साबल' (महीन रेती), ग्रां साबल (मोटी रेती) 'डेविल्स पांइट' (देओं का घाट), 'बोआ दे आमुरेत' (प्रीत कुन्ज), 'पेविलियों द ग्रां पोर' (डच दरबार के खण्डहर) के बहुत रमणीक स्थान हैं। सागर तट की सड़क पर 'माहे बर्ग' से कुछ पहले एक जगह दो झोपड़ियां देखी थीं। झोपड़ियां के किवाड़ों पर सांकल थी। खूंटे से बंधी एक बछिया। चौकसी के लिये कुत्ता था। झोपड़ीवासी न थे।

फ्लिक आं फ्लाक का स्कूल समुद्र तट पर है। लगभग दो सौ गज़ के अन्तर पर क्षितिज तक नील सागर है। स्कूल और समुद्र के बीच गाँव का फुटबाल मैदान। स्कूल के पिछवाड़े लगती बहुत छोटी बस्ती। सड़क से स्कूल तक डेढ़-दो सौ गज़ कच्चे रास्ते जाना पड़ा। स्कूल के लिये अलग मकान नहीं बन पाया है। बच्चे अभी गाँव के सोशल वेल फेयर हाल (समाज कल्याण भवन) में पढ़ते हैं। द्वीप के छोटे-बड़े सभी गांवों में 'समाज कल्याण भवन' हैं।

हम जल्दी ही पहुँच गये थे। स्कूल के दरवाज़े के साथ बच्चों के नाश्ते के लिये मीठी पाव रोटी या बड़ा थैला और दूध की बाल्टी रखी हुई थी। समाज कल्याण भवन में एक बड़ा कमरा है। बड़े कमरे के बीचोबीच, कमरे की लम्बाई में समानान्तर बेंचें लगी हुई थीं। कमरे की बगल में एक तंग कमरा, बड़े कमरे की चौड़ाई तक लम्बा। बड़े कमरे की दायें-बायें दीवारों के समानान्तर भी बेंचें लगी थीं। तीनों तरफ बेंचों के सामने एक-एक कुर्सी और छोटी मेज़ अध्यापक के लिये। एक कमरे में तीन कक्षाओं की पढ़ाई। द्वीप के किसी भी स्कूल में, हिन्दी प्रचारिणी सभा के स्कूल में भी विद्यार्थियों को फर्श पर बिछी चटाई या टाट-पट्टी पर बैठकर पढ़ते नहीं देखा। बता चुका हूँ, यहाँ कथा मण्डप में भी दरी पर पाल्थी से बैठने का रिवाज़ नहीं है, सब जगह कुर्सी-बेंच ही देखे, रामकृष्ण सेवा मिशन के अतिरिक्त। •

मुख्याध्यापिका क्लर्ड-कैथोलिक युवती थी, फ्राक पहने। उसने कमरे में बेंचों की व्यवस्था के लिये मज़बूरी प्रकट की—इतनी ही जगह में तीन कक्षाएं—तीसरी, चौथी,

पांचवीं। साथ के कमरे में पहली-दूसरी कक्षाएं, एक दूसरे की ओर पीठ करके। जैसे हो सके, चलाते हैं।

स्कूल में पाँच अध्यापिकाएं थीं। उनमें तीन भारतीय, दो साड़ी पहने एक कमीज़-पतलून में। दो कैथोलिक में, एक फ्राक में थी दूसरी ब्लाउज-स्कर्ट पहने। इस स्कूल में बच्चे लगभग सभी भारतीय या हिन्दू थे। सभी हिन्दी पढ़ रहे थे। दो स्कूलों में व्यवसाय या नौकरी पाने में सुविधा की आशा से चीनी बालकों के भी हिन्दी पढ़ने और एक चीनी बच्चे के हिन्दी कक्षा में प्रथम आने की बात सुनी थी। परन्तु भारत से गये मुस्लिम अपने बच्चों को हिन्दी नहीं पढ़ाना चाहते।

अध्यापिकाओं ने अखबारों में चित्र और टेलीविज़न पर चर्चा से मुझे और प्रकाशजी को पहचान लिया। मिलने के अवसर से प्रसन्न थीं।

नन्दलाल स्कूल के रजिस्टर पर नज़र डाल रहे थे। मुख्याध्यापिका कुछ कह रही थीं फ्रांसीसी में, स्वर शिकायत का था। मेरी ओर नज़र गयी तो अंग्रेज़ी में बात करने लगी, "सर, देख रहे हैं, हम इस तंग जगह में, इतने शोर-शरावे में कैसे पढ़ा रहे हैं लेकिन सण्डास-गुसलखाने के लिये हम क्या करें? मैं तीन बार लिख कर शिकायतें भेज चुकी हूँ। अस्सी बच्चे हैं, उनके हाथ-मुंह धोने के लिये केवल एक वाशबेसिन और केवल एक सण्डास।"

नन्दलाल ने जेब से नोट बुक निकाली, उसमें कुछ लिखते हुए आश्वासन दिया—"आपकी परेशानी के लिये बहुत खेद है। विश्वास रखिये आज ही इसके लिये लिखूंगा।"

खयाल आ रहा था, हमारे गांवों के प्राइमरी स्कूलों के अध्यापकों को स्कूलों में हाथ-मुंह धोने की व्यवस्था और सण्डास की जरूरत महसूस ही नहीं होती। हमारी संस्कृति का मूल मंत्र है, आवश्यकताओं को कम करना। मौरिशसी भारतीय वंशजों ने खेत, बाग, बगीचों, सड़कों-गलियों को सण्डास समझ लेना छोड़ दिया है परन्तु अपनी आदि संस्कृति की रक्षा और विकास के लिये अपने आदि स्रोत भारत की ओर देखना नहीं छोड़ा।

मुख्याध्यापिका को आश्वासन देकर नन्दलाल ने पूछा—"कोई ऐसा विद्यार्थी बताइये जिसका परिवार झोपड़ी में रहता हो। मेहमान ऐसे परिवारों की स्थिति का अनुमान चाहते हैं।"

"है, एक ऐसी झोपड़ी समीप पचास मीटर पर ही है। वे लोग रहते हैं फूस की छत के नीचे लेकिन हैं अच्छे खाते-पीते। सबसे गरीब परिवार की झोपड़ी यहाँ से तीन सौ मीटर दूर है। उस लड़के को आपके साथ कर दूं।"

अध्यापिका के बुलवाने पर छः-सात बरस का सांवला दुबला-सा बालक दूसरे कमरे से आया। पुरानी नीली निकर, कुछ छीजी हुई खाकी कमीज़। लेकिन बदन दुरुस्त।

बालक को गाड़ी में साथ ले लिया। फुटबाल के मैदान से आगे समुद्र तट के साथ अढ़ाई सौ मीटर गये। बालक के बताने से बायें कच्चे रास्ते पर घूम गये। तीन-चार घर की बस्ती थी। सामने मकान पर नालीदार टीन की छत। मकान के बहुत समीप घुटने भर

ऊँची, एक ईंट की दीवार से घिरा सिन्दूर पुता एक ऊँचा पत्थर, लाल-श्वेत झंडियां। शायद महाबीर पूजा का स्थान। आठ हाथ के अन्तर पर गोबर-मिट्टी लिपी दीवारों पर फूस की गठी हुई छत की झोपड़ी। इस झोपड़ी की पीठ दीवार कच्चे रास्ते की ओर।

गाड़ी रास्ते पर छोड़ कर बालक के साथ झोपड़ी के द्वार की ओर गये। झोपड़ी के दरवाज़े के सामने टोंटी लगा नल। बालक झोपड़ी के भीतर चला गया। कुछ पल में झोपड़ी के द्वार में एक स्त्री दिखायी दी। स्त्री सिर पर धोती का आंचल खींचे, गर्दन झुकाये थी। आयु से युवती। युवती की छपी हुई धोती पुरानी छीजी हुई परन्तु मैली-फटी हुई न थी।

नन्दलाल ने बात क्रिओल में शुरू की और भोजपुरी बोलने लगे—"भारत से मेहमान आये हैं। बहुत माने-जाने बुजुर्ग हैं। माताजी भी साथ हैं। तुम्हें परेशानी न हो तो गाँव के घरों का रहन-सहन देखना चाहते हैं।"

युवती झिझकी, बालक की ओर संकेत किया—"इसके पिता घर पर नहीं हैं।"

"लड़के के पिता कहाँ गये हैं, क्या करते हैं?"

हम लोग मछुआ है। इस मौसम में मच्छी बहुत कम है। शहर रोज़गार दफ्तर में काम की तलाश में गये हैं।"

"हम तुम्हारे भाई, ये तुम्हारे बाप-दादा की तरह, माताजी भी साथ हैं।" नन्दलाल ने प्रकाशजी की ओर संकेत से आश्वासन दिया।

"आ जाइये" युवती ने भीतर होकर राह दी।

झोपड़ी तंग थी, दस-ग्यारह फुट लम्बी उतनी ही चौड़ी। एक दीवार के साथ लोहे का पलंग। पलंग के नीचे धकेली हुई छोटी खाट। पलंग पर गुलाबी फूलदार पलगपोश। झोपड़ी की पीठ दीवार के साथ दो आलमारिया, कांच लगे पल्ले की। दूसरे सामान रखने के लिये दीवार पर शल्फ की तरह तख्ते। आलमारियों में चीनी के तश्तरी-प्याले, प्लेटें, कांच के गिलास। तख्तों पर बर्तनों के साथ दो खाली बोतलें, एक मार्टिनी ब्राण्डी की दूसरे रम की। झोपड़ी में दायें भाग में पलंग से दूसरी ओर दीवार के साथ चौकोर मेज़। मेज़ पर फूलदार हरे प्लास्टिक का मेज़पोश। मेज़ पर शीशे का किरासिन तेल का चिमनीदार लैम्प, चीनी के कुछ और बर्तन। पलंग के साथ दीवार पर और दीवारों पर खाली जगह में तीन कैलेण्डर। एक कैलेण्डर में राधा को बांह में लिये वंशी बजाते हुए कृष्ण। दूसरे कैलेण्डर में कोई भारतीय फिल्म अभिनेत्री, तीसरे में समुद्र तट पर खड़ी, केवल अंगिया-कछिया पहने यूरोपियन तरुणी।

युवती ने हमें कुर्सियों पर बैठने के लिये संकेत किया, स्वयं पांव धरती पर टिकाये पलंग पर बैठ गयी। उतनी तंग जगह में तीन कुर्सियां थीं। एक काठ की बैठक की ढलकती, अनगढ़ बाजूदार भारी कुर्सी, दो लोहे के ऐंठे तार और टीन की बेबाजू कुर्सियां।

द्वीप में धरती पर सोने या बैठकर खाने का चलन नहीं है। किसान खेत में साथ बांध कर लाया खायेका भी किसी पत्थर या गिरे पेड़ के तने पर बैठकर खाते हैं। खटिया, कुर्सी-मेज़ ग़रीब को भी चाहिये।

नन्दलाल की जिज्ञासा पर युवती ने बताया, उसका नाम धनवतिया था, उसका मायका गुडलैण्ड में था। कुछ-कुछ हिन्दी पढ़ सकती थी। बचपन में रात्रि पाठशाला में हिन्दी पढ़ी थी। बच्चे तीन थे। हमारे मार्गदर्शक बालक का नाम विद्यानन्द था। बालक के पिता का नाम देवव्रत चतुर्गुन।

नन्दलाल ने अनुमान प्रकट किया—ये नाम आर्यसमाजी प्रभाव से हैं। चतुर्गुन पारिवारिक नाम। शायद भारत से आये देवव्रत के दादा-परदादा का नाम चतुर्गुण या शत्रुघ्न रहा होगा।

ब्राण्डी-रम की बोतल की ओर संकेत कर पूछा—"देवव्रत पीकर उपद्रव तो नहीं करता।"

धनवतिया ने हाथ से इनकार किया—"नहीं, ऐसा नहीं है। कभी थोड़ा पीता है। मेहमानदारी में करना ही पड़ता है।"

धनवतिया की उम्र तीस के आस-पास होगी। मंझला इकहरा बदन, चेहरा गोल, दबा माथा, रंग खुला हुआ सांवला, आँखें मैथिल या बंगाली आंचल की। व्यवहार मजदूरी करने वाली युवती का नहीं, ग्रामीण भले घर की बहू का, आँखें झुकाये। प्रश्न पर एक बार नज़र उठाकर गर्दन झुकाये संक्षिप्त उत्तर देती थी। हमें मछली पकड़ने के लिये बांस की कमची के स्वयं बनाये जाल भी दिखाये। हमारे आने से पहले वही काम कर रही थी। बताया कानूनन जाल के छेद इससे तंग नहीं होने चाहिये। इससे छोटी मछली पकड़ना मना है।

झोपड़ी से लौट रहे थे, समीप टीन से छाये मकान के बरामदे में दो जवान लड़कियाँ कौतूहल से हमारी ओर देख रही थीं। एक लड़की की माँग में भरपूर सिन्दूर, नवेली बहू।

नन्दलाल चाहते थे उस मकान के परिवार की स्थिति का भी अनुमान हो जाये। लड़कियों को सम्बोधन किया—"ये मेहमान भारत से द्वीप देखने आये हैं। उस मकान को देखा है। तुम्हें परेशानी न हो तो यहाँ भी एक नज़र डाल लें।"

बहू की ननद बोली—"घर के बड़े लोग नहीं हैं। हम क्या कह सकते हैं?"

समुद्री हवा से बरामदे में खुली खिड़की का पर्दा उड़कर खिड़की के पल्ले पर अटक गया था। भीतर सब दिखाई दे रहा था—मकान की बाहरी दीवारों की तरह भीतर भी कुछ ही दिन पूर्व पोती गयी चटक सफेदी। साधारण मेज़-कुर्सी, आलमारियों में सामान, देवव्रत के यहाँ से कुछ बेहतर सुविधा और कायदे से।

विद्यानन्द से कहा—"चलो तुम्हें स्कूल पहुँचा दें।"

"मैं चला जाऊंगा।" वह उछलता-फुदकता समुद्र तट की ओर भाग गया।

सन्तोष हुआ, द्वीप के गरीब परिवारों की स्थिति और ढंग का अनुमान हो गया। गरीबों में भी बहू को सलीका है। साड़ी-धोती पर पेटीकोट, कपड़े चिथड़ा मैले नहीं।

प्रकाशजी ने बताया—"धोती ऐसी मैली नहीं थी परन्तु थी फटी हुई। वह उसे संभाल से छिपाये थी। ऐसे मामले में नारी की नज़र चूकती नहीं। धोती फटी सही परन्तु उसका साफ होना और फटे कपड़े को आगन्तुक से छिपाये रखने की चिन्ता रहन-सहन के स्तर का संकेत है। गरीबी है परन्तु आत्म-सम्मान और सुरुचि को कुचल देने वाली नहीं।

'गाँधी संस्थान' में आधुनिक भारतीय साहित्य पर चर्चा

मौरिशस की उदीयमान यूनिवर्सिटी में भारतीय भाषाओं, साहित्य और संस्कृति के अध्ययन और शोध कार्य के लिये भारतीय सरकार के योगदान से 'गाँधी इन्स्टीट्यूट' की स्थापना की गयी है। इन्स्टीट्यूट के निदेशक डाक्टर हजारी सिंह हैं। उन्होंने पहली मुलाकात में ही निश्चय कर लिया था, फरवरी प्रथम सप्ताह के अन्त में इन्स्टीट्यूट के तत्वावधान में मुझे आधुनिक भारतीय साहित्य की मुख्य प्रवृत्तियों का परिचय देना होगा।

इस कार्यक्रम की सूचना स्थानीय पत्रों और रेडियो द्वारा प्रसारित हो चुकी थी। कुछ वर्ष से डाक्टर रामप्रकाश द्वीप में हिन्दी भाषा और साहित्य के शिक्षण में परामर्श और निर्देशन से सहायता कर रहे हैं। उनके गहरे अध्ययन और कर्मठता के कारण उनका आदर है। रामप्रकाश द्वीप में भारतीय लेखकों के आगमन से पूरा लाभ उठाने के लिये सतर्क रहते हैं। उनके अनुरोध से 'टीचर्स ट्रेनिंग कालिज' में और अन्य अवसरों पर भारतीय साहित्य के विषय में कुछ वार्ता और प्रश्नोत्तर हो चुके थे। उससे वे उत्साहित थे। उन अवसरों पर रामप्रकाश के सुझाव पर हिन्दी से अपरिचित श्रोताओं की सुविधा के विचार से बातचीत अंग्रेज़ी में हुई थी। उनकी राय थी इन्स्टीट्यूट की ओर से 'क्वीन एलिज़ाबेथ कॉलिज' हाल में आयोजित सभा में भी अंग्रेज़ी में ही बोलूं। इन्स्टीट्यूट के डायरेक्टर का आग्रह था—भारतीय साहित्य की प्रवृत्तियों के बारे में बातचीत का उचित माध्यम भारत की राष्ट्रभाषा हिन्दी होना चाहिये।

इस सभा में त्रिओले, प्लेन म ां, प्लेन द पपाया, गुडलैंड्स और बो शां की भांति भीड़-भब्बड़ और तमाशाइयों का जमघट न था। एलिज़ाबेथ कॉलिज का हाल, कॉलिज हाल के नाते खूब बड़ा है। वेदी के सामने लगभग चार सौ कुर्सियां। श्रोताओं की संख्या बढ़ने लगी तो अगल-बगल और पीछे कुर्सियां रखी जाने लगीं, जगह न रही तो कुछ लोग बाहर खिड़कियों के समीप खड़े हो गये थें। माइक से आवाज़ बाहर भी जा सकती थी। श्रोता अधिकांश में अध्यापक, पत्रकार, लेखक। भारत के उच्चायुक्त महामहिम कृष्णदयाल और पाकिस्तान के उच्चायुक्त महामहिम अनवर खां भी आये। मेरे कथन का संक्षेप हैं:

भारतीय और हिन्दी साहित्य की वर्तमान प्रवृत्तियों और समस्याओं के सम्बन्ध में आये दिन अनेक आलोचनात्मक और शोध पुस्तकें भारत में और कुछ निबन्ध विदेशों में भी प्रकाशित होते रहते हैं। उस व्यापक और विस्तृत प्रसंग पर कुछ मिनिट में बहुत संक्षिप्त रूपरेखा या संकेत ही सम्भव हैं। साहित्य की परिभाषाएं अनेक हो सकती हैं। बहुत सरल और व्यावहारिक परिभाषा हैं, साहित्य देश-काल के अनुसार समाज की

अवस्था, मान्यताओं, भावनाओं, समस्याओं और महत्त्वाकांक्षाओं का प्रतिबिम्ब देने वाला दर्पण होता है।

साहित्य के प्रसंग में समाज से अभिप्राय समाज के मुखर और निर्णायक वर्ग से होता है। संसार के सभी समाजों का अतीत और वर्तमान साहित्य इस तथ्य का गवाह है। प्राचीन भारतीय साहित्य भी तत्कालीन समाज की मान्यताओं और आदर्शों के प्रतिबिम्ब देने के और उनके समर्थन का यत्न था। सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक व्यवस्था की दृष्टि से वे आदर्श और मान्यताएं, दैवी इच्छा या न्याय द्वारा नियुक्त स्वामी और शासक वर्ग के नियम और आदेश थे, जिन्हें आज संक्षेप में राजसत्ता या सामन्ती सत्ता के दरबारी आदर्श और व्यवस्था कहा जा सकता है। उन मान्यताओं और आदर्शों में पारलौकिक विश्वासों के लक्ष्यों और आध्यात्मिक संतोष का भी बहुत महत्व था। पारलौकिक विश्वासों के लक्ष्यों और आध्यात्मिक संतोष की साधना सामान्य जन को जीवन की आवश्यकता पूर्ति के अवसर और साधनों के अभाव में विश्वास का संतोष दे सकती थी। आवश्यकताओं की पूर्ति से स्वामी वर्ग काव्य, कला और शास्त्र के विनोद से संतोष पाते थे। सामान्य जन के लिये कर्त्तव्य के धर्म की पूर्ति और भक्ति से परलोक मे स्वर्ग का फल और जन्मान्तर में सुख का विश्वास था। आज वर्तमान भारतीय साहित्य का रूप और तत्व बदल चुके हैं।

वर्तमान भारतीय साहित्य की भावना, प्रेरणा, मान्यताओं और आदर्शों के आन्तरिक परिचय के लिये भारतीय साहित्य में आने वाले परिवर्तनों के क्रम पर सरसरी नज़र सहायक हो सकती है। हमारे देश के विचारों और साहित्य में परिवर्तन की जरूरत की चेतना या नवजागरण का आरम्भ गत सदी के अन्तिम चौथाई भाग से हुआ है। इस जागरण में पश्चिम से सम्पर्क का, पश्चिम से कुचले जाने की अनुभूति का और पश्चिम की तुलना में अपने असामर्थ्य और निर्बलता की चेतना का उत्कट प्रभाव था। देश के जागरूक लोगों ने अपनी राष्ट्रीय निर्बलता, गुलामी और गरीबी के कारण, अपने जन समाज में अशिक्षा, आधुनिक ज्ञान में पिछड़ेपन और रूढ़ियों के अन्ध विश्वासों को समझा। गुलामी की जजीरों को तोड़ने के साहस के लिये अपनी जातीय और राष्ट्रीय हीन भावना को दूर करना जरूरी था। पुराने अन्ध-विश्वासों और रूढ़ियों से स्वतंत्र होने की प्रेरणा के आन्दोलन शुरू हुए। आन्दोलन का एक साधन होता है, छपी हुई बात या साहित्य। हमारे राष्ट्रीय जागरण की भावना हमारे साहित्य में भी आ गयी।

अंग्रेज़ों ने भारत पर कब्ज़ा करने के साथ ही अपने शासन की जड़ें गहरी जमा सकने के लिये, हमारे देश की प्रजा के दिमाग में यह बैठा देना चाहा कि अंग्रेज़ हिन्दुस्तानी की अपेक्षा बहुत ऊँची नस्ल का इंसान है, कुदरतन हाकिम और राजा है। यह देश प्राकृतिक रूप से और सदा से कमज़ोर और जाहिल है। यहाँ के निवासी सदा अकाल, अव्यवस्था और महामारी में तड़पते रहे हैं। अंग्रेज़ ने उन्हें बेहतर ज़िन्दगी और सभ्यता दी। हिन्दुस्तानियों का कल्याण अंग्रेज़ों के अधीन राजभक्त आज्ञाकारी प्रजा बने रहने में है।

उस युग का जागरूक भारतीय या साहित्यिक अपनी जनता को कहता था—अतीत में हम संसार के गुरु थे। जब दूसरे देश-समाज वन-मानुषों की हालत में थे, हमारा देश बहुत उन्नत था। अज्ञान, भ्रम से फूट में पड़कर हम अपना महत्व और सामर्थ्य भूल गये, व्यर्थ रूढ़ियों और जाति-भेद-भाव में फसकर असमर्थ हो गये। अपनी शक्ति पहचान कर हमें फिर अपनी सामर्थ्य, अधिकार और अवसर पाना है। इस प्रयोजन से हमारे प्राचीन इतिहास को आधुनिक नज़र से संवार कर, कभी-कभी अत्युक्तिपूर्ण ढग से भी उस समय के साहित्य में दिया जाने लगा। समाज को निर्वल बनाने वाली प्रथाओ—निरक्षरता, बाल विवाह, सती प्रथा, छुआछूत, जात-पात की कट्टरता को दूर कर समाज में समता और एकता की भावना के लिये प्रेरणा दी जाने लगी। यह साहित्य को देश के समाज की सामयिक आवश्यकताओं के अनुकूल बनाने का प्रयत्न था।

उस समय के भारतीय साहित्य में राजनैतिक स्वतन्त्रता की स्पष्ट ललकार के लिये अवसर न था। स्वतंत्रता की बात केवल मानवीय आदर्शों और कल्पना के रूप में कही जा सकती थी। नवजागरण का आरम्भ हुआ था देश के शिक्षित मध्य वर्ग में। उस समय इस वर्ग की राजनीति थी, विदेशी सरकार को राजभक्ति और वफादारी का आश्वासन देकर शासन में उदार सुधारों, प्रजा को शिक्षा और चिकित्सा की सुविधाओं और भारतीय शिक्षित लोगों के लिये सरकारी नौकरियों में अवसर की भिक्षा की माँग। आर्थिक क्षेत्र में भारतीय व्यवसायों और व्यापार के लिये जीवित रहने के अवसर की माँगें। किसान-मज़दूरों की अवस्था को असह्य न बना देने की माँगें। उस समय का भारतीय या हिन्दी साहित्य दूसरे देशों में स्वतन्त्रता के लिये संघर्षों की चर्चा करता था और व्यंजना से पिंजरे में बन्द तोते-मैना और बुलबुल की कैद के लिये सहानुभूति से स्वतंत्रता की इच्छा की आहें भरता था। व्यंजना और राष्ट्रीय दमन का विरोध किया जाता था—'हम आह भी भरते हैं तो हो जाते हैं बदनाम वो कत्ल भी करते हैं तो चर्चा नहीं होता।'

जनता को स्वतन्त्रता के योग्य बना सकने के लिये उन्हें कुसस्कारों को छोड़ने और समाज सुधार की प्रेरणा दी जाती थी। पहले महायुद्ध के अन्त तक आधुनिक शिक्षा ने और युद्ध के अनुभव ने हमारी जनता की आँखें खोलीं। जनता का साहस भी बढ़ा। विदेशी शासन के दमन की शिकायत के रूप में राष्ट्रीय स्वतंत्रता की अस्पष्ट आवाजें उठने लगीं परन्तु तब भी विदेशी शासन का आतंक प्रबल था, इसलिये साहित्य में यह आवाज़ व्यंजना के आवरण में ही उठ सकती थी। इस परिस्थिति ने हमारे साहित्य में लक्ष्य या प्रयोजन को अस्पष्ट (मिस्टिक ढंग) आवरण में और व्यंजना से कहने की छायावादी शैली को प्रोत्साहित किया। साहित्य में छायावाद (मिस्टिसिज्म) का सहारा लिया जाने का एक और जबरदस्त कारण था, साहित्यिकों के राजनीति में दखल से तत्कालीन सरकार की नाराज़गी। साहित्य मे यह छायावादी शैली केवल राजनैतिक भावना से ही नहीं पुरानी सामाजिक मान्यताओं और परम्परा की विवशताओं से वैयक्तिक और सामाजिक व्याकुलता की अभिव्यक्ति का भी माध्यम बनने लगी।

साक्षरता और शिक्षा के प्रसार से हमारे साहित्य का पाठक समुदाय बहुत बढ़ चुका था। पाठकों की अच्छी बड़ी संख्या निम्न मध्य वर्ग और अभावग्रस्त वर्गों मे भी हो गयी थी और उन वर्गों से कई लेखक भी हमारे साहित्य में आ गये थे। इस परिस्थिति का प्रभाव तत्कालीन साहित्य के तत्त्वों, शैली और भाषा पर पड़े बिना न रहा। भारतीय साहित्य उत्तरोत्तर सामान्य जन के वैयक्तिक और सामाजिक जीवन के यथार्थ और ठोस धरातल पर जमने लगा। इस तरह की रचनाओं के लिये आभिजात्य वर्ग की काल्पनिक उड़ानों, बहुत यत्न से अलंकृत बनावटी भाषा और छायावादी शैली की अपेक्षा, सामान्य जन के जीवन के चित्रण और उनकी समस्याओं के लिये स्पष्ट, यथार्थ का विश्वास देने वाली शैली और रोज़मर्रा की सरल परन्तु सबल भाषा ही अनुकूल थी। यह भारतीय साहित्य में यथार्थवादी युग का आरम्भ था। परिणाम में हमारे साहित्य में राष्ट्रीय स्वतन्त्रता की माँग ने स्पष्ट रूप ले लिया। उसके साथ ही सामान्य और शोषित वर्गों के आर्थिक शोषण-दमन के विरोध की आवाज़ भी उठने लगी। इस आवाज़ ने हमारे साहित्य में वर्ग चेतना का तत्त्व शामिल कर दिया। हमारे उस समय के साहित्य में राष्ट्रीय मुक्ति की प्रेरणा के साथ वर्ग संघर्ष की अभिव्यक्ति और प्रेरणा भी आ गयी। भारत के स्वतन्त्रता संघर्ष में भारतीय साहित्य ने बहुत बड़ी प्रेरक शक्ति का काम किया है।

विदेशी गुलामी और उसके साथ ही सदियों तक साम्प्रदायिक अन्धविश्वासों की जकड़ ने हमारे समाज में कुछ संस्कारों को बहुत गहरा जमा दिया था। विदेशी शासन हमारे अन्धविश्वासों, वहमों और कुसंस्कारों से हमारी जनता में फूट डाल कर हमारी आजादी की भावना और संघर्ष को तितर-बितर कर सकने के प्रयोजन से हमारे उन अन्धविश्वासों, वहमों और कुसंस्कारों को सदा बढ़ावा देने की कोशिश करता रहता था। हमारी बदकिस्मती से विदेशी शासन अपनी इस कूटनीति में सफल भी होता रहा। हमारी जनता के वे अंधविश्वास और संस्कार हमारे राष्ट्रीय स्वतन्त्रता संघर्ष के दौरान हमारी बहुत बड़ी कमजोरी बने रहे। भारत ने राष्ट्रीय स्वतन्त्रता पायी परन्तु उस संघर्ष में समूचा न रह सका, दो टुकड़े हो गया। उस टूटने या बंटवारे की यातना से और परिणाम से हमारी जनता के सामूहिक और वैयक्तिक जीवन के कई और पहलू और समस्याएं भी उजागर हो गईं। उन सब अनुभवों का भी हमारे वर्तमान साहित्य की प्रवृत्तियों पर गहरा प्रभाव पड़ा है।

विदेशी गुलामी या राष्ट्रीय पराधीनता के समय हमारे राष्ट्र या जनता को आत्मनिर्णय का अवसर न होने से अपने जीवन को बेहतर बना सकने की स्वतन्त्रता के सभी रास्ते बन्द थे। स्वतंत्रता का प्रयोजन या वास्तविक स्वतन्त्रता वैयक्तिक और सामूहिक जीवन को बेहतर बना सकने के अवसर और साधन ही होते हैं। राष्ट्र द्वारा आत्मनिर्णय के अधिकार और अवसर के रूप में स्वतंत्रता पा लेने पर हमारी जनता के सामने वास्तविक स्वतंत्रता का लक्ष्य है। मनुष्य समाज की वास्तविक स्वतंत्रता का अर्थ है, जनगण को जीवन रक्षा और विकास के पूरे अवसर और साधन मिल सकना, बेरोज़गारी और उसके आतंक से मुक्ति। अपनी मेहनत का पूरा फल पा सकने की स्वतन्त्रता। अच्छे

स्वास्थ्य और चिकित्सा के अवसर और साधन, यथा सामर्थ्य और यथेष्ट शिक्षा के अवसर और साधन। नर-नारी को मानसिक और शारीरिक प्रवृत्तियों प्रेम, विनोद, विश्राम के अवसर और साधनों की स्वतंत्रता। जनता को ऐसी सब स्वतंत्रता दे सकने वाली राजनैतिक, आर्थिक और सामाजिक व्यवस्था का लक्ष्य ऐसा समाज है जिसमें अवसरों और साधनों की दृष्टि से मालिक और सेवक के वर्ग भेद न हों, अवसरों और साधनों की समता हो, प्रत्येक व्यक्ति को अपनी मेहनत का फल पाने का पूरा हक और मौका हो, दूसरे की मेहनत का फल हड़प सकने का अवसर और साधन किसी को न हो। जिस समाज की योजनाएं, नैतिकता, न्याय, शिक्षा लोकायत (सेक्यूलर) दृष्टिकोण और लक्ष्यों से हो, जिस समाज में सम्पूर्ण जनता को विचार, अभिव्यक्ति के माध्यमों और अपनी मान्यताओं के अनुसार आचरण-व्यवहार की पूरी स्वतंत्रता हो परन्तु दूसरों की स्वतंत्रता में रुकावट बनने का अवसर न हो। हम अपने इस राष्ट्रीय लक्ष्य को एक वाक्य में कह सकते हैं—जनतांत्रिक साधनों की दृष्टि से आर्थिक वर्गभेद हीन, लोकायत व्यवस्था का समस्तर समाज।

वर्तमान भारतीय साहित्य, व्यक्ति और समाज के जीवन के सभी पहलुओं और आयामों में हमारी जनता की ऐसी भावनाओं और महत्त्वाकांक्षाओं की कलात्मक अभिव्यक्ति है। हमारे वर्तमान साहित्य में उस लक्ष्य को न पा सकने से असंतोष की व्याकुलता है और उसे पा सकने के अदम्य संघर्ष की हुङ्कार भी है। मुझे यह कह सकने में संकोच नहीं कि हमारे वर्तमान साहित्य की मुख्य ध्वनियां अपनी स्थिति से असंतोष, व्याकुलता और अपनी कठिनाइयों को दूर करने के संघर्ष की ललकारें हैं।

कुछ लोगों को विस्मय हो सकता है कि राष्ट्रीय स्वतंत्रता के पच्चीस वर्ष बाद भी भारतीय साहित्य में असंतुष्ट जीवन की व्याकुलता और जीवन के अवसरों के लिये ललकार की ही प्रधानता है। क्या भारत ने पच्चीस बरस में कुछ भी नहीं किया? हमने बहुत कुछ किया है। बहुत से क्षेत्रों में हमने उत्पादन को बहुत अधिक बढ़ा लिया है। अनेक विषमताओं को कानूनन अपराध करार दे दिया है। सर्वसाधारण जनता का जीवन-स्तर पूर्वापेक्षा। जरूर कुछ बेहतर है। कुछ क्षेत्रों में हम पूर्णतः आत्मनिर्भर हो सके हैं और कुछ क्षेत्रों में अस्सी प्रतिशत आत्मनिर्भर हो गये हैं। आत्मरक्षा के सामर्थ्य की दृष्टि से हमें एक बलवान सैनिक शक्ति माना जाने लगा है जैसा कि नौ-दस बरस पूर्व तक नहीं माना जाता था परन्तु भारत का आदर्श महान सैनिक शक्ति बन जाना ही नहीं है। वह हमारे लिये आत्मरक्षा की मजबूरी है। हमारी जनता की भावना और महत्त्वाकांक्षा लोकायत दृष्टि से सम-अवसर-साधन समाज की है जिसमें मानवी जीवन के सुधार और विकास का अबाध अवसर हो। शायद आप सोच रहे हों, मैं वर्तमान भारतीय साहित्य और कला की प्रवृत्तियों के बजाये भारतीय जनता की राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक भावनाओं और महत्त्वाकांक्षाओं की चर्चा कर रहा हूँ। साहित्य की प्रवृत्तियां साहित्य को नहीं खोजतीं, जीवन के अवसर को खोजती हैं। साहित्य की प्रवृत्ति का सही परिचय उसकी दिशा और लक्ष्य का परिचय है।

सवाल हो सकता है कि भारतीय साहित्यिक अपनी रचनाओं में केवल जनता के अभाव और कठिनाइयों को ही दिखाना चाहता है, उन समस्याओं के हल या समाधान बताने की कोशिश क्यों नहीं करता? हम साहित्य को समाज का दर्पण मानते हैं। हम-आप जब आइने के जरिये अपने चेहरे या लिबास में कोई ऐब देखते हैं तो कुदरतन उसे दूर करने का यत्न हो जाता है। अपनी रचना में सामाजिक और वैयक्तिक समस्याओं के लिखने का प्रयोजन ही होता है, उन समस्याओं के समाधान के लिये समाज को सचेत करना और प्रेरणा देना। सामाजिक समस्याएं लेखक के वैयक्तिक प्रयत्न से नहीं, सामूहिक प्रयत्न से ही हल हो सकती हैं, लेखक केवल चेतना और प्रेरणा दे सकता है।

वर्तमान भारतीय साहित्य की रुझानों का परिचय, संक्षेप के लिये मजबूरी से जिन शब्दों में जिस ढंग से दिया है, शायद यह समझ लिया जायेगा कि वर्तमान भारतीय साहित्य, राजनैतिक, आर्थिक और सामाजिक असन्तोष प्रकट करने का और ऐसी माँगों का बहुत बड़ा आन्दोलन या मोर्चा ही है। उसमें कला, रस या सौन्दर्य की कोई चिन्ता या साधना नहीं है। ऐसा खयाल सही नहीं होगा। साहित्य का गुण और प्रयोजन मनुष्य समाज की मधुर और कटु अनुभूतियों, भावनाओं और महत्त्वाकांक्षाओं की सरस कलात्मक अभिव्यक्ति देना है। लेखक का प्रयत्न यदि पाठक में अपने कथ्य के प्रति रागात्मक और रसात्मक अनुभूति जगा देने में असमर्थ रहे तो वह रिपोर्ट या लेखा मात्र होगा, साहित्य नहीं। इस कसौटी पर वर्तमान भारतीय साहित्य पिछड़ा नहीं है। उसने बहुत उन्नति और विकास किया है।

शायद पूछा जाये हिन्दी में आज कौन कवि या लेखक तुलसी, रवि ठाकुर, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, बंकिम, शरत या प्रेमचन्द के स्तर पर पहुँचता है। निःसंकोच कहा जा सकता है, आज के भारतीय कहानी-उपन्यास कला और विषय-वस्तु की दृष्टि से बंकिम, रवीन्द्र, शरत और प्रेमचन्द से बहुत आगे बढ़ गया है। किसी भी देश-काल का साहित्य एक-दो व्यक्तियों से नहीं परखा जा सकता। आज अंग्रेज़ी में शेक्सपियर के बराबर या उस स्तर का कोई साहित्यिक नहीं है परन्तु वर्तमान अंग्रेज़ी साहित्य शेक्सपियर के समय से बहुत आगे और अधिक प्राणवान है। वही बात भारतीय साहित्य के लिये है। परिमाण में भी हमारे साहित्यिक विकास की गति पूर्वापेक्षा बहुत अधिक है। बीस वर्ष पहले तक हमारे यहाँ किसी उपन्यास की दो हजार प्रतियां ही प्रकाशित होती थीं। उसके बाद शायद दो या तीन संस्करण हो सकते थे। अब यह संख्या बीस गुना है। प्रकाशनों की संख्या पूर्वापेक्षा पच्चीस-तीस गुना अधिक हो चुकी है। भारतीय साहित्य के बारे में मेरी बात को अपने मुँह मियाँ मिट्ठू बनना नहीं समझा जाना चाहिये। आज बहुत सी विदेशी भाषायें हमारी आधुनिक रचनाओं का अनुवाद उत्सुकता से और उत्तरोत्तर अधिक कर रही हैं।

सांस के कष्ट के कारण सभा-गोष्ठी में अपनी बात प्रायः बीस-पच्चीस मिनिट में समाप्त कर देता हूँ। उस समय श्रोताओं की अपलक उत्सुकता से उत्साहित होकर पैंतालीस मिनट बोल गया। सांस फूलने लगा। प्रसंग समाप्ति के लिये कहा:—

इस समय इतना ही कह सकूंगा। मुझे आशंका है कि बहुत कुछ कह गया हूँ परन्तु शायद श्रोताओं को कुछ और ही जिज्ञासाएं रही हों। यदि कुछ प्रश्न हैं तो सामर्थ्य भर उत्तर देने का यत्न कर सकता हूँ।

इन्स्टीट्यूट के डाइरेक्टर हजारी सिंह ने और सभाध्यक्ष बखोरी ने आरम्भ में ही आश्वासन दे दिया था कि अन्त में कुछ प्रश्नों का उत्तर देने का यत्न करूंगा।

मेरे कथन पर सबसे पहले शास्त्रीय (पिडेन्टिक) प्रश्न या आपत्ति हुई—आपने साहित्य की परिभाषा में उसे समाज का दर्पण कहा है। यह साहित्य का लक्षण माना जायेगा, परिभाषा नहीं।

स्वीकार किया—शायद अध्यापक या परीक्षा की तैयारी करने वाले विद्यार्थी की नज़र से आपकी आपत्ति सही हो सकती है परन्तु व्यावहारिक प्रयोजन के लिये परिभाषा का पर्याय या समानार्थक होगा—'डेफीनीशन' या पहचान। शायद आप मानेंगे कि लक्षण या समानार्थक भी डेफीनीशन या पहचान ही होगा। इस स्थिति में मेरी बात में उलझन या भटकाव का कोई कारण नहीं जान पड़ता।

दूसरा प्रश्न था—साहित्य में सेक्स (नर-नारी सम्बन्ध) समस्या और उसके चित्रण का क्या स्थान और उपयोग है और ऐसी समस्याओं और ऐसे पहलू के चित्रणों को साहित्य में कितना महत्त्व और स्थान दिया जाना चाहिये?

साहित्य को समाज का दर्पण या लेखा-जोखा माना जाय तो उसमें सेक्स का वही अनुपात या स्थान होगा जो स्थान सेक्स का व्यक्ति और समाज के जीवन में है। सेक्स समाज का उद्गम और उसके क्रम का सहारा है। समाज सेक्स के बिना नहीं चल सकता तो साहित्य सेक्स के बिना कैसे चलेगा? साहित्य में सेक्स के अनुपात और तरीके का प्रश्न ज़रूर महत्त्वपूर्ण है। जैसे जीवन में सेक्स की परिणति के लिये बहुत कुछ आवश्यक होता है वैसे ही साहित्य में भी सेक्स, परिस्थितियों के अनुकूल प्रसंग से देना उचित है। सेक्स का संतोष सेक्स के सुरुचि और सौन्दर्य से सम्पन्न होने से ही होता है। साहित्य में भी सेक्स उसी तरह सावधानी, सुरुचि और कलात्मक संयम से सौन्दर्य की तृप्ति और संतोष दे सकता है जैसे वह समाज में और व्यक्ति के यथार्थ जीवन में देता है। सेक्स आदर और आकर्षण की चरम सीमा होता है और सेक्स को अति घृणा और अपमान की अभिव्यक्ति का माध्यम भी बनाया जा सकता है। सेक्स का प्रयोग और प्रसंग, सेक्स के बारे में समाज और व्यक्ति के सांस्कृतिक स्तर, उनकी कलात्मक सूक्ष्म समझ और सामर्थ्य के अनुकूल होगा। सेक्स समाज और साहित्य दोनों के लिये अनिवार्य है परन्तु सेक्स प्रसंग से संतोष के लिये सुरुचि और सावधानी भी अनिवार्य है वर्ना सेक्स अरुचि का कारण और वीभत्स बन जायेगा।

तीसरा प्रश्न—वर्तमान भारतीय और हिन्दी साहित्य में निम्न स्तर की उच्छृङ्खल सेक्स कहानियों-उपन्यासों की बाढ़ आ गयी है, वह किस सामाजिक चेतना या प्रगति की प्रेरणा है? उसकी रोक-थाम आवश्यक है या नहीं?

यह बात सही है कि अन्य देशों की भाषाओं की तरह भारतीय भाषाओं और हिन्दी में भी सस्ते निम्न स्तर के सेक्स साहित्य से मनोरंजन का बाज़ार बढ़ रहा है। विकसित देशों की भाषाओं में, हमारी दृष्टि से बहुत अधिक उच्छृङ्खल साहित्य की बाढ़ हमारे यहाँ सें कहीं अधिक है। यहाँ तक कि भारतीय सरकार को और मौरिशस की सरकार को भी, विकसित देशों के ऐसे साहित्य को अपने देश में आने पर रोक-धाम लगानी पड़ी है परन्तु ऐसी रोक-थाम ऐसे साहित्य को रोक नहीं सकेगी। ऐसे सेक्स साहित्य की माँग होने पर वह हमारे देशों में ही तैयार होने लगा है और तैयार होता जायेगा। खुले बाज़ार में उसकी विक्री रोकी जायेगी तो ऐसा साहित्य चोरी से बिकेगा। कुछ समाजवादी देशों में ऐसी ही स्थिति है। इस प्रश्न को दो भागों में बांट सकते हैं—पहला सवाल—ऐसे सेक्स साहित्य को उच्छृङ्खल या आपत्तिजनक माना जाये या नहीं। दूसरा सवाल—ऐसे साहित्य की माँग के क्या कारण हैं?

किसी भी व्यवहार या साहित्य को देश-काल की मान्यताओं और संस्कारों के अनुसार ही उच्छृङ्खल या आपत्तिजनक कहा जायेगा। पश्चिमी देशों और समाजों के बैले और बाल-नाच और भारत के भरत-नाट्यम और कत्थक-नृत्यों का सभ्य संसार में आदर है, वे ऊंची कला माने जाते हैं, जिन्हें सीखने के लिये लोग विदेशों से भी आते हैं। नारी को पर्दे में रखने की नैतिकता में आस्था रखने वाला समाज ऐसी कला को उच्छृङ्खलता और आपत्तिजनक मानेगा। इस तरह के और भी उदाहरण दिये जा सकते हैं, पति-पत्नी का हाट-बाज़ार में बांह में बांह डाले चलना या परस्पर प्रेम-आदर प्रकट करने के बारे में भिन्न मान्यतायें हो सकती हैं। एक समाज में अभ्यागत नारी के प्रति आदर प्रकट करने के लिये उसे गाल या माथे पर चूमा जाता है। दूसरे समाज में नारी अपना चेहरा छिपाये रहती है। यदि सेक्स सम्बन्धी मान्यतायें समाज की परिस्थितियों और जरूरतों के अनुकूल होती है या बदलती हैं तो जिस सेक्स साहित्य को हम उच्छृङ्खल और आपत्तिजनक कह रहे हैं वह दूसरी नज़र से उच्छृङ्खल और आपत्तिजनक न मालूम हो, शायद उसकी जरूरत भी मान ली जाये।

दूसरा सवाल है कि सेक्स साहित्य की माँग बढ क्यों रही है? एक कारण है, सेक्स सम्बन्धी और उनकी तृप्ति की परिस्थितियों में परिवर्तन। चालीस-पचास साल पहले तक नारी का मुख्य काम था, सेक्स सम्बन्धों की स्थिरता की परिस्थिति बनाये रखना और उस सम्बन्ध के परिणाम सन्तानों को संभालना। अब स्त्रियों की बड़ी संख्या आर्थिक आत्मनिर्भरता के सहारे और पूवपिक्षा भिन्न जीवन की इच्छा से पहले जैसी हालत में नहीं रहना चाहतीं और ऐसी नारियों की संख्या बढ़ती जा रही है। ऐसा परिवर्तन केवल नारी की ही इच्छा से नहीं आया। अधिकांश पुरुष भी नये ढंग के जीवन की इच्छा और जीवन के स्तर के साथ आवश्यकताओं के बढ़ जाने से पुराने ढंग के गृहस्थ और सन्तानों का सिलसिला नहीं चाहते। सभी देशों में बहुसंख्या ऐसे ही सीमित साधन लोगों की है, जिन्हें सेक्स की जरूरत तो है परन्तु उनके लिये सेक्स सम्बन्धों का प्रयोजन बदल गया है या जो सेक्स की जिम्मेवारियों और फल से बचे रहना चाहते हैं। ऐसे लोग किसी हद तक

सेक्स साहित्य और सेक्स फिल्मों से भी अपनी सेक्स प्रवृत्ति को मानसिक रूप से पूरा करने का या उस प्रवृत्ति को बहला लेने का यत्न करते हैं। इसी कारण बाज़ार में ऐसे साहित्य की माँग बढ़ रही है। जो माँग समाज की परिस्थितियों की जरूरतों से पैदा हो रही है, उसे पूरा करने वाले लेखक को कैसे दोष दिया जाये?

कहा जा सकता है कि समाज के प्रति उत्तरदायित्व की भावना से लेखक को सामयिक बहाव में न बहकर समाज कल्याण के विचार से नैतिकता और सुरुचि की रक्षा करना चाहिये। सिद्धान्ततः यह सलाह ठीक हो सकती है परन्तु सवाल है, क्या आज सेक्स साहित्य की माँग पूरा करना समाज के लिये हानिकारक है? समाज का हित किस बात में है? समाज के लिये सबसे बड़ा खतरा क्या है? इन सवालों से और सवाल उठ जाते हैं। संसार के बहुत से ज्ञानी समाजशास्त्री और वैज्ञानिक चेतावनी दे रहे हैं कि आज संसार को एटमबमों के विस्फोट की अपेक्षा जनसंख्या के विस्फोट से कहीं बड़ा खतरा है। हमारा देश और मौरिशस भी जनसंख्या की बढ़ती से व्याकुल हैं। भारत में आबादी की तेज बढ़ती ने उत्पादन की हमारी सराहनीय सफलताओं को निरर्थक कर दिया है। भारत की बात क्या, अमरीका की आबादी भारत से एक तिहाई है और धरती भारत से तीन गुना। उनके अन्य साधन भारत की अपेक्षा कहीं ज्यादा हैं लेकिन अमरीका भी अपनी आबादी में बढ़ती की रफ्तार से परेशान है। आज संसार के सभी देशों की सरकारें अपने भविष्य के विचार से जनसंख्या की बढ़ती रोकने की कोशिश कर रही हैं।

आबादी की बढ़ती के खतरे को मानव-समाज ने स्वयं अपने विकास की कोशिशों और चिकित्सा विज्ञान की सफलताओं से पैदा किया है। हमारे चिकित्सा विज्ञान ने समाज में मृत्यु संख्या को बहुत कम कर दिया है। यह सही है कि विज्ञान ने अब जन्म संख्या को काबू में रखने के तरीके भी खोज लिये हैं। सर्वसाधारण ने बीमारी और मौत से बचने के तरीकों को जल्दी अपना लिया परन्तु अपनी पुरानी मान्यताओं और संस्कारों के कारण सन्तान निरोध के तरीकों को जल्दी नहीं अपना रहे हैं। परन्तु इस आवश्यकता को अनुभव करके सभी देशों में सन्तान निरोध का प्रचार किया जा रहा है। भारत की जनता को समझाया जाता है—अपनी सेक्स प्रवृत्ति को इस तरह पूरा करो कि सन्तान का खतरा सिर पर न आये। इस बात पर ध्यान दीजिये कि कोई सरकार यह नहीं कहती कि सेक्स की जरूरत को पूरा न करो! ऐसी बात गाँधीजी कहते थे। हजारों साल से दूसरे संत भी कहते रहे परन्तु संयम के उपदेश निष्फल रहे। दुनिया जानती है, मनुष्य की सेक्स प्रवृत्ति के दमन से काम नहीं चलेगा। दमन से वह और भी खतरनाक रास्ते ले सकती है। समाज की रक्षा केवल सेक्स तृप्ति को निष्फल बना सकने में या सेक्स प्रवृत्ति को दूसरे तरीके से बहला सकने में है। सस्ता सेक्स साहित्य दिल बहलाव और मनोरंजन के दूसरे साधनों की तरह साक्षर मनुष्यों की सेक्स प्रवृत्ति को बहला सकने का कारगर साधन है इसलिये वर्तमान परिस्थिति में समाज में एक स्तर के लोगों के लिये ऐसा साहित्य आवश्यक है और अन्ततः समाज के लिये कल्याणकारी। यह जरूरी है कि ऐसे साहित्य में भी सुरुचि और कलात्मकता का ध्यान रखा जाये। ऐसे साहित्य के स्तर को सुधारने का

उपाय सामान्य जन के सांस्कृतिक स्तर का सुधार ही हो सकता है। ऐसे साहित्य का दमन नहीं।

पाकिस्तान के उच्चायुक्त महामहिम अनवर खां ने प्रश्न किया—क्या पूरे वर्तमान भारतीय और हिन्दी साहित्य में सिर्फ इगेलिटेरियन सोसाइटी और सेक्यूलर नज़रिये (वर्गहीन सम-स्तर समाज और लोकायत दृष्टिकोण) के लिये ही रुझान और प्रेरणा है, दूसरी प्रवृत्तियां नहीं है?

उत्तर दिया—मेरा यह मतलब नहीं था कि वर्तमान भारतीय साहित्य में केवल एक ही प्रवृत्ति या प्रेरणा के लिये प्रयत्न है। भारत में लेखकों का रेजीमेंटेशन या लेखकों को आदेश और निर्देश में रचना करने की स्थिति या मजबूरी नहीं है। सभी लेखकों की रुचि, समझ और मान्यताएं एक सी हो जाना भी असम्भव है। खोज करने पर आधुनिक प्रकाशनों में बहुत प्रतिक्रियावादी, (रिएक्शनरी) अतीत की मान्यताओं को फिर जमाने के स्वप्न देखने वाली रचनाएं भी मिल सकेंगी परन्तु वे इतनी कम हैं कि उनकी चर्चा नहीं होती। मेरा अभिप्राय है कि हमारे साहित्य की मुख्य और व्यापक प्रवृत्ति और प्रेरणा सामाजिक और राष्ट्रीय स्तर पर लोकायत (सेक्यूलर) दृष्टिकोण से वर्ग-भेद हीन, सम-अवसर, राष्ट्रीय अधिकार के समाज की व्यवस्था के लिये है।

एक और प्रश्न—वर्तमान भारतीय या हिन्दी लेखक अपनी परम्परागत भारतीय संस्कृति की रक्षा के लिये क्या प्रेरणा देता है?

उत्तर—संस्कृति का प्रयोजन निरतर परिमार्जन द्वारा व्यक्ति और समाज को उत्तरोत्तर विकास और सुधार में सहायता देकर अधिक समर्थ, सन्तुष्ट बनाना है। भारतीय लेखक जानता है कि समाज की संस्कृति की जड़ें समाज के ज्ञान में रहती हैं। मनुष्य समाज के ज्ञान को समाज की भौगोलिक सीमाओं से सीमित कर देना या जकड़ देना उचित नहीं माना जायेगा। ऐसी हालत में समाज की संस्कृति को भौगोलिक या राष्ट्रीय सीमाओं से बांध देना कैसे उचित कहा जायेगा? भारतीय संस्कृति का अर्थ भारतीय समाज के कई सौ बरस पूर्व के ज्ञान की सीमायें और पुराने रिवाज़ और तरीके ही नहीं हैं। दातून से दांत मांजना, मिट्टी से हाथ धोना, जात-पात की मान्यताएं या बैलगाड़ी की सवारी ही भारतीय संस्कृति नहीं है। जीविका उपार्जन के ढंग, वेश, रिवाज़ वगैरा मनुष्य समाज के ज्ञान और बदलती आवश्यकताओं के अनुकूल बनते बदलते हैं। विकासशील संस्कृतियां नदियों की तरह होती हैं जो न केवल अपने लिये अनुकूल रास्तों से बहती हैं बल्कि अपने लिये रास्ते भी बनाती हैं। नदियों में नित्य नया पानी आता रहता है परन्तु नदी का नाम अस्तित्व बना रहता है। भारतीय संस्कृति का अर्थ केवल पुराने भारत के रस्म-रिवाज़ नहीं, हमारे समाज की उदार चिन्मयता है। जिसका अर्थ है, स्वतंत्र चिंतन और निरंतर चिन्तन—विश्लेषण की प्रेरणा विभिन्न दृष्टिकोणों और विचार-धाराओं में सहिष्णुता, सह-अस्तित्व, संतुलन और समन्वय। कोई भी विकासशील संस्कृति नये ज्ञान और उसके अनुकूल विश्वास और मान्यताओं में संशोधन की आवश्यकता से इन्कार नहीं कर सकती। सूक्ष्म अन्तर चेतना, अबाध मुक्त चिंतन और लोकायत बुद्धि का संतुलन और

समन्वय ही सब संस्कृतियों और भारतीय संस्कृति का मूल है। भारतीय लेखक उसी को श्रेय संस्कृति मानता है, पुराने रस्मो-रिवाज़ के लिये जिद्द को नहीं।

साम्प्रदायिक राजनीति

श्रमिक संघ के जनरल सेक्रेटरी, द्वीप के प्रमुख मज़दूर नेता श्री बद्री की चर्चा पहले भी कर चुका हूँ। द्वीप में पहुँचते ही उनसे परिचय हो गया था। प्लेन मायां समाज कल्याण केन्द्र में उनकी समिति की ओर से ही निमंत्रण था। मौरिशस-सोवियत मैत्री संघ की बैठक में तथा अन्य अवसरों पर भी भेंट हो चुकी थी। श्रमिक संघ की समिति के दफ्तर में फरवरी के प्रथम सप्ताह के अंत में डिनर पूर्व निश्चित था।

द्वीप में संयुक्त दलों की सरकार है। विधान सभा के मज़दूर दल का बहुमत है। प्रधानमंत्री रामगुलाम, योजना मंत्री खेर जगत सिंह और दूसरे कई मंत्री मज़दूर दल के पुराने सदस्य और कार्यकर्त्ता हैं। बद्री भाई भी मज़दूर दल के पुराने कार्यकर्त्ता, विधान सभा के सदस्य और द्वीप के प्रमुख कम्युनिस्ट नेता हैं। अन्तर्राष्ट्रीय मज़दूर संगठन से भी उनका सम्बन्ध है। देश-विदेश के श्रमिक आन्दोलनों मे परिचित हैं, कर्मठ व्यक्ति। भारत में सन् १९७२ के चुनावों के समय देश के मज़दूर वर्ग का समर्थन पाने के लिये कांग्रेस (शासक दल) ने बद्री भाई को भारत में भी बुलाया था। इस डिनर मे भीड़ भब्बड़ न था। गिने-चुने आमंत्रितों में भारतीय उच्चायोग के प्रथम सचिव राय, सोवियत दूतावास के प्रथम सचिव दोरोनित्सिन भी थे।

मैं जानना चाहता था, मौरिशस के मज़दूर दल को द्वीप के विभिन्न समाजों की जनता का कैसा सहयोग मिल रहा है।

बद्री महाशय ने संगठन के विषय में विस्तार से बताया—अंतिम स्पष्ट बात थी—मज़दूरों की समस्याएं मुख्यतः जीवन निर्वाह की या आर्थिक होती हैं परन्तु आर्थिक समस्याओं के सुलझाव के लिये राजनैतिक प्रभाव या शक्ति भी जरूरी होती है। हम द्वीप की राजनीति से निरपेक्ष नहीं रह सकते। दल के नियमानुसार सभी मौरिशसवासी वर्ण, नस्ल और साम्प्रदायिक भेद के विचार के बिना मज़दूर दल के सदस्य हो सकते हैं हमारा दल एक राजनैतिक संगठन भी है। हम दूसरे राजनैतिक दलों से सम्बद्ध लोगों को अपने दल में नहीं लेते। हमारे दल में हिन्दू, तमिल, कलर्ड-कैथोलिक (क्रिओल) और कुछ चीनी भी हैं परन्तु हमारे दल में मुस्लिम नहीं हैं। कारण है कि यहाँ के मुसलमानों ने अपना पृथक साम्प्रदायिक राजनैतिक दल बनाया है। जो लोग आर्थिक और राजनैतिक प्रश्न को साम्प्रदायिक दृष्टिकोण से देखते हैं, उन प्रश्नों को पृथक साम्प्रदायिक समाज के रूप में हल करना चाहते हैं, उनसे हमें सदा खतरा है। हम मज़दूरों या प्रजा की आर्थिक-राजनैतिक समस्याओं को मौरिशसी के रूप में देखते हैं। अपने संगठन और कार्यक्रम को बिल्कुल सेक्यूलर रखना चाहते हैं, उसमें कोई साम्प्रदायिक दृष्टिकोण, लक्ष्य या साम्प्रदायिक विश्वास का प्रश्न नहीं आने देना चाहते। जो लोग ऐसे प्रश्नों को साम्प्रदायिक

दृष्टि से देखते हैं, उस आधार पर सहयोग चाहते हैं वे हमारे संगठन में या अलग संगठन या गुट्ट बनाकर हमारे लिये फूट का संकट पैदा कर देंगे।

दौरोनित्तिन ने समझाना चाहा—मज़दूर मात्र एक वर्ग है और उनके हित एक हैं। मज़दूरों में साम्प्रदायिकता के नाम पर भेद और फूट का कारण साम्राज्यवादी ब्रिटिश, फ्रेंच और अमरीकन पूँजीपतियों की कूटनीति का प्रभाव है। द्वीप के सभी मज़दूरों को एक झंडे के नीचे, एक संगठन में लाना ज़रूरी हैं।

साम्राज्यवादियों और पूँजीपतियों से मज़दूरों में फूट डालने की आशंका सदा रहेगी—बद्री ने स्वीकारा। जो लोग उनके बहकावे में आने के लिये तैयार हों उनका हमें क्या भरोसा? वे हमारे दल में सम्मिलित होकर बहक जायें तो हमारे लिये संकट बन जायेंगे। जान-बूझकर ऐसा खतरा क्यों लिया जाये?

बद्री महाशय को यह बहस उपयोगी न लग रही थी। मैं कहे बिना न रह सका—समाज की आर्थिक-राजनैतिक समस्याओं को साम्प्रदायिक या पारलौकिक कार्यक्रमों से हल नहीं किया जा सकता, न ऐसी समस्याओं और कार्यक्रमों के लिये साम्प्रदायिक संगठनों की कोई संगति हो सकती है। हमारा देश राजनैतिक और आर्थिक समस्याओं के हल के लिये साम्प्रदायिक आधार के संगठनों के संघर्षों से अनेक बार लक्ष्य भ्रष्ट होने के अनुभव पा चुका है। साम्प्रदायिकता को अपने संगठन से दूर रखने के लिये मौरिशस के मज़दूर दल की सावधानी सर्वथा उचित है। मेरी सहमति से बद्री महाशय ने संतोष अनुभव किया।

गिने चुने उपस्थितों में युगांडा से आये एक भारतीय दम्पति भी थे। सुज्जन ने अपना पेशा डाक्टर बताया। दम्पति के चेहरों पर उदासी का भारीपन था या ह्विस्की का तनाव; सन्देह ही रहा। ह्विस्की के घूंटों से गले का अवरोध दूर कर युगांडा में भारतीयों पर भयंकर अत्याचार की चर्चा भीगे स्वर में सुना रहे थे। उन्हें भरा-पूरा मकान और बैंक में बड़ी रकम छोड़कर अपनी जान बचाकर भाग आना पड़ा था।

राय और नन्दलाल के प्रश्नों से बात चल रही थी—डाक्टर ने युगांडा में अपनी औसत आय चार हजार पौंड मासिक (औसतन सत्तर-बहत्तर हजार रुपये) बतायी। डाक्टर की आयु के विचार से सन्देह हुआ ह्विस्की बोल रही हैं। आय युगांडा से बाहर भेजने का प्रतिबन्ध लग जाने के बाद से आमदनी का चौथाई भी बाहर भेजना कठिन हो गया था। उनका परिवार तीन पीढ़ी से युगांडा में था। डाक्टर अपनी आय इंगलैंड के बैंक में जमा कर रहे थे। इगलैड में पांच-छः लाख पाउण्ड जमा बताया। गनीमत कि स्थिति बिगड़ने की आशंका से पत्नी और बच्चों को कुछ माह पूर्व मौरिशस भेज चुके थे। पत्नी ने केरपिप में आइस्क्रीम का एक छोटा-मोटा धंधा सवा लाख रुपये में खरीद लिया था। डाक्टर ने गहरी सांस से संतोष प्रकट किया। मौरिशस में भारतीय सुरक्षित हैं, मौरिशस में बस जाने का विचार भी प्रकट किया।

मौरिशस में भारतीय सुरक्षित हैं क्योंकि मौरिशस उनका अपना देश है। नन्दलाल बोले—यहाँ भारतीय मौरिशस को लूट कर धन बाहर भेजने के लिये नहीं रहते। जो लोग

किसी देश में तीन-तीन पीढ़ी तक विदेशी बने रहें, अपनी आय बाहर भेजते रहें, उन्हें देश की नागरिकता का क्या दावा? युगांडा की तरह लूटते रहना मौरिशस को भी मंजूर नहीं होगा।

बद्री महाशय ने बात संभाली—इस द्वीप में बसने या निश्चित अवधि तक रहने के लिये भी कुछ कायदे-कानूनों के अनुसार अनुमति लेना जरूरी होता है।

सतरंगी धरती

शामरेल देखने के लिये पहले दो बार चले थे। दोनों बार आधे रास्ते पहुँचते तक इतनी वर्षा, जैसे सामने सड़क पर पानी की दीवार। आगे कुछ देख सकना असम्भव। ऐसी स्थिति में गाड़ी कैसे बढ़ती। उस सड़क पर बहुत मोड़ और घुमाव भी हैं। वैसी वर्षा में मंज़िल पर पहुँच कर भी देख क्या पाते? बेबसी में लौटकर आराम कुर्सी पर टेलीविज़न फिल्म देखते बातचीत में समय गुजारने की मजबूरी। इधर बरसों से फिल्म देखने के लिये सिनेमा तक जाने का उत्साह नहीं होता। मौरिशस के टी० वी० पर कई भारतीय फिल्में देख लीं। टेलीविज़न पर ही हज (मक्का का तीर्थ यात्रा) का सवाब (पुण्य) न सही परिचय पा लिया।

नन्दलाल का आग्रह था शामरेल देखना ही चाहिये। तीसरी बार मौरिशस की प्रकृति ने लिहाज़ किया। शामरेल पहाड़ी के ऊपर घनी हरियावल से घिरा रंगीन बजरी-कंकड़ का दो-ढाई फर्लांग का विस्तार है। उसमें अनेक रंगों की मिट्टी या बजरी की मेड़ें या कहिये माटी-बजरी के इन्द्रधनुषों का मैदान। स्थानीय बोलचाल में इसे इन्द्रधनुषी खेत या मैदान ही कहा जाता है। वास्तव में शामरेल लाखों वर्ष पूर्व सागर में हुए ज्वालामुखी विस्फोट का अवशेष या स्मृति है। भूगर्भ वैज्ञानिकों के अनुसार सम्भवत: द्वीप उसी विस्फोट की देन है। मिट्टी के इन इन्द्रधनुषों में आकाशी इन्द्रधनुषों की वायवीय उजली कोमल आभा नहीं; ठोस परन्तु रंगीन धरातल का आभास है। रंगों का वैचित्र्य विस्मय-जनक, चट्टानी लाल, सलेटी, नीले, काले, हल्के ऊदे, गेरू, धौले रेतीले, भूरे, हरियावल छांव रंग लिये बजरी या मिट्टी की दूर तक चली गयी मेढ़े या रीढ़े।

उस ऊँचाई से सूर्य को नित्य उदरस्थ करने में समर्थ नीले सागर का अनन्त विस्तार और उस पर बिदा लेती किरणों में सातों रंगों के फटकर बिखर जाने से अवर्णनीय होली, क्षण-क्षण प्रकाश के मन्द होने से नीले-काले अनन्त में समाहित होती। सचमुच इस अकल्पनीय दृश्य से वंचित रह जाना दुर्भाग्य होता।

द्वीप में तीन सप्ताह रह चुके थे। बहुत कुछ देख-सुन लिया था परन्तु अघा नहीं गये थे। द्वीप का प्राकृतिक परिवेश और संयोजन ऐसा है कि उसे दो-चार बार देख लेने से मन अघा नहीं जायेगा परन्तु जीवन के दूसरे तकाजे भी हैं। पहले विचार था, तीन फरवरी को वापिसी का। उसमें अड़चन आ गयी। योजना मंत्री खेर जगत सिंह १७ जनवरी चीन जाते समय कह गये थे—उनकी अनुपस्थिति में न लौट जायें। वे दो फरवरी तक न लौटे।

मौरिशस और बम्बई के बीच केवल दो उड़ानों से सम्पर्क है। पहले केवल एक ही उड़ान थी, यान बम्बई से मंगलवार रात दो बजे चलकर बुधवार सुबह (मौरिशस के समय से ६ बजे) पहुँचता था। दो घंटे बाद मौरिशस के समय अनुसार आठ बजे चलकर बम्बई के समय से दोपहर बाद साढ़े तीन बजे वापिस बम्बई पहुँच जाता। अब शनिवार मध्याह्न में एक बजे भी बम्बई से यान चलता है और मौरिशस से रात आठ बजे उड़कर बम्वई रविवार सुबह साढ़े तीन बजे लौट आता है।

खेर जगत सिंह सात फरवरी सुबह लौटे। हम लोगों ने दस फरवरी संध्या के यान में स्थान आरक्षित करवा लिये।

वाकोआ से प्लेज़ास हवाई अड्डे के लिये चले। केरपिप में हल्की फुहार थी परन्तु पांच मील आगे भारी वर्षा। बूंदों की वर्षा नहीं, प्रपातों से वर्षा। यान के टाइम के विचार से ठहर जाना भी सम्भव न था। गाड़ी की धुन्धभेदी बत्तियां जलाकर रेंगते चलने की मज़बूरी। शायद मौरिशस के बादल हमारे निश्चय की परीक्षा ले रहे थे। वर्षा का ज़ोर घटा या दस मिनट रेंगकर उस प्रपात से बाहर निकल आये और पश्चिम क्षितिज से संध्या की किरणें मुस्कराने लगीं।

प्लेज़ांस पहुँचे। उस वर्षा में भी अनेक सज्जन और महिलायें विदा देने के लिये हवाई अड्डे पर आये थे। यान छूटने में समय था। प्रतीक्षालय में बैठे रहे।

प्रतीक्षालय से चलने के लिये उठे। एक युवती बोली—"आप लोग अभी क्यों चल दिये? आपका इतनी जल्दी चल देना खल रहा है। अभी ठहरना चाहिये था। आये थे तब से बहुत अच्छे लग रहे हैं।"

सीने पर हाथ रखकर उत्तर दिया—"काश, यह बात आपने दो दिन पहले कही होती। यान में स्थान आरक्षित करवाने की उतावली न करते......।"

अट्टहास से विदाई।

मौरिशस की जलवायु का प्रभाव केवल शारीरिक स्वास्थ्य पर ही नहीं, मन पर भी ऐसा था कि उतनी छोटी जगह के लिये चार सप्ताह भी कम लगे।

●

नशे-नशे की बात !

समर्पण

विचार द्वारा आचार का मार्ग ग्रहण
करने की भावना को समर्पित

—यशपाल

नशे-नशे की बात !

नशे-नशे की बात!

पात्र

राधेमोहन : बड़े भाई की मृत्यु के बाद अनिच्छा से शराब की दुकान सम्हालने के लिये विवश, कालिज की शिक्षा प्राप्त, भावुक, सुधारवादी नवयुवक।

छिद्दू-काका : राधेमोहन के परिवार का पिता के समय से चला आया बूढ़ा नौकर, स्वामिभक्त और परिवार का शुभचिन्तक।

कामता : कारखाने का मजदूर, शराब की लत में अपने परिवार की हालत से बेपरवाह।

किशनलाल : कभी-कभी शराब खरीदने वाला ग्राहक।

बद्री : अभ्यस्त शराबी। कामता का परिचित ग्राहक।

कामता की बहू : अपने पति की शराब की आदत और अपने बच्चों का पेट भर सकने में कठिनाई से परेशान।

नन्दलाल : प्रौढ़ आयु भद्रपुरुष, कांग्रेसी, लोगों को समझा-बुझाकर नशाखोरी छुड़वा कर समाज का सुधार करने की चेष्टा करने वाले सज्जन।

जीवन : सेवा-समिति और समाज-सुधार के कामों में भाग लेने वाला, नन्दलाल महाशय का सहायक युवक।

लड़का ग्राहक : अपने चाचा के लिये शराब खरीदने के लिये आने वाला वयस्क लड़का।

जीजी : राधेमोहन की विवाहित बहिन, पति के गृहस्थ छोड़कर संन्यास ग्रहण कर लेने के कारण अपनी सन्तान सहित भाई के पास आने के लिये विवश।

समय और अवसर

होली से पहले दिन की संध्या

नोट : इस नाटक में छिद्दू काका द्वारा प्रयोग की गई भाषा साधारणतः नगरों में प्रयोग की जाने वाली देहाती हिन्दी है। रंगमंच पर स्थानीय वातावरण उत्पन्न करने के लिये छिद्दू काका के मुख से अवध में अवधी, पश्चिमी उत्तर प्रदेश में ब्रजभाषा या बुन्देलखण्डी अथवा हरियाना की लोकभाषा का प्रयोग किया जा सकता है।

नशे-नशे की बात

पर्दा उठता है

संध्या का समय। अंधेरा घना नहीं हुआ है। गलियों और मकानों में रोशनी नहीं हुई है।

रंगमंच पर एक देशी शराब की दुकान। दुकान में काठ के जंगले में ठेकेदार के बैठने की चौकी-गद्दी। ग्राहकों की पहुँच से सुरक्षित शराब की बिना किवाड़ों की आलमारियां दीवारों के साथ सटी हैं। भिन्न-भिन्न रंगों की शराब की बोतलें आलमारियों के अलग-अलग खानों में कतारों में लगी हैं। चौकी पर एक साफ-सुथरा गाव तकिया लगा है। ठेकेदार के सामने चौकी पर एक सन्दूकचीनुमा डेस्क पर तहाया हुआ अंग्रेजी अखबार रखा है। जंगले के बाहर दीवार के साथ दायीं ओर ग्राहकों द्वारा लौटाई हुई कई खाली बोतलें बेतरतीब पड़ी हैं। जंगले के बाहर बायीं ओर दीवार में दरवाजे से जीना दिखाई दे रहा है। यह जीना दुकान के ऊपर रिहाइशी जगह के लिये है।

जंगले के बाहर एक बेंच जंगले से सटा हुआ पड़ा है। बेंच पर परिवार और दुकान का पुराना नौकर छिद्दू काका एक मैली धोती घुटनों तक पहने हैं। शरीर पर कुर्ता और मिरजई है। उसके कपड़ों पर जहाँ-तहाँ गुलाबी, हरे और पीले रंग के धब्बे हैं और कपड़ों पर जगह-जगह आलू से बनी 'उल्लू' 'गधा' आदि की होली की मोहरें लगी हैं। छिद्दू काका का बूढ़ा शरीर दुबला-पतला है। जान पड़ता है कि उसने आयु कठिन मेहनत में बिताई हैं। दाढ़ी मुंडी हुई है और खिचड़ी मूँछें झुकी हुईं और लम्बी हैं। छिद्दू-काका थके स्वर में होली का गाना गुनगुना रहा है-

गोरी मारो भर पिचकारी
होली खेले कृष्णमुरारी........

छिद्दू होली गाते-गाते हथेली पर सुरती मलकर निचले होंठ में दबाकर हथेली अपने कूल्हे पर पोंछकर जीने की ओर देख पुकारता है।

छिद्दू ने पुकारा—"छोटे बाबू! ......ओ छोटे बाबू!"

छिद्दू ने पल भर उत्तर की प्रतीक्षा की। उत्तर न पाकर मुंह पर हाथ रख कुछ ऊंचे स्वर में पुकारा—"लल्ली! ओ लल्ली! अरे छोटे बाबू को भेजो दुकान में......क्या कर रहे हैं छोटे बाबू?"

छिद्दू ने जीने की ओर देखकर सिर खुजलाया और बोला—"किताब, अखबार पढ़ रहे होंगे और क्या! खद्धरे कित्ता पढ डाला। क्या बनेगा पढ़-पढ़ कर! दिन पढ़ें रात पढ़ें"

""""छिद्दू हाथ झटकाकर बोला—"अपना जो काम है, सो न करेंगे। दुकान पर न बैठेंगे!"

जीने से तेजी से उतरते कदमों की आहट आई और जीने के दरवाजे से दुकान का मालिक नवयुवक राधेमोहन साफ कुर्त्ता-धोती पहने सामने आ गया। राधेमोहन जीना उतरते समय धोती के निचले छोर को एक हाथ से सम्हाले है। दूसरे हाथ में एक किताब के पन्नों में फांक बनाये उंगली से प्रकट कि वह किताब पढ़ते-पढ़ते पुकार सुनकर उतर आया था। युवक के कुर्ते के गिरेबान में खोंसा फाउन्टेनपेन, उसकी आंखों पर नये ढंग के काले, मोटे फ्रेम के चश्मे और सिर के बालों की काट से कालेज की शिक्षा का आभास। वह चेहरे-मोहरे से लगभग बाइस वर्ष का सरल तथा भावुक व्यक्ति जान पड़ता है।

राधेमोहन ने जीने से दुकान में कदम रखते हुए, भौं चढ़ाकर पूछा—"क्या है काका? क्यों पुकार रहे हो बार-बार? कौन आया था?"

छिद्दू ने उपेक्षा में हाथ हिलाकर उत्तर दिया—"आये थे तुम्हारे नन्दलाल बाबू और जीवन भैया।"

राधेमोहन ने प्रश्नात्मक मुद्रा में त्योरियां डाल कर पूछा—"तो फिर ?"

छिद्दू ने उपेक्षा से हाथ हिलाया—"अरे हमने उनको रास्ता दिखा दिया।" उसने सड़क की ओर संकेत किया। "कह दिया बाबू सो रहे हैं।"

राधेमोहन ने क्रोध प्रकट किया—"छिद्दू काका, यह तुम बड़ी ज्यादती करते हो। उन्हें कोई जरूरी काम रहा हो तो!"

छिद्दू ने उपेक्षा से दूसरा हाथ हिला दिया—"हमें मालूम है उनका काम। आये बड़े काम वाले!" वह समझाने के लिये नवयुवक की ओर हाथ उठाकर बोला—"यही कहेंगे, लाइसेंस से इस्तीफा दे दो। सरकार शराब बन्द कर रही है। तुम भी अपनी दुकान छोड़ दो।" उसने हाथ से दुकान के बाहर की ओर संकेत किया—"और अभी फिर आते होंगे। पड़ोस में गिरजा बाबू के ही तो गये है।"

राधेमोहन के माथे की त्योरियां गहरी हो गईं—"वे चले गये थे तो फिर हमें क्यों पुकारा?"

छिद्दू ने विस्मय के भाव से हाथ फैला दिया—"क्यों पुकारा! अरे भैया, दुकान के मालिक हो, दुकान पर नहीं बैठोगे? अरे कल होती है। बरस दिन की बिकरी का बखत। ऐसे बखत मालिक को दुकान पर रहना चाहिये छोटे बाबू! मालिक फिर मालिक है। मालिक दुकान पर बैठें, हम घर का दूसरा काम-काज देखें।"

राधेमोहन झुंझला उठा—"हो जायेंगे घर के काम। तुम अच्छे-भले बैठे तो थे। खामखा हमें बुला लिया।"

छिद्दू ने समझाने के ढंग से राधेमोहन की ओर हाथ बढ़ाकर कहा—"छोटे बाबू, ऐसा नहीं कहते। दुकान और गाहक मालिक का मुंह देखते हैं। बड़े मालिक नित्त-नेम से

दुकान पर बैठते रहे तो कारोबार इतना पनपा, फूला फला। छोटे बाबू, तुम तो दुकान से ऐसे कतराते हो जैसे कोई सरीके में खुशी देखकर उदास हो। हां, और क्या !"

राधेमोहन झमक उठा—"अच्छे भले बैठते तो है। अब यहीं खड़े रहें क्या दिन भर !" वह गद्दी के जंगले का दरवाजा खोलकर असंतोष में जोर से पांव पटकता हुआ गद्दी पर जा बैठा और तुरन्त पुस्तक खोलकर पढ़ने में रत हो गया।

छिद्दू ने पुस्तक में ध्यान लगाये राधेमोहन की ओर देखकर गम्भीर स्वर मे समझाया—"बाबू, यह ठेका-दुकान है तो सब कुछ है। बड़े कह गये हैं, खेत और बन न संदेशों से नहीं चलते !"

राधेमोहन पुस्तक में तन्मय रहा।

छिद्दू उत्तर न पाकर जंगले के बाहर पड़ी खाली बोतलों की ओर झुक गया और फिर राधेमोहन से बोला—"छोटे बाबू, यह खाली बोतले पडी हैं यहाँ। कहो तो यहाँ ही करीने से लगा दें ?"

> पुस्तक में रत राधेमोहन ने कोई उत्तर न दिया। छिद्दू ने उसकी ओर देख विरक्ति से हाथ हिलाते हुये बोतलों के समीप बैठकर उन्हें करीने से सजाने लगा। कुछ याद आने पर फिर घूमकर छोटे बाबू की ओर देखा।

छिद्दू बोला—"छोटे बाबू, आज कोई मेहमान तो नहीं आने वाले हैं ?"

राधेमोहन ने उद्विग्नता से उसकी ओर देखा—"छिद्दू काका, पढ़ने नही दोगे ! मेहमान का हमें मालूम होता तो हम खुद नहीं कह देते अब तुम ऊपर क्यों नही जाते ?"

छिद्दू बोतलों को करीने से रखते हुए बोला—"जाते है बाबू, जाते है ! हम तो आप ही जा रहे थे। तुम्हारी ही राह देख रहे थे। बाबू, सुबह मुंडेरे पर कागा बोल रहा था, इससे हमने सोचा, पूछकर देखें !"

> कामता दुकान का पुराना गाहक है। वह 'ऐ बाबू ऐ, बाबू' पुकारता हुआ दुकान में आ गया।
>
> कामता की चाल शैथिल्य के कारण अंग-अंग झोल रहा था। वह घुटनों तक मैली धोती और कबाड़ी के यहाँ से खरीदा हुआ, कई जगह से मरम्मत किया हुआ, चिथड़ा-सा कोट पहने है। कुरता न होने के कारण कोट में से उसके सीने के बाल दिखाई दे रहे हैं। सिर पर खड़ी बाड की काली टोपी। टोपी के भीतर का पट्टा टूट कर दब गया है। टोपी के नीचे के किनारे पर चिकनाई और गर्द जमी हुई। कामता के चेहरे पर बढ़ी हुई हजामत असयम और लोकमत की उपेक्षा का प्रमाण। सिर और दाढ़ी-मूंछ के काले बालों के कारण उसकी आयु तीस-पैंतीस और चेहरे पर छायी मुर्दनी और पलकों के नीचे फूले मांस के पचास-पचपन बरस तक कुछ भी समझी जा सकती है। कामता की पुकार सुनकर राधेमोहन और छिद्दू की प्रश्नात्मक आंखें उसकी ओर उठ गईं।

कामता की दीनता से गरदन बायीं ओर लटकाये, हाथ जोड़े गिड़गिड़ा कर कहा—"ऐ बाबू! आज निराश नहीं करना!"

छिद्दू ने बैठे ही कामता की ओर घूमकर स्वागत में पुकार लिया—"कहो भैया कामता, होली कैसी जम रही है?"

कामता ने छिद्दू काका को अनुत्साह से हाथ हिलाकर उत्तर दिया—"अरे छिद्दू-काका, अब क्या जमेगी होली! तुम जानो, होली जब जमती थी, तब जमती थी।"

राधेमोहन ने हाथ की किताब को डेस्क के कोने पर रखकर दृढ़ता प्रकट करने के लिये गर्दन सीधी कर तर्जनी उठाकर चेतावनी दी—"कामता, हमने तुमसे एक बार नहीं बीस बार कह दिया, भलमनसाहत भले ही आदमी से निभती है। पिछला उधार जब तक नहीं दे जाओगे, हम कुछ नहीं देंगे। अरे अब उधार तो हम देंगे ही नहीं!" उसने कामता को दूर हटाने के संकेत में हाथ छिटका दिया।

छिद्दू ने मालिक के समर्थन में कहा—"भैया कामता, उधार का भी तो कोई कायदा होता है। पल्ले से तुम्हें उधार दें फिर तुमसे झगड़ा करके बुरे बनें! उधार माँगने तो लाला तुम यहाँ आ गये और तकादा करने जायेंगे हम तुम्हारे घर।"

कामता ने छिद्दू की ओर मिन्नत में हाथ जोड़ दिया—"अरे छिद्दू काका, ऐसी न कहो। बखत की बात होती है काका!" उसने राधेमोहन की ओर खुशामद से हाथ जोड़े—"मालिक, आज ऐसी जरूरत न होती तो हम आते नहीं। बड़ी लाचारी का मामला है। छोटे बाबू, तुम जानो हम कभी झूठ नहीं बोलते। गंगाजी की कसम मालिक, बस लाचारी का मामला है।"

छिद्दू हाथ उठाकर बोला—"लाचारी तो है ही सो कौन नहीं जानता। होली का त्योहार। तुम अपना उधार चुका जाओ, अपनी चीज ले जाओ, बस और क्या भैया!"

कामता खुशामद में छिद्दू की ओर झुक गया—"काका, तुम जानो हमें तो पहले उधार की आप ही बड़ी सरम मालूम हो रही है तुम जानो हम कभी ऐसे उधार रखते नहीं। काका, वह तो लाचारी का मामला है।" वह फिर राधेमोहन की ओर घूम गया—"मालिक, जो ऐसी लाचारी न होती तो यों आते नहीं आज। ऐसे बखत साहू-मालिक का ही आसरा होता है बाबू।"

राधेमोहन ने फटकार बताने के लिये फिर हाथ की उंगलियां छिटका दीं—"लाचारी है!......क्या लाचारी है? एक सांझ होश में रह जाओगे तो क्या बिगड़ जायेगा, कौन अनर्थ हो जायेगा!" वह मुंह मोड़कर पुस्तक उठाकर पढ़ने लगा।

कामता ने राधेमोहन की ठोढ़ी की ओर हाथ बढ़ाकर अधिक गिड़गिड़ा कर प्रार्थना की—"अरे बाबू, गंगाजी की कसम बहुत ही लाचारी का मामला है। तुम जानो, ऐसा ही मामला आन पड़ा है। नहीं तो हम कभी नहीं आते।" उसने झुक कर राधेमोहन के पांव की ओर हाथ बढ़ा दिया।

राधेमोहन ने खिन्नता से पुस्तक को डेस्क पर पटक दिया और अधिक ऊंचे स्वर में झुंझलाया—"अ-अ-अरे हम पूछते हैं, क्या ल-ल-लाचारी है? क-कौन तुम्हारे पेट में म-मरोड़ उठ रहे हैं या सिर में दर्द हो रहा है·······और यह कोई द-दवा है कि जरूर पीनी होगी और फिर चंगे होकर उधार चुकाने आओगे!"

कामता ने दीनता और व्याकुलता प्रकट करने के लिये अपने पांवों पर बोझ बदलते हुए रहस्य के स्वर से गिड़गिड़ाकर कहा—"अरे बाबू, गंगाजी की कसम, ऐसी ही लाचारी का मामला है। मालिक तुम जानो, बीमारी से बढ़कर लाचारी का मामला है बाबू!" और फिर सहसा चुनौती के स्वर में बोला—"कल तुम्हारा उधार न चुकता कर दें तो अपने बाप की औलाद नहीं।" उसने मूंछ पर हाथ फेर और फिर खुशामद में राधेमोहन की ओर हाथ बढ़ा दिया—"हां छोटे बाबू!"

राधेमोहन ने कामता का हाथ परे हटा दिया—"हटो जी, ब-ब-बहुत देख ली तुम्हारी कसम। सिं-सिर न खाओ। एक बार कह दिया, स-सौ बार कह दिया।" वह फिर पुस्तक उठाकर पढ़ने लगा।

कामता छिद्दू की ओर घूम गया और बहुत बेबसी से गिड़गिड़ाकर पुकारा—"काका!"

छिद्दू ने बैठे ही बैठे परेशानी से हाथ फैला दिये—"कामता, तुम्हारे लिये कौन बोले! पहले बोतल ले गये थे तो कौन कसम नहीं खायी थी तुमने? दूसरी बोतल उधार माँगने आये तो खायी हुई कसमें फिर से खा गये। हम पूछते हैं, अब कौन कसम बाकी है जो फिर कसम खा रहे हो?"

कामता छिद्दू से सहायता न पाकर फिर खुशामद के लिये जंगले पर झुक गया—"मालिक·······!"

> छिद्दू पीछे से आहट सुन झिझककर चुप रह गया। उसका परिचित किशनलाल आ गया था।
>
> किशनलाल कारखाने में माहवार तनखाह पाने वाले अच्छे मजदूर की स्थिति का जान पड़ता है।

किशन लाल ने कामता की ओर उपेक्षा से देखकर दस रुपये का नोट राधेमोहन की ओर बढ़ा दिया—"बाबू, एक संतरा तो दिलवा दो।"

छिद्दू घुटनों पर हाथ रखकर अपने स्थान से उठ खड़ा हुआ "अरे किशनलाल बाबू, जैरामजी की। बड़े दिनों में दिखायी दिये बाबू!"

किशनलाल ने छिद्दू को जैरामजी से उत्तर दिया—"अरे दद्दा, होली का मौका है। हमने कहा एक लाकर घर में रख लें। दद्दा, मिलने-जुलने वाले आ जाते हैं न। आस करके आते हैं, उन्हें किस मुंह से न पिलायें!"

छिद्दू ने समर्थन किया—"सो तो है ही भैया। होली का मौका ठहरा। बाबू, तुम्हारे घर ही नहीं जायेगी तो क्या साले भुक्कड़ पियेंगे इसे! शरीफ खानदानी लोगों की ही तो

यह चीज है। वे तो साले भंगेड़ी हैं बाबू, जो भांग पीकर पड़े रहते हैं। भांग भुक्खड़ नशा है बाबू!"

छिद्दू ने अपनी बात कहते-कहते जंगले के किवाड़ खोल भीतर से बोतल लाकर किशनलाल को थमा दी। किशनलाल बोतल लेकर चल दिया। कामता ने उसके हाथ में थमी बोतल को तृप्ति आंखों से देखा और बेबसी में होंठ चाट लिये।

कामता फिर राधेमोहन की ओर जंगले पर झुककर बोला—"मालिक........!"

राधेमोहन क्रोध में पुस्तक पटक कर जोर से गुर्रा उठा—"कामता, तुम परेशान कर देते हो। मुहल्ले भर में जाकर पूछ लो जो हम किसी को उधार देते हों! तुम्हारा जितना ख्याल करते हैं, उतना ही तुम सिर पर चढ़ते जाते हो।"

छिद्दू ने कामता को संबोधन किया—"कामता भैया, तुम बड़े मालिक के बखत के गाहक हो, इससे छोटे बाबू तुम्हारा इतना लिहाज करते हैं और तुम लिहाज मिटा देने की कसम खाये बैठे हो। भैया, तुम्हें उधार दिलायें तो दूसरे को किस मुंह से इनकार कर दें......बोलो!"

कामता छिद्दू की ओर मुड़ गया—"अरे काका, हम किसी से जाकर कहते हैं कि उधार लिया है! कोई हमारे सामने आकर कह दे कि हमने कभी किसी से कहा हो कि हमने उधार लिया—काका, यह तो आपस की बात है।"

राधेमोहन ने कामता की जिद्द से झुंझलाकर पुस्तक बन्द कर दी और बोला—"अरे और क-कौन कहेगा? तुम्हें उधार देते हैं त-तुम्हारी घरवाली ही आकर खरी-खोटी सुना जाती है। एक तो प-पल्ले का उधार मे दो, दूसरे ग-गालियां सुनो। तुम्हारी औकात नहीं है तो क्यों पीने मरने आते हो!"

छिद्दू ने कामता की ओर हाथ बढ़ाकर कहा—"और क्या भैया, उस महीना बन्द पर तुमने पिछले उधार के पैसे चुकता किये थे। खाली हाथ घर पहुँचे होगे। जानते हो, तुम्हारी घरवाली यहाँ आकर कैसी रार मचा गई?" उसने समझाने की मुद्रा में कामता की ओर हाथ उठा दिया—"भैया, आदमी हाथ में रकम पाता है तो गाली भी सह जाता है। दुधारू गाय की ही लातें सही जाती हैं। तुम्हें पल्ले का कर्ज में दो, सूद में गाली सुनो।"

कामता ने छिद्दू से काम बनता न देखकर फिर चिरौरी से राधेमोहन की ठोढ़ी छूने के लिए हाथ बढ़ाकर बहुत ही विनीत स्वर में कहा—"बाबू, ऐसी बातें न करो। मालिक कभी तुम्हारा उधार रुका हो तो बताओ!" उसने अभिमान में गर्दन ऊंची कर ली—"आज दस बरस से सिवा इस ठेके के और कहीं कदम रखा हो तो कोई कह दे!" वह छिद्दू की ओर घूम गया और चुनौती की मुद्रा में बांह फैला दी—"तुम्हीं कह दो छिद्दू काका। हां कहो!"

छिद्दू ने अनुमोदन में सिर हिलाया—"सो तो भैया यह तुम्हारी अपनी दुकान है। कबूतर अपने ठिये पर ही बैठता है। द्वार-द्वार घूमना को इज्जतदार आदमी का काम है!"

कामता की गर्दन छिद्दू का समर्थन पाकर अभिमान और अधिकार से तन गई, बोला—"और क्या छिद्दू काका, और क्या। हम कहते हैं, किसी ने हमें दूसरे ठेके पर कभी देखा हो तो दस जूते हमारे सिर पर मार लो।" कामता ने सिर से टोपी उतार कर हाथ में लेकर सिर झुका दिया और राधेमोहन की ओर घूम गया—"बाबू, अपने तो साहूकार को ऐसे समझते हैं जैसे जजमान तीरथ के पंडे को समझे। अरे भैया, साहूकार तो भगवान का रूप है। उसे छोड़कर दूसरी जगह जायँ, अपनी आकबत बिगाड़ें? जब तक जिन्दा हैं, तुम्हारे ही द्वारे इज्जत बनी रहे, और क्या! तुम्हीं कहो छिद्दू काका, ठीक नहीं कहते हम?"

छिद्दू ने समर्थन में सिर हिलाया—"सो तो है ही, सो तो है ही। ठीक ही कह रहे हो कामता। भलेमानुसों का यही तरीका है भैया। साहू और खसम कहीं बदले जाते हैं!"

कामता ने उत्साहित होकर राधेमोहन की ठोढ़ी छूने के लिए फिर हाथ बढ़ाया—"मालिक, रकम तुम्हारी मारी नहीं जा सकती। तुम्हारे उधार को तो हम ऐसा मानते हैं, जैसे गाय का रकत.......!"

राधेमोहन ने घृणा से कामता का हाथ परे हटा दिया—"कामता, तुम आदमी हो कि ज-जानवर! सौ बेर कह दिया तुमसे कि उ-उधार नहीं देंगे। तुम्हें उधार मिलता हो तो ज-जहाँ मिले, ले लो!"

कामता ने हाथ झटक दिया जाने पर भी हाथ जोड़ दिये और अधिक गिड़गिड़ाकर मिन्नत की—"बाबू, ऐसी बेरुखी मत दिखाओ। साहूकार और गाहक का रिश्ता ऐसा नहीं होता बाबू! हम तो दूसरे के द्वारे जाना ऐसा समझते हैं कि जैसे औरत अपने मरद को छोड़ दूसरे के यहाँ जा बैठे।"

छिद्दू ने अपने घुटनों को कौली में बांधे समर्थन में अपने पूरे शरीर को झुलाते हुए स्वीकार किया—"सच कहते हो भैया कामता, तुम भी सच कह रहे हो।"

कामता ने छिद्दू के समर्थन से उत्साहित होकर आशा में दोनों की ओर बारी-बारी से देखा और बोला—"भैया, इज्जत का सवाल है। दो मेहमानों को घर बैठाकर आया हूँ, समझो। नहीं तो तुम जानो अपनी इज्जत का खयाल किसे नहीं होता! हमें तो पहले उधार की खुद ही बहुत सरम......।"

कामता किसी के आने की आहट पाकर चुप हो गया! मुहल्ले का पड़ोसी बद्री दुकान में आ गया। उसके कदम नशे के प्रभाव स कुछ डगमग हैं। बद्री झूमता हुआ शिथिल स्वर में गुनगुना रहा था—'काहे मटकावे नैना ठगनी ......।'

कामता बद्री को देख बोल उठा—"कहो बद्री महतो, कैसे रंग जम रहे हैं?"

बद्री ने कामता की ओर तिरछी नजर डालकर आंखें फेर लीं—"जैरामजी की राधे बाबू!" अंटी से पैसे निकालते हुए उसने घूमकर कामता की ओर देखा, "हां कामता भैया,

जैरामजी की, भैया जमेगा क्यों नहीं! तुम्हारी दुआ से", उसने मूंछ पर हाथ फेरा—"दूसरी लिए जा रहे हैं।"

कामता की आंखें ईर्ष्यापूर्ण विस्मय से फैल गईं—"दूसरी लिए जा रहे हो!"

बद्री ने छिद्दू को संबोधन किया—"छिद्दू काका, एक महुआ तो और दिला दो। तुम जानते हो काका, कल होली है न·······!"

छिद्दू घुटनों पर हाथ टेककर उठा—"अरे महतो, कौन नहीं जानता होली है। आज ही तो बखत है इस चीज का।" वह बोतल निकालने के लिए जंगले के भीतर चला गया।

बद्री कामता को सुनाकर मूंछों पर हाथ फेरते हुए हंसकर बोला—"भैया जग्गू, गफ्फूर, माधो सब आये हुए हैं। दूसरी लिए जा रहे हैं। गफ्फूर साला एक अद्धा साथ लिये आया था। हमने कहा, साले बड़े धन्ना सेठ के नाती बनते हो—हमारे दरवाजे पर साथ लेकर आये हो! हमें रईसी दिखाने चले! अरे हम तुम्हें नहला दें, नहला दें!" बद्री जोर से हंस पड़ा—"देखो तो साले को! हमने तो सारी दौलत इसी में फूंक दी। हमें क्या सेखी दिखाओगे!" उसने कामता से आंखें मिलाकर पूछ लिया—"तुम क्या अभी आ रहे हो?"

कामता ने अपना दैन्य छिपाने के लिये खीसें निपोर लीं—"तुम दूसरी लिये जा रहे हो! हम तो मुलुआ के यहाँ चले गये थे, बस अभी लगे आ रहे हैं।"

बद्री ने छिद्दू से बोतल लेकर अंगोछे में लपेट ली और कामता की ओर देखा—"तो आओ, हमारे यहाँ आओ।"

कामता का स्वर पिघल गया—"तुम्हारे यहाँ!" उसने कदम उठाया, परन्तु रुक गया—"तुम जानो हमारे यहाँ मेहमान बैठे हैं भैया, तुम चलो।"

कामता बद्री के चले जाने के बाद छिद्दू की ओर देखकर बोला—"बेटा स्साले, पियो महुआ, महुआ! रईस बनते हैं और महुआ पीते है! कहो छिद्दू काका, हम तो संतरा पीने वाले हैं कभी संतरे से कम पर हाथ रखा हो तो कह दो! हां हां कह दो!"

छिद्दू ने सिर हिलाते हुए समझौते के स्वर में बीच-बचाव करने के लिये कहा—"तो भैया कामता, ऐसा करो, पिछला तो तुम जैसे भी हो चुकता कर दो, तब तो बाबू भी कुछ ख्याल करें।"

कामता उत्साहित हुआ—"छिद्दू काका, तो हम कब इनकार कर रहे हैं! तुम जानो, बस बोतल लेकर मेहमानों को थमा आयें और तुम्हारा नामा लिये आते हैं। बस तुम जानो, सर्राफे तक जाने की देर है काका! तुम उधार नहीं मानते तो ऐसा ही सही। हम उधार थोड़े माँग रहे हैं।"

राधेमोहन पुस्तक से आंख उठाकर बोल पड़ा—"त-तुम्हारा कौन दम निकला जा रहा है—ज-जाओ ले आओ नामा! कौन जवाहरात रखे हैं त-तुम्हारे घर पर कि सर्राफे से थैली ले आओगे!"

कामता ने चुटिया कर चेतावनी में तर्जनी उठा ली—"ऐसी बात न कहो बाबू! दस बरस से तुम्हारी दुकान न भर रहे होते तो जवाहर भी हो जाते। हां, अपने तो इस चीज

के आगे जवाहर को मिट्टी समझते हैं।" वह छिद्दू की ओर घूम गया—"कहो छिद्दू काका, जवाहर न सही अपनी इज्जत तो रखते हैं।" वह फिर राधेमोहन की ओर घूमा—"ऐसी बेइतबारी न करो मालिक।"

छिद्दू ने अपने स्वर को जरा कोमल किया—"क्या बेचने जा रहे हो सर्राफे में?"

कामता ने अपने कोट के भीतर की जेब में हाथ डालते हुए कहा—"अरे, तो सर्राफे में क्या जायें, तुम्हीं न रख लो। तुम्हीं को देकर छुड़ा लेंगे। सूद दूसरे के घर क्यों जाये। अपने मालिक के घर पर ही रहे।"……उसने जेब से निकालकर रुपयों की माला दिखाई—"यह लो, मालिक तुम्हीं रख लो।"

छिद्दू ने कौतूहल से माला हाथ में ले ली—"देखें!"

कामता ने अभिमान से कहा—"देखते हो रानी की असली चांदी है। आज दिन तो दूने में जा रही है। और नहीं तो क्या……यह पुराना चांदी का रुपया मिलता कहाँ है अब?"

छिद्दू ने माला को हाथ में तौलते हुए पूछा—"कित्ते की होगी?"

कामता ने अभिमान से गरदन ऊँची कर और हाथ बढ़ाकर कहा—"अरे कम से कम होगी तो तीस-पैंतीस-चालीस रुपये की होगी।" उसने माला छिद्दू के हाथ से लेकर राधेमोहन की ओर बढ़ा दी—"लो मालिक पिछले नौ और आज के पाँच दे जायँ तो लौटा देना।"

राधेमोहन ने इन्कार से हाथ झटक दिया—"ना, ना यह बला हमारे सिर मत डालो। यह साहूकारा हमारे बस का नहीं। इसके पैंतीस-चालीस तुम्हें जहाँ मिलते हों ले आओ। हमारा नामा चुका कर अपनी चीज ले जाओ।"

कामता ने अनुरोध और आग्रह के विनय में गरदन टेढ़ी करके कहा—"अब ऐसी बातें न करो मालिक! तुम्हारी जवानी की कसम बाबू, घर में मेहमान बैठे हैं। इज्जत का सवाल है। हमें सर्राफे तक क्यों दौड़ाओगे! कहीं मेहमान समझ बैठें कि मुआ बैठा कर भाग निकला।" उसने छिद्दू की ओर घूमकर देखा—"और क्या काका, बनी-बनाई इज्जत चली जाय। अरे हां, इज्जत और धरम बिगड़ते लगता क्या है!"

राधेमोहन ने उलझन प्रकट की—"अरे कह दिया, इसे तौलना, दाम आंकना हमारे बस का नहीं। जो लोग यह काम करते हैं, उन्हीं के यहाँ ले जाओ। वहीं देंगे इसका ठीक दाम तुम्हें।"

कामता विनय और आग्रह से जंगले पर झुक गया—"मालिक, तुमसे तीस-पैंतीस कौन माँग रहा है? हमारा इस बखत का, काम निकल जाय। फिर अपनी चीज अपने घर ले जायेंगे। कोई बेचने की चीज है ये! तुम जानो, इस जमाने में ऐसी चीज कहीं मिल सकती है।"

राधेमोहन ने इन्कार में हाथ हिला दिया—"ना ना भैया, यह साहूकारा हमारे बस का नहीं।"

कामता ने सहायता के लिये छिद्दू की ओर देखकर शिकायत के स्वर में कहा—"अब देखो, छिद्दू काका, मालिक की बातें!"

छिद्दू ने सिफारिश की—"छोटे बाबू, अब बात रख लो कामता की।"

राधेमोहन ने छिद्दू की ओर देखकर असंतोष प्रकट किया—"काका तुम भी मुसीबत सहेड़ने को कह देते हो।" उसने विवशता से माला हाथ में ले ली और पूछा—"तो कब छुड़ाओगे इसे ?"

कामता उत्साहित हो गया—"अरे बस इसी तनखाह पर मालिक।" उसने हाथ से निश्चित रहने का संकेत किया—"होली के बाद, महीना बन्द होते ही जो तनखाह मिली तो मालिक पहले तुम्हें सलामी देकर तब घर जायेंगे।"

राधेमोहन ने माला डेस्क में रखकर फिर पुस्तक उठा ली।

छिद्दू जंगले के भीतर जाकर आलमारी में से नारंगी रंग की एक बोतल निकालते हुए कामता को समझाता रहा—"कामता भैया, देखो! हम झूठे न पड़े, हां! तुम बड़े मालिक के बखत के गाहक हो। तुम्हें इन्कार भी नहीं करते बनता।" उसने बोतल कामता को थमा दी।

कामता की आखे प्रसन्नता से चमक उठीं, स्वर गद्गद हो गया—"बड़े होशियार हो काका। कैसे याद रखते हो गाहक को कि हम सन्तरा पीते हैं!" प्रतिज्ञा की घोषणा में हाथ उठाकर बोला—"संतरे से नीचे हमने कभी पी नही, क्यों काका! आदमी पहनने-ओढ़ने में कसर कर ले पर पिये तो बढ़िया पिये।" उसे फिर पंजा दिखाया—"हमने कभी संतरे से कम छुई हो तो कोई कह दे! हा काका कसम गंगाजी की।"

कामता ने बोतल कोट के भीतर बगल में छिपा ली और उत्साह से दुकान से उतर कर बायीं ओर को चला गया।

राधेमोहन पुस्तक पढ़ने में तन्मय हो गया।

छिद्दू ने राधेमोहन की ओर आकर रहस्य के स्वर में कहा—"मालिक, माला चालीस-पैतालिस से कम की नहीं होगी इस जमाने में।"

राधेमोहन ने पुस्तक से आखें हटाये बिना उत्तर दे दिया—"तो अपने को इससे क्या ?"

छिद्दू एक कदम और राधेमोहन की ओर बढ़ा और हाथ उठाकर समझाया—"इससे क्या! ·····अब वह छुड़ा थोड़े ही सकता है इसे।"

राधेमोहन ने पुस्तक से नजर उठाकर क्षोभ से पूछा—"तो फिर तुमने हमसे रख लेने को कहा क्यों ?"

छिद्दू ने परेशानी अनुभव की—"अरे, छोटे बाबू तुम तो कुछ नहीं समझते। नशा करने के लिये जो उधार लेगा, कभी उधार चुका पायेगा।

यह तो ऐसा ही कीच है बाबू, जो रपटा सो रपटता ही चला गया·······।"

राधेमोहन ने झुंझलाकर, छिद्दू की ओर करवट ले ली—"हम कहते हैं, तुम जानते थे तो फिर हमसे रख लेने को क्यों कहा ?"

छिद्दू ने हाथ उठाकर विस्मय प्रकट किया—"कैसी बातें करते हो बाबू, घर आती माया को नहीं रखोगे ? बड़े मालिक ऐसा करते तो यह घर जायदाद कैसे बनती ! बड़े मालिक बड़े होशियार रहे। बाबू, इसी से तो ग्राहक पक्का होता है।" उसने रहस्य से रुपया ठनकाने का संकेत किया —"और नामा दूना बढ़ता है; एक बिक्री का और फिर सूद का।"

राधेमोहन ने वितृष्णा प्रकट की—"हटो छिद्दू काका, यह सब ढंग हमें अच्छे नहीं लगते। तभी तो लोग नाम धरते हैं और गालियां देते हैं।" उसने ध्यान पुस्तक की ओर कर लिया।

छिद्दू काका ने फिर होली की कड़ी गुनगुनानी शुरू की 'होरी खेलत.......। एक स्त्री को आते देख झिझक गया।

दुकान के दायीं ओर से कामता की बहू भीतर आ गई। बहू बहुत परेशान स्थिति में। उसके शरीर पर मोटी, मैली सी धोती और फटी हुई कुर्ती। मैले-कुचैले अधनंगे बच्चे को गोदी में उठाये। आयु से तीन-चार बच्चों की मां लगती है। चेहरे पर भूख, निराशा और कठोर परिश्रम की रुखाई। दुकान में कदम रखते-रखते उसने सिर का पल्ला माथे पर खींच लिया।

कामता की बहू ने रूखे स्वर में राधेमोहन को सम्बोधित किया—"यहाँ आया था ?"

राधेमोहन ने पुस्तक से आंख उठाकर कामता की बहू की ओर देखा पर निश्चल मौन रह गया।

छिद्दू ने बहू के ऐसे व्यवहार पर विस्मय की डपट से आपत्ति की—"कौन आया ?"

कामता की बहू का स्वर अधीरता में ऊंचा हो गया—"चुन्नू का बप्पा नहीं आया ?"

राधेमोहन ने पुस्तक बंद करके पूछा—"कौन ? क्या नाम ?"

स्त्री ने झमक कर कहा—"बड़े आये ! ...क्या नाम ...मेहरारू मर्द का नाम लेती है का !"

राधेमोहन निष्प्रभ हो गया—"क-क्यों.......ब-बात क्या है ? ...क-कौन किसलिये आया ?"

कामता की बहू कमर से खिसकते बच्चे को ऊपर उचका कर बोली—"ऐ है ! किस लिये आया ! कैसे बन रहे हैं ! मेरी माला चुरा लाया और क्या !" कामता की बहू राधेमोहन को चुप देखकर ऊंचे स्वर में दुहाई देने लगी—"मुआ सूंघता फिर रहा था। कह रहा था, पंजाबी को देना है, माला गिरवी रखने को दे दे।"

छिद्दू ने विस्मय की मुद्रा में कामता की बहू को संबोधन किया—"तेरी माला चुरा लाया ! ....कैसे चुरा लाया तेरी माला ? तूने ही दी होगी।"

कामता की बहू विरोध में झुंझला उठी—"वाह रे मैंने दी; मैं क्यों देती! कित्ती चीजें तो मैंने उतार-उतार कर दे दीं। मुआ जो पाता है, पी डालता है। पी कर धुत्त हो जाता है तो हाड़-गोड़ से ऊपर तोड़ता है।" वह राधेमोहन की ओर घूम गयी—"बाबू, हमारी माला दे दो। हम नहीं जानते।"

राधेमोहन ने बेपरवाही ही दिखाई—"हमें तेरी माला से क्या मतलब! तुझे जो कहना है, ज-जाकर अपने मर्द से कह!"

कामता की बहू ने राधेमोहन की ओर हाथ बढ़ाकर चुनौती दी—"वाह रे, हमारी माला तुम्हारे यहाँ है तो तुमसे नहीं कहेंगे!" वह हाथ मटका कर और ऊंचे आवाज में बोली—"उस मुए से क्या कहें! परौ-त्योहार का दिन और हमने माला निकाल कर रख दी थी कि यह मुआ जायेगा तो बनिये के यहाँ रखकर आटा, चावल, तेल ले आएंगे।"

छिद्दू आगे बढ़ आया—"अरे तो तूने माला जहाँ रखी, वहाँ ढूंढ़, अपने घर में जाकर देख! माला रखी वहाँ, ढूंढ़ने आयी यहाँ!"

कामता की बहू बहकावे में न आने के दृढ़ निश्चय में तिनक कर बोली—"वाह रे, बड़े आये सिखाने वाले! वह घर से बाहर निकला तो हमने अलगनी पर पिछौरी के नीचे माला के लिये हाथ डाला। माला वहाँ है नहीं। हम पल भर को पिछवाड़े गई थी, इत्ते में नासपीटा माला ले भागा। जरूर यहाँ दे गया है।" वह खिसकते हुए बच्चे को कमर पर उचकाकर राधेमोहन की ओर घूम गई—"लौटाते हो कि नहीं मेरा गहना!"

राधेमोहन कामता की बहू की तेजी से झेंप कर आंखें बचाने के लिये पुस्तक के पन्ने पलटते हुए बोला—"ह-हम क्या जानें......ह-हमारा उधार था। हमने तो अपना उधार पाया है।" बेपरवाही दिखाने के लिये उसने तकिये का सहारा ले लिया—"त-तुम्हारा मर्द जाने, तुम जानो।"

कामता की बहू ने गोद से खिसकते हुए बच्चे को सम्हालते हुए स्वर बहुत ऊंचा करके पुकारा—"कैसी बातें करते हो बाबू!" उसने राधेमोहन के मुंह की तरफ हाथ फैलाकर पूछा—"तुम इत्ता भी नहीं जानोगे कि गहना औरत की चीज है? मुंसी-इलमदार बनते हैं!" उसने अपना हाथ दुबारा राधेमोहन की ओर बढ़ाया—"बच्चे भूखे मरें और तुम हमारे गहने से मुए को शराब पिलाओ!......देओ हमारा गहना निकालकर!"

छिद्दू ने मालिक की ओर से बोलना आवश्यक समझा। कामता की बहू की ओर कदम बढ़ाकर, हाथ उठाकर समझाने के लिये बोला—"अरे......।" राधेमोहन ने छिद्दू को टोक कर स्त्री से आंखें चुराते हुए कह दिया—"तुम्हें जो कहना है, अपने मर्द से कहो जाकर। हम कुछ नहीं जानते।"

छिद्दू ने समर्थन किया—"हां ठीक ही तो कहते हैं बाबू।" और कामता की बहू को धमकाने के लिये हाथ से परे हटने का इशारा करते हुए कहा, "हटो यहाँ से! तुम्हारा मर्द-औरत का झगड़ा। हम लोग क्या जानें? हमने माँग कर कोई खैरात तो ले नहीं ली है। महीना दिन राह देखी है उधार के लिये, तब आकर दे गया है।"

कामता की बहू ने बाँह फैलाकर ऊँचे स्वर में दुहाई दी—"हाय राम, कैसी बातें कर रहे बाबू। तुम नहीं जानते गहना औरत की चीज होती है......कोई किसी का माल चुरा कर तुम्हारे यहाँ दे जायेगा तो तुम दबा लोगे?"

राधेमोहन के दो परिचित नन्दलाल बाबू और जीवन दुकान के सामने से जा रहे थे। एक औरत की पुकार सुनकर ठिठक गये और फिर भीतर आ गये। नन्दलाल खद्दर का कुर्त्ता-पायजामा पहने, सिर पर मशीन से हजामत बनवाये साधुवृत्ति व्यक्ति। नाक पर ढलका हुआ चश्मा, हाथ में मोटी छड़ी। जीवन खद्दर की कमीज-पतलून पहने आधुनिक कांग्रेसी।

नन्दलाल ने विस्मय से पूछा—"क्या हुआ राधे भाई?"

जीवन ने भी पूछा—"क्या झगड़ा है?"

राधेमोहन परिचितों को देखकर उत्तेजना से तख्त पर खड़ा हो गया और कामता की बहू की ओर संकेत कर बोला—"दे-देखिये तो बाबूजी, यह हमें चोरी लगा रही है।" वह कामता की बहू की ओर घूम गया—"ह-हम तुम्हारे घर गये थे तुम्हारा गहना उठाने? तुम्हारा आदमी कर्जे में अपने घर की चीज दे गया है।......तुम्हारा औरत-मर्द का झगड़ा है।" उसने समर्थन की आशा से आगन्तुकों की ओर देखा—"तुम अपने मर्द से निपटो!"

कामता की बहू के आंसू बह आये थे। उनकी परवाह न कर गोद के बच्चे को सम्हालती हुई बहुत तीखे स्वर में दुहाई देने लगी—"कैसी बातें करते हो बाबू! बच्चे भूख से बिलख रहे हैं। उनके मुंह में दाना नहीं गया। बच्चों का पेट भरने के लिये हमने गहना निकाला तो उससे तुम उस मुए को शराब पिलाओगे? तुम्हें मरम नहीं आती!"

छिद्दू ने स्त्री को बहुत जोर से धमकाया—"निकल यहाँ से!" उसने सड़क की ओर संकेत किया—"तू अपना गहना अपने मर्द से माँग। तुझे हम लोगों से क्या मतलब? मर्द के मुँह लगती है, देखो, देखो बेहया को!"

राधेमोहन ने प्रश्न की मुद्रा में हाथ उठाया—"ह-हमने तेरे मर्द से गहना माँगा था जाकर?"

कामता की बहू दबी नहीं, कड़क कर बोली—"माँगने नहीं गये तो और क्या! शराब के उधार में तुमने हमारा गहना लिया क्यों?" उसने दुहाई देने के लिये हाथ फैलाये आगन्तुकों की ओर देखा—"क्या गाज पड़ गई जमाने पर! दूसरों का घर फूंककर", संकेत से उसने राधेमोहन को दिखाया—"कमाई कर रहे हैं! शरम नहीं आती। कर्जा लेने वाले बने हैं, साहूकार बने हैं! यह काम है साहूकारों के!"

छिद्दू स्त्री को डराने के लिए विरोध में चिल्लाया—"देखो, देखो कैसी मुंहजोर औरत है!" उसने एक कदम आगे बढ़कर धमकाया—"तेरा मर्द अपना कर्जा नहीं देगा, बोल!"

कामता की बहू धमकी से नहीं दबी। उपेक्षा में हाथ मटका कर बोली—"बड़े कर्जा लेने वाले आये! कर्जे में शराब पिलाकर दूसरों को बरबाद करते हैं। गरीब की सारी

कमाई धराकर जहर पिलाते हैं। शरम नहीं आती!" उसने नारी के अंतिम अस्त्र का प्रयोग किया। वह धोती का पल्ला आंखों पर रखकर विलाप में चिल्ला उठी—"हाय रामजी इनका नाश हो!"

नंदलाल उसे चुप कराने के लिये फर्श पर छड़ी खटखटा कर बोला—"अरे-अरे बताओ तो, बात क्या है?·······कैसा गहना? ·······कैसा कर्जा?"

राधेमोहन ने उत्तर दिया—"दे-देखिये बाबूजी, इसका मर्द उधार ले गया था। उधार में घर की चीज दे गया तो इसमें ह-हमने क्या जुल्म किया? आप ही बताइये!"

छिद्दू कामता की बहू को डराने के लिये उत्तेजना में बांह उठाकर बोला—"वह रुपया दे जाय, अपनी चीज ले जाय।" वह कामता की बहू की ओर एक और कदम बढ़ गया—"तुम दे जाओ, तुम ले जाओ! तुम्हारे बच्चे भूखे हैं तो हम क्या करें? अपने घर की बात तुम मर्द-औरत जानो। यहाँ कर्जा ही तो दिया है·······कुछ लूट नहीं लिया है।"

कामता की बहू भी फिसलते बच्चे को सम्हालकर एक कदम आगे बढ़ आयी—"लूट कैसे नहीं लिया! तुमने मुए को उधार शराब पिलाई तो उससे समझो! मेरा गहना है, मैं अपनी चीज क्यों दूं? घर में दाना नहीं बनिये से उधार लेकर इते दिन बच्चों को खिलाया। माला उतार कर रखी थी कि बनिये के यहाँ गिरवी रखकर आटा-चावल लायेंगे। त्योहार का दिन है। वह मुआ चुरा कर ले भागा।"

छिद्दू ने सफाई दी—"चोरी की होगी तो तेरे मर्द ने। हम लोग तेरे घर गये थे माला लाने? चोर होगा तो तेरा मर्द।"

कामता की बहू ने राधेमोहन की ओर हाथ से सकेत किया—"और यह बड़े भलेमानुस हैं। नशे के उधार में गहना लेकर चोरी करवाते हैं। इन्हें नहीं दीखता था कि गहना बेचकर शराब ले रहा है तो घर में दाम नहीं होंगे और बच्चे भूखे बिलखेंगे!" वह फिर आकाश की ओर हाथ उठाकर विलाप करने लगी—"रामजी करें इनके बच्चे भूखे रहें तो देखें कैसे कर्ज में शराब पीते हैं। दूसरे के खून से होली खेल कर बड़ा दम दिखा रहे हैं! हाय रामजी इनका सत्यानाश हो·······!"

राधेमोहन ने लजाकर समझाया—"भई तुम लोगों के बच्चे भूखे थे तो त्त-त्त," वह लज्जा अनुभव कर थुथला गया—"तो तुम लोगों को ख्याल करना चाहिये अपने बच्चों का। क्यों पीने देती हो उसे?"

कामता की बहू ने गोद के बच्चे को उतारकर धमाके से जंगले के भीतर गद्दी पर खड़ा कर दिया और चीख उठी—"शराब के कर्जे में मेरा गहना रखते हो तो इसे भी तुम्हीं रखो। इसे तुम्ही खिलाओ!"

बच्चा चिल्लाकर रो पड़ा। कामता की बहू ने उसे डाटा—"रो, रो नासपीटे इन लोगों को रो, जो दूसरों को शराब पिलाते हैं। दूसरों को भी लाकर छोड़े जाती हूँ। जो इनके बाप की कमाई खाता है, वहीं इन्हें भी खिलाये।"

कामता की बहु दूकान से चलने को हुई। राधेमोहन अपने डेस्क पर बच्चे को छोड़ दिये जाने और कामता की बहू के चिल्लाने से बहुत सकपका गया था।

जीवन और नंदलाल बीच-बचाव करने के लिए एक साथ पुकार उठे—"अरे, अरे, देखो! देखो! सुनो, सुनो तो!"

नंदलाल हाथ की छड़ी बेंच पर टेककर खड़े हो गये और बच्चे को पुचकारने लगे—"च्चु,च्चु, चुप रहो!"

जीवन ने दो कदम आगे बढ़कर कामता की बहू को ठहरने के लिए संकेत किया—"ठहरो, ठहरो! सुनो, सुनो!"

कामता की बहू ने पीछे घूमकर रोते हुए कहा—"का ठहरें······इन्हें क्या खिलायें? जो बचा रह गया था," राधेमोहन की ओर संकेत किया—"इन्होंने समेट लिया। ऊपर से बड़े भले बन रहें हैं!"

नंदलाल ने धैर्य रखने का संकेत कर समझाया—"सुनो तो, सुनो तो!" वह राधेमोहन की ओर घूम गया—"अरे भाई राधे बाबू, तुम भी कुछ ख्याल करो······!"

राधेमोहन ने परास्त होकर डेस्क का ढकना खोलते हुए कहा—"लो, ले जाओ। तुम उसकी घरवाली हो। तुम उसे नहीं समझाती, उल्टे आकर हमारे सिर पर रार करती हो। शराब की दुकान है तो यहाँ क्या दूध बिकेगा, शराब ही बिकेगी। हमने सरकार को ठेके के दस हजार नहीं भरे हैं लो!" उसने माला स्त्री की ओर बड़ा दी—"हम दिये दे रहे हैं। पर तुम······!"

छिद्दू ने बीच में होकर टोका—"लोग पियेंगे तो बिकेगी। नहीं तो दस हजार पूरे कहाँ से होंगे!" उँगली दिखाकर कामता की बहू को चेतावनी दी—"और तुम जानो कामता की बहू, तुम्हारे भरोसे तुम्हारी चीज लौटा रहे हैं। समझती हो?"

राधेमोहन ने कहा—"हम यह थोड़े ही चाहते है कि त-तुम्हारे बच्चे भूखे रहें। तुम अपने मर्द को समझाओ! ह-हम थो़ड़े ही जाकर उसे पीने को कहते है!"

छिद्दू ने फिर चेतावनी में उंगली दिखाई—"हाँ, देखो कामता की बहू, तनखाह मिलने पर हमारा उधार मिल जाना चाहिये। नहीं तुम जानो, हाँ!"

कामता की बहू ने माला हाथ में लेकर बच्चे को गोद में उठा लिया—"उधार लेने वाला जाने, उधार देने वाला जाने!" उसने बच्चे की ओर संकेत किया—"बच्चों का पेट भर लें एक बखत, यही बड़ी बात। यहाँ इनका ही पेट नहीं भर पाते, रखा है शराब का उधार देने को!" वह ठेंगा दिखाती हुई चल दी—"किसी का उधार हमारे ठेंगे से!"

राधेमोहन ने स्त्री की ओर संकेत कर नंदलाल और जीवन से कहा—"अ-अब देख लीजिये बाबूजी, हां देख लो जीवन भैया, यह है भलमनसाहत का नतीजा! इसके बाल-बच्चों का ख्याल करो तो कर्ज के नाम पर यह ठेंगा दिखाती है।"

नंदलाल बेंच पर बैठ गये और छड़ी फर्श पर टकोरते हुए बोले—"ठेंगा तो राधे भैया तुम ही उसे दिखाते रहे। उसके मर्द को नशे में पागल बनाकर, उसकी सारी कमाई ऐंठ

कर उसके बच्चे भूखे बिलखाते रहे। तुम्हारी बोतल ले जाकर उनके हाथ क्या आया?" उन्होंने हाथ फैलाकर पूछा—"बताओ, ठेंगा दिखाना था या नहीं भैया?" नंदलाल ने स्वर कोमल कर लिया—"राधेमोहन, यह क्या लानत का काम तुमने गले बांध रखा है.......आदमी चाहे आधे पेट खाकर रह जाय, ऐसी जलालत का काम न करें!" उन्होंने घृणा प्रकट करने के लिये मुंह बिचका लिया—"ऊं हूँ, छी, छी!"

राधेमोहन ने उत्तेजित स्वर में सफाई देने के लिये कहा—"ब-बाबूजी, आप भी कैसी बातें कर रहे हैं? जैसे जानते नहीं कि कैसी मजबूरी में इस दूकान पर बैठता हूँ। आप से क्या छिपा है? चाचा के बाद भैया ही इस दुकान पर बैठते थे। लड़ाई के जमाने में भैया ने सौ दफा कहा कि मैं इस दुकान पर बैठूं तो वे सप्लाई का ठेका लेकर लाखों के वारे-न्यारे कर दिखायें। कुनबा भर मेरे पीछे पड़ा रहा कि घर का काम छोड़कर पराई नौकरी करता हूँ। मैं साठ रुपल्ली लेता रहा पर इस दुकान पर नहीं बैठा.......। आप क्या नहीं जानते?"

नंदलाल हाथ उठाकर बोले—"भैया, अब तो बैठते हो! यह काम जैसा बुरा तब था, वैसा बुरा अब है।"

राधेमोहन ने विवशता प्रकट की—"बाबूजी, किस्मत का कोई क्या करे! भाग्य में ही लिखा था। भैया चल बसे," उसने आंखें पोंछ ली—"और बैठना ही पड़ा पर मेरा ही दिल जानता है कि कैसी जलालत लगती है। ऐसा लगता है जैसे अपनी इज्जत बेच रहा हूँ और दूसरों का घर घाल रहा हूँ पर क्या करूं? बुजुर्गों ने घर का रोजगार ही ऐसा बना दिया है!"

जीवन शांति से बोला—"राधे भैया, तुम चाहे जो कहो, मेरे तो चाहे बाल-बच्चे भूखों मर जायँ, इस औरत की हालत देखकर मैं तो ऐसी दुकान पर कभी न बैठूं। चाहे मंडी में बोझा ढोकर बाल-बच्चों का पेट पाल लूं। राधे भैया, तुम्हारा दिल जाने कैसा है जो वह सब सह लेते हो! तुम्हीं बताओ, तुम्हारे इस रोजगार की वजह से कितने घर बरबाद होते होंगे!"

नंदलाल ध्यान आकर्षित करने के लिये फर्श पर छड़ी टकोर समझाने लगे—"घर रोजगार की तुमने अच्छी कही! भैया, कोई गांठ कतरने को ही अपना रोजगार समझ ले तो!" उन्होंने प्रश्न की मुद्रा में आंखें फैला दीं—"अरे कुछ लोग उसे भी रोजगार कहते हैं। अच्छी पट्टी पढ़ा रहे थे तुम उस औरत को कि तुम उसके घर से उसका गहना नहीं उठा लाये! उसका नहीं लाये तो और किया क्या? वेश्या क्या लोगों को उनके घर से बुलाने जाती है!"

राधेमोहन ने विरोध किया—"आप भी बाबूजी कहाँ की बात कहाँ ले गये। दुकान पर बैठता हूँ तो लोगों को पुकारता थोड़े ही हूँ कि आओ शराब पियो!"

जीवन ने तर्क की उत्तेजना में जंगले पर हाथ मारते हुए दूसरा हाथ उठाकर कहा—"क्या कह रहे हो, क्या कह रहे हो! मकड़ी मक्खियों, भुनगों को फंसाने के लिए जाला

बुनती है तो क्या उन्हें पुकारती भी है कि आओ फंसो, आओ फंसो!......यह क्या कहे जा रहे तुम?"

नंदलाल जीवन की उग्रता के संतुलन के लिये शांति से समझाने लगे—"सुनो, यह एक तरह से फंसाना ही तो हुआ। झूठे सुख का प्रलोभन देना फंसाना ही है! राष्ट्रपिता गांधीजी कह गये हैं", उसने तर्जनी उठाकर स्वर ऊंचा करके कहा—"नशा देश का सबसे बड़ा शत्रु है।" नंदलाल ने बात पलटने के लिये स्वर भी बदला—"अच्छा, तुम यह बताओ, आदमी नशा पीता क्यों है?"

जीवन ने टोक दिया—"कमबख्ती आती है तो पीता है और क्यों पीता है।"

नंदलाल बोले—"अरे भाई, यह तो हम और तुम समझते हैं। पीने वाला तो अपने आपको कमबख्त नहीं समझता। वह क्या समझता है?"

छिद्दू बोल उठा—"अरे मालिक, गम गलत कर लेते हैं लोग, दो पल हंस लेते हैं और क्या! पुराना तरीका चला आया है। देवता, राक्षस सभी पीते रहे। कोई नयी बात थोड़े ही है कि आज ही पीने लगे हों। ये तो संसार की माया है। हां, ज्यादा न पिये। आप ही कहो!"

जीवन ने राधेमोहन के सामने होकर प्रतारणा के स्वर में कहा—"वाह वाह, राधे बाबू, तुम यहाँ लोगों को गम से निजात दिलाने के लिये बैठे हो!......खूब निजात दिला रहे हो!"

नन्दलाल उसे रोककर बोले—"सुनो, हम बताएं, आदमी नशा पीता है दो मतलब से। गम की बात हो तो उसे भुलाने के लिए, अपने आपको धोखा देने के लिए। बेसुध हो जाने से गम की वजह तो दूर नहीं हो जाती!" उन्होंने दूसरी उंगली—"और दूसरी बात, सुख का साधन पाये बिना अपने आपको सुखी समझने के लिए......।"

जीवन बीच में बोल उठा—"हां-हां, तो यह कौन बड़ी अक्ल की बात है। हर तरह से अपने आपको धोखा देना है।" उसने राधेमोहन से कड़े स्वर में पूछा—"और राधे बाबू, तुम लोगों की खून-पसीने की कमाई समेट कर उन्हें धोखा बेचते हो, धोखा देते हो।"

राधेमोहन इस लांछना से घबरा गया—"म-मैं धोखा देता हूँ......मैं-मैं कि—किसे धोखा देता हूँ? मैं-मैं किसी को कुछ भी नहीं कहता।"

नन्दलाल ने छड़ी फर्श पर टकोरते हुए राधेमोहन का हाथ थाम लिया—"राधे भैया, नशाखोरी धोखा नहीं, पागलपन नहीं, यही बड़ी चालाकी है। बड़ा कमीनापन है। हम बतायें कैसे; सुनो, गम और दुख दूसरों के लिये छोड़कर खुद नशे में बेखबर हो जाना।" उनका स्वर ऊंचा हो गया—"अभी देखा तुमने उस औरत के मर्द को। घर भर का, जोरू-बच्चों का अन्न बोतल से पीकर खुद बेखबर हो रहा होगा।"

जीवन ने समर्थन किया—"ठीक कह रहे हैं! यह नशाखोरी की बेसुधी बहुत कमीनापन है। वह धूर्त बोतल पीकर धुत्त बन गया होगा, घर भर का दुख भुलाकर ज्ञानी बना बैठा होगा। इस बात का मतलब है स्वार्थ, दूसरों को मूर्ख बनाना!"

नन्दलाल ने फिर छड़ी टकोरकर अपनी ओर ध्यान आकर्षित किया—"अरे यह जेबकटी है! अपने हिस्से का दुख दूसरों पर छोड़कर खुद सुखी हो जाना, आनन्द मनाना; दूसरों का पेट भूख से पिचका कर उस बेहोशी में नाचना।......अगर कोई आदमी दूसरों से ऐसा व्यवहार करवाना अपना धन्धा बना ले तो उसे तुम क्या कहोगे राधेमोहन भैया?" नन्दलाल ने उत्तर के लिए राधेमोहन की आंखें मिला लीं।

राधेमोहन आंखें चुराये मुंह लटकाये उदास स्वर में बोला—"बाबूजी, आपकी कसम, मैं आज छोड़ दूं इस दुकान को पर कोई दूसरा काम भी तो मिले। लड़ाई के बाद से, जब से छटनी में नौकरी छूटी, जाने कहाँ-कहाँ कितनी दरख्वास्तें दे चुका। मुझे यहाँ बैठते स्वयं को अच्छा नहीं लगता। कहीं दूसरा काम मिल जाये तो यहाँ छिद्दू ही बैठ जायेंगे, खुद नहीं बैठूंगा पर सब जगह नो वेकेन्सी!"

जीवन उलाहने के स्वर में बोला—"क्या बातें करते हो भैया! ऐसे भूखे नहीं मर रहे हो।" उसने छत की ओर संकेत किया—"इतना बड़ा तो यह मकान है। इसी दुकान का एक हिस्सा किराये पर दे दो। यह दूसरों को जानवर बनाकर रोजी चलाना, जेबकटी की रोजी भी कोई रोजी है!"

जीवन फिर बोल उठा—"तुम मेरी सुनो, तुम तो शराब बेचकर अलग हो गये। पीने वाले आदमी की हालत का तो ख्याल करो! इसी औरत के मर्द की बात सोचो। बुरा न मानना भैया, सोचो तो अगर तुम्हारे घर की औरतों की यह हालत होती.......।"

जीने से बच्चे की पुकार सुनाई दी—"चाचा, अम्मा बुला रही हैं।"

राधेमोहन पुकार की उपेक्षा कर चुप रह गया।

नन्दलाल छड़ी फर्श पर टकोरते हुए बोले—"राधे भैया सुनो, कोई खुद पीने वाला हो, इसे बुरा न मानता हो तो हम कहें कि एक बात है।"

जीने से बच्चे की पुकार फिर सुनाई दी—"चाचा, अम्मा बुला रही हैं।"

नन्दलाल राधेमोहन को पुकार की उपेक्षा करते देखकर कहते गये—"तुम पढ़े-लिखे सज्जन अपने गले में तो एक घूंट उतारने के लिये तैयार नहीं। खुद इसे बुरा मानो और दूसरों से कुकर्म कराओ तो तुम्हें अपनी आंखों ही यह कैसा लगता है!"

जीने से फिर बच्चे की पुकार सुनाई दी—"चाचा, अम्मा बुला रही हैं।"

राधेमोहन ने जीने की ओर घूमकर झुंझलाहट भरे स्वर में कह दिया—"अरे भाई, सुन लिया, कह दो आते हैं!" उसने छिद्दू को संबोधन किया—"छिद्दू काका, कह क्यों नहीं देते कि हम आ रहे हैं। यहाँ बैठे टुकर-टुकर ताक रहे हो, जवाब देते भी नहीं बनता। क्या सिर खा लिया!"

छिद्दू ने जीने की ओर बढ़कर ऊंचे स्वर में कह दिया—"आते हैं लल्ली, आते हैं। बाबू बात कर रहे हैं!"

जीने से फिर पुकार सुनाई दी—"अम्मा कह रही हैं, खाना ठण्डा हो रहा है।"

राधेमोहन झल्ला उठा—"हो रहा है तो होने दो! यह घर और दुकान एक साथ होना भी मुसीबत। घर में जाओ तो दुकान से पुकार पड़ती है, दुकान पर आओ तो घर से पुकार।" उसने फिर छिद्दू काका की ओर देखा—"काका कह क्यों नहीं देते, अभी ठहरें। दिया-बत्ती करके आयेंगे।" वह जीवन की ओर घूम गया—"जीवन दादा, हम तो कभी से सोच रहे हैं, कोई इस पाप को समेटने वाला मिल जाता तो मैं इससे हाथ धो लेता। हमें कोई आधी रकम भी दे दे तो ठेका उसके नाम कर दूँ।"

जीवन हंस पड़ा—"वाह वाह, यह खूब कहा तुमने। यह तो तुमने धर्मात्मा बनियागीरी की बुद्धि दिखायी भारी सूद पर रुपया कसाई को उधार देकर गोहत्या के व्यापार से मुनाफा भी ले ले और स्वयं गोहत्या के अपराध से भी बचा रहे।"

राधेमोहन ने आत्मरक्षा में विरोध किया—"हमें ही सब कह रहे हैं......हमारी दुकान बन्द हो जायेगी तो क्या सब ठेके बन्द हो जायेंगे? हम तो इसे बुरा मानते ही हैं। अगर हमारी दुकान बन्द हो जाने से शराब बन्द हो जाये तो हम आज छोड़ दें परन्तु," उसने नन्दलाल की ओर देखा, "बाबूजी, और सब टेके तो रहेंगे ही ......।"

नन्दलाल राधेमोहन की उत्तेजना के उत्तर में फर्श पर छड़ी जोर से खटखटाकर बोले—"तो फिर तुम्हारा मतलब हुआ कि इतनी चोरियां रोज होती हैं, दस-पाँच आदमी और चोरी करने लगें तो क्या हर्ज; क्यों!" उनका स्वर ऊँचा हो गया—"इतनी वेश्यायें कोठों पर बैठती हैं, दस-पचास और आ बैठें तो कुछ फर्क नहीं पड़ेगा; क्यों! मेरे भाई, पाप में जितनी कमी हो उतना ही अच्छा! मेरे भाई, जो पाप और दोष को बुरा नहीं मानता, उससे हम क्या कहें? परन्तु तुम्हारी तो आंखें खुली हैं। तुम इसे पाप मानते ही हो। तुम से ही तो पाप को छोड़ने और रोकने की आशा की जा सकेगी।"

जीवन ने आत्मीयता से अनुरोध के स्वर में कहा—"राधे भाई, जब बात समझ में आ गयी तो छोड़ो इस पाप को। आज ही छोड़ो इस पाप को। कितना विकट परिणाम तुमने नशाखोरी का इस स्त्री के दुर्भाग्य के रूप में देखा है। तुम दूसरों के लिये उदाहरण बन कर दिखा दो। भैया राधेमोहन, आज ही लिख डालो दरखास्त ठेका मन्सूख कराई की।"

नन्दलाल ने भी अत्यन्त अनुरोध के स्वर में कहा—"इसी होली में जला डालो राधे इस पाप को! तुम लोगों को नशे की बरबादी से बचाओगे तो भगवान तुम्हारी आप सुनेंगे। उनकी महिमा अपार है भैया।"

जीवन फिर बोला—"और क्या! और यह बला बरबाद भी तो गरीब को ही करती है।"

नंदलाल ने अपने आग्रह को सबल बनाये रखने के लिये छड़ी खटखटाकर कहा—"दूसरों के नाश का यह कारोबार भी कोई कारोबार है! पैसा ही गलता हो तो एक बात है भैया, इससे तो आदमी ही नहीं रहता। कितने घर बरबाद हो गये इसमें! कहो तो सौ-दो सौ मैं गिना दूँ। मुझे तो उंगलियों पर याद हैं।"

जीवन ने भी साथ दिया—"अरे दूर क्या जाओगे, इस कामता की ही बात सोचो; बच्चे भूख से बिलख रहे हैं औरत राह-बराह भटक रही है। वह बेहया पीकर धुत्त बना बैठा होगा। पीने वाला कम्बख्त दूसरों को दुखी बनाकर खुद सुखी बनने की बात सोचता है। इससे बड़ा कमीनापन और पाप क्या होगा! चोरी क्या इससे बड़ा पाप है?"

नंदलाल ने अपने ढंग से कहा—"पाप-पुण्य की बात छोड़ो। हम तो कहते हैं, जो अपने बाल-बच्चों की घर-बार की जिम्मेदारी न समझे और उनके पेट पर पांव रखकर सुखी बनने की बात सोचे उस पर लानत है। वह हैवान है। और राधे भैया, बुरा न मानना, लानत है इस रोजगार पर जो लोगों को इस राह ले जाने का दरवाजा दिखाये।"

छिद्दू दुहाई के स्वर में हाथ दिखाकर बोल उठा—"मालिक, आप लोग इलमदार बड़े आदमी हैं पर मालिक यह तो सदा से संसार की रीति चली आयी है।"

जीने से फिर बच्चे की पुकार सुनाई दी—"चाचा, अम्मा बुला रही हैं!"

राधेमोहन ने झल्लाहट के स्वर में छिद्दू को सम्बोधित किया—"छिद्दू काका, तुम से सौ बार कह दिया कि ऊपर जाकर कह दो कि ठहर जायें, सो जाओगे नहीं, यहाँ बैठे टर्र-टर्र किये जाओगे।"

छिद्दू ने आतुरता से कहा—"अरे मालिक, जा तो रहे हैं।" वह अनिच्छा से जीने की ओर बढ़ गया—"लो, यह चले जा रहे हैं।"

जीवन ने स्वर में भावुकता और अनुरोध भर कर कहा—"मान जाओ राधेमोहन, अभी इसी घड़ी इस पाप से त्याग लिख डालो। समझ लेना, इस एक घर की बरबादी का प्रायश्चित हो गया। सोचो तो, दूसरों को बरबाद करके तुम कहाँ सुख पाओगे।"

राधेमोहन नन्दलाल और जीवन की बाढ़ सुनकर कुछ पल चुपचाप सिर झुकाये रहा। फिर दीर्घ निश्वास से बोला—"अच्छा, ठीक है।" उसने झपाटे से डेस्क खोल लिया—"अच्छा, कागज निकाल लें......नहीं, पहले जरा रोशनी कर लें।" उसने इधर-उधर देखा—"छिद्दू माचिस जाने कहाँ रख जाते हैं......अरे यह है तो। मिल गयी माचिस।"

राधेमोहन लैम्प जलाने लगा।

नन्दलाल कहते गये—"मनुष्य अपने ही स्वार्थ को देखे, समाज के कल्याण की चिन्ता न करे तो मनुष्य और पशु में अन्तर ही क्या!"

जीवन ने भी कहा—"जी हां, और क्या! ऐसे ही एक दूसरे के उदाहरण से सब लोग भलाई करना सीखते हैं। आज राधे भैया भला काम करेंगे, उन्हें देख कल चार और करेंगे। यही तो सन्मार्ग है।"

नन्दलाल बोले—"हां-हां, सोचो, पहले कांग्रेस में ही भाग लेते लोग कैसे डरते थे! फिर एक-दूसरे को देखकर साहस करने लगे……अरे हमें तो वे दिन याद हैं।"

राधेमोहन लैम्प जलाकर अंगोछे से हाथ पोंछ कर बोला—"हमारा कलम जाने कहाँ गया……अरे है तो सही।" उसने प्रश्नात्मक दृष्टि से नन्दलाल और जीवन की ओर देखा—"हां बोलिये न, क्या लिखा जाये? कैसे लिखा जायेगा?"

जीवन ने जंगले पर कोहनी टिका दी। सिर खुजलाते हुए बोला—"इसमें क्या है, हम बताते हैं वैसे लिख डालो। लिखो, श्रीमान् मंत्री महोदय, मद्य कर विभाग……।"

नन्दलाल ने छड़ी से टकोर की—"वाह, इसमें मन्त्री महोदय क्या करेंगे! सीधे एक्साइज कमिश्नर को एड्रेस, आई मीन, दरखास्त दो।"

जीवन ने माना—"हां, ठीक कह रहे हैं बाबूजी। लिखो, मान्यवर एक्साइज कमिश्नर महोदय! अर्ज यह है ……न न न……लिखो, सेवा में निवेदन है।"

राधेमोहन लिखते-लिखते दोहराता गया—"सेवा……में……निवेदन है, आगे बोलो जीवन भाई।"

जीवन सोच-सोचकर, श्रुत लेख लिखाने के ढंग से धीमे-धीमे बोलने लगे—"मैं……अपने……अनुभव से……इस परिणाम……पर पहुँचा हूँ……कि……शराब का कारोबार……नहीं नहीं……हां तुम लिखो मद्य-विक्रय का व्यवसाय……किसी भी नागरिक के लिये……।"

राधेमोहन जीवन के अन्तिम शब्द दोहराते हुए लिखता गया—"मद्य-विक्रय……का व्यवसाय किसी भी……नागरिक के लिये……हां, आगे बोलो भैया……।"

जीवन एकाग्रता के लिये माथे को पकड़ कर बोला—"देखो, क्या कहते हैं उसे…… याद नहीं आ रहा……हां, मद्य-विक्रय का व्यवसाय किसी भी नागरिक के लिये पतित कार्य और अपमान-जनक है।"

नन्दलाल ने समर्थन किया—"ठीक तो है। अपमानजनक तो है ही।"

जीवन ने जरा खांस कर कहा—"अब दूसरे पैरे में लिखो, मैं यह अनुभव करता हूँ……कि शराब का नशा……आदमी ……न……न नहीं व्यक्ति को ……सेल्फिश, नहीं भाई।" ……उसने माथा पकड़कर सोचा—"क्या कहते हैं उसे?"

नन्दलाल ने छड़ी खटखटाकर सुझाया—"स्वार्थी, लिखो स्वार्थी।"

राधेमोहन लिखता गया—"व्यक्ति को स्वार्थी बनाकर हां……।"

जीवन फिर बोला—"हां, स्वार्थी बनाकर अपने परिवार और समाज के प्रति गैरजिम्मेदार……"

नन्दलाल ने छड़ी खटकाकर टोक दिया—"यह क्या आधा तीतर आधा बटेर! हिन्दी में लिख रहे हो तो शुद्ध हिन्दी लिखो! लिखो, परिवार और समाज के प्रति……क्या कहते हैं, हां……अनुत्तरदायी बना देता है।"

राधेमोहन ने कागज पर सिर झुकाये दोहराया—"परिवार और समाज के प्रति······अनुत्तरदायी······बना देता है। हां, और······।"

जीवन जंगले का सहाराकर गम्भीर स्वर में बोला—"आगे लिखो, यह अनुभव······कर लेने······के बाद······मैं······इस दुकान को······जारी रखने में असमर्थ हूँ। ······इसलिये मैं······इस पत्र द्वारा ······आपको······सूचना ······दे रहा हूँ······कि मैं······अपना ठेका······छोड़ रहा हूँ······और कल से······अपने दुकान नहीं खोलूंगा······बस!"

नन्दलाल ने सुझाया—"आगे यह लिख सकते हो, अगर मेरी दुकान का सामान एजेन्सी वापिस ले ले।"

जीवन ने टोक दिया—"वाह, वाह, एजेन्सी क्यों ले लेगी······कैसे ले लेगी?"

एक वयस्क लड़का दुकान में आकर उतावली से पुकार उठा—"बाबू, हमें एक बोतल महुआ दिला दो। चाचा मंगा रहे हैं।"

नन्दलाल, जीवन और राधे उसकी उपेक्षा कर प्रार्थना-पत्र लिखने-लिखाने में लगे रहे।

नन्दलाल ने छड़ी खटकाकर सुझाव दिया—"अगर ले ले तो अच्छा ही है। नुकसान क्यों हो······तुम्हारा क्या हर्ज है? तुम लिख दो, अगर एजेन्सी वापिस ले ले तो कृपा होगी वर्ना इसे सरकारी माल समझकर नष्ट कर दिया जाये। मैं यह नुकसान बरदाश्त करने के लिये तैयार हूँ।"

राधेमोहन पल भर चुप रहकर बोला—"अच्छा······लिख दिया।"

जीवन ने कहा—"बस दस्तखत कर दो इस पर। हां, एक काम करो, वही तो असली बात है। अपने इस त्यागपत्र की पांच प्रतियां बना लो और सभी पत्रों को एक-एक प्रति और अपने त्यागपत्र की सूचना भेज दो ताकि तुम्हारे त्याग का उदाहरण दूसरे ठेकेदारों के सामने आये, उन्हें कुछ शिक्षा मिले······समझे!"

दुकान में आया वयस्क लड़का अपनी ओर ध्यान देते न देखकर उतावली से फिर बोल उठा—"अरे बाबू, आप लोगों का लिखना-पढ़ना होता रहेगा, हमारे यहाँ लोग बैठे हुए हैं।" वह उपेक्षा से खिन्न हो गया—"अरे यहाँ तो कोई सुनता ही नहीं।"

राधेमोहन ने उसकी ओर ध्यान नहीं दिया।

लड़के ने इधर-उधर देखकर पूछा—"छिद्दू काका कहाँ हैं?" और उसने जीने की ओर घूम जोर से पुकार लिया—"छिद्दू काका! ओ छिद्दू काका!"

राधेमोहन अधिकार के स्वर में बोल उठा—"छिद्दू काका क्या करेंगे आकर? हम शराब नहीं बेचेंगे। बंद कर दिया हमने शराब बेचना।"

लड़के ने विस्मय से पूछा—"क्या कह रहे हो बाबू! बन्द कर दिया! अभी सात नहीं बजे, ठेका आठ बजे बन्द होता है।"

जीना उतरने की आहट।

छिद्दू ने जीने से निकल कर पूछा—"कहो लाखन भैया, क्या है ? क्यों पुकार रहे हो भैया ?"

लड़का शिकायत के उत्तेजित स्वर में बोला—"यह देखो छिद्दू काका, क्या कह रहे हैं छोटे बाबू ! देखो तो, उधार नहीं माँग रहे हैं। खरे नकद दाम दे रहे हैं। यह कह रहे हैं कि बन्द कर दिया।"

राधेमोहन ने टोक दिया—"लाखन, तुम फिजूल बहस कर रहे हो। आठ और सात बजे का सवाल नहीं है। भैया, हम कह रहे हैं कि शराब का ठेका छोड़ दिया हमने वचन कर लिया अब शराब नहीं बेचेंगे, समझे ! ठेके से इस्तीफा लिख दिया। यह देख लो……।" उसने लिखा हुआ कागज लड़के के सामने कर दिया।

लाखन ने विस्मय और विरोध के स्वर में पूछा—"छिद्दू काका, ऐसा भी सुना है कभी ? कहीं ऐसा भी होता है……ठेके से भी इस्तीफा होता है क्या !"

छिद्दू बहुत घबरा कर बोला—"यह क्या कहे रहे हो छोटे बाबू ! ……कैसा इस्तीफा ?"

राधेमोहन छिद्दू काका की उपेक्षा कर दृढ़ता से बोला—"लाखन, तुमसे कह दिया, लेना हो तो और जगह जाओ !"

लाखन ने बेपरवाही प्रकट की—"अरे बाबू, बिगड़ क्यों रहे हो। मुफ्त नहीं माँग रहे, उधार नहीं माँग रहे। खरे नगद दाम हाथ में लिये हैं। तुम नहीं बेचते, न बेचो। दूसरे बीसियों पुकार कर देंगे।"

लाखन पाँव पटकता दुकान से चल दिया।

छिद्दू ने बहुत ही घबराहट और व्याकुलता से पुकारा—"अरे लाखन ! ऐ भैया, सुनो ! ठहरो तो……।"

राधेमोहन ने कड़े स्वर में डांटा—"छिद्दू काका, यह क्या बेमतलब झंझट कर रहे हो !……हम कह रहे हैं हम शराब नहीं बेचेंगे ! हमने ठेके से इस्तीफा लिख दिया है। हमने कौल कर लिया है।"

छिद्दू प्रबल आघात से आंखें और मुँह बाये क्षण भर देखाता रह गया और व्याकुल निराश स्वर में बोला—"बाबू, सराब नहीं बेचोगे ? ……तुमने इस्तैफा लिख दिया ! यह कैसे हो सकता है बाबू, घर का रोजगार कोई ऐसे छोड़ सकता है बाबू !" उसने आग्रह से कहा—"नहीं बाबू, होस करो ! ऐसा नहीं हो सकता बाबू !"

राधेमोहन ने दृढ़ता से कहा—"काका, हमने कह दिया अब यह पाप नहीं करेंगे। हमने कौल कर लिया……बस हो गया आज !"

छिद्दू ने बिड़गिड़ा कर समझाया—"नहीं मालिक, तुम ऐसा नहीं कर सकते ! यह बड़े मालिक का बनाया कारोबार तुम नहीं बिगाड़ सकते। बड़ी मालकिन ऐसा नहीं होने देंगी।

हमारे तन में जान है तो हम ऐसा नहीं होने देंगे। हमने इस घर का नमक खाया है बाबू, हम इस घर की बरबादी·······।"

राधेमोहन ने क्रोध में डांट दिया—"बस हो गया छिद्दू काका, बको नहीं! तुम ऊपर जाओ।"

छिद्दू अपमान से क्षण भर स्तब्ध रह गया। उसकी आँखों में आंसू छलक आये। आर्द्र स्वर में बोला—"बाबू, हमने तुम्हें गोद में खिलाया है, हमें ऐसे दुत्कारोगे?"

राधेमोहन ने कड़े स्वर में कह दिया—"खिलाया है, हम तुम्हें अपना बड़ा मानते हैं पर तुम्हारे कहने से पाप नहीं करेंगे। काका, तुम अभी ऊपर जाओ!"

छिद्दू के पाँव उठ नहीं पा रहे थे। वह आँखें पोंछते जीने से ऊपर चला गया।

जीवन ने प्रशंसा और उत्साह के स्वर में कहा—"वाह भाई राधे, मान गये भैया! तुम्हारे जैसे आदमी ही दुनिया में नाम कर जाते हैं, पुण्य कमा जाते हैं।"

राधेमोहन ने संकोच से कहा—"इसमें नाम और पुण्य क्या है भैया, हम तो किसी तरह पाप से अपनी जान बचा रहे है।"

नन्दलाल फर्श पर छड़ी टकोर कर बोले—"भैया, हम पाप-पुण्य की बात नहीं जानते। इतना जानते हैं कि नशे में अपने दुख का बोझ दूसरों के कंधे पर डाल कर खुद सुखी हो जाना बड़ा कमीनापन है। यह मनुष्यता से गिर जाना है। तुम दूसरों को इस पाप से बचाओगे, समाज का भला करोगे, समाज तुम्हें आशीर्वाद देगा। भगवान तुम्हारा कल्याण करेंगे।"

दुकान के बाहर से पुकार सुनाई देती है—"अरे ओ राधे भैया! भैया देखो, देवकी जीजी आई है····· अरे बाहर तो निकलो!"

राधेमोहन ठीक से समझ नहीं पा रहा था। उसने ऊंचे स्वर में उत्तर दिया—"आते हैं, आते हैं भाई!"

राधेमोहन उतावली में तख्त से कूदकर दुकान से बाहर जा रहा था। उसके निकल सकने से पहले ही धोती पर चादर ओढ़े, माथे पर आंचल खींचे एक युवा स्त्री, शिथिल चाल से सड़क से दुकान में आ गई। स्त्री के बगल में छोटी सी गठरी थी। उसकी बायीं उँगली थामे एक ढाई-तीन बरस का लड़का साथ था और दायीं ओर चार-पांच बरस की लड़की थी।

राधेमोहन स्त्री को देखकर विस्मय और प्रसन्नता से पुकार उठा—"अरे जीजी, अभी आ रही हो?" उसने छोटे लड़के को पुचकारा—"ओ हो, रमेश बाबू, अब तो बड़े हो गये तुम! पाँव-पाँव चलने लगे·······और तुम गिल्ली रानी," उसने बड़की को भी पुकार कर पुचकारा। "जीजी, खत डाल दिया होता। हम स्टेशन पर आ जाते। खबर क्यों नहीं दी? क्या ऐसे ही चली आ रही हो? सामान-वामान कुछ·······।"

जीजी ने उदास स्वर मे बताया—"भैया, टागे पर है सब।"

राधेमोहन ने पूछा—"टागे पर है ? अच्छा अभी मगाते है।" उसने पुकारा—"छिद्दू काका ! ओ छिद्दू काका ! नीचे आओ जरा भाई, देवकी जीजी आई है।" वह जीजी की ओर घूमकर बोला—"अभी आया एक मिनट मे, देखूँ, तो।"

राधेमोहन सडक पर देखने चला गया।

राधेमोहन ने लौटकर पूछा—"जीजी, टागे पर सब तुम्हारा ही सामान है ? इतना सब क्यो उठा लायी तुम्हारे भाई के घर मे क्या बिस्तर भाडे की कमी थी ! जैसे अब तक चलता था, अब भी चल जाता।"

जीजी आचल मे मुह छिपाकर ऊचे स्वर मे रो दी, रोते रोते बोली—"यह सब किसे दे आती कहाँ छोड आती ?"

राधेमोहन ने विस्मय से पूछा—"चन्दनलाल जीजाजी नही आये ? उन्हे क्या नही मिली ?"

जीजी आचल से चेहरा ढके और रो दी—' उन्हे क्या छुट्टी मिलगी ! वे तो सदा की छुट्टी ले गये !"

राधेमोहन विस्मय के आघात से थुथला गया —"क क क्या कह रही हो जीजी !"

जीजी के आसू और भी अधिक बह आये। हिचकी लेकर बोली—"ठीक ही तो कह रही हूँ। हम तो उनके जीते जी बेआदमी की निरासरे हो गयी।"

राधेमोहन ने बहुत घबरा कर पूछा—"क्या कह रही हो जीजी ! चन्दनलाल जीजाजी कहाँ है ? आये क्यो नही ?"

जीजी ने माथे पर हाथ मार लिया—"वे क्या आते, उन्हे तो जहाँ जाना था, हमे लात मारकर चले गये।"

राधेमोहन कुछ समझ नही पाया। उसने व्याकुलता से पूछा—"चले गये ! क्या कह रही हो जीजी !"

जीजी रुलाई को हिचकी से रोकते हुए बोली—"तुम क्या जानते नही कैसे थे वो ?"

राधेमोहन ने माना—"जानते क्यो नही जीजी। वैसे सीधे और भले आदमी दुनिया मे कम मिलेगे। कोई ऐब उन्हे छू नही गया था।"

जीजी ने रुलाई का घूँट भर कहा—"सीधे क्या थे ! अपने मन की ही तो करते थे। दूसरो से उन्हे क्या मतलब था। नित भूरी कमली वाले बाबाजी के यहाँ समाधि लगाने जा बैठते थे।"

राधेमोहन का समाधान नही हुआ, बोला—अरे तो इससे क्या, यह तो धरम का ही काम है।"

जीजी कुछ उत्तेजित हो गईं—"धरम का ही तो काम किया, घर का काम तो कभी नहीं किया। जब देखो, वो जोग-बसिठ और गीता पढ़ रहे हैं। बच्चे बीमार पड़ जायें तो कह देते, भगवान की लीला है। घर में खर्च की तंगी हो तो कह देते, क्या माया में फंसी हो; सन्तोष में सबसे बड़ा सुख है। और वे बाबाजी उन्हें समझाते रहते थे—बच्चा, यह संसार माया है। साथ कोई नहीं जायेगा। यह दुनिया भरम है। घर, बाल-बच्चे, सब भरम है। सुख है, संसार को भरम समझ लेने में...... ब्रह्म में लीन हो जाने में।"

जीवन ने सहानुभूति से पूछा—"तो क्या सन्यासी हो गये?"

जीजी ने स्वर सम्हाल कर आंखों पर आंचल रखे बताया—"जाने कितनी बार बाबाजी के साथ जाकर जोगी बनने के लिये तैयार हुए। हम पांव पकड़-पकड़ कर रोके रखती थीं।"

राधेमोहन ने दीर्घ श्वास लेकर, खांस कर पूछा—"क्या कर रही हो जीजी......तो क्या सचमुच संन्यासी हो गये?" अधीरता के कारण उसका गला रुक गया—"पता है, कहाँ गये?......कब गये?"

जीजी ने माथे पर हाथ मारा—"हम क्या जाने! हमसे कुछ कह थोड़े ही गये। पिछले सुक्करवार की रात में जाने कब उठ गये, सांकल खोल कर निकल गये। सुबह दिखाई ही नहीं दिये। हम उनके पांव पकड़-पकड़ रोकती रहती थीं कि अपने बाल-बच्चों की तरफ देखो......तो कह देते थे, तुम माया हो, हमें भरम में फंसाना चाहती हो। हम सान्ती चाहते हैं।" जीजी ने हिचकी ली—"कपड़ा-लत्ता सब छोड गये। घर-बार, बाल-बच्चों में सबसे प्यारी रही, वही मरी मिरगछाला, बस उसे ही लेते गये और यह चिट्ठी,"......आंचल की गाठ खोलने लगी—"लिखकर छोड़ गये।" जीजी ने पत्र राधे की ओर हाथ बढ़ाकर कहा—"लो भैया।"

राधेमोहन ने अस्थिर हाथ से चिट्ठी ले ली।

जीवन ने कहा—"पत्र को पढ़कर देखो राधे भैया!"

राधेमोहन आंखें डबडबा जाने के कारण चश्मा उतार-उतार कर कुरते के दामन से आंखें पोछ रहा था।

नन्दलाल ने छड़ी फर्श पर खटखटाते हुए जीवन से कहा—"तुम पढ़ दो न।"

जीजी ने गहरी सांस छोड़ी—"तुम्हीं पढ़ दो भैया।"

जीवन पत्र लेकर लैम्प के समीप हो गया। रोशनी बढ़ाते हुए बोला—"जरा रोशनी तेज कर लें।" आंखें पत्र पर लगाये पल भर मौन रहकर बोला आनन्द......की खोज......में जा रहा हूँ। मैं......हिमालय......पर्वत पर......निवास करूंगा। मेरे...... पीछे दौड़ने ......से कुछ नहीं होगा। मैने......संसार......माया-मोह का......बन्धन तोड़ दिया है।

यह संसार माया है। इस संसार की ……चिन्ता भ्रम है।……असली सुख……माया के भ्रम को……पहचान कर…… ब्रह्म का सुख पाने में हैं। यही……परम शान्ति है। हम आनन्द की……खोज में जा रहे हैं। तुम भी आनन्द……प्राप्त करो!"

जीजी आंखों पर आंचल रखकर ऊंचे स्वर में रो उठी—"हाय मैं मर गयी!"

चार-पांच पल वह जोर से रोती रही। सब लोग स्तम्भ खड़े रहे।

जीजी फिर बोलीं—"हाँ भैया, वह तो आनन्द की खोज में चले गये। उन्हें तो सान्ती मिल गयी। आग लगे ऐसी सान्ती और आनन्द में! ऐसे जोग का ही आनन्द लेना था तो गिरस्थी काहे करी थी। हमारे रोने-धोने से उन्हें क्या? भाड़ में जाय ऐसा जोग-धरम जो दूसरे का कलपना न देखे! सात दिन तलक उनकी राह देखती रही। वह भला क्या लौटते!"

नन्दलाल ने ध्यान आकर्षित करने के लिये फर्श पर छड़ी खटका कर पूछा—"क्या कुछ इन्तजाम नहीं कर गये? क्यों राधे भैया, तुम्हें भी कुछ खबर नहीं दी? उनका ऐसा ही ख्याल था तो बाल-बच्चों का तो कुछ प्रबन्ध कर जाना चाहिये था।"

जीजी आंखों पर आंचल रखे रोये जा रही थी। वैसे ही बोली—"उन्हें किसका खयाल था, उन्हें तो अपनी सान्ती और आनन्द का खयाल था। सात दिन जब वे नहीं लौटे तो उनके दफतर के साहब से मिलने गयी। भैया, बड़ी सरम लगी पर जिसके सहारे सरम थी, वही चला गया तो सरम कैसी निभती। साहब के सामने रोयी, झींकी, अंगूठा लगाकर उनकी तनखाह ली……।" जीजी जोर से रो पड़ी।

नन्दलाल ने संतोष प्रकट किया—"तनखाह दे दी, यही बड़ी बात समझो। कोई बाल-बच्चेदार, भला आदमी रहा होगा बेचारा। संसार में भले आदमी भी हैं ही।"

जीजी आंसुओं का घूंट भर कर दीर्घ निश्वास लेकर आंखों से आंचल हटाकर बोली—"हाँ भैया, उसने बाल-बच्चों के हाल पर रहम खाकर पूरे महीने का तनखाह दिला दी। दो महीने का किराया बाकी था, वह दिया। अब भरोसा किसका था जो और किराया चढ़ाती।" उसने दोनों बच्चों की ओर संकेत किया—"इन्हें क्या खिलाती?" उसने राधे की ओर हाथ बढ़ाकर कहा—"तुम्हीं मेरे भाई हो और बाप के मर जाने के बाद बाप भी तुम्हीं हो, सो तुम्हारे द्वारे आ बैठी हूँ। जिसने हमारे साथ ऐसी करी, रामजी उसे कभी सान्ती न मिले!" जीजी फिर ऊंचे स्वर में बिलख उठी।

राधेमोहन शून्य की ओर देखता मौन खड़ा रहा। शेष लोग जीजी की अवस्था पर द्रवित चुप रहे।

राधेमोहन आवेश दबा न सकने के कारण बोल उठा—"ज-जीजी आनन्द की खोज में चले गये!" उसका स्वर ऊंचा हो गया—"च-चन्दनलाल जीजा आनन्द की खोज में चले गये। घ-घरवाली को रुलाकर, ब-बच्चों को बिलखता छोड़कर आनन्द की खोज में चले गये।"……वह चिल्लाने लगा—"वे संसार के म-माया और परिवार के उत्तरदायित्व

के भ्रम और दुख को छोड़कर आनन्द की खोज में चले गये!" वह जीवन की ओर घूम गया—"क्यों जीवन भैया, यह क्या स्वार्थ और कमीनापन नहीं है?"

जीवन ने भय और विस्मय की मुद्रा में हाथ उठा लिया—"राधे भाई, यह क्या कह रहे हो! महात्माओं को ऐसा नहीं कहते! महात्मा लोग ज्ञानी होते हैं, संसार से ऊपर होते हैं। अपने मन को शान्त करो!"

राधेमोहन उत्तेजित हो गया—"ह-हम अपने मन को शान्त रखें!" वह सहसा हँस उठा—"वैसे ही शान्त हो जाएं जैसे हमारे जीजा शान्ति पा सके?" उसकी दृष्टि छत की ओर चली गयी—"ह-हमारे जीजा ज्ञानी हो गये, तभी तो वे भ्रम और दुख की मा-माया के बन्धन को छोड़कर सुखी हो गये और ब-बाल-बच्चों को बिलखने के लिये छोड़ गये।"......उसने चुनौती में जीवन की ओर देखा--"तु-तुम उन्हें ज्ञानी और महात्मा कहोगे, क्यों?" वह नन्दलाल की ओर घूम गया—"बाबूजी, आप उन्हें ज्ञानी और महात्मा कहेंगे?" राधेमोहन बहुत उत्तेजित हो गया—"और कामता को गाली देंगे। वह नशे में अपने बाल-बच्चों को भुलाकर आनन्द मनायेगा तो उसे गाली देंगे! हमारे जीजा ने क्या किया?"

नन्दलाल की छड़ी फर्श पर नाचने लगी--"भैया राधे, जरा शान्त, शान्त हो। क्या हो गया तुम्हें? परमार्थ और नशे को एक में मिलाये दे रहे हो!......क्या हो गया तुम्हें? शान्त हो। सोच-समझकर बोलना चाहिए।"

राधेमोहन क्रोध में बावला सा हो गया—"ह-हमें सोच-समझकर बोलना चाहिए, अ-आप लोगो को नहीं सोचना चाहिये!" वह थुथला गया—"जि...... जीजा शान्ति के न......नशे में घ-घर-बार, ब-बाल-बच्चों को लात मार गये त-तो ग-ज्ञानी हैं। क-कामता हमारी दुकान से बोतल लेकर बाल-बच्चों को भूल जाय तो कमीना है! क-कामता कभी-कभी अपने बाल-बच्चों के पेट पर पांव रखकर नशे में नाचता है इसलिये डरपोक और कमीना है। हमारे जीजा सदा के लिये आनन्द की बोतल चढ़ाकर सुखी हो गये, बीबी-बच्चों को लात मार गये, इसलिये वे ग-ज्ञानी हैं!"

जीवन राधे की अवस्था से दुखी होकर सान्त्वना के स्वर में बोला—"क्या कहे जा रहे हो राधे भैया, सोच कर बोलो। योगी और शराबी को एक में मिला रहे हो! शराबी नशे में कर्तव्य से अन्धा होता है, त्यागी परलोकमुख होता है। तुम्हारी बुद्धि को क्या हो गया है!"

राधेमोहन की उत्तेजना और भी बढ़ गयी—"सं-सन्यासी ज्ञान में परलोक को देखता है। हम क्या देख रहे हैं? आप क्या देखते रहे हैं? आपको मेरी बहन और उसके बच्चे बिलखते दिखाई नहीं देते? जिसे यह दिखाई नहीं देता, उसे क्या दिखाई देता है?" जीवन की ओर घूमकर —"तुम्हें कामता के बीवी-बच्चे बरबाद होते दिखाई देते हैं, कामता को तो दिखाई नहीं देते। कामता नशे में अनुत्तरदायी बनता है। हमारे जीजा ज्ञान

में क्या बनते हैं? कामता दो चार घण्टे के नशे के लिये बाल-बच्चों को ठोकर मारता है। परमज्ञानी अपने बाल-बच्चों को सदा के लिये ठोकर मार गये बोलो, कौन नशा बड़ा है?" उसने एक कदम बढ़कर उत्तर माँगा—"हम पूछते हैं, कामता की इतनी हिम्मत है कि दूसरों के सामने अपने नशे का अभिमान करे? कौन नशा बड़ा है?......बोलो? जो चढ़कर कभी टूटता नहीं? और जिसकी प्रशंसा होती है......कहो!"

जीजी अपना कपाल ठोक कर फिर रो पड़ी—"वो सान्ती पा गये पर हम अभागिन को तो बेआसरे कर गये। बच्चों को तो बिलखता छोड़ गये। हाय रामजी, आग लगे उसके ज्ञान के नशे में। आग लगे उनके सान्ती के नशे में।"

राधेमोहन ने सीने पर हाथ मार कर कहा—"ह-हम नशा बेचने के लिये लज्जित हैं। क-कामता नशा पीने के लिए शर्मिन्दा है परन्तु हमारे जीजा अपने ग-ज्ञान के नशे का अभिमान करेंगें। अभिमान में अपना नशा बांटते फिरेंगे और तुम," उसने तर्जनी से जीवन को चेतावनी दी—"माथा झुकाकर उनका आदर करना। उनकी सेवा करके पुण्य कमाना और हमें गाली देना कि ह-हम नशा बेचकर दुनिया को बरबाद करते हैं।"

बहिन की ओर घूम गया—"जीजी, अच्छे समय आ गयी तुम। महात्मा लोग ज्ञान का नशा बेचें तो ठीक है। जो समाज उनका पालन करता है, उसी समाज को ठोकर मारें तो ठीक है। राधेमोहन को बोतल का नशा नहीं बेचना चाहिये। कहाँ है हमारा इस्तीफा?......उसने झपट कर डेस्क पर से इस्तीफा उठा लिया और सिर से ऊपर उठाकर बोला—"बताओ, मेरी बोतल के नशे में कितने आदमी घर छोड़ गये? ज्ञान के नशे में घर-बार छोड़ने वालों की पलटनें और अखाड़े इस देख में भरे पड़े हैं!" उसने इस्तीफे को टुकड़े-टुकड़े कर फेंक दिया।

जीवन ने सहानुभूति के स्वर में समझाया—"राधे भाई, तुम दुख और क्रोध में अंधे हो रहे हो......।"

राधेमोहन क्रोध ओर घृणा के आवेश में हँस पड़ा—"हम दुख और क्रोध में अंधे हो रहे हैं!......खूब कहा जीवन भैया! त-तुम अंधे नहीं हो रहे।" उसने जीवन को बांह से पकड़कर झकझोर दिया—"तभी तो तुम्हें हमारे परिवार में लगी आग में ज्ञान की ज-ज्योति दिखाई दे रही है। हमारे ज-जीजा भी अन्धे नहीं हो रहे जो अपने सुख की खोज में हमारी बहिन को सदा के लिये शान्ति दे गये। जिन्हें अपने आनन्द की खोज में बीबी-बच्चों का कलपना दिखाई नहीं दिया।......जो समाज के पेड़ पर बैठकर उसी की जड़ों पर ज्ञान की कुल्हाड़ी चला रहे हैं। खूब कहा तुमने! हम क्रोध में अंधे हो रहे हैं, तुम ग-ज्ञान शलाखा लगाकर सत्य देख रहे हो!"

जीजी फिर सिसक उठी—"हाय रामजी, जिसने हमारा घर बरबाद कर दिया उसे कभी सान्ती न मिले!"

राधेमोहन ने वितृष्णा और उपेक्षा से ललकारा—"जीवन भैया, नशे-नशे की बात है। दोनों नशे चलने दो भैया! हमारे जीजा बड़े नशे में दुखी संसार को ठोकर मारेंगे और संसार सिर झुकाकर उनका चरण छुएगा। वे अपने नशे में संसार को छोड़ने का गर्व करेंगे और हम बोतलों का छोटा नशा बेचकर उनके संसार का पालन करेंगे। हम दोनों नशे के व्यापारी हैं।"

राधेमोहन अट्टहास कर उठा—"किसे बुरा कहोगे दादा? नशे-नशे की बात है!"

रूप की परख

रूप की परख

पात्र

पण्डित हरप्रसाद : प्राचीन परिपाटी के प्रौढ़, कैलाश और सुमित्रा के पिता, बैंक के अकाउन्टेन्ट, लड़की के विवाह के लिये चिन्तित।

मां : घर की मालकिन, कैलाश और सुमित्रा की मां, निरक्षर, व्यवहार-कुशल प्रौढा।

कैलाश : पंडित हरप्रसाद का पुत्र, नवयुवक, एम० ए० का विद्यार्थी, सामाजिक व्यवहार में सुधार और क्रान्ति का समर्थक।

सुमित्रा : पंडित हरप्रसाद की पुत्री, आयु बीस वर्ष, माता-पिता की अनिच्छा होने पर भी कालेज में पढ़ रही है, विचारों में भाई की समर्थक।

उर्मिला : सुमित्रा की छोटी बहिन, आयु चौदह वर्ष।

सहेली : कैलाश की मां की पड़ोसिन सहेली।

चेतन : कालिज में कैलाश से एक श्रेणी ऊपर पढ़ने वाला स्वावलम्बी विद्यार्थी, विचारों से उसका सहयोगी और मित्र।

पण्डित रामनाथ : पंडित हरप्रसाद की लड़की के विवाह में सहायता के लिये तत्पर, वर खोजने में सहायक सज्जन।

धर्मचन्द्र : पंडित रामनाथजी द्वारा सुमित्रा के लिये प्रस्तावित वर।

पण्डित ज्ञानचन्द्र : प्रस्तावित वर का भाई, इलाहाबाद अदालत में पेशकार।

भाभी : भावी बहु को पसन्द करने के लिये आई हुई घर की भाभी।

रूप की परख

पर्दा उठता है

दिन का चौथा पहर है। मध्य-वित्त श्रेणी की स्थिति के परिवार का मकान। मकान के मुख्य कमरे में मेहमानों के स्वागत का प्रबन्ध। सामने की दीवार में बनी अंगीठी की कार्निस पर रखी हुई टाइमपीस में अभी चार नहीं बजे। कार्निस पर टाइमपीस के अतिरिक्त सजावट के लिये दो एक और भी चीजें हैं। अंगीठी के दायीं ओर कोने में लिखने-पढ़ने की एक साधारण मेज-कुर्सी है। मेज पर कुछ पुस्तकें और अखबार करीने से रखे हैं। अंगीठी के दोनों ओर दीवार में कांच की अलमारियां हैं। अलमारियों में पुस्तकें, दवाइयां और मिली-जुली चीजें हैं। कमरे की दाहिनी ओर दीवार में दरवाजा साथ के कमरे में खुलता है। बायीं दीवार के साथ एक मामूली सोफा पड़ा है। अंगीठी के सामने दीवार के साथ तीन-चार कुर्सियां हैं। कमरे के फर्श पर दरी है। कमरे के फर्नीचर और सामान से जान पड़ता है कि सामान आयोजन से एक साथ नहीं खरीदा गया है बल्कि घर में रहने वालों की आवश्यकताओं और अवसर से आता गया है। यही बात दीवारों पर लगे चित्रों से भी मालूम होती है। कुछ चित्र बहुत पुराने हिन्दू अवतारों और ऋषियों के काल्पनिक रूप हैं। उनसे नये चित्र बाल गंगाधर तिलक, गोखले और गांधीजी के हैं। इन चित्रों के नीचे सबसे नया आधुनिक ढङ्ग के चौखटे में मार्क्स का चित्र है। इस बड़े कमरे के दरवाजे के दोनों ओर की खिड़कियां बाहर बरामदे में खुलती हैं। यह बरामदा ही मकान की ड्योढ़ी भी समझा जा सकता है।

मकान पंडित हरप्रसाद का है। वे एक स्थानीय बैंक में एकाउन्टेंट हैं। पण्डितजी का पुत्र कैलाश एम० ए० में पढ़ रहा है। कैलाश की दो छोटी बहिनें हैं। सुमित्रा की आयु लगभग बीस वर्ष है और उर्मिला की चौदह वर्ष।

सुमित्रा जल्दी-जल्दी कदम रखती कमरे में आयी। वह दांतों से ओंठ दबाये है। उसने बरामदे का दरवाजा उढ़का दिया। वह साधारण किनारेदार सफेद धोती और आधी बांह का जम्फर पहने है। उसका चेहरा गहरा गेहुँआ है परन्तु चेचक के गहरे दागों से सांवला लगता है। वह मेज के समीप पड़ी कुर्सी पर गिर सी पड़ी। बांहों को मेज पर गेंडुली की तरह बांध, चेहरा छिपाकर, रुलाई दबाकर सिसकने लगी।

तीन-चार सेकिंड बाद परोक्ष से दो व्यक्तियों के बात करने की आवाज सुनाई दी। उढ़का हुआ दरवाजा बरामदे की ओर से लगे धक्के से खुल गया। कैलाश हाथ में कालिज की कापी और पुस्तकें लिये अपने साथी चेतन से बात करता

हुआ कमरे में आ गया। वह चेहरे और वेश-भूषा से कपड़ों की ओर अधिक ध्यान देने वाला नहीं लगता। वह खद्दर की कमीज और जीन की पतलून पहने है। कुछ लम्बे-लम्बे रूखे बालों और सफाचट दाढ़ी-मूँछ से 'कामरेड' टाइप युवक। चेतन आयु में कैलाश से एक-दो वर्ष अधिक है। वह कुर्ता-पायजामा पहने है। उसके कपड़े साफ हैं परन्तु ताजे नहीं। सुमित्रा चेहरा सिर बांहों में दबाये सिसक रही है। कैलाश और चेतन के कमरे में आने की आहट नहीं पा सकी। कैलाश और चेतन दोनों बहुत प्रसन्न थे परन्तु सुमित्रा को रोते देखकर दोनों ने परस्पर देखा। कैलाश चुपचाप दो कदम सुमित्रा की ओर गया। चेतन सुमित्रा को रोती देखकर संकोच से दरवाजे के समीप जाकर बाहर नजर किये खड़ा हो गया।

कैलाश ने पुकारा—"सुमित्रा !"

सुमित्रा पुकार सुनकर चौंकी और जल्दी-जल्दी आंचल से आंखें पोंछती कमरे से चली जाने के लिये दाहिनी ओर के दरवाजे की ओर बढ़ गयी।

कैलाश ने विस्मय से पुकारा—"सुनो, सुनो ! बात सुनो !......क्या बात है ?"

सुमित्रा सिर झुकाये आंखें पोंछती ठिठक गयी।

कैलाश ने आग्रह से पूछा—"बात क्या है सुमित्रा ......ह्वाट इज द मैटर ?"

सुमित्रा आंखें पोंछती निरुत्तर रह गयी।

कैलाश ने सुमित्रा की ओर एक कदम बढाकर आग्रह किया—"बताओ न, क्या बात है ? ......मा ने कुछ कहा ?"

सुमित्रा आँखों से आँचल हटाये बिना रुआंसे स्वर में बोली—"जाने क्यों पीछे पड़ी हैं ......!" आँखों से आँचल हटने पर कमरे में चेतन को देखकर वह संकोच से चुप होकर मुँह फेर कर दूसरे कमरे की ओर जाती हुई कह गयी—"अभी आती हूँ।"

चेतन ने परिस्थिति से झेंप कर कहा—"अच्छा, कैलाश मैं चलता हूँ। फिर आऊंगा।"

कैलाश ने उसे टोका—"नहीं, नहीं !" हाथ की पुस्तकें मेज पर पटक कर सोफा की ओर संकेत कर आत्मीयता से आग्रह किया—"बैठो, ऐसी क्या बात। सुमित्रा से बात करके जाना।"

चेतन हाथ में थमे कागजों को लपेटते हुए सकोच से बोला—"नहीं, इस समय वह परेशान है।......कोई बात नहीं, फिर आ जाऊंगा।"

कैलाश ने आग्रह किया—"नहीं-नहीं तुम बैठो। अभी आती है।" उसने चेतन का संकोच समझ कर कहा—"परिवारों में ऐसे झगडे तो चलते ही रहते हैं। तुम से क्या पर्दा !"

चेतन को कुछ आद आया—"अरे......सुमित्रा आज दाखिले के लिये कालिज नहीं गयी। क्लास में जगह न रही तो फिर पिछले सेशन की तरह झगड़ा पडेगा......याद है !"

कैलाश ने एक कुर्सी खींच ली और सोफा के समीप बैठते हुए बोला—"अनुमान है, मां ने कुछ खड़पंच खड़ा किया होगा। कहा होगा, क्या करोगी आगे पढ़कर !......अभी पूछता हूँ।"

कैलाश ने दरवाजे की ओर झुक कर पुकारा—"सुमित्रा सुनो, दो गिलास जल लाना!" वह चेतन की ओर घूम गया। नये प्रसंग के स्वर में—"यार, इस बार मजा रहेगा। तुम्हारा यह दांव खूब लगा। सच कहता हूँ, मुझे उम्मीद नहीं थी। लेकिन भैया, तुम्हें अब सम्हल कर चलना होगा!"

चेतन मुस्करा दिया—"क्यों?......तुम क्या मुझे बेवकूफ समझते हो!"

कैलाश ने चेतन की ठोढ़ी छूने के संकेत से हाथ बढ़ाकर कहा—"मुंशीजी, क्या समझते हो! रिसर्च का स्कालरशिप मिला है। उसे निबाहना आसान काम नहीं। पालिटिक्स में ज्यादा पड़ोगे, प्रोफेसर बिगड़ गये तो टापते रह जाओगे! क्या समझते हो!"

सुमित्रा दोनों हाथों में जल भरे गिलास लिये आयी। वह मुंह धोकर आयी थी। चेहरे पर मुस्कराहट थी परन्तु आंखों में रुलाई की लाली भी थी।

उसने गिलास थामे ही चेतन की ओर देखकर सिर झुकाकर मुस्कान से स्वागत का संकेत कर दिया।

सुमित्रा बोली—"कहिये, चेतन भाई।"

चेतन ने गर्दन झुकाये उत्तर दिया—"सब ठीक है।"

कैलाश बोल पड़ा—"आज चेतन बड़ी खुशखबरी लाया है।"

सुमिंत्रा ने कौतूहल प्रकट किया—"क्या?"

कैलाश ने सिर हिलाकर कहा—"इसी से पूछो।"

सुमित्रा ने आग्रह किया—"बताइये न चेतन भाई!"

कैलाश बोला—"खुशखबरी की मिठाई भी खिलायेगा।"

सुमित्रा ने कहा—"वाह! खुशखबरी सुनायेंगे तो मिठाई तुम खिलाओ! खुशखबरी सुनाने वाले का मुंह मीठा किया जाता है। क्यों चेतन भाई?"

चेतन ने मुस्कराकर कैलाश की ओर देखा—"हाँ, बात तो कायदे की है।"

कैलाश ने सुमित्रा को स्नेह से धमकाया—"वाह री चौधरानी, कुछ मालूम भी है! पहले बात तो सुन ले।" उसने चेतन से कहा—"यह सदा तुम्हारा पक्षपात करती है।"

चेतन ने आपत्ति की—"पक्षपात क्या, उसकी बात संगत है।"

सुमित्रा झेंपी नहीं बोली—"हाँ, करती हूँ, करूँगी!" उसने कैलाश को चिढ़ाने के लिये ठेंगा दिखा दिया—"जो लायक हो, उसका पक्षपात किया ही जायेगा। इन्होंने मुझे छः महीने में परीक्षा पास नहीं करा दी! एक तुम हो, कभी मदद नहीं की। बैठे-बैठे नावेल पढ़ते रहेंगे लेकिन मुझे कभी एक लाइन नहीं बता सकते।"

कैलाश रहस्य उद्घाटन के लिये विवश होकर बोला—"सुनी इसकी बात!" उसने सुमित्रा को चेतावनी दी—"तुम्हारा क्या मतलब है; मिठाई नहीं चाहिये?......फिर न कहँ......।"

सुमित्रा हंस पड़ी—"आखिर मिठाई की बात क्या है? बताइये न चेतन भाई!"

चेतन ने संकोच से कहा—"ऐसी बड़ी खुशखबरी तो क्या," ...... वह जरा ठिठका—"तुम्हें धन्यवाद देने आया हूँ।"

सुमित्रा ने विस्मय से त्योरी चढ़ा ली—"मुझे धन्यवाद ...... किस बात का धन्यवाद?"

कैलाश ने दोनों को चुप कराने के लिये हाथ उठाकर कहा—"धन्यवाद होगा बाद में। पहले मिठाई आनी चाहिये!"

सुमित्रा ने परेशानी दिखाई—"मिठाई, धन्यवाद! ...... पर कोई बतायेगा भी किस बात की मिठाई और किस बात का धन्यवाद!" उसने होंठ पर उंगली रखकर विस्मय से कहा—"क्या ब्याह हो रहा है चेतन भाई का?"

कैलाश ने विरक्ति से हाथ हिलाया—"धत्त!" और चेतन की ओर देखकर कहा—"देख लिया लड़कियों की अकल कहाँ तक जा सकती है! उनके लिये दुनिया में सबसे बड़ी बात है, ब्याह। तुम बताते क्यों नहीं, झेंप क्यों रहे हो?"

चेतन मुस्कराया—"मुझे रिसर्च का स्कालरशिप मिल गया है।"

सुमित्रा की आंखें प्रसन्नता से चमक उठीं—"ओह, ग्रैंड! ...... बहुत-बहुत बधाई परन्तु इसके लिये धन्यवाद मुझे क्यों? ...... इंटेलीजेंट और डिलीजेंट आप हैं। मुझे ही आपने इतनी अच्छी तरह पढ़ाया। धन्यवाद तो मुझे आपको देना चाहिये।"

कैलाश ने सुमित्रा को टोकने के लिये हाथ उठाया—"अजी हटाओ। अपने को तो मिठाई चाहिये।"

चेतन गम्भीर होकर बोला—"देखिये, असली बात यह है कि पिछले साल अगर आप लोगों ने मुझे अपनी ट्यूशन न दी होती तो मैं मजबूरी में युनिवर्सिटी छोड़कर गांव लौट गया होता। स्कालरशिप पा सकने का मौका ही न आता।"

सुमित्रा उसे चुप कराने के लिये बोली—"आप तो जरा सी बात का बतंगड़ बना रहे हैं। आखिर क्या किया हमने? आपकी ट्यूशन न रखते तो किसी दूसरे की भी नहीं रखते!"

चेतन बोला—"तुम बात को मजाक में उड़ा देना चाहती हो।" उसने कैलाश से कहा—"एक बात तुम्हें भी नहीं मालूम, बताऊं?"

सुमित्रा ने आशंका से माथे पर बल डालकर चेतावनी के स्वर में कहा—"क्या?"

चेतन ने सुमित्रा की परवाह न की, बोला—"कैलाश, तुम जानते हो दरअसल इसे पढ़ाया तो मैंने बिलकुल नहीं। ट्यूशन तुम लोगों ने पढ़ने के लिये रखी भी नहीं थी। केवल मेरी मदद ही करना चाहते थे।"

कैलाश ने हाथ झटक कर विरोध किया—"हटाओ जी, इन बेमतलब बातों को!" और चेतन को धमकाया—"बातें बनाकर मिठाई खाने से बच नहीं सकोगे।"

चेतना के स्वर में भावुकता आ गयी—"मिठाई क्या, मैं तो जिन्दगी भर के लिये तुम लोगों का देनदार हूँ। एक बात तुम नहीं जानते। इसने" सुमित्रा की ओर संकेत करके बोला—"ऐसे आड़े समय मेरी मदद की है कि कह नहीं सकता।"

कैलाश भवें उठाकर बोला—"क्या बोरियत······क्या मदद कर दी?"

सुमित्रा ने संकोच से टोका—"रहने दीजिये। बातें न बनाइये!"

वह चेतन को बोलते देखकर उसे अवसर न देने के लिये बोलती गयी—"मिठाई! मिठाई·······!"

चेतन सुमित्रा के विघ्न की परवाह न कर कैलाश की ओर देख कहता गया—"ट्यूशन से मेरा किचन का ही खर्च चलता था।······फीस मैंने कहाँ से दी?"

सुमित्रा संकोच और झुंझलाहट से बोली—"जाने भी दीजिये। मैं जाती हूँ······।"

वह कमरे से जाने लगती है।

कैलाश ने सुमित्रा को टोक दिया—"क्यों, कहाँ जा रही हो?" वह कुर्सी से उठ गया—"तुम यहाँ बैठो!" यह कोच पर बैठ गया।

सुमित्रा ने अनुरोध किया—"चेतन भाई, बातें बनाकर मिठाई खिलाने से बच नहीं सकेंगे।"

चेतन ने आग्रह से कहा—"नहीं, मैं वह बात कहकर अपना मन हलका करना चाहता हूँ।"

कैलाश ने पूछा—"आखिर बात क्या है? कौन बोझ पड़ा है तुम्हारे मन पर?" उसने सुमित्रा को प्रतीक्षा करने का संकेत किया—"कह लेने दे भई इसे! इसके दिल का मामला है।"

चेतन बोला—"सुनो, फीस के लिये मेरे पास रुपये नहीं थे। बहुत परेशान था। सुमित्रा ने मुझसे पूछा, परेशान क्यो हो? मैंने परीक्षा की फीस की चिन्ता बताई। जानते हो, इसने क्या कहा? बोली, किसी से न कहियेगा······।"

सुमित्रा ने माथे पर त्योरी से टोका—"तो आप क्यों कह रहे हैं? आपने वायदा किया था, नहीं कहेंगे।"

कैलाश बोल उठा—"समझ गया, समझ गया। छोड़ो इस बात को······।"

चेतन ने आग्रह किया—"सुनो तो, इसने कहा, भैया मेरे पास रुपये देखते हैं तो छीन लेते हैं·······।"

कैलाश ने आंखें निकाल कर डांटा—अच्छा······चोट्टी! शिकायत करती है!"

सुमित्रा ने भी डांटा—"तो क्या झूठी शिकायत की?" वह मुस्करा दी—"अब डांटते हो! उल्टा चोर कोतवाल को डांटे! चेतन भाई, जानते हो इसके ढंग······राखी, भैयादूज को पिताजी से रुपये लेकर मुझे देंगे। फिर कहेंगे, बड़ी अच्छी बहन है, मुझे उधार दे दे। उधार की वापिसी कभी नहीं·······।"

चेतन अपनी बात कहता गया—"इसने कहा, आप मेरे सौ रुपये रख लीजिये। अभी मुझे जरूरत नहीं है। जब जरूरत होगी ले लूंगी। समझ तो मैं गया फिर भी पूछा, इन रुपयों से अगर मैं अपनी फीस दे दूं? ट्यूशन में पूरे कर दूंगा तो बोली, यही मेरा मतलब है। इसने बताने को मना कर दिया था पर पीठ पीछे चुगली न खाकर सामने ही कह रहा हूँ। बताओ, मुझे अगर स्कालरशिप मिला तो उसका श्रेय किसको है?"

सुमित्रा ने बात टालने के लिये कहा—"जी हाँ, मिठाई न खिलाने के लिये इतनी बातें बना रहे हैं। बस उन रुपयों ने ही तो आपकी जगह जाकर इम्तिहान दे दिया।" वह चेतन के विरुद्ध कैलाश के पक्ष में हो गयी—"भैया, इनसे मिठाई खाकर छोड़ेंगे।"

कैलाश ने चेतन की ओर देखा—"अच्छा भाई, फिर खिला डालो मिठाई......कब खिलाओगे?"

सुमित्रा बोल उठी—"मैं बताऊं!"

दोनों ने उसकी ओर देखा।

सुमित्रा ने सोचकर कहा—"पहला स्कालरशिप मिलने पर।"

कैलाश ने उँगली उठाकर स्वीकार किया—"ग्रैंड फीस्ट!"

चेतन ने मान लिया—"ओ के। बट......" उसे कुछ याद आ गया—"तुम वह किताब तो लौटाओ......प्रोफेसर रत्नाकर की किताब 'ओरिजिन आफ फेमिली प्रापर्टी।"

दायीं ओर के दरवाजे से आवाज आयी—"भैया......भैया!" कैलाश ने दरवाजे की ओर घूमकर पूछा—"क्या है?"

कैलाश की छोटी बहिन उर्मिला आयीं। उर्मिला का रंग बहिन से खुला हुआ और चेहरा हँसमुख। वह हल्की गुलावी साड़ी में थी। सिर के केश यत्न से संवारे हुए।

उर्मिला ने रहस्य भरी मुस्कान से कहा—"भैया, अम्मा तुम्हें बुला रही हैं।"

कैलाश ने जानना चाहा—"क्यों बुला रही है......क्या है?"

उर्मिला मुस्कान दबा नहीं पा रही थी—"एक बात है......बताएं?" वह मचल कर सुमित्रा की कुर्सी की पीठ पर झुक गयी—"आपको बाजार जाना है।"

कैलाश ने विस्मय किया—"ओह! इतना बड़ा रहस्य! खैर, बाजार क्यों जाना होगा? अभी तो मैं कालेज से लौटा हूँ।"

उर्मिला कुर्सी की पीठ पर और झुक गयी—"हम नहीं जानते, अम्मा बतायेंगी।"

कैलाश ने चेतन से पूछा—"तुम कहीं जा रहे हो क्या?"

चेतन ने सिर हिला दिया—"कहीं नहीं।"

कैलाश ने कहा—"तो फिर साथ ही चलेंगे, बातचीत करते।"

सुमित्रा गम्भीर हो गयी थी, बोली—"अच्छा मैं जा रही हूँ।"

वह खड़ी हो गयी।

कैलाश ने सुमित्रा के चेहरे पर आ गयी उदासी देख ली—"क्यों क्या है ?"

उसने चेतन को सम्बोधन कर कहा—"तुम किताब मेरे कमरे से ले लो, अलमारी में है। मैं वहीं आता हूँ।

चेतन कमरे से चला गया।

कैलाश ने उर्मिला से भी कहा—"तुम चलो मैं आता हूँ।"

उर्मिला चली गयी।

कैलाश ने सुमित्रा से गम्भीर स्वर में प्रश्न किया—"क्यों बात क्या है ?"

सुमित्रा की आंखें डबडबा आयीं। वह निरुत्तर रही।

कैलाश ने चिन्ता से आग्रह किया—"बात क्या है, बताओ न !"

सुमित्रा ने आंचल आंखों पर रखकर सिर झुका लिया।

कैलाश ने फिर पूछा—"एडमिशन के लिए वर्सिटी क्यों नहीं गयीं ? हम लोग तुम्हारी प्रतीक्षा करते रहे। जगह नहीं रहेगी तो परेशानी होगी।"

सुमित्रा आंसू भरे स्वर में बोली—"कैसे ले लूं एडमिशन !"

कैलाश ने भौंवें सिकोड़कर पूछा—"क्यों ? क्या मतलब ?"

सुमित्रा ने आंखें पोंछीं—"अम्मा से पूछो।"

कैलाश झुंझलाहट से बोला—"क्या पूछूं अम्मा से ? ····सुबह सब बात हो गयी थी।"

सुमित्रा ने वैसे ही उत्तर दिया—"तुम्हारे सामने मान गयी थीं। तुम गये तो मुझे रोक दिया।" उसका स्वर तीखा हो गया—"जाने क्यों मुझे गले का पत्थर समझ रही हैं। मुझे पढ़ाना नहीं चाहती, न पढ़ायें। मैं ऐसे ही किसी स्कूल में नौकरी कर लूंगी, नर्स बन जाऊंगी और कुछ नहीं तो महराजिन या महरी का काम करके अपना पेट पाल लूंगी। किसी से यह भी नहीं देखा जाता तो कह दो, कुछ खा के मर जाऊं। इनके दिमाग में जाने क्या अड़ा है·······।"

सुमित्रा ने गला रुंध जाने से मुह आंचल से ढक लिया।

कैलाश हुँकारा भर बात समझने के लिये क्षण भर फर्श की ओर देखकर बोला—"तो क्या कोई और प्रबन्ध हुआ है ? ······क्या कहीं और बात चली है ?"

सुमित्रा ने आंखें पोंछकर कातरता से कहा—"मैं कोई बरतन-भाड़ा हूँ जो गाहक मुझे पसन्द-नापसन्द करेगा।" और फिर क्रोध में कुर्सी से उठ खड़ी हुई—"जैसे कोई हंडिया को ठोक-बजाकर देखता है कि मजबूत है कि नहीं, अच्छी है कि नहीं। आखिर मैं इन्हें क्यों भारी हो रही हूँ ? ये समझते हैं मुझे घर से निकाल देना जरूरी हैं·······।"

दूसरे कमरे से मां की पुकार सुनाई दी—"कैलाश ! ·····बेटा कैलाश !"

कैलाश की मां कमरे में आ गयी। मां प्रौढ़ आयु गृहणी, बहुत व्यस्तता का भाव। सुमित्रा को आंखें पोंछते देखकर विस्मय से—"हाय राम, क्या हुआ ?"

सुमित्रा बिना उत्तर दिये कमरे से चली गयी।

कैलाश ने पूछा—"क्या है मां ?"

मां आंचल की खूंट में बंधी गांठ खोलती हुई बोली—"तुम्हारी ही राह देख रही थी।" दस रुपये का तहाया हुआ नोट सीधा कर कैलाश को थमा दिया—"यह लो। तुम्हारे पिताजी कह गये हैं, बाजार से कुछ फल, मीठा और नमकीन ले आओ।"

कैलाश ने पूछा—"क्यों ?......क्या बात है ?"

मां ने बताया—"तुम्हारे पिताजी एक बजे बैंक से आकर कह गये थे की सांझ मेहमान आ रहे हैं।"

कैलाश ने फिर पूछा—"कैसे मेहमान ?......कौन आ रहा है ?"

मां जरा झिझकी—"कैसे होते हैं मेहमान! ......जरा देखकर चीजें लाना।" फिर कैलाश के समीप होकर रहस्य के स्वर में बताया—पंडित रामनाथ के साथ जो वो लोग सुमित्रा को देखने आ रहे हैं ?"

कैलाश ने असन्तोष प्रकट किया—"तुम लड़की के पीछे क्यों पड़ी हो ?"

मां का मुख कैलाश की ओर उठ गया, विस्मय में आंखें और होंठ फैल गये—"क्या कह रहे हो! कौन पीछे पड़ा......उसे क्या कहा ?"

कैलाश बोला—"पीछे नहीं पड़ी तो क्या; यूनिवर्सिटी जाने में क्यों रोका? वह नहीं चाहती तो तुम उसे शादी के लिये क्यों परेशान करती हो ?"

मां ने उंगली गाल पर रख ली—"लड़कियों के ब्याह नहीं होते! बेटियों को कोई घर बिठाये रहता है!"

कैलाश कुछ तीखा बोला—"बेटिया घर नहीं बिठाकर रखी जातीं तो जबरदस्ती किसी के गले मढ़ दोगी! आखिर है तो तुम्हारी बेटी! एक दफा तो तुम तमाशा कर चुकीं।"

मां के विस्मय की सीमा नहीं रही—'हाय राम! क्या तमाशा कर चुकी मैं! कैसी बातें करता है तू ?" वह कर्त्तव्य की अनुभूति से जरा तन गयीं—"तुम्हें इन बातों से क्या मतलब ? तुम लड़के हो, लड़कों की तरह बात किया करो। तुम्हारा काम पढ़ना-लिखना है। पुरखा काहे को बनते हो!"

कैलाश ने उत्तर दिया—"पुरखा बनने की इसमें क्या बात है। पिछले बरस पिताजी एक बेवकूफ को लड़की दिखाने के लिये पकड़ लाये थे। उसने जाकर कह दिया, तुम्हारी बेटी उसे पसंद नहीं। उस बेचारी का रो-रो कर क्या हाल हुआ। उसके चेहरे पर माता के दाग हैं तो इसमें उसका क्या कसूर ? तुम तो ऐसे कर रही हो जैसे कोई खोटा सिक्का दूसरे के हाथ थमा देने के लिये बेचैन हो।"

मां को क्रोध आ गया—"बड़ी लम्बी जबान हो गयी तुम्हारी! अब यही कायदा चल गया है। लड़के-लड़कियों को देखते हैं तो हम कैसे इकार कर दें ?" मां ने जरा स्वर नीचा करके कहा—"इक्कीसवां लग गया है उसे। इस उम्र में तो तुम गोद में थे। जमाने को कोई क्या करे!" फिर रहस्य के स्वर में समझाया—"तेरे पिताजी की तो नींद हराम हो......।"

कैलाश ने विरोध में टोक दिया—"खामुखा नींद हराम हो रही है उनकी। तुम उसे मेरा छोटा भाई समझ लो, बहन न समझो। अच्छी भली बी० ए० में पास हुई है। उसे एम० ए० पढ़ने दो। जो देखने आयेगा, माता के दाग ही देखेगा। लड़की के चेहरे से उसकी कीमत आंक कर उसका अपमान क्यों कराती हो ?"

मां ने समझाया—"पागल हुए हो! भला हो पंडित रामनाथ का, बड़ी मेहनत से उन्होंने अच्छा घर ढूंढ़ा है। बड़े अच्छे सीधे-सादे लोग हैं। जमीन-जायदाद है। भगवान करे, यह सम्बन्ध बन जाय। लड़की अपना घर बसाये जाकर।"

कैलाश चुप नहीं हुआ—"बेटी तुम्हें क्या दुख दे रही है! उसने तो कोई बेचैनी नहीं दिखायी। उसे पढ़-लिख लेने दो। वह तुम्हारे सिर का बोझ नहीं बनेगी। जब मौका होगा, ब्याह भी हो जायेगा। तुम उसकी गठरी बांधकर किसी को दान कर देने का पुण्य कमाने की जिद्द क्यों कर रही हो? लड़की देकर 'टका' न लिया, 'पुण्य' ले लिया। अपना ही फायदा सोचती हो, उसके मन की बात तो नहीं।"

मां ने क्रोध में डांट दिया—बहुत बढ़-बढ़कर बातें न किया करो। लड़के हो, लड़कों की तरह रहो। जब तुम्हारी बहू आयेगी, बाल-बच्चे होंगे, अपनी लड़कियों को कालिज में पढ़ा कर खुद ब्याह कर लेने के लिए कह देना। हम कुछ नहीं बोलेंगे। देखों तो इन्हे! अभी से बड़े बनने लगे। जो कहा है, जाकर करो!"

कैलाश ने फिर भी समझाने का यत्न किया—"देखो अम्मा, कहीं पिछली बार की तरह हुआ तो फिर क्या होगा! वे लोग सुमित्रा को नापसन्द कर गये तो उस अपमान में यह छः महीने रोती रही। अगर फिर वैसा हुआ तो ?"

मां झमक उठी—"तुम्हें कई बार कहा है, बहुत चौधरी न बनो। जब देखो लेक्चर देने लगते हो। तुम्हारे पिता भी कुछ समझते हैं, जो करना होगा करेंगे। तुम जाकर बाजार के सामान लाओ।"

परोक्ष से आवाज सुनाई दी—"मितरा की मां!......मितरा की मां!"

मां ने दरवाजे की ओर मुंह कर उत्तर दिया—"बहिन आई," और फिर कैलाश से बोली—"जाओ जल्दी जाओ।"

कैलाश के जाने से पहले ही माँ को पुकारने वाली स्त्री हाथ में एक पोटली लिये कमरे में आ गयी। उसे देखकर कैलाश चुप रहा गया। कैलाश ने आगन्तुक को 'मौसी' कहकर पायलागन किया।

पड़ोसिन ने 'जियो बेटा' कहकर आशीर्वाद दे दिया।

कैलाश माँ के हाथ से नोट लेकर चला गया।

पड़ोसिन ने मुँह में भरा पान संभालते हुये पूछा—"कब आ रहे हैं वे लोग ?"

मां ने अनुमान प्रकट किया—"यही सांझ उतरते आयेंगे और क्या। अभी कैलाश के पिताजी भी दफ्तर से नहीं लौटे। आते ही होंगे।"

पड़ोसिन हाथ की पोटली दिखाकर बोली—"यह देखो, सब ले आई।"

मां ने अनुरोध किया—"बहिना बैठो तो!"

दोनो स्त्रियां पोटली को बीच में रखकर सोफा पर बैठ गयीं।

मां ने पोटली के प्रति उत्सुकता प्रकट की—"क्या लाई हो, देखें!"

पड़ोसिन ने उत्तर दिया—"सभी कुछ ले आई हूँ बहिना!" वह पोटली खोलकर एक-एक चीज दिखाने लगी—"करीम, पाउडर, गालों की लाली, होंठों की सुर्खी।" हाथ के संकेतों से आश्वासन देकर बोली—"बहिन, मैं ऐसा बना दूंगी कि तुम अपने पेट की लड़की को न पहचान सको। हां, देख के हैरान रह जाओगी कि यह राजा के बाग का गुलाब कहां से आ गया!......क्या समझती हो!"

मां ने पड़ोसिन की ओर देखकर विस्मय प्रकट किया—"अच्छा!......भगवान तुम्हारा भला करेंगे जग्गो की मां!"

पड़ोसिन ने अपना आश्वासन दोहराया—"निसा-खातिर रहो! पहली दफा वो कलियानपुर वाले मितरा को देखने आये थे, तब नहीं तुमने कहा था कि लाओ बहिना लड़की की बनाव-सिंगार कर दें। तुम्हीं नहीं मानी। नहीं तो काहे को वह झगड़ा होता।"

मां हाथ मलकर पछतायी—"हाय राम! क्या कह रही हो बहिना!" अपने ऊपर से यह उत्तरदायित्व दूर करने के भाव से हाथ हिलाया—"बहिना हम क्या नहीं मानीं! वो तो लड़की ही ऐसी है।" पड़ोसिन के कंधे पर हाथ रखकर रहस्य में कहा—"बहिन, तुम जानती हो सभी लड़कियों का शौक होता है। मांगकर, लड़-झगड़कर सिंगार की चीजें लेती हैं। यह जाने कैसी करमजली वैरागन मेरे पेट से जन्मी है! कभी इसने इन चीजों की तरफ देखा ही नहीं।"

पड़ोसिन ने समझाया—"वाह बहिना, सिंगार ही तो जवानी में औरत का रूप है। दो-चार बाल-बच्चे हो गये तो कौन सिंगार करता है और किसे देखने की फुरसत रहती है! अरे, ये ही होता है, और क्या।"

मां रहस्य की बात कहने के लिये पड़ोसिन की ओर सरक गयी—"अव क्या कहें, वो मरी तो कहती है, मुंह पर रंग पोत कर धोखा क्यों दूं! पाउडर झड जायेगा तो कोई क्या कहेगा!"

पड़ोसिन ने फिर समझाया—"हाय बहिना, तुम भी क्या कहती हो! रूप तो बनाव-सिंगार का होता है। रूप-सिंगार तुम जानती हो, एक बार देखा जाता है, बात चलने पर। फिर कौन देखता है। छः महीने मे तो सब पुराना पड़ जाता है। रोज रूप कौन देखता है; फिर तो काम देखती है दुनिया। बहिन, औरत का बनाव-सिंगार तो ऐसा है, जैसे मिठाई पर लगी पन्नी। खाने में पन्नी का स्वाद नहीं आता है, मिठाई का ही आता है।"

पड़ोसिन ने तर्जनी दिखाकर कहा—"तुम जानो, मिठाई जब तक बिकती नहीं, तभी तक पन्नी लगाई जाती है। झूठ कह रही हैं हम!"

मां ने समर्थन में हामी भरी—"और क्या ?······मितरा को बुलवाया नहीं तुमने ?"

पड़ोसिन बोली—"अरे मैं तो भीतर सब जगह देख आयी। कहीं दिखाई नहीं दी। उर्मी से भी पूछा। वह कहने लगी कि बहिन कोठरी मूंदकर बैठ गयी है।"

मां ने जोर से आवाज दी—"उर्मी······उर्मिला ······!"

"हां, अम्मा !" उर्मिला ने भीतर से उत्तर दिया।

पड़ोसिन ने फिर पूछा—"कैलाश के पिताजी नहीं आये ?" मां ने कह दिया—"कहा न, आते ही होंगे।"

उर्मिला कमरे में आ गयी।

मां ने उर्मिला से पूछा—"मितरा कहां है ? बुला न उसे। मौसी आयी है, राह देख रही है।"

उर्मिला ने उपेक्षा से उत्तर दिया—"कई बार तो बुलाया अम्मा। जीजी कहती है, मुझे कुछ नहीं करना।"

मां ने उंगली गाल पर रखकर पड़ोसिन की ओर देखा—"मेरे भाग में जो हो !"

पड़ोसिन ने विवशता में दोनों हथेलियां फैली दीं—"बहिना तो फिर हम क्या करें !"

परोक्ष से पंडित हरप्रसाद की पुकार सुनाई दी—"बेटा उर्मिला !"

उर्मिला ने मां से कहा—"पिताजी आ गये मां !" वह बरामदे की ओर चली गयी।

पड़ोसिन ने माथे पर आंचल खींच लिया और पोटली समेटती हुई बोली—"अच्छा बहिना हम चलें। कैलाश के पिताजी आ गये।" वह जल्दी में उठकर खड़ी हो गयी—"कब आ रहे हैं वे लोग ? हम भी लड़के को देख जायेंगे, कैसा है लड़का ?"

मां ने गाल पर हाथ रखकर कहा—"हम क्या जानें बहिना ! हमने कहां देखा है अभी।"

कैलाश के पिता कमरे में आ गये। उन्हें देख पड़ोसिन घूंघट खींचकर तुरन्त चली गयी।

पंडित हरप्रसाद पक्की उम्र के सज्जन। लम्बी-लम्बी, खिचड़ी हो गयी मूंछें। सिर पर क्रिस्टी टोपी उनके पुराने विचारों और अभ्यासों की साक्षी। उनकी पोशाक बन्द गले का कोट और ढीला चूड़ीदार पाजामा।

पंडितजी ने हाथ की छड़ी उर्मिला की ओर बढ़ाकर कहा—"बेटा, भगवान भला करे, रक्खो इसे।" और कैलाश की मां से शिकायत के स्वर में बोली—"तुम लोग कर क्या रहे हो ? भगवान भला करे, तुमने अभी तक जगह भी ठीक नहीं की। बाजार से कुछ मंगवा लिया है कि नहीं ? सुनती नहीं हो, उन्होंने इसी समय आने को कहा है। अभी आ जायं तो !"

मां ने बताया—"कैलाश बाजार गया है। दस कदम पर चौक है। अभी हो जाता है, सब कुछ। वे लोग तो दिन डूबते आयेंगे।"

पंडितजी ने परेशानी में हाथ बढ़ाकर पूछा—"कौन कहता है, दिन डूबते आयेंगे! अभी रामनाथ बैंक में आये थे। कह गये हैं—तुम घर चलो, हम उन लोगों को लेकर आते हैं।"

मां ने गाल पर उंगली रखकर विस्मय प्रकट किया—"हाय रामजी, दोपहर में तुम्हीं कह गये थे कि सात बजे आयेंगे।"

पंडितजी ने स्वीकारा—"भई, रामनाथ सुबह आये तो सात ही बजे की बात थी। भगवान भला करे, शाम को फिर कह गये कि अभी लेकर आते हैं। तुम नहीं जानती लड़के का बड़ा भाई इलाहावाद से आया है। उसे रात की गाड़ी से लौट जाना है। बात उसी को करनी है। जब वह चाहेंगे तब आयेंगे। मैं रोक सकता हूँ उन्हें जल्दी आने से!"

मां खड़ी होकर बोली—"तो घबराइये नहीं। सब हो जायेगा। कैलाश एक मिनट में आता ही होगा, कब का गया है। दस कदम पर तो चौक है। उर्मिला, जाओ जाजम और कालीन उठा लाओ। निकालकर रख दिये हैं।"

पंडितजी ने फिर टोका—"भगवान भला करे, पन्नालाल के यहां से कुछ फूल-ऊल मंगा लिये होते। फूलदान तो घर में है। कोई अगरबत्ती वगैरह सुलगा दी होती। लोग घर-बार का तरीका भी देखते हैं। सब बातों का असर होता है। भगवान भला करे, चाय ठीक से बनवाना और शरबत भी तैयार रखना। ऐसे समय चाय दो तो लोग शरबत मांगते हैं, शरबत पेश करो तो चाय चाहते हैं, समझीं। दोनों तैयार रखो।"

पंडितजी ने परेशानी में कोट उतारकर खूंटी पर लटका दिया और बोले—"मालूम था, अपने देखे, किये बगैर कुछ न होगा।"

उर्मिला जाजम और कालीन ले आयी और अपनी मां की सहायता से कमरा सजाने लगी।

पंडितजी आस्तीनें चढ़ाने लगे—"लाओ, मैं नहीं करूंगा तो कुछ नहीं होगा। भगवान भला करे, तुम नहीं समझती कि किस समय क्या तरीका होना चाहिये।" वे कालीन उठाने के लिये झुके—"वे लोग अभी ही आ जायें तो!"

मां ने पंडितजी के हाथ से कालीन लिया—"हाय राम, क्या कर रहे हो! तुम और गड़बड़ा देते हो। तुम बैठो, हो जाता है। तुम देखते रहो, अभी हो जाता है।"

पंडितजी ने बैठकर पूछ लिया—"कैलाश कहां गया?"

उर्मिला सजावट के काम में लगी रही, बोली नहीं।

मां ने हाथ उठाकर कहा—"हाय राम, कैसे घवरा जाते हो। कहा तो तुमसे, बाजार से सामान लाने गया है। अभी आता होगा।"

पंडितजी ने पूछा—"मीठा-नमकीन मंगाया होगा, उसे कुछ फल-वल लाने को कहा?"

उर्मिला बिछे हुए कालीनों पर गाव तकिये लाकर रखने लगी।

मां ने तकियों को सिधाते हुए आश्वासन दिया—"हाय राम, फल-पान सब लाने के लिये भी कह दिया है। तुम तो ऐसे घबरा देते हो।"

पंडितजी ने पूछा—"कौन सा फल? भगवान तुम्हारा भला करे, बता तो दिया होता उसे क्या फल लाना है। नासमझ लड़का है, कहीं ककड़ी-खीरा ही न उठा लाये! ऐसे समय दस-बीस रुपये की परवाह नहीं की जाती, उसे समझा देना था।"

मां ने मसनदों के बल निकालते हुए आश्वासन दिया—"हां, हां, सब कह दिया है। तुम जाकर मुंह-हाथ धो लो। तुम उन लोगों को यहां बैठाना। इतने में हम लोग भी तैयार हो जाएँगी।"

कैलाश और चेतन मिठाई की और फलों की टोकरियां लिए हुए आ जाते हैं।

मां ने उन्हें देखकर पंडितजी से कहा—"यह लो, आ गया सब सामान। अब तुम जाओ, मुंह-हाथ धोकर कपड़े बदल लो।" मां ने उर्मिला की ओर देखा—"तुम और कैलाश यह ठीक करो। मैं तुम्हारे पिताजी के लिये कपड़े निकाल दू।"

पंडितजी ने कैलाश की ओर देखा—"शाबाश बेटा, भगवान भला करे, जल्दी-जल्दी कर डालो। वे लोग आते ही होंगे।" वे तैयारी में सहयोग देने के लिये फिर आस्तीन समेटने लगे।

मां ने झुंझलाहट प्रकट की—"हाय राम, तुम जाओ! ये सब हो जायेगा।"

कैलाश की मां मिठाई और फल लेकर कैलाश के पिता के साथ भीतर चली गयी। उर्मिला अंगीठी की कार्निस पर अगरबत्तियां जलाने लगी।

चेतन ने उर्मिला की ओर संकेत करके कैलाश से कहा—"देखो तो इस लड़की को, बहुत खुश है आज। जब इसकी बारी आयेगी तो हम लोगों को ही तैयारी करनी होगी।"

उर्मिला ने हंसी को क्रोध में दबाकर कहा—"भैया, कैसी बातें करते हो! हमें नहीं अच्छा लगता। हम शादी करेंगे ही नहीं।"

चेतन ने विस्मय से कहा—"शादी नही करोगी!......तो क्या करोगी?"

उर्मिला ने कहा—"क्यों...... हम पढ़ेंगे।"

कैलाश हंस दिया—"वाह, शादी अच्छी जगह हो जाये इसीलिये तो लड़कियां पढ़ती हैं।"

उर्मिला के माथे पर त्योरियां आ गयीं—"ओ हो, बड़े आये!......आप अपनी शादी की फिक्र कीजिये!"

चेतन ने कैलाश से कहा—"अच्छा भाई, अब मैं चलता हूँ।"

कैलाश चेतन के समीप हो गया—"क्यों, जा क्यों रहे हो? अभी न जाओ......ठहर जाओ तो क्या है।"

चेतन ने कहा—"कुछ नहीं। ठहर भी सकता हूँ लेकिन यहां मैं करूंगा क्या?"

कैलाश ने उर्मिला की ओर देखकर कहा—"यह बत्तियां-वत्तियां मैं जला लूंगा। तू फूल और फूलदान तो ले आ। देख, मेरे कमरे से छोटी मेज भी लाना। जल्दी जा।"

उर्मिला बायें दरवाजे से चली गयी।

कैलाश चेतन के और समीप होकर बोला—"मेरा ख्याल है, तुम यहीं रहो तो अच्छा है।" वह कुछ अटका—"तुम······तुम जानते हो, पिछली बार ऐसे अवसर पर अच्छा अनुभव नहीं हुआ।"

चेतन ने उसकी ओर जिज्ञासा से देखा—"क्या मतलब तुम्हारा?"

कैलाश का स्वर खिन्न हो गया—"आई डू नाट वांट मितरा टु बी इंसल्टिड। आखिर उसका कसूर क्या है! उसके चेहरे पर चेचक के दाग हैं तो वह क्या करे!"

चेतन विचार में डूब गया—"तुम जो कहो, मैं तैयार हूँ लेकिन मैं करूंगा क्या? ······तुम जानते हो, अगर मितरा के प्रति कुछ ऊटपटांग बात हुई तो मुझे बहुत बुरा लगेगा।"

कैलाश इधर-उधर देखकर हाथ मलते हुए बोला—"जानता हूँ।······खैर, क्या कहूँ, अभी तो कुछ नहीं कह सकता लेकिन वैसी स्थिति हुई तो तुम्हारा भरोसा कर सकता हूँ। ऐसे समय तुम यहां रहो तो अच्छा ही होगा।"

चेतन मान गया—"जो कहो। मैं नहीं जाता। मुझसे तुम लोगों के लिये जो कुछ भी बन पड़े तैयार हूँ।"

कैलाश के पिता एक तौलिये से हाथ-मुंह, मूंछे पोंछते हुए फिर आ गये। वे अब कुर्ता-धोती पहने थे।

पंडितजी ने 'हरि ओम, हरि ओम, भगवान भला करे' कहकर पूछ लिया—बेटा, सब ठीक हो गया?"

कैलाश ने सान्त्वना दी—"जी हां, सब कुछ हो गया।"

उर्मिला फूल और फूलदान ले आयी।

कैलाश ने फूल लेकर चेतन की ओर बढ़ा दिये—"जरा लगा दो!"

चेतन फूलदान में फूल लगाने लगा।

पंडित जी ने कैलाश से पूछा—"सुनो बेटा······कुछ फल-वल लाये हो?"

कैलाश ने समाधान किया—"जी, एक दर्जन संतरा, एक दर्जन केला, थोड़ा अमरूद भी लाया हूँ।"

पंडितजी ने उंगली से केश खुजाते हुए असंतोष प्रकट किया—"कोई और अच्छी चीज ले आते।"

कैलाश ने कहा—"अच्छा ही है; और क्या लाता! अनार तो अढ़ाई रुपये सेर है। बीमारों के लिये ही समझिये।"

पंडितजी ने कह दिया—"ले आते, क्या था; खैर......।"

बरामदे से पुकार सुनाई दी—"कैलाश! उर्मिला बेटी!"

पंडितजी घबरा गये—"अरे, वे लोग तो आ गये! जल्दी करो न!"

कैलाश ने उन्हें चिंता न करने के लिये कहा—"सब हो गया है। आप उन्हें लाइये। उर्मिला, छोटी मेज जल्दी लाओ, फूल काहे पर रखे जायेंगे!"

पिता और कैलाश आगन्तुकों का स्वागत करने बाहर चले गये। उर्मिला झपट कर तिपाई ले आयी। चेतन उर्मिला के हाथ से तिपाई लेकर कोने में रखकर फूलदान में फूलों को संवारने लगा।

चेतन ने फूल संवारते हुए उर्मिला से कहा—"तुम्हारे मन में कैसे लड्डू फूट रहे हैं। बड़ी बहिन की शादी हो जाय तो घर की बडी लडकी समझी जाने लगे, क्यों?"

उर्मिला ने हामी भरी—"और नहीं तो क्या! फिर आप मुझे पढ़ायेंगे न?"

चेतन ने सोचकर कहा—"तुम्हें......मैं जिसे पढ़ाता हूँ, उसकी शादी जल्दी हो जाती है।"

उर्मिला—"ऐ हे, बड़े आए! अच्छा, देख जायेगा।" वह हंस दी।

कैलाश और उसके पिता मेहमानों को आदर से कमरे में ले आये। उन्हें कालीन पर रखे हुए गाव-तकियों के साथ बैठाया।

मेहमानों में पंडित रामनाथ लगभग कैलाश से पिता की आयु के। उनके साथ पंडित ज्ञानचन्द्र लगभग चालीस वर्ष की आयु, कुर्ता-धोती पहने और अंडी की चादर ओढे। ज्ञानचन्द्र के छोटे भाई, संभावित वर, नवयुवक धर्मचन्द्र चुस्त अचकन और चूड़ीदार पाजामा पहने। ज्ञानचन्द्र की स्त्री एक बढ़िया रेशमी साड़ी में। चेहरे पर रूप नहीं पर व्यवहार में ठसक। वे खूब गहना पहने।

अतिथियों और यजमानः में तकियों के सहारे बैठने में तकल्लुफ हो जाने पर अतिथियों को आदर से तकियों के पास बैठाकर कैलाश और उसके पिता उनके सामने बैठ गये। कैलाश ने चेतन का संकेत से बुलाकर अपने पास बैठा लिया। पंडित हरप्रसाद ने अत्यन्त विनय से अतिथियों का कुशल-क्षेम पूछा। लखनऊ के मौसम की बात हुई। इलाहाबाद के मौसम का हाल पूछा।

रामनाथ ने ज्ञानचन्द्र की ओर संकेत किया—"आप पंडित ज्ञानचन्द्रजी हैं! आप इलाहाबाद हाईकोर्ट में पेशकार हैं। बड़े ही सज्जन पुरुष हैं। इलाहाबाद में बड़े-बड़े वकील, बैरिस्टर सब लोग आपकी बहुत प्रशंसा करते हैं। आपका बहुत रसूख है। बहुत आदर-सम्मान, प्रभाव।"

पंडितजी ने हाथ जोड़कर ज्ञानचन्द्र को पुनः नमस्कार किया—"आपकी प्रशंसा बहुत सुनी थी, भगवान् भला करें, दर्शन करने का सौभाग्य आज हुआ।" उन्होंने दुबारा हाथ जोड़े—"बहुत आनन्द हुआ।"

रामनाथ ने कैलाश के पिता की ओर संकेत कर विनय की हंसी से कहा—"अकाउटेन्ट साहब !"

ज्ञानचन्द्र ने प्रत्युत्तर में हाथ जोड़े—"आपसे दर्शन-परिचय हमारा सौभाग्य है।" उन्होंने रामनाथ की ओर संकेत किया—"पंडितजी की कृपा से आपके दर्शनों का अवसर मिला।"

पंडितजी ने कैलाश से धीमे से कहा—"बेटा, अपनी माताजी को बुलाओ न !......कहो, इलाहाबाद से बहिनजी आयी हैं।"

रामनाथ ने ज्ञानचन्द्र की ओर संकेत किया—"इनका तो धर्म ही है, लोगों की सहायता और सेवा। नहीं तो आप जानते हैं, अदालतों का तरीका ! पर इनकी बात ही दूसरी है। इसके हाथों कभी किसी का अनिष्ट नहीं......"

पंडितजी ने उत्साह से टोक कर स्वीकार किया—"जी हां, सज्जनों का तो ऐसा ही स्वभाव होता है।"

ज्ञानचन्द्र ने हाथ जोड़कर पान से रंगे दांत निकाल दिये—"जी, हम किस लायक हैं। आप लोगों की दया से जो बन पड़ता है, सेवा करने का यत्न करते हैं।......होता सब ईश्वर की दया से है। आप जानते हैं, मनुष्य क्या कर सकता है।"

रामनाथ बोले—"ऐसे सज्जनों से सत्संग और सम्बन्ध भगवान की-कृपा से ही होता है हरप्रसादजी। जैसे आपका परोपकारी स्वभाव है, बस वैसे ही ज्ञानचन्द्रजी को समझिए। बस, समझ लीजिए बिलकुल......क्या कहते हैं, हां, हमने सोचा कि सज्जनों का सज्जनों से ही सम्बन्ध हो, तभी भगवान की इच्छा पूर्ण होगी। हरे कृष्ण, हरे गोविन्द !" उन्होंने भगवान को हाथ जोड़कर मूंछों पर हाथ फेर लिया।

कैलाश की मां पुरानी धोती बदलकर रेशमी साड़ी पहिन कर आयीं। वर की भाभी ने सरक कर उनके लिये अपने समीप स्थान कर दिया—"राम-राम बहनजी !"

कैलाश की मां—"बहिनजी राम-राम।" कहकर उनके समीप बैठ गयी।

रामनाथ ने कैलाश की मां से ज्ञानचन्द्र की पत्नी का परिचय कराया—"आप ज्ञानचन्द्रजी के छोटे भाई धर्मचन्द्रजी की भाभी हैं। बड़ा दयालु स्वभाव है।"

कैलाश की मां ने एक बार और हाथ जोड़े—"बहुत आनन्द हुआ बहिनजी के दर्शन से.......।"

भाभी ने आग्रह किया—"नहीं बहिनजी नहीं, हम किस लायक हैं। हमें तो आपके दर्शनों की बड़ी इच्छा थी। बहिनजी, आपकी बहुत तारीफ सुनी थी।"

कैलाश की मां ने भी आग्रह किया—"नहीं बहिनजी, आप बड़े लोग हैं। हमें तो आपके दर्शन से बड़ा आनन्द हुआ। घर में आपके चरण आये तो यह घर पवित्र हुआ।"

रामनाथ ने कैलाश की मां की ओर संकेत किया—"आप कैलाश की मां हैं। वसु अन्नपूर्णा हैं; देवी समझिये!" फिर धर्मचन्द्र की ओर संकेत किया—"आप हैं धर्मचन्द्रजी, ज्ञानचन्द्रजी के छोटे भाई। इस साल वकालत पास करेंगे।"

ज्ञानचन्द्र हरप्रसाद से बोले—"हां, भाई साहब, इनसे कहा—नौकरी क्या करोगे; नौकरी की भी कोई जड़ होती है! हमने उम्र भर नौकरी करके देख लिया······।"

हरप्रसाद ने समर्थन किया—"जी हां, भगवान भला करे, नौकरी की भला क्या जड़ हो सकती है! अब देखिये, नौकरी करते-करते मेरी यह उम्र हो गयी, फिर भी क्या है। एक उम्र में आकर आदमी को रिटायर भी तो होना पड़ता है।"

ज्ञानचन्द्र ने उनका समर्थन किया—"जी हां, जी हां, अपना भी तो यही हाल है। नौकरी का क्या भरोसा! ठीक कह रहे हैं आप। इसीलिये मैंने कहा, इलाहाबाद में तो सभी लोग जान-पहचान के हैं। यह वकालत कर लें······।"

रामनाथ उत्साह से बोल उठे—"अजी, आपकी बदौलत इलाहाबाद की अदालतें तो इनकी अपनी ही समझिये। वरना तो," उन्होंने हरप्रसाद के कंधे पर हाथ रख दिया—"भाई साहब आप जानते हैं इस जमाने में वकीलों के जो हाल है!"

पंडितजी ने गर्दन ऊँची कर स्वीकार किया—"जी कुछ न पूछिये! इस जमाने में सभी पेशों का, कारोबार का बहुत बुरा हाल है। सबका एक ही सा हाल है।"

रामनाथ ने धर्मचन्द्र की ओर संकेत किया—"लेकिन इनके लिये तो वकालत जमी-जमाई समझिये।" उनका हाथ ज्ञानचन्द्र की ओर हो गया—"इनके रहते······हा हा।" रामनाथ हंस दिये।

पंडितजी ने प्रबल समर्थन किया—"जी हां, जी हां, इसमें क्या सन्देह। भगवान भला करे, भले आदमियों का तो ऐसा ही कायदा है पंडितजी!" वे धीमे से कैलाश से बोले—"बेटा कैलाश, कुछ चाय-शरबत तो मंगाओ।··· बहन से कहो, चाय भिजवाये।"

ज्ञानचन्द्र ने दोनों हाथों से इन्कार किया—"न-न-न-न! कोई आवश्यकता नहीं। यह कष्ट न कीजिए! चाय की बात रहने दीजिए। पीकर ही आ रहे हैं।" उन्होंने रामनाथ की ओर देखा—"है न भाई साहब!"

पंडितजी ने हाथ जोड़ अनुरोध किया—"तो शर्बत पीजिये।"

ज्ञानचन्द्र ने हाथ हिलाकर इकार किया—"ऊ हूँ, ना······ना! कष्ट न कीजिये। अभी पी के ही आ रहे हैं, क्यों रामनाथजी!" वे विनय से हंस दिये—"अभी तो कष्ट न कीजिये।"

पंडितजी भी प्रत्युत्तर में हंसे—"हें, हे, कोई कष्ट नहीं······कष्ट की क्या बात है! ऐसे ही ज़रा कुछ मामूली सा······उसमे क्या है, बस नाम ही है।"

कैलाश ने दरवाजे में होकर पुकारा—"उर्मिला!······जरा चाय तो ले आओ!"

कैलाश की मां उठती हुई बोली—"मैं भिजवाती हूँ एक मिनट में।" वे भीतर चली गयीं।

ज्ञानचन्द्र फिर भी कहते रहे—"नहीं नहीं, चाय का भाई साहब आप व्यर्थ कष्ट कर रहे हैं। आपके तो दर्शन ही से इतना सुख प्राप्त हुआ। बाबू रामनाथ अपने पुराने मित्र हैं। लखनऊ में एक जमीन लेकर यहां भी एक मकान बनवाने का इरादा कर रहे थे, इसीलिये इलाहाबाद से आये थे।"

पंडितजी ने इस सूचना के लिये प्रसन्नता प्रकट की—"बहुत ठीक, बहुत ठीक पंडितजी, जमीन-जायदाद ही असली चीज.......।"

रामनाथ ने उन्हें टोक दिया—"धर्मचन्द्र भी साथ थे। ऐसे अवसर पर सोचा कि आप लोगों से परिचय हो जाय।" वे हंस पड़े—"क्यों ज्ञानचन्द्रजी !"

पंडितजी ने तुरंत स्वीकार किया—"बड़ी कृपा की आपने हम लोगों पर। बड़े सौभाग्य से सज्जनों के दर्शन होते हैं।"

ज्ञानचन्द्र ने कहा—"यह तो हमारा ही सौभाग्य है। बहुत प्रशंसा आपकी सुनी थी। दर्शन की बहुत इच्छा थी पर.......।"

रामनाथ बोले—"हां और यह बात भी हुई थी आपसे कि अपनी बेटी एम० ए० में पढ़ती है। बहुत ही सुशील है। यह समझिये," वे ज्ञानचन्द्र की ओर घूम गये—"ज्ञानचन्द्रजी, कि कालिज में पढ़ती है और परन्तु घर के काम में बहुत चतुर-सुघड़। बहुत सीधी; गाय समझिये। घर का सब काम-काज अपने हाथों करती है।"

भाभी बोली—"हां, हां भले घरों में ऐसा न हो तो कैसे चले !"

रामनाथ बिना रुके बोलते गये—"वैसे तो ईश्वर की दया से हरप्रसादजी के घर में नौकर है, महरी हैं.......।"

ज्ञानचन्द्र ने अनुमोदन किया—"जी हां, जी हां, क्यों नहीं, क्यों नहीं।"

रामनाथ कहते गये—"परन्तु लड़कियां ऐसी सुशील हैं कि सब काम अपने हाथ से करती हैं। भोजन तो आपके घर में अमृत बनता है, अमृत ! लड़कियां ही बनाती हैं।"

ज्ञानचन्द्र ने साथ दिया—"शरीफ घरों का तो यही कायदा है। अपने ब्राह्मण परिवारों का यही चलन चला आया है। भाई साहब, नौकरों के हाथ की रसोई भला कोई रसोई होती है, कहिये !......."

रामनाथ बोले—"नौकरों के हाथ की रसोई तो गले के नीचे नहीं.......।"

हरप्रसाद भी बोले—"यह तो आप लोगों की दया है परन्तु, भगवान भला करे, कैलाश की मां ने तो बचपन से ही लड़कियों को घर सम्हालने की शिक्षा दी है। उस बेचारी की तो आप जानते हैं, भगवान भला करे, सेहत ही ठीक नही रहती। लड़कियां ही सब घर सम्हालती हैं।"

रामनाथ ने उनकी बात में बात मिलाई—"हां, हां इसीलिये तो सोचा कि ज्ञानचन्द्र जी आये थे और सौभाग्य से धर्मचन्द्र भी साथ। समझिये न; स्वर्ण अवसर!......आप लोग जानते हैं कि अच्छे सम्बन्ध मिलते कहां हैं? आप लोग आये हैं तो ऐसे अवसर पर कुछ बातचीत ही हो जाये, और क्या!"

> कैलाश की मां सुमित्रा और उर्मिला के साथ चाय का सामान लेकर आयी। सुमित्रा एक अच्छी सूती किनारेदार बादामी रंग की साड़ी पहने थी। उसका चेहरा गम्भीर और झुका हुआ था। चेहरे पर पाउडर या सुर्खी नहीं। उर्मिला रेशमी साड़ी पहने थी।

रामनाथ ने सुमित्रा की ओर संकेत कर ज्ञानचन्द्र से कहा—"ये बेटी सुमित्रा है, कैलाश की बहिन। एम० ए० में पढ़ती है। बहुत ही गौ स्वभाव। ये उर्मिला है, छोटी बहिन।" वे उर्मिला से बोले—"कहो बेटी उर्मिला, कौन सी जमात में पढ़ रही हो!"

उर्मिला ने लज्जा से सिर झुका कर कहा—"टेन्थ में।"

रामनाथ ने और पूछा—"कौन से स्कूल में पढ़ती हो बेटी?"

पंडितजी ने उत्तर दिया—"यह तो जुबली गर्ल्स हाई स्कूल में पढ़ती है।"

रामनाथ ने उनसे कहलावाया—"बेटी सुमित्रा तो एम० ए० में पढ़ती है न?" सुमित्रा सिर झुकाये चुप रही है।"

कैलाश की मां बोली—"जी हां, बी० ए० पास कर लिया है। एम० ए० में दाखिल हुई है। इसके पिताजी कहते हैं, पढ़ ले, क्या हर्ज है।" उन्होंने सुमित्रा से कहा—"बेटी चाय बनाओ।"

> उर्मिला तश्तरियों में फल और मिठाई रखकर मेहमानों के सामने रखती गयी। इस बीच मेहमानों और यजमानों में 'आप लीजिये, पहले आप' कह सम्मान प्रदर्शन होता रहा।

रामनाथ फिर बोले—"बहुत अच्छा है। विद्या का क्या कहना! सब धनों से उत्तम धन विद्या!"

ज्ञानचन्द्र ने भी अनुमोदन किया—"जी हां, ऐसा तो होना चाहिये। विद्या बड़ी चीज है।"

पंडितजी ने स्वीकारा—"जी हां, यही सोचा कि शिक्षा सबसे बड़ा गुण। भगवान भला करे, शिक्षा के बिना आप जानते हैं, लड़का हो या लड़की, मनुष्य नहीं बन सकता और अब जैसा जमाना आ गया है उसमें तो शिक्षा न होने से निर्वाह ही नहीं हो सकता।" उन्होंने रामनाथ की ओर देखा—"क्यों पंडितजी!"

कैलाश की मां ने धर्मचन्द्र की भाभी से बात की—"देखिये बहिनजी, लड़कियों की पढ़ाई पर खर्च तो बहुत हो जाता है। आप जानती हैं लड़कों से भी ज्यादा। लड़कियों से लड़कों को पढ़ाना आसान है।"

भाभी ने हामी भरी—"हां बहिनजी, ठीक कहती हैं आप। लड़कों का क्या, पैदल स्कूल चले गये। दूर हुआ, एक साइकिल ले दी पर लड़कियों के लिये स्कूल आने-जाने का ही सबसे पड़ा खर्चा हो जाता है। हमारी लड़की तो स्कूल की बस में जाती है। लड़कियों को अकेले कैसे……।"

कैलाश की मां ने कहां—"हां बहिनजी, जो हमारी लड़कियां भी स्कूल की मोटर में जाती हैं। हमीं जानते हैं, कितना झंझट होता है। लड़कों का क्या है बहिनजी……।"

रामनाथ ने दोनों महिलाओं का साथ दिया—"यह तो है ही। लड़कों की बात दूसरी है। लड़कियों की तो विशेष चिन्ता करनी ही पड़ती है। तभी तो कन्या को लक्ष्मी कहा है।"

हरप्रसाद ने कहा—"ठीक कह रहे हैं पंडितजी। भगवान भला करे, घर भी तो लड़की की ही बुद्धि से चलता है।"

रामनाथ ने उनका समर्थन किया—"बहुत ठीक, क्या कहा अकाउन्टेन्ट साहब ने! घर तो लड़की की ही बुद्धि से चलता है।" उन्होंने ज्ञानचन्द्र की ओर देखा—"क्यों पंडितजी !"

ज्ञानचन्द्र ने स्वीकारा—"निस्संदेह, निस्संदेह; ठीक कहते हैं आप। ठीक कहा अकाउन्टेन्ट साहब ने। घर तो गृहिणी से ही होता है। पंडितजी, घरवाली को सलीका हो तो आदमी की दस न्यूनताएं छिप जाती हैं और घरवाली फूहड़ हो तो आदमी हजार कमा कर लाये, घर कभी पनप नहीं सकता।"

रामनाथ ने टोक कर सराहना की—"वाह! क्या बात कही पण्डितजी ने। स्त्री फूहड़ हो तो स्वर्ग को नरक बना दे।"

हरप्रसाद ने विनय से याद दिलाया—"चाय ठण्डी हो रही है।"

ज्ञानचन्द्र जैसे भूल ही गये थे—"अरे अकाउन्टेंन्ट साहब, यह तो आपने बहुत कष्ट किया।"

हरप्रसाद ने विश्वास दिलाया—"नहीं नहीं, कष्ट क्या, यह हम लोगों का सौभाग्य है। आपके चरणों की धूल, भगवान भला करे, इस घर में आती रहे। हैं है……लीजिये न!" समोसों की तश्तरी ज्ञानचन्द्र और रामनाथ के सामने कर अनुरोध किया—"लीजिये न पडितजी !"

रामनाथ ने समोसा लेकर चाय के प्याले से घूंट भर लिया—"आपने बहुत पक्की बात कही पडितजी! हमारे शास्त्रो में स्त्री को देवी कहा गया है। इसलिये कि घर के धर्म की रक्षा स्त्री से ही होती है।"

हरप्रसादजी ने भी हामी भरी—"जी हां, धर्म की रक्षा तो स्त्रियां ही करती हैं।"

रामनाथ और उत्साहित हो गये। प्याला नीचे रखकर हाथ उठाकर बोले—"देखिये न, शास्त्रों में धरती को माता कहा गया है, सब नदियों को माता कहा गया

है। शास्त्रों में स्त्री को भी माता माना गया है।" उनका हाथ ऊंचा उठ गया—"और स्त्री को धर्मपत्नी कहा गया है इसलिये कि धर्म का पालन करती है।"

भाभी ने चाय का प्याला नीचे रखकर पूछ लिया—"यहां लड़कियों के कालिज में गाना भी सिखाया जाता होगा। इलाहाबाद में तो······।"

कैलाश की मां ने तुरन्त विश्वास दिलाया—"हां बहिनजी, गाना सिखाने के लिये तो हम लोगों ने सूरदास गुरुजी को भी रखा हुआ था। घर में तानपुरा, हरमोनिया बाजा भी है। दोनों लड़कियों ने गाना सीखा है। सुमित्रा को कई बार गाने में स्कूल से इनाम मिला है।"

चाय के प्याले खाली होने पर सुमित्रा उन्हें भरने लगी। उर्मिला जिस तश्तरी में जो चीज समाप्त होती देखती रखती जाती है।

रामनाथ अपनी तश्तरी में और मिठाई रखी जाने पर बोले—"ना ना, बेटी, क्या कर रही हो" उन्होंने हरप्रसाद को सम्बोधन किया—"पण्डितजी यह तो आप बहुत कष्ट कर रहे हैं।"

हरप्रसाद ने गद्‌गद भाव से हाथ जोड दिये—"भगवान भला करे, इसमें है ही क्या! लीजिये न, इतना तो और लीजिये। सब चीजें शुद्ध घी की है।"

ज्ञानचन्द्र ने अपनी प्लेट पर बढ़ाया हाथ पीछे हटाते हुए कहा—"बस क्षमा कीजिये अकाउन्टेन्ट साहव, मेरा मेदा जरा कमजोर रहता है।"

कैलाश की मां ने धर्मचन्द्र की भाभी से आग्रह किया—"आप लीजिये न बहिनजी!"

धर्मचन्द्र की भाभी ने ऊँचे स्वर में इन्कार किया—"न न, बहिनजी, बस बस!'

भाभी कहती गयी—"बहिनजी, यहां लडकियों के स्कूल-कालिजों में तो सीने-पिरोने, बुनने-बनाने का काम भी तो सिखाया जाता होगा?"

उर्मिला ने उसकी तश्तरी में मिठाई रख दी।

कैलाश की मां ने स्वीकार किया—"हां-हां, बहिनजी, यह कैसे हो सकता है हम लोगों के घर की लड़कियां भला यह काम न सीखें!' उन्होंने बीच में बिछे बढ़िया कढ़े हुए मेजपोश की संकेत किया—"देखिये, यह सुमित्रा का काढा हुआ है।'

रामनाथ ने मेजपोश की ओर बहुत ध्यान से देखा—"वाह, वाह! बहुत सुन्दर!" ज्ञानचन्द्र का ध्यान भी मेजपोश की ओर आकर्षित कर बोले—"देखा, आपने? ·····देखिये तो!"

ज्ञानचन्द्र ने हाथ का प्याला तश्तरी में रखकर मेजपोश की ओर ध्यान से देखकर सराहना की—"क्या कहना साहब! बहुत खूब! क्या बारीक काम है! बहुत ही सुन्दर, बहुत ही सुन्दर······किसने बनाया है?"

कैलाश की मां ने हाथ फैलाकर कहा—"यह तो कुछ भी नहीं। सुमित्रा तो बहुत बढ़िया काम करती है। बढ़िया चीजें तो रखी रहती है, कभी लेने-देने के काम आयेंगी।

मुहल्ले भर की लड़कियां इसे घेरे रहती हैं। सबको नये-नये ढंग के स्वेटर और मोजे बुनना सिखाती रहती है। जाने कितनी ऊन जाड़ों में लायी और बना-बनाकर बांटती गयी……"

रामनाथ टोक कर बोल उठे—"ठीक है, ठीक है। माता-पिता का प्रभाव होता है न संतान पर।"

कैलाश की मां कहती गयी—"और खुद कुछ नहीं पहनती, चाहे कितना ही समझाओ। कहती है, जाड़ा ही नहीं लगता।"

रामनाथ बोले—"ठीक है, ठीक है। हमने कहा न, कुल का असर कहीं जा सकता है! वह तो होगा ही।"

सुमित्रा अपनी बाबत बहुत बात चलती देखकर संकोच से भीतर उठकर भीतर चली गयी। उर्मिला भी उसके पीछे चली गयी।……

सुमित्रा की मां ने कहा—"बेचारी बहुत शर्मीली है।"

रामनाथ बोले—"यह तो होगा ही। भले लोगों की संतान भी तो भली ही होती है। लज्जा तो बेटियों का गुण है। भई, मां-बाप जिस ढंग पर चलेंगे, संतान भी तो वही रास्ता पकड़ेगी।"

हरप्रसाद ने धन्यवाद दिया—"यह तो आप लोगो की गुण-ग्राहकता है। भगवान भला करें, वरना हम लोग किस लायक हैं!" वे रामनाथ से आंखें चार हो जाने पर उनकी ओर जिज्ञासा से कुछ क्षण देखकर बोले—"पण्डितजी, क्या इलाहाबाद आज ही चले जायेंगे? कुछ दिन ठहरते। आपके दर्शन से तो बड़ा आनन्द हुआ।"

रामनाथ ने ज्ञानचन्द्र की ओर देखा—"हां, पर इन्हें फुर्सत ही कहां मिलती है! बरसों बाद आ पाये हैं। हम तो कब से लिख रहे थे।" वे ज्ञानचन्द्र की ओर झुक गये—"पण्डितजी, क्या विचार है? क्या वहां जाकर लिखियेगा?"

ज्ञानचन्द्र अपने घुटने पर दोनों पंजे दाब कर गंभीर हो गये—"हां, जाकर भी हो सकता है।" उन्होंने अपनी पत्नी की ओर देखा—"सभी बातें देखी जाती हैं न!" उनकी नजर धर्मचन्द्र की ओर गयी—"और भई इस जमाने में तो आप जानते हैं, पहले तो लड़कों से ही पूछना जरूरी होता है। हम लोगों का उसके बाद ही कुछ बोलना ठीक है।"

कैलाश के पिता बारी-बारी से ज्ञानचन्द्र और रामनाथ की ओर देखने लगे।

रामनाथ ने गर्दन हिलाकर स्वीकार किया—"पण्डितजी ठीक ही कह रहे हैं। बात तो असली लडके की ही पंसद की होनी चाहिये पर भले घरों के लड़के भी अपने बड़ों के कहने के बाहर नहीं जा सकते हैं। भाई साहब लड़का वकालत पढ़ रहा है पर ऐसा सीधा लड़का नहीं देखा। बहुत भला स्वभाव है।"

हरप्रसाद ने सहमते हुए कहा—"जी हां, भगवान भला करे, भाई साहब," उन्होंने ज्ञानचन्द्र की ओर संकेत किया—"गुणी कुल की संतान गुणी ही होगी।"

रामनाथ ने बात आगे बढ़ाई—"अरे धर्मचन्द्र बाबू के तो आप ही लोग हैं। भाई-भाभी हैं तो और माता-पिता हैं तो।" गर्दन जरा सीधी कर वे गंभीर हो गये—"पण्डितजी, ऐसी बातें चिट्ठी-पत्री से कहां चल सकती हैं। इन बातों में तो आमने-सामने बात हो जाना ही अच्छा रहता है। भले आदमियों में तो बात का ही मोल होता है।" उन्होंने हरप्रसाद की ओर देखा—"क्यों अकाउन्टेंट साहब ?"

धर्मचन्द्र की भाभी अपने बोलने का अवसर समझकर सिर का आंचल सम्भालते हुए कुछ आगे खिसक आयी—"देखिये, लड़का ही जब तक कुछ न कह दे······उससे पूछना ही होगा न ?"

हरप्रसाद ने संकेत समझा—"हां-हां, कैलाश की मां, पान नहीं लाई लड़कियां ?" उन्होंने कैलाश की ओर देखा—"बेटा, देखो तो जरा पान नहीं भेजे लड़कियों ने।"

कैलाश और चेतन दोनों उठकर बाहर चले गये।

कैलाश की मां ने उठते हुए ज्ञानचन्द्र की स्त्री से कहा—"अभी आती हूँ बहनजी।" वे आश्वासन देकर दायीं ओर से भीतर चली गयीं।

हरप्रसाद भी 'एक मिनट' कहकर उठ गये—"भगवान भला करे अभी आया !"

भाभी ने आगे खिसक कर धर्मचन्द्र से पूछा—"कुछ कहो तो !" और जरा मुस्करायीं।

धर्मचन्द्र ने सिर हिला दिया—"मै क्या कहूँ ?······आप लोग जो कहें !"

भाभी ने अपने पति की ओर देखा—"लड़की सुशील होगी, पढ़ी-लिखी भी है ही, पर भई," उनका मुंह बन गया—"चेचक के दाग बहुत गहरे हैं।"

रामनाथ कुछ घबराये—"अब यह सब तो है ही लेकिन लड़की का गुण देखिये।" वे रहस्य के स्वर में बोले—"इसी वजह से तो इतनी रकम दे रहे हैं ये लोग। गुण की बात तो पण्डितजी, यह है कि ऐसी लड़की लाखों परिवारों में कहीं एक होती है !"

घर का नौकर चांदी की तश्तरी में पान दे गया।

ज्ञानचन्द्र—"पर धर्मचन्द्र को पसन्द भी तो हो !" उन्होंने रामनाथ की ओर देखकर पूछा—"लेन-देन की बात आपसे क्या हुई है ?"

रामनाथ ने हाथ उठाकर तीन बार पंजा दिखाया—"पंद्रह हजार की बात हुई थी। हरप्रसाद पानीदार आदमी हैं। दान-दहेज में कंजूसी करने वाले नहीं।"

भाभी ने मुँह में पान रखते हुए कहा—"दान-दहेज तो चलता ही है। उसमें कोई ठहराव की बात थोड़े होती है पर ठहरावा भी तो देखा जाता है।"

रामनाथ ने ज्ञानचन्द्र के समीप खिसक कर रहस्य के स्वर में समझाया—"तुम पन्द्रह हजार और दहेज पर मत जाओ। आदमी पैसे से नहीं जाचा जाता। पैसा तो हाथ का मैल है पण्डितजी ! आदमी का गुण असली चीज होती है। लड़की बी० ए० पास है। दो बरस में एम० ए० हो जायेगी······एम० ए० ही समझो, चाहे प्राइवेट कर ले। घर में एम० ए० पास बहू का होना मामूली बात नहीं, पण्डितजी। परमेश्वर के मन की बात कोई नहीं

जानता। परिवारों में सब तरह के समय आते हैं। हां, एम० ए० पास बहू को घर में एक एम० ए० पास आदमी समझो।"

ज्ञानचन्द्र ने मुँह में भरे पान को सम्हालने के लिये मुँह ऊपर उठा लिया—"सो तो हम समझते हैं पण्डितजी, पर भाई ठहराव की भी तो बात है।"

रामनाथ ने कहा—"सोचो कितना तो खर्च हो गया होगा उसकी पढ़ाई पर!" उन्होंने ज्ञानचन्द्र का हाथ थाम लिया, "समझे! तुम्हें तो एम० ए० पास आदमी मिल रहा है।"

भाभी ने कहा—"उसमें क्या है······हमें कौन बहू से नौकरी करानी है!" उन्होंने मुंह बिचका लिया—"चेहरा ऐसा है कि भई पन्द्रह हजार कम हैं। गुण तो हुआ पर रूप कोई चीज होती है। गुण तो कोई कब देखेगा, पहिले तो लड़की का रूप ही देखेगा। नहीं तो घर बैठे इतनी उम्र कैसे हो गयी!······लोग यही तो देखते होंगे। यह लोग उन्नीस की बता रहे हैं, इक्कीस से कम नहीं है, ज्यादा चाहे हो।"

ज्ञानचन्द्र ने समर्थन में सिर हिलाया—"हां भाई, सभी कुछ देखा जाता है।"

भाभी पति का समर्थन पाकर बोली—"छोटी बहिन की बात होती तो हम कहते, पन्द्रह हजार ही सही। बड़ी की शादी यूं ही थोड़े हो जायेगी। हम तो पच्चीस हजार से कम नहीं मानेंगे। सच्ची बात है!"

रामनाथ ने गहरी सांस लिया—"तो बात की जाय। लेन-देन की बात तो ऐसे ही तय होती है भाई। कुछ वे मानेंगे, कुछ आप कम करेंगे लेकिन लड़की ऐसी गुणी नहीं मिलेगी। खैर, बात हो जाय। इनकी भी चिंता मिटे और आप लोगों को भी निश्चय रहे।"

भाभी ने पति से कहा—"आप पच्चीस ही कहिये।"

रामनाथ ने हाथ से इशारा कर प्रतीक्षा का संकेत किया—"जो हरि इच्छा हो······आप लोगों में जो तय हो जाय। हम तो यह जानते हैं कि ईश्वर की कृपा से दो भले परिवारों का सम्बन्ध हो जाय, यही बड़ी बात है।" उन्होंने गर्दन ऊंची कर पुकार लिया—"उर्मिला बेटी!·· कैलाश भैया!"

अपना नाम सुनते ही कैलाश तुरन्त आ गया। वह किवाड़ की ओट में खड़ा सुन रहा था। उसके पीछे अपने दोनों बाजू सीने पर बाधे चेतन भी साथ आ खड़ा हुआ। चेतन निचला होंठ दांत से दबाये था: मानों क्रोध को घोंटे हो।

कैलाश ने रामनाथ की ओर देखा—"कहिये?"

रामनाथ पालथी मारे अपने दोनों घुटनों पर हाथ रखकर पीठ सीधी करके बोले—"कैलाश बाबू, अकाउन्टेंन्ट साहब को बुलाओ न भाई, आज्ञा लें। बहुत देर हो गयी है।

हरप्रसाद भी कमरे में आ गये।

कैलाश अपने पिता के आ जाने के कारण चुप रह गया।

हरप्रसाद पुराने स्थान पर बैठ गये और बोले—"अभी जल्दी क्या है! बैठिये तो।"

रामनाथ उसकी ओर सरक गये—"भाई साहब देखिये, और तो सब ठीक है पर पेशकार साहब का कहना है कि......मतलब कि लेने-देन की बात तो नहीं है परन्तु जैसा जग का व्यवहार है। देखिये, हमारे लिये तो जैसा आपका घर है, वैसा इनका घर है।......ये लोग तो पच्चीस हजार ......कह रहे हैं।" उन्होंने विवशता प्रकट करने के लिये दोनों हाथ फैला दिये।

हरप्रसाद का चेहरा लटक गया और हाथ ढीले पड़ गये।

कैलाश ने चेतन को कुहनी से संकेत किया।

चेतन ने उसकी ओर देखकर नज़र से संकेत किया—मानों कह रहा हो पहले तुम!

हरप्रसाद ने एक गहरी सांस ली। घुटने पर रखी कोहनी की हथेली पर चिन्ता में अपना सिर टिका लिया—"भगवान भला करे......।"

कैलाश आगे बढ़कर क्रोध में बोल उठा—"पच्चीस हजार किस बात के? आप लड़की को पसन्द करने का दाम मांग रहे हैं?......आपको लड़की के चेहरे पर शीतला के दाग होने का हर्जाना चाहिये?"

सब लोग भौंचक कैलाश की ओर देखने लगे।

सुमित्रा सहसा किवाड़ के पीछे से कमरे में आकर कैलाश के सामने खड़ी हो गयी।

सुमित्रा ने किसी की ओर न देखकर सिर झुकाये परन्तु कडे स्वर में कहा—"आप लोग मेरी कुरूपता का हर्जाना लेकर मुझे पसन्द करेंगे?...परन्तु मुझे लड़का पसन्द नहीं है।"

सभी लोग विस्मय में आंखें और मुंह बाए रह गये। सुमित्रा एक ओर हटकर खड़ी हो गयी। ज्ञानचन्द्र, रामनाथ, धर्मचन्द्र और उसकी भाभी सब आवेश में खड़े हो गये।

कैलाश के पिता सुध बुध खोये बैठे रहे।

ज्ञानचन्द्र, उनकी स्त्री, रामनाथ और धर्मचन्द्र के चेहरे क्रोध से फूल गये।

रामनाथ और हरप्रसाद की ओर देखकर ज्ञानचन्द्र क्रोध में बोले—"हमारा इस प्रकार अपमान करने के लिये आप लोगो ने हमें बुलाया था!"

चेतन आगे बढ़कर बोल उठा—"इसमें आप लोगों का कोई अपमान नहीं है। आप ही लड़की को पसन्द करेंगे; लड़की नहीं लड़के को पसन्द करेगी? आप लड़की के चेचक के दागों के कारण कुरूपता का हर्जाना मांगते हैं तो इस घर का अपमान नहीं है! लड़की आपको कुरूप जान पड़ती है। लड़की को लड़का कुरूप और बेवकूफ मालूम होता है।"

रामनाथ ने क्रोध में धमकाया—"तुम कौन हो बीच में बोलने वाले?"

कैलाश आगे बढ़ आया—"इन्हें इस घर की तरफ से सब कुछ कहने का अधिकार है। यह मेरे बड़े भाई हैं!"

ज्ञानचन्द्र क्रोध में पांव पटक कर चुनौती में हाथ उठाकर बोला—"तुम लोगों ने हमारा जो अपमान किया है, इसका वह बदला दूंगा," उसने मूंछों पर हाथ फेरा—"सात पीढ़ी में भी अगर इस घर की लड़कियों की शादी कहीं हो जाय तो मेरा नाम ज्ञानचन्द्र नहीं·······।"

कैलाश आस्तीनें चढ़ाने लगा—"चुप! जवान सम्हालो!"

चेतन ने कैलाश को बांह से पीछे खींचकर ज्ञानचन्द्र को हाथ से बरामदे की ओर संकेत किया—"गेट आउट! इस घर की बावत एक भी शब्द कहा तो जवान खींच ली जायेगी!·······लड़कियों के मां-वाप का खून पीने वालो, तुम्हारी खबर ऐसी लड़कियां ही लेंगी।"

रामनाथ ने वरामदे की ओर बढ़ते हुए धमकाने के लिये उंगली दिखाई—"याद रखना, हरप्रसाद!"

ज्ञानचन्द्र, धर्मचन्द्र, रामनाथ और ज्ञान की स्त्री पांव पटकते हुए चले गये।

कैलाश की मां ने दोनों हाथ पसारे, मुंह फैलाये गहरी सांस से पूछा—"क्या हुआ·······हाय रामजी, क्या हुआ? वे लोग क्यों चले गये?" उसने दोनों हाथ सिर पर मार लिये—"हाय मेरी लड़की का क्या होगा?"

हरप्रसाद मानसिक आघात की मूर्छा से जागे और बाहें फैलाकर दरवाजे की ओर लपकते हुए पुकार उठे—"भाई रामनाथजी! पेशकार साहब! अरे सुनिए!"

कैलाश ने पिता के सामने आकर रास्ता रोक लिया—"यह क्या कर रहे हैं आप!"

हरप्रसाद और ऊंचे स्वर में पुकारने लगे—"पंडितजी! रामनाथजी! पंडित ज्ञानचन्द्रजी!"

कैलाश ने पिता को डांटा—"क्यों आप अपनी वेटी का और अपना अपमान कराना चाहते हैं!"

हरप्रसाद ने सिर पर हाथ मार लिया, चीखकर बोले—"तुम लोगों ने सर्वनाश कर डाला। मैं क्या सारी उमर लड़कियों को अपने सिर पर बैठाये रखूंगा!·······कैसा कपूत मेरे घर में पैदा हुआ है जिसने मेरा लोक-परलोक विगाड़ दिया!"

कैलाश ने तीखे स्वर में डांटा—"सिर पर बैठा रखने का क्या मतलव! आपकी लड़की का अपमान करने वाले का पेट अपने खून से भरने से लड़की को कुरूप बताकर हर्जाना मांगने वाले को खुश करने से आपका धर्म पूरा होगा!·······किस वात के पचीस हजार रुपये मांगता है वह?·······रुपया मिल जाने से लड़की के चेहरे से दाग मिट जायेंगे?·······रुपया हजम करके वे लोग लड़की से क्या बरताव करेंगे!"

हरप्रसाद भर्राये हुये गले से चिल्ला उठे—"रुपये के लालची! तुझे रुपये की फिकर है। रुपये के लोभ में तूने दरवाजे पर आए लड़की के वर को ठुकरा दिया।" उन्होंने धमकी देने के लिये मुट्ठी उठा ली—"कौन है तू मेरी सम्पत्ति के बारे में बोलने वाला! मैं घर में आग लगा दूंगा। याद रख, यह मेरी कमाई है। मैं पचीस हजार नहीं, पचास हजार दूंगा। मैं मकान बेंचकर लड़की का ब्याह करूंगा। रुपये के लालची, तूने रुपये के लोभ में मेरा लोक-परलोक बिगाड़ दिया।......निकल जा मेरे घर से।" उन्होंने दरवाजे की ओर संकेत कर दिया। वे क्रोध से कांप रहे थे।

कैलाश प्रत्युत्तर की उत्तेजना में बोला—मैं लात मारता हूँ आपकी सम्पत्ति पर, आपके मकान पर। सुमित्रा मेरी बहिन है। जो उसका अपमान करके, इस घर का कूड़ा समेटने के लिये, इस घर का पाप धोने के लिये हरजाना मांगेगा, उसे इस घर में पांव नहीं रखने दूंगा।" वह और भी क्रोध में बोला—"यदि सुमित्रा इस घर को भारी है तो वह भी मेरे साथ जायेगी। हम मजदूरी करके अपना पेट पाल लेंगे परन्तु मैं अपनी बहिन का अपमान नहीं होने दूंगा। चलो बहिन।......

सुमित्रा झपटकर कैलाश के सामने आ गयी। उसकी आंखें क्रोध से लाल थीं और शरीर कांप रहा था।

सुमित्रा कड़े स्वर में बोली—"भैया को घर से निकालने की क्या जरूरत है! मैं इस घर के लिए इतनी बोझ हूँ, मैं स्वयं इस घर में नहीं रहूँगी।"

हरप्रसाद ने दोनों हाथों से सिर पीट लिया—"तुम सब मुझे मार डालो! मुझे पाप में घसींटना चाहते हो। तुम मेरे घर में कुआंरी लड़की बैठाये रखकर मुझे नरक में घसीटोगे। तुम्हीं लोग रहो इस घर में। मैं इस घर को लात मारता हूँ। इस घर को आग लगाता हूँ। मैं ही इस घर में नहीं रहूँगा। तुम लोगों ने मेरी औलाद होकर मेरे साथ जो किया, भगवान तुमसे समझेगा! लो, तुम्हीं रहो! मैं जाता हूँ!......

हरप्रसाद दरवाजे की ओर बढ़ गये।

कैलाश की माँ सिर पीटकर चिल्ला उठी। उसने लपक कर पति के कुर्ते का आंचल पकड़ लिया—"हाय रामजी, क्या हो गया सबको।" उसने पति को पुकारा—"कहां जा रहो हो तुम।......मेरा घर उजाड़ने वालो तुम्हारा नाश हो।"

हरप्रसाद के सामने आकर चेतन गम्भीर परन्तु ऊंचे स्वर में बोला—"आप यह क्या कर रहे हैं? ......जो आपकी लड़की का अपमान करे, क्या वही आपकी लड़की का वर हो सकता है! जो रुपये की लालच में आपकी लड़की का निरादर करे वही आपकी लड़की का वर हो सकता है! जो आपकी लड़की को देवी के समान आदर करे, उस पर श्रद्धा करे, व......वं......उसका वर नहीं हो सकता!"

कैलाश के पिता और माँ विस्मय से स्तब्ध आंखें और हाथ फैलाये एक-दूसरे की ओर देखने लगे। चेतन की बात समझने के लिये कैलाश उसकी ओर एक

कदम बढ़ गया। अपने स्थान पर खड़ी सुमित्रा ने विस्मय से उसकी ओर देखा परन्तु उसकी कठोर मुद्रा में कोई परिवर्तन नहीं आया।

कैलाश ने गहरा सांस लिया—"क्या कह रहे हो ?......किसकी बात कर रहे हो ?"

चेतन ने अपने सीने की ओर संकेत कर कैलाश की ओर देखा—"अगर आप लोग मेरी धृष्टता क्षमा करें,"......उसका स्वर लड़खड़ा गया—"मैं......मैं चाहता हूँ म-मेरा मतलब है......मैं......मैं नहीं कहता कि मैं उसके लिये उचित वर हूँ परन्तु परन्तु" उसने दोनों हाथ आपस में मले—"परन्तु यदि आप समझें तो मैं इसे अपना सौभाग्य......समझूँगा।"

विस्मय के धक्के से कैलाश की उत्तेजना शिथिल हो गयी। उसने गहरी सांस लेकर प्रश्न की दृष्टि से सुमित्रा की ओर देखा।

सुमित्रा का क्रोध और भी उग्र हो गया। उसके माथे पर गहरी त्योरी पड़ गयी। उसने एक कदम आगे बढ़, हाथ की मुट्ठी से हवा मे प्रहार करके चेतन को सम्बोधन किया—"अब आप मुझ पर दया दिखाना चाहते है......मुझे किसी की दया नहीं चाहिये।"

सुमित्रा ने आंसू रोकने के लिए क्रोध में होंठ काट लिये। सब लोग विस्मय से सुमित्रा की ओर देखते हुए अवाक रह गये।

चेतन ने सुमित्रा की भर्त्सना से अविचल रहकर उसकी ओर देखा और द्रवित लड़खड़ाते हुए स्वर में बोला—"मैं......मैं तुम्हारा अपमान नहीं कर रहा हूँ। मैं......मैंने अपने मन की इच्छा और गौरव की बात कही है। मैं......मैं उसके लिये क्षमा चाहता हूँ।......मैं तुम पर दया नहीं कर रहा हूँ।......मैं तुम्हारी दया चाहता हूँ।"

चेतन ने कैलाश की ओर देखा—"तुम जानते हो, मैं इनका कितना आदर करता हूँ। जो इन्हें कुरूप कहते हैं, वे झूठ बोलते है। अधे हैं......।" सुमित्रा होंठ काटकर बोली—"आप झूठ बोलते हैं।......मैं जानती हूँ मैं कुरूप हूँ। दुनिया जानती है, मैं कुरूप हूँ।" उसने प्रश्न की मुद्रा में हाथ उठाया—"क्या सारी दुनिया झूठ बोलती है ? आप ही सच्चे हैं ? ......आप झूठे हैं! मुझे कुरूपता का कोई डर नहीं है, कोई लज्जा नहीं! मैं सुन्दर खिलौना नहीं हूँ!"

चेतन गम्भीर और स्थिर हो गया—"दुनिया, दुनिया खिलौना ढूँढती है। मैं इन्सान का आदर करता हूँ।......दुनिया के लोग तुम्हें देख नहीं पाये। वे जिस आंख से देखते हैं, वह आँख ही टेढ़ी है। मेरी आंखों पर दहेज के लोभ की पट्टी नहीं बंधी है इसलिये मैंने तुम्हें देखा है और पहचाना है। मैं उस ज्योति का आदर करता हूँ।"

सुमित्रा का शरीर कांप उठा। उसने दोनों हाथों से चेहरा ढक लिया। लड़खड़ाती हुई अपने स्थान से चेतन की ओर दो कदम बढ़ आयी। आंसू भरे गले से बोली—"आप तो झूठ नहीं बोलते थे।...... मैं सदा आपका विश्वास करती रही हूँ।......आप ऐसी बात न कहिये!......मुझे ऐसे ही रहने दीजिये!" वह मुँह ढांपकर दीवार के समीप चली गयी।

कैलाश आश्वासन देने के लिये सुमित्रा के समीप हो गया। उसका कन्धा छूकर बोला—"सुमित्रा!......सुमित्रा! ......सुनो! ...... क्या कहे जा रही हो! ......घबराती क्यों हो? ......तुम जानती हो, चेतन भाई झूठ नहीं बोलते।"

मां जैसे मूर्छा से जागी। पति को सम्बोधन कर बोली—"ए जी! ......क्या हो गया तुम्हें! ......क्या कहते हो?" पति से उत्तर न पाकर उन्होंने गाल पर उंगली रख सबकी ओर देखा।

हरप्रसाद मूढ़ता से जागे। गहरी सांस लेकर सुमित्रा की मा की ओर देखा—"हां! क्या कहती हो मितरा की मां! ......भगवान भला करे......अच्छा" उन्होंने चेतन को सम्बोधन किया—"भैया, तुम लोग कौन ब्राह्मण हो?"

(पटाक्षेप)

गुडबाई दर्दे-दिल

गुडबाई दर्दे-दिल

पात्र

आटो रिक्शा कुली : कोई कुली फटी-पुरानी कमीज या बंडी पहने है, कोई कम्बल की गाती बांधे है। सिरों पर दबी और चिपकी हुई काली टोपियां हैं। पसीने से भीगे चेहरों पर धूल जमी है। पिंडलियों पर नसें तनी और पसीने की धारें बह रही हैं।

रणजीत : विलायत से लौटा युवक। आयु लगभग छब्बीस वर्ष। टेनिस खेलने के बाद अपने मित्र केशव के साथ शशि के बंगले पर ब्रिज पार्टी में सम्मिलित होने के बहाने शशि से मिलने जा रहा है। फलालेन का गहरे हरे रंग का ब्लेजर कोट, गले में सफेद रेशमी मफलर, सफेद फलालेन की पतलून और सफेद जूते पहने है, हाथ में टैनिस का बल्ला है। वर्षा की आशंका में बरसाती कोट भी साथ में है।

केशव : रणजीत का समवयस्क मित्र। उसके ब्लेजर कोट का रंग गहरा कत्थई है।

प्रौढ़ : आयु प्रायः पचपन वर्ष, शिक्षित, सम्भ्रांत आर्यसमाजी सज्जन का सा वेश, चेहरे पर सहृदयता और दया का भाव।

शर्मा : अपने मित्र से बात करता सड़क पर चला जाता गाँधीवादी युवक। वह खद्दर का कुरता-धोती पहने और शाल ओढ़े है।

वर्मा : बेपरवाही से कोट पतलून पहने, बिना नेकटाई और टोपी के हैं। चेहरे से उग्र स्वभाव का आभास।

अन्य पात्र : सड़क पर आते-आते कुछ लोग और बोझ उठाये गुजर जाने वाले दो कुली। इन पात्रों का नाटक की घटना और वार्तालाप से कोई सम्बन्ध नहीं। वे केवल दृश्य पूर्ति के लिये हैं।

बंगले में

वृद्ध : शशि और लीला के पिता। सम्पन्न मध्यम श्रेणी के अवकाश-प्राप्त सरकारी अफसर, आयु लगभग पैंसठ वर्ष।

शशि : आयु लगभग बीस-बाइस वर्ष, गम्भीर, भावुक, नाजुक युवती। चेहरे से विचार-शीलता का आभास।

लीला : शशि की छोटी बहिन, लगभग अठारह-उन्नीस वर्ष।

नवयुवक : युनिवर्सिटी का पोस्ट-ग्रेजुएट छात्र, शशि के परिवार का निकट सम्वन्धी।

गुडबाई दर्दे-दिल

परदा उठता है

संध्या लगभग पांच बजे का समय है।

मंसूरी की एक खूब ढलवां सड़क। सड़क के दायीं ओर एक सीधी चट्टान दीवार की तरह। दूसरी ओर काफी गहराई। सड़क पर बहुत सी रिक्शाओं के ऊपर-नीचे गुजर जाने से रेखायें बन गईं।

सड़क पर ढलवान की ओर आने वाले लोग खूब तेज रफ्तार से लुढ़कते से चले आ रहे हैं और चढ़ाई की ओर जाने वाले हांफते हुए धीरे-धीरे चल रहे हैं। पीठ पर भारी बोझ उठाये कुली झुके हुए, बहुत धीमे-धीमे छोटी लठिया का सहारा लिये ऊपर चढ़ रहे हैं। उनकी तनी हुई पिंडलियों पर पसीने की धाराएं चमक रही हैं।

कुलियों द्वारा खींची जाने वाली पहाड़ी रिक्शाओं की घण्टियों की आवाजें और रिक्शा-कुलियों की पुकारें भी सुनाई देती हैं :

"बचके बाबू साहब!...बचो बाबू साब!...रोक के!...अबे जोर लगाओ!"

सड़क पर एक रिक्शा आती है। रिक्शा की चाल चढ़ाई के कारण बहुत धीमी है। रिक्शा में दो युवक केशव और रणजीत सवार हैं। उनके फलालेन के रंगीन कोट, सफेद पतलूनें, सफेद जूते और हाथ में टैनिस के बल्ले हैं।

एक बार फिर कुलियों की झुंझलाहट भरी पुकारें सुनाई देती हैं।

एक कुली—"बैचके बाबू साब!"

दूसरा कुली—"ओ दाने! दांये से जोर लगा बे!"

तीसरा कुली—"मैं तो लगा राऊं, तू देख!"

केशव झुंझलाकर बोला—"यार रणजीत, उतर जाओ। छोड़ो इस रिक्शा को। पैदल अब तक पहुँच जाते।......इनका रिक्शा खराब है। यह लोग नहीं खींच सकेंगे।"

रणजीत ने उठने के लिये तैयार साथी की बांह पकड़कर रोक लिया—"नहीं यार बैठो।" उसने क्रोध के स्वर में कुलियों को डांटा—"ऐ कुली! तुम चलता क्यों नहीं? तुम क्या तमाशा करता है!"

एक कुली ने कातरता से क्षमा-सी मांगी—"हजूर, जोर लगाता है। बौत सकत उंचा है। चढ़ाई में हजूर एसाई जाता।"

केशव ने फिर खिन्नता प्रकट की—"भई रणजीत मान जाओ! हटाओ इस झगड़े को! ......बहुत बुरा लग रहा है।"

रणजीत ने समझाया—"नहीं केशव, सोचो जरा······पार्टी में जा रहे हैं। उस सड़क पर बहुत धूल है। धूल से जूते और पैण्ट सभी खराब हो जायेंगे······अभी पहुँच जाते हैं।" उसने फिर कुलियों को धमकाया—"एई कुली, क्यों तुम जल्दी नहीं चलता है!······हम अभी उतर जायेगा। क्यों तुम इतना कमजोर आदमी लाता है!······देखता नहीं, दूसरा सब रिक्शा आगे चला गया!"

केशव ने भी अपने साथी का समर्थन किया—"अरे ओ कुली! क्या बदमाशी करता है तुम लोग······जोर क्यों नहीं लगाता तुम लोग!"

कुली हांफ गये थे। फिर भी उन्होंने एक माथ मिलकर जोर लगाया। रिक्शा झटके से दो कदम बढ़ा परन्तु सहसा दायीं ओर घूमकर चट्टान से टकरा गया। दायीं ओर का कुली सड़क पर गिर पड़ा। रिक्शा झटके से सामने झुक गया।

रणजीत के मुंह से घबराहट में निकल गया—"अरे! यह क्या! क्या हुआ?" वह रिक्शा से सड़क पर कूद गया।

केशव भी······ रिक्शा से सड़क पर हो गया—"है······कुली गिर गया?" उसने कुलियों को सम्बोधित किया—"अरे, देखो! क्या हो गया इसे!"

वह चोट खाये कुली को देखने के लिये आगे बढ़ गया परन्तु मैली चीज छू जाने के डर से ठिठका रहा।

गिरे हुए कुली को अन्य तीनों कुलियों ने घेर लिया।

एक कुली माथा पकड़कर विलाप के स्वर में चिल्ला उठा—"हाय राम! मेरा भाई गिर गया।" वह बिलख उठा।

दूसरे कुली ने उसे सांत्वना देने के लिए हाथ से संकेत किया—"नइ, नइ; गबरा नइ। कुच नइ है। बेहोस हो गिया है। देख तो, सांस चलता है।" उसने तीसरे कुली को सम्बोधन किया—"ओ रमिया, तू जा जल्दी, नल से पानी ला।"

रमिया ने विवशता में खाली हाथ दिखा दिये—"कैसे लायेगा? लोटा-भांडा तो नइ।"

दूसरे कुली ने अपने सिर से टोपी उतारकर कटोरे की तरह थमा कर कहा—"जा, जा, इसमें पानी ले आ। लाकर पानी पिला इसे!"

रणजीत और केशव बात करने के लिये चोट खाये हुए कुली से दो कदम दूर हट गये।

रणजीत का स्वर खिन्न—"ओह, ह्वाट-ए मैस्स! क्या मुसीबत हो गयी। अब क्या होगा? दूसरा रिक्शा कैसे मिलेगा? हाउ शैल वी रीच?······पहुँचेंगे कैसे? ह्वाट स्काउन्ड्रल्स! बहुत बदमाश हैं यह लोग।" उसने परेशानी से दाएं-बाएं देखा—"अब क्या होगा?"

केशव ने उत्तर दिया—"कहता हूँ, पैदल ही चले चलो।"

रणजीत ने असहमति प्रकट की—"पैदल कैसे!" उसने रिक्शा में पड़े बरसाती कोटों और बल्लों की ओर संकेत किया—"यह सब बोझा कौन उठायेगा? जस्ट वेट, जरा ठहरो!" उसने पानी लेने के लिये जाते हुए कुली को पुकारा—"ऐ कुली, तुम किधर जाता है?"

कुली ने उत्तर दिया—"हजूर, साथी गिर गिया, उसके लिए पानी लेने जाता।" रणजीत ने क्रोध प्रकट किया—"वह सब फिर होगा। पहले तुम हमरा वास्ते एक रिक्शा लायेगा।"

केशव ने उसे टोका—"क्या करते हो रणजीत! जब तक रिक्शा आयेगी, हम कोठी पर पहुँच जायेंगे।"

एक खाली रिक्शा उतराई की ओर आती दिखायी दी।

रणजीत रिक्शा को रोकने के लिये सड़क के बीच में हो गया और हाथ उठाकर बोला—"स्टाप-स्टाप! रोको-रोको!" उसने उंगली से गोलाई में संकेत किया—"वापिस उदर को गुमाओ।"

ऊपर से आती रिक्शा के कुलियों ने अपनी रिक्शा को रोककर चढ़ाई की ओर घुमा लिया।

रणजीत ने गिरी हुई रिक्शा की ओर संकेत करके आदेश दिया—"सामान उटायेगा! अमारा सामान उटाओ!"

दूसरी रिक्शा में सामान रख लिया जाने पर रणजीत और केशव उस रिक्शा में बैठ गये। रिक्शा चलने लगा।

पहली रिक्शा के कुली अपने चोट खाये साथी को छोड़कर रिक्शा की ओर आ गये।

कुलियों ने रणजीत और केशव को पुकारा—'हजूर, हमारा किराया।"

रणजीत ने खिन्नता से कुलियों की ओर देखा—"तुमारा कैसा किराया! तुमने हमको रास्ता में चोडा, हमारा टाइम खराब किया। कोई किराया नई, जाओ!"

रणजीत और केशव रिक्शा में चल दिये। पहली रिक्शा का एक कुली किराया मांगता हुआ उनके पीछे-पीछे चला गया। चढ़ाई की ओर पैदल जाने वाले दो युवक शर्मा और वर्मा और नीचे की ओर जाने वाले एक प्रौढ़ गिरे हुए कुली को देखकर रुक गये और उसके समीप जाकर खड़े हो गये।

शर्मा ने चोट खाये कुली की ओर संकेत कर उसके समीप बैठे कुली से पूछा—"क्यों, इस आदमी को क्या हो गया?"

कुली ने उत्तर दिया—"हजूर गिर गिया।" कुली ने अपने सीने की ओर संकेत से गहरी सांस लेकर बताया—"दम फूल के गिर गया।"

वर्मा ने खिन्नता से कहा—"कोई नई बात नहीं है। यह तो रोज होता है।......क्या किया जाय!......आदमी पशु की तरह बोझ खींचेगा तो और क्या होगा।"

प्रौढ़ चिंता से चोट खाये हुए कुली के समीप पत्थर पर बैठकर बोला—"इसका सांस तो चल रहा है। देखो, इसके मुँह में पानी डालें।" झुककर देखने पर विस्मय से—"ओह, इसके मुँह से खून आ रहा है!"

कुली ने बताया—"हजूर पत्तर लग गिया।"

प्रौढ़ ने चिंता से पूछा—"पत्थर?...किसने मारा पत्थर?"

वर्मा ने गर्दन हिलाई—"हम आप सभी लोग इन्हें मारते हैं?"

कुली ने हाथ के संकेत से इंकारा—"किसी ने नइ मारा हजूर, किस्मत का बात है। जोर से गाड़ी खेंचता। पांव भी पिसल जाता।"

प्रौढ़ ने अपने सूखते होंठ तरकर कहा—"यही तो तुम लोग समझते नहीं। इतनी जल्दी क्यों करते हो!"

शर्मा ने करुणा में कहा—"तुम गाड़ी क्यों खींचता है? गाड़ी खेंचना जानवर का काम है। तुम आदमी है।"

वर्मा मुस्करा दिया—"यह इनका धर्म है। इसी धर्म के लिये इन लोगों ने नर जन्म पाया है। दीन का धर्म सम्पन्न की सेवा है। इस धर्म के पालन से इन्हें स्वर्ग मिलेगा।"

कुली ने कुछ समझ कर अपनी वात कही—"हजूर, पेट का वास्ते!"

शर्मा ने पूछा—"पेट भरने के लिये क्या और काम नहीं है?"

कुली ने विवशता दिखाई—"कुछ भी नइ हजूर, अम क्या करेगा? खेती के लिए जमीन तो नई, रुपिया नई......और क्या करेगा?"

वर्मा ने उत्तेजित होकर शर्मा से पूछा—"बोलो, और क्या काम कर सकता है यह? इसे परवशता से घेरकर इसी काम के योग्य बना दिया गया है। भगवानों के लिये सेवकों की आवश्यकता है। अपना चढ़ते बस कोई पीठ पर किसी को क्यों चढ़ने देगा। यह कुली पशु से सस्ता है। सवारी करने के लिये पशु को रोज खिलाना होगा; सवारी करो या न करो। ऐसे लोगों को जरूरत के समय पुकार लिया जा सकता है। दो घण्टे जिंदा रहने के दाम देकर इन पर सवारी की जा सकती है। फिर इन्हें भूखा मरने के लिये छोड़ देने में अपनी कोई हानि नहीं है।"

शर्मा ने खिन्नता से कहा—"क्या वक रहे हो! मनुष्य के बारे में ऐसी बात कहते तुम्हें लज्जा नहीं आती। अपनी इसी हृदयहीनता को समाजवाद कहते हो!

वर्मा विद्रूप से हंस दिया—"तुम बहुत समझदार हो। यदि मैं पीटे जाने की शिकायत करूं तो तुम मुझ पर मार-पीट की उत्तेजना या हिंसा की उत्तेजना का इल्जाम लगा सकते हो। क्यों, यही है न अहिंसा का मार्ग?"

प्रौढ़ उन दोनों की बात में बोल उठे—अरे भाई, इस समय बहस की अपेक्षा," उन्होंने चोट खाये हुए कुली की ओर संकेत किया—"इसकी कुछ सहायता करना ही अच्छा होगा। इसे अस्पताल क्यों नहीं पहुँचा देते आप लोग! शायद बच ही जाय। चोट खतरनाक नहीं मालूम मोती।" उन्होंने वर्मा को सम्बोधन किया—"इसे कुलियों से उठवा कर अस्पताल पहुँचावा दो भाई!"

वर्मा ने पूछा—"अस्पताल! ....अस्पताल ले जाऊं! ....किस अस्पताल में ले जाऊं?"

प्रौढ़ बोले—"किसी भी अस्पताल में ले जाइये। सरकारी अस्पताल में या सेवा समिति के अस्पताल में ही ले जाइये। बेचारे की कुछ दवा-दारू होनी चाहिये।"

वर्मा ने सिर झटक दिया—"मेरा यह मतलब नहीं, आप मेरी बात समझे नहीं.......।"

शर्मा चिढ़कर बोला—"तो क्या पूछ रहे हो?"

वर्मा समझाकर बोला—"मैं यह पूछ रहा हूँ कि इसे इन्सानों के अस्पताल में ले जाऊं या हैवानों के? मुझे तो डर है, दोनों ही अस्पताल इसका इलाज करने से इनकार कर देंगे।"

शर्मा को क्रोध आ गया—"वर्मा, तुम्हें शर्म नहीं आती? इन्सान का मजाक करते हो! तुम मजदूर-किसान के राज के समर्थक बनते हो याद रखो, दरिद्र 'नारायण' का रूप है। दरिद्र की सेवा से ही नारायण प्रसन्न होते हैं। दरिद्र भगवान के चलते फिरते मंदिर हैं।"

वर्मा हंस दिया—"तो फिर इन मन्दिरों को खूब बढ़ने दो। इन मन्दिरों को नष्ट करने की क्या आवश्यकता है?"

प्रौढ़ करुणा भरे स्वर में वर्मा से बोले—"भैया, इंसान के दिल में इंसान के लिये दर्द होना ही धर्म है। यही इंसानियत है। शायर का कौल है—

दर्दे दिल के वास्ते पैदा किया इन्सान को,
वर्ना तायत के लिए कम न थे कुर्रोवयां!"[१]

वर्मा फिर हंस दिया—"दरिद्र के लिये दर्दे-दिल; खूब!" उसने भवें ऊंची कर पूछा—"दरिद्र की सेवा, उस पर दया करने का मतलब क्या है? इसका मतलब है दरिद्र को अपनी सेवा के लिये जिन्दा रखने की समझदारी! दरिद्र के प्रति दर्दे-दिल दिखाने का मतलब है, दरिद्र को दुर्भाग्य में ही बहलाये रखने की चतुरता। मैं ऐसी सहृदयता और दर्दे-दिल उसके दिल को दूर से हाथ जोड़ता हूँ।"

शर्मा ने बहुत घृणा से कहा—"तुम मनुष्य की सहृदयता समाप्त कर समाज में हिंसा और संघर्ष का सर्वनाश फैला देना चाहते हो। यही है न तुम्हारा श्रेणी-संघर्ष का सिद्धान्त!"

१. भगवान की महिमा प्रकट करने के लिये तो नक्षत्र ही पर्याप्त थे।

वर्मा ने चुनौती स्वीकार करने के लिये हामी भरी—"यदि दरिद्रों का अपनी हिंसा और अपने शोषण का विरोध करना, आत्मरक्षा की बात सोचना ही तुम हिंसा समझते हो तो लाचारी है। अच्छा होता, दरिद्र तुम्हारी दया को ठोकर मार अपने बल पर जीने या मर जाने की बात सोचते। वे भागवानों के दर्दे-दिल पर न पलते। दर्दे-दिल के इस धोखे को मैं हाथ जोड़ता हूँ!"

शर्मा को और भी क्रोध आ गया—"तुम चाहते हो कि स्वामी-सेवक में सतयुग का पिता-पुत्र का भाव मिट जाये! वे एक-दूसरे के खून के प्यासे बन जायें!"

वर्मा ने स्वीकार किया—"हां मैं चाहता हूँ, नगर के सब दरिद्र आयें और अपने स्वामी पिताओं की यह दया देखें। वे देखें भगवानों में कितना दर्दे-दिल है। भागवान दरिद्र को पेट पालने का अवसर देने के लिये उसकी सवारी करता है और जब बोझ से दरिद्र का शरीर दम तोड़ने लगता है तो भागवान दर्दे-दिल से उसे इलाज के लिये धर्मार्थ-औषधालय में पहुँचाने की बात करता है। ऐसे दर्दे-दिल को मैं कहता हूँ, अलविदा दर्दे-दिल! दूर जा दर्दे-दिल! गुडबाई दर्दे-दिल!"

प्रौढ़ व्यर्थ बकवास से खिन्न हो गये—"तो क्या आप लोगों की बहस में यह बेचारा कुली यों ही दम तोड़ देगा?"

वर्मा ने आश्वासन दिया—"नहीं, वह यों ही क्यों दम तोड़ेगा। अभी इसे बहुत भागवानों की सवारी बनना है। चलिये" वर्मा कुली को उठाने को झुक गया! उसने दूसरे कुलियों को पुकारा—"साथी आओ, मैं कंधे से उठाता हूँ, तुम कमर में हाथ लगाओ, तुम घुटने से पकड़ो।····· इसे रिक्शा में लिटाओ, इसको हस्पताल ले चलें!"

सब मिलकर कुली को उठाने का उपक्रम करने लगे।

(पटाक्षेप)

दूसरा दृश्य

संध्या, लगभग छः बजे का समय।

एक छोटे बंगले के सामने लान में चाय की नीची मेज के चारों ओर लगी कुर्सियां हैं। एक कुर्सी पर एक वृद्ध शाल से शरीर को ढके प्याले से धीमे-धीमे चाय के घूंट ले रहे हैं। उनके समीप दूसरी कुर्सी पर वृद्ध की अठारह-उन्नीस बरस की लड़की लीला प्रतीक्षा में बंगले की ओर आंखें उठाये हैं। वह चाय लेने के लिये अपनी बड़ी बहन की राह देख रही है।

वृद्ध और युवक में समय काटने के लिये व्यायाम के सम्बन्ध में बात चल रही है।

बंगले से ग्रामोफोन पर रिकार्ड बजने की ध्वनि और बीच-बीच ब्रिज की बैठक में होने वाली बातें भी सुनाई दे रही हैं। बंगले से ऊंची आवाज सुनाई देती है:

"वाह, पान के चार तुमने कैसे कह दिया......सिर्फ ढाई सरों पर?"

"पान के चार बिलकुल बन रहे थे! मियां, खेलना भी जानते हो।"

वृद्ध ने चाय का घूंट भरकर कहा—"व्यायाम चीज तो अच्छी है बल्कि आवश्यक है परन्तु व्यायाम ऐसा होना चाहिए कि नियमित रूप से किया जा सके, सुनो, लम्बी सैर सबसे अच्छा व्यायाम है।"

नवयुवक ने असन्तोष से कहा—"बाबूजी, चलने में क्या व्यायाम? मुझे तीन-चार मील चलने से कुछ मालूम ही नहीं होता।"

वृद्ध ने सुझाव दिया—"बहुत अच्छा, ऐसा है तो मील भर की दौड़ भी लगाओ!"

लीला ने शिकायत के ऊंचे स्वर में बंगले की ओर मुंह कर पुकारा—"दीदी, तुमने बोर कर दिया! तुम्हारी राह ताकते चाय ठण्डी हो गयी।"

बंगले के भीतर से उत्तर मिला—"आई लीला, तुम शुरू करो।"

बंगले के भीतर से ग्रामोफोन पर गीत के बोल सुनाई दिये: "धोखा खाने वाले नयना हरदम धोखा खाते हैं।

गई उमरिया बीत, न आया मन का मीत......!"

बंगले के फाटक से कुत्ते के भौंकने की आवाज सुनाई देती है। लीला ने आहट पाकर घूमकर फाटक की ओर देखा। फाटक से रणजीत और केशव आते दिखाई दिये। उनके पीछे एक कुली उनके बरसाती कोट और टैनिस खेलने के बल्ले उठाये था। सबसे पीछे इन लोगों की पहले छोड़ी हुई रिक्शा का एक कुली आया।

लीला उल्लास में पुकार उठी—"ओहो! रणजीत भाई, आखिर आ गये!" उसने अपनी कलाई पर लगी घड़ी दिखाई और मुस्कराकर बोली—"शायद चार ही बजे होंगे, क्यों रणजीत भाई!"

रणजीत ने क्षमा मांगी—"आईम सो सारी। गेम ओवर होने में देर लग गयी।"

लीला विद्रूप से हंस दी—"हां साहब, टैनिस खेलने वाले बड़े आदमी बैडमिन्टन खेलने वालों से क्या बात करें!"

रणजीत ने बताया—"असल में तो देर लगी रिक्शा के कारण। ह्वाट स्टुपिड फैलोज़! इन्हें टाइम-सेंस है ही नहीं!"

बंगले के भीतर से पुकार सुनाई दी—"कट फार पार्टनर्स!"

लीला ने केशव की ओर देखा—"भाई साहब, अन्दर जाकर देखिये। आपके साथी प्रतीक्षा से ऊवकर चौथे साथी के विना कटथ्रोट खेलने वैठ गये हैं। नया डील हो रहा है।"

ग्रामोफोन पर फिर सुनाई दिया:

"धोखा खाने वाले नयना हरदम धोखा खाते हैं,

गई उमरिया बीत, न आया मन का मीत······

लीला ने आगन्तुकों की ओर से दृष्टि हटाकर बरामदे की ओर देखा। लीला की बड़ी वहिन शशि बरामदे से आती दिखाई दी।

लीला ने ग्रामोफोन के गीत को लक्ष्य कर शशि को सम्वोधन किया—"नहीं दीदी, धोखा नहीं है!" उसने रणजीत की ओर संकेत किया—"देखो, सचमुच आ गये।"

रणजीत लीला की बात पर मुस्करा दिया। उसने अपना सामान उठाये कुली को सामान एक कुर्सी पर रखने के लिये संकेत किया और जेब से बटुआ निकालकर कुली को दो रुपये दे दिये।

कुली रुपये हाथ में लेकर और माथा छूकर गिड़गिड़ाया—"हजूर, कुछ बकसीस मिलता!"

केशव ने विस्मय से त्योरियां चढ़ा लीं—"अरे, आठ आना तुमको बख्शीश दिया साहब ने और तुम क्या लेगा! जाओ, तुम लोग बड़ा लालची है।"

वृद्ध ने तर्जनी उठाकर समझाया—"भई, पहले डेढ़ रुपया उसे देना चाहिये था। बख्शीश मांगने पर चार आने और देते। इससे तुम्हारे चार आने बचते और उसे अधिक संतोष होता।"

पहली रिक्शा का एक कुली रणजीत और केशव के पीछे-पीछे आकर चुपचाप एक ओर खड़ा था। वह आगे बढ़ आया।

कुली ने हाथ जोड़कर कहा—"हजूर, हमारा रिक्सा का किराया नई मिला। हजूर ने पहले हमारा रिक्सा किया था।"

रणजीत झुंझला उठा—"तुम्हारा रिक्सा किया था......तुमने हमको पहुँचाया! हम पैसा उसको देगा जो हमको जगह पर पहुँचायेगा।"

केशव ने घृणा प्रकट करने के लिये नाक सिकोड़ ली—"ओहो, क्या जानवर हैं! मरते आदमी की फिकर नहीं, पैसे के लिये दौड़ा चला आया। ह्वाट ब्रूट्स?"

कुली हाथ जोड़कर गिड़गिड़ाया—"हजूर, हमारा आदमी मर जायेगा तो अम क्या करेगा?"

वृद्ध सहम गये, घबराकर बोले—"हैं......क्या! आदमी मर गया! क्या कहा? ......कहां......आदमी कैसे मर गया?"

रणजीत ने उपेक्षा से सिर हिला दिया—"ओर, नो, नो! नथिंग लाईक दैट......ओनली ए कुली! नाट ऐक्सीडेन्ट! ऐसे ही दम फूल कर गिर पड़ा होगा। कोई खास बात नहीं!"

वृद्ध ने सम्हलने के लिये दोनों हाथों से कुर्सी की बांहें पकड़ लीं। चिन्ता और घबराहट के स्वर में पूछा—"नाट एक्सीडेन्ट, क्या कहा, कुली दम फूल कर गिर पड़ा!" उन्होंने कुली को सम्बोधन किया—"क्या तुम्हारी रिक्शा का आदमी था? क्या हुआ?"

रणजीत ने कुली को पीछे हटने का संकेत किया—"इन लोगों का लालच देखिये!" ......वह कुली की ओर घूम गया—"बदन में ताकत नहीं है तो तुम रिक्शा खींचने क्यों आता है? रुपये-आठ आने के लिये दूसरे आदमी का वक्त खराब करता है! तुमको शर्म नहीं आता!"

रणजीत के समर्थन में कुली को धमकाने के लिये केशव आगे बढ़ गया—"क्यों तुम ऐसा कमजोर आदमी लाया? तुमने हमारा सवा घण्टे टाइम खराब कर दिया। कुछ समझता है!"

लीला विस्मित रह गयी—"सवा घन्टे! गुडनेस!......मैं पैंतीस मिनट में लाइब्रेरी से यहां पहुँच जाती हूँ।"

युवक तर्जनी उठाकर बोला—"अगर पच्चीस मिनट में पहुँचा जाय तो और मजा आता है। दैट इज़ गुड एक्सरसाइज! शरीर खुल जाता है।"

रणजीत को युवक की बात भली नहीं लगी। बोला—"यू काल दैट एक्सरसाइज! कसरत ऐसे की जाती है......धूल रौंदते चलना! एक्सरसाइज के लिये आप गोल्फ खेलिये या टैनिस खेलिये।"

बंगले के भीतर से ब्रिज खेलने वालों की आवाजें:

"......ये मारा!"

"......शाब्बास मेरे शेर!"

केशव ब्रिज में शामिल होने की व्यग्रता में लीला से बोला—"भई मैं जा रहा हूँ। मेरे लिये चाय वहीं भिजवा देना।" वह भीतर चला गया।

वृद्ध ने आंखें मूंद कर आकाश की ओर हाथ जोड़ते हुए कहा—"हे भगवान, मुझे कभी लोगों के कंधों पर चढ़कर न चलना पड़े। मेरी ऐसी अवस्था कभी न हो। इससे पहले ही मुझे अपनी दयामय गोद में बुला लेना।"

शशि आकर एक कुर्सी पर बैठ गई थी। वह कुली के सम्बन्ध में बातचीत को ध्यान से सुनती चुप थी। उसके चेहरे पर घबराहट के चिह्न आ गये थे। उसने निढाल होकर गर्दन हिलाई जैसे गरमी से दिल घबरा गया हो।

शशि से सीने पर हाथ रखकर कहा—"क्षमा कीजिये, मैं जरा भीतर जाऊंगी।"

रणजीत ने शशि की ओर देखकर आत्मीयता की मुस्कराहट से पूछा—"क्या बैडमिंटन में थकान अधिक हो गयी?"

शशि ने रणजीत की बात का कोई उत्तर नहीं दिया। हाथ आंखों पर रखकर सिर कुर्सी की पीठ से टिका लिया।

लीला ने रणजीत को चुप रहने का संकेत किया—"रहने दीजिये। दीदी अभी ठीक हो जायेंगी।"

रणजीत ने लीला से धीमे स्वर में पूछा—"क्यों, क्या बात है?" लीला ने रणजीत की ओर झुक कर धीमे से बताया—"कुछ नहीं शायद वही कुली की बात। बहुत भावुक हो गयी है दीदी। उस दिन बिल्ली ने कबूतर को पकड़ लिया था, तो देखकर बेहोश हो गयीं।......दिन भर खाना नहीं खा सकीं। ऐसा कुछ देखती-सुनती हैं तो इन्हें ऐसा ही होने लगता है।"

रणजीत बात समझकर परिस्थिति सम्हालने के विचार से बोला—"ओह अच्छा, अच्छा।" उसने शशि को सुना सकने के लिये ऊंचे स्वर में कुली को पुकारा—"एई देखो, यहां आओ! फिर ऐसा मत करना!" बटुए में से एक नोट निकालकर कुली की ओर बढ़ाया—"यह लो, पांच रुपया! जाओ। सेर न खाओ!" वह लीला की ओर घूमकर धीमे स्वर मे बोला—"आई थिंक इट इज़ आल राइट नाओ?"

वृद्ध ने पूछा—"क्या पांच रुपये दे दिये? अच्छा किया। यू आर वैरी काइंड।" उन्होंने कुली को सम्बोधन किया—"देखो, जाकर उस आदमी को खूब गरम-गरम दूध पिलाओ। तुम लोग बहुत कडी मेहनत करते हो। तुम लोगों को अच्छी खुराक खाना चाहिए।" उन्होंने लीला की ओर देखा—"बेटा छः बज गये होंगे मैं घूम आऊं। जरा बदलू को आवाज देना, मेरी छड़ी तो दे जाये।"

लीला ने वृद्ध की कुर्सी की पीठ के पीछे लटकती छड़ी उठाकर सामने कर दी—"डैडी भूल गये, बदलू छड़ी तो पहले ही रख गया है। आपका ओवरकोट ला दूं, लौटते समय सर्दी हो जायेगी।"

वृद्ध छड़ी के सहारे उठते हुए बोले—"न न, बेटा। ओवरकोट से बोझ हो जाता है। चलने में सर्दी कहां मालूम होती है। बैठने पर ही जाड़ा लगता है।"

वृद्ध सैर के लिए बंगले के फाटक की ओर चले गये।

लीला ने वृद्ध के कुर्सी से उठते ही शशि की कुर्सी के समीप रणजीत को संबोधन किया—"रणजीत भाई, आप भी क्या दीदी की तरह ब्रिज में ज्वाइन नहीं करेंगे?"

रणजीत ने कंधे उचका कर समर्थन की आशा से शशि की ओर देखा—"नो, रादर नाट। पत्ते पीटने से मुझे कोई संतोष नहीं होता। क्यों शशि? जरा यहाँ खुली हवा में बैठेंगे।"

रणजीत शशि के समीप कुर्सी पर बैठ गया।

लीला बंगले के बरामदे की ओर बढ़ गयी—"भई, मैं जाती हूँ। मेरा गेम खराब हो रहा है। मैं आप लोगों के लिये चाय यहां भिजवा दूं?"

रणजीत ने स्वीकार किया—"ओह, दैट विल बी फाईन! परन्तु चाय की जरूरत जल्दी नहीं है। कुछ देर में भिजवा देना।" उसने शशि की ओर देखा—"क्यों?"

शशि ने शिथिलता से कह दिया—"नहीं, कोई जल्दी नहीं।"

लीला बंगले की ओर चली गयी।

रणजीत ने अपनी कुर्सी शशि की कुर्सी के अधिक समीप खींच ली।

रणजीत ने सहानुभूति से पूछा—"हाओ डू यू फील नाओ? कैसा लग रहा है......घबराहट तो नहीं मालूम हो रही है?"

शशि ने मुँह फेर लिया—"नहीं, कुछ नहीं, ठीक हूँ।"

रणजीत जरा मुस्कराया—"जरा सी बात पर इतना घबरा जाती हो। कितना नरम दिल है!"

शशि आंखें झुकाये रही—"क्या......मैं कब घबराई......कौन जरा सी बात?"

रणजीत ने उत्तर दिया—"वही कुली-वुली को चोट। ऐसा तो होता ही रहता है।"

शशि गम्भीर हो गयी—"हूँ......जरा सी बात।" वह मौन रह गयी।

रणजीत ने शशि को मौन देखकर पुकारा—"शशि!"

शशि मौन रही।

रणजीत ने आग्रह से पुकारा—"शशि!"

शशि की गर्दन और झुक गयी—"हूँ।"

रणजीत उत्सुकता से बोला—क्यों......चुप क्यों हो?"

शशि—"नहीं तो......कहिए......क्या कहते हैं?"

रणजीत ने गहरी सांस लेकर कहा—"मैं चाहता हूँ, आज तुम्हीं कहो।......मैं तो कई बार कह चुका।"

शशि सिर झुकाये रही—"क्यों, अब क्या थक गये?"

रणजीत उत्साहित हो गया—"थक गया......क्या कहती हो शशि! तुमसे बात कहने में थक जाऊंगा!......दिस इज़ माई लाइफ्स जॉय, यही तो मेरे जीवन की एक साध है।"

बंगले से दूसरे रिकार्ड की आवाज आयी :

"उम्र दराज मांग कर लाया था चार दिन,

दो आरजू में कट गये दो इन्तजार में।"

रणजीत मुस्करा दिया, "यह सुनो, शशि! रिकार्ड भी मेरी गवाही दे रही है। क्या मेरी जिन्दगी सचमुच आरजू और इन्तजार में कट जायेगी?"

शशि की आंखें कहीं दूर—बहुत दूर चली गयीं—"आरजू......और......इन्तजार। मैं सोचती थी," उसने गहरी सांस ली—"एक बहुत बड़ी आरजू दिल में पैदा कर सकती और फिर जीवन के अन्त तक उसके पूरे होने की इन्तजार करती रहती। छोटी-मोटी आशायें और आरजुएं किस काम की!......आये दिन पूरी हो जाती हैं या बिखर जाती हैं और फिर जिन्दगी ऐसी भटकने लगती है जैसे जिन्दगी का कुतुबनुमा खो गया हो!"

रणजीत ने भी शशि की भांति भावुकता भरी गहरी सांस ली—"ओह, बट माइ केस इज़ डिफरेन्ट। मेरी तो बिलकुल दूसरी ही बात है। मेरी जिन्दगी की एम्बीशन, आई मीन आरजू, इतनी मुश्किल है कि शायद उसे दिल में लिये ही एक दिन आंखें बन्द हो जायें। आई मे डाई विद इट।" उसने गर्दन ऊंची कर ली—"एण्ड आई एम नाट सारी फार दैट। मुझे कोई गम भी नहीं। बिकाज आई लव यू मोर दैन माइ लाइफ। तुम्हारे प्रेम में अगर मेरा जीवन भी समाप्त हो जाता है तो मुझे कोई शिकायत नहीं, गम नहीं! मुझे इसी में सन्तोष है। ओह, आइ एम हैप्पी इन पेन आफ लव। मैंने दर्दे-दिल की दौलत जिन्दगी में पाई है। उसी को लेकर जिन्दगी काट रहा हूँ।" उसने और भी गहरी सांस ली—"दो आरजू में कट गये, दो इन्तजार में......क्या खूब।"

शशि ने आंखें कुछ दूर सामने जमीन पर गड़ा दीं। उसने गहरी सांस ली और जरा मुस्कराई—"दर्द......दर्दे-दिल! ......कितने प्यारे शब्द हैं रणजीत! सचमुच इनके रस में डूब कर जिन्दगी समाप्त हो जाये तो भी दुख न हो। सच कहती हूँ रणजीत, जब तुम इंगलैण्ड में थे, बृहस्पतिवार तुम्हारे पत्र की प्रतीक्षा में बरामदे में बैठी में पोस्टमैन की राह देखती रहती थी......।"

रणजीत प्रसन्नता से खिल उठा—"ओह रियली! आई एम सो हैप्पी शशि, तुम्हारा बड़ा एहसान है मुझ पर......।"

शशि ने हाथ उठाकर संकेत किया—"सुनो।"

रणजीत कुछ झेंप गया—"आई एम सो सारी, हां डार्लिङ्ग!"

शशि रणजीत से आंखें बचाये बोली—"मैं पोस्टमैन की इन्तजार में बैठी रहती। लोग खाने के लिये बुलाते तो मुझे लगता, व्यर्थ में सता रहे हैं। पोस्टमैन मुझे न देखेगा तो शायद पत्र देना भूल जायेगा। बार-बार घड़ी देखती। लगता घड़ी स्लो चल रही है......मैं पेड़ों की छाया की ओर देखकर समय का अनुमान करती......"

रणजीत उत्साह से गहरी सांस ले बोल उठा—"ओह, आई एम•सो ग्रेटफुल। शशि, मेरे कारण तुम्हें इतना कष्ट·······।"

शशि ने चुप कराने के संकेत में हाथ उठा लिया—"सुनो!"

रणजीत फिर झेंप गया—"ओह, आई एम सारी।"

शशि—"जब पोस्टमैन डाक दे जाता और तुम्हारा पत्र न होता तो मैं निराशा की चोट से घायल होकर बिस्तर पर औंधे मुंह लेट जाती·······।"

रणजीत ने प्रसन्नता दबाकर बहुत गहरी सांस ली—"माई लव, आई एम सो सारी। शशि, तुम्हारे पत्र के लिये मैं लंदन में डाकखाने तक·······।"

शशि ने फिर चुप कराने के संकेत में हाथ दिया और गहरी सांस ली—"अब याद आता है तो सोचती हूँ, कितने मीठे और अच्छे स्वप्न थे वे!"

रणजीत ने उत्साह से कहा—"शशि मैं तो तुम्हारी याद में व्याकुल होकर हाइड पार्क में जा बैठता था। एण्ड आई लास्ट माइसेल्फ इन ड्रीम्स!"

शशि ने फिर कहा—"तुम्हारा पत्र समय पर न आता तो मैं खा न सकती, सो न सकती और फिर·······।"

रणजीत ने उसे उत्साहित किया—"हां फिर ?"

शशि ने अतीत की बात याद करने के लिये आकाश की ओर देखा—"सुबह नाश्ते के लिये खाने के कमरे में न जाती तो खानसामा ट्रे में नाश्ता लगाकर मेरे कमरे में रख जाता। मुझे खानसामा पर क्रोध आ जाता, क्या खाना ही सब कुछ है? पेट में ठूंस लेना ही सब कुछ है।·······क्यों खाये इन्सान? दुख में जिन्दा रहने में ही क्या सुख है।·······मैं खाने का सामान खिड़की से फेंक देती·······।"

रणजीत ने बहुत गहरी फुंकार से सांस छोड़ी—"रियली! आई एम सो सारी। तुम्हारी याद में मुझे तो खाना अच्छा ही नहीं लगता था। शैम्पेन तक अच्छी नहीं लगती थी। शशि, जुदाई के वे दिन कितने हॉरिबल थे। और कई हजार मील का डिस्टेंस।·······इतनी दूर की जुदाई·······आई एम हैप्पी, वह खत्म हो गयी।" शशि को हाथ उठाते देख—"हां फिर।" वह सुनने लगा।

शशि आंखें बचायें बोली—"माली और साईस के बच्चों को मालूम था कि मैं खाना खिड़की से फेंक देती हूँ। बच्चे फेंका हुआ खाना उठाने के लिये दौड़ आते। बच्चों में उन टुकड़ों के लिये झगड़ा हो जाता और फिर इससे उनकी मातायें आपस में लड़ती·······।"

रणजीत रस भंग से विक्षिप्त होकर टोक बैठा—"उफ, ब्रूट्स·······जानवर कहीं के। इन लोगों से सेन्टीमेंट और फीलिंग की आशा नहीं की जा सकती। हां फिर?"

शशि ने आह भरी—"फिर मैं सोचती·······काश, ये लोग दर्दे-दिल का मज़ा जानते तो इन टुकड़ों पर जान क्यों देते! प्रेम में डूबकर खाना भूल जाने का मज़ा इन्हें नहीं मालूम।"

रणजीत मुस्करा दिया—"खूब, शशि तुम बड़ी मसखरी हो; फाइन।" शशि मुस्करायी नहीं—"फिर मुझे नींद न आती। मैं प्रेम की ऊष्णता से तपते हुए सिर पर ठंडी वायु का स्पर्श अनुभव करने के लिये खिड़की में सिर रखे पड़ी रहती और सुनती......।"

रणजीत ने कौतूहल से पूछा—"क्या सुनती ?"

शशि आंखें झुकाये कहती गयी—"भैया क्लब से आधी रात बीते लौटते। वे गुनगुनाते हुए आते :

लख्ते-जिगर खाने को है, खूने जिगर पीने को।

यह गिज़ा मिलती है लैला तेरे दीवाने को।"

रणजीत ने उल्लास से टोक दिया—"ओ फाइन, रियली।......फिर ?" शशि—"और......एक और सुरीली, वहुत धीमी-सी आवाज सुनाई देती : हजूर आ गये।......इस आवाज को मैं पहचानती थी।"

रणजीत रहस्य तथा कौतूहल में शशि की ओर झुक गया—"किसकी आवाज थी वह शशि ?"

शि [illegible] ाहीं बदला—"हमारी कश्मीरी बावरची की बड़ी बेटी नसीरन की।"

रणजीत उल्लास और कौतूहल से जरा ऊंचे बोल उठा—"रियली......योर ब्रदर हमें इज़ ए स्पोर्ट।"

शशि फिर वैसे ही तटस्थ स्वर में बोली—"भैया पूछते : नसीरन, अभी तक जाग रही हो।"

रणजीत ने उत्सुकता से पूछा—"एस... दैन ?"

शशि बोली—"उत्तर न पाकर भैया फिर पूछते : नसीरन उदास क्यों हो......अच्छा, मुस्कराओ एक बार।"

रणजीत का स्वर पुलक से भर गया—ओह भाई जोव। सचमुच......बड़े दिल-फेंक हैं, खूब। अच्छा फिर ?"

शशि सिर झुकाये रही—"फिर कदमों के पास-पास होने की आहट और नसीरन का नखरे से भरा स्वर......ना-ना-नहीं।"

रणजीत ने उत्सुकता से सांस रोक ली—"फिर ?"

शशि वैसे ही स्वर में बोली—"फिर दो-चार रुपये के खनकने की आवाज आती और जैसे नन्हें से बच्चे के मुंह पर पुच्ची करने से आती है।"

रणजीत ने उत्साह से अपनी जांघ पर हाथ पटक लिया—"ओह, माई गुडनैस, वैरी रोमांटिक......कमाल है। दैन, हां फिर ?"

शशि का स्वर बदल गया—"यह सब सुनकर तुम्हें बहुत रस मिल रहा है रणजीत ?"

रणजीत का स्वर झेंप से दब गया—"नो-नो, सर्टेनली नाट! मुझे बहुत बुरा लग रहा है।"

शशि—"हूँ।" वह पल भर को रुकी—"मुझे भैया के लिए बहुत दुख होता है। उनका विवाह होने में कुछ ही दिन शेष थे। मैं सोचती थी, वे नसीरन से प्यार करते हैं। डैडी उनका विवाह जबरदस्ती दूसरी जगह कर रहे हैं। यह अन्याय है।"

रणजीत ने चिंता प्रकट की—"ओह, दैट वाज़ रियली ए प्राब्लेम। दैन?

शशि ने फिर गहरी सांस ली—"उन्हीं दिनों मुझसे एक अपराध हो गया। मै अपने आपको वश में न रख सकी।"

रणजीत ने विस्मय से पूछा—"क्या?"

शशि ने बताया—"मैं बाजार की ओर जा रही थी। भैया ने एक पत्र पोस्ट कर देने के लिये मुझे दिया था। बारिश अधिक थी। मैं छतरी सम्भाले पत्र को लेटर बक्स में डालने लगी परन्तु वह बाहर कीचड़ में गिर गया। भीग कर पते की स्याही फैल गयी।"

रणजीत ने टोक दिया—"वैरी सैड, ह्वाट एन एक्सीडेंट!"

शशि उसे सुनने का संकेत कर कहती गयी—"बडी शर्म मालूम हुई। दूसरा लिफाफा लेकर उस पर पता लिखने के लिये पता देखा। पता हमारी भावी भाभी का था। पत्र में केवल दो लाइनें देखकर विस्मय हुआ। आंखें उस पर फिर गयीं। लिखा था:

चांद,

एक हूक सी दिल में उठती है, एक दर्द सा पैदा होता है।

हम जब बैठ कर रोते है, तब सारा आलम सोता है।"

"तुम्हारा पत्र क्यों नहीं आया?"

रणजीत मुस्करा दिया—"स्ट्रेंज!"

शशि कहती गयी—"बहुत बुरा लगा। भैया भाभी को भी धोखा दे रहे है और नसीरन को भी!"

रणजीत ने गम्भीरता से समर्थन किया—सर्टेनली! दिस वाज बैड।"

शशि का स्वर जरा कड़ा हो गया—"मैने सोचा, यह धोखा भैया के दर्दे-दिल की दवा है। नसीरन के मन और शरीर को प्यार कर सकने का मोल कुछ रुपये हैं। सब कुछ खरीदा जा सकता है। आदमी को कैसे खरीद लिया जाता है। सोचा, तुम भी इंग्लैड में वही कर रहे होंगे।"

रणजीत विरोध में गंभीर हो गया—"नो शशि, आइ एम द डिफरेंट मैन। मेरे दर्दे-दिल का मोल रुपया नहीं है। मेरे दर्दे-दिल का मोल है मेरा अपना दिल। मेरी जान. मै न खरीदता हूँ, न बेचता हूँ।"

शशि का स्वर स्पष्ट और ऊंचा हो गया—"हां, अब तक मैं भी ऐसा ही समझती थी लेकिन अब दूसरी बात देख रही हूँ।"

रणजीत ने शशि से आंखें मिलाने का यत्न कर पूछा—"मैंने कभी तुम्हारे साथ मोल-तोल की बात की ?"

शशि की गर्दन सीधी हो गयी—"रणजीत, मुझे खरीदना संभव नहीं क्योंकि मैं भूख से विवश नहीं हूँ। तुम अपनी सामर्थ्य भर ही खरीद सकते हो।"

रणजीत ने विस्मय प्रकट किया—"क्या मतलब ? मैं क्या खरीदता हूँ ?

शशि मुस्करा दी—"तुम ! तुमने मेरा दिल और विश्वास खरीदना चाहा; मनुष्यता से नहीं, पांच रुपये से। एक आदमी की जान की कीमत पांच रुपये लगाकर !" शशि गंभीर हो गयी। उसकी दृष्टि क्षितिज पर चली गयी।

रणजीत ने विरोध किया—"क्या कहती हो !...... कैसे ? यू आर इन्सल्टिंग मी !"

शशि उसी प्रकार निश्चल रही—"उस कुली की जान की कीमत तुम्हारी दृष्टि में क्या थी; जैसे कोई कीड़ा पांव तले कुचल गया परन्तु मुझे रिझाने के लिये तुमने उसके प्रति पांच रुपये की सहृदयता दिखाकर अपनी हृदयहीनता प्रकट कर दी। तुम समझते हो, मेरे विचार में मनुष्य का मूल्य इतना ही है ?" उसने रणजीत की ओर देखा और उत्तेजना में उठकर चल पड़ी।

रणजीत आतुरता से बोला—"शशि, लिसन ! सुनो......एक बात सुनो !"

शशि ने रणजीत की ओर घूमकर देखा—"क्या है ?"

रणजीत ने अनुनय भरी दृष्टि से अनुरोध किया—"क्या मेरे प्यार का, मेरे दर्दे-दिल का यही बदला है !"

शशि मुस्करायी पर माथे पर त्योरियां आ गयीं—"ओह दर्दे-दिल......हूँ।" उसने विदाई के संकेत में बांह उठाकर हाथ हिलाया—"अलविदा दर्दे-दिल ! दूर जा दर्दे-दिल ! गुडबाई दर्दे-दिल !"

शशि तेज कदमों से बंगले की ओर चली गयी।

(पटाक्षेप)

भूमिकाएँ

राहबीती

एक कुएँ में जन्म पाकर उसी में बूढ़े हो जाने वाले मेंढक की कहानी प्रसिद्ध है। उस मेंढक का विचार था कि संसार में मेंढक ही एकमात्र जीव है और कुआँ ही संसार है। अवसरवश एक नया घूमा-फिरा मेंढक कुएँ में आ गिरा। कुएँ के मेंढक को बाहर घूमे-फिरे मेंढक की बातों पर विश्वास करने में कठिनाई हुई थी। फिर भी बाहर से आये मेंढक की बातें कुएँ के मेंढक को मनोरंजक तो लगी ही होंगी। राहबीती से यदि और कोई प्रयोजन पूर्ण न होगा तो वह कुछ कौतूहल उत्पन्न करेगी ही, उससे कुछ मनोरंजन तो होगा ही। इसमें काबुल और प्राहा जैसे दो युगों के प्रतिनिधि नगरों की चर्चा है।

राहबीती के रूप में यात्रा के कुछ अनुभव और तत्-सम्बन्धी विचारों की उधेड़बुन प्रस्तुत करने के लिये किसी सफाई की आवश्यकता नहीं है। यह दावा भी नहीं है कि यात्रा की इस कहानी में किसी अगम रहस्य का पर्दाफाश कर रहा हूँ। जो और जैसा देख पाया हूँ और उन प्रसंगों में अपनी प्रतिक्रियाएँ पाठकों के सम्मुख रख रहा हूँ।

मूल रूप से एक जाति और प्रकृति के जीव मनुष्य, परिस्थितियों के भेद से किस प्रकार भिन्न भाषाएँ बोलते और भिन्न व्यवहार करते हुये भी कितने एक जैसे हैं! भिन्नता और सादृश्यों का द्वन्द्व मनोरंजक तो है ही विचारोत्पादक भी हो सकता है।

इतनी लम्बी बात सुनने के लिये पाठकों को अग्रिम धन्यवाद।

१२ अक्टूबर १९५६

नशे-नशे की बात

यह तीन दृश्य-कहानियाँ इस ढंग से लिखी गयी हैं कि पढ़ने में दृश्य कहानी का प्रयोजन पूरा कर सकें और रुचि अथवा अवसर होने पर रंगमंच पर भी उतारी जा सकें।

इन घटनाओं की रंगमंच सम्बन्धी सफलता के बारे में इतना कहना अप्रासंगिक न होगा कि 'नशे-नशे की बात!' और 'गुडबाई दर्दे-दिल!' का अभिनय लखनऊ तथा दूसरे स्थानों पर किया जा चुका है। 'नशे-नशे की बात!' का सर्वप्रथम अभिनय ३१ अप्रैल, १९५१ की संध्या लखनऊ के छतर मंजिल हाल में विशिष्ट वर्ग के कला-पारखियों के सामने किया गया था। अभिनय में भाग लेने वाले सभी लोगों के नौसिखिये (amatures)

होने पर भी नाटक और उसका अभिनय अत्यन्त सफल समझा गया था। हाल में उपस्थित लोगों में से एक भी व्यक्ति हिलता-डुलता या असंतोष प्रकट करता न देखा गया। 'गुडबाई दर्दे-दिल !' का अभिनय 'अवध वूमेंस एसोसियेशन' की अभिनय में रुचि रखने वाली सदस्याओं ने अपने अधिवेशन के समय किया था। उसके बाद अन्य स्थानों पर भी हुआ। रंगमंच के अनुभव की कसौटी पर इन नाटकों की जाँच हो जाने के बाद, पुस्तक रूप में प्रकाशित करते समय भी इनमें आवश्यक परिवर्तन और परिवर्धन कर दिये गये हैं।

'नशे-नशे की बात !' और 'रूप की परख' के अभिनय का समय प्रायः एक घण्टे और बीस मिनिट के लगभग है और 'गुडबाई दर्दे-दिल !' के अभिनय का लगभग आध घण्टे। नाटक का आयोजन परिमित व्यय और सीमित साधनों से करने वाले लोगों के लिये 'नशे-नशे की बात !' और 'रूप की परख' में आरम्भ से अन्त तक दृश्य परिवर्तन करने की आवश्यकता न होना विशेष सुविधाजनक हो सकता है। 'गुडबाई दर्दे-दिल !' में बीच में एक बार पट-परिवर्तन आवश्यक होगा।

लखनऊ में 'नशे-नशे की बात !' का अभिनय होने पर कुछ साम्प्रदायिक पत्रों में नाटक के विचार-तत्त्व पर आलोचना हुई थी। इस आलोचना का सार यह था कि नाटक के घटना-क्रम द्वारा आध्यात्मिकता के नशे के प्रति शराब के नशे से भी अधिक वितृष्णा प्रकट करने की चेष्टा की गई। ऐसा निष्कर्ष आलोचकों की आध्यात्मिकता के प्रति अति श्रद्धा के कारण ही निकाला गया है। शराब के नशे की प्यास के कारण या उसमें डूबकर अपने पारिवारिक और सामाजिक कर्त्तव्य के प्रति उपेक्षा के लिये नाटक में कोई सहानुभूति या सहनशीलता नहीं दिखाई गई। यही भावना आध्यात्मिकता के नशे में कर्त्तव्य की उपेक्षा के प्रति है। आध्यात्मिकता के नशे के प्रति समाज में जो आदर की भावना जमा दी गई है, उनके प्रति विद्रूप अवश्य है।

'रूप की परख' का कथानक पारिवारिक जीवन की एक साधारण घटना पर आधारित किया जाना कुछ आलोचकों को नाटक की विशेषता को कम करता जान पड़ा है या इस विषय पर अन्य लेखकों द्वारा पहले बहुत कुछ लिख दिया जाना इस नाटक की नवीनता को समाप्त कर देता है। यह नाटक नवीनता के दावे के लिये नहीं लिखा गया है। केवल नवीन बातों पर ही लिखने की प्रतिज्ञा के लिये गर्व करना व्यर्थ है। यदि किसी घिसी-पिटी बात को सजीव बना दिया जा सके तो वह भी कम सफलता नहीं। इस विषय में जिस ढंग से जो कुछ लिखा गया है या अब तक मुझे देखने को मिला, उससे संतुष्ट न होने के कारण मैंने भी प्रयत्न किया है।

'गुडबाई दर्दे-दिल !' शीर्षक से एक कहानी मेरे 'वो दुनिया' कहानी संग्रह में प्रकाशित हो चुकी है। नाटक के कथानक और उस कहानी में बहुत कुछ समता होते हुए भी इसमें अन्तर भी बहुत है। दोनों के वार्तालाप और परिणाम तक पहुँचने के ढंग में बहुत अन्तर है। 'गुडबाई दर्दे-दिल !' में प्रेम की भावना का परिहास कर देना ही अभीष्ट नहीं।

अभिप्राय है कि प्रेम यदि व्यक्तियों के परस्पर आकर्षण का सुसंस्कृत रूप है तो व्यक्ति की यह संस्कृति केवल यौन-आकर्षण में ही प्रकट न होकर सामाजिक व्यवहार में भी प्रकट होनी चाहिये। मनुष्य के दुख-दर्द के प्रति रणजीत की हृदयहीनता देखकर शशि उसकी अपने प्रति सहृदयता में विश्वास नही कर सकती। सामाजिक व्यवहार में दिल का दर्द न होने पर केवल यौन-आकर्षण में ही दिल के दर्द का दावा केवल अभिनय मात्र है, विडम्बना है।

वैशाखी, १९५२ —यशपाल